
45145

आर्यटीका

(प्रथम भाग)

टीकाकार :-

निविलतन्त्रस्वतन्त्र महामहोपाध्याय पं० आर्यमुनि जी

प्रकाशक :-

हरयाणा साहित्य संस्था

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwa

113772

सदस्य

संख्या

(K). X

पुस्तकालय

पुम्तकालय

पुम्तकालय

पुम्तकालय

पुम्तकालय

पुम्तकालय

पुम्नि

प्रागत नं॰

सदस्य

मंख्या

दिनांक

		सल्या	11641
SA CONTRACTOR OF THE PARTY OF T			
Set a			
N N	THE STATE OF THE S		
2 3	1 1		
TO	Star Par		
	THE STATE OF THE S	3	
State State of the Walley	797		
	6	4	

दिनांक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्शः पुरुतकालय पुरुतकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ग संख्या.....

आगत संख्या 3772

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्



113772

महाभारतार्यटीका

(प्रथम भाग)

113772

टीकाकार:-

निखिलतन्त्रस्वतन्त्र महामहोपाध्याय

पं० आर्यमुनि जी



हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

प्रकाशक:-हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकल झज्जर (रोहतक)

मूल्य २०० रुपये

(2.1)

मुद्रक :-वेदव्रत शास्त्री आचार्य प्रिंटिंग प्रेस गोहाना मार्ग, रोहतक दूरभाष ७२८७४

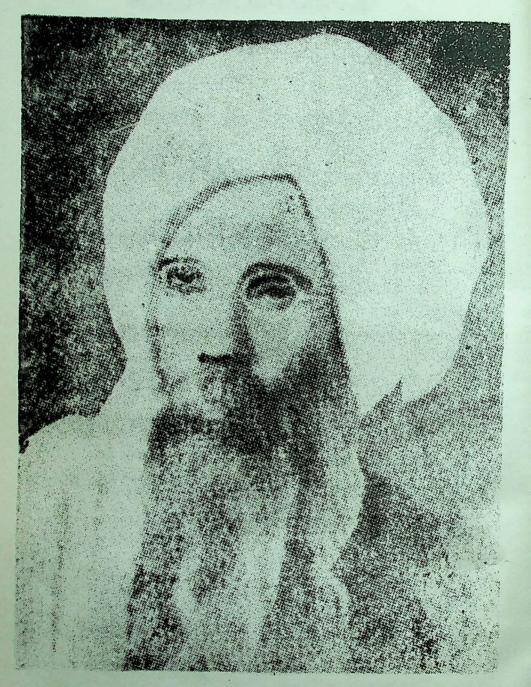
प्रकाशक का वक्तव्य

पण्डित आर्यमुनि जी आर्यसमाज के प्रथम पीढी के विद्वानों में से हैं। इन्होंने सांख्य योग न्याय वैशेषिक वेदान्त और मीमांसा ६ दर्शनों पर आर्यभाष्य लिखकर छपवाये थे। इसी प्रकार गीता रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों पर आर्यटीका लिखकर प्रकाशित किये थे।

प्रस्तुत महाभारत ग्रन्थ चार भागों में छपवाने की उनकी योजना थी। इसका प्रथम भाग उन्होंने संवत् १९७१ वि०, सन् १६१४ ई० में सेठों के रामगढ़ निवासी श्रीमान् सेठ पालीराम जयनारायण रामचन्द्र पौद्धार की सहायता से इम्पायर प्रेस लाहौर से मुद्रित करवा कर पं. देवदत्त शर्मा द्वारा प्रकाशित किया था। ८१ वर्ष पूर्व प्रकाशित यह महाभारत सर्वथा दुर्लभ है। इस के दो भाग हमारे पुस्तकालय में हैं। शेष दो भाग तीसरे और चौथे का अन्वेषण कर रहे हैं।

प्रथम भाग आपके हाथों में हैं। इसी प्रकार के तीन भाग और होंगे। सम्पूर्ण महाभारत चार भागों का अग्रिम मूल्य ५०० रुपये है। छपने के पश्चात् २०० रुपये प्रति भाग के हिसाब से ८०० रुपयों में यह ग्रन्थ मिल सकेगा। जो सज्जन ५०० रुपये अग्रिम जमा करवायेंगे उन्हें शेष ३ भाग भी इसी मूल्य में मिलेंगे।

ज्येष्ठ कृष्णा ७,२०५२ वि० २१ मई १९९५ निवेदक -स्वामी ओमानन्द सरस्वती आचार्य गुरुकुल झज्जर



भी पण्डित आर्यमुनिं जी महामहोपाध्याय

प्रस्तावना

नित नित नूतन दृष्ट में सुनत न तृप्ति कान । ऐसी गाथा जगत् में विन भारत निहं आन ॥

अर्थ-जिसको प्रतिदिन पड़ने तथा सुनने से तृप्ति नहीं होती ऐसी कथा जगत् में महाभारत से विना अन्य कोई नहीं ॥

वास्तव में महाभारत ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है कि इसके समान दूसरा कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं, मनुष्यजीवन को उच्च बनाने तथा शांसारिक यात्रा में मनुष्य को अपने उद्देश पर स्थिर रखने वाला एक यही ग्रन्थ है, यह धर्म, अर्थ, काम, नीति और क्षित्रिय योद्धाओं के अद्भुत कार्य्यों का भाण्डार है, हमारे विचार में एकमात्र यही ग्रन्थ है जिससे हमें भारतवर्ष का पाचीत रिष्ट्यर्य, आत्मिकज्ञान, वैराग्य, विवेक और आचार की शुद्धि का पूर्ण ज्ञान होता है, यही नहीं महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि उस समय भारतवर्ष सम्पूर्ण धन धान्य से पूर्ण और विद्या तथा जिल्पादि सब प्रकार के ऐश्वर्य से भरपूर था—"मय" दानव का अद्भुत कारीगरी से सभाभवन बनाना और राजसूययज्ञ के समय देश देशान्तरों के ऐश्वर्य का खिचकर वहां आना इस बात को सिद्ध करता है कि इस समय भारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य भारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य सारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य सारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य सारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य सारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य सारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य सारतवर्ष से शिल्प और ऐश्वर्य में बढ़ चढ़कर कोई अन्य

इस इतिहास को विचारपूर्वक देखने से सम्यक प्रतीत होता है कि यहां के नृप थड़े उच प्रभाव वाले थे, और जो यह

(5)

कहत हैं कि भारत के समय आर्थ्य लोग देशदेशान्तरों में नहीं गये केवल इन्द्रमस्थ के आस पास ही उनकी एक छोटी राजधानी थी, उनको यह भाग ध्यानपूर्वक पहना चाहिये कि जिस समय भीम पूर्व दिशा, लक्ष्ट्रेय दक्षिण दिशा, अर्जुन उत्तर दिशा और नकुल पिर्चम दिशा को विजय करके इन्द्रमस्थ में आये उस समय उनके ऐक्टर्य की कोई सीमा न थी.जब महाराज नकुल जो विचित्र मार्ग के जानने वाले थे" पिरचम दिशा को विजय करके लोटे तो हज़ारों हाथियों पर उनका ख़ज़ाना लदा हुआ था, जहां हज़ारों हाथियों पर ख़ज़ाने का वर्णन है वहां पैदल और सवारों की तो गणना ही क्या, पाण्डवों ने जिन्द देशों को विजय करता तो गणना ही क्या, पाण्डवों ने जिन्द देशों को विजय करता है, पाण्डवों की दिग्विजय में ऐसे देशों के अनेक नाम आये हैं जिनको सहस्रों वर्षों के परिवर्तन से निश्चयपूर्वक नहीं कहसकत कि वह कीन द देश थे, हो जिन द देशों का विशेष वर्णन करदिया है उनमें हमें भी सन्देह नहीं, जैसाकि:—

रत्नानि भूरीण्यादाय संप्रतस्थे युघांपतिः।
ततः सागरककिस्थान्म्लेच्छान्परमदारुणान्।।
पहलवान् वरवरांश्चेव किरातान् यवनान् शकान्।
ततो रत्नान्युपादाय वशेकृत्वा च पार्थिवान्।।
अर्थ-इसके पश्चात् सागर की कुक्षी में रहने वाले म्लेच्छ जो बहे
दारुण और लड़ाके थे उनको जीता, इस स्थल में हम निश्चयपूर्वक
कहसकते हैं कि यह भारतवर्ष से बाहर के फ़ारस तथा यूनान आदि
देश थे जिनको "वरवर" और "प्रह्नव" शब्द भलेमकार सिद्ध

(3)

करते हैं अर्थाद वरवर स्टेट अब तक उसी नाम से चला आता है और पल्हव फ़ारस का नाम है,इसीलिय फ़ारसी भाषा को पह्नवी कहते हैं,और "सागरकु किस्य" लेख भी इस बात को मिद्ध करता है कि वह बाहर के देश थे,क्यों कि "सागरकु की" उसको कहते हैं जिसके तीन और जल और एक ओर शुष्क प्रदेश हो, सो ऐसे देश अब आदि ही हैं जिनको पाण्डवों ने विजय किया था ॥

यह वह समय था जब आयों के वैदिक्षिम का कोष सब जातियों के लिये खुला था, यह वह सफ़य था जब मनुष्यमात्र का उद्धार करना आयों का परमध्म था, यह वह समय था जब क्षात्रधर्म को ही सब मर्यादाओं, वणों और धर्मों का साशक माना जाता था-यदि उस समय परमात्मा असुरों से इनकी रक्षा न करता तो न ब्राह्मण, न वैदिक्षिम, न चारों वर्ण और न चारों आश्रमों के धर्म रहते. क्योंकि ब्राह्मणों के नष्ट होजाने से सब नाश को प्राप्त होजाते, यह वह समय था कि:—

न बाल एव म्रियंते तदा कश्चिजनाधिए । नच स्त्रियं प्रजानाति कश्चिदपाप्तयौवनः ॥

अर्थ-जिससमय वाल्यावस्था में कोई नहीं मरता था, और
पाही कोई यौवन में पहुंचे विना विवाहित होता था, यह वह
समय था जिस समय नर नारी अखिष्टत ब्रह्मचर्य्य धारण
करके गुहकुलों में शिक्षा प्राप्त कर "मानृदेवो भव पितृदेवो
भव आचार्य्य देवो भव"= माता, पिना तथा आचार्य्य को
देवता मानते थे. और वह आचार्य्य जो नितान्त ब्रह्मपरायण
हुए २ अपने शिष्यों को यह सदुपदेश करते थे कि है जिष्य! त

(8)

"सत्यं वद, धर्म चर''=सदा सत्य बोलना और वैदिकधर्म के अनुष्ठान में सदा तत्पर रहना, इसी आर्थ्यमर्यादा का अवलम्बन कर महर्षि याज्ञबल्क्य, विश्वष्ठ, वालब्बस्यारी भीष्मिपतामह और सत्यवर्भपरायण युविष्ठिर तिद्धि को पाप्त हो वैदिक पथ को सीधा कर गये अर्थात आर्थ्यजाति के हृदय में वह भाव भर गये जिनसे वह सदा के लिये जीवित रहसक्ती हैं॥

इसी भाव को धारण कर भैत्री, गार्भी तथा सुलभा आदि खियें ब्रह्मज्ञान में पूर्ण हो ब्रह्मावादिनी हुई जिनके नाम उपनिष-दादि शास्त्रों में स्पष्ट हैं, इसी भाव से भृषित हुई पतिब्रता श्रीमती महाराणी सीता के गुणों को हम लोग रात्रिदिन गान करते हैं, इसी भाव से भरी हुई द्रोपदी की सहनशीलता की सारा महाभारत साक्षी दे रहा है, अधिक क्या जब कृष्ण सन्धि कराने के लिये कौरवों के समीप गये तब वहां से लौटते समय कुन्ती ने अपने पुत्रों को यह सन्देश भेजा कि:—

ब्र्याः केशव राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् । भ्यस्ते हीयते धर्मो मा पुत्रक वृथा कृथाः ॥ अंगावेक्षस्व धर्म त्वं यथा सृष्टः स्वयंभुवा । बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टा बाहुवीर्योपजीविनः ॥

अर्थ-हे कृष्ण ! धर्मराज युधिष्ठिर को मेरी ओर से कहो कि हे पुत्र ! तेरा धर्म हीन होरहा है त अपना जीवन वृथा मत बना, हे वेटा ! अपने धर्म को विचार जैसा तुझे परमात्मा ने वनाया है, श्रित्रिय भुजाओं से उत्पन्न होने के कारण वह भुजवल से ही जी-विका करने योग्य हैं, और एक माचीन इतिहास का स्मरण कराते (4)

हुए कहा कि हे कृष्ण ! युविष्ठिर को मेरी ओर से कहो कि पूर्व-काल में वैश्रवण ने क्षत्रिय मुचुकन्द को पृथ्वी देनी चाही थी पर उसने न ली और कहा कि " बाहुवीर्याजितं राज्यमश्रीया-मिति कामये" = मैं भुजवल से प्राप्त किये राज्य को ही भोगुंगा यही मेरी कामना है, इसलिये हे पुत्र ! मांगकर लेना तेरे लिये निषिद्ध है तू क्षत्रिय होने से भुजवल ही तेरी जीविका है, सो हे महावाहो ! तू हुवे हुए पित्र्यंश=पिता के भाग को पुनः उद्धार कर ॥

एतद्धनंजयो वाच्यो नित्योद्यको वृकोदरः । यद्थं क्षत्रिया स्तूते तस्य कालोऽयमागतः ॥

अर्थ-हे कृष्ण ! अर्जुन तथा युद्ध के लिये सदा उद्यत भीम को यह कहना कि जिस काम के लिये क्षत्रिया जनती है उसका समय यह आया है, और :—

माद्रीपुत्री च वक्ताव्यी क्षत्रधर्मरताबुभी । विक्रमेणार्जिताच् भोगाच् वृणीतं जीविताद्रि ॥ विक्रमाधिगता हार्था क्षत्रधर्मेण जीवतः । मनो मनुष्यस्य सदा प्रीणन्ति पुरुषोत्तम ॥

अर्थ-क्षात्रधर्म के प्रेमी माद्री के दोनो पुत्रों का यह कहो कि पराक्रम से कनाय हुए भोगों को जीवन से भी बढ़कर समझो, क्योंकि पराक्रम से प्राप्त किये अर्थ ही क्षात्रधर्मावलम्बी पुरुष के मन को सदा प्रसन्न करते हैं॥

यह वैदिकधर्म को आश्रय करने वाली महिलाओं का भाव

(5)

था, यह वेदों की शिक्षा का फल था, इसी भाव को धारण करने वाली देवी कहलानी थीं, यह वेदों की शिक्षा ही पनित्रत्यर्भ का एकमात्र आश्रय था, और इसी भाव से भरपूर हुई अनेक स्वीभृ-पणों के नाम सुवर्ण अङ्कित अक्षरों में लिखे मिलते हैं कि जा धर्मरक्षा के निमित्त अपने जीवन को तृणवत होम करके अपनी मन्तान को यह शिक्षा देनी थीं कि हे पुत्रों ! यह तुम्हारा सनान्तन मार्ग जो तुम्हारे पुरुषाओं ने बनाया है इसी का आदर करों अर्थात घर में ज्याधि से मरना क्षत्रियों के लिये भृषण नहीं, क्षत्रियों का धर्म युद्ध में मरना है और यही सनातन मर्यादा है, इसी मर्यादा का अवलम्बन करके नाभाग, ययाति, मान्धाता और नहुष आदि बड़े २ नृष सिद्धि को प्राप्त हुए और यही तुम्हारे लिये स्वर्ग का बड़ा द्वार खुला हुआ है।।

इसी वैदिकमर्यादा का पालन करते हुए बालब्रह्मचारी भीष्मिपतामह ने बाणों की शय्या पर शयन करके अपनी सन्तान को यह शिक्षा दी किः—

ब्रह्मणानां यथाधर्मो दानमध्ययनं तपः। क्षत्रियाणां तथा कृष्ण समरे देहपातनम्।।

अर्थ-हे कृष्ण ! जिसमकार ब्राह्मणों का धर्म दान, वेदा-ध्ययन तथा तप करना है इसी मकार क्षत्रियों का धर्म युद्ध में शरीर का साग करना है ॥

यह वह भाव था जिससे भारतवर्ष की वैदिकप्रभा का भानु देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरों में प्रदीप्तमान् था, यह वह भाव था जिससेभारतवर्ष के दिव्य देवगणों की शक्तियां दशो दिशाओं

(9)

में देवभाव फलाती थीं. यह वह वैदिक भाव था जिससे स-म्पन्न होकर आर्यजनों ने देसभाव को आर्यावर्त्त से बाहर कर दिया था, यह वह भाव था जिसके प्रभाव से यह देश द्िहता. दीनता तथा दुर्बलता आदि सब दुर्गुणों से वर्जित था, यह वह भाव था जिसके दण्ड के आगे मिध्याविश्वास, नास्तिकता तथा निन्दित नय का दम्भ दम नहीं मारसक्ता था. इनी आत्मसमपण का प्रभाव था कि यह देश विद्या, बुद्धि, मान, ऐइयर्थ और सब मकार के सहणों से भरपूर था, कहां तक लिखें इस भारतवर्ष का गौरव यहां तक बढ़ा कि जिसके लिये द्वीप द्वीपान्तरों में भी कोई वाधा और रुकावट न रही, परन्तु इस न्याय के अनुसार कि वृद्धियें क्षयान्त होती हैं अर्थाद जो चीज अत्यन्त ऊंचाई को पहुंचेगी वह अवश्य गिरेगी, इसी नियमानु-सार यह आर्यावर्त्तदेश भी विवादग्रस्त होगया, वह विवाद यहां विस्तार के कारण नहीं लिखा जाता केवल इतना लिखना पूर्ण है कि उस विवाद का मूलकारण यथा नाम तथा गुण दुर्योचन था, इस द्वेषाप्रि को शान्त करने के लिये भीष्मिपतामह, विदुर, द्रोणाचार्य्य तथा कुपाचार्य आंदि अनेक महानुभावों ने अत्यन्त यत्र किया पर इस देवी दुर्घटना को कौन शान्त करसक्ता था॥

यह भारत इतिहास ही है जो हमारे पूर्व पुरुषाओं के जीवन-चरित्र द्वारा उस वैदिकपथ का स्मरण कराता है जिसका अनुष्ठान करना ही अमृत और जिससे पतित होना ही मृत्यु है ॥

यद्यपि ब्राह्मण, उपनिषद् तथा सूत्र ग्रन्थों में भी आर्यवंश का इतिहास संक्षेपतः वार्णत है परन्तु उनसे कोई पुरुष भी भार-तीय इतिहास का चित्र नहीं खेंचसक्ता, जो कुछ आर्यों की ()

वंशावली पिलसक्ती है उसका मूलभूत ''बालमीकिरामायण'' और ''महामारत'' ही हैं॥

इसमें कई एक लोगों का यह निश्चय है कि महाभारत पहले और रामायण पीछे बना है, और इस सिद्धान्त की पुष्टि में वह इस तर्क का अवलम्बन करते हैं कि जब पहले पहल आर्य जाति इन्द्रपस्थ के आस पास थी उस समय का महाभारत और जिस समय उसका मवेश दक्षिण मान्त में हुआ उस समय का रामायण है, वयोंकि उस समय आर्घ्यहोग हंका तक पहुंच गये थे जिसको अब सीलोन कहते हैं, और इसका भाव यह निकालते हैं कि रामायण बहुत उन्नति के समय का ग्रन्थ है, क्योंकि उस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष में आर्यजाति का अधिकार होगया था,इसी सम्बन्ध में वह यह युक्ति भी देते हैं कि रामायण के समय आय्यों में सदाचार का पूर्ण अनुष्ठान पाया जाता है अर्थात एक पुरुष के लिये एक ही स्त्री का होना धर्म और इससे भिन्न को व्यभिचार वर्णन किया गया है परन्तु महाभारत का समय ऐसा नहीं, इससे सिद्ध है कि सदाचार की रेखा पाये जाने से रामायण थोड़े काल का और महाभारत प्राचीन है, क्योंकि उसमें सदाचार की कोई रेखा नहीं पाई जाती और पहले पहल सब जातियों में ऐसा ही होता है, एवंविध अनेक युक्तियों से कई छेखकों ने महाभारत के समय को रामायण से प्रथम ठहराया है ॥

इस निर्णय के लिये इम प्रथम "महाभारत" शब्द के अर्थ का निरूपण करते हैं कि इसका यह नाम क्यों पड़ा ? ॥

भरत राजा से सम्बन्ध रखने वाले इतिहास को भारत कहते हैं और राजा भरत आर्ट्यजाति में राम से पूर्व नहीं हुआ, यह (°.)

राजा दुष्यन्त का पुत्र था और राम इससे सहस्रों वर्ष पहले हुए हैं, इसलिये महाभारत को पहले और रामायण को पीछे बताना भूल है।

और युक्ति यह है कि जिससमय यह ग्रन्थ वना उस समय न्याय, वेदान्त, सांख्य, योग, वैशेषिक और पूर्वभीमांसा इन षट्शास्त्रों की फ़िलासफ़ी का आविर्भाव था, क्योंकि इसमें प्रायः दर्शनों का विचार आता है और रामायण के समय दर्शन फ़िलासफ़ी तथा द्वैताद्वैत के विचार का अंश भी नहीं पाया जाता, इससे सिद्ध है कि उक्त फ़िलासफ़ी का आविर्भाव इस नये समय में हुआ है, जैसािक ग्रन्थों के इतिहास से पाया जाता है, इससे भी महाभारत का पीछे ही होना सिद्ध है रामायण से पूर्व नहीं।

और वड़ा प्रमाण यह है कि महाभारत के किसी योदा का रामायण में वर्णन नहीं पाया जाता परन्तु महाभारत में रामायण के राम का कई स्थानों पर वर्णन आया है, जैसाकि:—

असंभवं हेममयस्य जंतोस्तथापिरामो छुछुभे मृगाय । प्रायः समासन्नपरा-भवाणां धियो विपर्यस्ततराभवन्ति ॥

महा० सभा० ५१।५

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जब विपात्त मनुष्य के निकट आती है तब उसकी बुद्धि भी विपरीत होजाती है, जैसे सुवर्णमय हरिण के असम्भव होने पर भी राम का मन खुभायमान होगया था, इससे भी ज्ञात होता है कि महाभारत पीछे बना है ॥ (90)

और जो इसका यह उत्तर दिया जाता है कि महाभारत में समय २ पर मिलावट होती रही इसिलिये उसमें इस प्रकार के लेख पाये जाते हैं, एवं दर्शन सम्बन्धी लेख भी पीछे मिलाये गये, यदि इस बात को इसी रूप में मानाजाय तो भी ठीक नहीं, र्योंकि रामायण में भी समय २ पर मिलावट होती रही है और मिलावट होने पर भी उसमें दर्शन सम्बन्धी लेख नहीं पाये जाते और न महाभारत के किसी पुरुष का नाम आता है, इस लिये प्रक्षिप्त मानकर भी रामायण से भारत को प्रथम मानने वालों का निर्वाह नहीं होसकता ॥

रामायण के मथम होने में और प्रमाण यह है कि जहां राम ने राजा के कर्तव्य पालन का उपदेश करते हुए भरत को शिक्षा दी है उसी भाव को ज्यों का त्यों महाभारत के कर्ता ने उद्धृत किया है अर्थात सभापर्व में जहां नारद युधिष्ठिर के मात राजा के कर्तव्य का निरूपण करते हैं वहां वही भाव और संस्कृत भी ज्यों की त्यों है, जैसाकि "क्ञित्ते सफला वेदाः"=क्या तुम्हारा वेद पढ़ना सफल है, इत्यादि, अधिक क्या "समुद्रमिवगाम्भीर्ये धेर्यण हिमवानिव" इत्यादि अलङ्कार और संस्कृत भी रामायण से महाभारत में उद्धृत की गई है, जिस मकार मीमांसा के शवर-भाष्य को स्वा॰ शंकराचार्य्यजी ने अपनी चतुःसूत्री में आश्रित करके कई स्थानों में शवरस्वामी के अनुरूप ही संस्कृत का ग्रन्थन किया है इसी मकार महाभारत के कर्त्ता ने भी रामायण को सन्मुख रखकर अनेक स्थानों में वैसा ही ग्रन्थन किया है, इससे भी महाभारत की रचना का काल पीछे ही सिद्ध होता है आगे नहीं॥

(99)

वस्तुतः बात यह है कि प्रक्षिप्तांश तो महाभारत में बहुत पाया जाता है इससे हमें इनकार नहीं, और हम क्या हमारे विचार में कोई भी मनुष्य साहसपूर्वक यह नहीं कहसक्ता कि इसमें मिलावट नहीं, इसमें मिलावट स्पष्ट पाई जाती हैं, जैसाकि:—

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।

अर्थ—नरों में उत्तम नारायण और दिव्यगुणयुक्त सर-स्वती तथा व्यासजी को नमस्कार करके इस भारत को बनाना प्रारम्भ करते हैं, क्या कोई कहसक्ता है कि यह श्लोक व्यासजी ने स्वयं बनाया है,क्योंकि इसमें व्यास को नमस्कार करके महा-भारत का प्रारम्भ करना पाया जाता है, क्या व्यासजी ने अपने आपको नमस्कार करके प्रारम्भ किया ? और:—

तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम् । इतिहासिममं चके पुण्यं सत्यवतीस्रतः ॥

महा० १ । ६८

अर्थ-सत्यवती के पुत्र व्यास नेतप तथा ब्रह्मचर्य से सना-तन वेद का विभाग करके पुनः इस पवित्र इतिहास को बनाया ॥

इस प्रकार के सैकड़ों श्लोक महाभारत में पाये जाते हैं जिन से स्पष्ट सिद्ध है कि यह श्लोक व्यासकृत नहीं ॥

और यह कथा भी मिलती है कि महारभारत लिखते समय व्यासजी ने गणेश का स्मरण किया, क्योंकि उस समय गणेश से शीघ्र लिखने वाल। कोई न था, गणेशजी आये और उन्होंने

(55)

आकर कहा कि मैं लिखने को तो तैयार हूं पर मेरे साथ एक प्रतिज्ञा करें कि मेरी लेखनी यदि टहरगई तो मैं फिर नहीं लिख़ा, तब न्यासजी ने कहा कि मुझे तुम्हारा कथन सर्वथा स्वीकार है पर तुम्हें भी मेरे साथ यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि विना समझे मैं नहीं लिख़ेगा, यह गणेशजी ने भी मानकर लिखना प्रारम्भ करिदया, जब न्यासजी लिखाते २ शीघ्र नये श्लोक नहीं बना सकते थे तब कोई न कोई दिष्टकूट डाल देते थे, इतने में गणेशजी सोचने लग जाते और न्यासजी और बना लेते थे, यह कथा आदिपर्व में प्रसिद्ध है।

हमारे विचार में पहले तो यह कथा ही असंभव है, क्योंकि कब गणशजी हुए और कब व्यासजी हुए सहस्रों वर्षों का अन्तर पाया जाता है, यदि "अमरानिर्जरादेचा" इस आधुनिक वाक्य के अनुसार गणशजी को अमर भी मानाजाय तो भी जब वह टिखने में इतने शीघगामी थे तो क्या समझने में नहीं थे? हमारे विचार में तो वह समझने में भी प्रवीण थे, क्योंकि एसी स्थल में उनको सर्वज टिखा है, फिर व्यासजी उनको दिष्टकूट से कैसे अटका सकते थे,अस्तु येन केन प्रकार से यह कथा ठीक भी मान-ली जाय तब भी मूल महाभारत में इसका क्या सम्बन्ध ? ज्ञात होता है कि इस प्रकार की कथायें अन्य लेखकों ने महाभारत में मिवष्ट करके ऐसे ? श्लोक निर्माण किये हैं कि :—

अष्टीश्लोकसहस्राणि अष्टीश्लोकशतानि च । अहं वेद्मि शुकोवेत्ति संजयो वेत्ति वा नवा ॥ आहि॰ १ । ११७

(9.3)

अर्थ-व्यासजी कहते हैं कि इसमें आठ हज़ार आठसौ श्लोक ऐसे हैं जिनको मैं तथा शुकदेव जानते हैं और नजाने संजय जानता है वा नहीं, एवं बढ़ाते र महाभारत की संख्या में यह भेद होगया कि कहीं चौवीसहज़ार,कहीं अनुक्रमणिका सहित उनत्तीसहजार और कहीं साठ लाख लिखी है, और इस साठ लाख का विवरण इस प्रकार किया है कि इनमें से १५ लाख श्लोक देवलमीन ने पित्लोक में पितरों को. ३० लाख नारदजी ने देवताओं को तथा १४ लाख शुक्रा-चार्य्य ने यक्ष, राक्षस और गन्धर्वों को सुनाय और शेष एक लाख वैशम्पायन ने मनुष्यों को सुनाय, यदि यही गणना मानी-जाय तब भी ठीक नहीं, क्योंकि इस समय महाभारत में एक लाख तेरहहजार श्लोक पाये जाते हैं जो किसी प्रकार भी व्यासजी के बनाये सिद्ध नहीं होसक्ते, क्योंकि इनमें अनुक्रम-णिका पर्व तथा पर्वसंग्रहपर्व आदि कई एक प्रक्षिप्त भाग मिलाकर आधुनिक संख्या की पूर्ति कीजाती है, अस्त इसका निर्णय हम ग्रन्थ के अन्त में करेंगे कि प्रतिपर्व कौन २ श्लोक प्रक्षिप्त हैं॥ अब विचारणीय यह है कि महाभारत जैसा उत्तम इतिहास जिसमें आर्यजाति के अपेक्षित सभी विषयों का पूर्ण रीति से विवरण पाया जाता है और जिसमें वेदाश्रित मदाचार का निरूपण भी भलेमकार किया गया है उसमें द्रीपदी जैसी धर्मचारिणी स्त्री के पांच पतियों का वर्णन कैसे संगत होसकता है ? इस विषय को बहुत सोच विचार कर हम इस आशय पर पहुंचे हैं कि जहां "ग्रभ्णामि ते सीभगत्वाय हस्तं०" इस वेदमंत्र को मूलाधार रखकर द्रौपदी के विवाह का विवरण है वहां मर्यादा पुरुषोत्तम आयों में एक ही पाते और एक ही पित होसक्ती है और वहां यह भी दर्शाया है कि

पुराणों में अनेक पाति तथा अनेक पित्रयों का विधान है परन्तु वैदिक धर्म में यह मर्यादा नहीं, उक्त लेखानुसार हमें यह विवेचन भी करना पड़ेगा कि महामारत में कौन २ लेख वेदाश्रित और कौन २ पौराणिक हैं, जिसके लिये हमने कई एक प्राचीन हस्तालाखित महाभारत उपलब्ध करने का यत्र किया है जिनके द्वारा पूर्णतया छानचीन करके इस विषय का निर्णय भूमिका में करेंगे, जिसको श्री एं आर्यमुनिजी महाराज तैयार कर रहे हैं।

यदि उक्त कलंकों को ठीक भी मानाजाय तब भी इस ग्रंथ की मनोरंजकता चन्द्रमा के समान किसी कलंक से छिप नहीं सक्ती, इसमें करुणा, राँद्र, वीर तथा भयानक इत्यादि अनेक रस अपने श्विचित्र भावों से जगह २ पर पाठकों के हृद्यों को विदीर्ण करते हैं, जैसािक सभा में लाकर जब कारव द्रीपदी का निराद्र करने लगे तब द्रीपदी ने कहा कि:—

परित्रायस्व मां भीष्म द्रोण द्रौणे तथा कृप। परित्रायस्व विदुर धर्मिष्ठो धर्मवत्सल। धृतराष्ट्र महाराज परित्रायस्व वै स्नुषाम्॥

अर्थ- हे भीष्म ! हे द्रोण ! हे अश्वत्थामा ! हे कृपाचार्य ! और हे धर्मात्मा विदुर ! आप मेरी रक्षा करें, हे धृतराष्ट्र ! आप अपनी स्नुषा=पुत्रवधु की लाज रखें,जब इस मकार विलाप करती हुई द्रौपदी ने दीन बचनों से उस सभा में मार्थना की तब उस समय के नियमसूत्र में वंधे हुए उक्त योद्धाओं ने उस भयभीत कदलीस्तम्भ के समान कांपती हुई द्रौपदी को कुछ उत्तर न दिया तब वह बोली कि :— (76)

धिगस्तु नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षात्रविदां च वृत्तम् । यत्र ह्यतीतां कुरु-धर्मबेलां प्रेक्ष्यन्ति सर्वे कुरवः सभायाम् ॥

अर्थ-इन भरतवंशियों को धिकार है जो इस अधर्म और मर्यादा रहित काम को देख रहे हैं, निश्चय अब इन सब भरतवंश्चियों का धर्म तथा क्षत्रियपन नष्ट होगया है, इसमकार इस ग्रन्थ में करुणा रस के अनेक प्रवाह वर्षाऋतु की वेगशीला निद्यों के समान वहते हुए हृदयक्लों को विदीर्ण करते हैं, एवं इसमें वीर रस यहां तक ढंके की चोट से प्रतिपक्षियों के हृदय को कम्पायमान करता है कि जब पाण्डव विपद्ग्रस्त हुए अत्यन्त दुः खित हो बन को जाने लगे तब भीमसेन ने प्रतिज्ञा की कि:—

अहं दुर्योधनं हैता कर्ण हंता धनंजयः। शर्कुनं चाक्षिकतवं सहदेवो हिनष्यति॥ इदं च भूयो वक्ष्यामि सभामध्ये वृहद्वचः। सत्यं देवाः करिष्यन्ति यन्नो युद्धं भविष्यति॥

अर्थ-में दुर्योधन का हनन करुंगा, अर्जुन कर्ण को मारेगा और इस ज्वारी शकुनि का सहदेव नध करेगा, और मैं इस सभा के बीच में दूसरी वड़ी यह प्रतिज्ञा करता हूं,देवता मेरी इस प्रतिज्ञा को युद्ध के आने पर सत्य करें, वह यह है कि:—

सुयोधनिममं पापं हंतास्मि गदया युधि। शिरःपादेनचाभ्याहमधिष्ठास्यामि भृतले॥ (?5)

वाक्यश्ररस्य चैवास्य परुषस्य दुरात्मनः । दुःशासनस्य रुधिरं पातास्मि मृगराडिव ॥

अर्थ-में इस पापी दुर्योधन का युद्ध में गदा से हनन करके पृथिवी पर गिराकर इसके शिर को अपने पांच से रगडुंगा, और इस कटुभाषी, बोलने में श्रावीर दुरात्मा दुःशासन की छाती को सिंह के समान फाड़कर इसका लोह पींजंगा, यदि ऐसा न करूं तो मेरी सद्गति न हो, एवं इस ग्रन्थ के अनेक स्थलों में साहस और वीरता नभोमंडल में तारागण के समान सर्वत्र स्थान २ पर चिवित्र भाव से चित्रित होरही है, तदनन्तर शान्ति पर्व में राजधर्म, नीतिधर्म तथा शान्तिधर्म का उपदेश करके इस प्रदीप्त भारत युद्धाग्रि को शान्ति की आहुतियों से शमन किया गया है और उक्त स्थलों में ऐसे २ अपूर्व उपदेश किये गये हैं जिनमें प्रजा को राजा के साथ वर्त्तने का उत्तम उपदेश पाया लाता है, जैसा कि:—

विद्याशीलवयोरृद्धान् बुद्धिरृद्धांश्च भारत । धनाभिजातरृद्धांश्च नित्यं मृदोऽवमन्यते ॥

अर्थ-जो विद्या, शील=गुण तथा आयु में बड़ा हो, जो बुद्धि में बड़ा हो,जो धन में बड़ा हो और जो सेना आदि बलों में बड़ा हो,ऐसे मान्य राजपुरुषों का अपमान करने वाले मूर्ख होते हैं॥

इस मकार राजधर्म और मजाधर्म का वर्णन महाभारत में विशेष रिति से पाया जाता है जिसका साक्षात्कार ग्रन्थ के आद्योपान्त अवलोकन करने ही से होसका है अन्यथा नहीं।

(29)

अव मैं अंत में सेठों के रामगढ़ निवासी श्रीमान सेठ पाछी-राम, जयनारायण, रामचन्द्र पोद्धार को अनेक धन्यवाद देता हूं जिन्होंने अपनी उदारता से इस ग्रन्थ के मकाशित करने में हमें सहायता दी है, इन महानुभावों का चरित्र निम्निलिखित कवित्त में वर्णित है, जैसाकि:—

कवित्त

रामगढ़ सेठों का प्रासिद्ध जिला सीकर में-तांह के निवासी बड़े सेठ साहूकार हैं। जप तप नेम बत विद्या अनुराग सदा-झूठ पन्थ त्याग करें सत्य का ज्योहार हैं।। भारत के भार को उठाया छपवाने मध्य-दीना है सहाय्य अति चित्त के उदार हैं। जयनराण रामचन्द्र पिता पालीराम सेठ-अप्रवाल वंशी नामनामी पोद्धार हैं।।

देवदत्तशर्मा

लहीर

विषय	पृष्ठ-पंक्ति
पाण्डु का बन में वास करने का वर्णन	930-8
विदुर्जा के विवाह का वर्णन	939-6
धृतराष्ट्र और पाष्डु के पुत्रों का वर्णन	१३२-३
दन में पाष्डु वी मत्यु वा दर्णन	936-96
बन से पाण्डु के एन और कुन्तों को लेकर तपिस्वयों के हस्तिनापुर	
में आने का वर्णन	984-9
पाष्डु के पुत्र और धृतराष्ट्र के पुत्रों में विरोध उत्पन्न होने का कारण	986-98
दुयोंधन का भामसन को विष देने का वर्णन	948-93
कृपाचार्य्य वा उत्पत्ति वा वर्णन	943-94
धृतराष्ट्र के पुत्र और पाष्डु के पुत्रों का धनुर्विद्या सीखने का वर्णन	9 ६ ६ – ३
धृतराष्ट्र के पुत्र और पाष्डु के पुत्रों की द्रोणाचार्य और राजसभा	
के स्मुख ध्तुर्देखा में एरीक्षा होने वा दर्णन	902-9
कर्णका सभा में आना और अर्जुन के साथ विरोध उत्पन्न होने का वर्णन	997-4
युधिष्टिर का युवराज पद पर नियत होना, होणाचार्व्य का अर्जुन	
को "ब्रह्मशिर" नामक अस्त्र देना और उससे गुरुदक्षिणाप्राप्त	
करने का वर्णन	२०६-१
अर्जुत के लिजय करने का वर्णन	२०७-६
हतराष्ट्र के प्रति मंत्री "कार्णक" की कही नीति का वर्णन	२०९-५
रुपीयन तथा शकुनि आदि का पाण्डवी की मारने का उपाय सोचना	२२४-३
रतराष्ट्र की आज्ञा से दुर्योधन का कुन्ती सहित पाण्डवी की वाप-	
णावत नगर में भेजना ओर अपने मंत्री परोचन द्वारा पाण्डवां	
क जलान का लाक्षागृह वनवान का वर्णन	२३४-११
गण्डवीं का वारणावत नगर की जाना और पुरवासियों का आपस	140-11
म दात चात करना	289-99
।।(णावत नगर का जात हुए विद्रजी का याधारेर की जिल्ला करना	२४५-१५
। एडवा का वरिणावत नगर में पहुंचकर लाशागड़ में वाम करना	
अरि चाक्रेस रहकर वहाँ से निकलन का रागा में जन	₹ ४९ –३
ण्डवा का लाक्षागृह म अग्नि लगाकर भागजाना और परोचन	
के भस्म होने का वर्णन	259-0

विषय	१ ष्ठ-पंक्ति
वन में भीमसेन का हिडिम्प राक्षस की मारना, उसकी बहिन हिडिम्बा	
स विवाह करना और उससे घटोत्कच पुत्र का होना	२७७-19
पाण्डवीं को "एकचका" नगरी में व्यासजी का मिलना और उनका	
वहीं गुप्तरूप से रहकर मनुष्यभक्षक "वक" राक्षस का वध करना	309-90
"एकचका" नगरी में एक ब्राह्मण से द्रीपढी का स्वयंवर सुनकर	
पाण्डवीं का पांचालदेश में राजा हुपद के यहां जाना और एक	
कुम्हार के घर ठहरना	3 8493
राजा हुपद् का प्रण और विवाहमंडप का वर्णन	३४८-६
सुवर्ण की माला लेकर द्रौपदी का विवाहमण्डप में आना और उस	
के भाई धृष्टयुम्न का स्वयंवर में आये हुए सब राजाओं के नाम	
र्कार्तन करके रुक्ष्य बेधन का प्रण सुनाना	३५३-६
कृष्ण का उस स्वयंवर में पाण्डवों को पहचानना	₹.846
अर्जुन का धनुष उठाकर तक्य विधन करना और द्रीपिश को जीत-	
कर रंगभवन से बाहर आना	३६४-१६
स्वयंवर में आये हुए राजाओं का राजा हुपद पर कोध करना और	
मीमसन का युद्ध करने के ठिये तैयार होना	३६५-३
द्रीपदी को, साथ लेकर पाण्डवी का उसी कुम्हार के घर कुन्ती के	
पास ज्ञांन का वर्णन	३८३-१•
हुपद का पाण्डवी की पुनः अपने महली में बुलाना और सब संशय	
निवृत्त करके द्रौपदी का उनके साथ विवाह करने का वर्णन	४०६३
विवाह के परचात धतराष्ट्र के पुत्रों का लिजत होकर परचात्तापकरना	894-99
धतराष्ट्र तथा दुर्योधन का पाण्डवों के विषय में पुन: अनिष्ट	
सोचन का वर्णन	४२३-३
भीष्मिपतामह तथा द्रोणाचार्य्य आदि का पाण्डव और धात्तराष्ट्रों के	
विरोध को शान्त करने का वर्णन	833-3
पाण्डवों को बुलाने के लिये राजा धतराष्ट्र की ओर से राजा दृष्ट	
के यहां दूत भेजने का वर्णन	836-3
विदुरजी का राजा दृपद के यहां जाना और द्रापदी सहित पाण्डवी	
को लाने का वर्णन	186-6

विपय	पृषु-पंक्ति
धृतराष्ट्र का पाण्डवों को "खाण्डवप्रस्थ" प्रान्त का राज्य देकर उन्हें	
वहां भेजना और उनका राजधानी बनाकर यहां रहने का वर्णन	84.6-5
अर्जुन का "रवतक" पर्वत पर जाना और कृष्ण की सम्मति से	
उनकी बहिन सुभद्रा के साथ विवाह करने का वर्णन	४७८-६
इन्द्रप्रस्थ से अर्जुन तथा कृष्ण का यमुना नदी की ओर जाना और	
"खाण्डव" वन को जलात समय "मय" दानव की रक्षा करने	
का वर्णन	889-93
सभापर्व	
"मय" दानव की प्रार्थना करने पर कृष्ण की आज्ञानुसार युधिष्ठिर	
के सभाभवन बनाने का वर्णन	89.0-8
महाराज युधिष्ठिर का सभाभवन में प्रवेश करना और सब देशों	
के राजा तथा ऋषि मुनियों के वहां आने का वर्णन	404-20
युर्धिष्ठर की सभा में नारदंजी का आना और उनको उपदेश करने	
का वर्णन	५१२१०
महाराज युधिष्ठिर का राजसूययज्ञ करने का विचार और कृष्ण	
को द्वारका से बुलाने का वर्णन	494-4
कृष्ण का युधिष्ठिर को जरासन्ध के मारनेकी सम्मति देने का वर्णन	५३५-११
कृष्ण, अर्जुन तथा भीमसेन का जरासन्य की राजधानी में जाकर	
उसको मारना और सब राजाओं को कारागार से छुड़ोन का वर्णन	न ५६० ८
अर्जुन के दिग्विजय का वर्णन	49.8.5
भीमसेन के दिग्विजय का वर्णन	505-3
सहदेव के दिग्वजय का वर्णन	६१५-६
नकुल के दिश्विजय का वर्णन	६ २२- 99
राजमृय यज के प्रारम्भ होने का वर्णन	525-99
महाराज युधिष्ठर के राजम्य यज्ञ में देशदेशान्तरवासी राजाओं	
के आने का वर्णन	६३६१२
यज्ञ के प्रबन्धक पुरुषों का वर्णन	€.8. 3 −3
कृष्णजी को अर्घ प्रदान करने का वर्णन	E89-90

विषय कृष्ण के अर्घप्रदान करने पर राजा शिशुपाल का उन पर आक्षेप	पृष्ठ-पंक्ति
कृष्ण के अर्घप्रदान करने पर राजा शिशुपाल का उन पर आक्षेप	
करने का वर्णन	E86- 16
कृष्ण के हाथ से शिशुपाल के बंध का वर्णन	89.0-9
युधिष्ठिर को राजतिलक देना और यज्ञ के समाप्त होने पर सब	
राजाओं का अपनी २ राजधानी को जोने का वर्णन	499-9
यज्ञसमाप्ति के पीछे दुर्वेथिन का उस सभाभवन को देखने का वर्णन	७०३-५०
युधिष्ठिर का ऐश्वर्य देखकर दुर्योधन तथा शकुनि को डाह उत्पन्न	
होने का वर्णन	900-3
दुर्योयन का धतराष्ट्र के प्रति यज्ञ में आरे हुए राजाओं की भेटें सुनाने	
क्षा वर्णन	७३६-११
दुर्गोधन का राजा धतराष्ट्र से युधिष्ठिर के अभिषेक का वर्णन करना	७५२-१८
धृतराष्ट्र का दुर्योधन को उपदेश करना	७५७-१८
द्योंधन का धृतराष्ट्र से नीतियुक्त वचन कहकर उसकी पाण्डवीं की	
विभूति लेने के लिये पुन: उत्तीजत करने का वर्णन	७६०-१५
दुर्योधन से प्रेरित हुए धतराष्ट्र का जूआ खेलने के लिये समाभवन	
यनवाना और विदुर की भेजकर पाण्डवीं की बुलान का वर्णन	७६५-१७
विदुरजी का इन्द्रप्रस्थ से पाण्डवों की हस्तिनापुर में लोने का वर्णन	७७२८
सभाभवन में पहुंचकर युधिष्ठिर और शकुनि का वार्तालाप	७८१-१३
युधिष्ठिर का शकुनि के साथ जूआ खेलना और युधिष्ठिर के बहुत	
धन हारने का वर्णन	929-4
विदुर जी का धृतराष्ट्र को समझाना और दुर्योधन को स्यागदेने का	
उपदेश करना	660-6
द्यीधन का क्रोधित होकर विदुरजी की अपशब्द बालना आर	
विदुरजी का अनेक हितकारी बार्त कहकर चुप होजाने का वर्णन	न ८०५-६
पुन: जूए का प्रारम्भ होकर युधिष्ठिर के सर्वस्व हारने का वर्णन	८१२-९
दुर्योधन का द्रौपदी को दासीकर्म करने के लिये बुलाना और विदुरजी	
का ऐसा न करने का उसे उपदेश करना	< 3x-8
दुःशासन का दीपदी की गाल पकड़कर खींचते हुए सभा में लाना	
और वहां द्वीपरी का दासी द्वीने वा न होने के प्रश्न का वर्णन	<96-94

विषय	पृष्ठ-पाक्त
दुःशासन का द्रीपदी को नंगा करने के लिये उसके वस्त्र खींचेन का	वर्णन ८४४-७
धतराष्ट्र का द्रीपदी को वर देना और पाण्डवों का दासभाव से छूटने	
कावर्णन	648-4
धतराष्ट्र का युधिष्ठिर को शिक्षा करना और सब भाइयों सहित युधिष्ठिर	
का इन्द्रप्रस्थ को जोने का वर्णन	663-90
दुर्योधन का धृतराष्ट्र से अनेक कारण कहकर पाण्डवीं को पुन: जूआ	
खेलने के लिये बुलाने का वर्णन	८६८-२
गान्धारी का धतराष्ट्र की दुर्योधन के त्याग का उपदेश करना	८७३-१३
भृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर का शकुनि के साथ पुनः जूआ	
खेलना और सर्वस्व हारकर बन को जोन का वर्णन	८७६ १२
पाण्डवों का मृगचर्म ओड्कर बन को जाते समय उनकी प्रतिज्ञारें।	
करने का वर्णन	८८ २-२
पाण्डवों का धतराष्ट्र तथा भीष्यीपतामह आदि सब बृद्ध पुरुषों से	
विदा मांगकर बन को जान्दका वर्णन	دوع-۹۹
द्रीपदी का कुन्ती से विदा मांगना और कुन्ती के विलाप करने का	
वर्णन	64.6-9
धतराष्ट्र के पूछने पर विदुरजी का पाण्डवा के बन जाने विषयक	
वृत्तान्त कहना और दुर्योधन का ब्रोगाचार्व्य की शरण में जान	
का वर्णन	904-99
पाण्डवों के बन जाने पर धतराष्ट्र के चिन्तातर होने का वर्णन	e s u . u .





अथ महाभारतार्यटीका प्रार्भ्यते

कुरूणां पाण्डवानां च भवान् प्रत्यक्ष दर्शिवान् । तेषां चरितमिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज ॥१॥

अर्थ-जनमेजय ने व्यासनी से पूछा कि हे विश ! आपने कौरव और पाण्डवों को प्रत्यक्ष देखा है, इसिलिये में चाहता है कि मेरे प्रति आप उनका चरित्र कहें ॥

कथं समभवद्भेदस्तेपामक्षिष्टकर्मणाम् । तच युद्धं कथं वृत्तं भूतान्तकरणं महत् ॥२॥

अर्थ-उन क्रेशरहित कर्म करने वालों का परस्पर विरोध तथा प्राणियों का अन्त करने वाला वह वड़ा युद्ध कैसे हुआ ॥ पितामहानां सर्वेषां दैवेनाविष्टचेतसाम् ।

कात्स्न्येंनेतन्ममाचक्ष्व यथावृत्तं द्विजोत्तम ॥३॥ अर्थ-हे द्रिजो में श्रेष्ठ ! दुर्भाग्य के कारण जिनके वित्त

अय-ह । इ.म. म श्रष्ठ ! दुभाग्य के कारण जनके चित्त विगड़ गये थे, उन मेरे पूर्वन वितामहों के युद्ध का बृत्तान्त मेरे मति पूर्णतया कहें ॥

कुरूणां पाण्डवानां च यथा भेदोऽभवत् पुरा । तदस्मे सर्वमाचक्व यन्मत्तः श्रुतवानाम ॥४॥ अर्थ-तव व्यासनी ने अपने शिष्य वैशम्पायन से कहा कि पूर्व काल में जिस प्रकार कौरव और पाण्डवों का विरोध हुआ, वह सब वृत्तान्त इस जनमेजय के प्रति वर्णन कर जो तू सुझेले सुन चुका है।।

गुरोर्वचनमाज्ञाय स तु विप्रर्धभस्तदा । आचचक्षे ततः सर्वमितिहामं पुरातनम् ॥५॥

अर्थ-तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ ब्राह्मण वैशम्पायन गुरु का वचन मुनकर प्राचीन ममल इतिहाम वर्णन करने लगा ॥ राते तस्मै सदस्येभ्यः पार्थिवेभ्यश्च सर्वशः । भेदं सर्वविनाशं च कुरुपाण्डवयोस्तदा ॥ ६ ॥

अर्थ-राजा जनमेजय और अन्य सभासद् राजाओं के प्रति कौरव पाल्वों का परस्पर विरोध तथा सर्वनाश का वृत्तान्त इस प्रकार पुनाने लगा कि:—

गुरवे पाङ् नमस्कृत्य मनोबुद्धिसमाधिभिः । सम्पूज्य च दिजान्सर्वास्तथान्यान्विदुपो जनान् ॥७॥ महर्पेर्विश्वतस्येह सर्वछोकेषु धीमतः ।

प्रवक्ष्यामि मतं कृत्स्नं व्यासस्यास्य महात्मनः ॥८॥

अर्थ-मन, बुद्धि तथा ध्यात द्वारा प्रयत्न ग्रुरु को नमस्कार तथा सब ब्राह्मणों और विद्वानों का सत्कार करके सब छोकों भें विख्यात बुद्धिमान महात्वा महींने च्यात के मत को मैं पूर्णतया पर्णन करंगा॥

शृश राजन यथा भेदः कुरुगाण्डवयोरभूत् । राज्यार्थे द्युतसम्भूतो वनवासस्तयेव च ॥९॥ अर्थ-हं राजन ! राज्य के लिये कीरन, पाण्डनों में जैसे भेद हुआ तथा जुआ खेलने के कारण जैसे पाण्डनों का वनवास हुआ॥ यथा च युद्धमभवत् पृथिवीक्षयकारकम् । तत्तेऽहं कथयिष्यामि पृच्छते भरतर्पभ ॥ १०॥

अर्थ-हे भरतकुल में श्रेष्ठ ! वह पृथ्वी का नाश करने वाला युद्ध जैसे हुआ में उसका वर्णन तुझ पश्चकर्ता के प्रति करंगा ॥ स्टते पितिर ते वीरा वनादेत्य स्वमान्दिरम् । न चिरादेव विद्धांसो वेदे धनुषिचाभवन् ॥११॥

अर्थ-वह युधिष्ठिर आदि पांची वीर पिता के मरजाने पर बन से घर ठौट आये और थोड़े ही काल में वदिवद्या तथा धनुर्विद्या में कुशल होगय ॥

तांस्तथा सत्त्ववीयोंजः सम्पन्नान्पोरसम्मतान् ।

नामृष्यन् करवो दृष्या पाण्डवान् श्रीयशोभृतः ॥१२॥

अर्थ-कीरव उन पाण्डवों को धन, यश, पराक्रम, वल और तेज से पूर्ण तथा पुर की प्रजा के प्रेमपात्र देखकर उन्हें न सह सके॥

ततो दुर्योधनः ऋरः कर्णश्च सहसौबलः । तेषां निग्रहनिर्वासान् विविधांस्ते समारभन् ॥१३॥

अर्थ-तव क्रूरस्वभाव दुर्योधन, कर्ण और सौवल उन पाण्डवॉ को विविध प्रकार के कष्ट देने लगे ॥

ततो दुर्योधनः शूरः कुलिङ्गस्य मते स्थितः । पाण्डवान् विविधोपाँयैर्राज्यहेतोरपीडयत् ॥१४॥

अर्थ-तत्पश्चात कुलिङ्ग राजा के मत में होकर वीर दुर्योधन राज्य के लिये पाण्डवों को अनेक उपायों से पीड़ा देने लगा ॥ ददावथ विषं पापो भीमाय धृतराष्ट्रजः । जरयामास तदीरः सहान्नेन वृकोदरः ॥१५॥

अर्थ-इसके पश्चात दृष्ट धृतराष्ट्र के पुत्र ने भीमसेन को अन्न में मिलाकर विष दिया और वीर भीमसेन ने उस विष को अन्न के साथ ही पचा लिया ॥

प्रमाणकोट्यां संसुप्तं पुनर्वद्धवा वृकोदरम् । तोयेषु भीमं गङ्गायाः प्रक्षिप्य पुरमात्रजत् ॥१६॥

ममाण कोटी=गंगातट पर शाला में सोये हुए वृकोदर=भीमसेन को बांध और गङ्गा के जल में फेंककर दुर्योधन पुर में चला आया॥

यदा विबुद्धः कौन्तेयस्तदा सञ्छिद्य बन्धनम् । उदितष्ठन्महाबाहुर्भीमसेनो गतव्यथः ॥१७॥

अर्थ-बड़ी भुजाओं वाला कुन्ती का पुत्र भीमसेन ज्योंही निद्रा से जागा त्योंही बन्धन को काटकर अनायास उठ खड़ा हुआ॥ आशीविषेः कृष्णसर्पेः सुप्तं चैनमदंशयत्। सर्वेष्वेवाङ्गदेशेषु न ममार च शत्रुहा ॥१८॥

अर्थ-सयन करते हुए भीमसेन को विष्ठे काले सर्पों से सब अड़ों में इसवाया=कटवाया परन्तु शत्रुओं का घातक भीमसेन यत्यु को प्राप्त नहीं हुआ ॥

तेषां तु विप्रकारेषु तेषु तेषु महामितः ।

मोक्षणे प्रतिकारे च विदुरोऽविहतोऽभवत् ॥१९॥
अर्थ-पाण्डवों के प्रत्येक कष्ट के समय उनको कष्टों से
छुड़ाने तथा उपाय बतलाने में बुद्धिमान विदुर सावधान रहा ॥

आदिपर्व-मथमाध्याय

ततः सम्पन्त्य सचिवेर्वपदःशासनादिभिः । धृतराष्ट्रमनुज्ञाप्य जातुपं गृहमादिशत् ॥ २०॥

अर्थ-तत्पश्चात दुर्यांधन कर्ण, दुःशामन आदि मंत्रियों से लिख करके तथा धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर ''लाक्षायह''वनवाने लगा। सुतिप्रियेपी तान् राजा पाण्डवानि म्वकासुतः।

स्ताप्रयपा ताच् राजा पाण्डवानाम्यकाछतः। ततो विवासयामास गज्यभागवुसुक्षया॥ २१॥

अर्थ-तद्नन्तर अम्विका के पुत्र राजा धृतराष्ट्र ने अपंन पुत्रों के हित्की इच्छा भे राज्यभोग के लालच में आकर उन पाण्डवों का निर्वामन कर दिया ॥

ते प्रातिष्ठन्त सहिता नगरात्रागसाह्यात्।

प्रस्थाने चाभवनमन्त्री क्षत्ता तेषां महात्मनाम् ॥२२॥

अर्थ-यह सब पाण्डव इकठे होकर हस्तिनापुर से प्रस्थान कर गये और उन महात्माओं का प्रस्थान समय में विदुर मन्त्री रहा॥

ततः सम्प्राप्य कौन्तेया नगरं वारणावतम् । न्यवसन्त महात्मानो मात्रा सह परन्तपाः । धृतराष्ट्रेण चाज्ञप्ता उपिता जातुषे गृहे ॥ २३ ॥

अर्थ-तव कुन्ती के पुत्र शत्रुओं को दमन करनेवाले महात्मा गांचों पाण्डव "वारणावत" नगर में जाकर धृतराष्ट्र की आज्ञा से माता सहित लाक्षा भवन में वास करने लगे॥

पुरोचनाद्रक्षमाणाः संवत्सरमतिनद्रताः । सुरङ्गाङ्कारियत्वा ते विदुरेण प्रचोदिताः । आदीप्य जातुषं वेश्म दग्ध्वा चैव पुरोचनम् ॥२४॥ अर्थ-एक वर्ष तक सावधानी के साथ पुरोचन द्वारा अपनी रक्षा करते रहे, अन्त में विदुर की पेरणा से सुरंग लगाकर तथा लाक्षाभवन में अग्नि लगाने से पुरोचन को भी साथ ही भस्म करके:-

प्राद्रवन् भयसंविमा मात्रा सह परन्तपाः । तदृशुद्रिणं रक्षो हिडिम्बं वननिर्झरे ॥ २५॥

अर्थ-शचुओं के दमन करने वाले पांचो पाण्डव भयभीत हुए र माता सहित उस लाक्षागृह से निकल भागे और उन्होंने वन में किसी जल मपात=झरना के समीप भयंकर"हिडिम्व"नामी राक्षस देखा॥

हत्वा च तं राक्षसेन्द्रं भीताः समवबोधनात्। निशि सम्प्रादवन् पार्था धार्तराष्ट्रभयार्दिताः॥ ३६॥

अर्थ-पाण्डव लोग उस राक्षसाधिराज को मारकर दुर्योधन के भय से पीड़ित हुए २ कौरवों के जागजाने के भय से रातोरात भागते गये॥

प्राप्ता हिडिम्बा भीमेन यत्र जातो घटोत्कचः । एकचकां ततो गत्वा पाण्डवाः संशितवृताः ॥२०॥ वेदाध्ययनसम्पन्नास्तेऽभवन् ब्रह्मचारिणः । ते तत्र नियताः कालं कंचिदूषुर्नर्रिभाः ॥२८॥

अर्थ-भीमसेन को हिडिम्बा नाम की राक्षसी प्राप्त हुई जिससे कालान्तर में "घटोत्कच" नामी पुत्र जन्मा, तत्पश्चात् प्रशंसनीय ब्रत धारण करने वाले पाण्डव लोग "एकचका" पुरी को गये और वेदों का अध्ययन करते हुए ब्रह्मचारी वन नियमपूर्वक कुछ काल तक वहां रहे॥

मात्रा संहैकचकायां व्राह्मणस्य निवशने । तत्राससाद धुधितं पुरुषादं वृकोद्रः ॥२९॥

अर्थ-एकचक्रापुरी में एक ब्राह्मण के घर में माता महित विद्यमान भीमनेन को एक भुख मनुष्यमक्षक राक्षम का मामना करना पड़ा॥

भीमसेनो महाव।हुर्वकं नाम महाबलम् । तं चापि पुरुपव्याघो वाहुवीयंण पाण्डवः । निहत्य तस्सा वीरो नागरान् पर्यमान्त्वयत् ॥३०॥

अथ-वड़ी भुजाओं वाले. पुरुपिंह पाण्डु के पुत्र वीर भीममेन ने उस वलवान "वक" नामी राक्षम को अपनी भुजाओं के वल से मारकर नगर के लोगों को मान्त्वना=आश्वामन दिया॥ ततस्ते शुश्रुवुः कृष्णां पाञ्चाल्येषु स्वयम्वराम्। श्रुत्वा चैवाभ्यगच्छन्त गत्वा चैवालभन्त ताम्॥३१॥

अर्थ-फिर उन्होंने सुना कि पाञ्चालदेश में कृष्णा=द्रीपदी का स्वयंवर है, यह सुनते ही वहां पहुंचे और जाकर द्रोपदी को प्राप्त करिल्या ॥

ते तत्र द्रीपदीं रुघ्या परिसम्बत्सरोपिताः । विदिता हास्तिन धरं प्रत्याजग्मुरिन्दमाः ॥ ३२॥

अर्थ-शत्रुओं को दमन करने वाले वह पाण्डव होपदी को पाकर एकवर्ष तक दहीं रहे. और पहचाने जाने पर हस्तिनापुर को स्रोट आये ॥

ते उक्ता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च । भ्रातृभिर्विग्रहस्तात कथं वो न भवेदिति ॥ ३३ ॥

6

महाभारत

अर्थ-तव उनसे राजा धृतराष्ट्र और भीष्म ने कहा कि है पुत्री! किस उपाय से तुम लोगों का भाइयों के साथ विरोध मिटे॥

अस्माभिः खाण्डवप्रस्थे युष्मद्वासोऽनुचिन्तितः । तस्माजनपदोपेतं सुविभक्तमहापथस् । वासाय खाण्डवप्रस्थं ब्रजध्वं गतमत्सराः ॥३४॥

अर्थ-हम लोगों ने तुम्हारे निवास करने का स्थान "खाण्डव-मस्थ" सोचा है, मो तुम ईर्प्यारहित होकर उस अनेक नगरों तथा बड़ी २ सड़कों वाले "खाण्डवप्रस्थ" नामी स्थान में निवास के लिये चले जाओ ॥

तयोस्ते वचनाज्जग्मः सह सर्वैः सुहज्जनैः । नगरं खाण्डवप्रस्थं रत्नान्यादाय सर्वशः ॥ ३५॥

अर्थ-तब वह पाण्डव उन दोनों के कहने से अपने मित्रों सहित सब ओर से रत्नों को ग्रहण करते हुए "खाण्डवप्रस्थ" को चले गये॥

तत्र ते न्यवसन्पार्थाः संवत्सरगणान् बहून्।
वशे शस्त्रप्रतापेन कुर्वन्तोऽन्यान्महीभृतः ॥ ३६॥

अर्थ-वह पृथा के पुत्र पाण्डव शस्त्रों के वल से अन्य राजाओं को अपने अधीन करते हुए वहां कई साल तक रहे ॥ अजयद्भीमसेनस्तु दिशं प्राचीं महायशाः । उदीचीमर्जुनो वीरः प्रतीचीं नकुलस्तथा ॥३७॥ दक्षिणां सहदेवस्तु विजिग्ये परवीरहा । एवं चक्करिमां सर्वे वशे कृत्स्नां वसुन्धराम् ॥३८॥

आदिपर्व-मथमाध्याय

अर्थ-महान यशस्त्री भीमसेन ने पूर्व दिशा को विजय किया, बीर अर्जुन ने उत्तर दिशा को, नकुल ने पश्चिम दिशा को तथा बीर शञ्जुओं के घातक सहदेव ने दक्षिण दिशा को विजय करके पाण्डवों ने समस्त पृथिवी को अपने आधीन करिल्या॥

पञ्चभिः सूर्यसङ्काशैः सूर्येण च विराजता । परसूर्यवाभवतपृथ्वी पाण्डवैः सत्यविक्रमैः ॥३९॥

अर्थ-मचे पराक्रम वाले तथा सूर्य के समान तेजस्वी पांचों पाण्डव और एक प्रकाशमान भौतिक सूर्य को मिलाकर मानो पृथ्वी में छः सूर्य होगये ॥

ततो निमित्ते कस्मिश्चिद्धर्भराजो युधिष्ठिरः । वनं प्रस्थापयामास तेजस्वी सत्यविक्रमः ॥ ४० ॥ प्राणेभ्योऽपि प्रियतरं भ्रातरं सव्यसाचिनम् । अर्जुनं पुरुषव्यां भ्रियरात्मानं युणेर्युतम् ॥ ४१ ॥

अर्थ-तत्पश्चात् धर्मराज, तेजस्त्री तथा सच्चे पराक्रम को धारण करने वाले "युविष्ठिर" ने किसी कार्य्य के निमित्त अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे, दहने हाथ के समान सहायक, सिंह पुरुष, अटल हृदय बाले गुणवान भाई "अर्जुन" को वन में भेजा॥

स वे संवत्सरं पूर्ण मासं चैकं वने प्रवसन् ।
ततो प्राच्छद्धृषीकेशं द्वारवत्यां कदाचन ॥४२॥

अर्थ-वह अर्जुन पूरे एक वर्ष और एक मास तक वन में रहा, तत्यश्चात् किसी समय द्वारका में कृष्णजी के समीप चला गया।।

महाभारत

लब्धवांस्तत्र बीभत्सभायी राजीवलोचनाम् । अनुजां वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीम् ॥४३॥

अर्थ-वहां अर्जुन ने कमल तुल्य नेत्रों वाली तथा मधुरमाषिणी कृष्ण की छोटी बहिन "सुभद्रा" को भार्या बनाया॥ मोक्षयामास बीभत्सुर्मयं यत्र महासुरम्। स चकार सभां दिञ्यां सर्वरतसमन्विताम् ॥४४॥

अर्थ-जिस वन में अर्जुन ने "मय" नामी वहे दानव को खुड़ाया, उसने भी अर्जुन के लिये वहां निखिल रह्यों से जटित दिव्य "सभाभवन" बना दिया ॥

तस्यां दुर्योधनो मन्दो लोभं चक्रे सुदुर्मातः। ततोऽक्षेर्वञ्चायित्वा च सौबलेन युधिष्ठिरम्। वनं प्रस्थापयामास सप्तवर्षाणि पञ्च च ॥४५॥

अर्थ-उस "भवन" पर नीच दुईद्धि "दुर्योधन" को लालच आगया, तब सीवल=शकुनि द्वारा युधिष्टिर को जुए में टगकर बारहवर्ष के लिये पाण्डवों को वनवास दिया ॥

आज्ञातमेकं राष्ट्रे च ततो वर्ष त्रयोदशम्। ततश्चतुर्दशे वर्षे याचमानाः स्वकं वसु। नालभन्त महाराज ततो युद्धमवर्तत ॥ १६॥

अर्थ-तव एक राज्य में अज्ञात दशा में तेरहवर्ष तक रहकर चौदहवें वर्ष में अपना भाग कौरवों से मांगने लगे, परन्तु है महाराज! उनको भाग न दिया और इसी कारण संग्राम हुआ। ततस्ते क्षत्रमुत्साद्य हत्वा दुर्योधनं नृपम् । राज्यं विहतभूयिष्ठं समपद्यन्त पाण्डवाः ॥४७॥

अर्थ-तदनन्तर उन पाण्डवों ने क्षत्रियकुल को नाश करके और दुर्योधन राजा को मारकर हत्याकाण्ड से परिपूर्ण राज्य प्राप्त कर लिया ॥

एवभतत् पुरावृत्तं तेपामिक्धिष्टकर्मणाम् । भेदो राज्यविनाशाय जयश्च जयतांवर ॥४८॥

अर्थ-हे जीतने वालों में श्रेष्ठ राजन ! उन उत्तम कर्म करने वाले कौरव—पाण्डवों का राज्य नष्ट करने के लिये आपस की फूट और विजय का इतिहास संक्षेपतः इस प्रकार है॥

इति प्रथमे। ऽन्यायः समाप्तः



अथ दितीयोऽध्यायः प्रारम्यते

जनमेजय उयाच

कथितं वे समासेन त्वया सर्व दिजोत्तम । महाभारतमाख्यानं कुरूणां चरितं महत् ॥१॥

अर्थ-जनमेजय बोले कि हे द्विजोत्तम ! आपने "महा-भारत-इतिहास" नामी कौरवों का महान् चरित्र संक्षेप से सब कहा।।

कथां त्वनघ चित्रार्था कथयस्व तपोधन । विस्तरश्रवणे जातं कोत्हरूमतीव मे ॥२॥

अर्थ-हे तपोधन ! अब आप इस विचित्र कथा को विहतार पूर्वक कहें, क्योंकि मुझे विस्तारपूर्वक श्रवण करने के छिये अत्यन्त उत्कण्ठा उत्पन्न हुई है ॥

स अवान् विस्तरेणेमां पुनराख्यातुमहीते।

न हि तृष्यामि पूर्वेषां शृष्वानश्चरितं महत् ॥३॥

अर्थ-सो आप विस्तार के साथ इस कथा को फिर कथन करें, क्योंकि भें अपने पूर्वजों के महान चरित्र को सुनकर एस नहीं होता ॥

न तत्कारणमल्पं वै धर्मज्ञा यत्र पाण्डवाः । अवध्यान् सर्वशो जच्छः प्रशस्यन्ते च मानवैः ॥४॥ अर्थ-अवस्य ही वह कारण छोटा न होगा जिससे धर्मात्मा पाण्डवों ने अवध्य कुटुम्बियों का वध कर डाला और फिर भी मनुष्यों से मन्नांसित हुए ॥

किमर्थ ते नरव्याघाः शक्ताः सन्तो ह्यनागसः । प्रयुज्यमानान् संक्षेशान्क्षान्तवन्तो दुरात्मनाम् ॥५॥

अर्थ-निर्दोष और सामर्थ्यवान होते हुए उन सिंह समान पाण्डवों ने दुष्टों की ओर से दिये हुए हेकों को क्यों क्षमा किया?॥

कथं नागायुतप्राणो बाहुशाली वृकोदरः। परिक्किश्यन्नपि कोधं धृतवान्वे द्विजोत्तम ॥६॥

अर्थ-हे श्रेष्ठ द्विज ! दश सहस्र हाथियों के समान वलवान तथा बड़ी अजाओं वाला "भीमसेन" केश भोगता हुआ भी क्रोध को कैसे रोके रहा ?॥

कथं सा द्रोपदी कृष्णा क्विश्यमाना दुरात्माभिः। शक्ता सती धार्तराष्ट्रान्नादहत् कोधचधुपा ॥७॥

अर्थ-उस कृष्णा=द्रौपदी ने दृष्टों से सताये जाने पर भी सामर्थ्य वाली होकर उन धृतराष्ट्र के पुत्रों को क्रोध की दृष्टि से क्यों नहीं भस्म कर डाला ?॥

कथं व्यसनिनं द्यूते पार्थी माद्रीसुती तदा । अन्वयुस्ते नख्याघा वाध्यमाना दुरात्मभिः ॥८॥

अर्थ-जुए में होरे हुए युधिष्ठिर का सिंह समान पराक्रमी पृथा=कुन्ती के पुत्र भीम, अर्जुन तथा माद्री के पुत्र नकुल, सह-देव ने दुष्टों से पीड़ित होते हुए भी कैसे साथ दिया ?॥

कथं धर्मभृतां श्रेष्ठः सुतो धर्मस्य धर्मभृत् । अनर्हः परमं क्वेत्रां सोदवान् स युधिष्ठिरः ॥९॥

अर्थ-धर्मात्माओं में श्रेष्ठ धर्मात्मा तथा धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने दुःख भोगने के अधिकारी न होते हुए भी कैसे महान कष्ट सहा ?॥ एतदाचक्ष्व मे सर्व यथावृत्तं तपोधन । यद्यच कृतवन्तरते तत्र तत्र महारथाः ॥१०॥

अर्थ-हे तपोधन! जो कुछ हुआ है वह सबं वृतान्त भेरे प्राति वर्णन कर तथा उन २ स्थानों भें महावीरों ने जो २ कुछ किया है वह भी कह ॥

वैशम्पायन उवाच

पौरवाणां वंशकरो दुष्यन्तो नाम वीर्यवान् । पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता भरतसत्तम ॥ ११ ॥ चतुर्भागं भुवः कृत्स्नं यो भुङ्क्ते मनुजेश्वरः । समुद्रावरणांश्चापि देशान् स समितिञ्जयः ॥ १२ ॥

अथ-वैशम्पायन बोले कि हे भरतकुलश्रेष्ठ ! पुरुवंशी राजाओं का वंशधर "दुष्यन्त " नाभी वड़ा पराक्रमी राजा हुआ जो चारो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर राज्य करता था, और वह युद्ध विजयी राजा पृथिवी के चारो भागों और समुद्री देशों का भी सदा पालन करता था॥

आम्लेच्छाविधकान् सर्वान् स भुङ्क्ते रिपुमईनः । रत्नाकरसमुद्रान्तांश्चातुर्वर्ण्यजनावृताम् ॥ १३ ॥ अर्थ-वह शत्रुओं का विध्वंस करने वाला म्लेच्छ लोगों के सव देशों पर भी शासन करता था और चारों वर्णों से वसी हुई
समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को भोगता था ॥
न वर्णसङ्करकरों न कृष्याकरकृज्जनः ।
न पापकृत्कश्चिदासीत्तिस्मिन्राजिन शासित ॥१४॥
धर्मे रितं सेवमाना धर्मार्थाविभपेदिरे ।

तदा नरा नरव्याघ्र तस्मिन् जनपदेश्वरे ॥ १५॥

अर्थ-उस राजा के शासन काल में कोई मनुष्य वर्णसंकर न था, थोड़े प्रयत्न से ही पृथ्वी में अधिक अन्न उत्पन्न होता था, इसी कारण उस समय कोई अधिकता से धातुओं की कार्ने भी नहीं खोदना था, उस समय कोई पापकारी भी न था, हे राजन ! उस राजा के राज्य में मनुष्य धर्म में मीति रखते हुए धर्म और अर्थ का सद्यवहार करते थे॥

नासीचौरभयं तात न श्चाभयमण्विष । नासीद् व्याधिभयं चापि तिस्मन् जनपदेश्वरे ॥१६॥ कालवर्षी च पर्जन्यः शस्यानि रसवन्ति च । सर्वरत्नसमृद्धा च मही पशुमती तथा ॥ १७॥

अर्थ-हे राजन ! उस राजा के राज्य में चोरों से भय नहीं था, भूख से कोई पीड़ित नहीं होता था और रोग का भी कुछ भय नहीं था, मेघ समय पर वरसता, खेतिएं रसवाछी होतीं और यह पृथ्वी भी सब रतों तथा पश्चों से भरपूर थी॥ स चाद्भुतमहाबीयों वज्रसंहननो युवा। उद्यम्य मन्दरं दोभ्यों बहेत्सवनकाननम् ॥१८॥ चतुष्पथगदायुद्धे सर्वप्रहरणेषु च। नागपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च बभूव परिनिष्ठितः ॥ १९॥

अर्थ-और वह युवक राजा भी वज्र के समान हु अंगों वाला बड़ा बलिष्ठ था, मानो सहित बृक्षादि के मन्दर=पर्वत को भुजाओं से उठा लेजायगा, चारो ओर से गदायुद्ध करने, सब शस्त्रों के चलाने और घोड़े तथा हाथी की सवारी में निपुणथा॥ स कदाचिन्महाबाहुः प्रभृतबलबाहनः। वनं जगाम गहनं हयनागद्दातेर्वृतः॥ २०॥ तत्र तत्र च विप्रेन्द्रैः स्तूयमानः समन्ततः। निर्ययो परमप्रीत्या वनं मृगजिघांसया॥ २१॥

अर्थ-वह छंबी भुजाओं वाला राजा एक समय बहुतसी सेना, सवारियें, घोड़े और हाथियों सहित सघन वन की ओर चला, चारो और से जहां तहां मार्ग में ब्राह्मण लोग स्तुति करते थे, और वह परम आनन्द के साथ शिकार खेलने की इच्छा से बन में निकल गया॥

स गच्छन् दहशे धीमान् नन्दनप्रतिमं वनम् । बिल्वार्कखदिराकीणंकिपत्थधवसंयुतम् ॥२२॥ निर्जलं निर्मनुष्यं च बहुयोजन्मायतम् । मृगसिंहेर्वतं घोरेरन्यैश्चापि वनेचरैः ॥२३॥

अर्थ-उस बुद्धिमान राजा ने चलते २ एक वन देखा जो मन्दनवन के समान था, जिसमें वेल, आर्क, वेर, केथ और धव आदि के वृक्ष थे, जिसमें न जल भिलता था, न वहां कोई मनुष्य था, जो कई योजन लंबा चौड़ा और हिरन, शेर आदि अनेक भयानक जंगली जानवरों से घिरा हुआ था॥

तद्रनं मनुजव्याघः स भृत्यबलवाहनः । लोडयामास दुष्यन्तः सूद्यन् विविधान्मगान्॥२४॥ बाणगोचरसंप्राप्तांस्तत्र व्याघ्रगणान् बहून् । पातयामास दुष्यन्तो निर्विभेद च सायकैः ॥२५॥

अर्थ-वह राजा सेवक, सेना और सवारियों सहित उस वन में घुसकर अनेक जानवरों को मारता हुआ वन को मथने लगा, बाण की मार में जितने भेड़िये वा चीते आदि न्याघ्र वहां आजाते उन सब को राजा दुष्यन्त वाणों से वींधकर गिरा देता था॥

दूरस्थान्सायकैः कांश्चिद्भिनत्स नराधियः । अभ्यासृमागतांश्चान्यान् खड्गेन निरकृत्तत ॥२६॥ राज्ञा चाडुतवीयेंण योधेश्च समरिप्रयेः । लोड्यमानं महारण्यं तत्यज्ञः सम मृगाधिपाः ॥२७॥

अर्थ-राजा दूर के अनेक व्याघादिकों को बाणों से मारने और पास पहुंचे हुओं को तलवार से काटने लगा, इस प्रकार अद्भुत पराक्रमी राजा तथा युद्ध के पेथी उसके योधाओं ने उस घने जंगल को मथ डाला और सब शेर भेड़िये आदि हिंसक जीव उस बन को छोड़कर भाग गये।

ततो मृगसहस्राणि हत्वा स बलवाहनः । राजा मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश ह ॥२८॥

महाभारत

एक एवोत्तमबलः श्वतिपपासाश्रमान्वितः । स वनस्यान्तमासाद्य महच्छून्यं समासदत् ॥२९॥

अर्थ-तव राजा सेना तथा सवारियों सहित सहस्रों पशुओं को गार कर मृगों के साथ २ दूसरे बन में जा निकला, वह महाबली अकेला ही भूला प्यासा और थका हुआ वन के अन्त तक पहुंच कर सूने स्थान में चला गया ॥

तचाप्यतीत्य नृपतिरुत्तमाश्रमसंयुतम् ।
मनः प्रह्लादजननं दृष्टिकान्तमतीव च ॥३०॥
शीतमारुतसंयुक्तं जगामान्यं महद्रनम् ।
पुष्पितः पादपेः कीर्णमतीव सुखशाद्रलम् ॥३१॥

अर्थ- राजा उस सुने वन को भी लांघकर एक अन्य वहे वन
में जा पहुंचा, जिसमें एक उत्तम आश्रम वना हुआ था, जो मन में
आनन्द उत्पन्न करने वाला तथा नेत्रों को मिय था, जहां शीतल
बायु वह रहा था और जिसमें फूले हुए वृक्ष तथा सुखदायी हरी २
धास उगी हुई थी ॥

विष्ठुलं मधुरारावैनादितं विह्गेस्तथा । पुंस्कोकिलनिनादेश्च झिल्लोकगणनादितम् ॥३२॥ प्रमुद्धविटपैर्वकः सुखच्छायः समावृतम् । पट्पदावृणिततलं लक्ष्म्या परमया युतम् ॥३३॥

अर्थ-जिसमें कोयल और ब्रिझीक शब्द कर रहे थे और जो अन्य मधुर बोली वाले पक्षियों की गृंज से गुआयमान होरहा था, जड़ां बड़ी २ शालाओं वाले ठंडी छाया के वृक्ष लगे हुए थे, जहां भौरे गुंजार रहे थे और जो परमशोभायमान था॥

नापुष्पः पादपः कश्चिन्नाफलो नापि कण्टकी । षट्पदैर्वाप्यनाकीर्णस्तस्मिन्वे काननेऽभवत् ॥३४॥ विह्रेगेर्नादितं पुष्पेरलङ्कृतमतीव च । सर्वर्तुकुसुमैर्वृक्षेः सुखच्छायैः समावृतम् ॥३५॥

अर्थ-उस वन में कोई वृक्ष पुष्प वा फल रहित अथवा कांटों बाला न था, और नाही कोई ऐसा वृक्ष था जो भौरों से लतपथ न हो, वह पिक्षयों से गुंजायमान तथा फूलों से सुशोभित और जिसमें ठंडी छाया वाले ऐसे वृक्ष थे जो सब ऋतुओं में फूलते थे॥

मनोरमं महेश्वासो विवेश वनमुत्तमम् । मारुताकुलितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशालिनः । पुष्पवृष्टिं विचित्रां तु व्यसृजंस्ते पुनः पुनः ॥ ३६ दिवस्पृशोऽथ संघुष्टाः पिक्षभिर्मधुरस्वनैः । विरेजः पादपास्तत्र विचित्रकुसुमाम्बराः ॥३७॥

अर्थ-वह महाधनुर्धारी उस उत्तम वन में प्रविष्ट हुआ, वहां फूलों वाले वृक्ष जो वायु से हिलते थे वह मानों वार २ राजा पर फूलों की विचित्र वृष्टि कर रहे थे, और वह आकाश से बातें करने वाले वृक्ष जो चित्र विचित्र फूलों को ही वस्न के समान धारण किये हुए थे वह पाक्षिओं के शब्दों से ऐसे प्रतीत होते थे कि मानों राजा के लिये जय जय शब्द उचारण कर रहे हैं॥

तेषां तत्र प्रवालेषु पुष्पभार विनामिषु ।
स्वित्त रावानमधुरान् पट्पदा मधुलिप्सवः ।
तत्र प्रदेशांश्च बहून् कुसुमोत्करमण्डितान् ॥३८॥
लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्द्धनान् ।
संपश्यन् सुः हातेजा बभूव सुदितस्तदा ॥ ३९॥

अर्थ-उन वृक्षों की शाखाओं पर जो फूलों के बोझ से झुकी हुई थीं, बैठे हुए मधु के लोभी भौरे मधुर झब्द कर रहे थे, वहां बहुत से ऐसे स्थान थे जिनमें फूलों के समूह लगे हुए थे और जिनमें लतायह=कुंजभवन मन को आनन्दित करते थे, उनको देखता हुआ वह महातेजस्वी राजा उस समय बड़ा आनन्दित हुआ।

प्रेक्षमाणो वनं तत्तु सुप्रहृष्टविहङ्गमम् । आश्रमप्रवरं रम्यं ददर्श च मनोरमम् ॥ ४०॥ नानावृक्षसमाकीणं संप्रज्वितपावकम् । तं तदाऽप्रतिमं श्रीमानाश्रमं प्रत्यपूज्यत् ॥ ४१॥

अर्थ-उस बन को देखते हुए राजा ने उस मनोहर उत्तम आ-श्रम को भी देखा जो पार्क्षियों से भरपूर तथा जो अनेक प्रकार के वृक्षों से हरा भरा था, और जिसमें हवन की अग्नि जल रही थी, ऐसे अनुपम आश्रम का श्रीमान ने वड़ा आदर किया ॥

महाकच्छेर्यहद्भिश्च विभाजितमतीव च । मालिनीमभितो राजन् नदीं पुण्यां मुखादकात् ॥ ४२॥

आदिपर्व-द्वितीयाध्याय

नैकपक्षिगणा कीर्णा तपोवन मनोरमाम् । तत्रव्यालमृगान् सौम्यान्पस्यन्त्रीतिमवाप सः ॥४३॥

अर्थ-वह आश्रम वह विशाल जल स्थानों से अत्यन्त सुशोभित था, जो मालिनी नदी के दोनों ओर विद्यमान थे, हे राजन ! वह उत्तम जलवाली पवित्र नदी अनेक पक्षियों के झुंडों से घिरी हुई तथा तपस्त्री लोगों के निवास से अत्यन्त रमणीय थी और जहां के सिंह आदि हिंसक पश्चों को भी शान्तस्वभाव देखकर राजा परम प्रसन्न हुआ।।

तस्यास्तीरे भगवतः काश्यपस्य महात्मनः। अश्रिमप्रवरं रम्यं महर्षिगणसेवितम् ॥४४॥ ४१ ४ नदीमाश्रमसंबद्धां दृष्ट्वाश्रमपदं तथा। उप्रभ चकाराभित्रवेशाय मितं स नृपतिस्तदा ॥ ४५॥

अर्थ-उसी नदी के किनारे पर भगवान महात्मा काश्यप का वह परमोत्तन रमणीय आश्रम था जिसमें महर्षि छोग निवास किया करते थे, अश्रम से प्रिजी हुई छसे नदी और आश्रम के स्थान को अवस्थित कर प्रशास जाजों। की इच्छा आश्रम में प्रवेश करने की हुई थी

अतिवयुणसम्पन्नमीनिर्देश्यं य विचेसा । महर्षि काश्यपं द्रष्टुमथ कण्वं तपोधनम् ॥४६॥ ध्वजिनीमश्वसंवाधां पदातिगजसङ्गुलाम् । अवस्थाप्य वनदारि सेनामिदमुवाच सः ॥४७॥ महाभारत

मुनिं विरजसं द्रष्टुं गमिष्यामि तपोधनम् । काश्यपं स्थीयतामत्र यावदागमनं मम ॥४८॥

अर्थ-तब राजा महापं तपस्त्री काश्यप "कष्त्र" के दर्शन करने के लिये उत्सुक हुआ जो अनेक गुणों से संपन्न और अकथनीय प्रभावशाली थे, वह अपनी सेना को जिसमें असंख्य घोड़े, हाथी और पैदल मनुष्य थे, वन के द्वार पर ठहरा कर बोला कि मैं वीतराग तपस्त्री मुनि "कष्त्र" के दर्शनार्थ जाता हूं, जब तक मैं लौटकर न आऊं तुम यहीं ठहरो ॥

आमात्यो राज्यलिङ्गानि सोऽपनीय नराधिपः । प्ररोहितसहायश्च जगामाश्रममुत्तमम् । षद्पदोद्गीतसंघ्षष्टं नानादिजगणायुतम् ॥४९॥

अर्थ-राजा पुरोहित और मंत्रियों को साथ लेकर राज्य के चिह्न धतुप आदि को वहीं छोड़कर उस उत्तम आश्रम में चला जहां भीरे उच स्वर से गान कर रहे थे, और जहां अनेक प्रकार के अन्य पक्षी भी विद्यमान थे॥

ऋचो बहुचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमेः । शुश्राव मनुजन्यात्रो विततेष्विह कर्मसु ॥५०॥ यज्ञविद्याङ्गविद्विश्च यज्जविद्विश्च शोभितम् । मधुरैः सामगितिश्च ऋषिभिर्नियतत्रतेः ॥५१॥

अर्थ-आश्रममें प्रवेश कर उस नरेश ने प्रधान ऋग्वेदियों की उन ऋचाओं को भी श्रवण किया जिनको वह यज्ञों में पदक्रमानुसार उचारण कर रहे थे, वह आश्रम यज्ञविद्या के अङ्गों

को जानने वाले यजुर्वेदियों से सुशोभित था और वहां व्रतथारी ऋषि लोग सामवेद का भी मधुर स्वर से गान कर रहे थे॥

न्यायतत्त्वात्मविज्ञानसम्पन्नैवंदपारगैः । विशेषकार्यविद्धिश्च मोक्षधर्मपरायणैः ॥५२॥ स्थापनाक्षेपसिद्धान्तपरमार्थज्ञतां गतैः ।

शब्दच्छन्दोनिरुक्तज्ञैः कालज्ञानविशारदैः ॥५३॥

अर्थ-वह आश्रम नैयायिक, आत्मज्ञानी, वेदवेत्ता, मोक्ष धर्म में तत्पर, विशेष कार्यों के ज्ञाता, मितज्ञा, आक्षेप तथा सिद्धान्त का मर्म जानने वाले और व्याकरण-छन्द-निरुक्त तथा ज्योतिष विद्या का तत्व जानने वालों से पूर्ण था ॥

द्रव्यकर्मग्रणज्ञेश्च कार्यकारणवेदिभिः । कापपिक्षरुतज्ञेश्च व्यासग्रन्थसमाश्चितेः ॥५४॥ नानाशास्त्रेषु मुख्येश्च शुश्राव स्वनमीरितम् । लोकायतिकमुख्येश्च समन्तादनुनादितम् ॥५५॥

अर्थ-वह आश्रम द्रव्य-गुण-कर्म और कार्य कारण के तत्ववेत्ता, बन्दर तथा पाक्षओं की वोली जानने वाले और कथा प्रन्थों को पढ़ने वालों से सुशोभित था, राजा ने भिन्न २ शास्त्रों के प्रधान विद्वानों के शब्दों को सुना जहां नास्तिक लोग भी सब ओर अपने वाक्य उच्चारण कर रहे थे॥

तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान्नियतान् संशितव्रतान् । जपहोमपरान् विपान् ददर्श परवीरहा ॥५६॥ आसनानि विचित्राणि रुचिराणि महीपतिः।

प्रयत्नोपहितानिसम दृष्ट्वा विसमयमागतः ॥५७॥

अर्थ-राजा ने जहां तहां बेठे हुए उत्तम ब्राह्मणों को भी देखा जो प्रशंसित व्रतधारी और जप होम में छणे हुए थे, वहां राजा वि-चित्र तथा मनोहर आसन नियमपूर्वक विछे हुए देखकर विस्मय को प्राप्त हुआ ॥

> स काश्यपतपोग्रममाश्रमप्रवरं शुभम् । नातृप्यत् प्रेक्षमाणो वै तपोबलग्रेणेर्श्वतम् ॥५८॥ स काश्यपस्यायतनं महाब्रतेर्शृतं समन्ता-हिपिभस्तपोधनैः। विवेश सामात्यपुरो-हितोरिहा विविक्तमत्यर्थमनोहरंश्यभम् ॥५९॥

अर्थ-और वह राजा काश्यप ऋषि के तपसे सुरक्षित और तपो-वल के प्रभाव से पूर्ण उस मनोहर प्रधान आश्रम के दर्शन से तृप्त न हुआ, तब राजा काश्यप के अत्यन्त मनोहर सूने आश्रम में जिसके चारो और व्रतधारी तपस्वी ऋषि निवास करते थे उसमें मन्त्री और पुरोहित सहित प्रवेश करने को उद्यत हुआ ॥

ततोऽगच्छन् महाबाहुरेकोऽमात्यान् विसृज्यतान् । नापश्यचाश्रमे तस्मिस्तमृषिं संशितव्रतम् ॥६०॥ सोऽपश्यमानस्तमृषिं शून्यं दृष्ट्वा तथाश्रमम् । उवाच क इहेत्युचैर्वनं सन्नादयन्निव ॥६१॥

अर्थ-तत्र राजा मिन्त्रयों को वहीं छोड़कर अकेला ही आ-श्रम में गया, परन्तु आश्रम में उस मशांतित व्रतधारी ऋषी को न देखा, राजा ने ऋषि को न देखकर और आश्रम को सुना देख उच स्वर से बन को गुंजारते हुए कहा कि "यहां कोन है"॥

आदिपर्व-द्वितीयाध्याय

2'4

श्रुत्वाथ तस्य तं शब्दं कन्या श्रीखि रूपिणी । निश्चकामाश्रमात्तस्मात्तापसी वेशधारिणी ॥६२॥ सा तं दृष्टेवेव राजानं दुप्यन्तमासितेक्षणा । स्वागतं ते इति क्षिप्रमुवाच प्रतिपूज्य च ॥६३॥

अर्थ-गाजा के उस शब्द की सुनकर लक्ष्मी के समान क्षित्रती कन्या तपस्त्रिनी का वेश धारण किये हुए आश्रम से निकली, श्यामनेत्रों वाली वह कन्या राजा दुष्यन्त को देखते ही आदरपूर्वक शीघ्रतया वोली कि "आपका स्वागत हो"॥

यथावदचीयत्वाथ पृष्ट्वा चानामयं तदा । उवाच स्मयमानेव किं कार्य क्रियतामिति ॥६४॥ तामब्रवीत्ततो राजा कन्यां मधुरभाषिणीम् । दृष्ट्वा चैवानवद्याङ्गीं यथावत्प्रतिप्रजितः ॥६५॥

अर्थ-तब विधिपूर्वक राजा का सत्कार करके और उनका कुशल मङ्गल पूछकर मुसकराती हुई शकुन्तला बोली कि कि के विधान स्था आज्ञा है? तब राजा विधिवत सत्कार पाकर उस मधुरभाषिणी तथा मनोहर अङ्गों वाली कन्या की ओर देखकर बोला कि :— आगतोऽहं महाभागमृषिं कण्वमुपासितुम् । क गतो भगवान् भद्रे तन्ममाचक्ष्व शोभने ॥६६॥ गतः पिता मे भगवान् फलान्याहर्तुमाश्रमात् । मुहूर्त संप्रतीक्षस्य द्रष्टास्येनमुपागतम् ॥६७॥ अध्य

अर्थ-हे सुन्दरी ! मैं महाभाग ऋषी कष्य के दर्शन को आया हूं, हे भद्रे ! मुझे बताओं कि भगवान कहां गये हैं ? तब शकु-

न्तरा बोजी कि मेरे श्रीमाद पिता हुनरे आश्रम से फल लेने गये हैं, आप कुछ काल ठहरें तो उनको आया हुआ देखेंगे॥

वैशम्पायन उवाच

अपश्यमानस्तम्धिं तथा चोक्तरतया च सः। तां दृष्ट्वा च वरारोहां श्रीमतीं चारुहासिनीम्।।६८॥ विभाजमानां वपुषा तपसा च दमेन च। रूपयोवनसम्पन्नामित्युवाच महीपतिः।।६९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि दह राजा उस कन्या के ऐसा कहने और ऋषी को वहां न देखकर तथा उस कन्या को सुन्दर आकार वाली, श्रीमती, मनोहर मुसकान वाली, शरीर, तप तथा दम से शोभायमान और इप तथा योवन से सम्पन्न देखकर इस मकार वोला कि:—

सुवर्णमालां वासांसि कुण्डले परिहाटके । नानापत्तनजे शुम्रे मणिरते च शोमने ॥७०॥ आह्यामि तवाद्याहं निष्कादीन्यजिनानि च । सर्वराज्यं तवाद्यारत आर्था ये भव शोमने ॥७१॥

अर्थ-हे छुन्दारे! में आज ही तुम्हारे हिये सोने की माला, उत्तरोत्तम दक्ष, सोने के छुण्डल, विविध देशों में उत्पन्न हुए छुन्दर मणि, रत्नों के हार तथा एकदर्भ आदि दक्ष ले आता हं, और यह सब राज्य तुम्हारा ही होगा तुम देरी मार्या वनो ॥ गान्धर्वेण च मां भीरु विवाहेंनेहि छुन्दिर । विवाहानां हि रम्भोरु गान्धर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥७२॥

फलाहारा गतो राजन् पिता मे इत आश्रमात्। मुहूर्त्तं सम्प्रतीक्षस्य सं मां तुभ्यं प्रदास्यति ॥७३॥

अर्थ-हे सुन्दरि, मेरे साथ गान्धर्य विवाह कर, क्योंकि गान्धर्य विवाह और विवाहों में उत्तम है, तब शकुन्तला बोली कि हे राजन ! मेरे पिता फल लाने के लिये इस आश्रम में गये हुए हैं, थोड़ी देर ठहर जायं वह आकर मेरा तुम्हारे साथ विवाह कर देंगे ॥

दुष्यन्त उवाच इच्छामि त्वां वरारोहे भजमानामनिन्दिते । त्वदर्थ मां स्थितं विद्धि त्वद्गतं हि मनो मम ॥७४॥ आत्मनो बन्धुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः । आत्मनैवात्मनो दानं कर्तुमहिस धर्मतः ॥७५॥

अर्थ-राजा दुष्यन्त वोले कि हे झन्दिर ! मैं चाहता हूं कि तुम मेरे साथ विवाह करों, तुम्हारे लिये ही मैं यहां खड़ा हुआ हूं, क्योंकि मेरा मन तुम्हारे में प्रवेश कर गया है, अपना आत्मा ही अपना बन्धु और अपना आत्मा ही अपना आश्रय है, इसलिये तुम्हें आपही अपना दान करना उचित है।

सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरविणिनी । गान्धर्वेण विवाहेन भार्या भवितुमहीस ॥७६॥

अर्थ-हे सुन्दरि ! मुझे तुम्हारी और तुम्हें भी भेरी कामना है, इसिलिये तुम्हें गान्धर्व विवाह से भेरी भार्या बनना चाहिये॥ शकुन्तलोवाच

यदि धर्भपथस्त्वेष यदि चात्मा प्रभुर्मम । प्रदाने पौरवश्रेष्ठ शृणु मे समयं प्रमो ॥७७॥

20

महाभारत

अर्थ-शकुन्तला बोली कि हे पुरुवंशी नरेश ? यदि यह धर्ममार्ग है और मैं अपने आपको दान करने में समर्थ हं तो मैं जो प्रण कराना चाहती हूं सो सुनो :-

सत्यं मे प्रातिज्ञानीहि यथा वध्याम्यहं रहः।
मिथ जायेत यः पुत्रः स भवेत्त्वदनन्तरः।।७८॥
युवराजो महाराज सत्यमेद्रब्रवीमि ते।
यद्येतदेवं दुष्यन्त अस्तु मे सङ्गमस्त्वया।।७९॥

अर्थ-आप मुझसे यह सत्य प्रण करें जो मैं आपसे एकान्त में कहती हूं कि "मुझसे जो पुत्र उत्पन्न हो वह तुम्हारे पश्चात् युवराज बने" मैं यह बात सत्य कह रही हूं, यदि तुम्हें ऐसा स्वीकार हो तो तुम्हारा मेरे साथ विवाह होजाय॥

वैशम्पायन उवाच

एवमस्तित तां राजा प्रत्यवाचाविचारयन्। अपि च त्वां हि नेष्यामि नगरं स्वं शुचिरिमते। यथा त्वमही सुश्रोणि सत्यमेतद् ब्रवीति ते।।८०।।

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि राजा ने विना विचारे ही उत्तर दिया कि "ऐसा ही होगा" और हे सुन्दिर ! मैं तुमको अपने नगर में ही टेजाउंगा जिसके तुम योग्य हो, मैं तुमसे यह सत्य कहता हूं॥

एवसुक्ता स राजिंधस्तामनिन्दितगामिनीम् । जग्राह् विधिवत् पाणाद्यवास च तया सह ।

विश्वास्य चैनां स प्रायादब्रवीच पुनः पुनः ॥८१॥

अर्थ-उस राजऋषि ने शकुन्तला से ऐसा कह उसका विधिष्ट्रिक पाणिग्रहण किया, और उसको विक्वास देकर चलते समय वार २ उससे यह कहा कि:—

प्रेषियष्ये तवार्थाय वाहिनीं चतुरिङ्गणीम् । तया त्वानायिषयामि निवासं स्वं शुचिस्मिते।। ८२।।

अर्थ-हे सुन्दिर ! तुम्हारे लिये "चतुरिक्कणी"=मनुष्य, हाथी, घोड़े, रथों, वाली सेना भेजकर उसके साथ तुम्हें अपने स्थान पर बुलाउंगा ॥

वैशम्पायन उवाच

इति तस्याः प्रतिश्रुत्य स नृपो जनमेजय । मनसा चिन्तयन् प्रायात् काश्यपंप्रतिपार्थिवः॥८३॥ भगवांस्तपसा युक्तः श्रुत्वा किं नु करिष्यति । एवं स चिन्तयन्नेव प्रविवेश स्वकं पुरम् ॥८४॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे जनमेजय! राजा इस प्रकार उसके साथ प्रतिज्ञा करके महर्षि कण्य विषयक चिन्तन करता हुआ चला कि भगवान तपस्वी कण्य ऋषि न जाने इस बात को सुनकर क्या करेंगे, इस प्रकार वह सोचता हुआ अपने नगर में आया॥

मुहूर्त्तयाते तस्मिस्तु कण्वोऽप्याश्रममागमत् । शक्रन्तला च पितरं हिया नोपजगाम तम् ॥८५॥ ततः प्रक्षाल्य पादौ सा विश्वान्तं मुनिमत्रवीत्। विनिधाय ततो भारं संनिधाय फलानि च ॥८६॥

अर्थ-राजा के जाने पर थोड़ी देर में ही कण्य ऋषि भी आश्रम में आगये, किन्तु शकुन्तला लाज से पिता के पास नहीं गई, पश्चात् जब समिधाओं का भार और फलों को रखकर मुनि विश्राम कर चुके तब शकुन्तला उनके चरण धोकर इस प्रकार बोली कि :-

मया पतिर्वतो राजा दुष्यन्तः पुरुषोत्तमः। तस्मैस सचिवायत्वं प्रसादं कर्तुमहिसि ॥८७॥

अर्थ-हे पिता! मैंने सत्पुरुप महाराज दुष्यन्त को अपना पित बना लिया है, सो मुझपर और उन पर आपको अनुग्रह करना उचित है ॥

कण्वं उवाच

प्रसन्न एव तस्याहं त्वत्कृते वस्वर्णिनि ।

गृहाण च वरं मत्तस्त्वं शुभे यदभीप्सितम् ॥८८॥

ततो धर्मिष्ठतां वन्ने राज्याचस्यलनं तथा ।

शक्कन्तला पौरवाणां दुष्यन्तहितकाम्यया ॥ ८९॥

अर्थ-तव कण्य ऋषि वोले कि हे सुन्दरिकन्ये! मैं तेरे कारण उस पर भी मसन्न ही हूं, और तू मुझने अपनी इच्छानुसार वर मांग, तव शकुन्तला ने राजा दुष्यन्त के हित की कामना से यह वर मांगा कि पुरुवंशी राजा धर्मात्मा और अल्रण्ड राज्य वाले हों॥

इति द्वितीयोऽन्यायः समाप्तः

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

प्रतिज्ञाय तु दुष्यन्ते प्रतियाते शकुन्तलाम् । गर्भसुपाव वामोरूः कुमारमितोजसम् ॥१॥ जातकर्मादिसंस्कारं कण्वः पुण्यकृतां वरः । विधिवत् कारयामास वर्छमानस्य धीमतः ॥२॥

अर्थ-वेशम्पायन बोले कि राजा दुष्यन्त के मित्र कर चले जाने के कुछ काल पीले शकुन्तला के एक प्राक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ, महात्मा कण्य की रक्षा में क्रम से ज्यों २ वह बुद्धिमान् बालक बढ़ता गया त्यों २ ही उसके "जातकर्म" आदि सय संस्कार विधिपूर्वक होते गये॥

पडवंष एव बालः स कण्वाश्रमपदं प्रति । सिंहच्यात्रान् वराहांश्च महिषांश्च गजांस्तथा । बवन्य वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः ॥३॥

अर्थ-यह वलवान बालक छः ही वर्ष का हुआ था कि कम के आश्रम के समीपवर्ती शेर भेड़िया, सूअर, मैंने और हाथियों को आश्रम के वृक्षों में लाकर बांच दिया करता था॥

आरेहिन्द्मयंश्चेव कीडंश्च परिचावति । ततोऽह्य नाम चक्रुस्ते कण्वाश्रमनिवासिनः । अस्त्वयं सर्वद्मनः सर्वे हि दमयत्यसौ ॥४॥ 32

महाभारत

अर्थ-और उन पर चढ़कर उनको दमन करता तथा उनसे खेल करता हुआ दौड़ा करता था, तव कण्व आश्रम निवासियों ने इसका नाम "सर्वदमन" रख दिया, क्योंकि वह सब पशुओं को दमन करता था॥

स सर्वदमना नाम कुमारः समपद्यत । विक्रमेणीजसा चैव बलेन च समन्वितः ॥५॥

अर्थ-वह राजकुमार पराक्रम, तेज और वल से पूर्ण होने के कारण वास्तव में "सर्वदमन" ही वन गया ॥

तं कुमारमृषिर्दृष्ट्वा कर्म चास्यातिमानुषम् । समयो यौवराज्यायेत्यत्रवीच शकुन्तलाम् ॥६॥

अर्थ-कण्व ऋषी उसकी कुमारदशा देख और उसके कर्म साधारण मनुष्यों से बढ़े हुए जानकर शक्तन्तला से बोले कि अब इसको "युवराज" बनाने का अवसर है॥

तस्य तद्बलमाज्ञाय कण्वः शिष्यानुवाचह । शकुन्तलामिमां शीघं सहपुत्रामितो गृहात् । भर्तुः प्रापयतागारं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥७॥

अर्थ-तब कण्व उस कुमार को ऐसा वलवान जान अपने शिष्यों से बोले कि शकुन्तला को पुत्र सहित इस आश्रम से शीघ ही लेजाकर सर्वगुणसंपन्न इसके पात के घर पहुंचा दो,क्योंकि :-

नारीणां चिखासो हि बान्धवेषु न रोचते । कीर्तिचारित्रधमिष्ठस्तस्मान्नयत मा चिरम् ॥८॥ अर्थ-स्त्रियों का चिरकाल तक अपने वन्धुओं के घर रहना अच्छा नहीं, मत्युत यश, आचरण और धर्म का मिटाने वाला है, इसलिये शीघ ही इसको लेजाओ विलम्ब न करो ॥ तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे प्रातिष्ठन्त महोजसः । शकुन्तलां पुरस्कृत्य सपुत्रां गज्जसाह्वयम् ॥९॥ अभिसृत्य च राजानं विदिका च प्रवेशिता । सह तेनेव पुत्रेण वालार्कसमतेजसा ॥१०॥

अर्थ-तत्पश्चात वह तेजस्वी शिष्य लोग "वहुत अच्छा" कह कर जसके हाथी समान वली पुत्र समेत शकुन्तला को आगे कर चल दिये, पुनः राजा के समीप पहुंच उनको सूचना देकर अपने बाल सूर्य समान तेजस्वी पुत्र सहित शकुन्तला सभा में प्रविष्ठ हुई ॥

निवेदियत्वा ते सर्वे आश्रमं पुनरागता । पूजियत्वा यथान्यायमत्रवीच शकुन्तला ॥११॥

अर्थ-और वह सब शिष्य राजा के मित निवेदनकर आश्रम को छीट आये, और शकुन्तला विधिपूर्वक राजा का सत्कार करके इस मकार बोली कि:—

अयं पुत्रस्त्वया राजन योवराज्येऽभिषिच्यताम् । यथा समयमेतिस्मिन् वर्त्तस्व पुरुषोत्तमः ॥१२॥ यथा मत्सङ्गमे पूर्व यः कृतः समयस्तथा । तं समरस्व महाभाग कण्वाश्रमपदं प्रति ॥१३॥ अर्थ-३ सत्पुरुष महाराज । आप इस पुत्र को पुषराज का तिलक दें, इसके साथ अपनी मातिज्ञा के अनुसार व्यवहार करें, हे महाभाग! आपने ऋषि कण्य के आश्रम में मुझसे गान्धर्य विवाह करते समय पहले जो मातिज्ञा की थी उसको स्मरण कर यथोचित वर्तें॥

भायां पतिः संप्रविश्य स यस्माजायते पुनः । जायायास्तद्धि जायात्वं पौराणाःकवयो विदुः॥१४॥ पुत्राम्नो नरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥१५॥

अर्थ-पुराणज्ञ कारियह मानते हैं कि पति ही स्त्री भें प्रविष्ट होकर फिर पुत्रक्ष से जन्म लेता है, इसीलिये स्त्री को "जाया" कहते हैं अथवातभी स्त्री जाया कहलासकती है, "पुं"=नरक=दुःख का नाम है, दुःख से पिता की रक्षा करने के कारण प्रप्रात्मा ने स्त्रयं इसका नाम "पुत्र" रक्खा है ॥

साभार्या गरेह दक्षा सा भार्या या प्रजावती। साभार्या या पतिप्राणा सा भार्या यापतिव्रता॥१६॥ अर्द्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सला।

भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥१७॥ अर्थ-हे राजन ! वही भार्या होसकती है जो घर के कामों

में चतुर, पुत्रवती, पित को माण समान मानने वाली और पित-व्रता हो, भार्या मनुष्य का आधा अङ्ग है, भार्या ही सबसे उत्तम मित्र है, भार्या ही धर्म-अर्थ-काम का मूल है और भार्या ही दुःखों से पार होने का साधन है।।

भार्यावन्तः कियावन्तः सभार्या गृहमेथिनः। भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियानिवताः॥१८॥ सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियम्बदाः । पितरो धर्मकार्येषु भवन्त्यार्त्तस्य मातरः ॥ १९ ॥

अर्थ-भार्या वाले पुरुष ही कर्मशील होते, भार्या वाले ही "गृहस्य" कहलाते और भार्या वाले ही आनन्द तथा लक्ष्मी को भोगते हैं, यह मधुरभाषिणी स्त्रियें निर्जनदेश में भित्र का काम देतीं तथा धर्म कार्यों में पिता के समान सहायक होतीं और दुःख दशा में माता के समान रक्षा करती हैं॥

कान्तरिष्वपि विश्वामो जनस्याध्वनिकस्य वै। यः सदारः सविश्वास्यस्तस्माद्दाराः परागतिः। एतस्मात्कारणादाजन् पाणिग्रहणमिष्यते।।२०॥

अर्थ-यदि यात्री पुरुष स्त्री सहित हो और वह यात्रा करता हुआ जंगली मनुष्यों के घरों में भी जा निकले तो वह लोग विश्वास कर उसे विश्राम देंगे, इसलिये ख्रियें पुरुष के सुख का मुख्य साधन हैं,और हे राजन ! इसी कारण विवाह किया जाता है॥

आत्मात्मनेव जिनतः पुत्र इत्युच्यते बुधैः । तस्माद् भायां नरः पश्येन्मातृवत् पुत्रमातरम् ॥२१॥ भायांयां जिनतं पुत्रमादशीष्विव चाननम् । इलादते जिनता प्रेक्ष्य स्वर्ग प्राप्येव पुण्यकृत् ॥२२॥

अर्थ-विद्वान लोग कहते हैं कि मनुष्य आपही अपने से उत्पन्न होकर "पुत्र" कहलाने लगता है, इसलिये पुत्र की माता को भी एक प्रकार से अपनी ही माता जानना चाहिये, भार्या से उत्पन्न हुआ पुत्र ऐसा है जैसा दर्पण में प्रतिविस्त्रित हुआ अपना मुख होता है, पुत्रको देखकर पिता इस मकार आनिन्दित होता है जिसे धर्मात्मा पुरुष स्वर्ग को पाकर मसन्न होते हैं॥

दह्ममाना मनोदुः वैर्व्याधिभिश्चातुरा जनाः । ह्लादन्ते स्वषु दारेषु धर्मार्नाः सिललेष्विव ॥२३॥ सुसंरच्योऽपि रामाणां न कुर्यादिष्रयं नरः । रतिं प्रीतिं च धर्म च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि ॥२४॥

अर्थ-मन के दुःख और अनेक मकार की व्याधियों से दुःखी पुरुष अपनी स्त्रियों में आकर मसन्न होजाते हैं, जैसे गर्भी से सताये हुए मनुष्य पानी पाकर आनन्दित होते हैं, क्रोध में आये हुए पुरुष को भी उचित है कि ग्रुख, मेम और धर्म को स्त्रियों के ही आधार समझकर उनके मति अनुचित व्यवहार न करे॥

आत्मनो जन्मनः क्षेत्रं पुण्यं रामाः सनातनम् । ऋषीणामपि का शक्तिः सर्दुं रामामृते प्रजाम्।।२५॥ प्रतिपद्य यदा स्तुर्धरणीरेणुग्रण्ठितः । पित्रुराहिलष्यतेऽङ्गानि किमस्त्यभ्याधिकं ततः ॥२६॥

अर्थ-स्त्रियों ही सदा से अपनी सन्तान उत्पन्न करने की क्षेत्रह्म हैं, ऋषियों की भी क्या शक्ति है जो विना स्त्री के सन्तान उत्पन्न करसकें, जब पृथ्वी की धूल से सना हुआ पुत्र आकर पिता से लिपट जाता है तब उससे अधिक क्या सुख है॥

न वाससां न रामाणां नापां स्फ्रीस्तथाविधः। शिशोरालिङ्गयमानस्य स्पर्शः सूनोर्यथा सुखः॥२०॥ वाह्मणो दिपदां श्रेष्ठो गीर्वरिष्ठश्चतुष्पदाम् । यरुर्गरीयसां श्रेष्ठः पुत्रः स्पर्शवतां वरः ॥२८॥

अर्थ-वस्त्रों, स्त्रियों अथवा जलों का स्पर्श करना भी वैसा सुख दायी नहीं जैसा आलि इन किये हुए अपने शिशुपुत्र का स्पर्श सुखकर होता है, जैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, पराओं में गौ, और वड़ों में गुरु श्रेष्ठ होता है, ऐसे ही स्पर्श करने योग्य पदार्थों में पुत्र सबसे श्रेष्ठ है ॥

स्पृश्चतु त्वां समाहिलष्य पुत्रोऽयं प्रियदर्शनः । पुत्रस्पर्शातसुखतरः स्पर्शा लोके न विद्यते ॥२९॥

अर्थ-हे राजन ! यह रूपवान पुत्र तुम्हें आछिङ्गन करके स्पर्श करे, वयोंकि संसार में पुत्र के स्पर्श से बढ़कर किसी वस्तु का स्पर्श करना सुखकारी नहीं ॥

नतु नामाङ्कमारोप्य स्नेहाद्श्रामान्तरं गताः। मुध्नि पुत्रातुपाघाय प्रतिनन्दन्ति मानवाः ॥३०॥

अर्थ-परदेश से आये हुए मनुष्य स्नेह से अपने पुत्रों को गोद में बैटा उनका मस्तक चूमकर परमाआनित्त होते हैं॥ अङ्गादङ्गात्संभवासि हृदयादाधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥३१॥ जीवितं त्वद्धीनं मे सन्तानमिष चाक्षयम्। तस्मान्त्वं जीव मे पुत्र सुसुखी शरदां शतम्॥३२॥

अर्थ-और पुत्र के प्रति कहते हैं कि हे पुत्र ! तू मेरे अङ्ग २ से विशेष कर हृदय से उत्पन्न होता है, मेरा आत्मा ही तू पुत्र नाम वाला हुआ है, सो तू सो वर्ष तक जीता रह, मेरा जीवन और मेरे वंश की स्थिरता तेरे ही अधीन है, इसिलये, हे पुत्र ! तू सुखपूर्वक सो वर्ष तक जीवन धारण कर ॥

त्वदङ्गेभ्यः प्रस्तोऽयं प्ररुषात्प्ररुषोऽपरः । सरसीवामलेत्मानं द्वितीयं पश्य वे सुतम् ॥३३॥ यथा ह्याहवनीयोऽमिर्गाईपत्यात्प्रणीयते । तथा त्वत्तः प्रस्तोऽयं त्वमेकः सन् द्विधाकृतः॥३४॥

अर्थ-हे राजन ! यह तुम्हारे ही अङ्गों द्वारा एक मनुष्य से दूसरा मनुष्य बनगया है, निर्मल तालाव में अपने दूसरे रूप= मितिविम्ब के समान इस पुत्र को समझो, जसे "गाईपत्य" अग्नि से थोड़ा अग्नि अलग करके उसको "आहवनीय" बना लिया जाता है, वैसे ही तुम्हारे ही अंश से यह पुत्र बन गया है अर्थात तुमने एक होते हुए ही दूसरा रूप धारण करलिया है ॥

मगावकृष्टेन पुरा मगयां परिधावता ।

अहमासादिता राजन् कुमारी पितुराश्रमे ॥३५॥

अर्थ-हे राजन ! आपने पूर्व काल में शिकार के लिये दोड़ते २ एक हिरण के पीछे लगे हुए पिता के आश्रम में पहुंच मुझ कुमारी को माप्त किया था॥

ततस्तस्य तदा राजा पितृकर्माणि सर्वशः । कारयामास मुदितः प्रीतिमानात्मजस्य ह ॥३६॥ मुर्धिन चैनमुपाघाय सस्नेहं परिषस्वजे । सभाज्यमानो विषेश्च स्तूयमानश्च वन्दिभः ॥३७॥ अर्थ-तव राजा ने प्रसन्न होकर प्रीति सहित अपने उस पुत्र के सब संस्कार जो पिता के कर्म थे किये, ब्राह्मणों के आशीर्वाद और बन्दी लोगों के स्तुति करते हुए राजा ने अपने पुत्र का मस्तक चूमकर आलिङ्गन किया ॥ स सुदं परमां लेभे पुत्रसंस्पर्शजां नृपः । तां चैव भायां दुष्यन्तः पूज्यामास धर्मतः ॥३८॥

अर्थ-राजा ने अपने पुत्र को स्पर्श करके परम आनन्द याना और अपनी भार्या शकुन्तला का भी धर्मानुसार सत्कार किया॥

बुष्यन्तस्तु ततो राजा पुत्रं शाकुन्तलं तदा । भरतं नामतः कृत्वा योवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥३९॥

अर्थ-तव राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला के पुत्र का नाम "भरत" रखकर उसको युवराज्य का तिलक देदिया ॥

तस्य तत् प्रथितं चकं प्रावर्तत महात्मनः । भारवरं दिव्यमिजितं लोकसन्नादनं महत् ॥ ४०॥ स विजित्य महीपालांश्रकार वशवर्तिनः । चचार च सतां धर्म प्राप चानुत्तमं यशः ॥४१॥

अर्थ-तव महात्मा राजा "भरत" का राज्यवक मृहत हुआ जो तेजवान, अलीकिक, अजय और संसार को ग्रंजारने वाला था, उसने राजाओं को जीतकर अपने वश में करलिया और महात्माओं के कहे धर्म का आवरण कर अनुपम यश पाया॥ स राजा चक्रवत्त्यांसीत् सार्वभामः प्रतापवान्। भरताद्वारती कीर्त्तिर्येनेदं भारतं कुलम् ॥ १८२॥ अर्थ-वह प्रतापी राजा सारी पृथिवी का चक्रवर्ती राजा

80

हुआ, इसी भरत राजा से भारतवर्ष की कीर्ति हुई और इसी से यह कुछ "भारत" कहलाया ॥ अपरे ये च पूर्वे वे भारता इति विश्वताः । भरतस्यान्ववाये हि देवकल्पा महोजसः ॥४३॥ वस्त्रविद्याहरू वहतो राज्यसन्त्राः ॥

वभू वृत्रह्मकरपाश्च वहवो राजसत्तमाः । येपामपरिमेयानि नामधेयानि सर्वज्ञः ॥४४॥

अथ-राजा भरत के पश्चात और पहले भी देवताओं के समान, महामतापी, ब्रह्मनिष्ठ श्रेष्ठ राजा "भरतकुल" में हुए हैं वह भी "भरत"नाम से विख्यात थे जिनके नाम सर्वथा अगणनीय हैं ॥ तेषां तु ते यथामुख्यं कीर्त्तियिष्यामि भारत । महाभागान्देवकल्पान् सत्याजीवपरायणम्।। ४५॥

अर्थ-हे भरतवंशी जनमंजय उनमें से जो मुख्य २ राजा वड़े भागशील, देवताओं के समान सत्य और विनय से पूर्ण हुए हैं उनका में वर्णन करता हूं॥

इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुर्थोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

प्रजापतेस्त दक्षस्य मनोवैवस्वतस्य च।
भरतस्य इरोः प्ररोराजमीढ चानघ।। १।।
यादवानामिमं वंशं कौरवाणां च सर्वराः।
तथैव भरतानां च पुण्यं स्वस्त्ययनं महत्।

धान्यं यशस्यमायुष्यं कीर्त्तियष्यामि तेऽनच ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! अव मैं तुम्हारे प्रति
प्रजापित दक्ष, मनु, वैवस्वत, भरत, कुम, पूरु और अजमीट राजाओं
के वंश का वर्णन करता हूं, यह यहुवंशी, कुरुवंशी और
पुरुवंशियों का वंशकीर्तन बड़ा पिवल, कल्याणकारी, धान्य तथा
यश और आयु के बढ़ाने वाला है।

विवस्वतः सतो जज्ञे यमो वैवस्वतः प्रसः । मार्तण्डस्य मनुर्यीमानजायत सुतः प्रसः ॥ ३॥

अर्थ-विवस्तात का पुत्र राजा "यम" तथा मार्तण्ड का पुत्र बुद्धिमान राजा "मनु" हुआ ॥ धर्मात्मा स मनुर्धीमान यत्र वंशः प्रतिष्ठितः । मनोर्वशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ॥४॥ ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः । ततोऽभवन् महाराज ब्रह्मक्षत्रेण सङ्गतम् । बाह्मणा मानवास्तेषां साङ्गं वेदमधारयन् ॥४॥

अर्थ-बह मनु वड़ा धार्षिक और बुद्धिमान था, जिससे वंश की वड़ी प्रतिष्ठा हुई और उसी मनु से यह मानववंश विरुपात हुआ, हे राजन ! उसी मनु से उत्पन्न हुए मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वन गये और उसी से ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर मिले रहे, उनमें मनु के पुत्र जो ब्राह्मण हुए उन्होंने अड़-उपाड़ों महित वेदों का अभ्याम किया ॥

वेनं घृष्णुं निरष्यन्तं नामागं वाक्रमव न।

कारूपमथ शय्योतिं तथा वैवाष्टमीमिलाम् ॥६॥ १९१५ं नवमं प्राहुः क्षत्रधमपरायणम् । नाभागारिष्टदशमान् मनोः पुत्रान् प्रचक्षते ॥७॥

अर्थ-कहते हैं कि मनु के नी पुत्र और एक पुत्री हुई-(१)
"वेन" (२) "घृष्णु" (३) "नारिष्यन्" (४) "नामाग" (५)
"इक्ष्वाकु" (६) "कारूप" (७) "शर्याति" (८) आठवीं पुत्री
"इछा" (९) नीवां पुत्र "पृष्प्र" जोकि क्षात्रधर्म में तत्पर था
और दशवां पुत्र (१०) "नामागारिष्ट" हुआ ॥

पुरुषास्ततो विद्यानिलायां समपद्यत । पर् सता जित्तरे चैलादायुर्धीमानमावसः । दृशयथ्य वनायथ्य शतायुश्चोर्वशीस्ताः ॥८॥ नहुषं वृद्धशर्माणं रिजङ्गयमनेनसम् । स्वर्भानवीस्तानेतानायोः पुत्राच् प्रचक्षते ॥९॥

अर्थ-पुनः इटा से पुरूरवा पुत्र उत्पन्न हुआ और "पुरूरवा" के "उर्वशी" स्त्री से आयु, धीमान, अमावग्र, दृहायू, बनायु और शतायु यह छः पुत्र जन्मे "आयु" के "स्मानिती" स्त्री से नहुप, वृद्धशर्मा, रिजङ्गय और अनेनस् यह चार पुत्र कहे गये हैं॥

आयुषो नहुषः पुत्रो धीमान् सत्यपराक्रमः । राज्यं द्राशास सुमहद्धर्मेण पृथिवीपते ॥१०॥ स हत्वा दस्युसंघातानृषीन् क्रमदापयत् । पश्चवंचैवतान् पृष्ठे वाह्यामास वीर्यवान् ॥११॥ अर्थ—हे राजन ! "आयु" का वड़ा पुत्र नहुप बुद्धियान तथा सच्चे पराक्रम वाला हुआ और उसने वड़े भारी राज्य का शासन किया, उस मतापी ने दस्यु लोगों के समुदाय को मारा तथा उस से ऋषियों को कर दिलाया, और दस्युओं को पश्चों की भांति गाड़ी में जोतकर उनकी पीठ पर सवारी की ॥

यतिं ययातिं संयातिमायातिमयतिं ध्रुवम् । नहुषो जनयामास षद् स्तान् प्रियवादिनः ॥१२॥ यतिस्तु योगमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्सुनिः । ययातिनीं हुषः सम्राडासीत्सत्यपराक्रमः ॥१३॥

अर्थ-नहुष के यित, ययाति, संयाति, आयाति, अयित और
ध्रुव यह छः पुत्र उत्पन्न हुए जो वहे ित्रयवादी थे, "यित"
तो संन्यास ठेकर ब्रह्मानिष्ठ मुनि होगया, और दूसरा पुत्र
ययाति जो सच्चा पराक्रभी था सम्राद हुआ ॥
स पालयामास महीमीजे च बहुि भिर्मरवैः ।
अतिभक्तया पितृनर्चन्देवांश्च प्रयतः सदा ।
अन्वगृह्णात् प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः ॥१४॥

अर्थ-उस अजेय ययाति राजा ने पृथ्वी का पालन किया और वहुत से यज्ञ किये तथा नियमपूर्वक सदा अत्यन्त भक्ति से पितर और देवों का सत्कार करते हुए सारी प्रजा पर अनुग्रह किया ॥ तस्य पुत्रा महेष्वासाः सर्वेः समुदिताः गुणैः । देवयान्यां महाराज शार्मिष्ठायां च जिज्ञरे ॥१५॥ देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेव च । 88

महाभारत

दुह्यश्रानुश्र प्ररुश्रश मिष्ठायां भजित्तरे ॥ १६॥

अर्थ-हे राजन ! ययाति के देवयानी और शर्मिष्ठा नामक दो स्त्रियों से वाण चलाने में निपुण सर्वगुणसम्पन्न पांच पुत्र उत्पन्न हुए, देवयानी से "यदु" और "तुर्वम्रु" नाम के दो पुत्र हुए और शर्मिष्ठा से दुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र जन्मे॥

ततः स नृपशार्दूल प्रंह राज्येऽभिषिच्य च । कालेन महता पश्चात्कालधर्ममुपेयिवान् ॥१७॥

अर्थ∸हे महाराज ! तत्पश्चात् ययाति "पूरु" को राजतिलक देकर चिरकालानन्तर मृत्यु को प्राप्त होगये ॥ जनमेजय जवाच

भगवञ्छोतुमिच्छामि पूरोवंशकरान् नृपान् । यद्वीर्यान् यादृशांश्चापि यावतो यत्पराक्रमान् ॥१८॥ नह्यस्मिन् शीलहीनो वा निर्वीयों वा नराधिपः । प्रजाविरहितो वापि मृतपूर्वः कथंचन ॥१९॥

अर्थ-जनमेजय वोला कि हे भगवन ! मैं "पूरू" राजा के वंशधर राजाओं का इतिहास सुनना चाहता हूं जो जिस प्रकार के वल और पराक्रम वाले अब तक हुए हैं, इस वंश में कोई राजा दुःशील वा निर्वार्थि अथवा सन्तान रहित तो कभी नहीं हुआ ?॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथिष्यामि यन्मां त्वं परिषृच्छिस । प्रोवंशधरान्वीरान् शक्तप्रतिमतेजसः ॥ २०॥

अर्थ-तैशम्पायन वोले कि हे जनमेजय ! जिन अपने पूर्वज राजाओं का इतिहास तू मुझसे पूछता है, उन इन्द्रसमान अपरिभित तेम वाले पूरूवंशधर वीरों का चरित्र तुम्हारे सन्मुख शोक से कहता हूं:-

प्रविरेश्वररोद्राक्वास्त्रयः पुत्रा महारथाः । पूरोः पौष्ट्यामजायन्त प्रविरो वंशकृत्ततः ॥२१॥ मनस्यरभवत् तस्माच्छूरसेनी सुतः प्रसुः । पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता राजीवकीचनः ॥२२॥

अर्थ-"पूरू" राजा के तीन पुत्र वहे योद्धा "पौष्टी" नामक स्त्री से उत्पन्न हुए अर्थात प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व, इन्हों से "प्रवीर" वंशधर पुत्र हुआ, प्रवीर का पुत्र "श्रूरेसनी" नाम भार्या से उत्पन्न हुआ जो "मनस्यु" नामी राजा कहलाया, और वह वहा सुरूपवान तथा चारो समुद्रों तक पृथिवी का स्वामी था ॥ शक्तः संहननो वाग्मी सौवीरीतनयास्त्रयः । गनस्योरभवन् पुत्राः श्रूराः सर्वे महारथाः ॥२३॥ अन्वग्भानुप्रमृतयो मिश्रकेश्यां मनस्विनः । रौद्राश्वस्यमहेष्वासा दशाप्सरसि सूनवः ॥२४॥

अर्थ-मनस्यु के "सौवीरी" नामक स्त्री से शक्त, संहनन तथा वाग्मी, यहतीन पुत्र उत्पन्न हुए जो सब श्रुरवीर और बड़े योद्धा थे, पूरु के तीसरे पुत्र रौद्राश्व के "मिश्रकेशी"नामक स्त्री से "अन्वग्भानु" आदि चार पुत्र हुए जो विवेकी तथा वाण चलाने में बड़े निपुण थे, और अप्तरा नामक स्त्री से दस पुत्र जन्मे, जिनके नाम यह हैं:-

ऋचेयुरथकक्षेयुः कृकणेयुश्च वीर्यवान् । स्थण्डिलेयुर्वनेयुश्च जलेयुश्च महायशाः ॥२५॥

तेजेयुर्वलवान् धीमान् सत्येयुश्चेन्द्रविक्रमः । धर्मेयुः सन्नतेयुश्च दशमो देवविक्रमः ॥२६॥

अर्थ-"ऋचेयु" "कक्षेयु" पराक्रमी "कुकणेयु" "स्थण्डिलेयु" "वनेयु" कीर्तिमान "जलेयु" बलवान तथा बुद्धिमान "तेजेयु" इन्द्र जैसा पराक्रमी "सत्येयु" "धर्मेयु" और दशवां देवताओं के समान पराक्रमी "सन्नतेयु" हुआ ॥

यज्वानो जिज्ञरे श्रूराः प्रजावन्तो बहुश्रुताः । सर्वे सर्वास्त्रविद्धांसः सर्वे धर्मपरायणाः ॥२७॥

अर्थ-यह सब राजा यज्ञ करने वाले, वहादुर, सन्तान वाले, वड़े विद्वान, सब शस्त्रों के चलाने में निपुण और धर्मषरायण थे॥

अनाधृष्टिरभूत्तेषां विद्वान् भवि तथैकराद् । अनाधृष्टिसुतस्त्वासीदाजसूयाश्वमेधकृत् । मतिनार इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ॥२८॥

अर्थ-उक्त दश पुत्रों में से "ऋचेयु" का पुत्र "अनाधृष्टि" हुआ जो पृथ्वी भर में विद्वान, चक्रवर्ती राजा था, अनाधृष्टि का पुत्र "मितनार" नामी राजा हुआ, जिसने राजसूय तथा अक्वमेध यह किये और जो परम धार्मिक मिसद्ध था ॥

मितनारस्ता राजंश्रत्वारोऽमितविक्रमाः । तंस्र्महानितरथो दुह्यश्राप्रातिमद्युतिः ॥२९॥ तेपां तंस्र्महावीर्यः पौरवं वंशमुद्धहन् । आजहार यशो दीप्तं जिगाय च वस्रन्थराम् ॥३०॥ अर्थ-हे राजन ! "मितनार" के तंग्र, महान, अतिरथ और अनुपम मभाव वाला "दृह्यु" यह चार पुत्र उत्पन्न हुए इनमें "दृह्यु" राजा वड़ा पराक्रमी और पोरव वंश का वहाने वाला हुआ, जिसने प्रकाशमान यश पाया तथा पृथ्वी को विजय किया ॥ ईलिनं तु सुतं तंसुर्जनयामाम वीर्यवान् । सोऽपि कृतस्त्रामिमां भूमिं विजिग्ये जयतांवरः ॥३१॥ अर्थ-पराक्रमी राजा तंग्र का पुत्र "ईलिन" नामक राजा हुआ, इस महाविजयी ने भी सारी पृथ्वी का विजय किया ॥ रथन्तर्या सुतान् पञ्च पञ्चभूतोपमांस्ततः ।

रथन्तया सुतान् पञ्च पञ्चमृतापमास्ततः । इतिनो जनयामास दुष्यन्तप्रभृतीन्नृपान् ॥३२॥ दुष्यन्तं शुरभीमौ च प्रवसं वसुमेव च । तेषां ज्येष्ठोऽभवद्राजा दुष्यन्तो जनमेजय ॥३३॥

अर्थ-पश्चात "ईछिन" राजा के "रथन्तरी" स्त्री से "दुष्य-न्त" आदि पांच पुत्र उत्पन्न हुए, वह पांचो मानों भूत=पंचतत्व थे, हे जनभेजय! दुष्यन्त, श्रर, भीम, मनसु और वसु, इनमें जो वहा पुत्र "दुष्यन्त" था वही राजा हुआ ॥

बुष्यन्ताइरतो जज्ञे विद्वान् शाक्तन्तलो नृपः। तस्माद्वारतवंशस्य विप्रतस्थे महद्यशः ॥३४॥ भरतस्तिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत्। नाभ्यनन्दत तान्राजानानुरूपाममेत्युत ॥३५॥

अर्थ-दुष्यन्त का शक्तुन्तला से "भरत" नामक पुत्र हुआ जो वड़ा थिद्रान राजा था और इभी ने आरतांश का महान यश स्थिर हुआ, भरत के तीन श्चियों से नौ पुत्र हुए, परन्तु राजा भरत ने उनको अपने अनुरूप=समानरूप न देखकर ग्रहण नहीं किया ॥

ततो महाद्भः ऋतुभिरीजानो भरतस्तदा । लेभे पुत्रं भरद्राजाद्भुमन्युं नाम भारत ॥३६॥ ततः पुत्रिणमात्मानं ज्ञात्वा पौरवनन्दनः । भुमन्युं भरतश्रेष्ठ-यौवराज्येऽभ्यपेचयत् ॥३७॥

अर्थ-हे जनमेजय ! इसके पश्चात भरत ने भरद्राज ऋषि को पुरोहित बनाकर बड़े २ यज्ञ किये और उन्हीं की छुपा से "भुमन्यु" नामक पुत्र पाया, हे भरतकुल भूषण ! तब पुरुवंश के आनन्दकारी भरत ने अपने को पुत्र बाला जानकर "भुमन्यु" को युवराज का तिलक दिया ॥

सुहोत्रश्च सुहोता च सुहिवः सुयज्ञस्तथा । पुष्करिण्यामृचीकश्च सुमन्योरभवन् सुताः ॥३८॥

अर्थ-"भुमन्यु" के पुष्करिणी नामक स्त्री से सहोत्र, सहोता, सहित, सुयज और ऋचीक, यह पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ राजस्याख्वमेधाद्यैः सोऽयजद्रहुभिर्मरवैः । सहोत्रः पृथिवीं कृत्स्नां बुभुजे सागराम्बराम् । पूर्णी हस्तिगजाखेश्च बहुरत्नसमाकुलाम् ॥३९॥

अर्थ-मुहोत्र ने राजम्य, अञ्चमेध आदि वहुत से यज्ञ किये और समुद्रकृषी वस्त्रों को धारण करने वाली सारी पृथ्वी पर शासन किया, जो हाथी, रथ, धोड़े आदि पशुओं तथा रखों मे भरपूर थी॥ ममजेव मही तस्य भ्रिभारावपीडिता। हस्त्यस्य संपूर्णा मनुष्यकिललाभृशम्।। ४०॥

अर्थ-उसके हाथी, घोड़े, रथ और प्रजा के म्ह्राप्य इतने थे कि मानो उनके वोझ से पृथ्वी नीचे को घसी जाती थी ॥ सुद्देश्चि राजनि तदा धर्मतः शासित प्रजाः । चैत्ययूपाङ्किता चासीद्रुमिः शतसदस्तराः।

प्रवृद्धजनशस्या च सर्वदैव व्यरोचत ॥ ४१ ॥

अर्थ-उस समय "मुहोत्र" राजा के धर्मपूर्वक प्रजाओं पर शासन करते हुए भूमी सैकडों हज़ारों यज्ञमण्डप और यज्ञस्तम्भों से भूषित और सदा ही मनुष्य समुदाय तथा कृषि की वृद्धि से मुशोभित रहती थी॥

ऐक्ष्वाकी जनयामास सहोत्रात् पृथिवीपते । अजमीढं सुमीढं च पुरुमीढं च भारत ॥ ४२ ॥ अजमीढो वरस्तेषां तस्मिन् वंशः प्रतिष्ठितः । पद् पुत्रान् सोऽप्यजनयत् तिसृषु स्त्रीषु भारत ॥४३॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! सुहोत्र के इक्ष्ताकु की पुत्री से अजमीढ, सुमीढ और पुरुमीढ यह तीन पुत्र हुए, इनमें अजमीढ श्रेष्ठ था जिससे वंश की प्रतिष्ठा हुई, पुनः अजमीढ के तीन स्त्रियों से छः पुत्र हुए :-

ऋक्षं भूमिन्यथो नीली दुष्यन्तपरमेष्ठिनौ । केशिन्यजनयज्जह्नं सुतौ च जलस्पिणौ ॥ ४४॥ 60

अर्थ-धीमनी नामक स्त्री में ऋक्ष और नीली नामी स्त्री में दुष्यन्त तथा परमेष्ठी और केशिनी नामक स्त्री से जहु, जल और कपिण ॥

तथेमे सर्वपाञ्चाला दुष्यन्तपरमेष्ठिनोः । अन्वयाः कृशिका राजन् जह्नोरिमततेजसः ॥४५॥ जलक्षिणयोज्येष्ठमक्षमाहुर्जनाधिपम् । ऋक्षात् संवरणो जज्ञे राजवंशकरः सुतः ॥४६॥

अर्थ-हे राजन ! यह सब पाश्चाल देश के कुशिक लोग ऋक्ष, दुष्यन्त, परमेष्ठी, महामतापी जह्नु, जल और रूपिण के वंश में हैं, इन छओं में से "ऋक्ष" नामी वड़ा पुत्र राजा हुआ और इसी से राजवंश के चलाने वाला "संवरण" नामक पुत्र जन्मा ॥

आर्श्ने संवरणे राजन् प्रशासित वसुन्धराम् । संक्षयः सुमहानासीत् प्रजानामिति नः श्रुतम् ॥४७॥ व्यशीर्यत ततो राष्ट्रं क्षयैर्नानाविधैस्तदा । स्नुन्मृत्युभ्यामनावृष्ट्या व्याधिभिश्च समाहतम् ॥४८॥

अर्थ-हे राजन !हमने सुना है कि ऋक्ष के पुत्र "संवरण" राजा के पृथ्वी पर राज्य करते समय प्रजाओं का सर्वनाश होने छगा था, उस समय अनेक प्रकार की हानि, भूख, मृत्यु, अकाल और रोगों का मारा हुआ देश छिन्न भिन्न हो चला था॥

अभ्यमन् भारतांश्चेव सपत्नानां बलानि च। चालयन् वसुधां चेमां बलेन चतुरिङ्गणा ॥४९॥ अभ्ययात्तं च पाञ्चाल्यो विजित्य तरसा महीम्। अक्षौहिणीभिर्दशभिः स एनं समरेऽजयत् ॥ ५०॥

अर्थ-राष्ट्रओं की सेनायें भरतवंशिओं को पारने लगीं और पश्चाल देश का राजा अपनी चतुरिक्षणी सेना के द्वारा पृथ्वी को कंपाता हुआ अपने वल से सारी पृथ्वी को विजय करके दश अक्षीहिणी सेना के साथ इस "संवरण" राजा पर चढ़ आया और इसको युद्ध में जीत लिया ॥

ततः सदारः सामात्यः सपुत्रः ससुहज्जनः।

राजा संवरणस्तस्मात् पलायत महाभयात् ॥५१॥

अर्थ-तव अपने मन्त्री, स्त्री, पुत्र और मित्रों सहित राजा संवरण भयभीत हो वहां से भागकर !-

सिन्धोर्नदस्य महतो निक्के न्यवसत् तदा । नदीविषयपर्यन्ते पर्वतस्य समीपतः।

तत्रावसन् वहून्कालान्भारता दुर्गमाश्रिताः॥५२॥

अर्थ-महानद सिन्धु के समीप वनकुंज में रहने लगा, इस प्रकार भरतवंशी लोग नदी तथा पर्वत के सभीप प्रदेशों में दुर्ग वनाकर उसके सहारे बहुत काल तक रहे ॥

अथाभ्यगच्छद् भरतान् विशिष्ठो भगवानृषिः। तमागतं प्रयत्नेन प्रत्युद्गम्याभिवाद्य च। अर्घ्यमभ्याहरन्तस्मै ते सर्वे भारतास्तदा ॥५३॥

अर्थ-इसके पश्चात भारत लोगों के समीप एक समय भगवान विशेष्ठ ऋषि आये, उनको आये हुए देखकर आदर के साथ सब भारत लोग उठ खड़े हुए और प्रणाम करके उनके लिये सत्कारार्थ जल आदि लाये॥ निवेद्य सर्वमृषये सत्कारेण सुवर्चसे । तमासने चोपविष्टं राजा वन्ने स्वयं तदा । पुरोहितो भवान्नोऽस्तु राज्याय प्रयते महि ॥५४॥

अर्थ-उस तेजस्वी ऋषि के आसन पर वैठ जाने के पश्चात् उनसे विनयपूर्वक सब वृत्तान्त निषेदन करके राजा ने स्वयं पार्थना की कि हम राज्य पाने के लिये यन करेंगे और आप हमारे पुरोहित=अग्रणी वर्ने ॥

ओमित्येवं विशिष्ठोऽपि भारतान् प्रत्यपद्यत । अथाभ्यपिञ्चत्साम्राज्ये सर्वक्षत्रस्य पौरवम् ॥५५॥

अर्थ-वाशिष्ठजी ने भी भारतों से "वहुत अच्छा" कहकर उनके कथन को स्वीकार करिंग और कुछ समय पश्चात वाशिष्ठजी ने सब क्षत्रिओं के राज्य पर उस पुरुवंशी "संवरण" राजा को राज्य तिलक देदिया ॥

विषाणभृतं सर्वस्यां पृथिव्यामिति नः श्रुतम् । भरताध्युषितं पूर्व सोऽध्यतिष्ठत्युरोत्तमम् । पुनर्बलिभृतश्चेव चक्रे सर्वमहीक्षितः ॥५६॥

अर्थ-हमने सुना है कि पृथ्वी भर में उत्तम नगर जो हाथी दांत का बना हुआ था और जिसमें पहले राजा भरत रहते थे उसी में वह रहने लगा, और सब राजाओं को फिर से उसने कर देने वाला बनाया॥

ततः स पृथिवीं प्राप्य पुनरीजे महाबलः । आजमीदो महापंज्ञैर्वहुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥५७॥ अर्थ-तव अजमीह के पीत्र महावटी राजा ने फिर से पृथ्वी को पाकर बहुत दक्षिणा वाले अनेक वड़े २ यज्ञ किये ॥

ततः संवरणात् सौरी तपती सुषुवे कुरुष् । राजनेतं प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति विवरे ॥५८॥ तस्य नाम्नाभिविष्यात पृथिव्यां कुरु जाङ्गलम् । कुरुक्षेत्र स तपसा पुण्यं चक्रे महातपाः ॥५९॥

अर्थ-तत्पश्चात् सुर की पुत्री "तपती" नामक भार्या से संवरण का पुत्र "कुरु" हुआ, हे राजन ! सारी प्रजाओं ने इस "कुरु" को धर्मात्मा कहकर पुकारा, इसी के नाम से पृथ्वी में "कुरु-जाङ्गल " देश विख्यात हुआ और इसी महा तपस्वी ने अपने तप द्वारा "कुरुक्षेत्र" नामक पवित्र देश स्थापित किया ॥

अविक्षितमभिष्यन्तं तथा चैत्ररथं मुनिस्। जनमेजयं च विष्यातं पुत्रांश्वास्यानुशुश्रुमः। पञ्चेतान् वाहिनी पुत्रान् व्यजायत मनस्विनी॥ ६०॥

अर्थ-इस राजा के "वाहिनी" नामक धर्मात्मा भार्या ने अविाक्षित, अभिष्यन्त, चैत्रस्य, मुनि और जनमेजय नाम से प्रसिद्ध पांच पुत्र हुए, ऐसा हमने सुना है॥

अविक्षितः परीक्षित्त शवलाश्वश्च वीर्थवान् । आदिराजो विरजाश्च शाल्मिल महावलः । उचैःश्रवा भङ्गकारो जितारिश्चाष्टमः रम्रजः ॥६१॥ अर्थ-अविक्षित के "परीक्षित" पराक्रमी " शवलान्त" 48

" आदिराज " " विरजां " महावली " शाल्मलि " "उँचेश्रवा" " भङ्गकार " और आठवां " जितारि " यह आठ पुत्र उत्पन्न हुए॥

जनमेजयादयः सप्त तथैवान्ये महारथाः । परीक्षितोऽभवन् पुत्राः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ॥६२॥ कक्षसेनोग्रसेनौ तु चित्रसेनश्च वीर्यवान् । इन्द्रसेनः सुषेणश्च भीमसेनश्च नामतः ॥६३॥

अर्थ-परीक्षित राजा के जनमेजय आदि सात पुत्र तथा और भी बहादुर अन्य पुत्र हुए जो सभी धर्म और अर्थ में निपुण थे, उन सातों के नाम यह हैं-जनमेजय, कक्षसेन, उग्रसेन, परा-क्रमी चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुपेण और भीमसेन ॥

जनमेजयस्य तनया भुवि ख्याता महाबलः । धृतराष्ट्रः प्रथमजः पाण्ड्रवीह्लीक एव च ॥६४॥ निषधश्च महातेजास्तथा जाम्बनदो बली । कुण्डोदरः पदातिश्च वसातिश्चाष्टमः स्मृतः । सर्वे धर्मार्थ कुशलाः सर्वभूतहितेरताः ॥६५॥

अर्थ-जनमेजय के महाबली आठ पुत्र जगत में प्रसिद्ध हुए-पहला पुत्र "धृतराष्ट्र" हुआ, पश्चात पाण्ड, बाह्धीक, महा प्रतापी निपध, बलवान जाम्बूनद, कुण्डोदर, पदाति और आठवां वसाति हुआ, यह सब धर्म तथा अर्थ विषय में विद्वान और सब प्राणियों के हितकारी थे॥

धृतराष्ट्रोऽय राजासीत्तस्य पुत्रोऽय कृण्डिकः ।

हर्म्ता वितर्कः काथश्च कृण्डिनश्चापि पञ्चमः । हविःश्रवास्तेथन्द्राभः सुमन्युश्चापराजितः ॥६६॥

अर्थ-इन सब में धृतराष्ट्र राजा हुआ और उसके "कुण्डिक" "हस्ती" "दितर्क" "काथ" "कुण्डिन" इन्द्र के समान प्रतापी "हिवश्रवा" और युद्ध में न हारने वाला "भुमन्यु" यह सात पुत्र उत्पन्न हुए ॥

धार्तराष्ट्रसुतानाहुस्त्रीनेतान् प्रथितान सुवि । प्रतीपं धर्मनेत्रं च सुनेत्रं चापि भारत ॥६७॥

अर्थ-हे राजन ! धृतराष्ट्र के पुत्र " कुण्डिक " राजा के मतीप,धर्मनेत्र तथा सुनेत्र यह तीन पुत्र हुए जो पृथ्वी में विख्यात थे ॥

प्रतीपः प्रथितस्तेषां बस्वाप्रतिमो भुवि । प्रतीपस्य त्रयः पुत्रा जिज्ञेर भरतर्षभ । देवापिः शन्तनुरुचैव बाह्लीकरच मद्दारथः ॥६८॥

अर्थ-उन तीनों में प्रतीप सब से बढ़कर पृथ्वी पर विख्यात हुआ, और हे भरतकुल भूपण राजन ! प्रतीप के "देवापि" " शन्तनु " और महावली " वाहलीक " यह तीन पुत्र हुए ॥

देवापिश्च प्रववाज तेषां धर्महितेप्सया।

शन्तनुश्च महीं लेभे बाह्लीकश्च महारथः ॥ ६९॥ अर्थ-उनमें से देवापि ने धर्ममाप्ति की इच्छा से सन्यास ले

लिया और शन्तनु तथा महापराक्रमी वाह्लीक ने राज्य माप्त किया ॥

भरतस्यान्वये जाताः सत्त्ववन्तो नराधियाः।

देवर्षिकत्पा नृपते बहवो राजसत्तमाः ॥ ७० ॥ एवं विधारचाप्यपरे देवकत्पा महारथाः । जाता मनोरन्ववाये ऐलवंशविवर्द्धनाः ॥ ७१ ॥

अर्थ-हे राजन ! इस प्रकार " भरत " के वंश में अनेक पराक्रमी श्रेष्ठ राजा हुए जो देवता और ऋषियों के तुल्य थे, इस प्रकार के और भी बहुत से राजा मानववंश में उत्पन्न हुए जो देवताओं के समान महायोद्धातथा पुरूरवा के वंश को चलाने वाले थे॥

जनमेजय उवाच

श्रुतस्त्वतो मया ब्रह्मन् पूर्वेषां सम्भवो महान् । उदाराश्चापि वंशेऽस्मिन्नाजानो मे परिश्रुताः ॥७२॥ किं तु लघ्वर्थसंयुक्तं प्रियाख्यानं न मामित । प्रीणात्यतो भवान् भूयो विस्तरेण ब्रवीतु मे । एतामेव कथां दिव्यामाप्रजापतितो मनोः ॥७३॥

अर्थ-जनमेजय बोला कि हे ब्रह्मन् ! मैंने आपसे पूर्व पुरुषा-ओं के उत्कृष्ट जन्म सुने, और इस वंश के जो उदार राजा हुए उनका भी श्रवण किया, परन्तु संक्षेप से कहा हुआ यह प्यारा इतिहास मुझे पूर्ण तृप्त नहीं करता, इसलिये प्रजापित मनु से आरम्भ करके इसी अद्भुत कथा को आप पुनः विस्तारपूर्वक मेरे प्रांत कहें॥

तेषामाजननं पुण्यं कस्य न प्रीतिमावहेत्। सद्धम्यण माहात्म्यैरिभवर्द्धितमुत्तमम् ॥७४॥ यणप्रभाववीर्योजः सत्त्वोत्साहवतामहम् । न तृष्यामि कथां शृष्वन्नमृतास्वादसिम्मताम्॥७५॥ अर्थ-उन पूर्व पुरुपाओं का पवित्र जीवन किसको मसन्न नहीं करता जो सच्चे धर्म, गुण और महत्त्व से परिपूर्ण थे, सो मैं उन पुरुपों की अमृत के समान आनन्द दायक कथा को मुनता हुआ हुन नहीं होता जो प्रभाव, पराक्रम, तेज, वल और उत्साह सम्पन्न थे॥

वैशम्पायन उदाच शृणु राजन् पुरा सम्यङ् मया देपायनाच्छुतम् । ष्रोच्यमानं मया कृत्स्नं स्ववंशजननं शुभम् ॥७६॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! आप अपने वंश का उत्तम इतिहास पूर्णक्षपसे भलेपकार सुनें, जो मैंने पहले व्यासजी से सुना है॥

द्क्षादितिरिदितेविवस्वान् विवस्वनो मर्गुमनोरिद्ध इलायाः पुरूरवाः । पुरूरवस आयुरायुपो नहुपो नहुपाद्ययातिर्ययातेर्द्धे भार्ये बभूवतुः। उशनस्य दुहिता देवयानी वृपपर्वणश्च दुहिता शर्मिष्ठा नाम ॥७७॥

अर्थ-दक्षसे "अदिति" हुई, अदिति से विवस्वान विवस्वान से मनु मनु से इला हुई, इला का पुत्र "पुरूरवा" हुआ पुरूरवा से आयुस् आयुस् से "नहुप" नहुप से "ययाति" हुआ, ययाति की दो स्त्रियां थीं, एक शुक्र की पुत्री "देवयानी" दूसरी वृपपर्वा की पुत्री "श्रामष्ठा" नामक थी ॥

> यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत-द्रुह्यं चातुं च प्रुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी-यदोर्यादवाः प्रुरोः पौरवाः ॥ ७८॥

अर्थ-देवयानी के "यदु" और "तुर्वसु" दो पुत्र हुए, और वृष्पर्वा की पुत्री "श्रामिष्ठा" के "दुह्यु" "अनु" और "पूरु" नामी तीन पुत्र जन्मे,यदु से यादव और पूरु से पौरव लोग उत्पन्न हुए॥ पूरोस्तु भार्या कौशल्या नाम तस्यामस्य जज्ञे जनमे जयो नाम । जनमे जयः खल्वनन्तां ' नामोपयेमे माधवीं तस्यामस्य जज्ञे प्राचिन्वान् । यः प्राचीं दिशं जिगाय यावत् सूर्योदयात् ततस्तस्य प्राचिन्वत्त्वम् ॥ ७९ ॥

अर्थ-पूरु की "कौशल्या" नामक स्त्री से "जनभेजय" नामी पुत्र हुआ, जनमेजय ने मधुवंश की पुत्री "अनन्ता" से विवाह किया, उससे इसका पुत्र "प्राचिन्वान " उत्पन्न हुआ, जिसने सूर्योदय के स्थान तक प्राची=पूर्व दिशा को विजय किया और इसीलिये उसका नाम "प्राचिन्वान" हुआ॥ प्राचिन्वान खल्वश्मकी मुपयेमे यादवी तस्यामस्य जज्ञे संयातिः। संयातिः खल्ड दृपद्दतो दुहितंर वराङ्गी नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे अहंयातिः। अहंयातिः खल्ड कृतवीर्यदुहितरमुपयेमे भाउमती नाम तस्यामस्य जज्ञे सार्वभौमः॥८०॥

अर्थ-प्राचिन्वान ने यदुवंशी "अश्मकी" नामक कन्या से विवाह किया और उससे "संयाति" नामक पुत्र हुआ, संयाति ने "दृपदृत्" की "वराङ्गी" नामक कन्या से विवाह किया और उससे "अहंयाति" नामी पुत्र उत्पन्न हुआ,

अहंयाति ने "कृतवीर्य" की पुत्री "भानुमंती" से विवाह किया और उससे "सार्वभौम" नामक पुत्र जन्मा ॥

सार्वभौमः खलु जित्वा जहार कैकेयीं सनन्दां नाम-तासुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे जयत्सेनो नाम । जयत्सेनः खलु वैदर्भीसुपयेमे सुश्रवां नाम तस्या-मस्य जज्ञे अवाचीनः । अवाचीनोऽपि वैदर्भीमपरा-मेवोपयेमे मर्यादां नाम तस्यामस्य जज्ञे अरिहः॥८१॥

अर्थ-सार्वभौम "केकय" वंश की पुत्री "सुनन्दा" को विजय करके छीन छाया और उससे विवाह किया, जिससे इसका
पुत्र "जयत्सेन" नामी उत्पन्न हुआ, जयत्सेन ने "विदर्भ" वंश
की कन्या "सुश्रवा" से विवाह किया और उससे "अवाचीन" नामी पुत्र हुआ, अवाचीन ने भी विदर्भवंश की ही दूसरी
"मर्यादा" नामी स्त्री से विवाह किया और उससे इसका "अरिह"
नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥

अरिहः खल्वाङ्गीमुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे महाभौमः, महाभौमः खलु प्रासेनजितीमुपयेमे सुयज्ञां नाम । तस्यामस्य जज्ञे अयुतनायी, यः पुरुषमेधानामयु-तमानयत् तेनास्यायुतनायित्वम् ॥८२॥

अर्थ-"अरिह" नै अङ्ग वंश की कन्या से विवाह किया और उससे "महाभीम" नामी इसका पुत्र हुआ, महाभीम ने "मसे-नजित्" के वंश की "सुयज्ञा" नामक स्त्री से विदाह किया और उससे "अयुतनायी" नामी पुत्र हुआ, जिसने अयुत=दस

हज़ार "नरमेध" यज्ञ किये और इसी से इसका नाम "अयुत-नायी" हुआ ॥

अयुतनायी खळु पृथुश्रवसो दिहतरमुपयेमे कामां नाम तस्यामस्य जज्ञे अक्रोधनः। सखळु कालिङ्गीं करम्भां नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे देवातिथिः। देवातिथिः खळु वैदेहीमुपयेमे मर्यादां नाम तस्या-मस्य जज्ञेऽरिहो नाम ॥८३॥

अर्थ-अयुतनायी ने "पृथुश्रवा" की पुत्री "कामा" से वि-वाह किया और उससे इसका "अक्रोधन " नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसने "कलिङ्ग" वंदा की कन्या "करम्भा" से विवाह किया और उससे "देवातिथि" पुत्र हुआ, देवातिथि ने विदेह वंदा की कन्या "मर्यादा" से विवाह किया और उससे "अरिह" नामक पुत्र जन्मा ॥

अरिहः ख्वाङ्गेयीमुपयेमे छुदेवां नाम तस्यां पुत्र-मजीजनदक्षम्।ऋक्षःख्छतक्षकदुहितरमुपयेमेज्वालां

नाम तस्यां पुत्रं मतिनारं नामोत्पादयायास ॥ ८४॥

अर्थ-अरिह ने "अङ्ग" वंश की कन्या "सुदेवा" से विवाह किया, और उससे "ऋक्ष" नामक पुत्र हुआ, ऋक्ष ने "तक्षक" की पुत्री "ज्वाला" से विवाह किया और उससे "मतिनार" नाभी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

मतिनारः खलु सरस्वत्यां ग्रणसमान्वतं द्वादशवार्षिकं सत्रमाहरत् । समाप्ते च सत्रे सरस्वत्याभगम्य

तं भत्तीरं वरयामास । स तस्यां पुत्रमजीजनत् तंसुं नाम ॥ ८५॥

अर्थ-मितनार ने "सरस्वती" नामक स्त्री की माप्ति के छिये सर्व गुणसंपन्न वारह वर्ष का यज्ञ किया, और यज्ञ समाप्त होने पर सरस्वती ने स्वयम् आकर उसको पति वर छिया, उससे इसका "तंगु" नामी पुत्र हुआ ॥

तंसुं सरस्वती पुत्रं मितनारादजीजनत् । ईलिनं जनयामास कालिङ्ग्यां तंसुरात्मजम् ॥८६॥

अर्थ-मितनार का सरस्यती से "तं हु " और तं हु का "किल दू" वंश की पुत्री से "ईलिन" नामी पुत्र उत्पन्न हुआ। इंलिनस्तु रथन्तर्या दुष्यन्ताद्यान् पञ्च पुत्रान् जी जनत्। दुष्यन्तः खलु विश्वामित्रदुदितरं शकुन्तलां नामो-पयेभे तस्यामस्य जज्ञे भरतः। भरतः खलु कारोयीमुपयेभे सार्वसेनी सुनन्दां नाम तस्यामस्य जज्ञे सुमन्यः।। ६७॥

अर्थ-ईलिन के "श्यन्तरी" नामक श्ली से "दुण्यन्त" आदि पांच पुत्र उत्तन हुए, दुण्यन्त ने विश्वाभित्रकी कन्या "शकुन्तला" से वित्राह किया और उससे "भरत" नामक पुत्र उत्पन्न हुआ "भरत" ने "काशेय" वंश की कन्या "सर्वसेन" की पुत्री "सुतन्दा" से विवाह किया और उससे इसका पुत्र "भुमन्यु"

उत्पन्न हुआ ॥

भुमन्युः खलु दाशार्हीमुपयेमे विजयां नाम तस्या-

महाभारत

मस्य जज्ञे सुहोत्रः । सुहोत्रः खिल्वध्वाकु कन्या मुपयेमे सुवर्णा नाम तस्यामस्य जज्ञे हस्ती । य इदं हास्तिनपुरंस्थापयामास एतदस्य हास्तिनपुरत्त्वस्।८८।

अर्थ-भुमन्यु ने "दाशाह" वंश की कन्या "विजया" से विवाह किया जिससे " सुहोत्र" नामी पुत्र उत्पन्न हुआ, सुहोत्र ने "इक्ष्वाकु" की कन्या "सुवर्णा" से विवाह किया, उससे इसका "हस्ती" नाम पुत्र हुआ, जिसने इस " हस्तिनापुर" को वसाया और इसी कारण से इसनगर का नाम "हस्तिनापुर" हुआ॥

हस्ती खळु त्रैगर्त्तीमुपयेमे यशोधरां नाम तस्या-मस्य जज्ञे विकुण्डनो नाम । विकुण्डनः खळु दाशाहींमुपयेमे सुदेवां नाम तस्यामस्य जज्ञे अजमीढोनाम।अजमीढस्य वंशकरःसंवरणः॥८९॥

अर्थ-हस्ती ने "त्रिगर्त" वंश की "यगोधरा" नामक कन्या से विवाह किया और उससे इसका पुत्र "विकुण्ठन" नामी हुआ, विकुण्ठन ने "दाशाई" वंश की "सुदेवा" नामक कन्या से विवाह किया, उससे इसका पुत्र "अजमीद" हुआ और अजमीद का वंशधर पुत्र "संवरण" हुआ ॥

मंवरणः खलु वैवस्वतीं तपतीं नामोपयेमे तस्यामस्य जज्ञे करुः । करुः खलुदाशाहीं मुपयेमे शुभाङ्गीं नाम तस्यामस्य जज्ञे विदूरथः । विदूरथस्तु माधवी मुपयेमे संप्रियां नाम तस्यामस्य जज्ञे अनक्वा नाम ॥९२॥ अर्थ-संवरण ने विवस्तान वंश की तपती नामक कन्या से विवाह किया और उससे इस्ा पुत्र कुरु हुआ, कुरु ने दाशाई वंश की शुभाड़ी कन्या से विवाह किया और उससे विदृरथ नामी पुत्र उत्पन्न हुआ, विदृरथ ने मधुवंश की संप्रिया नामी कन्या से विवाह किया और उससे अनद्या नामी पुत्र जन्मा ॥

अनश्वा खलु मागधीमुपयेमे अमृतां नाम तस्या-मस्य जज्ञे परीक्षित् । परीक्षित् खलु वाहुदामुपयेमे सुयशां नाम तस्यामस्य जज्ञे भीमसेनः । भीमसेनः खलु कैकेयीमुपयेमे कुमारीं नाम तस्यामस्य जज्ञे प्रतिश्रवा नाम ॥९१॥

अर्थ-अनश्वा ने मगधवंश की अमृता नामक कन्या से विवाह किया और उससे परीक्षित नामक पुत्र हुआ, परिक्षित ने बहुद वंश की सुयशा नामक कन्या से विवाह किया और उससे भीमसेन नाभी पुत्र हुआ, भीमसेन ने केकय वंश की कुमारी से विवाह किया और उससे मतिश्रवा नामी पुत्र उत्पन्न हुआ।

प्रतिश्रवसः प्रतीपः, प्रतीपः खलु शैन्यामुपयेमे सन्तनं नाम तस्यां प्रत्रानुत्पादयामास देवापिं शन्तनं वाद्दलीकं चेति । देवापिः खलु बालएवारण्यं विवेश शन्तनुस्तु महीपालो बभूव ॥९२॥

अर्थ-प्रतिश्रवा का पुत्र प्रतीप हुआ, प्रतीप ने शिवि वंश की सुनन्दा नामक कन्या से विवाह किया और उससे देवापि, शन्तनु,तथा वाह्लीक यह तीन पुत्र, हुए देवापि के वाल्यावस्था में ही तप करने के छिये वन को चले जाने के कारण शन्तन राजा हुआ।। शन्तमुः खलु गंगां भागीरथी मुपये मे तस्यामस्यजज्ञे देवव्रतो नाम यमाहुर्भीष्मिमिति । भीष्मः खलु पितुः प्रियचिकी पैया सत्यवतीं नाम मातरमुद्वाहयत् यामाहुर्गन्धकाली मिति ॥ ९३॥

अर्थ-शन्तनु ने "भगीरथ" वंश की "गङ्गा" नामक कन्या से विवाह किया और उससे इसका पुत्र "देवव्रत" हुआ, जिसको "भीष्म" भी कहते हैं, भीष्म ने पिता के हित की इच्छा से "सत्यवती" नाम कन्या से पिता का दूसरा विवाह कराया, जिसको "गन्थकाछी" भी कहते हैं॥

तस्यां पूर्व कानीनो गर्भः पराशराद् द्वैपायनोऽभवत् । तस्यामेव शन्तनोरन्यो द्वौ पुत्रौ वभूवतुः विचित्र-वीर्यश्चित्राङ्गदश्च, तयोरप्राप्तयौवन एव चित्राङ्गदो गन्धर्वेण हतः, विचित्रवर्यिस्तु राजासीत् ॥९४॥

अर्थ-उससे पहले इसी में प्राश्तर से पुत्र उत्पन्न हुआ जिसको द्वैपायन=क्यास नाम से पुकारते हैं, उसी से शन्तनु के "विचित्रवीर्य" और "चित्राङ्गद" दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें से चित्राङ्गद तो युवावस्था में ही युद्ध में गन्धर्व से मारा गया और विचित्रवीर्य राजा हुआ ॥

विचित्रवीर्यः खलु कौशल्यात्मजे अम्बिकाम्बालिके काशिराजदुहितरादुपयेमे । विचित्रवीर्यस्त्वनपत्य एव विदेहत्वं प्राप्तः, ततः सत्यवत्यचिन्तयन्मा

दौष्यन्तो वंश उच्छेदं ब्रजेदिति ॥९५॥

अर्थ-विचित्रवीर्य ने "कौशल्या" से उत्पन्न हुई "काशिराज" की "अम्बिका" "अम्बालिका" नामी दो कन्याओं से विवाह किया, परन्तु विचित्रवीर्य विना सन्तान के ही मृत्यु को शाप्त हुआ, इस कारण माता सत्यवती चिन्ता करने छगी कि कहीं दुष्यन्त का वंश नष्ट न होजाय॥

सा द्वेपायनमृषिं चिन्तयामास । स तस्याः पुरतः स्थितः किंकरवाणीति । सा तमुवाच भ्राता तवान-पत्य एव स्वर्यातो विचित्रवीर्यः । साध्वपत्यं तस्यो-त्यादयेति ॥९६॥

अर्थ-उसने ऋषि व्यास को बुलाया और वह उसके सन्मुख उपस्थित होकर बोले कि कहो क्या आज्ञा है? तब वह उनसे वोली कि तुम्हारा भाई "विचित्रवीर्य" विना सन्तान के स्वर्गवासी होगया है अब तुम उसके लिये उत्तम सन्तान उत्पन्न करो ॥

स तथेत्युक्त्वा त्रीन् पुत्रानुत्पादयामास, धृतराष्ट्रं पाण्डं विदुरं चेति । तत्र धृतराष्ट्रस्य राज्ञः पुत्रशतं वभूवगांधार्यादिषु* तेषांधृतराष्ट्रस्य पुत्राणां चत्वारः

^{*} कई प्रन्थों में "गान्धार्या" पाठ देख पडता है, जिसके अर्थ यह हैं कि एकमात्र गान्धारी नामक स्त्री में १०० पुत्र उत्पन्न हुए, परन्तु एक स्त्री में सी पुत्र होना असम्भय होने से "गान्धार्यादिषु" पाठ ही ठीक है अर्थात् धृतराष्ट्र के गान्धारी आहि स्त्रियों से १०० पुत्र जन्मे, जिनमें से दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण और चित्रेसन, यह चार गान्धारी से और अन्य ९६ और २ स्त्रियों से उत्पन्न हुए, जिनमें से कई पुत्र नियोग द्वारा उत्पन्न हुए और वह भी प्रदर्शनी अर्थात् बही होने से गान्धारों के ही कहलाये, ऐसा इतिहास से विदित होता है ॥

प्रधाना बभूवः । दुर्योधनो दुःशासनो विकर्णश्चि-त्रसेनश्चेति ॥९७॥

अर्थ-व्यासजी ने "बहुत अच्छा" कहकर धृतराष्ट्र, पाण्डु और "विहुर" यह तीन पुत्र उत्पन्न किये, इनमें से राजा धृतराष्ट्र के सी पुत्र गान्धारी आदि स्त्रियों से उत्पन्न हुए जिनमें "दुर्योधन" "दुःशासन" "विकर्ण" और "चित्रसन" यह चार मुख्य थे॥ पाण्डोस्तु दे भार्ये बभ्वतुः कुन्ती पृथा नाम, माद्री चेत्युभे स्त्रीरत्ने। अथ पाण्डुः शृणोधि नानपत्यस्य लोकाः सन्तीति, सा त्वं मदर्थे पुत्रानुत्पादयेतिकुन्ती-मुवाच, सा तथोक्ता पुत्रानुत्पादयामास धर्माद्युधिष्ठिरं मारुताद्वीमसेनं शकादर्जुनीमित्न ॥९८॥

अर्थ-पाण्ड की दो भार्या थीं, एक का नाम "कुन्ती" जिसका दूसरा नाम पृथा भी था, और दूसरी "माद्री" ये दोनों स्त्रियें रत्नरूपा थीं, कालान्तर में पाण्ड ने कुन्ती से कहा कि मैं सुनता हूं कि सन्तान रहित के लिये कोई गति नहीं, सो द मेरे लिये पुत्र उत्पन्न कर, ऐसी आज्ञा पाई हुई कुन्ती ने धर्म से "युधिष्ठिर" मारुत से "भीमसेन" और शक्र से "अर्जुन" यहतीन पुत्र उत्पन्न कराये॥

तां संहष्टः पाण्डरुवाच, इयं ते सपत्न्यनपत्या साध्व-स्या अपत्यमुत्पाद्यतामिति । माद्र्यामश्विभ्यां नकुल सहदेवादुत्पादितौ ॥९९॥

अर्थ-तव पाण्ड पसन्न होकर कुन्ती से बोले कि यह तुम्हारी सौत सन्तान रहित है, इसके भी सन्तान उत्पन्न कराओ, पश्चात माद्री के दो अध्वयों=अभिनी तथा कुमार से नकुल और सहदेव दो पुत्र इत्पन्न कराये॥

मादीं खत्वलड्कृतां दृष्ट्वा पाण्डुभार्व चके स तां स्पृ-ष्ट्रैव विदेहत्वं प्राप्तः । तत्रैनं चितामिस्थं मादी सम-न्वारुरोह, उवाच कुन्तीं यमयोरप्रमत्तया त्वया भवितव्यम् इति ॥१००॥

अर्थ-एक दिन माद्री को भूषणादि से अलंकत देखकर पाण्ड को काम उत्पन्न हो आया और वह उसका स्पर्श करते ही मृत्यु को माप्त होगया, तब वन में माद्री उसको चिता पर रखकर आप भी चढ़ गई, और कुन्ती से बोली कि तुमनकुल और सहदेव का सावधानी से पालन करना॥

ततस्ते पाण्डवाः कन्त्या सहिता हस्तिनपुरमानीय तापसिभीष्मस्य विदुरस्य च निवेदिताः। तांस्तत्र निव-सतः पाण्डवाच् बाल्यात्प्रभृति दुर्योधनो नामर्षयत्। पापाचारो राक्षसीं बुद्धिमाश्रितोऽनेकेरुपायेरुद्धर्तुं च व्यवसितोभावित्वाचार्थस्यनशकितास्तेसमुद्धर्तुम्।१०१

अर्थ-तव तपिस्वयों ने पांचो पाण्डवों को कुन्ती समेत बन से हिस्तिनापुर में लाकर भीष्म और विदुर्गा के सपुर्द करिंद्या और वह पाण्डव वहां निवास करने लगे, पर दुर्योधन बचपन से ही इनको देखकर जलता था, और पापाचारी राक्षती बुद्धि धारण किये दुए उनके नाश के अनेक उपाय करने लगा, परन्तु वह बात भावी=होनहार न थी, इसलिये उन पाण्डवों का नाश न होसका ॥ ततश्च धृतराष्ट्रेण व्याजेन बारणावतमनुप्रेषिता गमनमरोचयन् । तत्रापि जनुगृहे दग्धुं समारव्या न शकिता विदुरमन्त्रितेनेति ॥१०२॥

अर्थ-इसके पश्चात धृतराष्ट्र ने किसी बहाने से उनको "वारणावत" नगर में भेज दिया और उन्होंने जाना स्त्रीकार कर लिया, वहां भी लाल के घर में पाण्डवों को जला देने का यत्र किया गया, परन्तु विदुरजी की मन्त्रणा से वह न जल सके ॥ तस्माच हिडिम्बमन्तरा हत्वा एकचकां गताः, तस्या- मस्येकचकायां बकं नाम राक्षसं हत्वा पाञ्चालनगर- मिथगताः तत्र द्रौपदीं भार्यामविन्दन् स्वविषयं चाभिजग्मः ॥१०३॥

अर्थ-वहां से निकलकर और वीच में "हिडिम्व" नामी पापाचारी राक्षस को मारकर "एकचका" नगरी में पहुंचे, और वहां भी "बक" नामी राक्षस को मार "पाञ्चाल" नगर में गये, वहां "द्रौपदी" नामक स्त्री को मात कर अर्थने देश को लौट आये॥ कुशलिनः पुत्रांश्चीत्पादयामासुः प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरः, स्त्रतसोमं वृकोदरः, श्रुतकीर्त्तिमर्जनः, शतानीकं नकुः, श्रुतकर्माणं सहदेव इति ॥ १०४॥

अर्थ-और वहां कुशलपूर्वक रहते हुए उन पांचो के पांच पुत्र हुए-पुधिष्ठिर का "प्रतिदिन्द्य, भीनतेन का "सुततोम" अर्जुन का "शुतकीर्ति" नकुल का "शतानीक" और सहदेन का "शुतकर्मा"॥ अधिष्ठिरस्तु गोवासनस्य देविकां नाम कन्यां स्वयंवरात् लेभे,तस्यां पुत्रं जनयामास योधियं नाम, भीमसेनोऽपि काश्यां वलन्धरां नामोपयेमे वीर्यशुक्कां तस्यां पुत्रं सर्वगं नामोत्पादयामास॥१०५॥

अर्थ-युधिष्टिर ने शिविवंशी "गोवासन" की "देविका" नामक कन्या को स्वयंवर में माप्त किया और उससे "योधेय" नामी पुत्र हुआ, भीमसेन नेभी काशी में "वलन्धरा"="वीर्यश्रक्ता" नामक कन्या से विवाह किया और उससे "सर्वग" नामी पुत्र हुआ॥ अर्जुनः खल्जु द्वारवतीं गत्वा भिगनीं वासुदेवस्य सुभद्रां भद्रभाषिणीं भार्यामुदावहत्, स्विवषयं चा-भ्याजगाम कुशली, तस्यां पुत्रमाभमन्युमतीवग्रुष-सम्पन्नं दियतं वासुदेवस्याजनयत् ॥१०६॥

अर्थ-अर्जुन ने द्वारकापुरी में जाकर कृष्ण की बाहन पधुरभाषिणी "सुभद्रा" को भार्या वनाकर कुशलपूर्वक अपने देश को लौट आया, उससे "अभिमन्यु" नामी पुत्र हुआ जो सर्व-गुणसंपन्न होने से कृष्णजी का प्यारा था ॥

नकुलस्तु चैद्यां करेशुमतीं नाम भार्यामुदावहत् तस्यां पुत्रं निरामित्रं नामाजनयत्, सहदेवोऽपि माद्रीमेव स्वयंवरे विजयां नामोपयेमे भद्रराजस्य द्युति-मतो द्वहितरं तस्यां पुत्रमजनयत् सुहोत्रं नाम ॥१०७॥

अर्थ-नकुल ने "चेदी" नगरी में "करेणुमती" कन्या को भार्या दनाया और उससे "निरमित्र" नामी पुत्र हुआ, सहदेव ने भी मद्र देश में मद्र के तेजस्यी राजा की पुत्री "विजया" से स्वयंवर विवाह किया और उससे "सुद्दोत्र" नामी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ भीमसेनस्तु पूर्वमेव हिडिम्बायां राक्षसं घटोत्कचं पुत्रमुत्पादयामास, इत्येते एकादश पाण्डवानां पुत्रास्तेषां वंशकरोऽभिमन्युः ॥१०८॥

अर्थ-भीमसेन ने इससे पूर्व ही "हिडिम्वा" नाथी राक्षस की कन्या से "घटोत्कच" नामक पुत्र उत्पन्न किया, इस प्रकार यह ग्यारह पाण्डवों के पुत्र हुए, परन्तु इनमें वंश चलाने वाला पुत्र "अभिमन्यु" हुआ ॥

स विराटस्य दुहितरमुपयेमे उत्तरां नाम, तस्यामस्य परासुर्गभांऽभवत् तमुत्सङ्गनप्रतिजग्राह पृथा नियो-गात् पुरुषोत्तमस्य वासुदेवस्य, षाण्मासिकं गर्भ-महमनं जीवयिष्यामीति ॥१०९॥

अर्थ-अभिमन्य ने विराट की पुत्री "उत्तरा" से विवाह किया, उससे, इसका पुत्र मरा हुआ सा उत्पन्न हुआ, किंतु पुरुषो-त्तम कृष्णजी की इस मातिज्ञा से कि इस छः महीने के गर्भ को मैं जीवित कर दूंगा, कुन्ती ने उस पुत्र को गोद में रख लिया॥ स भगवता वासुदेवेन तेजसा स्वेन जीवितः जीवियत्वा चैनमुवाच परिक्षीणेकुलेजातो भवत्वयं परीक्षित्रामेति। ११०

अर्थ-उसको भगवात कृष्ण ने अपने सामर्थ्य से जीवित करिदया और जीवित करके बोले कि यह कुल के परिक्षय=नाश समय उत्पन्न हुआ है, इसलिये इसका नाम "परीक्षित" रहेगा ॥ परीक्षित् खलु माद्रवतीं नामोपयेमे त्वनमातरं तस्यां भवान् जझे जनमेजयः। भवतो वपुष्टमायां द्वी पुत्री जज्ञाते, शतानीकः शङ्ककर्णश्च, शतानीकस्य वैदेद्यां पुत्र उत्पन्ने। ऽख्वेभयदत्त इति ॥ १११॥

अर्थ-हे जनभेजय! परिक्षित ने "माद्रवती" से विवाह किया जो तुम्हारी माता है, उससे आप "जनभेजय" उत्पन्न हुए, आपके "वपुष्टमा" स्त्री से "शतानीक" और "शंकुकर्ण" यह दो पुत्र जन्मे और शतानीक के "वैदेही " स्त्री से " अञ्चमेधदत्त " पुत्र उत्पन्न हुआ॥

एष प्रोर्वशः पाण्डवानां च कीर्त्तितो धन्यः पुण्यः परम पिवत्रः सततं श्रोतव्यो त्राह्मणैर्नियमवद्भिरनन्तरं क्षत्रियेः, स्वधर्मानिरतेः प्रजापालनतत्परैवेश्येरपि च श्रोतव्योऽधिगम्यश्च तथा श्रुद्देरपि त्रिवर्णशुश्रूष्ट्रभिः श्रह्भानेरिति ॥११२॥

अर्थ-यह "पूरु" का वंश है जो पाण्डवों के सुयश से धन्य, पुण्य और परमपित्र है, नियमधारी ब्राह्मणों, अपने धर्म में तत्पर तथा मजापालन में रत हुए क्षत्रियों और वैश्यों को भी सदा इस वंश का जीवनचरित्र सुनना तथा धारण करना आवश्यक है, और तीनो वणों की सेवा करने वाले श्रद्धालु श्र्द्रों को भी इसका अवश्य श्रवण करना चाहिये॥

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः

32

महाभारत

अथ पंचमोऽध्यायः प्रारम्यते

THE THE THE

वैशम्पायन उवाच

स राजा शान्तनुधीमान् देवराजर्षिसत्कृतः । धर्मात्मा सर्वलोकेषु सत्यवागिति विश्वतः ॥ १॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि वह मिसद्ध राजा शान्तन बुद्धिमान् देविष और राजिपयों से सत्कार योग्य, सब लोकों में धर्मात्मा और सत्यवादी मिसद्ध था ।।

दमा दानं क्षमा बुद्धिई िश्तिस्तेज उत्तमम्। नित्यान्यासन्महासत्त्वे शान्तनी पुरुषर्षमे॥ २॥ एवं स ग्रणसम्पन्नो धर्मार्थकुशलो नृपः। आसीद्धरतवंशस्य गोप्ता सर्वजनस्य च॥ ३॥

अर्थ-उस सिंह पुरुप महावली शान्तनु में दमन, दान, क्षमा, बुद्धि, लज्जा, धैर्थ्य और उत्तम तेज, यह गुण सदा रहते थे इस मकार वह सर्वगुणसम्पन्न, धर्म तथा अर्थ में चतुर और भरतवंश सारी मजाओं का संरक्षक राजा हुआ।

तस्य कीर्तिमतो वृत्तमवेक्य सततं नराः । धर्म एव परः कामादर्थाचेति व्यवस्थिताः ॥४॥ वर्तमानं हि धर्भेषु सर्वधर्मभृतां वरम् । तं महीपा महीपालं राजराज्येऽभ्यषेचयन् ॥५॥

अर्थ-उस यशस्त्री राजा के निरन्तर सदाचार को देखकर लोग इस बात पर स्थिर होगये थे कि अर्थ और काम से धर्म ही बहुकर है, तब धर्मों में हह और सब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ शान्तनु राजा को अन्य राजाओं ने राजराज्य=सम्राट्का राज्य तिस्क देदिया॥

म हास्तिनपुरे रम्ये कुरूणां पुरभेदने । वसन् सागरपर्यन्तामन्वशासद्वसुन्धराम् ॥६॥ वधः पशुवराहाणां तथेव मृगपक्षिणाम् । शान्तनौ पृथिवीपाले नावर्त्तत तथा नृप ॥७॥

अर्थ-वह राजा "हास्तनापुर" नामी कौरवों के सुन्दर नगर में रहकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का शासन करने लगा,हे राजन ! शा-नतनु के शासनकाल में पशु, वराह, हिरण और पाक्षियों का वध नहीं होता था ॥

स समाः षोडशाष्टी च चतस्रोऽष्टी तथापराः । रातिमप्राप्तवन् स्त्रीषु वभूव वनगोचरः ॥८॥ तथारूपस्तथाचारस्तथावृत्तस्तथाश्रुतः । गाङ्गेयस्तस्य पुत्रोऽभून्नाम्ना देवब्रतो वसुः ॥९॥

अर्थ-वह राजा छत्तीस वर्ष तक खियों के विषयभोग से पृथक् रहकर वन में वास करता रहा, इतके पश्चाद "गङ्गा" नामक खी से उसके "देवव्रत" नामी पुत्र हुआ, जिसका रूप, आचरण, वर्ताव और विद्या पिता के समान थी।

सर्वास्त्रेषु स निष्णातः पार्थिवेष्वितरेषु च । महाबलो महासत्त्वो महावीर्यो महारथः ॥१०॥ स कदाचिन्मृंग विद्धवा गङ्गामनुसरन्नदीम् । भागीरथीमल्पजलां शान्तनुईष्ट्यान्नृपः ॥११॥ 2,8

महाभारत

अर्थ-वह देवव्रत सब अख्रशस्त्रों के चलाने में निपुण,महावली, प्रभावशाली, महापराक्रमी और महायोधा था, राजा शान्तनु एक समय शिकार खेलते हुए गङ्गा नदी के समीप जारहे थे कि उसमें उन्होंने बहुत थोड़ा जल देखा॥

तां दृष्वा चिन्तयामास शान्तनुः पुरुषर्भ । स्यन्दते किंन्वियं नाद्य सिर्च्छेष्ठा यथा पुरा ॥१२॥ ततो निमित्तमन्विच्छन्ददर्श स महामनाः । कुमारं रूपसम्पन्नं वृहन्तं चारुद्शनम् । कृतस्नां गंगां समावृत्य शरैस्तीक्ष्णेरवास्थितम् ॥१३॥

अर्थ-पुरुपों में श्रेष्ठ राजाशान्तनु उसको देखकर सोचने लगे कि आज यह श्रेष्ठ नदी पहले की भांति क्यों नही वहती ? तव वह उदार राजा इसके कारण की खोज करता हुआ क्या देखता है कि एक राजकुमार जो परम रूपवान, छुन्दर आकृति तथा बड़े डीलडौल वाला अपने तीक्षण वाणों द्वारा सारी गङ्गा नदी को राके खड़ा है।।

तां शरेराचितां दृष्या नदीं गंगां तदान्तके। अभवद् विास्मितो राजा दृष्या कमीतिमानुषम् ॥१४॥ जातमानं प्रां दृष्या तं पुत्रं शान्तनुस्तदा। सर्वकामसमृद्धवर्थं मेने चात्मानमात्मना ॥१५॥

अर्थ-उस कुमार के समीप गङ्गा नदी को बाणों से घिरी हुई देख और इस कार्य्य को अन्य मनुष्यों की शाक्ति से बाहर देखकर राजा बड़ा अचिम्भित हुआ, उस समय शान्तन राजा पहले ही पहल उस बालक पुत्र को ऐसा पराक्रमी देखकर अन्तः करण मं अपने आप को सब कामनाओं के पूर्ण करने में समर्थ समझने छगा॥ पौरवेषु ततः पुत्रं राज्यार्थमभयप्रदम् । गुणवन्तं महात्मानं यौवराज्येऽभ्यपेचयत् ॥१६॥ पौरवाञ्छान्तनोः पुत्रः पितरं च महायशाः । राष्ट्रं च रञ्जयामास वृत्तेन भरतर्षभ ॥१७॥

अर्थ-हे राजन ! तव राजा शान्तनु ने अपने अभयदाता, गुणवान महात्मा पुत्र को पुरुवंशी राजाओं के राज्य के लिये युषराज्य का अभिषेक दे दिया और शान्तनु के उस महाकीर्त्ति पुत्र ने पुरुवंशी लोगों, अपने पिता और सारे देश को अपने सदाचार से परम आह्मदित करिदया ॥

स तथा सह पुत्रेण रममाणो महीपतिः । वर्त्तयामास वर्षाणि चत्वार्यामतविक्रमः ॥१८॥ स कदाचिद् वनं यातो यमुनामभितो नदीम् । स ददर्श तदा कन्यां दाशानां देवरूपिणीम् ॥१९॥

अर्थ-महा पराक्रमी राजा शान्तनु ने इस प्रकार अपने पुत्र के साथ आनन्द से रहते हुए चार वर्ध न्यतीत किये, एक समय राजा वन में यमुना नदी के इधर उधर घूम रहा था कि उसने देवताओं के समान रूपवती एक दाशकन्या को देखा ॥ तामपृच्छत् स दृष्टेवेव कन्यामसितलोचनाम्। कस्य त्वमासि का चासि किंच भीरु चिकीर्पसि ॥२०॥ साब्रवीद् दाशकन्यास्मि धर्मार्थं वाह्ये तिरम् । पितुर्नियोगाद् भदं ते दाशराज्ञो महात्मनः ॥२१॥ अर्थ-तव राजा देखते ही उस श्याम नेत्रों वाली कन्या से पूछने लगे कि हे लज्जावती! त कौन है! किसकी पुत्री है! और क्या काम करती है! वह कन्या बोली कि तुम्हारा कल्याण हो, में दाश=मल्लाह की पुत्री हूं और अपने पिता महात्मा दाशराज की आज्ञा से धर्मार्थ नाव चलाती हूं॥

रूपमाध्यगन्धेस्तां संयुक्तां देवरूपिणीस् । समीक्ष्य राजा दाशेयीं कामयामास शान्तनुः ॥२२॥ स गत्वा पितरं तस्या वरयामास तां तदा । पर्यपृच्छत् ततस्तस्याः पितरं चात्मकारणात् ॥२३॥

अर्थ-राजा शान्तनु उस दाशकन्या को रूप, कोमलता तथा सुगन्ध से युक्त और देवताओं के समान रूपवती देखकर कामवश हो अपने निमित्त उस कन्या को वरण करने के लिये उसके पिता के समीप जाकर पूछा ॥

स च तं प्रत्युवाचेदं दाशराजो महीपतिम् । हृदि कामस्तु मे कश्चित् तं निबोध जनेश्वर ॥२४॥ यदीमां धर्मपतीं त्वं मत्तः प्रार्थयसेऽनघ । सत्यवागिस सत्येन समयं कुरु मे ततः ॥२५॥ समयेन प्रद्यां ते कन्यामहामिमां नृप । नहि मे त्वत्समः कश्चिद् वरो जातु भाविष्यित ॥२६॥ अर्थ-तव वह दाशराज राजा शास्त्रसम् होता कि है राज्य।

अर्थ-तव वह दाशराज राजा शान्तन से वोला कि हे राजन!
मेरे हृदय में जो संकल्प है उसको आप पहले समझ लें,हेनिष्पाप!
पदि आपमेरी कन्या को अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिये मुझसे
कहते हो तो तुम सत्यभाषी हो मेरे साथ एक सत्य मितज्ञा करो,

है राजन ! में एक नियम पर आपको अपनी कन्या देसका हं, क्योंकि मेरे लिये तुम्हारे जमा कोई वर नहीं है ॥

श्रुत्वा तव वरं दाश व्यवस्येयमहं तव। दातव्यं चेत्रदास्यामि न त्वदेयं कथंचन ॥२७॥ अस्यां जायेत यः पुत्रः स राजा पृथिवीपते। त्वदूर्श्वमभिषेक्तव्यो नान्यः कश्चन पार्थिव॥२८॥

अर्थ-राजा शान्तनु वोले कि हे दाश! में तुम्हारे वर= संकल्प को सुनकर निर्णय कर सकता हूं, यदि देने योग्य होगा तो दूंगा, यदि न देने योग्य हुआ तो कभी नहीं देसकता, दाश बोला कि हे राजन ! मेरा वर यह है कि इस कन्या का जो पुत्र हो वह तुम्हारे पश्चात राज्य का अधिकारी हो, दूसरा कोई न हो ॥

वैशम्पायन उवाच

नाकामयत तं दातुं वरं दाशाय शान्ततुः । शरीरजेन तीवेण दह्यमानोऽपि भारत ॥२९॥ स चिन्तयन्नेव तदा दाशकन्यां महीपतिः । प्रत्ययाद् हास्तिनपुरं कामोपहतचेतनः ॥३०॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तीत्र कामत्रश होते हुए भी राजा शान्तनु ने दाश को वह वर देना न चाहा, तव वह राजा उस दाशकन्या का चिन्तन करता हुआ काम से पीड़ित हस्तिनापुर को लौट आया ॥

ततः कदाचिच्छोचन्तं शान्तत्तं ध्यानमास्थितम् । पत्रो देवनतोऽभ्येत्य पितरं वाक्यमनवीत् ॥३१॥

सर्वतो भक्तः क्षेमं विधयाः सर्वपार्थिवाः । तत् किमर्थमिहाभीक्ष्णं परिशोचिस दुःखितः ॥३२॥

अर्थ-इसके पश्चात एक समय राजा शान्तमु चिन्ता में बैठे हुए सोच रहे थे कि उनका पुत्र देवब्रत सभीप आकर उनसे कहने लगा कि है पिता! सब ओर से कुशल मंगल और सबराजा आपके अधीन हैं फिर आप किसलिये यहां बैठे हुए दुःखित होकर सदा चिन्तातुर रहते हैं॥

ध्यापिनिव च मां राजन् नाभिभाषित किंचन । न चार्वन विनिर्यासि विवर्णो हरिणः कृशः । व्याधिमिच्छामि ते ज्ञातुं प्रतिकुर्यो हि तत्र वै ॥३३॥

अर्थ-हे राजन ! आप चिन्तातुर हुए २ न तो मुझसे कुछ वातचीत करते हैं, नाही घोड़े पर चढ़कर बाहर निकलते हैं, प्रत्युत आपका रंग पीला पड़ गया और आप दुर्बल होगये हैं, भैं तुम्हारे इस रोग को जानना चाहता हूं, जिसका मैं उपाय करूं॥

एवमुक्तः स पुत्रेण शान्तनुः प्रत्यभाषत । असंशयं ध्यानपरो यथावत्स तथा शृणु ॥३४॥ अपत्यं नस्त्वेमेवैकः कुले महति भारत । शस्त्रनित्यश्च सततं पौरुषे पर्यवस्थितः ॥३५॥

अर्थ-पुत्र के इस प्रकार पूछने पर शान्तन बोछे कि बेटा निःसन्देह मैं चिन्तातुर रहता हूं जिसका कारण सुन, हे भरतकुछ भूषण! हमारे बड़े भारी वंश में तू ही एक पुत्र है और तू शस्त्र-विद्या में तत्पर तथा पुरुषार्थ में सदा दृढ़ रहता है ॥ अनित्यतां च लोकानामनुशोचामि पुत्रक । कथंचित् तव गाङ्गेय विपत्तौ नास्ति नः कुलम् ॥३६॥ असंशयं त्वमेवैकः शतादिष वरः सुतः । नचाप्यहं वृथा भूयो दारान् कर्तिमहोत्सहे । सन्तानस्याविनाशाय कामये भद्रमस्तु ते ॥३०॥

अर्थ-हे पुत्र! जब मैं संसार की अनित्यता को विचारता हूं तो यह चिन्ता उत्पन्न होती है कि देव ऐसा न करे यदि किसी कारणवशात तुम्हारा शरीर न रहा तो हमारा वंश स्थिर न रहेगा, इसमें सन्देह नहीं कि तुम अकेले ही सौ पुत्रों से भी उत्तम हो और नाही मैं वृथा वार २ विवाह करने को उद्यत हूं, परन्तु अपने वंश का नाश न हो इस कारण मैं पुनर्विवाह करना आवश्यक समझबा हूं, पुत्र तुम्हारा अभ्युदय हो॥

अनपत्यन्त्वेकपुत्रीमत्याहुर्धमेवादिनः । अभिहोत्रं त्रयीविद्या सन्तानमपि चाक्षयम् ॥३८॥

अर्थ-धर्म के जानने वाले कहते हैं कि एक पुत्र वाला मनुष्य निःसन्तान के वरावर होता है, अग्निहोत्र, त्रयीविद्या और सन्तान यह अक्षय होने चाहिमें ॥

त्वं च शूरः सदामर्थी शस्त्रनित्यश्च भारत ।
नान्यत्र युद्धात् तस्मात् ते निधनं विद्यते क्वचित् ॥३९॥
सोऽस्मि संशयमापन्नस्त्विप शान्ते कथं भवेत् ।
इति ते कारणं तात दुःषस्योक्तमशेषतः ॥४०॥
अर्थ-हे भरतवंशी प्रत्र! द शूरवीर, तेनस्मी और शस्त्रविद्या

में परम प्रवीण होने के कारण सदा युद्ध में रहता है सो युद्ध से अन्यत्र तुम्हारी मृत्यु नहीं होसक्ती, इसीलिये में चिन्ता प्रस्त हूं कि किसी युद्ध में तुम्हारी मृत्यु होगई तो फिर यह वंश निःसन्तान होजायगा, हे पुत्र ! मैंने अपने दुःखका कारण पूर्णतया तुम से कह दिया है ॥

वैद्याम्पायन उवाच ततस्तत्कारणं राज्ञो ज्ञात्वा सर्वमशेषतः । देवव्रतो महाबुद्धिः प्रज्ञया चान्वचिन्तयत् ॥४१॥ अभ्यगच्छत् तदेवाशु वृद्धामात्यं पितुर्हितम्। तमपृच्छत् तदाभ्येत्य पितुस्तच्छोककारणम् ॥४२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे जनमेजय! तब महाबुद्धिमान देवत्रत राजा की चिन्ता के कारण को पूर्णक्ष्य से समझकर अपनी बुद्धि द्वारा विचारने लगा, और उसी समय पिता के हितकारी वृद्ध मंत्री के समीप शीघ्र पहुंचा और उनसे मिलकर पिता के शोक का कारण पूछने लगा।

तस्मै स कुरुमुख्याय यथावत् परिषृच्छते । वरं शशंस कन्यां तामुद्दिश्य भरतर्षभ ॥ ४३/॥ ततो देवत्रतो रुद्धैः क्षत्रियैः सहितस्तदा । अभिगम्य दाशराजं कन्यां वत्रे पितुः स्वयम् ॥४४॥

अर्थ—हे राजन्! कुरुवंश भूषण देवव्रत के ऐसा पूछते पर मन्त्री ने उस दाशकन्या को लक्ष्य करके राजा की कामना बतलाई, तब देवव्रत हुद्ध क्षत्रियों को साथ लेकर दाशराज के पास गया और अपने पिता के लिये स्थयं उस कन्या को दाशराज से मानने लगा। तं दाशः प्रतिजग्राह विधिवत् प्रतिप्रज्य च । अत्रविधिनमासीनं राजसंसदि भारत ॥ ४५॥ त्वभेव नाथः पर्याप्तः शान्तनो भरतर्षभ । पुत्रः शस्त्रभृतां श्रेष्ठः किं तु वक्ष्यामि ते वचः ॥४६॥

अर्थ-तब दाशराज उनको अपने घर लेगया और उनका विधिपूर्वक सत्कार करके राजसभा में गया, और वहां बैठे हुए सभासदों के
सन्मुख देवव्रत से बोला कि हे भरतकुलश्रेष्ठ ! तुम महाराज शान्तनु
के पूर्ण पराक्रमी और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ पुत्र हो सो भैं आपसे यह
रहस्य कहता हूं कि :-

अपत्यं चैतदार्यस्य यो युष्माकं समो युषेः। यस्य शुक्रात् सत्यवती सम्भूता वरवर्णिनी ॥४०॥ तेन मे बहुशस्तात पिता ते परिकीर्त्तितः। अर्हः सत्यवतीं वोढं धर्मज्ञः स नराधिपः॥ ४८॥

अर्थ-मेरी यह सुन्दर कन्या "सत्यवती" जिसकी सन्तान है अर्थात जिसके वीर्य से उत्पन्न हुई है वह आर्थ्य गुणों में आप छोगों के ही समान है, उसने मेरे आगे तुम्हारे पिता की बहुत वार प्रशंसा की और कहा था कि वह धर्मज्ञ राजा सत्यवती से विवाह करने योग्य है ॥

कन्यापितृत्वात् किंचित् तु वक्ष्यामि त्वां नराधिप । बलवत् सपत्नतामत्र दोषं पश्यामि केवलम् ॥४९॥ एतावानत्र दोषो हि नान्यः कश्चन पार्थिव । एतजानीहि भद्रं ते दानादाने परंतप ॥ ५०॥

महाभारत

अर्थ-हे राजन ! कन्या का पिता होने के कारण मैं भी आपसे कुछ कहता हूं, इस विवाह संबन्ध में केवल "बलवान सौतेले भाई का होना" एक दोप समझता हूं और कुछ नहीं, हे शञ्च सन्ताप-कारिन ! कन्या के देने और न देने में यह रहस्य समझ लें, आपका कल्याण हो ॥

वैशम्पायन उवाच
एवमुक्तस्तु गाङ्गेयस्तद्युक्तं प्रत्यभाषत ।
शृण्वतां भूमिपालानां पितुर्श्याय भारतः ॥ ५१ ॥
इदं मे व्रतमादत्स्व सत्यं सत्यवतांवर ।
नैवजातो न वा जात ईदृशं वक्तुमुत्सहेत् ॥ ५२ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन !दाशराज के ऐसा कहने पर देवव्रत सब श्रोता राजाओं के मध्य पिता के प्रयोजनार्थ इस प्रकार जिचत बचन बोला कि हे सत्यवादियों में श्रेष्ठ! आप मेरे इस सत्य प्रण को सुनें, अब तक ऐसा कोई मनुष्य न हुआ न होगा जो ऐसी प्रतिक्रा करने का जत्साह करे।।

एवमेतत् करिष्यामि यथा त्वमनुभाषसे । योऽस्यां जनिष्यते पुत्रः सनोराजा भविष्यति ॥५३॥ इत्युक्तः पुनरेनाथ तं दाशः प्रत्यभाषत । चिकीर्षेर्द्धष्करं कर्म राज्यार्थे भरतर्षभ ॥ ५४॥

अर्थ-जैसा तुम कहते हो वैसा ही करुंगा अर्थात इस कन्या से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही हमारा राजा होगा, हे राजन ! ऐसी मितका करने पर भी वह दाश राज्य के लिये कठोर कर्म करने की इच्छा से पुनः देवत्रत से इस मकार वोला कि :यत्त्वया सत्यवत्यर्थे सत्यधर्मपरायण ।
राजमध्ये प्रतिज्ञातमन्तरूपं तवैव तत् ॥ ५५ ॥
नान्यथा तन्महाबाहो संशयोऽत्र न कश्चन ।
तवापत्यं भवेद्यत्तु तत्र नः संशयो महान् ॥ ५६ ॥

अर्थ—हे सत्यथर्म में तत्पर महावाह ! आपने जो राजा छोगों के बीच सत्यवती के हितार्थ प्रण किया है सो तुम्हारे योग्य ही है, वह कभी अन्यथा न होगा इसमें संशय नहीं, परन्तु तुम्हारा जो बलवान पुत्र होगा उससे हमें वड़ा संशय है अर्थाद सम्भव है कि वह मेरी कन्या के पुत्र से राज्य छीन है ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्यैतन्यतमाज्ञाय सत्यधर्मपरायणः । प्रत्यज्ञानात् तदा राजन् पितुः प्रियचिकीर्षया॥५७॥ दाशराज निबोधेदं वचनं मे नृपोत्तम । शृखतां भूमिपालानां यद्ब्रवीमि पितुः कृते ॥५८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उस दाशराज का ऐसा विचार सुनकर सत्यधर्म में दृढ़ देवत्रत पिता के हित की इच्छा से यह मितशा करने की किटवद्ध हुआ कि हे दाशनरेश ! इन सबश्रोता राजाओं के मध्य में अपने पिता के हित की कामना से जो मण करता हूं वह आप सुनें :—

राज्यं तावत् पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः । अपत्यहेतोरिप च करिष्येऽद्य विानिश्चयम् । अद्यप्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति ॥५९॥

महाभारत

अर्थ-हे राजाओ! राज्य तो मैंने पहले ही त्याग दिया है, अब सन्तान के लिये भी मैं यह दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूं कि हे दाश! मैं आज से सदा ब्रह्मचारी रहुंगा॥

तस्य तद्धचनं श्रुत्वा संप्रहृष्ट तन् रुहः। ददानीत्येव तं दाशो धर्मात्मा प्रत्यभाषत ॥६०॥ ततः सः पितुर्र्थाय तामुवाच यशस्विनीम्। अधिरोह रथं मातर्गच्छावः स्वगृहानिति ॥६१॥

अर्थ-देवव्रत की यह मितज्ञा सुनकर, धर्मात्मा दाशराज हर्भ से रोमांचित हुआ २ बोला कि मैं अपनी कन्या महाराज को दानकरता हूं, तब देवव्रत पिता के लिये उस यशस्त्रिनी सत्यवती से बोला कि है मात! चलिये अब रथ पर चढ़कर अपने घर चलें॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता तु भीष्मस्तां रथमारोप्य भाविनीम् । आगम्य हास्तिनपुरं शान्तनोः संन्यवेदयत् ॥६२॥ तस्य तद्दुष्करं कर्म प्रशशंसुर्नराधिपाः । समेताश्च पृथक् चैव भीष्मोऽयमिति चाब्रुवन् ॥६३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हेराजन! उस महाकाठिन कम करने वाले "देवव्रत" ने ऐसा कहकर और सत्यवती को रथ पर विठा हिस्तनापुर में पहुंच महाराजा शान्तन की सेवा में अर्पण किया, तब सब राजा लोग उसके इस महाकिटन कम की प्रशंसा करने लगे, और सब मिलकर तथा प्रत्येक मनुष्य, देवव्रत को "भीष्म" कम करने वाला पुकारने लगे अर्थात उसी समय से उनका नाम देवव्रत से "सीष्म" हुआ ॥

इति पंचमोऽध्यायः समाप्तः

आदिपर्व-षष्टाध्याय

64

अथ षष्ठोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा शान्तनुर्नृप । तां कन्यां रूपसम्पन्नां स्वगृहे संन्यवेशयत् ॥१॥ ततः शान्तनवो धीमान् सत्यवत्यामजायत । वीरिश्चत्राङ्गदो नाम वीर्यवान् पुरुषेश्वरः ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन, तव विवाह होने के पश्चाद राजा शान्तनु ने उस रूपवती कन्या को अपने घर में प्राविष्ठ किया, तदनन्तर सत्यवती से राजा शान्तनु का बुद्धिमान तथा पराक्रमी "चित्राङ्गद" नामी पुत्र उत्पन्न हुआ ॥

अथापरं महेष्वासं सत्यवत्यां सुतं प्रभः । विचित्रवीर्यं राजानं जनयामास वीर्यवान् ॥३॥ अप्राप्तवति बस्मिंस्तु यौवनं पुरुष्पेभे । स राजा शान्तवुर्धीमान् कालधर्मसुपेयिवान् ॥४॥

अर्थ-इसके पश्चात पराक्रमी राजा शान्तनु का सत्यवती से दूसरा "विचित्रवीर्य" नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो वाणविद्या में षड़ा निपुण था, परन्तु उस पुरुविसंह पुत्र के युवा होने से पहले ही वह बुद्धिमान राजा शान्तनु मृत्यु को माप्त होगया॥ स्वर्गते शान्तनौ भीष्मश्चित्राङ्गदमरिन्दमम्। स्थापयामास वै राज्ये सत्यवत्या मते स्थितः॥ ।।।।।

स तु चित्राङ्गदः शौर्यात् सर्वाश्चिक्षेप पार्थिवान् । मनुष्यं नहि मेने स कञ्चित् सहशमात्मनः ॥६॥

अर्थ-शान्तनु के स्वर्गवास होजाने पर भीष्मजी ने सत्य-वती की सम्मात से शत्रुओं के दमन करने वाले "चित्राङ्गद" का राज्याभिषेक किया, तब उसने अपने बल से सब शत्रु राजाओं को पगजय कर दिया, वह किसी को भी अपने सदृश बलवान् नहीं समझता था॥

गन्धर्वराजो वलवांस्तुत्यनामाभ्ययात्तदा । तयो स्तेनास्य समहद् युद्धं कुरुक्षेत्रे बभूव ह ॥७॥ तयोर्बलवतोस्तत्र गन्धर्वकरमुख्ययोः । नद्यास्तीरे सरस्वत्याः समास्तिस्रोऽभवद्रणः ॥८॥

अर्थ-तव इसके ही समान नाम तथा गुण कर्मी वाला "गन्धर्व"
जाति का बलवान राजा उस पर चढ़ाई करके आया और
उसके साथ कुरुक्षेत्र के मैदान में इसकी भारी लड़ाई हुई, गन्धर्व
राज और कुरुराज, इन दोनों महावली राजाओं का सरस्वती नदी
के किनारे तीन वर्ष तक युद्ध होता रहा ॥

तिसम् विमर्दे तुमुले शस्त्रवर्षसमाकुले ।
मायाधिकोऽवधीद्वीरं गन्धर्वः कुरुसत्तमम् ॥९॥
तिसम् पुरुषशार्द्दले निहते भूरितेजासि ।
विचित्रवीर्यं च तदा बालमप्राप्तयोवनम् ।
कुरुराज्ये महावाहुरभ्याषिञ्चत्तदन्तरम् ॥१०॥
अर्थ-उस शस्तों की वर्षा से पूर्ण भारी संग्राम में महाछली

गन्धर्त ने वीर कुरुराज "चित्राङ्गद" को मार दिया, तत्र उस महाप्रतापी सिंहपुरुष के मरणानन्तर महावाहु "भीष्म" ने बालक "विचित्रवीर्य" को जो अभी जवान नहीं हुआ था कौरवों के राज्य पर विठाया॥

विचित्रवीर्यः स तदा भीष्मस्य वचने स्थितः । अन्वशासन्महाराज पितृपैतामहं पदम् ॥११॥ स धर्मशास्त्रकुशलं भीष्मं शान्तनवं नृपः । पूजयामास धर्मण स चैनं प्रत्यपालयत् ॥१२॥

अर्थ-हे राजन ! तव विचित्रवीर्य भीष्मजी की आज्ञा में रह-कर अपने पिता-पितामहों के राज्यपद का शासन करने लगा, वह धर्मशास्त्र में निपुण शान्तनु के पुत्र भीष्मजी की धर्मपूर्वक सेवा करता रहा, और भीष्मजी भी इसकी सम्यक् रक्षा करते रहे ॥ वैद्याम्पायन उवाच

हते चित्राङ्गदे भीष्मो बाल्ये आतिर कौरव । पालयामास तदाज्यं सत्यवत्या मते स्थितः ॥१३॥ संप्राप्तयोवनं दृष्ट्वा आतरं धीमतां वरः । भीष्मो विचित्रवर्धिस्य विवाहायाकरोन्मातिम् ॥१४॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे कुरुवंशी राजन ! चित्राङ्गद के मरने पश्चात जब तक भाई "विचित्रवीर्य" वालक रहा तब तक सत्यवती की सम्मति से भीष्मजी ने राज्य की रक्षा की, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भीष्मजी भाई विचित्रवीर्य को जवान हुआ देखकर उसके विवाह का विचार करने लगे॥

अथ काशियतेभींष्मः कन्यास्तिस्त्रोऽपसरोऽपमाः।

शुश्राव सहिता राजन् वृण्वाना वे स्वयंवरम् ॥१५॥ ततः स रिथनां श्रेष्ठो रथेनेकैन शत्रुजित् । जगामानुमते मातुः पुरीं वाराणासीं प्रभुः ॥१६॥

अर्थ-हे राजन ! पश्चात भीष्मजी ने सुना कि काशीराज की अप्तराओं के समान रूपवती तीन कन्यायें एक साथ ही स्वयंवर विवाह करने वाली हैं, तब वह महायोद्धा, शत्रुविजयी, प्रभावशाली भीष्म माता की सम्मित से अकेला ही रथपर चढ़ काशी नगरी में गया।

तत्र राज्ञः समुदितान् सर्वतः समुपागतान् । ददर्श कन्यास्तारुचैव भीष्मः शान्तन्तनन्दनः ॥१७॥ कीर्त्तमानेषु राज्ञां तु तदा नामसु सर्वशः ।

भीष्मस्तदा स्वयं कन्या वरयामास ताः प्रभुः ॥१८॥ अर्थ-वहां शान्तनु के पुत्र भीष्मजी ने सव ओर से इकहे हुए राजाओं और उन तीनों कन्याओं को देखा, उस समय जव कि सब राजाओं के नाम कीर्त्तन किये जारहे थे, प्रभावशाली भीष्मजी ने स्त्रयं उन कन्याओं को वरण किया ॥

उवाच च महीपालान् राजन् जलदिनस्वनः । रथमारोप्य ताः कन्या भीष्मः प्रहरतां वरः ॥ १९ ॥ ता इमाः पृथिवीपाला जिहीषीमि बलादितः । ते यत्रध्वं परं शक्त्या विजयायेतराय वा ॥ २० ॥

अर्थ-हे राजन ! शस्त्र चलाने वालों में श्रेष्ठ भीष्मजी उन कन्याओं को रथ पर विटा मेघ के समान गर्जकर उन राजाओं से बोहे कि हे राजाओ ! मैं बलपूर्वक इन कन्याओं को हरण करना चाहता हैं, सो तुम अपनी २ शक्ति से पूर्ण यत करो चाहे जीत

स्थितोऽहं पृथिवीपाला युद्धाय कृतिनश्चयः। एवसुक्त्वामहीपालान् काशिराजं च वीर्यवान्॥२१॥ सर्वाः कन्याः स कौरव्यो रथमारोप्य च स्वकम्। आमंत्र्यच स तान् प्रायाच्छीघं कन्याः प्रगृह्य ताः॥२२॥

अर्थ-हे राजाओ ! मैं युद्ध के लिये निश्चय करके तैयार हूं, वह पराक्रमी भीष्म सब राजाओं तथा काशिराज से ऐसा कहकर और अपने रथ पर सब कन्याओं को बिटा शीघ्र ही चल दिये॥ ततस्ते पार्थिवाः सर्वे समुत्पेतुरमर्पिताः।

संस्पृशन्तः स्वकान् वाहून् दशन्तो दशनच्छदान्॥२३॥ तेषामाभरणान्याशु त्वरितानां विसुव्यताम् । आमुव्यतां च वर्माणि सम्भ्रमः सुमहानभूत् ॥२४॥

अर्थ-तब वह सब राजा क्रोध में भर कर अपनी बाहों को छूते और दांतों से ओष्ठों को काटते हुए दौड़े, उस समय शीघता से आभूपण उतारने तथा कवच पहरने का बड़ा भारी कोलाइल हुआ॥

रथानास्थाय ते वीराः सर्वप्रहरणानित्रताः ।
प्रयान्तमुपकौरव्यमनुसस्रुरुदायुधाः ॥ २५ ॥
ततः समभवद् युद्धं तेषां तस्य च भारत ।
एकस्य च बहुनां च तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २६ ॥
अर्थ-वह सब बीर राजा शस्त्रों समेत रथों पर बैटकर शस्त्रों
को उठाये हुए दांडे और भीष्मजी का पीछा किया, हे राजन ! तब

90

उन राजाओं और भीष्मजी का एक २ के साथ और दहुतों के साथ भी वड़ा भयानक रोमाञ्चित करने वाला युद्ध होने लगा, और :— ते त्विषून् दशसाहस्रांस्तिस्मिन् युगपदाक्षिपन् । अप्राप्तांश्चेव तानाशु भीष्मः सर्वास्तथान्तरा । अच्छिनच्छरवर्षेण महता लोमवाहिना ॥ २७ ॥

अर्थ-उन राजाओं ने भीष्म पर एक साथ दसहज़ार बाण छोड़े, परन्तु भीष्मजी ने शीघ्र ही अपनी उलटी मारी वाणवर्षा से उन सव बाणों को अपने पास पहुंचने से पहले बीच ही में काट दिया।।

ततस्ते पार्थिवाः सर्वे सर्वतः परिवार्य तम्।

ववृषुः शरवर्षेण वर्षेणेवादिमम्बुदाः ॥ २८ ॥ स तं बाणमयं वर्षे शरेरावर्य सर्वतः ।

ततः सर्वान्महीपालान्पर्यविध्यत् त्रिभिस्त्रिभिः।।२९॥

अर्थ-तब वह सब राजा भीष्म को चारों ओर से घरकर ऐसे बाण बरसाने छगे जैसे वादल पहाड़ पर वर्षा करते हैं, परंतु भीष्म ने उस बाण वर्षा को सब ओर से अपनेवाणों द्वारा निवारण करके पश्चात सब राजाओं को तीन २ वाणों से बींध दिया॥

एकैकरत ततो भीष्मं राजन् विव्याध पश्चभिः । सचतान्प्रतिविव्याधद्राभ्यां द्राभ्यां पराक्रमन् ॥३०॥ तद्युद्रमासीत्तमुलं घोरं देवासुरोपमम् । पश्यतां लोकवीराणां शरशक्तिसमाकुलम् ॥ ३१॥

अर्थ-हे राजन ! तब एक २ ने भीष्य पर पांच २ वाण चलाये

तव वाण और शक्तियों से पूर्ण उस देश के वीर और विज्ञानी पुरुषों का ऐसा महाभयानक संग्राम हुआ जैसाकि पहले आर्य और दस्युओं का हुआ था॥

स धन्ति ध्वजाश्राणि वर्माणि च शिरांसि च । चिच्छेद समरे भीष्मः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३२ ॥ तस्यातिपुरुषानन्यालाघवं रथचारिणः । रक्षणं चात्मनः संख्ये शत्रवोऽप्यभ्यपूजयन् ॥३३॥

अर्थ-भीष्म ने सेकड़ों और हज़ारों धनुष, ध्वजायें,कवच और योधाओं के सिर युद्ध में काट डाले, उस युद्ध में भीष्म ने बड़े २ सैनिक लोगों के मित ऐसी युद्ध की निपुणता और साथ ही आत्मरक्षा की, कि उनकी शञ्च लोग भी मशंसा करने लगे॥ तान् विनिर्जित्य तु रणे सर्वशस्त्रभृतांवरः। कन्याभिः सहितः प्रायाद् भारतो भारतान् प्रति॥३४॥ ततस्तं पृष्ठतो राजञ्छात्वराजो महारथः।

अभ्यगच्छदमेयात्मा भीष्मं ज्ञान्तनवं रणे ॥ ३५॥

अर्थ हे राजन ! जब सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भरतवंशी भीष्म उन राजाओं को युद्ध में जीतकर कन्याओं के सहित अपने घर की ओर चलने लगे तब महाबीर अतुलपराक्रमी राजा "शाल्व" शन्तनुपुत्र भीष्म के पीछे युद्ध के लिये चढ़ आया ॥

स्त्रीकाम तिष्ठ तिष्ठेति भीष्ममाह स पार्थिवः । शाल्वराजो महाबाहुरमर्पेण प्रचोदितः ॥ ३६॥ ततः स पुरुषव्याघो भीष्मः परवलाईनः । नदाक्याकुलितः क्रोधाद्विधूमोऽमिरिव ज्वलन्।।३७।

अर्थ-महाबाहु राजा " शाल्व " क्रोध में भरा हुआ भीष्म से बोला कि हे स्त्री की कामना वाले खड़ा रह, खड़ा रह, तब वह सिंह समान शचुओं की सेना का नाशक भीष्म विना धुएं की आग्न के समान क्रोध से जलता हुआ उसके वाक्य से व्याकुल होगया ॥

क्षत्रधर्म समास्थाय व्यपेतभयसंभ्रमः । निवर्त्तयामास रथं शाव्वं प्रति महारथः ॥३८॥ निवर्त्तमानं तं दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते । प्रेक्षकाः समपद्यन्त भीष्मशाव्वसमागमम् ॥३९॥

अर्थ-महायोधा भीष्म ने भय और भ्रम से रहित हो क्षत्रिय-धर्म को धारण कर शाल्व की ओर रथ लौटाया, तब वह सब राजा उसको लौटते देखकर भीष्म और शाल्व के युद्ध को देखने के लिये ठहर गये॥

ततो भीष्मं शान्तनवं शरैः शतसहस्रशः । शाल्वराजो नरश्रेष्ठः समवाकिरदाशुगैः ॥४०॥ पूर्वमभ्यर्द्दितं दृष्वा भीष्मं शाल्वेन ते नृपाः । विस्मिताः समपद्यन्त साधुस । ध्वित चाब्रुवन् ॥४१॥

अर्थ-तव राजा शाल्व ने शन्तन पुत्र भीष्म को सहस्रों वाणों से घेर लिया, शाल्व राजा से पीड़ित हुए भीष्म को देखकर वह दर्शक राजा अचिम्भत हो वाह २ कहने लगे ॥

क्षत्रियाणां ततो वाचः श्रुत्वा परपुरञ्जयः । ऋद्धः शान्तनवो भीष्मस्तिष्ठ तिष्ठेत्यभाषत ॥४२॥ ततोऽस्त्रं वारुणं सम्यग्योजयामास कौरवः । तेनाश्वांश्चतुरोमृद्नाच्छात्वराजस्य भूपतेः ॥४३॥

अर्थ-तव शत्रुओं के नगर को जीतने वाले भीष्म उन राजाओं की वाणियें सुन क्रोध में आकर शाल्व से वोले कि "खड़ा रह" इसके पश्चात भीष्म ने "वारुण" नामी अस्त्र चलाया और उससे राजा शाल्व के चारो घोड़ों को मार दिया ॥

अक्षेरस्त्राणि संवार्य शाल्वराजस्य कौरवः। भीष्मो नृपतिशार्दूल न्यवधीत् तस्य सारिथम् ॥४४॥ अस्त्रेण चास्यथेन्द्रेण न्यवधीत् तुरगोत्तमान्। कन्याहेतोर्नरश्रष्ठो भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥४५॥

अर्थ-हे महाराज ! कुरुवंशी भीष्म ने शाल्य राजा के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से हटाकर उसके सारिथ को मार दिया, इसके पश्चात महापुरुष भीष्म ने कन्याओं के लिये ऐन्द्र अस्त्र से उसके उत्तम घोड़ों को भी मार डाला ॥

जित्वा विसर्जयामास जीवन्तं नृपसत्तमम् । ततः शाल्वः स्वनगरं प्रययो भरतर्षभ । स्वराज्यमन्वशाचैव धर्मण नृपातस्तदा ॥ १६॥

अर्थ-हे राजन ! भीष्म ने श्रेष्ठ राजा शाल्य को जीतकर जीवित ही छोड़ दिया, तब राजा शाल्य अपने नगर को चला गया और वह धर्मपूर्वक अपना राज्य करने लगा ॥

राजानो ये च तत्रासन् स्वयंवरिदृहक्षवः । स्वान्येव तेऽपिराष्ट्राणि जग्मुः परपुरञ्जयाः ॥४७॥ एवं विजित्य ताः कन्याः भीष्मः प्रहरतां वरः । प्रययो हास्तिनपुरं यत्र राजा स कौरवः ॥४८॥

अर्थ-और वहां पर जो बीर राजा स्वयंवर के दर्शक आये हुए थे वह भी अपने २ देश को चले गये, इस मकार शस्त्र चलाने वालों में श्रेष्ठ भीष्मजी उन कन्याओं को जीतकर हस्तिनापुर चले गये जहां वह कुरुवंशी राजा था ॥

स्तुपा इवं स धर्मात्मा भगिनीरिव चानुजाः। यथा दुहितरश्चेव परिगृह्य ययो कुरून् ॥४९॥ भीष्मो विचित्रवीर्याय प्रददौ विकयाहृताः। एवं धर्मण धर्मझः कृत्वा कर्मातिमानुषम् ॥५०॥

अर्थ-वह धर्मात्मा भीष्म अपनी पुत्र वधुओं के समान अथवा छोटी वहनों वा पुत्रियों के तुल्य उन कन्याओं को छेकर कौरवों के सभीप आये, इस प्रकार साधारण मनुष्यों की शाक्ति से वाहर धर्मपूर्वक पराक्रम करके धर्मज्ञ भीष्म ने अपने पराक्रम से जीती हुई कन्यायें विचित्रवीर्य को दीं॥

भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य विवाहायोपचक्रमे । सत्यवत्या सह मिथः कृत्वा निश्चयमात्मवान् ॥५१॥ विवाहं कारियष्यन्तं भीष्मं काञ्चिपतेः सुता । ज्येष्ठा तासाभिदं वाक्यमववीद्धसती सती ॥५२॥

अर्थ-पराक्रमी भीष्म सत्यवती के साथ एकान्त में विचार करके भाई विचित्रवीर्य के विवाह करने को तैयार हुए, भीष्मजी विवाह करने वाले ही थे कि काशीराज की सब से वड़ी कन्या उस ममय हंसती हुई यह वचन बोछी कि :-

मया सौभपतिः पूर्व मनसा हि वृतः पतिः। तेन चास्मि वृता पूर्वमे । कामश्च मे पितुः ॥५३॥ मया वरियतव्योऽभूच्छात्वस्तस्मिन् स्वयंवरे। एतद् विज्ञाय धर्मज्ञ धर्मतत्त्वं समाचर ॥५४॥

अर्थ-मैंने राजा शाल्व को अपने मन से पहिले पित वर लिया था और उन्होंने भी मुझे वरा था और मेरे पिता का भी यही संकल्प था कि उस स्वयंवर में मुझे राजा शाल्व को दें, सो हे धर्मज़ ! ऐसा जानकर तुम धर्म की मर्यादा का पालन करो ॥

एवमुक्तस्तया भीष्मः कन्यया विश्वसंसदि । चिन्तामभ्यगमद्वीरोऽयुक्तां तस्यैव कर्मगः ॥५५॥ विनिश्चित्य स धर्मज्ञो ब्राह्मणेर्वेद पारगैः । अनुजज्ञे तदा ज्येष्ठामम्बां काशिपतेः सुताम् ॥५६॥

अर्थ-ब्राह्मणों की सभा में उस कन्या के ऐसा कहने पर वीर भीष्म चिन्ता में पड़ गये जो उस शमकर्म में अयुक्त थी, तब उस धर्मात्मा के वेदपारग ब्राह्मणों से सम्मात करके काशीराज की "अम्बा" नामक वड़ी पुत्री को राजा शाल्व के पति बनाने की अनुमति दी, और :-

अम्बिकाम्बालिके भार्ये प्रादाद स्रोत्रे यवीयसे । भीष्मो विचित्रवीर्याय विधिदृष्टेन कर्मणा ॥५७॥

अथ-भीष्म ने "अम्बिका" तथा "अम्बालिका" नामक दो भार्यायें अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को विधिपूर्वक विवाह करके देदीं ॥

पहाभारत

तयोः पाणी गृहीत्वा तु रूपयोवनदर्पितः। विचित्रवीयों धर्मात्मा कामात्मा समपद्यत ॥५८॥ ते चापिबृहती स्याम नीलकुश्चितमूर्द्धजे। रक्ततुङ्गनसोपते पीनश्रोणिपयोधरे ॥५९॥

अर्थ-वह धर्मात्मा विचित्रवीर्य उक्त दोनों से विवाह करके रूप, योवन के गर्व में आया हुआ अधिक कामवश होगया, और वह दोनों रित्रयें भी तरुणीं, क्यामा तथा काले छुंघराले बालों वालीं,लाल ऊंचे नखों वालीं और मोटे नितम्बतथा स्तनों वाली थीं॥

आत्मनः प्रतिरूपोऽसौ लब्धः पितिरितिस्थिते । विचित्रवीर्यं कल्याण्यौ पुजयामासतुः शुभे ॥६०॥ ताभ्यां सह समाः सप्त विहरन् पृथिवीपितः । विचित्रवीर्यस्तरुणो यक्ष्मणा समगृह्यत ॥ ६१ ॥

अर्थ-वह दोनों सुन्दरीं इस वात से संतुष्ट हुई २ कि हमें अपने अनुकूल यह पति मिलगया है विचित्रवीर्य की मन से सेवा करने लगीं वह तरुण राजा विचित्रवीर्य उन भार्याओं के साथ सात वर्ष तक विषयभोग करते रहने से "राजयक्ष्मा"=थाइसिज़ रोग में ग्रस्त होगया ॥

सुहृदां दतमानानामाप्तेः सह चिकित्सकैः ।
जगागास्तिमवादित्यः कौरव्यो यमसादनम् ॥६२॥
अर्थ-मित्र, संबन्धा लोग और वैद्यों के यत्न करते हुए भी
कुरुवंशी विचित्रवीर्थ मृत्यु को माप्त हुआ, मानो कुरुवंश का सूर्य्य
अस्त होगया ॥

्ति षष्ठोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तमोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच ततः सत्यवती दीना कृपणा पुत्रगृद्धिनी । समाश्वास्य खुषे ते च भीष्मं शस्त्रभृतां वरम् ॥१॥ धर्म च पितृवंशं च मातृवंशं च भाविनी । प्रसमीक्ष्य महाभागा गाङ्गेयं वाक्यमत्रवीत् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! उस समय सत्यवती वड़ी दीन, आर्च और पुत्र की अभिलापिणी थी,वह भाग्यवती उन दोनों वधुओं को धेर्य्य दे और पितृवंश, मातृवंश तथा धर्म का विचार करके महायोद्धा शन्तनुपुत्र *गाङ्गेय=भीष्मजी से वोली कि:-

वेत्थ धर्माश्च धर्मज्ञ समासेनेतरेण च। विविधास्त्वं श्रुतीर्वेत्थ वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ३॥ व्यवस्थानं च ते धर्मे कुलाचारं च लक्षये। प्रतिपत्तिं च कृच्छ्रेषु शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥ १॥

अर्थ—हे धर्मझ!तुमधर्मी,अनेक मकार की श्रुतियों तथा वेदाङ्गों को संक्षेप तथा विस्तार से पूर्णतया जानते हो, और मैं तुम्हारी धर्मव्यवस्था और कुलाचार को भी जानती हूं तथा आपित्तकाल में जो तुम्हारी शुक्र तथा बृहस्पित के समान प्रतिभा है उसका भी मुझे भले प्रकार झान है ॥

[ं]गगा नामक स्त्री का पुत्र होने से भीष्मजी का नाम गाहिय था, गंग। नदी का पुत्र नहीं ॥

तस्मात् सुभृशमाश्वस्य त्विय धर्मभृतां वर । कार्ये त्वां विनियोध्यामि तच्छूत्वा कर्तुमहिसि ॥५॥

अर्थ-हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ! इसिक्टिये में तुम पर पूरा विश्वास करके तुम्हें एक कार्य्य में लगाना चाहती हूं उसको सुनकर तुम्हें आचरण करना उचित है ॥

मम पुत्रस्तव भाता वीर्यकान् सुप्रियश्च ते। बाल एव गतः स्वर्गमपुत्रः पुरुष्पेभ ॥ ६ ॥ इमे महिष्यो भातुस्ते काशिराजसते शुभे। रूपयोवनसंपन्ने पुत्रकामे च भारत ॥ ७ ॥

अर्थ-हे पुरुपितह ! मेरा पुत्र "चित्राइद" जो तुम्हारा प्यारा पराक्रमी भाता था वह वचपन मेंही विना सन्तान हुए मृत्यु को प्राप्त होगया,हे भरतवंशी! यह तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य्य की दोनों रानियें काशीराज की रूप योवन सम्पन्न पुत्रियें पुत्र की इच्छुक हैं॥

तयोरुत्पादयापत्यं सन्तानाय कुलस्य नः । मन्नियोगान्महाबाहो धर्म कर्जुमिहार्हिस ॥ ८॥ राज्ये चैवाभिषिच्यस्य भारतान्तुशाधि च । दारांश्च कुरु धर्मण मा निमज्जीः पितामहान् ॥ ९॥

अर्थ-हे महावाहु! हमारा कुल चलाने के लिये मेरी आज्ञा मे त इन दोनों स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न कर, और यह धर्मकार्य तुम्हें करना उचित है, तुम धर्मपूर्षक सन्तानमात्र के लिये इन को अपनी स्त्री बनाओ, और राज्याभिषेक को प्राप्त होकर भरतवंशियों को शिक्षा पदान कर, अपने पूर्व पुरुषाओं का नाम न मिटने दे अर्थात् इन दोनों में नियोगविधि से सन्तान उत्पन्न कर ॥ वैद्यास्पायन उवाच

तथोच्यमानो मात्रा स सुहृद्भिश्च परंतपः । इत्युवाचाथ धर्मात्मा धर्म्यमेवोत्तरं वचः ॥ १०॥ असंशयं परोधर्मस्त्वया मातरुदाहृत्ः। त्वमपत्यं प्रति च मे प्रतिज्ञां वेत्थ वे पराम् ॥ ११॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! माता सत्यवती और सव इष्टिमिश्रों के कथन करने पर वह धर्मात्मा शञ्चसन्तापक भीष्म इस प्रकार धर्म युक्त वचन बोले कि हे मात ! निःसन्देह तुमने यह परमधर्म कहा है परन्तु सन्तानोत्पत्ति न करने विषयक जो मेरी हुढ़ प्रतिक्षा है उसको भी तुम भलेपकार जानती हो ॥

जानासि च यथावृत्तं शुल्कहेतोस्त्वदन्तरे। स सत्यवति सत्यं ते प्रतिजानाम्यहं पुनः ॥ १२॥

अर्थ-हे माता सत्यवती ! तुम जानती हो कि पिता के साथ तुम्हारा विवाह होने से पूर्व क्या शर्त हुई थी, सो मैं फिर भी तुम से सत्य २ प्रतिज्ञा करता हूं कि :-

त्यजेच पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः । ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शयणं त्यजेत् ॥१३॥ प्रभां समुत्युजेदकों धूमकेतुस्तथोष्णताम् । त्यजेच्छन्दं तथाकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत् । न त्वहं सत्यमुत्साष्टुं न्यवस्येयं कथंचन ॥१४॥ अर्थ-चाहे पृथ्वी अपने स्वाभाविक गन्ध गुण को त्याग दे, जल अपने गुण रस को, अग्नि रूप को और वायु अपने स्पर्शगुण को छोड़ दे, सूर्य्य तेज को, अग्नि गर्मा को, आकाश शब्द को और चाहे चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों को त्याग देपरन्तु में अपनी सत्य प्रतिज्ञा का कदापि त्याग नहीं करसक्ता॥

एवमुक्ता तु पुत्रेण भूरिद्रविणतेजसा । माता सत्यवती भाष्ममुवाच तदनन्तरम् ॥ १५॥ जानामि ते स्थितिं सत्ये परां सत्यपराकम् । जानामि चैवं सत्यं तन्मदर्थे यच्च भाषितम् । आपद्धर्म त्वमावेक्ष्य वह पैतामहीं धुरम् ॥ १६॥

अर्थ-अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र भीष्म के उक्त कथन करने पर माता सत्यवती उससे बोली कि हे सच्चे पराक्रमी ! मैं तुम्हारी सत्य में परमिनष्टा को समझती हूं, और जो कुछ तुमने मेरे प्रति कहा है उसको भी मैं सत्य समझती हूं, परन्तु तुम इसको आपद्धर्म मानकर अपने पिता पितामह के राज्यभार को सम्भालो ॥

यथा ते कुलतन्तुश्च धर्मश्च न पराभवेत्।
सहदश्च प्रहृष्येरंस्तथा कुरु परन्तप ॥ १७॥

अर्थ-हे परंतप! जिस मकार तुम्हारे कुल और धर्म का नाश न हो और तुम्हारे बन्धु लोग भी मसन्न रहें, वैसा करो ॥ लालप्यमानां तामेवं कृपणां पुत्रगृद्धिनीम् । धर्मादपेतं ब्रुवतीं भीष्मो भूयोऽन्नवीदिदम् ॥१८॥ राज्ञि धर्मानवेक्षस्य मानः सर्वान् व्यनीनशः । सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥१९॥

अर्थ-इस प्रकार पुत्र के लालच में विलाप करती तथा धर्म विरुद्ध वचन बोलती हुई सत्यवती से भीष्म फिर बोले कि हे मात! तुम राजा के धर्मों को देखो, हम सब का नाश मत करो, सत्य से गिर जाना क्षत्रिय के लिये प्रशंसनीय नहीं ॥

शान्तनोरिप सन्तानं यथा स्यादक्षयं भिव । तत्ते धर्म प्रवक्ष्यामि क्षात्रं राज्ञि सनातनम् ॥२०॥ श्रुत्वा तां प्रतिपद्यस्व प्राज्ञेः सह प्ररोहितेः । आपद्धमर्थिकशलैलोंकतंत्रमवेक्ष्य च ॥२१॥

अर्थ-जिस मकार शान्तनु का वंश पृथ्वी में अक्षय हो वह धर्म तुम्हें वताता हूं जो राजा के लिये सदा से चला आया है, हे मात! उसको सुनकर तुम आपद्धर्म के विचार में निपुण तथा विद्वान पुरोहितों के साथ विचार करके और लौकिक रीति को भी विचार कर उसका अनुष्ठान करो ॥

भीष्म उवाच

जामदग्न्येन रामेण पितुर्वधममृष्यता । राजा परशुना पूर्व हैहयाधिपतिर्हतः ॥२२॥ पुनश्च धनुरादाय महास्त्राणि प्रमुचता । निर्दग्धं क्षत्रमसकृद्रथेन जयता महीम् ॥२३॥

अर्थ-भीष्मजी बोले कि पूर्वकाल में जमदाग्न के पुत्र परशुराम ने पिता के वध को सहन न करके हैहय देश के राजा "अर्जुन" को अपने परशे से मारने के पश्चाद भी धनुष् लेकर बड़े २ शस्त्र-अस्त्रों से पृथ्वी को विजय कर कई वार क्षत्रियवंश को विध्वंस किया था।।

एवस्चावंचेरस्त्रेर्भागंवेण महात्मना । त्रिःसप्तकृतः पृथिवी कृता निःक्षत्रिया पुरा ॥२४॥ एवं निःक्षत्रिये लोके कृते तेन महार्षणा । उत्पादितान्यपत्यानि ब्राह्मणेवेंद्रपारगैः॥२५॥

अर्थ-एवं अनेक प्रकार के शक्ष-अस्तों द्वारा सृगुवंशी महात्या परशुराम ने पूर्वकाल में इकीस वार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया था, परन्तु इस प्रकार उस महर्षि से पृथ्वी के क्षत्रियहीन होजाने पर भी वेदपारदर्शी ब्राह्मणों ने नियोग द्वारा उन विधवा क्षत्राणियों से क्षत्रिय सन्तान उत्पन्न की थीं ॥

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम् । धर्म मनिस संस्थाप्य ब्राह्मणांस्ताः समभ्ययुः ॥२६॥ लोकेऽप्याचिरतो दृष्टः क्षत्रियाणां पुनर्भवः । ततः पुनः समुदितं क्षत्रं समभवत् तदा ॥२७॥

अर्थ-यह वेदों में निश्चित सिद्धान्त है कि नियोग द्वारा उत्पन्न किया हुआ पुत्र विवाह करने वाले का ही होता है, इस धर्म को मन में स्थिर करके वह स्त्रियें ब्राह्मणों के साथ नियुक्त हुई, इस प्रकार लोक में भी क्षत्रियों का पुनरुद्धार हुआ २ देखा गया और तब से फिर भी क्षत्रियों का समुदाय बढ़ गया है ॥

एवमन्ये महेष्वासा ब्राह्मणैः क्षत्रिया भवि । जाताः परमधर्मज्ञा वीर्यवन्तो महाबलाः ।

एतच्छुत्वा त्वमप्यत्र मातः कुरु यथेप्सितम्।।२८।।

अर्थ-हे मात! इस मकार और भी वहें २ वाण चलाने वाले परम धर्भात्मा, पराक्रमी तथा महावली क्षत्रिय पृथ्वी पर ब्राह्मणों से उत्पन्न होचुके हैं, ऐसा जानकर तुम भी इस अवसर में जैसा अचित समझो करो ॥

भीष्म उचाच

पुनर्भरतवंशस्य हेर्तु सन्तानगृद्धये । वध्यामि नियतं मातस्तन्मे निगदतः शृणु ॥२९॥ ब्राह्मणो ग्रणवान् कश्चिद्धनेनोपानमन्त्र्यताम् । विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु यः समुत्पादयेत् प्रजाः ॥३०॥

अर्थ-भीष्मजी फिर बोले कि हे माता ! मैं तुम्हें भरतवंश की सन्तान बृद्धि का नियत उपाय वतलाता हूं सो तुम सुनो, किसी गुणवान ब्राह्मण को धन देकर नियोग के लिये वरण करो जो विचित्रवीर्य के क्षेत्र=स्त्री में सन्तान उत्पन्न करे॥

वैशम्पायन उवाच

ततः सत्यवती भीष्मं वाचा संसज्जमानया । विहसन्तीव सत्रीडामिदं वचनमत्रवीत् ॥३१॥ सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत । विश्वासात्ते प्रवक्ष्यामि सन्तानाय कुलस्य नः ॥३२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब सत्यवती मुसकराती हुई लज्जा के साथ अटपटी बाणी से भीष्म के मित यह बचन बोली कि हे महाबाहु ! जो कुछ तुम कहते हो सत्य है, हे भरतवंशी ! मैं तुम पर विज्ञाम करके अपना कुल चलाने के लिये कुछ कहती हूं मो आप मुनें :-

न ते शक्यमनाख्यातुमापद्धर्म तथाविधम्। त्वमेव नः कुले धर्मस्त्वं सत्यं त्वं परागतिः। तस्मात्रिशम्य सत्यं मे कुरुष्व यदनन्तरम् ॥३३॥

अर्थ-तुमने जिसमकार का आपद्धम बताया है वह खण्डन नहीं किया जासकता, तुम्हीं हमारे कुछ में धर्म और सत्य के रूप हो और तुम्हीं परम आश्रय हो,इसिछिये तुम मेरा यहसत्य कथन सुन कर पश्चात जो कर्तव्य हो सो करो ॥

पाराशयों महायोगी स बभूव महानृषिः । योऽभ्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः । लोके व्यासत्वमापेदे काष्ण्यात् कृष्णत्वमेव च ॥३४॥

अर्थ-पराशर का पुत्र जिसने तप द्वारा वेदों का अभ्यास करके "व्यास" नाम पाया और सांवला रंग होने से जो "कृष्ण" कहलाया वह महायोगी और महान ऋषि है॥

स नियुक्तो मया व्यक्तं त्वया चाप्रतिमद्युतिः । भ्रातुः क्षेत्रेषु कत्याणमपत्यं जनयिष्यति ॥३५॥ स हि मामुक्तवांस्तत्र स्मरेः कृच्छ्रेषु मामिति ।

तं स्मरिष्ये महावाहो यदि भीष्म त्विमच्छिस ॥३६॥ अर्थ-वह महातेजस्वी ऋषि मुझते और तुमसे नियुक्त किया हुआ तुम्हारे भाई के क्षेत्र में योग्य सन्तान उत्पन्न कर देगा, हे महाबाहु ! उसने मुझते कहा था कि तुम कष्ट पड़ने पर मुझे याद

करना, सो हे भीष्म! तुम्हारी सम्मति हो तो मैं उसको बुलाऊं ॥ तव ह्यनुमते भीष्म नियतं स महातपाः । विचित्रवीर्यक्षेत्रेषु पुत्रानुत्पादियष्यित ॥३७॥

अर्थ-हे भीष्म ! यह निश्चय है कि वह महातपस्वी तुम्हारे कहने से निचित्रवीर्थ के क्षेत्र में पुत्र उत्पन्न करेगा ॥

वैशम्पायन उवाच

महर्षः कीर्त्तने तस्य भीष्मः प्राञ्जलिरत्रवीत् । धर्ममर्थं च कामं च त्रीनेतान् योऽनुपश्यति । यो विचिन्त्यिथया धीरो व्यवस्यति सबुद्धिमान्।।३८॥

अर्थ-दैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उस महर्षि का नाम लेते ही भीष्मजी हाथ जोड़कर माता से बोले कि जो धर्म, अर्थ, काम इन तीनों को जाबता और जो धैर्यवान बुद्धि द्वारा इनका निश्चय कर सकता है वह बुद्धिमान "च्यास" है।

तिददं धर्मयुक्तं हितं चैव कुलस्य नः।

उक्तं भवत्या यच्छ्रेयस्तन्महां रोचते भृशम् ॥ ३९॥

अर्थ-हे माता! आपने जो यह धर्मयुक्त और हमारे कुल का हितकारी श्रेष्ठ उपाय वताया है वह मुझे भी स्वीकार है ॥ ततोऽभिगम्य सा देवी स्तृषां रहिस संगताम् । धर्म्यमर्थसमायुक्तमुवाच वचनं हितम् । कौशल्ये धर्ममन्त्रं त्वां यद्ब्रवीमि निबोध तत् ॥४०॥

अर्थ-इसके पश्चात वह देवी सत्यवती एकान्त में अपनी पुत्रवधु के पास जाकर धर्म और प्रयोजन से युक्त हितकारी वचन बोली कि हे अन्विका ! में जो तुम्हें ध्रमयुक्त सम्मित देती हूं सो त सुन :भरतानां समुच्छेदो व्यक्तं मद्राग्यसंक्षयात् ।
व्यथितां मां च संप्रेक्ष्य पितृवंशं च पीडितम् ॥ ४१॥
भीष्मो बुद्धिमदान्महां कुलस्यास्य विवृद्धये ।
सा च बुद्धिस्त्वय्यधीना पुत्रि प्रापय मां तथा ।
नष्टं च भारतं वंशं पुनरेव समुद्धर ॥ ४२॥

अर्थ-यह स्पष्ट है कि मेरे दुर्भाग्य से भरत के वंश का नाश होगया है, सो मेरा दुःख तथा पिता के वंश की आपित्त को देखकर भीष्म ने इस कुल की वृद्धि के लिये मुझे एक उपाय बताया है और हे पुत्रि! वह उपाय तेरे अधीन है, सो तू मेरा कहना कर और नष्ट दूए भरतवंश को फिर से चला ॥

पुत्रं जनय सुश्रोणि देवराजसमप्रभम् । स हि राज्यधुरं ग्रवीं मुद्रक्ष्यित कुलस्य नः ॥ ४३ ॥ सा धर्मतोऽनुनीयैनां कथंचिद्धमचारिणीम् । भोजयामास विप्रांश्च देवर्षीनितिथीं स्तथा ॥ ४४ ॥

अर्थ-हे सुन्दरि! त देवताओं के राजा के समान मतापी पुत्र नियोग द्वारा उत्पन्न कर, वही हमारे वंश के महान राज्यभार का निर्वाह करेगा, सत्यवती ने इस धर्मात्मा अभ्विका को धर्मपूर्वक पैन केन मकार से वह बात मनवा कर उसी हर्ष में ब्राह्मणों, देव ऋषियों और अतिथियों को भोज दिया ॥

इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टमोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः सत्यवती काले वधूं स्नातामृती तदा। संवेशयन्ती शयने शनैर्वचनमत्रवीत् ॥ १ ॥ कौशल्ये देवरस्तेऽस्ति सोऽद्य त्वानुप्रवेक्ष्यति। अप्रमत्ता प्रतिक्षेनं निशीथे ह्याग्रिमण्यति॥ २ ॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! इसके पश्चात ऋतुकाल में शुद्ध होकर स्नान की हुई पुत्रवधु को सेज पर मुलाते समय सत्यवती धीरे से यह वचन वोली कि हे अम्विका ! तुम्हारा एक देवर = द्वितीयवर आज तुझेस संयुक्त होगा और आधी रात के समय तेरे समीप आवेगा सो तैने सावधान होकर उसकी मतीक्षा करना ॥ ततो अम्बिकायां प्रथमं नियुक्तः सत्यवानृषिः । दीप्यमानेषु दीपेषु शरणं प्रविवेश ह ॥ ३ ॥ तस्य कृष्णस्य किपलां जटां दीपे च लोचने । बभ्रणि चैव समश्रूणि दृष्ट्वा देवी न्यमीलयत् ॥ ।।।

अर्थ-तव पहिले अम्बिका के लिये नियुक्त किये हुए सत्यधारी ऋषि व्यासजी दीपकों के जलते हुए भवन में प्रविष्ट हुए, परन्तु देवी अम्बिका ने उनका काला रंग, भूरी जटायें, चमकते हुए दोनों नेत्र और सफ़ेंद्र दाड़ी देखकर आंख मीच लीं॥

संबभ्व तया सार्छ मातुः प्रियाचिकीर्षया । भयात् काशिस्ता तं तु नाशकोदभिवीक्षितुम् ॥५॥ ततो निष्कान्तमागम्य माता पुत्रमुवाच ह । अप्यस्या यणवान् पुत्र राजपुत्रो भविष्यति ॥६॥

अर्थ-माता सत्यवती के हित की इच्छा से उसमें व्यासजी ने गर्भाधान किया, परन्तु काशीराज की पुत्री भयभीत हुई उनको देख न सकी, पश्चाद महल से निकलते समय माता सत्यवती आकर व्यास से पूछने लगी कि हे पुत्र! इसका पुत्र गुणवान तो होगा? ॥

निशम्य तद्वचो मातुर्व्यासः सत्यवतीस्तः । प्रोवाचातीन्द्रियज्ञानो विधिना संप्रचोदितः ॥७॥ महाभागो महावीयों महाबुद्धिभविष्यति । किंतु मातुः स वैग्रण्यादन्ध एव भविष्यति ॥८॥

अर्थ-माता का उक्त वचन सुनकर सूक्ष्मदर्शी सत्यवती के पुत्र व्यासजी शास्त्रविधि के अनुसार बोले कि इसका पुत्र बड़ा भाग्यवान, बड़ा पराक्रमी और बड़ा बुद्धिमान होगा, परन्तु माता के अपराध से वह अन्या जन्मेगा ॥

तस्य तद्धचनंश्रुत्वा माता पुत्रमथाब्रवीत् । नान्धः कुरूणां नृपतिरनुरूपस्तपोधन ॥९॥ ज्ञातिवंशस्य गोप्तारं पितृणां वंशवर्द्धनम् । द्वितीयं कुरुवंशस्य राजानं दातुमर्हिस ॥१०॥

अर्थ-ज्यासजी की यह बात छनकर सत्यवती उनसे बोली कि हे तपोधन! अन्या पुत्र कुरुवंशियों का राजा होने योग्य नहीं, जो पुत्र अपने बन्धुओं के वंश का रक्षक तथा अपने पितरों के वंश का चलाने वाला और कुरुओं का राजा होने योग्य हो,ऐसा एक दूसरा पुत्र उत्पन्न करो ॥

स तथिति प्रतिज्ञाय निश्चकाम महायशाः । साऽपि कालेन कौशल्या सुषुवेऽन्धंतमात्मजम् ॥११॥ पुनरेवतु सा देवी परिभाष्य स्तुषां ततः । ऋषिमावाहयत् सत्या यथापूर्वमरिन्दम ॥१२॥

अर्थ-तव सुप्रसिद्ध व्यासजी वैसा पुत्र उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा करके चले गये, समय पर अस्विका के वह अन्धा पुत्र धृतराष्ट्र उत्पन्न हुआ, हे राजन ! इसके पश्चात सत्यवती ने दुवारा अपनी दूसरी बधू अम्बाळिका को समझा बुझाकर पहले की भांति ऋषि व्यास को बुलाया॥

अम्बालिकामथाभ्यागादृषिं दृष्ट्वा च सापि तम्। विवर्णा पाण्डसङ्काशा समपद्यत भारत ॥१३॥ तां भीतां पाण्डसंकाशां विषण्णां प्रेक्ष्य भारत। व्यासः सत्यवतीपुत्र इदं वचनमत्रवीत्॥१४॥

अर्थ-हे राजन ! पुनः न्यासजी अम्बालिका के समीप गये और वह भी ऋषि को देखते ही भय से विवर्ण=पीली होगई, हे राजन ! उसको भय से पीली और विपादयुक्त देखकर सत्यवती के पुत्र न्यासजी यह वचन बोले कि:-

यस्मात् पाण्डत्वमापन्ना विरूपं प्रेक्ष्य मामिह।
तस्मादेष स्रतस्ते वै पाण्डरेव भविष्यति ॥१५॥
इत्युकत्वा स निराकामद् भगवानिषसत्तमः।
तते। निष्कान्तमालोक्य सत्या प्रत्रमथान्रवीत् ॥१६॥
अर्थ-व मेरे हप को देखकर पाण्ड=पीली होगई इसलिये यह

तेरा पुत्र भी "पाण्डु"=पीले रंग का ही उत्पन्न होगा, यह कहकर भगवान व्यास वहां से निकलने लगे तब सत्यवती ने उनको निकलते हुए देख वहां आकर पूर्ववत पूछा ॥

शशंस स पुनर्मात्रे तस्य बालस्य पाण्डतास् । तं माता पुनरेवान्यमेकं पुत्रमयाचत । तथिति च महर्षिस्तां मातरं प्रत्यभाषत ॥१७॥

अर्थ-तव व्यासजी ने माता सत्यवती से उस वालक के पाण्डु रंग होने का वृत्तान्त कह दिया, तदनन्तर माता सत्यवती ने एक और पुत्र उत्पन्न करने की प्रार्थना की और महार्ष ने वेसा करने की माता से प्रतिज्ञा करली ॥

ततः कुमारं सा देवी प्राप्तकालमजीजनत् । पाण्डलक्षणसम्पन्नं दीप्यमानं वरिश्रया । यस्य पुत्रा महेष्वासा जिज्ञरे पंच पाण्डवाः ॥१८॥

अर्थ-तब समय पर देवी अम्वालिका के वह पुत्र उत्पन्न हुआ जो पीले रंग का परन्तु उत्तम शोभा से प्रकाशमान था, और जिसके पुत्र वहे वाण चलाने वाले पांच "पाण्डव" उत्पन्न हुए थे॥ ऋतुकाले ततो ज्येष्ठां वधूं तस्मै न्ययोजयत्। सा तु रूपं च गन्धं च महर्षेः प्रविचिन्त्य तम्। नाकरोद् वचनं देव्या भयात् सुरस्रतोपमा ॥१९॥

अर्थ-तव सत्यवती ने ऋतुकाल में ज्येष्ठ वधु अम्बिका को व्यासजी के लिये फिर नियुक्त किया, परन्तु उस महासुन्दरी ने महर्षि के उस रूप और गन्ध का ध्यान करके भय से सत्यवती का कहना नहीं माना ॥ ततः स्वैभूषणैर्दासीं भूषियत्वाप्सरोपमाम् । प्रेषयामास कृष्णाय ततः काशिपतेः सुता ॥२०॥ सा तं ऋषिमनुप्राप्तं प्रत्यद्गम्याभिवाद्य च । संविवेशाभ्यनुज्ञाता सत्कृत्योपचचार ह ॥२१॥

अर्थ-तद काशिराज की पुत्री ने अपने भूषण वस्त्र पहवा-कर अप्सरा के समान सुन्दरी अपनी दासी को ज्यासजी के समीप भेज दिया, उसने ऋषि के आते ही आदर से उठकर उन के समीप जा अभिवादन किया और उनकी आज्ञा पाकर शयन किया तथा सत्कार के साथ उनकी सेता में प्रवृत्त हुई ॥ तथा सहोपितो राजन् महर्पिः संशितत्रतः । उत्तिष्ठन्नविश्चेनामभुजिष्या भविष्यसि ॥२२॥ स जड्ने विदुरो नाम कृष्णद्वैपायन्नात्मजः । धृतराष्ट्रस्य वै भ्राता पाण्डोश्चेव महात्मनः ॥२३॥

अर्थ-हे राजन ! मशंसित व्रतथारी महर्षि व्यासजी ने उसमें
गर्भाधान किया और उठते समय कहा कि त दासभाव से छूट
जायगी, उससे व्यासजी का वह पुत्र "विदुर" नामक उत्पन्न
हुआ जो धृतराष्ट्र और महात्मा पाण्ड का भाई कहलाया॥
कृष्णद्विपायनोप्येतत् सत्यवत्ये न्यवेदयत् ।
प्रतम्भमात्मनश्चेव श्रद्रायाः पुत्रजन्म च ॥२॥।
एते विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे द्वैपायनादिष ।
जिद्दोरे देवगर्भाभाः कुरुवंशविवर्छनाः ॥२५॥
अर्थ-व्यासनी ने भी सत्यवती से यह प्रत्तान्त विवेदन कर

महाभारत

दिया कि उनको इस प्रकार वश्चन कियागया और इससे श्रद्धा= दासी पुत्र उत्पन्न होगा, इस प्रकार विचित्रवीर्य के क्षेत्र में व्यासजी से यह देवपुत्रों के समान गुणवान, तथा कुरुवंश के चटाने वाले तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥

वैशम्पायन उवाच तेषु त्रिषु कुमारेषु जातेषु कुरुजाङ्गलम् । कुरवोऽथ कुरुक्षत्रं त्रयमेतदवर्द्धत ॥२६॥ ऊर्ध्वशस्याभवद्भमिः शस्यानि रसवन्ति च । यथर्जुवर्षी पर्जन्यो बहुपुष्पफला दुमाः ॥२७॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उनतीनों कुमारों के उत्पन्न होने पश्चात कुरुजाङ्गल देश, कुरुवंशी लोग और कुरुक्षेत्र, ये तीनों बढ़ने लगे, उस समय पृथ्वी पर ऊंचे २ और रसीले अन्न खेती में उत्पन्न होते थ, बादल समय पर वरसता और वृक्ष पूर्णतया फूलते फलते थे॥

वाहनानि प्रहृष्टानि सुदिता सृगपिक्षणः । गन्धवन्ति च माल्यानि रसवन्ति फलानि च ॥२८॥ वाणिग्भिश्चान्वकीर्यन्त नगराण्यथ शिल्पिभः । शूराश्चकृतविद्याश्चसन्तश्च सुविनोऽभवन् ॥२९॥

अर्थ-घोड़े आदि सवारी के पशु और जंगली पशु-पशी आनिन्दित रहते थे, फूल सुगन्तित और फल रसीले होते थे, नगर च्यापारी और कारीगरों से भरपूर थे और श्रुवीर विद्वान तथा सज्जन पुरुष सुखी रहते थे॥ नाभवन् दस्यवः केचिन्नाधर्मरुचयो जनाः । धर्मिकिया यज्ञशीलाः सत्यव्रतपरायणाः । अन्योन्यप्रीतिसंयुक्ता व्यवर्छन्त प्रजास्तदा ॥३०॥

अर्थ-उस समय दस्य लोग वा अधर्मात्मा जन नहीं रहे थे, प्रजायें धर्मात्मा, यज्ञ करने वालीं,सच्चे व्रत धारण करने वालीं और आपस में स्नेहयुक्त रहकर दिनो दिन बढ़ती जाती थीं ॥ तन्महोदिधिवत् पूर्ण नगरं वै व्यरोचत । द्वारतोरणनिव्यूहेर्युक्तमभ्रचयोपमैः ॥ ३१ ॥ नदीषु वनखण्डेषु वापीपत्वलसानुषु । काननेषु च रम्येषु विजहुर्मुदिता जनाः ॥ ३२ ॥

अर्थ-महासागर के समान भरपूर वह " हिस्तिनापुर " नगर वड़ा सुशोभित था और दरवाजों पर रंगिवरंगे वन्दनवारों के समूह से ऐसा सुशोभित था जैसे मेघों के समूह से आकाश शोभायमान मतीत होता है, आनन्द में भरे हुए छोग निदयों पर, बन के उत्तम स्थानों, ताछावों, पहाड़ों और सुन्दर वनों में सेर किया करते थे॥

नाभवत् कृपणः कश्चिन्नाभवन् विधवाः स्त्रियः । तिस्मञ्जनपदे रम्ये कुरुभिर्वहुलीकृते ॥ ३३ ॥ कृपारामसभावाप्यो ब्राह्मणावसथास्तथा । वभूबुः सर्वर्द्धियुतास्तिस्मन् राष्ट्रे सदोत्सवाः । भीष्मेण धर्मतो राजन् सर्वतः परिरक्षिते ॥ ३४ ॥

अर्थ-कुरुवंशियों से वसे हुए उस रमणीय पान्त में न कोई मनुष्य कृपण होता और न कोई स्त्री विधवा होती थी, हे राजन !

भीष्म से धर्मपूर्वक रक्षा किये हुए उस देश में कुएं, बाग, सभायें, और ब्राह्मणों के आश्रम सब संपत्तियों से पूर्ण और सदा सुरक्षित रहते थे।।

स देशः परराष्ट्राणि विसृज्याभिप्रवर्द्धितः । भीष्मेण विहितं राष्ट्रे धर्मचक्रमवर्तत ॥ ३५ ॥ कियमाणेषु वृत्येषु कुमाराणां महात्मनाम् । पौरजानपदाः सर्वे बभूबः परमोत्सुकाः ॥ ३६ ॥

अर्थ-वह देश द्सरों के राज्य को छोड़कर भी दिनों दिन बढ़ता और भीष्मजी का चलाया हुआ धर्मचक्र उस देश में मतृत्त रहता था, महात्मा कुमारों के जब संस्कार किये जाते तब नगर और मान्त निवासी सब परम उत्सुक होते थे॥

गृहेषु कुरुमुख्यानां पौराणां च नराधिप । दीयतां भुज्यतां चेति वाचोऽश्रूयन्त सर्वशः ॥३७॥

अर्थ-हे राजन ! उस समय श्रेष्ठ कुरुवंशियों और पुरवासियों के घरों से यही शब्द सुना जाता था कि दान करो और भोगी॥

धृतराष्ट्रश्च पाण्डश्च विदुरश्च महामितः। जन्मप्रभृति भीष्मेण पुत्रवत्परिपालिताः॥ ३८॥ संस्कारैः संस्कृतास्ते तु ततोऽध्ययनसंयुताः। श्रमन्यायामकुरालाः समपद्यन्त यौवनम्॥ ३९॥

अर्थ-धृतराष्ट्र, पाण्डु और महाबुद्धिमान विदुर को भीष्म ने जन्म से पुत्र के समान पाला था, वह संस्कारों से शुद्ध होकर विद्या- ध्ययन में लगे हुए और परिश्रम तथा व्यायाम करने में चतुर युवावस्था को प्राप्त हुए ॥

धनुर्वेदे च वेदे च गदायुद्धेऽसि चर्मणि । तथेव राजशिक्षायां नीतिशास्त्रेषु पारगाः ॥ ४० ॥ इतिहासपुराणेषु नानाशिक्षासु बोधिताः । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वत्र कृतनिश्चयाः ॥ ४१ ॥

अर्थ-वह कुमार शस्त्रविद्या, वेदविद्या, गदायुद्ध, खड़विद्या, ढाल का प्रयोग, राजशिक्षा और नीतिशास्त्र में पारदर्शी, इतिहास, पुराण और नाना शिक्षाओं में कुशल हुए २ वेद वेदाङ्गों का तस्त्र जानने वाले और सब विषयों में निश्चयात्मक वन गये थे॥

पाण्डर्धनुषि विकान्तो नरेष्वभ्यधिकोऽभवत् । अन्यभ्यो बलवानासीद्धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥ ४२ ॥ त्रिषुलोकेषु न त्वासीत् कश्चिद्धिदुरसम्मितः । धर्मनित्यस्तथा राजन् धर्मे च परमं गतः ॥ ४३ ॥

अर्थ-पाण्ड धर्नार्वद्या में अन्य मनुष्यों से अधिक पराक्रमी हुआ और राजा धतराष्ट्र औरों से वलमें अधिक रहा और हे राजत ! विदुर के समान धर्मनिष्ठ तथा धर्म का पारदर्शी तीनो लोकों में कोई नहीं हुआ ॥

प्रनष्टं शान्तनोर्वशं सभीक्ष्य पुनरुद्धृतम् । ततो निर्वचनं लोके सर्वशष्ट्रेष्ववर्त्तत ॥ ४४ ॥ वीरस्त्नां काशिसुते देशानां करुजाङ्गलम् । सर्वथमीवदां भीष्मः पुराणं गजसाह्वयम् ॥ ४५ ॥ 998

महाभारत

अर्थ-नष्ट हुए २ शान्तनु के वंश का पुनरुद्धार देखकर सव देशों में इस प्रकार प्रसिद्धि फेल गई कि संसार भर की वीरमाताओं में काशीराज की पुत्रियें, देशों में कुरुजाङ्गल देश, धर्मज्ञानियों में भीष्म और सब नगरों में हस्तिनापुर बढ़कर है॥

धतराष्ट्रस्त्वचक्षुष्ट्वाद्राज्यं न प्रत्यपद्यत । पारसवत्त्वादिदुरो राजा पाण्डर्वभूव ह ॥ ४६ ॥

अर्थ-अन्या होने से घृतराष्ट्र को और दासी पुत्र होने से विदुर को राज्य नहीं मिला, इसलिये पाण्ड राजा बनाया गया ॥

कदाचिद्य गाङ्गेयः सर्वनीतिमतांवरः । विदुरं धर्मतत्त्वज्ञं वाक्यमाह यथोचितम् ॥ ४७॥

अर्थ-एक समय नीतिज्ञों में श्रेष्ठ भीष्म धर्म के तत्ववेत्ता विदुर से इस प्रकार उचित वचन वोले॥

इति अष्टमोऽध्यायः समाप्तः

अथ नवमोऽध्यायः प्रार्भ्यते

भीष्म उवाच

गुणैः समुदितं सम्यगिदं नः प्रथितं कुलम् । अप्यन्यान् पृथिवीपालान् पृथिव्यामिधराज्यभाक् ॥१॥ रिक्षतं राजिभः पूर्वं धर्मविद्धिमहात्माभः । नोत्सेदमगमचेदं कदाचिदिह नः श्रुतम् ॥ २ ॥ अर्थ-भीष्मजी बोले कि हमारा यह विख्यात वंश सर्वगण-

अर्थ-भीष्मजी बोले कि हमारा यह विख्यात वंश सर्वगुण-सम्पन्न तथा पृथ्वीभर के अन्य राजाओं के राज्य का भी भागी है, इमने सुना है कि धर्भज्ञानी महात्या राजा पहले से इसकी रक्षा करते रहे हैं इसलिये इसका नाश कभी नहीं हुआ ॥

मया च सत्यवत्या च कृष्णेन च महात्मना । समवस्थापितं भूयो युष्मासु कुलतन्तुषु ॥३॥ तचैतद् वर्द्धते भूयः कुलं सागर वद्यथा । तथा मया विधातव्यं त्वया चैव न संशयः ॥४॥

अर्थ-मैंने, सत्यवती ने और महात्मा न्यासजी ने तुम तीनों कुलवर्द्धकों की उत्पत्तिद्वारा इस कुल का पुनरुद्धार करिदया है इसमें संशय नहीं, अब मेरा और तुम्हारा वह कर्तव्य है कि जिससे यह वंश समुद्र के समान फिर से फैल जावे वहीं हमें करना चाहिये॥

श्र्यते यादवी कन्या स्वनुरूपा कुलस्य नः । सुबलस्यात्मजा चैव तथा मद्रेश्वरस्य च ॥५॥ कुलीना रूपवत्याश्च ताः कुन्याः पुत्र सर्वशः । उचिताश्चेव संबन्धे ह्यस्माकं क्षत्रियर्पभाः ॥६॥

अर्थ-मुना जाता है कि यदुवंश की कन्या, मुवल और मद्रनरेश की पुत्रियें हमारे वंश के योग्य हैं, हे पुत्र ! वह श्रेष्ठ क्षत्रियों की पुत्रियें कुलीन,सब प्रकार से रूपवर्ती और हम लोगों के साथ विवाह सम्बन्ध करने योग्य हैं॥

मन्ये वरियतव्यास्ता इत्यहं धीमतां वर । सन्तानार्थं कुलस्यास्य यदा विदुर मन्यसे ॥ ६॥

अर्थ-हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विदुर! मैं समझता हूं कि इस कुछ के चलाने के लिये उन कन्याओं का वरण कर लेना चाहिये अथवा जैसी तुम्हारी सम्मति हो॥ 9,96

महाभारत

विदुर उवाच

भवान् पिता भवान् माता भवानः परमो ग्रहः ।
तस्मात् स्वयं कुलस्यास्य विचार्यकुरुयद्धितम् ॥७॥

अर्थ-विदुर वोले कि आप हमारे पिता, आपही माता और आपही परम गुरु हैं, अतएव इस कुल के लिये जो हित हो वह आप स्वयं विचार कर करें ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो गान्धारराजस्य प्रेषयामास भारत । अचधुरिति तत्रासीत् सुवलस्य विचारणा ॥८॥ कुले ख्यातिं च वृत्तं च बुद्धचातु प्रसमीक्ष्य सः । ददो तां धृतराष्ट्राय गान्धारींधर्मचारिणीस् ॥९॥

अर्थ-वैशम्पायनबोले कि हे राजन ! तब भीष्मजी ने कंधारनरेश के समीप यह विवाह सम्बन्धी समाचार भेजा,परन्तु राजा सुबल को यह विचार हुआ कि वर नेत्रहीन है,अन्त में उसने बुद्धि द्वारा धृतराष्ट्र के कुल, यश और आचरण पर विचारकरके अपनी धर्मात्मा कन्या गान्धारी को धृतराष्ट्र के लिये दे दिया ॥

गान्धारी त्वथ शुश्रावधृतराष्ट्मचक्षुषम् । आत्मानं दित्सितं चास्मे पित्रा मात्रा च भारत।।१०।। ततः सा पटमादाय कृत्वा बहुगुणं तदा । बबन्धनेत्रे स्वे राजन् पतिव्रत परायणा । नाभ्यस्यां पतिमहमित्येवं कृतिनिश्चया ।।११॥ अर्थ-हे राजन् ! जव गान्धारी ने सुना कि धृतराष्ट्र नेत्रहीन हैं और मेरे माता पिता उसके साथ मेरा विवाह करना चाहते हैं तब उस पितवता ने उसी समय एक कपड़ा ले और उसकी कई तह बनाकर अपने नेत्रों पर इस विचार से पट्टी बांधली कि मैं अपने पित से बहुकर न रहुं॥

ततो गान्धारराजस्य पुत्रः शकुनिरभ्ययात् । स्वसारं वयसा लक्ष्म्या युक्तामादाय कौरवान् ॥१२॥ तां तदा धृतराष्ट्राय ददौ परमसत्कृताम् । भीष्मस्यानुमते चैव विवाहं समकारयत् ॥१३॥

अर्थ-तव कंघार के राजा का पुत्र शकुनि अपनीशोभासम्पन्न युवती बहिन को लेकर कुरुवंशियों के समीप पहुंचा, वहां उसने परम सत्कारपूर्वक धृतराष्ट्र के लिये अपनी भगिनी प्रदान कर भीष्म की सम्मति से उन दोनों का विवाह कर दिया ॥

दत्त्वा स भगिनीं वीरो यथाई च परिच्छदम् । पुनरायात् स्वनगरं भीष्मेण प्रतिप्रजितः ॥१४॥

अर्थ-वह वीर शकुनि अपनी भगिनी को यथोचित भृषण वस्तादि सहित दान करके भीष्म से सत्कार पाकर फिर अपने नगर को छोट आया॥

गान्धार्यपि वरारोहा शीलाचारिवचेष्टितैः । तुष्टिं कुरूणां सर्वेषां जनयामास भारत॥१५॥ वृत्तेन्नाराध्य तान् सर्वान् युक्त्पतिपरायणा । वाचापि पुरुषानन्यान् सुन्नता नान्वकीत्तेयत् ॥१६॥ अर्थ-हे राजव ! सुन्दरी गान्धारी ने भी अपने स्थभाव और उत्तम आचरण तथा कर्म द्वारा सब कुरुवंशियों को आनन्दित कर दिया, उस पतित्रता ने सदाचारपूर्वक अपने वड़ों की सेवा शुश्रूवा की और धृतराष्ट्र के अन्धा होने पर भी उसने अन्य पुरुष का कभी नाम तक न लिया ॥

वैशम्पायन उवाच

शूरो नाम यदुश्रेष्ठो वसुदेविपताभवत् । तस्य कन्या पृथा नाम रूपेणाप्रतिमा सुवि ॥१७॥

अर्थ-वैशम्पायनवोले किहे राजन ! यदुवंश में श्रेष्ठ वसुदेव का पिता "शूर" नामक था जिसकी "पृथा" नामक कन्या पृथ्वी पर रूप में अद्वितीय थी॥

पितृस्वस्रीयाय सतामनपत्याय भारत । अग्रवमग्रे प्रतिज्ञाय स्वस्यापत्यं स सत्यवाक् ॥१८॥ अग्रजामथ तां कन्यां शूरोऽनुग्रहकांक्षिणे । प्रददौ कुन्तिभोजाय सखा सख्ये महात्मने ॥१९॥

अर्थ-हेराजन!श्र्रने अपने पिता की भिगनी के पुत्र कुन्तिभोज से जो कि सन्तान रहित था पहले यह प्रतिज्ञा करली थी कि मैं अपनी पहली सन्तान तुम्हें दृंगा सो उस सत्यवादी ने अपनी पहले जन्मी हुई वह कन्या अनुग्रहाभिलापी महात्मा मित्र कुन्ति-भोज के लिये दान करदी ॥

सत्त्वरूपग्रणेपेता धर्मारामा महाब्रता । द्विहता क्रन्तिभोजस्य पृथा पृथुललोचना ॥२०॥ तां रत्त तेजस्विनीं क्न्यां रूपयौवनशालिनीम् । व्यावृण्यन् पार्थिवाः केचिदतीवस्त्रीगुणैर्युताम् ॥२१॥ अर्थ-वह कुन्तिभोज की पुत्री " पृथा " विशाल नेत्रों वाली, उत्साह, रूप तथा गुणों वाली, धर्मनिष्ठ और वड़ी व्रतधारिणी थी. उस रूप योवन सम्पन्न तेजस्विनी तथा स्त्री के गुणों से युक्त कन्या को कई एक राजाओं ने वरण किया ॥

ततः सा कुन्तिभोजेन राज्ञाहूय नराधिपान् । पित्रा स्वयंवरे दत्ता दुहिता राजसत्तम ॥२२॥ ततः सा रङ्गमध्यस्थं तेषां राज्ञां मनस्विनी । ददर्श राजशार्दृलं पाण्डं भरतसत्तमम् ॥२३॥

अर्थ-हे महाराज! तब राजा कुन्तिभोज ने अपनी पुत्री को खयंबर में राजाओं को बुलाकर देना निश्चय किया, उस तेजिस्बनी ने उन राजाओं के रंगशाला में बैठे हुए भरतकुल भूषण तथा राजाओं में सिंहसमान "पाण्डु" राजा को देखा, और :-

तं दृष्ट्वा सानवद्याङ्गी कुन्तिभोजस्ता शुभा । पाण्डं नरवरं रङ्गे हृदयेनाकुलाभवत् ॥२४॥ ततः कामपरीताङ्गी सकृत्प्रचलमानसा । ब्रीडमाना सजं कुन्ती राज्ञः स्कन्धेसमासजत् ॥२५॥

अर्थ-कुन्तिभोज की वह सुन्दरी कन्या उस परमसुन्दर पाण्ड राजा को देखते ही हृदय में व्याकुल होगई, पश्चात काम से पीड़ित और एक वार चित्त में चञ्चल हुई २ कुन्ती ने लज्जा के साथ राजा पाण्ड के गले में माला डालदी ॥

तं निशम्य वृतं पाण्डं कुन्त्या सर्वे नराधिपाः । यथा गतं समाजग्मुर्गजैरखेरथैस्तथा ॥२६॥

224

महाभारत

ततस्तस्याः पिता राजन् विवाहमकरोत्प्रभुः । कुन्त्याः पाण्डोश्च राजेन्द्र कुन्तिभोजो महीपतिः ॥२७॥

अर्थ-मब राजा लोग यह सुनकर कि कुन्ती ने राजा पाण्डु को वर लिया अपने हाथी, घोड़े और रथों पर चढ़कर अपने २ स्थान को चले गये, हे राजन ! पश्चात कुन्ती के पिता प्रभावशाली राजा कुन्तिभोज ने कुन्ती और पाण्डु का विवाह कर दिया॥

कृत्वोद्धाहं तदा तं तु नानावसुभिरिचितम् । स्वपुरं प्रेपयामास स राजा कुरुसत्तम् ॥ २८ ॥ संप्राप्य नगरं राजा पाण्डः कौरवनन्दनः। न्यवेशयत तां भार्या कुन्तीं स्वभवने प्रभुः ॥२९॥

अर्थ-हे कुरुश्रेष्ठ राजन ! राजा कुन्तीभोज ने राजा पाण्ड का विवाह करके और उनको नाना प्रकार के पदार्थों से सत्कृत कर उनके अपने नगर "हिस्तिनापुर" को भेज दिया, प्रभावशाली कुरुवंशियों को आनिन्दित करने वाले राजा पाण्ड ने अपने नगर में पहुंचकर धर्मपत्नी कुन्ती को अपने महल में उतारा ॥

इति नवमोऽध्यायः समाप्तः

अथ दशमोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

वशम्पायन उवाच ततः शान्तनवो भीष्मो राज्ञः पाण्डोर्यशस्विनः । विवाहस्यापरस्यार्थे चकार मतिमान्मतिम् ॥ १॥ सोऽमात्येः स्थविरैः सार्द्ध ब्राह्मणेश्च महर्षिभिः। बलेन चतुरङ्गेण ययो मद्रपतेः पुरम् ॥ २॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन! इसके पश्चात बुद्धिमान शन्तनुपुत्र भीष्मजी ने विचार किया कि प्रतापी राजा पाण्ड का दूसरा विवाह किया जाय, सो वह वृद्ध मन्त्रियों, ब्राह्मणों, ऋषियों और चतुरङ्ग सेना को साथ लेकर मद्र=मद्रास के राजा के नगर में पहुंचे ॥

तमार तमिश्रुत्य भीष्मं बाह्ळीकपुङ्गवः । प्रत्युद्गम्याचियत्वा च पुरं प्रावेशयन्तृपः ॥ ३ ॥ तं भीषाः प्रत्युवाचेदं मद्रराजं कुरुद्धहः । आगतं भी विजानीहि कन्यार्थिनमरिन्दम ॥ ॥

अर्थ-बाह्लीकंव्या में श्रेष्ठ मद्रनरेश भीष्म का आगमन सुनकर उनका स्वागत और सत्कार करके अपने नगर में लेगया, कुरुवंशियों में श्रेष्ठ भीष्मजी मद्रनरेश से बोले कि है शच्चमन्तापक! मैं कन्या के लिये आया हूं ॥

श्रूयते भवतः साध्वी स्वसा माद्री यशस्विनी । तामहं वरियष्यामि पाण्डोरथें यशस्विनीम् ॥५॥ यक्तरूपो हि संबन्धे तं नो राजन् वयं तव । एतत् संचिन्त्य मद्रेश गृहाणास्मान्यथाविधि ॥६॥

अर्थ-सुना है कि आपकी गुणवती तथा सदाचारिणी "माट्री" नामक वहिन है, सो राजा पाण्डु के लिये उस कीर्त्तिमती कन्या को मैं बरना चाहता हूं. हे राजन ! विवाहसम्बन्ध में तुम हमारे और हम तुम्हारे समान हैं, ऐसा मोचकर आप हमें विधिपूर्वक ग्रहण करें॥ इत्युक्त्वा स महातेजाः शातक्रमभं कृताकृतम् । रत्नानि च विचित्राणि शल्यायादात्सहस्रशः ॥७॥ गजानश्वात्रथांश्चेव वासांस्याभरणानि च । मणिमुक्ता प्रवालं च गाङ्गेयो व्यसृजच्छुभम् ॥८॥

अर्थ-महातेजस्वी भीष्म ने ऐसा कहकर राजा शल्य को खुवर्ण, सुवर्ण की मोहरें और अनेक प्रकार के हज़ारों रत्न प्रदान किये, भीष्म ने शल्य को उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, भूषण और उत्तम मणियें, मोती तथा मूंगे भी दिये॥

तत्प्रगृह्य धनं सर्व शल्यः संप्रीतमानसः । ददौ तां समलङ्कृत्य स्वसारं कौरवर्षभे ॥ ९ ॥ तत इष्टेऽहिन प्राप्ते मुहूर्त्ते साधुसम्मते । जग्राह विधिवत्पाणिं माद्रचाः पाण्डुर्नराधिपः॥१०॥

अर्थ-राजा शल्य ने मन में प्रसन्न हो, वह सब धन लेकर अपनी बहिन माद्री को अलंकृत करके कुरुवंशभूषण भीष्म को दे दिया, इसके पश्चाद सज्जनों की सम्मित से शुभ दिन और उत्तम मुहूर्त्त में राजा पाण्डु ने विधिपूर्वक माद्री से विवाह किया॥

ततो विवाहे निर्वृत्ते स राजा कुरुनन्दन ।
स्थापरामास तां भायां शुभे वेश्मनि भाविनीम् ॥११
स ताभ्यां व्यचरत् सार्द्धं भार्षाभ्यां राजसत्तम ।
कुन्त्या माद्र्याच राजेन्द्र यथाकामं यथासुस्तम्॥१२॥

अर्थ-हे कुरुवंशानन्दकारी राज र ! विवाह होने के पश्चात सुना पाण्डु ने धर्मपत्नी माद्री को अपने उत्तम महल में बास दिया. है महाराज ! राजा पाण्डु अपनी दोनों भार्याओं अर्थात् कुन्ती और भाद्री के साथ यथेष्ट सुखपूर्वक गृहस्थधर्म का आचरण करता रहा ॥

ततः स कौरवो राजा विहत्य त्रिदशा निशाः । जिगीषया महीं पाण्डिनिरकामत्पुरात् प्रभो ॥१३॥ स भीष्मप्रमुखान् वृद्धानभिवाद्य प्रणम्य च । धृतराष्ट्रं च कौरव्यं तथान्यान् कुरुसत्तमान् । गजवाजिरथौधेन बलेन महतागमन् ॥१४॥

अर्थ-हे राजन ! तव वह कुरुवंशी पाण्ड राजा तीस रात्रि= एक मास तक ग्रहस्थ में रहकर पृथ्वी का विजय करने के लिये अपने नगर से चला, चलने से पहले उसने भीष्म आदि वृद्ध पुरुषों, कुरुवंशभूषण धृतराष्ट्र तथा अन्य पुरुषों को अभिवादन तथा प्रणाम कर और साथ में हाथी घोड़े तथा रथों की वड़ी सेना लेकर चलदिया॥

हृष्टपुष्टबलैः प्रायात् पाण्डः शत्रूननेकशः । पूर्वमागस्कृतो गत्वा दशाणीः समरे जिताः ॥१५॥

अर्थ-पाण्ड ने हृष्ट पुष्ट सेना के साथ अनेक शच्चओं पर चढ़ाई की, उसने सब से पहले "दशार्ण"=कच्छ आदि सामुद्रीय देश के लोगों को युद्ध में विजय किया जो बड़े राजविरोधी थे॥

ततः सेनामुपादाय पाण्डर्जानाविधध्वजाम् । प्रभूतहस्त्यश्वयुतां पदातिरथसङ्कुलाम् ॥ १६॥ आगस्कारी महीपानां बहुनां बलदर्पितः । गोप्ता मगधराष्ट्रस्य दीघों राजगृहे हतः ॥ १७॥ अर्थ-तवराजा पाण्ड ने नाना प्रकार की ध्वजाओं वाली तथा असंख्य हाथी, घोड़े, पैदल और रथों से परिपूर्ण अपनी सेना को साथ लेकर मगधदेश के बड़े राजा को जो बहुत से राजाओं का अपराधी और जिसको अपने वल का अति अभिमान था उसको राजभवन में ही मार डाला ॥

ततः कोषं समादाय वाहनानि च भूरिशः । पाण्डना मिथिलां गत्वा विदेहाः समरे जिताः ॥१८॥ तथा काशिषु सुह्रेषु पुण्डेषु च नर्रिभ । स्वबाहुबलवीर्येण कुरूणामकरोद्यशः ॥ १९॥

अर्थ-तव पाण्ड वहां का कोष=ख़ज़ाना और बहुत सी सवारियें घोड़े आदि लेकरमिथिलापुरी मेंपहुंचा और वहां विदेह लोगों को युद्ध में विजय किया, हे पुरुषश्रेष्ठ राजन ! इसके अतिरिक्त उसने काशी तथा काशी प्रान्तीय सुझ और पुण्ड देशों में भी अपने भुजवल के प्रभाव से कुरुवंशियों का यश फैला दिया ॥

तं शरोघमहाज्वालं शस्त्रार्चिषमरिन्दमम् । पाण्डपावकमासाद्य न दह्यन्त नराधिपाः ॥२०॥ ते ससेनाः ससेनेन विध्वंसित बलानृपाः । पाण्डना वशगाः कृत्वा कुरु कर्मसु योजिताः ॥२१॥

अर्थ-वह पाण्डुरूप शञ्चनाशक अग्नि जिसमें वाणों का समूह और शस्त्र मानो वड़ी २ ज्वालायें थीं जिसके समीप जाते ही विरोधी राजा भस्म होजाते थे, राजापाण्डुने अपनी सेना द्वारा उन राजाओं को सेना समेत विध्वंस करके अपने वंश के कौरव लोगों की सेवा में नियुक्त कर दिया ॥

तं कृताञ्जलयः सर्वे प्रणता वसुधाधिपाः ।

उपाजग्मुर्धनं गृह्य रत्नानि विविधानि च।।२२॥ तदादाय ययो पाण्डः पुनर्मुदितवाहनः । हर्षमिष्यन् स्वराष्ट्राणि पुरं च गजसाह्वयम् ॥२३॥

अर्थ-तदमन्तर सब राजा लोग नम्र हुए २ हाथ जोड़ कर धन और विविध प्रकार के रत्न लेकर पाण्ड की सेवा में आ उपस्थित हुए, उस उपहार को लेकर राजा पाण्ड प्रसन्नतापूर्वक रथ पर चढ़ अपने देश= "हस्तिनापुर" नगर को हर्ष देने के लिये लौट आया ॥

शान्तनो राजसिंहस्य भरतस्य च धीमतः । प्रनष्टः कीर्त्तिजः शब्द पाण्डुना पुनराहृतः ॥२४॥

अर्थ-राजेन्द्र शान्तनु और महा बुद्धिमान राजा भरत के नष्ट हुए यशपूर्ण नाम को पाण्डु ने फिर से प्रसिद्ध कर दिया ॥

ये पुरा कुरुराष्ट्राणि जहुः कुरुथनानि च। ते नागपुरसिंहेन पाण्डना करदीकृताः ॥२५॥ इत्यभाषन्त राजानो राजामात्याश्च सङ्गताः । प्रतीतमनसो हृष्टाः पौरजानपदैः सह ॥२६॥

अर्थ-राजा, राजाओं के मन्त्री तथा नगर और प्रान्त के निवासी लोग सब मन में प्रसन्न हुए २ हर्ष से कहने लेग कि जिन्होंने पहले कुरु देश और कौरवों के धन को विजय किया था अब हस्तिनापुर के सिंह पाण्डु ने उनको कर देने वालाबना दिया॥

प्रत्युद्यस्थ्य तं प्राप्तं सर्वे भीष्मपुरोगमाः । तेन दूरमिवाध्वानं गत्वा नागपुरालयात् ॥२७॥ 256

महाभारत

आरतं ददृश्रिष्ट्षा लोकं बहुविधेर्धनेः। नानायानसमानीते रत्नेरुचावचैस्तदा ॥२८॥

अर्थ-जब पाण्ड विजय करके अपने देश में पहुंचा तो भीष्म आदि सब लोग हस्तिनापुर से चलकर बहुत दूर उसका स्वाबत करने के लिये गये, और वहां सब लोगों ने हर्षपूर्वक देखा कि राजा पाण्ड के सब सैनिक लोग अनेक प्रकार के धनों और भिन्न र सवारियों में लदे हुए नाना रह्नों से धिरे हुए हैं॥

हस्त्यन्धरथरतेश्च गोभिरुष्ट्रैस्तथाविभिः। नान्तं ददृशुरासाद्य भीष्मेण सह कौरवाः॥२९॥

अर्थ-तब भीष्म समेत सब कुरुवंशियों ने देखा कि पाण्डु के साथ हाथी, घोड़े, रथ,रक्र,गौवें,ऊंट और भेडें आदि का कोई अन्त नहीं॥ सोऽभिवाद्य पितुः पादी कौशल्यानन्दवर्द्धनः। यथाई मानयामास पोरजानपदानपि॥३०॥

अर्थ-माता अम्बालिका के आनन्दकारी पुत्र पाण्डु ने पितामह भीष्मजी के चरणों में अभिवादन करके नगर और प्रान्त के निवासियों का भी यथोचित सत्कार किया ॥

प्रम्हा रिपुराष्ट्राणि कृतार्थ पुनरागतम् ।
पुत्रमाहिलष्य भीष्मस्तु हर्षादश्रुण्यवर्तयत् ॥३१॥
स तूर्यशतशङ्खानां भेरीणां च महास्वनैः ।
हर्षयन् सर्वशः पौरान् विवेश गजसाह्वयम् ॥३२॥
अर्थ-इस प्रकार शञ्चओं के देशों को पर्दन कर, कृतार्थ हो
लौटे हुए पुत्र पाण्ड को आलिङ्गन करके भीष्मजी ने हर्ष के आंद्र

बहाये, राजा पाण्डु ने सैंकड़ों बाजों, शंखों और नगारों के नाद से सब पुरवासियों को हर्षित करते हुए हस्तिनापुर में प्रवेश किया॥ वैशम्पायन उवाच

धतराष्ट्राभ्यनुज्ञातः स्ववाहुविजितं धनम् । भीष्माय सत्यवत्ये च मात्रे चोपजहार सः ॥३३॥ विदुराय च वे पाण्डः प्रेषयामास तद्धनम् । सुहृदश्चापि धर्मात्मा धनेन सम तर्पयत् ॥३४॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! धृतराष्ट्र की आज्ञानुसार पाण्डु ने अपनी भुजाओं से जीता हुआ धन भीष्मजी, सत्यवती और माता अम्बालिका की भेट किया, उस धर्मात्मा ने उसमें से कुछ धन विदुरजी की सेवा में भी भेजा और कुछ अपने मित्रों को देकर उन्हें भी सन्तुष्ट किया॥

तस्य वीरस्य विकान्तैः सहस्र शत दक्षिणैः। अश्वमेध शतैरीजे धतराष्ट्री महामखैः॥३५॥

अर्थ-धृतराष्ट्र ने उस वीर पाण्डु के पराक्रम के सहारे वड़े २ सैंकड़ों अंक्वमेध यज्ञ किये और उनमें सैंकड़ों हज़ारों मुद्रा आदि दक्षिणायें दीं ॥

संप्रयुक्तस्तु कुन्त्या च माद्र्या च भरतर्षभ । जिततन्द्रस्तदा पाण्डर्बभूव वनगोचरः ॥३६॥ हित्वा प्रासादनिलयं शुभानि शयनानि च । अरण्यनित्यः सततं बभूत मृगया परः॥३७॥ भर्य-दे भरतवंशभूषण गजत ! इसके पश्चात कुन्ती और माद्री की मेरणा से पाण्डु आलस्य को जीतकर वन में मृगया के लिये रहने लगा, वह अपने महल और मृन्दर सेजें छोड़कर सदा वन में रहकर शिकार में आसक्त होगया॥

स चरन दक्षिणं पार्च रम्यं हिमवतो गिरेः।
उवास गिरिपृष्ठेषु महाशाल वनेषु च ॥ ३८॥
तस्य कामांश्च भोगांश्च नरा नित्य मतन्द्रिताः।
उपजहुर्वनान्तेषु धृतराष्ट्रेण चोदिताः॥३९॥

अर्थ-वह हिमालय पर्वत के सुन्दर दक्षिणी थाग में घूमता हुआ पहाड़ के ऊपरी खण्डों और साल वृक्षों के घने जंगलों में निवास करने लगा, उन वनों में भी धृतराष्ट्र की भैरणा से वहां के लोग सदा आलस्य रहित होकर पाण्डु के लिये इच्छित भोग की सामग्री पहुंचात रहते थे॥

राजपुत्रस्तु कौरव्यः पाण्डर्मूलफलाशनः। जगाम सहपत्नीभ्यां ततो नागरातं गिरिम् ॥४०॥ स नैत्ररथमासाद्य कालक्टमतीत्य च । हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययो गन्धमादनम् ॥४१॥

अथ-कुरुवंशी राजकुमार पाण्ड कंद, मूल, फलों से निर्वाह करता हुआ दोनों स्त्रियों सहित "नागशत " पर्वत पर गया, पञ्चाद चैत्ररथ, कालकूट और हिमालय को क्रम से लांघता हुआ "गन्धमादन " पर पहंचा ॥

रक्ष्यमाणो महाभूतैः सिद्धे इत परमर्षिभिः । उवास स महाराज समेषु विषमेषु च ॥ ४२॥

इन्द्रचुम्नसरः प्राप्य हंसकूटमतीत्य च । शतशृंगे महाराज तापसः सम तप्यत ॥४३॥

अर्थ-हे महाराज ! बड़े पराक्रमी सिद्ध पुरुष और महर्षियों से रक्षा किया हुआ राजा पाण्डु पर्वत के सम-विषम स्थानों में वास करता रहा, हे राजन ! वह इन्द्रबुम्न नामी झील पर पहुंच और हंसकूट को लांघकर " ज्ञतश्रुङ्ग " पर्वत पर तपस्त्रियों की भांति तप करने लगा ॥

अथ पारसवीं कन्यां देवकस्य महीपतेः। रूपयौवनसम्पन्नां स शुश्रावापगा सुतः॥ ४४॥

अर्थ-इसके अनन्तर भीष्मजी ने सुना कि शुद्रा से उत्पन्न देवक राजा की पुत्री रूप यौवन सम्पन्न है ॥ ततस्तु वरियत्वा तामानीय भरतर्पभ । विवाहं कारयामास विदुरस्य महीपतेः ॥४५॥ तस्यां चोत्पादयामास विदुरः कुरुनन्दनः । पुत्रान् विनय सम्पन्नानात्मनः सदृशान् युणैः॥४६॥

अर्थ-हे भरतकुल श्रेष्ठ ! तब भीष्मजी उस कन्या को वर कर हस्तिनापुर में लाये और महाबुद्धिमान निदुरजी का उसके साथ विवाह करदिया, कुरुवंश के आनन्दकारी विदुरजी ने उस भार्या से अपने ही समान गुणसम्पन्न तथा विनीत पुत्र उत्पन्न किये॥

इति दशमोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकादशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः पुत्रशतं जज्ञे गान्धार्या जनमेजय । पाण्डोः कुन्त्यां च माद्र्यां च पुत्राः पंच महारथाः ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे जनमेल्य ! तत्पश्चात धृतराष्ट्र से गन्धारी में सौ पुत्र और पाण्डु से कुल ाथा बाद्रीमें महारथी पांच पुत्र उत्पन्न हुए ॥

जज्ञे क्रमेण चैतेन तेषां दुर्योधनो नृपः । जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः ॥२॥ यास्मित्रहान दुर्धपों जज्ञे दुर्योधनस्तदा । तिस्मित्रेव महाबाहुर्जज्ञे भीमोऽपि वीर्यवान् ॥३॥

अर्थ-उन सौ पुत्रों में क्रमपूर्वक पहले राजा दुर्योधन उत्पन्न हुआ, परन्तु जन्मकाल की अपेक्षा राजा युधिष्ठिर उससे भी वड़ा था, जिस दिन पराक्रमी दुर्योधन का जन्म हुआ ठीक उसी दिन महाबाहु पराक्रमी भीमसेन उत्पन्न हुआ ॥

जनमेजय उवाच

ज्येष्ठानुज्येष्ठतां तेषां नामानिच पृथक् पृथक् । धृतराष्ट्रस्य पुत्राणामानुपूर्व्या प्रकीर्त्तय ॥४॥

अर्थ-जनमेजय बोले कि हे वैशम्पायन ! धृतराष्ट्र के उन सी पुत्रों का क्रम से बड़ा छोटापन और उनके अलग २ नामों का कथन करें ॥

आदिपर्व-एकादशाध्याय

933

वैशम्पायन उवाच

दुर्योधनो युयुत्सुरच राजा दुःशासनस्तथा। दुःसहो दुःशलरचेव जलसन्धः समः सह॥५॥ विन्दानुविद्यो दुर्धर्षः सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः। दुर्भर्षणो दुर्सुखरच दुष्कर्णः कर्ण एव च॥६॥

अर्थ-तब वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! उन सब के नाम सुनें:(१) दुर्योधन (२) युयुत्सु (३) दुःशासन (४) दुःसह (५)
दुःशल (६) जलसन्ध (७) विन्द (८) अनुविद्य (९) दुर्धर्ष (१०)
सुवाहु (११) दुष्पधर्षण (१२) दुर्भर्षण (१३) दुर्मुख (१४) दुष्कर्ण
(१५) कर्ण ॥

विविंशतिर्विकर्णश्च शलःसत्त्वाः सुलोचनः । चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारुचित्रः शरासनः ॥७॥ दुर्मदो दुर्विगाहश्च विवित्सुविकटाननः । क्रणनाभः सुनाभश्च तथा नन्दोपनन्दकौ ॥८॥

अर्थ-(१६) विविश्वति (१७) विकर्ण (१८) शह (१९) सत्वा (२०) सुलोचन (२१) चित्र (२२) उपचित्र (२३) चित्राक्ष (२४) चारुचित्र (२५) शरासन (२६) दुर्मद (२७) दुर्विगाह (२८) विवित्सु (२९) विकटानन (३०) ऊर्णनाभ (३१) सुनाभ (३२) नन्द (३३) उपनन्दक ॥

चित्रवाणिश्वत्रवर्मा सुवर्मा दुर्विमोचनः । अयोवाहुर्महाबाहुश्वित्रांगश्वित्रकुण्डलः ॥९॥ भीमवेगो भीमवलो वलाकी बलवर्द्धनः ।

उप्रायुधः सुषेणश्च भीमकर्मा महोदरः ॥ १०॥

अर्थ-(३४) चित्रवाण (३५) चित्रवर्षा (३६) सुवर्षा (३०) दुर्विमोचन (३८) अयोवादु (३९) महावादु (४०)चित्राङ्ग (४९) चित्रकुण्डल (४२) भीमवेग (४३) भीमवल (४४) वलाकी (४८) वलवर्द्धन (४६) उग्रायुध (४०) सुपेण (४८) भीमकर्षा (४९) महोद्र॥

चित्रायुधो निषंगी च पाशी वृन्दारकंस्तथा। हृद्वर्मा हृदक्षत्रः सोमकीर्त्तिरनृद्रः ॥ ११ ॥ हृदसन्धो जरासन्धः सत्यसन्धः सदःसुवाक् । उप्रश्रवा उप्रसेनः सेनानीर्दुष्पराजयः ॥ १२ ॥

अर्थ-(५०) चित्रायुध (५१) निषंद्री (५२) पाशी (५३) पृन्दारक (५४) दृढवर्मा (५५) दृढक्षत्र (५६) सोमकीर्त्त (५७) अनृद्दर (५८) दृढसन्ध (५९) जरासन्ध (६०) सत्यसन्ध (६१) सदः सुवाक (६२) जग्रश्रवा (६३) जग्रसेन (६४) सेनानी (६५) दृष्पराजय ॥

अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः । हटहस्तः सहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ ॥ १३ ॥ आदित्यकेतुर्वह्वाशीर्नागदत्तोग्रयाय्यपि । कवची क्रशनः कुण्डो कुण्डधारो धनुर्धरः ॥१४॥

अर्थ-(६६) अपराजित (६७) कुण्डशायी (६८) विशालाक्ष (६८) दुराधर (७०) दृढहस्त (७२) मुहस्त (७२) वातवेग (७३) गुवर्चा (७४) आदित्यकेतु (७५) नागदत्त (७६) अग्रयायी (७७) कर्वा (७८) क्रशन (७२) कुण्ड (८०) कुण्डधार (८१) धनुर्धर ॥

उग्रभीमरथे। वीरो वीरवाहुरलोखुपः । अभयो रोद्रकर्मा च तथा दृदरथाश्रयः ॥ १५ ॥ अनायृष्यः कुण्डभेदी विरावी चित्रकुण्डलः । प्रमथश्च प्रमाथी च दीर्घरोमश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥

अर्थ-(८२) उग्र (८३) भीमरथ (८४) वीरवाहु (८५) अलोलुप (८६) अभय (८७) रौद्रकर्मा (८८) अनाधृष्य (८९) कुण्डभेदी (२०) विरावी (९१) चित्रकुण्डल (२२) प्रमथ (९३) प्रमाथी (२४) दीर्घरोम ॥

दीर्घवाहुर्महावाहुर्व्यूढोरुः कनकध्वजः । कुण्डाशी विरजाश्चेव दुःशला च शताधिका ॥१७॥ इति पुत्रशतं राजन् कन्या चैव शताधिका । नामधेयानुष्ठ्यंण विद्धि जन्मकमं नृए ॥१८॥

अर्थ-(२५) दीर्घवाहु (२६) महावाहु (२७) ब्यूढोरु (२८) कनकथ्वज (२९) कुण्डाशी (१००) विरजा, यह सौ पुत्र और इनके पीछे एक "दुःशला" कन्या भी उत्पन्न हुई, हे राजन ! यह सौ धृतराष्ट्र के पुत्र तथा एकसौ एकवीं कन्या थी, और इन नामों के क्रम से ही इनके जन्म का क्रम भी जानना चाहिये॥

सर्वे त्वतिरथाः शूराः सर्वे युद्धविशारदाः । सर्वे वेद्विदश्चेव सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः ॥ १९ ॥ अर्थ-यह मत्र पुत्र बहे सैनिक, बीर, युद्ध करने में प्रवीण, बेद

के ज्ञाना और सब प्रकार की शस्त्र-अस्त्रविद्या में निपुण थे॥ सर्वेषामनुरूपाश्च कृता दारा महीपते । 938

महाभारत

धतराष्ट्रेण समये परीक्ष्य विधिवन्तृप ॥ २० ॥ दुःशलां चापि समये धतराष्ट्रो नराधिपः । जयद्रथाय प्रददौ विधिना भरतर्षभ ॥ २१ ॥

अर्थ-हे राजन ! राजा धृतराष्ट्र ने विधिपूर्वक परीक्षा करके ठीक अवसर पर सब पुत्रों का अनुकूल भार्याओं के साथ विवाह किया, हे भरतकुल भूषण! राजा धृतराष्ट्र ने अपनी कन्या "दुःशला" भी समय पर जयद्रथ को विधिपूर्वक प्रदान की ॥

जनमेजय उवाच

कथितो धार्तराष्ट्राणामार्षः सम्भव उत्तमः । अमनुष्यो मनुष्याणां भवता ब्रह्मवादिना ॥ २२ ॥ नामधेयानि चाप्येषां कथ्यमानानि भागद्याः । त्वत्तः श्रुतानि मे ब्रह्मन्पाण्डवानां च कीर्त्तय ॥२३॥

अर्थ-जनमेजय बोला कि हे वेद के ज्ञाता वैशम्पायन! आपने धृतराष्ट्र के पुत्रों का जनमचरित जो ऋषियों के समान उत्तम और उनके मनुष्य होते हुए भी अन्य मनुष्यों से अपूर्व है कथन किया, हे ब्रह्मन ! मैंने आपसे कहे हुए इनके नाम भी पृथक २ सुने, अव कृपाकरके पाण्ड के पुत्र पाण्डवों के नाम सुनावें !!

नामानि चिकरे तेषां शतशृङ्गनिवासिनः ।
भक्तया च कर्मणा चैव तथाशीर्भिर्विशांपते ॥२४॥
ज्येष्ठं युधिष्ठिरेत्येवं भीमसेनेति मध्यमम् ।
अर्जनिति तृतीयं च कुन्तीपुत्रानकत्पयन् ॥२५॥
अर्थ-हे राजन ! क्षतशृङ्ग पर्वन के रहते वाले ऋषियोंने भक्ति,

संस्कारकर्म तथा श्रम कामनाओं के साथ उन "पाण्डवों" के यह नाम रक्खे, कुन्ती के तीनो पुत्रों में सब से वेड़े का नाम "युधिष्ठिर" वीच के पुत्र का नाम "भीयसेन" और छोटे पुत्र का नाम "अर्जुन" धरा ॥

पूर्वजं नकुलेत्येवं सहदेवेति चापरम् । माद्रीपुत्रावकथयंस्ते विद्वाः प्रीतमानसाः ॥२६॥ अनुसंवत्सरं जाता अपि ते कुरुसत्तमा । पाण्डपुत्रा व्यराजन्त पंच संवत्सरा इव ॥ २७॥

अर्थ-प्रसन्निच हुए २ ब्राह्मणों ने माद्री के दोनो पुत्रों मेंसे बड़े जा नाम "नकुल" और छोटे का नाम "सहदेव" रखा, एक २ साल के पश्चात जन्मे हुए भी वह कुरुवंश में उत्तम पाण्डु के पुत्र पांचवर्ष के समान शोभायमान प्रतीत होते थे॥

पाण्डर्हष्ट्वा स्तांस्तांस्त देवरूपान्महोजसः । सुदं परिमकां लेभे ननन्द च नराधिपः ॥ २८॥ ऋषीणामपि सर्वेषां शतशृंगनिवासिनाम् । प्रियां वभूवस्तास्तां च तथैव सुनियोषिताम् ॥२९॥

अर्थ-राजा पाण्ड अपने पुत्रों को देवताओं के समानमभावशाली देखकर परम आनित्त और समृद्ध होगया, वह पाण्डव शतश्रृङ्ख के रहने वाळे सब ऋषियों तथा ऋषिपत्रियों के परम प्यारे बनगये।।

सम्भूताः कीर्निभन्तश्च कुरुवंशविवर्द्धनाः । शुभलक्षणसंपन्नाः सोमवित्रयदर्शनाः ॥ ३०॥ सिंह दर्पा महेष्वासाः सिंहविकान्तगामिनः ।

सिंह ग्रीवा मनुस्येन्द्र ववृधुर्देवविक्रमाः ॥३१॥

अर्थ-हे राजन ! इस प्रकार पाण्ड के पुत्र महावली, कीर्तिभान कुरुवंश के बढ़ाने वाले, शुभलक्षणों से युक्त, चन्द्रभा के समान सन्दर् ह्रप वाले, सिंह समान पराक्रमी, बड़े बाण चलाने वाले, सिंह के समान गर्दन वाले और देवताओं के समान तेजस्वी क्रम र से बढ़ने लगे॥

विवर्द्धमानास्ते तत्र पुण्ये हैमवते गिरौ। विस्मयं जनयामासुर्महर्षीणां समेयुषाम् ॥ ३२॥ ते च पंच शतं चैव कुरुवंशविवर्द्धनाः। सर्वे ववृधुरुत्येन कालेनाप्स्वव नीरजाः॥ ३३॥

अर्थ-वह उस पित्र हिमालय पहाड़ पर क्रमशः बड़े होते गये और जो ऋषि लोग वहां आते रहे उन सबको अपने गुणों से विस्मित करते रहे, वह पांच पाण्डु के और सौ धृतराष्ट्र के अर्थात् एकसो पांच कुरुवंश के बढ़ाने वाले पुत्र बहुत थोड़े समय में बड़े २ होगये, जैसे जल में कमल शीघ बढ़जाता है॥

इति एकादशोऽध्यायः समाप्तः

अथ दादशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैदाम्पायन उवाच

सुप्रिष्यतवने काले कदाचिन्मधु माधवे । भूत सम्मोहने राजा सभायों व्यचरद्रनम् ॥ १॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! एक समयवसनत ऋतु के वैशाल मास में सब प्राणियों को मोहित करने वाले सुन्दर फूले हुए वन में राजा पाण्ड अपनी भार्याओं सहित भ्रमण कर रहा था।।
पलाशेस्तिलकेश्चृतैश्चम्यकेः पारिभद्रकेः।
किर्णिकारेरशोकेश्च केशरेरितमुक्तकेः॥ २॥
तथा कुरवकेश्चेव मन्तभ्रमरनाहितेः।
वृतैर्मञ्जरितेश्चेव पारिजातवनैः शुभैः॥ ३॥

अर्थ-पलाश, तिलक=तिल वृक्ष, आम, चमेली, पारिभद्रक= देवदारु, कनेर, अशोक, केसर, अतिमुक्तक=मोतिया और कुरुवक इत्यादि पुष्प वृक्षों से वह वन मुशोभित था जिन पर मत्त हुए र भोरे गुंजार रहेथे और जिनसे पारिजात वृक्षों के रमणीय मञ्जूरी युक्त वन घिरे हुएथे॥

कलकण्डकलोद्धष्टं पटपदैः प्रतिकृजितम् । अन्येश्च वहुर्भिवृक्षेः फलपुष्प समृद्धिभिः ॥ ४॥ जलस्थानेश्च विविधैः पद्मिनीभिश्च शोभितम् । पाण्डोर्वनं तत् संप्रेक्ष्य प्रजज्ञे हृदि मन्मथः ॥ ४॥

अर्थ-वह वन कोयल और भौरों की मधुर ध्विन से गुंजाय-मान तथा अन्य अनेक प्रकार के फलपुष्पसंपन्न जल में होने वाले वृक्षों और कमलिनियों से सुशोभित था, उस वन को देखकर राजा पाण्ड के हृद्य में कामोदीपन हो आया ॥

प्रहृष्टमनसं तत्र विचरन्तं यथामरम् । तं माद्रचनुजगामैका वसनं विभातीशुभम् ॥ ६ ॥ नभीक्षमाणः स तु तां वयस्यां तनुवाससम् । तस्य कामः प्रवृधे गहनेऽभिरिवोद्गतः ॥७॥ 3.80

महाभारत

अर्थ-तव मन में आनिन्दत हुए र तथा अमर=कभी न मरने वाले के समान विचरते हुए राजा पाण्ड के साथ उस समय सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए अकेली माद्री जारही थी, उस सुन्दर वस्त्र वाली तरुणी माद्री को देखते ही उसका काम ऐसा बढ़गया कि जैसे वन में लगी हुई अग्नि तुरन्त ही नर्वत्र फेल जाती है ॥

रहस्येकां तु तां दृष्ट्वा राजा राजीव लोचनाम् । शशाक न नियुन्तुं तं कामं कामवशीकृतः ॥८॥ तत एनं बलादाजा निजग्राह रहोगताम् । वार्यमाणस्तया दृष्या विस्फुरन्त्या यथाबलम् ॥९॥

अर्थ-उस कमल तुल्य नेत्रों वाली सुन्द्री को एकान्त में देखकर काम के त्रशीभूत हुआ २ राजा अपने काम को न रोक सका, तब उस कांपती हुई देवी माद्री से बलपूर्वक हटाये जाने पर भी राजा पाण्डु ने एकान्त में बलपूर्वक उसको पकड़ लिया।।

माद्री मैथुनधर्मेण सोऽन्वगच्छद्बलादिव। जीवितान्ताय कौरव्य मन्मथस्य वशंगतः ॥१०॥ तस्यकामात्मनो बुद्धिः साक्षात्कालेन मोहिता। सं प्रमप्येन्द्रियग्रामं प्रनष्टा सह चेतसा॥ ११॥

अर्थ-हे कुरुवंशी राजन ! वह कामवश हुआ २ मानो अपनी मृत्यु के लिये वलपूर्वक माद्री से संभोग करने लगा, उस कामवश हुए २ की बुद्धि साक्षात काल ने आकर विगाइदी और वह इन्द्रियों के समूह को विध्वंस करके अन्तः करण के साथ लुप्त होगई ॥ स तया सह संगम्य भार्याया कुरुन्न-दनः ।

पाण्डः परमधुर्मात्मा युयुजे कालधर्मणा ॥१२॥ ततो माद्री समालिंग्य राजानं गतचेतसम् । सुमोच दुःखजं शब्दं पुनः पुनरतीव हि ॥१३॥

अर्थ-वह कुरुवंश को आनिद्त करनेवाला परमधर्मात्मापाण्ड अपनी भार्या से समागम करके अन्तकाल को माप्त होगया, तव माद्री मृतक राजा को आलिङ्गन करके वार २ दुःख से रोनेलगी॥ सह पुत्रैस्ततः कुन्ती माद्री पुत्रो च पाण्डवो । आजग्मुः सहितास्तत्र यत्र राजा तथा गतः ॥१४॥ ततो माद्र्य व्रवीदाजन्नात्तां कुन्तीमिदं वचः । एकैव त्वामिहागच्छ तिष्ठन्त्वत्रेव दारकाः ॥१५॥

अर्थ-इसके पश्चात कुन्ती अपने और माद्री के पुत्रों समेत वहां आई जहां राजा की मृत्यु हुई थी, हे राजन ! तब घवराई हुई माद्री ने कुन्ती से कहा कि वालक वहीं खड़े रहें, तुम अकेली यहां आओ ॥

तच्छूत्वा वचनं तस्यास्तेत्रवाधाय दारकान् । हताहमिति विकुश्य सहसेवाजगाम सा।।१६॥ दृष्ट्वा पाण्डं च माद्रीं च शयानौ धरणी तले । कुन्ती शोकपरीतांगी विललाप सुदुःखिता ।।१७॥

अर्थ-माद्री का वह वचन सुन और वालकों को वहीं ठहरा कर "मैं मर गई" ऐसे चिल्लाती हुई कुन्ती तत्काल वहां जा पहुंची और पाण्डुतथा माद्री को पृथ्वी पर लेटे हुए देखकर शोक ग्रस्त हुई २ कुन्ती दुःख से विलाप करने छगी॥ ननु नाम त्वया मादि रक्षितव्यो नराधिपः । सा कथं लोभितवती विजने त्वं नराधिपम् ॥१८॥ धन्या त्वमसि बाह्लीकि मन्तो भाग्यतरा तथा । दृष्टवत्यसि यद् वक्तं प्रहृष्टस्य महीपतेः ॥१९॥

अथ-हे माद्री! तुझे उचित था कि राजा को ऐसे अवसर पर उक्त तृष्णा से बचाती, तैने एकान्त में राजा को कैसे छुमा छिया. हे माद्री! तुझे धन्य है, तू मुझसे अधिक भाग्यवती है जो तैने हर्प युक्त राजा का मुख अन्तकाल में देखा ॥

विलपन्त्या मया देवी वार्यमाणेन चासकृत्। आत्मा न वारितोऽनेन सत्यं दिष्टं चिकीर्षुणा॥२०॥

अर्थ-हे देवी! भैंने रोते हुए राजा को अनेक वार इस कर्म से हटाया, परन्तु वह मानो अपने भाग्य को सचा कर दिखलाने के लिये अपने आपको न रोकसके ॥

कुन्ति उवाच

अहं ज्येष्ठा धर्मपत्नी ज्येष्ठं धर्मफलं मम । अवश्यंभाविनो भावान्मा मां माद्रि निवर्त्तय ॥२१॥

अर्थ-हे माद्री ! मैं राजा की वड़ी धर्मपत्नी हूं और धर्म का फल भी मेरा वड़ा है, इसलिय इस अवस्य होने वाली अर्थात पति के साथ जाने वाली बात के मुझे मत हटा ॥

माद्री उवाच

अहमेवानुयास्यामि भर्त्तारमपलायिनम् । मां चाभिगम्य क्षीणोऽयं कामाद्वरतसत्तमः ॥२२॥ न चाप्यहं वर्त्तयन्ती निर्विशेषं सुतेषु ते । तस्मान्मे सुतयोः कुन्ति वर्त्तितव्यं स्वषुत्रवत्।।२३॥

अर्थ-माद्री बोली कि हे कुन्ती ! संग्राम से न भागने बाले अपने स्वामी के साथ मैं ही जाउंगी, क्योंकि यह भरतकुल भूषण मुझसे समागम करके ही काम से क्षीण=नष्ट हुए हैं, हे कुन्ति ! मैं तुम्हारे पुत्रों को अपने पुत्रों से अधिक मानती रही हूं, इस्नलिये तुम भी मेरे दोनों पुत्रों के साथ अपने पुत्रों जैसा वर्ताव रखना ॥ राज्ञः शरीरेण सह ममापीदं कलेवरम् ।

दग्धव्यं सुप्रतिच्छन्नमेतदार्थे प्रियं कुरु ॥२४॥ दारकेस्वप्रमत्ता च भावेथाश्च हिता मम । अतोऽन्यं न प्रपश्यामि सन्देष्टव्यं हि किंचन ॥२५॥

अर्थ-हे आर्थे! इतना मेरा प्रिय करना कि मेरा भी शरीर सुर-िक्षत रूप से राजा के शरीर के साथ जला देना, मेरी हितकारिणी रहकर इन सब बालकों की रक्षा में सावधान रहना, इससे अति-रिक्त मैं और कोई संदेश कहना नहीं चाहती॥

वैद्याम्पायन उवाच

इत्युत्तवा तं चितामिस्थं धर्मपत्नी नर्र्षभम् । मद्रराजस्ता तूर्णमन्वारोहद्यशस्विनी ॥२६॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन! वह कीर्तिशाली भूमपत्री मद्रनरेश की पुत्री माद्री ऐसा कहकर और उस सिंह पुरुष पाण्डु के शरीर को चिता की अग्नि पर रखकर आप भी शीघ्र चढ़ गई॥

वैशम्पायन उवाच

पाण्डोरुपरमं दृष्ट्वा देवकल्पा महर्षयः।

ततो मन्त्रविदः सर्वे मन्त्रयांचिकिरे मिथः ॥२७॥ हित्वा राज्यं च राष्ट्रं च स महात्मा महायशाः । अस्मिन् स्थाने तपस्तप्त्वा तापसान् शरणं गतः॥२८॥

अर्थ-वैद्याम्पायन वोले कि हेराजन ! तब देवताओं के समान विचार में निपुण महर्षि लोग पाण्ड का स्वर्गवास देखकर आपस में इस मकार सलाह करने लगे कि वह महात्मा महाप्रतापी पाण्ड अपने राज्य और देश को छोड़कर इस स्थान में तप करता हुआ तपस्वियों की शरण में आया था ॥

स जातमात्रान् पुत्रांश्च दारांश्च भवतामिह।
प्रदायोपनिधिं राजा पाण्डः स्वर्गमितो गतः ॥२९॥
तस्येमानात्मजान्देहं भार्या च सुमहात्मनः।
स्वराष्ट्रं गृह्य गच्छामो धर्म एष हि नः स्मृतः॥३०॥

अर्थ-वह राजा पाण्डु वाल्यावस्था को माप्त पुत्रों और धर्मपत्नी को आपके पास धरोहर के रूप में रखकर यहां से स्वर्ग को माप्त हुआ है, सां हमारा धर्म है कि हम उस महात्मा के इन पुत्रों शरीर=अस्थियों और उसकी भार्या को उसके अपने देश में ले चलें॥

वैशस्पायन उवाच

ते परस्परमामन्त्र्य देवकल्पा महर्षयः। पाण्डोः पुत्रान् पुरस्कृत्य नगरं नागसाहृयम्।।३१॥ उदारमनसः सिद्धागमने चित्ररे मनः। भीष्माय पाण्डवान् दातुं धृतराष्ट्राय वैव हि ॥३२॥

आदिपर्व-द्वादशाध्याय

9.46

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! वह देवताओं के समान महाप् उदार हृदय वाले सिद्ध पुरुष आपस में सलाह करके कुन्ती महित पाण्डु के पुत्रों को भीष्म और धृतराष्ट्रकी सेवा में पहुंचाने के निमित्त उन पाचो पाण्डवों को आगे करके "हस्तिनापुर" नगर को जाने के लिये तैयार होगये॥

तिसमन्नेव क्षणे सर्वे तानादाय प्रतिस्थरे ।
पाण्डोर्दारांश्च पुत्रांश्च शरीरे ते च तापसाः ॥३३॥
अर्थ-बहसबतपस्त्री उसी क्षण में पाण्ड की पत्री कुन्ती, पुत्रों
और दोनों शरीरों की अस्थियों को साथ ठेकर चल दिये ॥
सुखिनी सा पुरा भूत्वा सततं पुत्रवत्सला ।
प्रपन्ना दीर्घमध्वानं संक्षिप्तं तदमन्यत ॥३४॥
सा त्वदीर्घेण कालेन संप्राप्ता कुरुजांगलम् ।
वर्द्धमानपुरद्वारमाससाद यशस्त्रिनी ॥३५॥

अर्थ-जो पहिले सदा सुख भोगती रही, उस शरणागत कुन्ती ने अब पुत्रों के मोह में आकर उस वड़े मार्ग को थोड़ा माना, वह यशस्त्रिनी थोड़े समय में ही कुरजाङ्गल देश में आगई और पश्चात वर्दमान नगर के द्वार पर आ पहुंची ॥

द्वारिणं तापसा ऊच् राजानं च प्रकाशय । ते तु गत्वा क्षणेनेव सभायां विनिवेदिताः ॥३७॥ मुहून्तेंदित आदित्ये सर्वे बालपुरस्कृताः । सदारास्तापसान्द्रष्टुं निर्ययुः पुरवासिनः ॥३८॥ अर्थ-तदनन्तर तपित्रयोंने द्वारपाल मे कहा कि तुम राजा को हमारे आने की सूचना दो, तब द्वारपाल ने तत्काल राजसभा में पहुंचकर उनका समाचार कह सुनाया, सूर्योदय से एक घड़ी पश्चात पुरवासी अपने वालकों को आगे करके स्त्रियों समेत तपस्वियों के दर्शनार्थ नगर से निकले, और :-

तथा भीष्मः शान्तनवः सोमदत्तोऽथ वाह्लिकः । प्रज्ञाचक्षुरच राजिषः क्षत्ता च विदुरः स्वयम्।।३९॥ सा च सत्यवती देवी कौशत्या च यशस्विनी। राजदारैः परिवृता गान्धारी चापि निर्ययौ ॥४०॥

अर्थ-शन्तनुपुत्र भीष्म, बिह्नकपुत्र सोमदत्त, मज्ञाचक्षु राजऋषि धृतराष्ट्र, दासी पुत्र विदुर, देवी सत्यवती, यशस्त्रिनी अम्बिका तथा अम्बालिका और राजमहिलाओं से घिरी हुई गान्धारी भी नगर से बाहर चलदी, और :-

धृतराष्ट्रस्य दायादा दुर्योधन पुरोगमाः । भृषिता भृषणिहिचत्रैः शतसंख्या विनिर्ययुः ॥४१॥

अर्थ-धृतराष्ट्रके दायभागी दुर्योधन आदि सौ पुत्र भी विचित्र भृषणों से भृषित दुए २ वहां गये ॥

तान्महर्षिगणान्दृष्ट्वा शिरोभिरभिवाद्य च । उपोपविविश्वः सर्वे कौरव्याः सपुरोहिताः ॥४२॥ तथैव शिरसा भूमावभिवाद्य प्रणम्य च । उपोपविविश्वः सर्वे पौरजानपदा अपि ॥४३॥

अर्थ-कौरव लोग पुरोहित सहित उन महर्षियों का दर्शन कर तथा शिर मे प्रणाम करके क्रमपूर्वक पाम २ बैठ गये, उमी प्रकार नगर और पान्त के निवासी लोग भी शिर से आभवादन तथा प्रणाम करके क्रमपूर्वक बैठ गये॥

तेषामथो वृद्धतमः प्रत्युत्थाय जटाजिनी । ऋषीणां मतमाज्ञाय महर्षिरिदमव्यीत् ॥४३॥ अर्थ-इसके पश्चात् उन ऋषियों में वृद्ध तथा जटा और मृगचर्मधारी महर्षि उठकर ऋषियों के मतानुसार सब से इस प्रकार बोला कि:-

यः सकौरव्य दायादः पाण्डर्नाम नराधिपः। कामभोगान् परित्यज्य शतशृंग मितोगतः॥४४॥ चरता धर्मनित्येन वनवासं यशस्विना। नष्टः पैतामहो वंशः पाण्डना पुनरुद्धृतः॥४५॥

अर्थ-वह कुरुवंश का दायभागी पाण्ड नामी राजा विषय भोगों को त्यागकर यहां से शतश्रृङ्ग पर्वत पर चला गयाथा, उस प्रतापी ने सदा धर्माचरण पूर्वक वनवास करते हुए अपने पितामह का नष्ट हुआ २ वंश फिर से चलाया॥

पुत्राणां जन्म वृद्धिं च वैदिकाध्ययनानि च । प्रयन्तः सततं पाण्डोः परां प्रीतिमवाप्स्यथ ॥४६॥ वर्त्तमानः सतां वृत्ते पुत्रलाभमवाप्य च । पितृलोकं गतः पाण्डरितः सप्तदशेहनि ॥४७॥

अर्थ-पाण्डु के पुत्रों का जन्म, वृद्धि तथा वेदों का अभ्यास देखकर तुम लोग सदा परमानन्द को प्राप्त होगे, सत्पुरुषों के आचरण में रहकर तथा पुत्रों को पाकर आजसे मत्रहवें दिन पहले पाण्डु मृत्यु को प्राप्त होगया ॥ 185

महाभारत

त चितागतमाज्ञाय वैश्वानरमुखे हुतम् । प्रविष्टा पावकं माद्री हित्वा जीवितमात्मनः ॥४८॥ इमे तयोः शरीरे द्वे पुत्राश्चेमे तयोर्वराः । कियाभिरचगृह्यन्तां सहमात्रा परन्तपाः ॥४९॥

अर्थ-राजा पाण्डु को चिता पर अग्नि के मुख में प्राविष्ट हुआ जानकर माद्री भी अपने जीवन को न रखने के लिये अग्नि में प्रवेश कर गई, उन दोनों के ये दोनों शरीर=अस्थियां और यह उत्तम पांचो पुत्र हैं, सो आप लोग माता कुन्ती समेत इन शत्रुतापक पुत्रों पर संस्कारों की क्रियाओं से अनुग्रह करें, अर्थात इनके संस्कार करायें॥

एवमुक्ता कुरून सर्वान् कुरूणामेव पश्यताम् । क्षणेनान्तर्हिताः सर्वे तापसा ग्रह्मकैः सह ॥५०॥

अर्थ-इस प्रकार सब कौरवों को सूचना देकर वह तपस्वी गुहाक लोगों साहित कौरवों के देखते २ शीघ्र ही बन में अहइय होगये अर्थात अपने स्थान को चले गये ॥

इति द्वादशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः प्रारम्यतं

वैशम्पायन उवाच

अथाप्तवन्तो वेदोक्तान् संस्कारान् पाण्डवास्तदा ।

संव्यवर्द्धन्त भोगांस्ते भुञ्जानाः पितृवेश्मनि ॥१॥

धार्त्तराष्ट्रेश्च सहिताः क्रीडन्तो मुदिताः सुखम् । बालकीडासु सर्वासु विशिष्टास्तेजसाभवन् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! इसके पश्चात पाण्डवों के वेदोक्त संस्कार किये गये और वह पिता के घर में अनेक भोगभोगते हुए बढ़ने लगे, धृतराष्ट्र के पुत्रों के साथ आनन्दपूर्वक क्रीडा करते हुए सब प्रकार की वालकीडाओं में सब से बढ़कर तेजस्वी होगये॥

जवे लक्ष्याभिहरणे भोज्ये पांश्यविकर्षणे। धार्त्तराष्ट्रान्भीमसेनः सर्वान् स परिमर्दति॥ ३॥ हर्षात्प्रकीडमानांस्तान् गृह्य राजिन्नलीयते। शिरःस्र विनिगृह्येतान् योधयामास पाण्डवः॥४॥

अर्थ-भीमसेन दौड़ में, निशाना लगाने में, भोजन में और धूल उड़ाने में सब पुत्रों को इरा देता था, हे राजन ! भीमसेन उन हर्षपूर्वक खेलते हुओं को उठाकर भाग जाता और कभी २ उनको पकड़कर उनके आपस में सिर से सिर भिड़ा देता था॥

शतमेकोत्तरं तेषां कुमाराणां महोजसाम् । एक एव निगृह्णाति नातिकृच्छाद्वकोदरः ॥५॥ कचेषु च निगृह्येनान् विनिहत्यबलादली । चकर्ष कोशतो भूमौ धृष्टजानुशिरोंसकान् ॥६॥

अर्थ-भीमसेन अकेला ही उन महाबली धृतराष्ट्र के सब बालकों को बिना कष्ट हरा देता, वह बली इनके बाल पकड़कर और बलपूर्वक मारपीट कर पृथ्वी पर घसीटता था जिसकारण वह घुटने, सिर और कन्धों की रगड़ से चिल्लाया करते थे ॥ दशवालान् जले की इन् भुजाभ्यां परिगृह्य मः । आस्तेस्मसिलले मग्नो मृतकल्पान् विमुन्नति ॥७॥ फलानिवृक्षमारुह्य विचिन्वन्ति च ते यदा । तदा पादप्रहारेण भीमः कम्पयते दुमान् ॥८॥

अर्थ-भीममेन जलकी डा के ममय उनमें से दम बालकों को भुजाओं मे पकड़कर पानी में दुवाये रखता और जब वह मृतक समान होजाते तब छोड़ताथा, और जब वह बालक वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ते तो भीमसेन अपनी लात मारकर वृक्ष को हिला देता था ॥ प्रहारवेगाभिहता दुमा व्याघूणितास्ततः ।

सफलाः प्रपतन्ति स्म दुतंस्तस्ताः कुमारकाः ॥९॥ न ते नियुद्धे न जवे न योग्यासु कदाचन । कुमारा उत्तरं चकुः स्पर्द्धमाना वृक्रोदरम् ॥१०॥

अर्थ-उसकी लात की चोट के वेगसे वृक्ष फलों सहित तत्काल चक्कर खाकर गिर जाते और साथ ही वह बालक भी गिर पड़ते थे, इस प्रकार वह बालक बाहुयुद्ध, दौड़ अथवा किसी अन्य योग्यता में भीमसेन के साथ स्पर्द्धा करते हुए उत्तर नहीं देसक्ते थे।

एवं संधार्तराष्ट्रांश्च स्पर्छमानो वृकोदरः। अप्रियेऽतिष्ठदत्यन्तं बाल्यान्न द्रोहचेतसा ॥११॥ ततो बलमीतख्यातं धार्त्तराष्ट्रः प्रतापवान्। भीमसेनस्य तज्ज्ञात्वा दुष्टभावमदर्शयत् ॥१२॥

अर्थ-इस प्रकार वह भीमसेन लड़कपन के अज्ञान से धृतराष्ट्र के पुत्रों की स्पर्द्धा=मुकाबला करता हुआ उनके हृदय में शत्रुक्प में बैठ गया, परन्तु उसने ट्रोहबुद्धि से ऐसा नहीं किया था, तब प्रतापी दुर्योधन भीमसेनका वल बड़ा विख्यात देखकर उसके माथ दुष्टता का वर्त्ताव आरम्भ करने लगा ॥

तस्य धर्मादपेतस्य पापानि परिपश्यतः । मोहदैश्वर्धयलोभाचपापामितरजायत ॥ १३ ॥ अयं बलवतां श्रेष्ठः कुन्तीपुत्रो वृकोदरः । मध्यमः पाण्ड पुत्राणां निकृत्या संनिगृह्यताम् ॥१४॥

अर्थ-अज्ञान और राज्य के लोभ से धर्मच्युत हुए २ तथा पाप कभी का संकल्प किये हुए दुर्योधन की बुद्धि पापपूर्ण होगई, वह गोचने लगा कि पांचो पाण्डवों में यह कुन्ती का विचला पुत्र सब बलवानों में बढ़ा हुआ है सो इसको निराद्र के साथ मरवा देना ही उचित है ॥

प्राणवान् विक्रमी वैव शोर्यण महतान्वितः ।
स्पर्द्धते चापि सहितानस्मानेको वृकोदरः ॥१५॥
तं तु सुप्तं पुरोधाने गंगायां प्रक्षिपामहे ।
अथ तस्मादवरजं ज्येष्ठं चैव युधिष्ठिरम् ।
प्रसह्य बन्धने बध्वा प्रशासिब्ये वसुन्धराम् ॥९६॥

अर्थ-यह भीमसेनवड़ा वल्वान, पराक्रमी तथा श्र्वीर होने से अकेला ही हम सब इकड़े हुआं की स्पर्धा करता है, हम इस सोते हुए को नगर के बाग में जाकर गङ्गा में गिरादें और इससे छोटे अर्जुन तथा बड़े युधिष्टिर को भी वल्पूर्वक कैंद्र करके पृथ्वी पर राज्य करें॥ एवं स निश्चयं पापः कृत्वा दुर्योधनस्तदा । नित्यमेवान्तरप्रेश्ची भीमस्यासीन्महात्मनः ॥१७॥

अर्थ-तव वह पापी दुर्योधन ऐसानिश्चय कर महात्मा भीममेन को भारने के लिये नित्य अवसर देखता रहा ॥

ततो जलविहारार्थं कारयामास भारत । नैलकम्बलवेश्मानि विचित्राणि महान्ति न ॥१८॥ सर्वकामैः सुपूर्णानि पताकोच्छायवन्ति च । तत्र सञ्जनयामास नानागाराण्यनेकशः ॥१९॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! तव दुर्योधन ने जलकीडा के लिये नानाप्रकार के बड़े २ वस्त्रों और कम्बलो के मकान=तम्बू तथा छोलदारियें तैयार कराकर उनमें अनेक घर बनवाये जिनमें सब आवश्यक सामग्री रखकर उनके ऊपर बड़ी २ ध्वजायें लगाई ॥

उदककीडनं नाम कारयामास भारत।
प्रमाणकोट्यां तं देशं स्थलं किंचिदुपेत्य ह।।२०॥
उपाकृतं नरेस्तत्र कुशलैः सूदकर्मणि।
भक्ष्यं भोज्यं च लेहां च पेयं चोष्यमथापि च।
न्यवेदयंस्तत्पुरुषा धार्त्तराष्ट्राय वै तदा॥ २१॥

अर्थ-हे राजन ! उसने प्रमाणकोटी में जल के समीप कुछ स्थल से मिला हुआ वह "उदकक्रीडन" नामक स्थान बनवाया और वहां पर चतुर रसोइयों ने भक्ष्य, भोज्य, लेख, पेय और चोष्य सब प्रकार के भोजन तैयार किये, इसके पश्चात उन लोगों ने दुर्योधन को यह समाचार दिया ॥ ततो दुर्योधनस्तत्र पाण्डवानाह दुर्मितः। गंगा वैवानुयास्याम उद्यानवनशोभिताम् ॥२२॥ सहिता भ्रातरः सर्वे जलकीडामवाष्नुयः। एवमस्त्विति तं चापि प्रत्युवाच युधिष्ठिरः॥२३॥

अर्थ-तत्पश्चात दृष्ट दुर्योधनने पाण्डवों से कहा कि हम सब भाई मिलकर बाग से शोभायमान गङ्गा नदी पर चलकर वहां जलकीडा करेंगे, यह बात युधिष्ठिर ने भी स्वीकार कर उत्तर दिया कि "बहुत अच्छा"॥

तेरथैर्नगराकारैर्देशजेश्व गजोत्तमेः।

निर्ययुर्नगराच्छ्राः कौरवाः पाण्डवैः सह ॥ २४ ॥ उद्यानवनमासाद्य विसृज्य च महावनम् । विशन्ति स्म तदा वीराः सिंहा इव गिरेर्युहाम् ॥२५॥

अर्थ-तब वह नगर जैसी आकृति वाले रथों और उत्तम देशों के सुन्दर हाथियों पर चड़कर वीर कौरव लोग पाण्डवों के साथ नगर से बाहर निकले, बाग के समीप होते हुए तथा वड़े वन को लांघकर वह वीर पुरुष उस स्थान में इस मकार मिष्ट हुए जैसे सिंह गुफा में मवेश करता है॥

उद्यानमभिपश्यन्तो भ्रातरः सर्व एव ते । उपस्थानगृहैः शुभ्रेर्वलभीभिश्च शोभितम् ॥ २६ ॥ गवाक्षकेस्तथा जालेर्यन्नेः साभारिकेरिप । संमार्जितं सौधकारैश्चित्रकारैश्च चित्रितम् ॥ २७ ॥ अध-वह एव भाई वाग को देखते हुए चले, जो बाग आराम करने के मुन्दर घरों, वलभीयों=सहनों, झरोखों, जालों और आप मे आप चलने वाले यन्त्रों से शोभायमान था, लेपन करने बाले पुरुषों मे लेपन=सफेदी किया हुआ और चित्रकारों द्वारा चित्रत किया हुआ था॥

जलं तच्छुशुभे छन्नं फुर्छेर्जलरुहैस्तथा।
उपच्छन्ना वसुमती तथा पुष्पैर्यथर्त्तुकैः ॥२८॥
तत्र प्रविष्टास्ते सर्वे पाण्डवाः कौरवाश्च ह।
उपच्छन्नान् बहुन् कामांस्ते भुञ्जन्ति ततस्ततः॥२९॥

अर्थ-वहां का जल फूलों और कमलों से आच्छादित तथा पृथिवी ऋतु २ में होने वाले फूलों से व्याप्त थी, वह सब पाण्डव और कौरव उसमें प्रविष्ट होकर जड़ां तहां अपने २ आनन्द मनाने लगे॥

अथोद्यानवरे तिसंगरतथा क्रीडागताश्च ते । परस्परस्य वक्तेभ्यो ददुर्भक्ष्यांरततरततः ॥ ३० ॥ ततो दुर्योधनः पापस्तद्रक्ष्ये कालकृष्टकम् । विषं प्रक्षेपयामास भीमसेन जिघांसया ॥ ३१ ॥

अर्थ-इसके पश्चात वह सब उस बाग में उक्त मकार कीडा करते हुए एक दूसरे के मुख में भोजन देने छगे, तब पापी दुर्योधन ने भीमसन के मारने की इच्छा से उस भोजन में कालकूट=तीव विष मिळाकर दिया ॥

स्वयमुत्थाय चैवायं हृद्येन श्चरोपमः। स वाचामृतकत्पश्च भ्रातृवच सहद्यथा।। ३२।। स्वयं प्रक्षिपते अक्ष्यं बहु भीमस्य पापकृत्। प्रतीक्षितं स्म भीमेन तं वै दोषमजानता ॥३३॥

अर्थ-बह पापकारी दुर्योधन जो वाणी में अमृत के समान किन्तु हृदय में छुरी के समान था, और मित्र की भांति हुआ २ आप उठकर अपनेहाथसे भीमसेन के मुख में अधिक २ भोजन देने लगा,पर दोष को न जानने वाले भीमसेन ने उसका आदर किया ॥

ततो दुर्योधनस्तत्र हृदयेन हसन्निव । कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते पुरुपाधमः॥३४॥ ततस्ते सहिताः सर्वे जलकीडामकुर्वत । पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च तदा मुदितमानसाः॥३५॥

अर्थ-तत्पश्चात् नीच पुरुष दुर्योधन अपने हृदय में हंसता हुआ अपने आपको कृतकृत्य मानने लगा, तब वह पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र मन में आनान्दित हुए २ एकडे होकर जलक्रीडा करने लगे ॥

कीडावसाने ते सर्वे शुचिवस्त्राःस्वलंकताः । दिवसान्ते परिश्रान्ता विहत्य च कुरुद्रहाः ॥३६॥ विहारा वसथेस्वेव वीरा वासमरोचयन् । खिन्नस्तु बलवान् भीमो व्यायामाभ्यधिकं तदा ॥३०॥

अर्थ-क्रीडा के अन्त में सायंकाल के समय उन सब कौरवों ने सुन्दर वस्त्र तथा भूषण धारण कर व्यायाम और भूमण करके आरामगृहों में ही ठहरना पसंद किया परंतु बल-वान भीमसेन अधिक परिश्रान्त और व्याकुल होग्या ॥ वाहियत्वा कुमारांस्तान् जलक्रीडागतांस्तदा।

महाभारत

प्रमाणकोट्यां वासार्थी सुखापावास्य तत्स्थलम् ॥३८॥ शीतं वातं समासाद्य श्रान्तो मदविमोहितः । विषेण च परीतांगो निश्चेष्टः पाण्डनन्दनः ॥३९॥

अर्थ-तब जलकीडा करने वाले वालकों को तीर पर पहुंचाकर और आप प्रमाणकोटी=गङ्गा के तट पर धर्मशाला में पहुं चकर आराम करने के लिये सो रहा, वह पाण्डुपुत्र भीमसेन थका हुआ तथा मद से वेसुध हुआ २ ठंडी वायु पाकर सारे शरीर में विष से व्याप्त और चेष्टारहित होगया॥

ततो बद्धा लतापारीभीमं दुर्योधनः स्वयम् । मृतकल्पं तदा वीरं स्थलाजलमपातयत् ॥४०॥ स निःसंज्ञो जलस्यान्तमथ वै पाण्डवो विशत् । आक्रामन्नागभवने तदा नागकुमारकान् ॥४१॥

अर्थ-तब दुर्योधन ने मरे हुए के समानवीर भीमसेन को लताओं की रिस्सओं से स्वयं वांधकर स्थल से उठा जल में गिरा दिया, वह पाण्डव भीमसेन वेसुध हुआ २ पानी के नीचे तक चला गया और उसने सर्पों के स्थान में जाकर उनके वच्चों को अपने शरीर से दवा दिया ॥

ततः समेत्य बहुभिस्तदा नागैर्महाविषैः । अद्श्यत भृशं भीमो महादंष्ट्रीर्विषोत्बणैः ॥४२॥ ततोऽस्य दश्यमानस्य तद्विषं कालकूटकम् । हृतं सर्प विषेणेव स्थावरं जंगमन हु ॥४३॥ अर्थ-इसके पश्चात वड़े तीब्र विष वाले तथा वड़ी दाढ़ों वाले बहुत से सांपों ने इकड़े होकर भीमसेन को वलपूर्वक इस लिया, सांपों के इसे जाने से वह स्थावर कालकूट विष सापों के जड़म विष द्वारा नाश को माप्त होगया॥

ततः प्रबुद्धः कोन्तयः सर्व सञ्छिद्य बन्धनम् । पोथयामास तान् सर्वान् केचिद्गीताः प्रदुदुवुः ॥४४॥ अर्थ-तव कुन्तीपुत्र भीमसेन होश्च में आगया और अपने सब बन्धनों को तोड़कर उन् सांपों को मारनेलगा जिनमें से कुछ सांप हर के मारे दूर से ही भाग गये॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते कौरवाः सर्वे विना भीमं च पण्डवाः । वृत्तकीडाविद्यारस्तु प्रतस्थुर्गजसाह्वयम् ॥१॥ रथैर्गजैस्तथा चाश्वैर्यानैश्चान्यैरनेकशः ।

ब्रुवन्तो भीमसेनस्तु यातो ह्यप्रत एव नः ॥ २ ॥

अथ-वैश्वम्पायन बोले कि हे जनमेजय! तब वह सब कौरव और विना भीमसेन के चारो पाण्डव जलकी हा तथा भ्रमण समाप्त करके अपने २ रथों; हाथियों घोड़ों तथा अनेक प्रकार की अन्य सवारियों पर चढ़कर यह कहते हुए कि भीमसेन हम लोगों से आगे ही चलागया हास्तिनापुर को चलने लगे !! ततो दुर्योधनः पापस्तत्रापश्यन् वृकोदरम् । भातृभिः सहितो हृष्टो नगरं प्रविवेश ह ॥३॥ युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा ह्यविदन् पापमात्मनि । स्वेनानुमानेन परं साधुं समनुपश्यति ॥४॥

अर्थ-तव पापी दुर्योधन वहां भीमसेन को न देखकर मसन्न हुआ २ भाइयों समेत नगर में प्रविष्ट हुआ, धर्मात्मा युधिष्टिर अपने आप में कोई पाप न देखकर अनुमान द्वारा अन्य सब को भी धर्मात्मा ही समझता था॥

सोऽन्युपेत्य तदा पार्थो मातरं भ्रातृवत्सलः । अभिवाद्यात्रवीत् कुन्तीमम्ब भीम इहागतः ॥५॥ क गतो भविता मातर्नेह पश्यामि तं शुभे । उद्यानानि वनं चैव विचितानि समन्ततः ॥६॥

अर्थ-तब भाई का स्नेही कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर माता के पास पहुंच और उन्हें अभिवादनकर पूछने छगा कि अम्मा!क्या भीम-सेन यहां आगया है पूजनीय माता ! में उसको यहां नहीं देखता न जाने कहां गया, मैंने उसको बाग वगीचों. बनों और अन्य सब स्थानों में दृंढा है ॥

तद्धं नच तं वीरं दृष्टवन्तो वृकोद्रम् । मन्यमानास्ततः सर्वे यातो नः पूर्वमेव मः ॥७॥ आगताः स्म महाभागे व्याकुलेनान्तरात्मना । इहागम्य क नु गतस्त्वया वा प्रेषितः क नु ॥८॥

आदिपर्व-चतुर्दशाध्याय

366

अर्थ-हे महाभागे! उसके लिये हमने बहुत सोज की परन्त उस वीर भीमसेन को न पाकर यह समझते हुए कि वह हम लोगों से पहले ही चलागया, हम चित्त में घवराये हुए यहां आये हैं,सो वह यहां आकर कहीं चलागया? अथवा उसको तैने कहीं भेजा है।

कथयस्य महाबाहुं भीमसेनं यशस्विन । न हि मे शुन्यते भावस्तंवीरं प्रति शोभने ॥९॥

यतः प्रसुप्तं मन्येहं भीमं नेति हतस्तु सः। इत्युक्त्वा च ततः क्रन्ती धर्मराजेन धीमता। हाहेति कृत्वा संभ्रान्ता प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्।।१०॥

अर्थ-हे यशस्त्रिन माता ! महावाहु भीमसेन को शीघ बता, क्योंकि मेरी भीतरी कल्पना उस वीर के विषय में छद नहीं, हे भट्टे ! मेरे विचार में वह कहीं सोया हुआ नहीं किन्तु मारा गया है, इस मकार बुद्धिमान युधिष्ठिर ने कुन्ती को समाचार दिया और बहु उसी समय हाय २ करके दौड़ी और युधिष्ठिर से बोली कि:-

न पुत्र भीमं पश्यामि न मामभ्येत्यसाविति । शीघ्रमन्वेषणे यत्नं कुरु तस्यानुजैः सह ॥११॥ इत्युक्त्वा तनयं ज्येष्ठं हृदयेन विदूयता । क्षत्तारमानाय्य तदा कुन्ती वचनमत्रवीत् ॥१२॥

अर्थ-हे पुत्र ! मैंने भीमसेन को नहीं देखा और नाही वह मेरे पास आया, तू सब भाइयों समेत उसकी तत्काल खोजकर, इस मकार कुन्ती संतप्त हुए हृदय से बड़े पुत्र को आज्ञा दे विदुरजी को बुखवाकर बोली कि:-

क गतो भगवन् क्षत्तर्भीमसेनो न दृश्यते । उद्यानात्रिर्गताः सर्वे भ्रातरो भ्रातृभिः सह । तत्रैकस्तु वहाबाहुर्भीमो नाभ्येति मामिह ॥ १३॥

अर्थ-हें भगवन विदुर! भीमसेन यहां दिखाई नहीं देता न जाने कहां चलागया, यह सब अपने भाइयों के साथ बाग से निकल आये परन्तु केवल महाबाहु भीमसेन मेरे पास नहीं पहुंचा॥

न च प्रीणयते चक्षु सदा दुर्योधनस्य सः। क्रोऽसौ दुर्मतिः क्षुद्रो राज्यलुब्धोऽनपत्रपः ॥१४॥ निहन्यादिप तं वीरं जातमन्युः सुयोधनः। तेन मे ब्याकुलं चित्तं हृदयं दह्यतीव च ॥१५॥

अर्थ-वह सदा दुर्योधन की आखों में खटकता था और दुर्योधन कूर, दुर्नुदि, नीच, राज्य का लोभी तथा निर्लक्त है, कोध आने पर वह वीर भीमसेन को मार भी सक्ता है, इसलिये मेरा चित्त व्याकुल और हृदय जल रहा है॥

विदुर उवाच मैवं वदस्व कल्याणि देश संरक्षणं कुरु । प्रत्यादिष्टो हि दुष्टात्मा देशेषऽपि प्रहरेत्तव ॥१६॥

अर्थ-विदुरजी बोले कि हे कल्याणी ! ऐसी बात न कहकर दोष रहे पुत्रों की रक्षा कर, यदि दुर्थोधन के तिरस्कार की बात कहेगी तो वह दृष्टात्मा तुम्हारे दोष पुत्रों परभी प्रहार करेगा ॥

आदिपर्व-चतुर्वशाध्याय

989

वेशम्पायन उवाच

एवमुक्ता ययो विद्धान् विदुरः स्वं निवेशनम् । कन्ती चिन्तापरा भृत्वा सहासीना छतैर्गृहे ॥१७॥ ततोऽष्टमे तु दिवसे प्रत्यदुःयत एाण्डवः । तिसंमस्तदा रसे जीणें सोऽप्रमय बलो बली ॥१८॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! नीतिज्ञ विदुर्जी ऐसा कहकर अपने घर गये और कुन्ती चिन्ताग्रस्त हो पुत्रों समेन अपने घर वैठ रही, इसके पश्चात आठवें दिन अनुपम बलशाली भीमसेन उस विष के पच जाने पर भलेमकार सचेत होगया ॥

तत उत्थाय कौन्तेयो भीमसेनो महाबलः। आजगाम महावाहुमीतुरान्तिकमंजसा ॥१९॥

अर्थ-तव कुन्तीपुत्र महावाहु भीमसेन वहां से उठकर शीव्र ही माता कुन्ती के समीप पहुंचा॥

ततोभिवाद्य जननीं ज्येष्ठं भ्रातरमेव च । कर्नायसः समाघाय शिरस्यरिविमर्दनः ॥२०॥ तैश्रापि संपरिष्वक्तः सह मात्रा नर्रिभैः । अन्योन्यगतसौहार्द्यादिष्टयादिष्टयेति चाब्रुवन् ॥२१॥

अर्थ-तत्पश्चात् शत्रुपर्दक भीमसेन ने माता और बड़े भाई युधिष्ठिर को अभिवादनिकया, और छोटे भाइयों का प्यारसे माथा चूमा, माता कुन्ती और उन सब सिंह पुरुषों ने भी भीमसेन को आलिङ्गन किया तथा परस्पर के स्नेह में भरे हुए सौभाग्य, मौभाग्य पुकारने छगे॥ ततस्तत् सर्वमाचष्ट दुर्योधन विचेष्टितम् । भातृणां भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः ॥२२॥ ततो युधिष्ठिरो राजा भीममाह वचोऽर्थमत् । तृष्णीं भव न ते जल्पमिदं कार्य कथंचन ॥२३॥

अर्थ-तव महावलवान पराक्रभी भीयसेन ने भाइयों से दुर्योधन की सब कार्य्याही कहदी,पश्चात राजा युधिष्ठिर ने भीमसेन से यह नीतियुक्त वचन कहा कि तुम चुप रहना अन्य किसी से ऐसी वात कदापि न कहना॥

इतः प्रभृति कौन्तेया रक्षतान्यान्यमाहताः । एवमुक्त्वा महाबाहुर्भमराजो युधिष्ठिरः ॥२४॥ भ्रातृभिः सहितः सर्वेरप्रमत्तोऽभवत्तदा । धर्मात्मा विदुरस्तेषां पार्थन्तं प्रददौ रतिम् ॥२५॥

अर्थ-हे भाइयो ! आज से तुम लोग आदरपूर्वक एक दूसरे की रक्षा करते रहो, ऐसा कहकर महाबाहु धर्मराज युधिष्ठिर भाइयों समेत तब से मावधान रहने लगा और धर्मात्मा विदुर जी भी उन पाण्डवों को धैर्य देते रहे॥

ततो दुर्योधनस्तस्य पुनः प्राक्षेपयद्विषम् । कालकूटं नवं तीक्ष्णं संभूतं लोमहर्षणम् ॥२६॥ तत्र।पि सुक्त्वाजस्यदिवकारं वृकोदरः । विकारं न ह्यजनयत् सुतीक्ष्णमपि तद्विषम् ॥२७॥

अर्थ-तत्पश्चात दुर्योधन ने भीमभेन के लिये फिर विष भिन्न जवाया. जो कालकृट=कानिल, नया, तीक्ष्ण तथा पृणेष्ट्रप मे रोम कंपाने वाला था, भीमसेन ने उस विप को भी विना किसी कष्ट के खाकर पचा लिया, उस महातीक्ष्ण विप ने भी कोई विगाड़ न किया ॥

एवं दुर्योधनः कर्णः शक्तिश्चापि सौवलः । अनेकैरभ्युपायैस्तान् जिघांसन्तिस्म पाण्डवान्॥२८॥ पाण्डवा अपि तत्सर्वे प्रत्यजानन्नमर्पिताः । उद्भावनमकुर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः॥२९॥

अर्थ-इस प्रकार दुर्योंधन, कर्ण और मुक्त का पुत्र शकुनि अनेक उपायों द्वारा पाण्डवों के मारने की चेष्टा करते रहे, परन्तु पाण्डव लोग भी विदुर के कहने में रहकर उन वातों को जानते हुए भी प्रकाशित न करके अपनी रक्षा में सावधान रहे॥

इति चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचदशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

महर्षेगीतमस्यासीच्छरद्वान्नाम गौतमः।

पुत्रः किल महाराज जातः सह शरैर्विभो ॥१॥

न तस्य वेदाध्ययने तथा बुद्धिरजायत।

यथास्य बुद्धिरभवद्धनुर्वेदे परन्तप॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! महर्षि गातम का

,,शरद्वान्ण नामक एक पुत्र था जिसका मानो शरों=बाणों के

महाभारत

साथ ही जन्म हुआ था अर्थात उसकी जन्म से ही बाणविद्या में रुचिथी और इमीलिये उसका नाम "शरद्वान्" था, हे शश्चसंतापक राजन ! उस शरद्वान की रुचि वेदों के पढ़ने में ऐसी न थी जैसी धनुर्वेद=शस्त्रविद्या में थी॥

अधिजग्मुर्यथा वेदांस्तपसा ब्रह्मचारिणः । तथा स तपसोपेतः सर्वाण्यस्त्राण्यवाप ह । तस्याथ मिथुनं जज्ञे गौतमस्य शरद्धतः ॥३॥

अर्थ-जिसमकार ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्मचारी वेदों का अध्ययन करते हैं वैसे ही वह भी ब्रह्मचारी रहकर अध्ययन करता हुआ सव शस्त्र-अस्त्र विद्याओं को प्राप्त होगया, कुछ काल के अनन्तर उस गौतमपुत्र शरद्वान के घर में मिथुन=जोड़ा=पुत्र तथा कन्या का जन्म हुआ ॥

मृगयां चरतो राज्ञः शान्तनोस्तु यद्दच्छया । कश्चित्सेनाचरोऽरण्ये मिथुनं तदपश्यत ॥४॥

अर्थ-उस वन में राजा शान्तनु के एक सैनिक पुरुष ने शिकार बेटते हुए अकस्मात वहां आकर उस जोड़े को देखा ॥ धनुश्च सद्दारं दृष्ट्वा तथा कृष्णाजिनानि च । ज्ञात्वा दिजस्य चापत्ये धनुर्वेदान्तगस्य ह । स राज्ञे दर्शयामास मिथुनं सशरंधनुः ॥५॥

अर्थ-वहां उसने वाण सहित धनुष तथा काले मृगचर्म पड़े हुए देखकर उस जोड़े को किसी शस्त्राविद्या पारगामी ब्राह्मण की सन्तान समझा, और उसने वह जोड़ा तथा बाण सहित धनुष राजा शान्तनु को दिखलाये॥ स तदादाय मिथुनं राजा च कृपयान्वितः। आजगाम गृहानेव मम पुत्राविति ब्रुवन् ॥६॥ ततः संवर्द्धयामास संस्कारैश्चाप्ययोजयत्। प्रातीपेयो नरश्रेष्ठो मिथुनं गौतमस्य तत्॥७॥

अर्थ-वह राजा दयापूर्वक उस जोड़े को लेकर यह कहता हुआ कि यह मेरे पुत्र-कन्या हैं अपने घर आगया, तब वह श्रेष्ठ प्रतीपपुत्र शान्तनु शरद्वान के उस जोड़े को पालने लगा और उसके संस्कार भी किये॥

कृपया यन्मया वालाविमो संवर्धिताविति । तस्मात्त्रयोनीम चके तदेव स महीपतिः ॥८॥ गोपितो गौतमस्तत्र तपसा समविन्दत । आगत्य तस्मै गोत्रादि सर्वमाख्यातवांस्तदा ॥९॥

उर्थ-उस राजा ने यह समझकर कि मैंने कृपा से इन बालकों को पाला है इसलिये उन दोनों के नाम "कृपा" और "कृपी" रखदिये, शरद्वान ने तप के प्रभाव से यह जानकर कि मेरा पुत्र तथा कन्या वहां ग्रुराक्षित हैं उसने वहीं आकर उनके गोत्र आदि सब बता दिये॥

चतुर्विधं धनुर्वेदं शस्त्राणि विविधानि च । निष्ठिनास्य तत्सर्वे ग्रह्ममाख्यातवांस्तदा । सौऽचिरेणैव कालेन परमाचार्य्यतां गतः ॥१०॥

अर्थ-तव उस शरद्वान ने चार मकार का धनुर्वेद, अनेक मकार की शस्त्रविद्यायें तथा धनुर्वेद का अन्य सब रहस्य "कृपा" को पूर्णतया सिखलाया और वह भी बहुत शीघ परम आचार्य वन गया ॥

ततोऽधिजग्मुः सर्वेते धनुर्वेदं महारथाः। धतराष्ट्रात्मजाश्चेव पाण्डवाः सह यादवैः। वृष्णायश्च नृपाश्चान्ये नानादेश समागताः ॥११॥

अर्थ-तत्पश्चात् धृतराष्ट्र के पुत्रों, पाण्डवों,यादवों, बृष्णिवंश-वालों तथा अन्य भिन्न २ देशों से आये हुए सब योद्धा राजाओं ने फुपाचार्य्य से शस्त्र विद्या सीखी ॥

वैशम्पायन उवाच विशेषार्थी ततो भिष्मः पौत्राणां विनयेपसया। इष्वस्त्रज्ञान् पर्यपृच्छदाचार्यान् वीर्यसंमतान् ॥ १२॥ नाल्पधीर्नामहाभागस्तथानानास्त्रकोविदः। नादेवसत्त्वो विनयेत्छरूनस्त्रे महावलान् ॥ १३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तदनन्तर भीष्मजी अपने पात्र कौरव-पांडवों को अधिक शस्त्रविद्या सिखलाने के लिये धनुर्विद्या के ज्ञाता तथा पराक्रम में माननीय आचाय्यों की अन्वेषणा करने लगे, उन्होंने सोचा कि इन कुरुवंशियों को अल्पबुद्धि, अल्प भाग्य, नानामकार की शस्त्रविद्याओं को न जानने वाला और देवों के समान पराक्रम न रखने वाला आचार्य शिक्षा नहीं देसका॥

इति संचिन्त्य गाङ्गेयस्तदा भरतसत्तमः । द्रोणाय वेदविदुषे भारद्राजाय धीमते । पाण्डवान् कौरवाश्चेव ददौ शिष्यान्नरर्षभ ॥ १४ ॥ अर्थ-हे पुरुष श्रेष्ठ राजन ! तब भस्तकुल भूषण भीष्मजी ने ऐसा सोचकर नेद के ज्ञाता भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य की सेना में पाण्डव और कौरनों को शिष्यक्ष से समर्पण करदिया॥ गृहं च सुपिरिच्छिन्नं धन्यधान्यसमाकुलम् । भारद्वाजाय सुप्रीतः प्रत्यपाद्यत प्रभुः ॥ १५॥

स ताञ्छिष्यान्महेष्वासः प्रतिजग्राह कौरवान् । पाण्डवान्धार्त्तराष्ट्रांश्च द्रोणो मुदितमानसः ॥ १६॥

अर्थ-प्रभु भीष्म ने प्रसन्न होकर भरद्राजपुत्र द्रौणाचार्य्य को धनधान्य से पूर्ण एक गृह भी दान दिया, महान धनुर्धारी द्रोणाचार्य ने भी मन में आनन्दित होकर धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव पाण्डवों को विद्य इप से ग्रहण किया ॥

प्रतिगृह्य च तान् सर्वान् द्रोणो वचनमववीत्। रहस्येकं प्रतीतात्मा कृतोपसदनांस्तथा ॥ १७॥ कार्य मे कांक्षितं किञ्चिद् हृदि संपरिधर्चते। कृतास्त्रेस्तत्प्रदेयं मे तदेतद्रदतानघाः॥ १८॥

अर्थ-द्रोणाचार्यं उन सब को प्रहण करके मनमें विश्वास किये हुए एक समय उनसम्मुख बैठे हुओं से एकान्त में बोले कि हे निष्पाप पुरुशे ! मेरे मन में एक अभिलावा विद्यमान है सो तुम यह स्वीकार करो कि शस्त्रविद्या सीखने के पश्चात उसको पूरी करोगे !॥

वैद्याम्पायन उवाच तच्छुत्वा कीरवेयास्ते तृष्णीमासन् विशाम्पते । अर्जुनस्तु ततः सर्व प्रतिजन्ने परन्तपे ॥ १९ ॥ ततोऽर्जुनं तदा मूर्धिन समाघाय पुनः पुनः । प्रीतिपूर्व परिष्वज्य प्ररुरोदसुदातदा ॥ २०॥

अर्थ-नैशम्पायन वोले कि हे शत्रुतापक राजन ! वह सब कौरव लोग यह सुनकर चुप होरहे, परन्तु अर्जुन ने उस बात के पूरा करने की प्रतिज्ञा की, तब द्रोणाचार्य्य प्यार से अर्जुन का माथा बार २ चूमकर तथा प्रीति से आलिङ्गन करके हर्ष के आंग्रु गिराने लगे ॥

ततो द्रोणः पाण्डुपुत्रानस्त्राणि विविधानि च । त्राह्यामास दिव्यानि मानुषाणि च वीर्य्यवान् ॥२१॥ राजपुत्रास्तथा चान्ये समेत्य भरतर्षभ । अभिजग्मुस्ततो द्रोणमस्त्रार्थे दिजसत्तमम् ॥ २२॥

अर्थ-तत्र पराक्रमशाली द्रोणाचार्य ने पाण्डवों को नाना प्रकार की दिव्य और मानुषीय अस्त्र शस्त्र विद्यायें सिखलाई, हे भरतकुल श्रेष्ठ राजन !तथी से उत्तमब्राह्मण द्रोणाचार्य्य के समीप शस्त्र विद्या सीखने के लिये और २ राजपुत्र भी इक्षेट्ठ होकर आने लगे॥

वृष्णयाश्र अन्धकाश्रीव नानादेश्याश्र पार्थिवाः । सूतपुत्रश्र राधेयो ग्रहं द्रोणिमयात्तदा ॥ २३ ॥

अर्थ-बृष्णिवंश, अन्धक वंश तथा अन्य देशों के राजा और राधा की सन्तान स्तपुत्र भी गुरु द्रोण के समीप शिक्षा के लिये आये॥ स्पर्द्धमानस्तु पार्थेन स्तपुत्रोऽत्यमर्षणः । दुर्योधनं समाश्रित्य सोऽत्रमन्यत पाण्डवान् । अभ्ययात्स ततो द्रोणं धनुर्वेदिचिकीर्षया ॥ २४ ॥ अर्थ-स्तपुत्र कर्ण जो पाण्डवों से जलता था वह अर्जुन के साथ ईर्पा करता हुआ दुर्योधन का आश्रय लेकर पांडवों का अपमान करने लगा, और तभी में वह भी शस्त्रविद्या सीखने के लिये द्रोणाचार्य के समीप आगया ॥

शिक्षाभुजवलोद्योगेस्तेषु सर्वेषु पाण्डवः । अस्त्रविद्यानुरागाच विशिष्टोऽभवदर्जुनः । तुल्येष्वस्त्रप्रयोगेषु लाघवे सौष्ठवेषु च ॥२५॥

अर्थ-शिक्षा तथा अपनी भुजाओं के वल प्रभाव और शस्त्र विद्या के अनुराग से पाण्डव पुत्र अर्जन शस्त्रों के प्रयोग की शीव्रता और निपुणता में उनके सब शिष्यों से बढ़गया ॥

आचार्यपुत्रात् तस्मानु विशेषोपचये पृथक् । न व्यहीयत मेधावी पार्थोप्यस्त्रविदांवरः ॥२६॥ अज्ञनः परमं यत्नमातिष्ठद्युरुपूजने । अस्त्रेच परमं योगं त्रियो द्रोणस्य चाभवत् ॥२०॥

अर्थ-शस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ बुद्धिमान अर्जुन द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा से भी किसी विशेष उन्नति में कम नहीं था, अर्जुन गुरु की सेवा करने तथा उनसे शस्त्रविद्या सीखने में वड़ा यत्र करता रहा, और इसी कारण वह द्रोणाचार्य का प्यारा शिष्य होगया॥

द्रोण उवाच

प्रायतिष्ये तथा कर्जुं यथा नान्यो धर्रुधरः । त्वत्समो भविता लोके सत्यमेतद्ववीमि ते ॥२८॥

पहाभारत

अर्थ-द्रोणाचार्य बोले कि हे अर्जुन ! मैं तुम्हें ऐसा धनु-धारी बनाने का यत्र करुंगा कि तुम्हारे जैसा बीर इस लोक में कोई न होगा, मैं तुझसे यह सत्य कहता हूं ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रोणोऽर्जुनं भूयो ह्येष्ठ च गजेषु च ।
रथेषु भूमाविप च रणिशक्षामिशिक्षयत् ॥२९॥
गदायुद्धेऽसि चर्यायां तोमरप्रासशक्तिषु ।
द्रोणः सङ्कीर्णयुद्धे च शिक्षयामास कौरवान् ॥३०॥

अर्थ-वैशम्पायनबोले कि हे राजन ! तब होणाचार्य ने अर्जुन को हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सब मकार की विशेषतः युद्ध विद्या सिखलाई, इसके अतिरिक्त होणाचार्य ने कौरव लोगों को भी गदायुद्ध, ढाल के मयोग, तोमर, मास और शक्ति नामक शस्त्रों के मयोग तथा संकीर्ण=विविध मकार के युद्धों की शिक्षा दी॥ तस्य तत् कौशलं श्रुत्वा धनुर्वेद जिन्नुक्षवः। राजानो राजपुत्राश्च समाजग्मुः सहस्रशः ॥३१॥ दोणस्य तु तदा शिष्यो गदायोग्यो बभूवतुः। दुर्योधनश्चभीमश्च सदा संरब्धमानसौ ॥३२॥

अर्थ-द्रोणाचार्य की ऐसी युद्धविद्या में निपुणता सुनकर सहस्रों राजा और राजकुमार धनुर्वेद सीखने की अभिलापा से वहां आ उपास्थित हुए, परन्तु द्रोणाचार्थ्य के दो शिष्य दुर्योधन और भीमसेन जो सदा मन में अभिमान रखते थे गदा चलाने में बड़े योग्य हुए ॥

अश्वत्थामा रहस्येषु सर्वेष्वभ्यधिकोऽभवत्।

तथातिपुरुषानन्यान्त्सारुको यमजानुमौ ॥३३॥ युधिष्ठिरो रथिश्रेष्ठः सर्वत्र तु धनञ्जयः। प्रथितः सागरान्तायां रथयूथपयूथपः ॥३४॥

अर्थ-अन्वत्थामा युद्ध विद्या के सब रहस्यों में बड़ा निपुण बनगया तथा दोनों यमज=जोड़ले भाई नकुल सहदेव तलवार चड़ाने में अन्य सब से बढ़गये, युथिष्ठिर रथ के युद्ध में श्रेष्ठ रहा, अज्ञन सब प्रकार के युद्धों में श्रेष्ठ, समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर विख्यात और रथों के सार्थियों का स्वामी बन गया॥

बुद्धियोगवलोत्साहैः सर्वास्त्रेषु च निष्ठितः । अस्त्रे ग्रवनुरागे च विशिष्टोऽभवदर्जनः ॥३५॥ तुल्येष्वस्त्रोपदेशेषु सोष्ठवेन च वीर्यवान् । एकः सर्वकुमाराणां बभ्वातिरथोऽर्जुनः ॥३६॥

अर्थ-अपनी बुद्धि के योग वल तथा उत्साह से सब शस्त्र नियाओं में तत्पर रहता हुआ अर्जन शस्त्रविद्या और गुरु-भक्ति में सब से बढ़कर रहा, समान रूप से शस्त्रविद्या की शिक्षा होते हुए भी पराक्रमी अर्जन ही अकेला अपने चातुर्य्य द्वारा सब बालकों से बढ़कर योद्धा बन गया ॥

प्राणाधिकं भीमसेनं कृतिवद्यं धनञ्जयम् । धार्त्तराष्ट्रा दुरात्मानो नामृष्यन्न परस्परम् ॥३७॥

अथ-दुष्टात्मा धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादि वल में सबसे अधिक भीमसेन तथा पूर्ण युद्धविद्या सीले हुए अर्जुन को देख नहीं सकते थे॥ तांस्तु सर्वान् समानीय सर्वविद्यास्त्रशिक्षितान् । द्रोणः प्रहरणज्ञाने जिज्ञासुः पुरुषषभः ॥३८॥ कृत्रिमं भासमारोप्य वृक्षात्रे शिल्पिभःकृतम् । अविज्ञातं कुमाराणां लक्ष्यमृतसुपादिशत् ॥३९॥

अर्थ-पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने सब धनुविद्या सीखे हुए अपने शिष्यों की शस्त्र प्रयोग करने में परीक्षा होने के लिये उन सब को एक स्थान पर बुहाया और किसी हुझ के शिखर पर कारीगरों का बनाया हुआ एक छिन्न पक्षी जो उन शिष्यों का पहचाना हुआ था रखकर अपने शिष्यों को दताया कि यह तुम्हारा हुक्ष्य=निशाना है।।

होण उवाच

शीघं भवन्तः सर्वेऽपि धनूष्यादाय सर्वशः। भासमेतं समुद्दिय तिष्ठध्वं सन्धितेषवः ॥४०॥ मदावय समकालं तु शिरोऽश्य विनिपादिताम्। एकैकशो नियोध्यामि तथा कुरत ५८काः ॥४१॥

अर्थ-द्रोणाचार्य दोले कि हे पुत्रो ! तुम सब अपने २ धतुप में शीघ्र ही बाण लगाकर इस पक्षी को लक्ष्य करके खड़े होजाओ, मैं एक २ को आज्ञा दृंगा हो मेरे बोलने के साथ ही इस कृत्रिम पक्षी का सिर गिरा देना ॥

वैशम्पायन उवाच ततो युधिष्ठिरं पूर्वमुवाचाङ्गिरसांवरः । सन्धत्स्ववाणं दुर्धिष मद्राक्यान्ते विमुञ्चतम् ॥४२॥ ततो युधिष्ठिरः पूर्वं धनुर्गृद्य परन्तपः । तस्थौ भासं समुद्दिश्य ग्रह्याक्य प्रचोदितः ॥४३॥

अर्थ-वैशम्पायत बोले कि हे राजन ! तय अङ्गिराओं के कुछ में उत्तम द्रोणाचार्य सदसे पहले गुधिष्टिर तो बोले कि हे दुर्जय! तुम बाण धनुष में चढ़ालो और जब मैं कहूं तब छोड़ना. गुरु की आज्ञा से मेरित हुआ शञ्चतापक युधिष्टिर धनुष लेकर उस पक्षी को लक्ष्य करके खड़ा होण्या ॥

ततो विततधन्वानं द्रोणस्तं कुरुनन्दनम् । स सुहूर्तादुवाचेदं वचनं भरतर्षभ ॥४४॥ परेयेनं त्वं दुमाग्रस्थं भासं नरवरात्मज । परेयामीत्येवमाचार्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥४५॥

अर्थ-हे भरतकुल में श्रेष्ठ राजन ! तब धनुप चढ़ाये हुए कुरुवंश भूषण युधिष्ठिर से द्रोणाचार्य थोंड़ी देर के पश्चात यह बचन बोले कि हे राजपुत्र ! तू वृक्ष के शिखर पर रखे हुए पक्षी की ओर देख, युधिष्ठिर ने आचार्य को उत्तर दिया कि देख रहा हूं॥

स मुहूर्त्तीदिव पुनर्द्रोणस्तं प्रत्यभाषत । अथ वृक्षमिमं मां वा भ्रातृन् वापि प्रपश्यिस ॥४६॥ तमुवाच स कौन्तेयः पश्याम्येनं वनस्पतिम् । भवन्तं च तथा भ्रातृन् भासं चेति पुनः पुनः॥४७॥

अर्थ-थोड़ी देर के पश्चात द्रोणाचार्य फिर युधिष्ठिर सेबोले कि क्या तुम इस कृक्ष को वा मुझको वा अपने इन भाइयों को भी देख रहे हो ! तब कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि हां 8.68

महाभारत

वृक्ष को, आपको, भाइयों को और इस पक्षी को भी बार २ देख

तमुवाचापसर्पसर्पति द्रोणोऽप्रीतमना इव । नैतच्छक्यं त्वया वेद्धं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन्॥४८॥

अर्थ-तब द्राणाचार्य मन में अप्रसन्न से होकर उसकी निन्दा करते हुए वोले कि हट जाओ तुमसे यह लक्ष्य नहीं वेधा जायगा॥

ततो दुर्योधनादींरतान्धार्त्तराष्ट्रान्महायशाः । तेनैव कमयोगेन जिज्ञासुः पर्यपृच्छत ॥ ४९ ॥ अन्यांश्च शिष्यान् भीमादीन् राज्ञश्चेवान्यदेशजान् । तथा च सर्वे तत्सर्व पश्याम इति कुत्सिताः ॥५०॥

अर्थ-इसके पश्चात महामभावशाली द्रोणाचार्य ने उसी प्रकार क्रमपूर्वक एक २ करके धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादिकों तथा भीमसेनादिकों और अन्य देशों के राजाओं सेभी परीक्षा के निमित्त वही मक्ष किया, और उन सबों ने यही उत्तर दिया कि "हम सब बस्तुओं को देख रहे हैं" यह सुनकर गुरु ने उन सबको धिक्कारा॥

इति पंचदशोऽध्यायः समाप्तः

अथ षोडशोऽध्यायः प्रारम्यंत

वैदास्पायन उवाच

ततो धनञ्जयं द्रोणः स्मयमानोऽभ्यभाषत । त्वयेदानीं प्रहक्तव्यमतहक्ष्यं विलोक्यताम् ॥ १ ॥ मद्राक्य समकालं ते मोक्तव्योऽत्र भवेच्छरः । वितत्य कार्मुकं पुत्र तिष्ठ तावनमुहूर्त्तकम् ॥ २ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! इसके पश्चात मुसकराते हुए द्रोणाचार्य अर्जुन से बोले कि इस लक्ष्य को देखलो तुम्हें इस पर बाण चलाना है, हे पुत्र! तुम धनुष चढ़ाकर थोड़ी देर तक ठहर जाओ, जिस समय मैं बोलं उसीक्षण इस पर बाण छोड़ना॥

एवमुक्तः सन्यसाची मण्डलीकृतकार्मुकः । तस्थो भासं समुद्दिश्य एक्वाक्य प्रचोदितः ॥३॥ मुहूर्नादिव तं द्रोणस्तथैव प्रत्यभाषत । पश्यस्येनं स्थितं भासं दुमं मामपि चार्जन ॥४॥

अर्थ-गुरुजी की आज्ञा से मेरित हुआ २ अर्जुन उस पक्षी को लक्ष्य बनाकर खड़ा होगया, तब द्रोणाचार्य ने इससे भी उसी मकार पूछा कि हे अर्जुन ! क्या तुम वृक्ष पर रखे हुए पक्षी, वृक्ष और मुझको देख रहे हो ?॥

पश्याम्येकं भासमिति द्रोणं पार्थोऽभ्यभाषत । न तु वृक्षं भवन्तं वा पश्यामीति च भारत ॥५॥ 308

महाभारत

ततः प्रीतमना द्रोणो मुहूर्तादिव तं पुनः। प्रत्यभापत दुर्धर्षः पाण्डवानां महारथम् ॥ ६॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! अर्जुन ने द्रोणाचार्य को उत्तर दिया कि भैं केवल इस पक्षी को देख रहा हूँ, वृक्ष तथा आपको नहीं देखता, तब दुर्जय द्रोणाचार्य मन में प्रसन्न हुए २ थोड़ी देर पश्चात पाण्डवों के महायोद्धा अर्जुन से पुनः इस प्रकार पूछने लगे कि:-

भासं पश्यिस यद्येनं तथा बृहि पुनर्वचः । शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽनवीत्।।७॥

अर्थ-फिर बताओं, क्या तुम सचमुच इस पक्षी को देखरहें हो ? इस पर अर्जुन ने कहा कि मैं इस पक्षी का केवल सिर देख रहा हूं शरीर नहीं ॥

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु द्रोणो हष्टतन्रुहः । मुश्रस्वेत्यत्रवीत्पार्थं स मुमोचाविचार्यन् ॥८॥ ततस्तस्य नगस्थस्य धुरेण निशितेन च । शिर उत्कृत्य तरसा पातयामास पाण्डवः ॥ ९ ॥

अर्थ-अर्जुन के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य्य हर्ष से पुलकित हो उससे बोले कि बाण छोड़दो, यह कहते ही अर्जुन ने तत्काल ही बाण छोड़दिया, और उस बृक्ष पर रखे हुए पक्षी का तीक्ष्ण बाण के वेग से सिर काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥

कस्य चित्त्वथ कालस्य सिशष्योऽङ्गिरसां वरः। जगाम गङ्गामभितो मिजित्तं भरतर्षभ ॥१०॥

अवगादमथो द्रोणं सतिले मिललेचरः । ब्राहो जबाह बलवाञ्चङ्घान्ते कालचोदितः ॥११॥

अर्थ-हे भग्नवंशी जनमजय ! कालान्तर में एक समय होणा-चार्य्य शिष्यों समेन गङ्गा की ओर स्नान के लिये गये, उससमय इंबयोग में गहरे जल में घुमें हुए होणाचार्य्य की एक बलवान ग्राह ने टांग पकड़ली॥

स समयों अप मोक्षाय शिष्याच् सर्वानचोदयत्। ब्राहं हत्वा मोक्षयध्यं मामिति त्वरयित्रव।। १२॥ तद्वाक्य समकालं तु वीमत्सुर्निशितेः शरैः। अवाय्येः पश्चभिष्रीहं मममम्भस्यताहयत्। इतरे त्वथ संमृहास्तत्र तत्र प्रपेदिरे॥ १३॥

अर्थ-द्रोणाचार्य स्वयं उस ग्राह से छूटने में समर्थ होने पर भी परीक्षा के लिये अपने शिष्यों से शीघतया बोले कि "इस ग्राह को मारकर मुझे छुड़ाओ" बीर अर्जुन ने उनकी बात छुनते ही अपने पांच तीक्ष्ण तीरों द्वारा पानी में छिपे हुए उस ग्राह को मार दिया, और अन्य शिष्य घवराये हुए इधर उधर भागते दौड़ते रहे ॥

तं तु दृष्ट्वा त्रियोपेतं द्रोणोऽमन्यत पाण्डवम्। विशिष्टं सर्वशिष्येभ्यः प्रीतिमांश्चाभवत्तदा ॥१४॥ स पार्थ वाणेर्बहुधा खण्डशः परिकाल्पितः। प्राहः पञ्चत्वमापेदे जङ्घांत्यक्त्वा महात्मनः ॥१५॥ अर्थ-द्रोणाचार्य अर्जुन को ऐसा कार्यनिपुण देखकर उसको

महाभारत

सब शिष्यों में उत्कृष्ट मानने लगे और तभी से अज़ुन पर मसम्म रहने लगे, वह ग्राह अर्जुन के बाणों से दुकड़े २ होकर महात्मा द्रोणाचार्य की टांग छोड़ मृत्यु को माप्त होगया ॥ अथाव्रवीन्महात्मानं भारद्वाजो महारथम् । गृहाणेदं महावाहो विशिष्टमतिदुर्धरम् ॥१६॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम सप्रयोगनिवर्त्तनम् । आसामान्यमिदं तात लोकेष्वस्त्रं निगद्यते ॥१७॥

अर्थ-तब भरद्राज पुत्र द्रोणाचार्य योद्धा अर्जुन से बोले कि हे महावाहु ! तुम इस कार्य्य के पारितोषिक में यह "ब्रह्म" नामक उत्ऋष्ट तथा अनिवार्य शस्त्र प्रयोग करने की विधि समेत मुझसे प्रहण करो, हे पुत्र ! संसार में यह शस्त्र असाधारण बताया गया है ॥

तथेति संप्रतिश्रुत्य बीभत्सुः प्रकृताञ्चिलः । जग्राह परमास्त्रं तदाह चैनं पुनर्ग्रुरुः ॥१८॥ भवितात्वत्समो नान्यः पुमां होके धर्नु धरः । अजेयः सर्वशत्रूणां कीर्तिमांश्च भविष्यसि ॥१९॥

अर्थ-तब अर्जुन ने हाथ जोड़ "बहुत अच्छा" कहकर उस परम शस्त्र को ग्रहण किया, पश्चात गुरुजी ने तिक एक उसको यह आशीर्वाद दिया कि संसार में तेरे समान कोई धनुर्धारी न होगा तही सब शबुओं से अजेय और मतापी होगा ॥

इति षोडशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तदशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच कृतास्त्रान्धार्तराष्ट्रांश्च पाण्डपुत्रांश्च भारत । दृष्ट्वा द्रोणोऽत्रवीद्राराजन् धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजा जनमेजय ! द्रोणाचार्यनी धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों को शस्त्रविद्या समाप्त किये हुए देख कर राजा धृतराष्ट्र से वोले कि:—

कृपस्य सोमदत्तस्य बाह्लीकस्य च धीमतः । गाङ्गेयस्य च सान्निध्ये व्यासस्य विदुरस्य च ॥२॥ राजन् संप्राप्तविद्यास्ते कुमाराः कुरुसत्तम । ते दशयेयुः स्वां शिक्षां राजन्ननुमते तव ॥३॥

अर्थ-हे कुरुश्रेष्ठ राजत ! तुम्हारे पुत्र शस्त्रविद्या समाप्त करचुके हैं सो यदि तुम्हारी अनुमित हो तो यह वालक कृपाचार्य, सोमदत्त, बुद्धिमान बाह्धीक, भीष्म, न्यास और विदुरजी के सन्मुख अपनी शिक्षा का मयाग करके दिखलावें ॥

ततोऽत्रवीन्महाराजः प्रहृष्टेनान्तरात्मना । भारद्वाज महत्कर्म कृतं ते द्विजसत्तम ॥४॥ यदानुमन्यसे कालं यस्मिन्देशे यथा यथा । तथा तथा विधानाय स्वयमाक्षापयस्वमाम् ॥५॥

अर्थ-तब महाराज धृतराष्ट्रमन में आनन्दित होकर बोले कि हे उत्तम ब्राह्मण द्रोणाचार्य! आपने यह बड़ा भारी कर्म किया है, सो जिस समय, जिस स्थान में और जिस २ प्रकार से इन शिष्यों का कार्य दिखलाने की तुम्हारी अनुमित हो वैसा करने के लिये मुझे स्वयं आज्ञा दें॥

स्पृहयाम्यद्य निर्वेदात् पुरुषाणां सचक्षुषाम् । अस्त्रहेतोः पराक्रान्तान् ये मे द्रक्ष्यन्ति पुत्रकान्॥६॥ क्षत्तर्यद्युरुराचायों व्रवीति कुरु तत्त्रथा । नहीद्दशं प्रियं मन्ये भविता धमवत्सल॥७॥

अर्थ-आज मैं खेद से उन आखों वाले पुरुषों के प्रति जो शस्त्रविद्या में दढ़े चढ़े मेरे पुत्रों को देखेंगे ईषी कर रहा हूं कि "हाय मेरे आखें नहीं" हैं, है विदुर! जैसा गुरुजी कहते हैं वैसा ही करो, है धर्म के प्यारे! मैं इससे बढ़कर कोई प्यारी बात नहीं समझता॥

ततो राजानमामंत्र्य निर्गतो विदुरो विहः। भारदाजो महाप्राज्ञो मापयामास मेदिनीम्। समानवृक्षां निर्श्रत्मामुदक्पस्रवणान्विताम्॥।।।

अथ-तव विदुरजी राजा की अनुमति से नगर के बाहर गये,पश्चात महाबुद्धिमान द्रोणाचार्य ने रङ्गभूभी के लिये उस भूभी का माप कराया जो दृहों से विना समानक्ष से वृक्षों वाली और जो पानी से सिंची हुई थी॥

अवधृष्ट समाजे च तद्धं वदतांवरः । रङ्गभूमौ सुविपुलं शास्त्रदृष्टं यथाविधि ॥९॥ प्रेक्षागारं सुविपुलं चक्रुस्ते तस्य शिल्पिनः । राज्ञः सर्वायुथोपेतं स्त्रीणां चैव नर्र्षभ ॥१०॥ अर्थ-है राजन ! राजममाज को निमन्त्रण दिया गया और उसके लिये र प्रभूमि में शास्त्र की रीति में विधिपृर्वक बड़ा भारी प्रेक्षा-गार=तमाशा देखने का भवन कारी गरों ने बनाया जिसमें राजाओं के सब शस्त्र भरे हुए थे और जिसमें स्त्रियों के बैटने के योग्य अलग स्थान बना हुआ था ॥

मश्रांश्च कारयामासुम्तत्र जानपदा जनाः । विपुलानुच्छ्योपेताञ्छिविकाश्च महाधनाः ॥११॥

अर्थ-उस मान्त के निवासियों ने वहां वैठने के लिये वड़े २ ऊंचे मंच बनवाये और महाधनियों ने पालिकयें भी तैयार कराई ॥

तिसंमस्ततोऽहिन प्राप्ते राजा समिचवस्तदा । भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा कृपंचाचार्य्य सत्तमम् ॥१२॥ मुक्ताजालपरिक्षिप्तं वैदूर्यमणिशोभितम् । द्यात कुम्भमयं दिव्यं प्रेक्षागारमुपागमत् ॥१३॥

अर्थ-तत्पश्चात जब वह दिन आया तब राजा धृतराष्ट्र मंत्रियों समेत भीष्मजी और ऋपाचार्य को आगे करके सुवर्ण के बने हुए उस दिव्य प्रेक्षणभवन=तमाशा देखने के मंदिर में पहुंचे, जहां मोतियों के जाल लटकाये हुए थे और जिसमें वैद्र्य्य मणीं शोभा देरही थीं॥

गान्धारी च महाभागा कुन्ती च जयतांवर । स्त्रियश्च राज्ञः सर्वास्ताः सप्रेष्याः सपरिच्छदाः॥१४॥ ब्राह्मणभात्रियाद्यं च चातुर्वण्यं पुराद्रदुतम् । दर्शनेष्सु समभ्यागात् कुमाराणां कृतास्त्रताम्॥१५॥

महाभारत

अर्थ-हे श्रेष्ठ विजयी राजन ! सौभाग्यवती गान्धारी और कुन्ती तथा अन्य सब स्त्रियें भूषण वस्त्र पहरे हुए अपने दाम दासियों सहित नगर से चलीं तथा ब्राह्मण क्षत्रियादि चारो वणीं के पुरुष भी राजकुमारों की अस्त्रविद्या के दर्शन की अभिलाश से शीघ्र ही वहां पहुंचे॥

प्रवादितेश्च वादित्रैर्जनकौत्हलेन च । महाणव इव भ्रुव्यः समाजः सोऽभवत्तदा ॥१६॥

अर्थ-उस समय बाजों के बजने तथा मनुष्यों के कोलाहल से वह जनसमाज चंचल हुआ २ महासागर सा प्रतीत होता था॥

ततः शुक्काम्बरधरः शुक्कयज्ञोपवीतवान् ।

शुक्ककेशः सितश्मश्रःशुक्कमाल्यानुलेपनः ॥१७॥

रंगमध्यं तदाचार्यः सपुत्रः प्रविवेश ह।

नभो जलधरैहींनं सांगारक इवांशुमान् ॥१८॥

अर्थ-तब रङ्गभूमी के मध्य में द्रोणाचार्य्य अपने पुत्र समेत मितिष्ट हुए जो स्वेतवस्त्र और श्वेत यज्ञोपत्रीत धारण किये हुए तथा जिनके केश दादी भी श्वेत थे और जो श्वेत माला तथा श्वेत चन्दन का लेपन किये हुए मानो बादलों से रहित आकाश में मङ्गल ग्रह सहित सुर्य्य के समान मतीत होते थे॥

ततो बद्धाङ्गिलित्राणा बद्धकक्षा महारथाः । बद्ध त्णाः सधनुषो विविशुर्भरतर्षभाः ॥१९॥ अनुज्येष्ठं तु ते तत्र युधिष्ठिर पुरोगमाः । चकुरस्त्रं महावीर्याः कुमाराः परमाद्भुतम् ॥२०॥ अर्थ-तत्पश्चात् भरतकुलभूषण महायोद्धा कौरव पाण्डव अंगुलियों में कवच पहने हुए, कमर कसे हुए, तरकस तथा धनुष् धारण किये हुए वहां पहुंचे और वहां वह महा पराक्रमी युधिष्ठिर से आरम्भ करके वड़े के पश्चात छोटा, इस क्रम से परम आश्चर्यमय शस्त्र प्रयोग दिखलाने लगे॥

केचिच्छराक्षेपभयाच्छिरांस्यवननामिरे । मनुजा धृष्टमपरे वीक्षां चक्रुः सुविस्मिताः ॥२१॥ ते स्म लक्ष्याणि विभिदुर्बाणैर्नामाङ्कशोभितेः । विविधेर्लाघवोत्सृष्टैरुह्यन्तो वाजिभिद्रुतम् ॥२२॥

अर्थ-वहां पर वहुत से दर्शक लोगों ने वाण लगने के भय से अपने सिर नीचे झुका लिये, परन्तु वहुत से मनुष्य धृष्टता से अचिम्भत हुए २ उस दृश्य को देखते रहे, उन कुमारों ने घोड़ों पर चढ़ दौड़ते हुए अपने २ नामों से अंकित विविध प्रकार के वाणों द्वारा शीघ्रता से पहार करके लक्ष्यों=िनशानों को वींध डाला ॥

सहसा चुऋशुश्चान्ये नराः शतसहस्रशः । विस्मयोत्फलनयनाः साधुसाध्विति भारत ॥२३॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! तब वहां के सैकड़ों हज़ारों दर्शक लोग अचम्भे से फूले हुए बाह बाह की ध्वनि करने लगे ॥ कृत्वा धनुषि ते मार्गान् रथचर्यासु चासकृत् । गजपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च नियुद्धे च महाबलाः ॥२४॥ गृहीतखङ्गचर्माणस्ततो भूयः प्रहारिणः । तसरुमार्गान् यथोद्दिष्टांश्वेरः सर्वासु भूमिषु ॥२५॥

महाभारत

अर्थ-तव वह महावली राजकुमार वहां की सब भूमी पर धनुष चलाने के मार्ग बनाकर रथों, हाथियों तथा घोड़ों पर चढ़ कर और पैदल रहकर भी वार २ विचरने लगे तथा आज्ञानुसार तलवार चलाने के मार्ग बनाकर तलवार और ढाल लिये अधिकाधिक प्रहार करते हुए घूमने लगे ॥

लाघवं सौष्ठवं शोभां स्थिरत्वं हृदसुष्टिताम् । दृहशुस्तत्र सर्वेषां प्रयोगं खङ्गचर्मणोः ॥२६॥

अर्थ-दर्शक लोगों ने वहां उन सब राजकुमारों की चपलता, उत्कृष्टता, सौन्दर्य, स्थिरता, तलवार पकड़ने की दृहता और तलवार तथा ढाल के प्रयोग का अवलोकन किया॥

अथ तौ नित्यसंहष्टो सुयोधनवृकोद्रो । अवतीणीं गदाहस्तावेक शृङ्गाविवाचली ॥२७॥ बद्धकक्षी महाबाहू पौरुष पर्यवस्थिती । बृहन्ती वासिताहेतीः समदाविव कुञ्जरा ॥२८॥

अर्थ-तत्पश्चात् सदा हिंपत रहने वाले, पुरुषार्थ की सीमारूप महावाहु दो वीर अर्थात् दुर्योधन और भीमसेन, गदायें हाथों में लिये और कमर कसे हुए रङ्गभूमी में आये, जो मानी एक २ शिखर वाले दो पहाड़ थे और वह वहां आकर ऐसे गर्जे जैसे दो मतवाले हाथी मदगन्ध की ईर्षा से चिंघाड़ते हैं॥

तौ प्रदाक्षणसन्यानि मण्डलानि महाबलौ । चरेतुर्भण्डलगतौ समदाविव कुञ्जरै ॥२९॥ विदुरो धार्तराष्ट्राय गान्धार्याः पाण्डवारणिः ।

न्यवेदयेतां तत्सर्वं कुमाराणां विचेष्टितम् ॥३०॥

अर्थ-वह दोनों महावली निर्मल गदायें पकड़े हुए मतवाले हाथियों के समान कभी दहने और कभी वायें मण्डलाकार धूमने लगे, राजकुमारों का पूर्वीक्त सब कर्तव्य विदुर्जी धृतराष्ट्र को बसलाने जातेथे तथा पाण्डवारणि=कुन्ती गान्धारी को भी बनलाती जाती थी ॥

वैशम्पायन उचाच कुरुराजाहि रङ्गस्थे भीमे च बिलनां वरे । पक्षपातकृतस्नेहः म द्विचे वाभवज्जनः ॥३१॥ ही वीर कुरुराजेति ही भीम इति जल्पताम् । पुरुषाणां सुविपुलाः प्रणादाः सहसोत्थिताः ॥३२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! रङ्गभृमी में कुरुराज दुर्योधन और महावली भीमसेन की उपस्थिति में शिक्ति १ पक्षपात के स्नेह से मानवसमाज के दो त्रिभाग होगये, कई एक लोग कहते थे कि बाह २ कुरुराज दुर्योधन सर्वोपरि है, कई एक कहते थे कि बाह २ भीमसेन सबसे उत्तम है, इस मकार एकाएक मनुष्यों के असंख्य जयजयकार शब्द होने लगे॥

ततः शुन्धार्णविनमं रंगमालोक्य बुद्धिमान्।
भारद्वाजः प्रियं पुत्रमश्वत्थामानमत्रवीत् ॥ ३३ ॥
वारयैतौ महावीयौ कृतयोग्यावुभाविष ।
माभूदंगप्रकोषोऽयं भीमदुर्योधनोद्भवः ॥ ३४ ॥
अर्थ-तव बुद्धिमान् द्रोणाचार्य्यं उस रङ्गभूभी को चलायमान=
समुद्र के समान उछलती देखकर अपने प्यारे प्रत्र अञ्चत्थामा मे

बोले कि इन दोनों महापराक्रमियों को जो अपनी योग्यता दिखला चुके हैं अलग करदो, क्योंकि कदाचित भीमसेन और दुर्योधन के पक्षपात से रङ्गभूमी में क्रोध न फैलजाय ॥

ततस्तावुद्यतगदौ उरुपुत्रेण वारितौ। युगान्तानिलसंभ्रुच्यौ महावेलाविवार्णवौ।। ३५॥ ततो रंगांगणगतो द्रोणो वचनमत्रवीत्। निवार्य्य वादित्र गणं महामेघ निभस्वनम् ॥३६॥

अर्थ-वैद्याम्पायन बोले कि हे राजन ! तव गदायें उटाये हुए तथा प्रलयकाल की वायु से चलायमान हुए वहें २ तट बाले दो समुद्रों के समान वह दोनों वीर गुरुपुत्र अञ्चत्थामा ने अलग २ करित्ये,पश्चात रंगभूभिमें खड़े हुए द्रोणाचार्य्य वहे बादल के समान कोलाहल करते हुए उन बाजों का बजना रोक कर, यह बचन बोले कि:-

यो मे पुत्रात् थ्रियतरः सर्वशस्त्रविद्यारदः ।
ऐन्द्रिरन्द्रानुजसमः स पार्थो दृश्यतामिति ॥३७॥
आचार्यवचनेनाथ कृतस्वस्त्ययनो युवा ।
बद्धगोधांगुलित्राणः पूर्णतूणः सकामुकः ॥ ३८॥
काञ्चनं कवचं विभ्रात् प्रत्यदृश्यत फाल्युनः ।
सार्कः सेन्द्रायुथ तिहत् ससन्ध्य इव तोयदः ॥३९॥

अर्थ-जो मुझे अपने पुत्र ते भी अधिक प्यारा है वह सब शस्त्रविद्याओं में निपुण, इन्द्र के छोटे भाई के समान इन्द्रपुत्र अर्जुन मेरे सामने आवे, आचार्य की आज्ञा पाते ही युवक अर्जुन स्वस्ति-वाचन करके वाज और अंग्रुलियों पर कवच बांध वाणों से भरा हुआ तरकस और धनुन लिये तथा शरीर पर सुवर्ण का कवच पहने हुए इस प्रकारसामने आया जैसे वर्षाकाल के सन्ध्या समय का सूर्य इन्द्रधनुन और विजली समेत दिखलाई देता है ॥ ततः सर्वस्य रंगस्य समुत्पिञ्जलकोऽभवत्।

प्रावाद्यन्त च वाद्यानि सशङ्खानि समन्ततः ॥४०॥

अर्थ-तव सारे रङ्गभवन में वड़ा कौत्हल हुआ और चारो ओर बाजे तथा शंख वजने लगे॥

एष कुन्तीसुतः श्रीमानेष मध्यमपाण्डवः ।
एष पुत्रो महेन्द्रस्य कुरूणामेष रक्षिता ॥४१॥
एषोऽस्त्र विदुषां श्रेष्ठ एष धर्मभृतांवरः ।
एष शीलवतां चापि शीलज्ञानिनिधः परः ॥४२॥
इत्येवं तुमुलावाचः शुश्रुवुः प्रेक्षकेरिताः ।
कुन्त्याः प्रस्नवसंयुक्तेरसैः क्किन्नमुरोऽभवत् ॥४३॥

अर्थ-वहां दर्शक लोगों के मुख से निकली हुई इस प्रकार की जय २ वाणी सुनाई देती थी कि यह श्रीमान कुन्ती का पुत्र मध्य का पाण्डव है, यह महेन्द्र का पुत्र तथा कौरवों का रक्षक है, यह शस्त्रविद्या के ज्ञाताओं में सबसे बढ़ा हुआ तथा धर्मात्माओं में सर्वोत्तम है और यही अर्जुन उत्तम शील वाले पुरुषों में शील और ज्ञान का महान भण्डार है, यह वातें सुन २ कर पुत्र स्नेह के वेग से कुन्ती की छाती स्तनों के दूव और आंसुओं से भीगगई॥

तेन शब्देन महता पूर्णश्रुतिरथात्रवीत् । धतराष्ट्रो नरश्रेष्ठो विदुरं हृष्टमानुसः ॥४४॥

महाभारत

क्षत्तः क्षुव्धार्णविनभः किमेष सुमहास्वनः । सहसैवोत्थितो रंगे भिन्दन्निव नभस्तलम् ॥४५॥

अर्थ-उस भारी जयजयकार शब्द का पूर्णतया श्रवणकर राजा धृतराष्ट्र मन में हार्षत हुए २ विदुरजी से वोले कि है बिदुर ! यह चञ्चल समुद्र के समान भारी कोलाहल कैसा हुआ जो रङ्गभूमी से एकाएक उठकर आकाशतल को फोड़ने लगा है॥ विदुर उवाच

एष पार्थो महाराज फाल्यनः पाण्डनन्दनः। अवतीर्णः सकवचस्तत्रेष सु महास्वनः॥४६॥

अर्थ-विदुरजी बोले कि हे महाराज ! यह पण्डुपुत्र अर्जुन कवच धारण किये हुए रङ्गभूमी में आया है, इसीलिये यहां यह बड़ा कोलाहल होरहा है ॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि रिक्षतोऽस्मि महामते।
पृथारणि समुद्रवैस्त्रिभिः पाण्डव विद्वभिः॥४७॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोले कि हे महाबुद्धिमान विदुर ! कुन्ती रूपी अरणी से उत्पन्न हुए २ तीन अग्नियों के समान इन तीनों पाण्डवों से मैं अपने को धन्य, अनुगृहीत और सुरक्षित मानता हूं॥

वैशम्पायन उवाच

तिसमन् प्रमुदिते रंगे कथि बत् प्रत्युपस्थिते । दर्शयामास बीभत्सुराचार्य्यायास्त्रलाघवम् ॥४८॥ आमेयेनासृजद्विद्धं वारुणेनासृजत्पयः । वायव्येनासृजद्वाशुं पार्जन्येनासृजद्घनान् ॥४९॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उस आनन्द में भरे हुए रज़भवन के किसी न किसी भांति शान्त=चुपचाप होने के अनन्तर अर्जुन आचार्य को अपनी अस्त्रविद्या की निपुणता दिखलाने लगा, उसने आग्नेय अस्त्र से अग्नि निकाली, बाहण अस्त्र से जल निकाला, वायन्य अस्त्र से बायु उत्पन्न करदी और पार्जन्य अस्त्र से मेघों की रचना की।

भौमेन प्राविशद्मृमिं पार्वतेनासृजद्भिरान् । अन्तर्थानेन चास्रेण पुनरन्तर्हितोऽभवत् ॥५०॥

अर्थ-अर्जुन भौम अस्त्र से एथ्वी में प्रतिष्ठ होगया तथा पार्वत अस्त्र से पहाड़ बनाये और पश्चात अन्तर्थान अस्त्र से अदृश्य होगया ॥

क्षणात् प्रांशुः क्षणात्त्रस्वः क्षणाच स्थधूर्गतः । क्षणेन स्थ मध्यस्थः क्षणेनावतरन्महीम् ॥५१

अर्थ-वह एक क्षण में कभी ऊंचा कभी छोटा वनजाता था तथा क्षण २ में कभी रथ के घुरे पर, कभी रथ के वीच में और कभी पृथ्वी पर उत्तर आता था॥

सकुमारं च स्क्षं च एरुचापि एरुप्रियः। सोष्ठवेनाभिसंक्षिप्तः सोऽविध्यद्विविधैः शरैः ॥५२॥ अमतश्च वराहस्य लोहस्य प्रमुखे समम्। पञ्चवाणानसंसक्तान् संसुमोचैकवाणवत् ॥५३॥

अर्थ-गुरु के भिय शिष्य अर्जुन ने अत्यन्त शीव्रता द्वारा कोमल से कोमल, छोटे से छोटे तथा वड़े से वड़े लक्ष्य को अपने नाना बाणों से बींघा और छोहे के घूमते हुए सूअर के मुख में एक ही बाण के समान अलग २ पांच वाण एक ही वार छोड़ दिये॥

गव्ये विषाण कोषे च चले रज्जववलम्बिनि । निचलान महावीर्यः सायकानेक विंशतिम् ॥५४॥ इत्येवमादि सुमहत् लड्गे धतुषि चानघ । गदायां शस्त्र कुशलो मण्डलानि प्रदर्शयन् ॥५५॥

अर्थ-उस महापराक्रमी ने गाय के सींग के भीतर जो रस्सी के सहारे घूम रहा था इक्कीस वाण भर दिये, हे निष्पाप राजन ! अर्जुन ने इसी भांति तलवार और धनुप के वड़े २ हक्य तथा गदायुद्ध के मण्डलाकार भ्रमण भी वहुत दिखलाये॥

ततः समाप्तभूयिष्ठे तस्मिन् कर्मणि भारत । मन्दीभूते समाजे च वादित्रस्य च निःस्वने ॥५६॥ द्वारदेशात् समुद्भूतो माहात्म्यवलस्चकः । वज्रनिष्पेषसद्दशः शुश्रुवेभुजानिःस्वनः ॥५६॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! तव अर्जुन के उस अस्त्रदर्शनक्ष्य कर्मकौशल के प्रायः समाप्त होजाने तथा जनसमाज और वाजों का कोलाहल मन्द पड़जाने पर रङ्गभवन के द्वार की ओर भे उठा हुआ वज्र की गर्जना के समान भुजाओं का घोरशब्द सुनाई दिया जो किसी के महत्त्व वल को मृचित कर रहा था॥

दीर्यन्ते किंनुगिरयः किंस्विद्धमिर्विदीर्यते । किं स्विदापूर्यते व्योम जलधाराघनैर्घनैः ॥५७॥

रङ्गस्यैवंमतिरभूत् क्षणेन वसुधाधिप । द्वारं चाभिमुखाः सर्वे वभृतुः प्रेक्षकास्तदा ॥५८॥

अर्थ-हे राजन ! रङ्गभवन में क्षणभर के लिये दर्शक लोगों को ऐसा भान हुआ कि मानो पहाड़ गिर रहे हैं वा भूमी फट रही है अथवा मूसलधार वरसाने वाले बादलों से आकाश भर रहा है ? उस समय सब दर्शक लोग रङ्गभवन के द्वार की ओर अभिमुख होगये॥

पंचिभर्भातृभिः पार्थेद्रोंणः परिवृतोवभौ । पञ्चतारेण संयुक्तः सवित्रेणेव चन्द्रमाः ॥५९॥

अर्थ-उस समय पांचो भाई पाण्डवों से घिरे हुए द्रोणाचार्य ऐसे शोभायमान प्रतीत होते थे जैसे सूर्य सम्बन्धी पांच तारों से चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥

> अश्वत्थाम्ना च सहितं भ्रातृणां शतमूर्जितम् । दुर्योधनममित्रममुत्थितं पर्यवारयत् ॥६०॥ स तैस्तदा भ्रातृभिष्ट्यतायुधैर्गदाप्रपाणिः-समवस्थितैर्वृतः । बभै। यथा दानवसंक्षये पुरा पुरन्दरो देवगणैः समावृतः ॥६१॥

अर्थ-उस समय अद्यत्थामा के सहित अमित्रग्न=शासुओं के हनन करने वाला दुर्योधन वहां खड़ा हुआ अपने बलवात सो भाईयों से विरा हुआ था, उस समय गदा हाथ में लिये हुए दुर्योधन दियम से खड़े हुए तथा शस्त्र उठाये हुए सो भाइयों के तीच ऐसा शोभायमान प्रतीत होता था जैसे

महाभारत

प्राचीन समय में दस्युओं के नाश होने पर देवताओं से धिरा हुआ राजा इन्द्र प्रतीत होता था॥

इति सप्तदशोऽन्यायः समाप्तः

अथ अष्टादशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशस्पायन उवाच

दत्तेऽनकाशे प्रत्येविस्मयोत्फ्रहलोचनः। विवेश रंग विस्तीर्णं कर्णः परपुरञ्जयः॥१॥ सहजं कवचं विश्वत्कण्डलोद्योतिताननः। सधनुर्वद्य निस्त्रिंशः पादचारीव पर्वतः॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! अचम्मे से फेले हुए नेत्रों वाले पुरुषों से अवकाश दिये जाने पर उस भारी रङ्ग भवन में शहुओं के नगरों को विजय करने वाला "कर्ण" मितिष्ट हुआ, वह अपना सदा का कवच पहने, कानों में कुण्डलों से शोमायमान, धनुष तथा तलवार वांचे हुए चलते पहाड़ के समान मतीत होता था॥

सिंहर्पमगजेन्द्राणां बलवीर्य पराक्रमः।

दीप्तिकान्तिद्यतियुणैः सूर्येन्दुज्वलनोषमः।

प्रांशुः कनकतालाभः सिंहसंहननो युवा ॥३॥

अर्थ-वह वल और पराक्रम में तिह, वृषभ तथा हाथी के तुल्य, तेज में सूर्य्य, छात्र में चन्द्रमा और प्रकाश में आग्न के समान था, वह युवक सुवर्ण के तालवृक्ष के समान उंचा और मृनद्र रूप तथा उत्तम अङ्गों वाला था।।

स निरीक्ष्य महाबाहुः सर्वतो रङ्गमण्डलम्। प्रणामं द्रोणकृपयोनीत्यादृतिमवाकरोत् ॥२॥ स समाजजनः सर्वे निश्चलः स्थिरलोचनः। कोऽयमित्यागतक्षोभः कोत्हलपरोऽभवत् ॥५॥

अर्थ-महावाहु कर्ण ने चारो ओर रङ्गमण्डल का अवलोकन कर द्रोणाचार्य्य तथा कृपाचार्य्य को विना आदर=वे पर्वाही से प्रणाम किया, उसकी यह धृष्टता देखक (वहां का सब जनसमाज क्रोध में भरा हुआ निश्चल और टकटकी बांधे हुए इस उत्कण्डा में तत्पर हुआ कि यह कौन धृष्ट पुरुष आया है।।

सोऽन्नवीन्मेघगम्भीरस्वरेण वदतांवरः। भाता भातरमज्ञातं सावित्रः पाकशासिनम् ॥६॥ पार्थ यत्ते कृतं कर्म विशेष वदहं ततः। करिष्ये पश्यतां नृणां मात्मना विस्मयं गमः॥७॥

अर्थ-तव बोलने वालों में श्रेष्ठ कर्ण अपने अज्ञात भाई इन्द्रपुत्र अर्जुन से मेच समान ऊंचे शब्द द्वारा इस प्रकार बोला कि है पृथा के पुत्र अर्जुन! तैंने जो २ कम इन दर्शक लोगों के सामने दिखलाये हैं मैं उन सबको और भी अच्छी रीति से दिखलाता हूं तु अभिमान न कर ॥

असमाप्ते ततस्तस्य वचने वद्तांवर । यंत्रोत्शिप्त इवोत्तस्थौ क्षिप्तं वै सर्वतो जनः ॥८॥ प्रीतिश्वमनुजन्यात्र दुर्योधनसुपाविशत् । हीश्व कोधश्व बीभत्सुं क्षणेनान्वाविवेश ह ॥९॥ अर्थ-हे उत्तम वक्ता राजन ! तव उसका वचन समाप्त भी न होपाया था कि वहां सब ओर के मनुष्य ऐसे शीघ्रता से उठ खड़े हुए कि मानो किसी यन्त्र ने उनको एकाएक ऊपर उठा दिया है, हे सिंहपुरुष राजन ! दुर्योधन को उस समस वड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और अर्जुन को क्षणभर के लिये लज्जा तथा क्रोध का आवेश हो आया ॥

ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः कर्णः प्रियरणः सदा । यत्कृतं तत्र पार्थेन तचकार महाबलः ॥१०॥ अथ दुर्योधनस्तत्र भ्रातृभिः सह भारत । कर्ण परिष्वज्य मुदा ततो वचनमब्रवीत् ॥११॥

अर्थ-तत्पश्चात द्रोणाचार्य की अनुमात से जो २ कुछ अर्जुन ने कान दिखाया था वह सब महाबठी सदा युद्धिय कर्ण ने कर-दिखाया, हे भारतीय नरेश! इसके अनन्तर अपने भाइयों समेत दुर्योचन आनन्दपूर्वक कर्ण को आलिङ्गन करके बोला कि :-

दुर्योधन उवाच

स्वागतं ते महाबाहो दिष्ट्या प्राप्तोऽसिमानद । अहं च कुरुराज्यं च यथेष्टमुपभुज्यताम् ॥१२॥ कर्ण जवाच

कृतं सर्वमहं मन्ये सिवत्वं च त्वया वृणे । द्वन्द युद्ध च पार्थेन कर्त्तु मिच्छाम्यहं प्रभो ॥१३॥

अर्थ-दुर्योवनबोला कि हे दूसरों को मान देने वाले महाबाहु! आपका स्वागत हो, आप हमें सौभाग्य से मिले हैं, मुझमें और कीरबों के राज्य से यथेष्ट सेवा लीजिये॥ अर्थ-तब कर्ण बोला कि हे राजन ! मैं आपका सब उपकार मानता हुआ आपसे मित्रता चाहता हूं और इस पृथा के पुत्र अर्जुन से मेरी द्वन्द्वयुद्ध करने की इच्छा है ॥ दुर्योधन उवाच

सुङ्क्ष्व भोगान्मया सार्छ वन्धूनां प्रियकृद्भव । दुईदां कुरु सर्वेषां मूर्विन पादमरिन्दम ॥१४॥

ततः क्षिप्तमिवात्मानं मत्वा पार्थोऽभ्यभाषत । कर्णे भ्रातृसमृहस्य मध्येऽचलिमव स्थितम् ॥१५॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि है शत्रुओं के दमन करने वाले कर्ण! आप मेरे साथ रहकर भोगों को भोगें, वन्धुओं के हितकारी वनें तथा सम्पूर्ण शत्रुओं के सिर पर लात रखने वाले हों॥

अर्थ-वैशम्पायन बोलं कि हे राजन ! तब पृथा का पुत्र अर्जुन अपने ऊपर आक्षेप किया हुआ समझकर भाइयों के समूह में पर्वत के समान खड़े हुए कर्ण से बोला कि :-

अनाहृतोपदिष्टानामनाहृतोपजल्पिनाम् । ये लोकास्तान् हतः कर्ण मयात्वं प्रतिपत्स्यसे ॥१६॥

अर्थ-हे कर्ण ! विना आज्ञा उपदेश सुनने को आया हुआ वा विना पृछे उपदेश करने वाला जिस गति को प्राप्त होता है उसी गति को मुझसे मारा हुआ तू प्राप्त होगा ॥ कर्ण उवाच

रंगोऽयं सर्वसामान्यः किमत्र तव फाल्यन । वीर्यश्रेष्ठाश्च राजानो बलं धर्मोऽनुवर्त्तते ॥१७॥

किं क्षेपैर्दुर्बलायासेः शरैः कथय भारत । गुरोः समक्षं यावने हराम्य शिरः शनैः ॥ १८ ॥

अर्थ-तब कर्ण बोला कि हे अर्जुन!यह रङ्गभवन सर्वसाधारण का है तुम्हारा यहां क्या है ? यहां बड़े २ बीर राजा बैठे हुए हैं, और धर्म सदा बल के साथ रहता है, हे भरतवंशी अर्जुन! बता दुर्बल पर महार करने वाले इन बाणों से क्या ? मैं अभी गुरुजी के सन्मुख अपने बाणों से सहज में ही तुम्हारा सिरकाट सकता हूं॥

ततो द्रोणाभ्यनुज्ञातः पार्थः परपुरञ्जयः । भारतभिस्त्वरयाश्लिष्टो रणायोपजगामतम् ॥ १९॥ ततो दुर्योधनेनापि सभात्रा समरोद्यतः । परिष्वक्तः स्थितः कर्णः प्रगृह्य सद्यारं धनुः ॥२०॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब शञ्जविजयी अर्जुन द्रोणाचार्य से अनुमित ले तथा शीघ्रता से भाइयों को आलिङ्गन करके युद्ध के लिये कर्ण के समीप पहुंचा, तत्पश्चाद धनुष बाण उठाये युद्ध के लिये तैयार खड़े हुए कर्ण को दुर्योधन और उसके भाइयों ने भी आलिङ्गन किया ॥

धार्त्तराष्ट्रा यतः कर्णस्तिस्मिन्देशे व्यवस्थिताः । भारद्वाजः कृपो भीष्मो यतः पार्थस्ततोऽभवन्।।२१॥ द्विया रंगः समभवत् स्त्रीणां देधमजायत । छन्तिभोजस्तामोहं विज्ञातार्थाजगाम ह ॥ २२॥

अर्थ-धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि जिम ओर कर्ण था उस ओर खड़े रहे और अर्जुन की ओर ट्रोणाचार्य. कृपाचार्य

आदिपर्व-अष्टादशाध्यायः

204

तथा भीष्मजी खड़े हुए, तब रङ्गसमाज के दो विभाग होगये और स्त्रियों के भी दो भाग बनगये, कुन्ती अपने दोनो पुत्रों के युद्ध की बात समझकर मूर्छित होगई॥

तां तथा मोहमापन्नां विदुरः सर्वधर्मवित् । कुन्तीमाश्वासयामास प्रेष्याभिश्चन्दनोदकैः ॥ २३ ॥

ततः प्रत्यागतप्राणा तानुभी परिदंशितौ । पुत्रौ दृष्वा सुसंभ्रान्तानान्वपद्यत किंचन ॥२४॥

अर्थ-सब धर्मों के ज्ञाता विदुरजी ने कुन्ती को मूर्छित हुई देखकर दासियों द्वारा चन्दन के शीतल जलों से चैतन्य किया, तब सुध संभालकर कुन्ती उन दोनो पुत्रों को परिदंशित=युद्ध के लिये तैयार देखकर श्रम में पड़गई और उसे कुछ नहीं सुझा॥

ताबुद्यतमहाचापौ कृपः शारद्रतोऽत्रवीत् । द्रन्दयुद्ध समाचारे कुरालः सर्वधर्मवित् ॥२५॥

अयं पृथायास्तानयः कनीयान् पाण्डनन्दनः । कौरवो भवता सार्धे दन्द्रयुद्ध करिष्यति ॥२६॥

अर्थ-द्रन्द्रयुद्ध के न्यवहार में निपुण सर्वधर्मज्ञाता शरद्रत्त के पुत्र कृपाचार्थ्य बड़े २ धनुष उठाये हुए उन दोनों=कर्ण,अर्जुन के प्रति बोले कि हे कर्ण ! यह अर्जुन कुन्ती और पाण्ड का छोटा पुत्र तथा कुरुवंशी होते हुए तुन्हारे साथ द्रन्द्रयुद्ध करेगा,परन्तु :-

त्वमप्येवं महाबाहो मातरं पितरं कुलम् । कथयस्व नरेन्द्राणां येषां त्वं कुलभूषणं ॥ २७ ॥ ततो विदित्वा पार्थस्त्वां प्रतियोतस्यति वा नवा ।

वृथाकुलसमाचारेर्नयुध्यन्ते नृपात्मजाः ॥ २८॥

अर्थ-हे महावाहु! तुम भी अपने माता पिता तथा कुछ का वर्णन करो जिन राजाओं के तुम कुछभूषण हो? इसके पश्चात् अर्जुन तुम्हारा समाचार जानकर तुम्हें यदि अपने समान कुछीन समझेगा तो युद्ध करेगा अन्यथा नहीं, क्योंकि राजकुमार अकुछीन पुरुषों के साथ युद्ध नहीं करते ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्य कर्णस्य वीडावनतमाननम् । बभौ वर्षाम्बुविक्किन्नं पद्ममागलितं यथा ॥ २९॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! ऐसा कहा जाने पर कर्ण का मुख लज्जा के मारे नीचा हुआ २ ऐसा प्रतीत होने लगा जैसा वर्षाऋत के पानी से गलकर झुका हुआ कमल होजाता है ॥

दुर्योधन उवाच

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये । सत्कुलीनश्च श्ररश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥ ३०॥ यद्ययं फाल्गुनो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति । तस्मादेषोऽङ्गविषये मया राज्येऽभिषच्यते ॥३१॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे आचार्य्य! शास्त्रसिद्धान्त में राजा होने के तीन कारण बताये हैं, (१) सत्कुलीन=ख़ान्दानी होना (२) श्रुरबीर (३) जो सेना का आकर्षण करसके, यदि अर्जुन राजा के अतिरिक्त किसी के साथ युद्ध करना नहीं चाहता तो कर्ण को मैं इसी समय अङ्गदेश=चम्पारन प्रान्त का राज्यतिलक देता हूं भ

आदिपर्व-अष्टादशाध्याय

466

वैशम्पायन उवाच

ततस्तिसमन् क्षणे कर्णः सलाजकुसुमैघँटैः। कांचनैः कांचने पीठे मन्त्रविद्धिमहारथः ॥३२॥ अभिषिक्तोंगराज्यस्य श्रिया युक्तो महाबलः। सच्छत्रवालव्यजनो जयशब्दोत्तरेण च ॥३३॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! तव उसी क्षण में महा योद्धा कर्ण सोने के निहासन पर विटाया गया और वेदमन्त्रों के ज्ञाता पुरुषों ने लाजा तथा फुलों महित सोने के घटों द्वारा अद्भदेश का राजा बनाने के लिये अभिषेक=स्नान कराया जिसमें छत्र, चत्रर और जयशब्द का प्रयोग भी किया गया था ॥

उवाच कोखं राजा वचनं स वृषस्तदा । अस्य राज्यप्रदानस्य सहशं किं ददानि ते ॥३४॥ प्रबृहि राजशार्दूल कर्त्ता ह्यस्मि तथा नृप । अत्यन्तं संख्यमिच्छामीत्याह तं स सुयोचनः ॥३५॥

अर्थ-तब वह श्रेष्ठ राजा कर्ण कुरुवंशी दुर्योधन से बोला कि इस राज्यदान के बदले में कौन वस्तु इसके सहक्य तुम्हें दूं? हे राजाओं में सिंह समान! जैसी आप आज्ञा करें वैसा ही करूं, इस पर दुर्योधन ने कहा कि मैं इसके बदले में आपसे धनिष्ठ मित्रता चाहता हूं॥

एवमुक्तस्ततः कर्णस्तथेति प्रत्युवाचतम् । हर्षाचोभौ समाश्ठिष्य परांमुदमवापतुः ॥३६॥

महाभारत

अर्थ-दुर्योधन के ऐसा कहने पर कर्ण ने उत्तर दिया कि "ऐसा ही होगा" तब हर्ष से दोनों आपस में आलिङ्गन कर परम प्रसन्न हुए॥

इति अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनविंशोऽध्यायः प्रारम्यते

चैदाम्पायन उवाच

ततः स्रस्तोत्तरपटः सप्रस्वेदः सवेपथुः । विवेशाधिरथा रंगं यष्टिप्राणो ह्रयन्निव ॥१॥ तमालोक्य धनुस्त्यक्त्वा पितृगौरवमन्त्रितः । कर्णोऽभिषेकाईशिराः शिरसा समवन्दत ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब यष्टिप्रमाण=लाठी के सहारे चलने वाला "अधिरथ" नामक स्नत=कर्ण का पिता बुलाता हुआ सा रङ्गभवन में प्रविष्ट हुआ जिसका प्रेम के वेग से ऊपरी वस्त्र नीचे खिसका हुआ तथा शरीर में पसीना और कम्प होरहा था, राज्याभिषेक से भींगे हुए सिर वाले कर्ण ने उनको देखते ही पितृसत्कार के लिये विवश हो धनुष छोड़कर सिर से बन्दना की ॥

ततः पादाववच्छाद्य पटान्तेन ससंभ्रमः । पुत्रोति परिप्रणीर्थमववीदथ सारिथः ॥ ३ ॥ परिष्वज्य च तस्याथ मूर्द्धानं स्नेहविक्कवः।

अंगराज्याभिषेकाईमश्रुभिः सिषिचे पुनः ॥ ४ ॥
अर्थ-तव उस रथ के सार्थि ने कपड़े के अंचल से पैरों को
ढांपकर आदर के साथ उसको पूर्णक्ष्य से "पुत्र" ऐसा कहा,
पश्चाद स्नेह के वशीभूत हुए २ सार्थि ने उसको आलिङ्गन करके
उसके यस्तक पर जो अङ्गदेश के राज्याभिषेक का जल सिचन
किया हुआ था, फिर उसको आसुओं के जल से सिञ्चन किया ॥
ते द्वादुरा स्ततपन्ती प्राणिनि संविक्ता

तं हृद्वा सूतपुत्रोऽयमिति संचिन्त्य पाण्डवः । भीमसेनस्तदावाक्यमत्रवित्पहसन्निव ॥ ५ ॥ न त्वमहिसि पार्थेन सूतपुत्ररणे वथम् । कुलस्य सहशस्तूर्णं प्रतोदो गृह्यतां त्वया ॥ ६ ॥

अर्थ-यह घटना देखकर पाण्डवों ने समझा कि यह तो स्वत जाति का पुत्र है, तब भीमसेन मुसकराकर उससे बोला कि हे स्वतपुत्र कर्ण! तू राजपुत्र अर्जुन से युद्ध द्वारा बंध किये जाने योग्य नहीं, सो अब तू अपने कुल के अनुसार ही शीघ दण्ड ग्रहण कर ॥

अङ्गराज्यं च नार्हस्त्वमुपभोक्तुं नराधम । स्वा हुताशसमीपस्थं पुरोडाशमिवाध्वरे ॥७॥

अर्थ-हे अधम नर ! त अङ्गदेश के राज्य का भी अधिकारी नहीं, जैसे यह में अप्नि के समीप रखे हुए पुरोडाश का अधिकारी कुत्ता नहीं होसकता ॥

ततो दुर्योधनः कोपादुत्पपात महाबलः। भातृपद्मवनात्तस्मान्मदोत्कट इव द्विपः॥८॥

पहाभारत

सोऽबवीद्भीमकर्माणं भीमसेनमवस्थितस् । वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशस् ॥९॥

अर्थ-तब महावली दुर्यांधन क्रोध में भरकर अपने सी भाइयों कप कमल बन से मतवाले हाथी के समान कूदकर सामने आ खड़ा हुआ और समीप खड़े हुए किंटनकर्म करने वाले भीमसेन से बोला कि हे भीमसेन ! तुम्हें ऐसी बात कहना जिचत नहीं ॥ क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योद्धव्यं क्षत्रबन्धुना । श्रूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल ॥१०॥ क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः ।

विश्वामित्रप्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमञ्ययम् ॥११॥
अर्थ-क्षत्रियों में वल ही प्रधान होता है, सो इस प्रकार के
क्षात्रिय भाई से युद्ध करना जचित ही है,क्योंकि वीरों तथा नदियों
की उत्पत्ति जानना वड़ा कठिन है, आपने सुना है कि जो क्षत्रियों
से उत्पन्न दूए ये वह ब्राह्मण बन गये, जैसे विश्वामित्र आदि अ-

लण्ड ब्राह्मणत्व को माप्त हुए।।

पृथिवीराज्यमहींऽयं नांगराज्यं नरेक्वरः । अनेन बाहुवीर्येण मया चाज्ञानुवर्त्तिना ॥१२॥ यस्य वा मनुजस्येदं न क्षान्तं मद्विचेष्टितम् । रथमारुह्य पद्भ्यां स विनामयतु कार्मुकम् ॥१३॥

अर्थ-यह राजा अपने भुजवल तथा मुझ आज्ञाकारी सेवक की सहायता से अद्भदेश तो क्या पृथ्वीभर के राज्य का अधि-कारी है, सो जिस मनुष्य को मेरा यह कथन असह प्रतीत

आदिपर्व-एकोनविशाःयाय

303

हो वह रथ पर वह पैरों से इस घतुष को झकाकर दिसलावे ॥
ततः सर्वस्य रंगस्य हाहाकारो महानभूत ।
साधुवादानुसंबद्धः सूर्यश्चास्तमुपागमत् ॥१४॥
ततो दुर्योधनः कर्णमालम्ब्यायकरे नृपः ।
दीपिकामिकृतालोकस्तस्मादंगादिनिर्ययो ॥१५॥

अर्थ-दुर्योधन के कथनानन्तर सारे रङ्गभवन में हाहाकार मच गया और लोगों की वाह वाह के साथ ही सूर्य भी अस्त हो चला, तब राजा दुर्योधन कर्ण का हाथ पकड़कर दीपकों के प्रकाश में रङ्गभवन से चला गया ॥

पाण्डवाश्च सहद्रोणाः सकृपाश्च विशाम्पते । भाष्मेण सहिताः सर्वे ययुः स्वं स्वं निवेशनम् ॥१६॥ अर्जुनेति जनः कश्चित्कश्चित्कर्णेति भारत । कश्चिद्दुर्योधनेत्येवं ब्रुवन्तः प्रस्थितास्तदा ॥१७॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! तब पाण्डव द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्मजी यह सब अपने २ घर गये और अन्य लोग भी कई एक अर्जुन को तथा कई एक दुर्योधन को धन्यवाद देते दूप वहां से चल दिये ॥

कुन्त्याश्च प्रत्यभिज्ञाय दिव्यलक्षणस् चितम् । पुत्रमंगेश्वरं स्नेहाच्छन्ना प्रीतिरजायत ॥१८॥ दुर्भियनस्यापि तदा कर्णमासाद्य पार्थित । भयमर्जुनसंजातं क्षिपमन्तरधीयत ॥१९॥

महाभारत

भर्य-अद्भुत श्वभ लक्षणों से युक्त पुत्र अङ्गराजकर्ण को पहचान-कर कुन्ती की भी स्नेह से छिपी हुई मीति उत्पन्न होगई, हे राजन ! तब दुर्यायन को जो अर्जुन का भय उत्पन्न हुआ था सो कर्ण को पाकर शीघ ही लुप्त होगया।।

स चापि वीरः कृतशस्त्रनिः श्रमः परेण साम्नाभ्य वदत्सुयोधनम् । युधिष्टिरस्याप्यभवत्तदा मतिने कर्णतुल्योऽस्ति धनुर्धरः क्षितौ ॥ २०॥

अर्थ-शस्त्रविद्या में परिश्रम किये हुए बीर कर्ण ने भी परम सान्त्वना=भैर्य देते हुए दुर्योधन से सम्भाषण किया और उस दिन से युधिष्ठिर के चित्त में भी यह बात बैठ गई कि कर्ण के समान धनुर्धारी पृथ्वीभर में अन्य कोई नहीं॥

इति एकोनविशोऽध्यायः समाप्तः

अथ विंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः संवत्सरस्यान्ते यौवराज्याय पार्थिव । स्थापितो धतराष्ट्रेण पाण्डपुत्रो युधिष्ठिरः ॥१॥

अर्थ-नैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब एकवर्ष पश्चात धृतराष्ट्र नेपाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को युवराज्य पद परस्थापित करिंदया॥ धृतिस्थैर्यसहिष्णुत्वादानृशंस्यात्तथार्जवात्।

भृत्यानामनुकम्पार्थं तथैव स्थिरसी हदात् ॥शा

ततोऽदीर्घेण कालेन क्रन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। पितुरन्तर्देधे कीर्त्ति शीलवृत्तसमाधिभिः॥३॥

अर्थ-तव कुन्ती के पुत्र युधिष्टिर ने धर्म, गम्भीरता, साहिर ष्टणुता, दयालुता, सेवकों पर ऋषा, स्थिर मित्रता, उत्तम शील, आचरण तथा नियमों द्वारा आप्रेक काल में अपने पिता की कीर्त्ति को लोगों के चित्त से भुला दिया ॥

असियुद्धे गदायुद्धे स्थयुद्धे च पाण्डवः । संकर्षणादशिक्षद्धे शस्त्रचिछक्षां वृकोदरः ॥४॥

अर्थ-पाण्डुपुत्र भीमसेन भी खद्रयुद्ध, गदायुद्ध तथा रथ-युद्ध की शिक्षा बलराम से सदा ग्रहण करता था ॥ प्रगादहृदसुष्टित्वे लाघवे वेधने तथा । श्चरनाराचभलानां विपाठानां च तत्त्ववित् ॥५॥ ऋज्वक्रविशालानां प्रयोक्ता फाल्यनोऽभवत् । लाघवे सौष्ठवे चैव नान्यः कश्चन विद्यते । बीभतसुसहशो लोके इति द्रोणो व्यवस्थितः ॥६॥

अर्थ-अर्जुन भी तलवार आदि की मूट पकड़ने में अत्यन्त हड़ता, प्रयोग करने में शीव्रता, वेबन तथा सीबे, टेढ़े वा बड़े २ छुरे, बाण, भाले और विपाठाओं के प्रयोग करने में निपुण होगया और द्रोणाचार्य को यह विश्वास होगया कि शस्त्रों के प्रयोग की शीव्रता और उत्तवता में अर्जुन के समान कोई भी पुरुष पृथ्वी पर नहीं ॥

ततोऽनवीदयडाकेशं द्रोणः कीरवसंसदि ।

अगस्त्यस्य धनुवेंदे शिष्यो ममग्रहः पुरा । अभिवेश इति ख्यातस्तस्य शिष्योऽस्ति भारत ॥७॥

अर्थ-तब द्रोणाचार्य कौरवों की सभा में अर्जुन से बोले कि हे भारतीय ! पहले समय में मेरा गुरु "अग्निवेश" नाम से मिसिद्ध धनुर्वेद में आ स्त्य मुनि का शिष्य था, सो मैं उत "अग्निवेश" का शिष्य हूं॥

तपसा यन्मया प्राप्तममोघमशानिष्ठभम् । अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम यद्देहत्पृथिवीमपि ॥८॥ ददता ग्रहणा चोक्तं न मनुष्येष्विदं त्वया । भारद्वाज विमोक्तव्यमल्पवीर्येष्वपि प्रभो ॥९॥

अर्थ-हे राजन! मैंने तर के आचरण द्वारा अपने गुरु से
"ब्रह्मिशर" नामक अस्त्र पाया है, जो कभी खाली नहीं जाता
और वज्र के समान तीत्र तथा पृथ्वी को भी जला सकता है,
गुरु ने इस अस्त्र को देते हुए मुझसे कहा था कि हे द्रोण! इस
अस्त्र का प्रयोग तुम थोड़े पराक्रम वाले पुरुषों पर न करना॥
त्वया प्राप्तमिदं वीर दिव्यं नान्योऽर्हतित्विदम्।
समयस्तु त्वया रक्ष्यो मुनिसृष्टो विद्यांपते ॥१०॥

अर्थ-हे बीर अर्जुत ! यह मेरा अद्भुत अस्त्र तुझे माप्त हो गया है, क्योंकि और कोई इसका अधिकारी नहीं,परन्तु मुनि=मेरे गुरु के बताये नियम का तुम सदा पालन करना ॥

आचार्यदक्षिणां देहि ज्ञातिश्रामस्य पश्यतः। ददानीति प्रतिज्ञाते फाल्यनेनाववीद् गुरुः।

युद्धेऽहं प्रतियोद्धन्यो युद्धचमानस्त्वयोऽनघ ॥११॥

अर्थ-तव वन्धु लोगों के ममक्ष द्रोणाचार्य ने कहा कि अच्छा अव तुम मुझे "गुरू दक्षिणा दो" इस पर अर्जुन ने कहा कि "देता हूं" तब गुरू वोले कि हे निष्पाप! "में यही दक्षिणा चाहता हूं" कि जब कभी युद्ध का समय आवे तो मेरे साथ तुम्हीं युद्ध करना॥ तथेति च प्रतिज्ञाय द्रोणाय कुरुपुङ्गवः। उपसंगृह्य चरणो स प्रायादुत्तरां दिशम्॥ १२॥

अर्थ-इस पर कुरुवंश में श्रेष्ठ अर्जुन ने मितज्ञा की कि "ऐसा ही करुंगा" पश्चाद वह गुरु के चरणों में मणाम कर उत्तर दिशा की ओर चला गया॥

स्वभावादगमच्छन्दो महीं सागरमेखलाम् । अर्जुनस्य समो लोके नास्ति कश्चिद्धनुर्धरः ॥ १३ ॥ गदायुद्धेऽसियुद्धे च रथयुद्धे च पाण्डवः । पारगश्च धनुर्युद्धे बभ्वाथ धनञ्जयः ॥ १४ ॥

अर्थ-समुद्रक्षी मेलला धारण किये हुए सारी भारतभूमी पर यह बात स्वभाव से फैलगई कि अर्जुन के समान धनुर्धारी लोक=देश में कोई नहीं है, क्योंकि पाण्डव अर्जुन गदायुद्ध, असि युद्ध, रथयुद्ध तथा धनुव के युद्ध में भी पारगामी होगया था॥ न शशाक वशीकर्त्तु यं पाण्डरिप वीर्यवान्। सोऽर्जुनेन वशंनीतो राजासी द्यवनाधिपः। अतीव बलसंपन्नः सदा मानी कुरून् प्रति॥ १५॥ अर्थ-यवनों का राजा जिसको पराक्रमी पाण्ड भी वश में न

महाभारत

कर सके थे उस अत्यन्त बलवान तथा कुरुवंशियों के प्रति सदा घमण्ड रखने वाले राजा को अर्जुन ने अपने वश में करिलया॥

विवुलो नाम सौर्वारः शस्तः पार्थेन धीमता । दत्तामित्र इति रूपातं संग्रामे कृतनिश्चयम् । सुमित्रं नामसौर्वारमज्जनोऽदमयच्छेरैः ॥ १६ ॥

अर्थ-सुनीर के पुत्र "वितुल" नामक वीर का बुद्धिमान अर्जुन ने युद्ध में हनन किया तथा सुनीर के पुत्र "दत्तामित्र" नाम से मिसद्ध युद्ध के लिये निश्चय किये हुए "सुमित्र" वीर को भी अर्जुन ने अपने वाणों द्वारा वश में करिलया ॥

भीमसेनसहायश्च रथानामयुतं च सः। अर्जुनः समरे प्राच्यान् सर्वानेकरयोऽजयत् ॥१७॥ तथैवैकरथो गत्वा दक्षिणामजयिह शस्। धनौषं प्रापयामास कुरुराष्ट्रं धनञ्जयः ॥ १८॥

अर्थ-पश्चात अर्जुन ने भीमसेन के साथ एक रथ लिये हुए
पूर्विदशा की ओर जाकर युद्ध में दशहज़ार रथ जीते तथा पूर्व
के सब राजाओं को विजय करलिया, इसी प्रकार अर्जुन
ने एक रथ से दक्षिण दिशा की ओर जाकर वहां के सब
राजाओं को विजय किया और वहां जो धन मिला उसे वह
कुरुदेश को पहुंचाता रहा॥

एवं सर्वे महात्मानः पाण्डवा मनुजोत्तमाः। परराष्ट्राणि निर्जित्य स्वराष्ट्रं ववृधुः पुरा ॥ १९ ॥ ततो बलमतिष्यातं विज्ञाय दृढधन्वनाम्। दृषितः सहसा भावो धतराष्ट्रस्य पाण्डुषु । स चिन्तापरमो राजा न निद्रामलभन्निशि ॥ २०॥

अर्थ-इस प्रकार प्राचीन काल में महात्मा पाण्डवों ने अन्य देशों को विजय करके अपने देश की वृद्धि की, तब हढ़ धनुर्धारी पाण्डवों के बल की अत्यन्त ख्याति सुनकर राजा धृतराष्ट्र का भाव पाण्डवों के प्रति एकाएक बदल गया और उसको परम चिन्ता में पड़े हुए रात को नींद भी नहीं आई॥

वैशम्पायन उवाच

तत आहूय मन्त्रज्ञं राजशास्त्रार्थवित्तमम् । कणिकं मन्त्रिणा श्रेष्ठं धतराष्ट्रोऽत्रवीद्रचः ॥ २१ ॥ उत्सिक्ताः पाण्डवाः नित्यं तेभ्योऽसूये द्विजोत्तम । तत्र मे निश्चिततमं सन्धिविग्रहकारणम् । कणिकत्वं ममाचक्ष्व करिष्ये वचनं तव ॥२२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हेराजन ! तब धृतराष्ट्र अपने सला-बुलाकर हकार नीतिशास्त्र के तत्ववेत्ता श्रेष्ठमन्त्री "कणिक" को कहने लगे कि हे द्विजोत्तम काणिक! पाण्डव दिन पर दिन बढ़ते जाते हैं और मुझे उनसे ईर्षा है सो तुम सन्धिवा विग्रह का कोई ऐसा उपाय बताओं जो अत्यन्त निश्चित हो, मैं तुम्हारा कहना करंगा॥

वैद्याम्पायन उवाच स प्रसन्नमनास्तेन परिपृष्टो द्विजोत्तमः । उवाच वचनं तीक्ष्णं राजशास्त्रार्थदर्शनम् ॥२३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! धृतराष्ट्र के ऐसापूछने पर नीतिशास्त्र के तत्व का ज्ञाता द्विजोत्तम किएक मन में प्रसन्न

हुआ २ इस प्रकार तीव्र बचन बोला कि :—
शृणुराजित्रदंतत्र प्रोच्यमानं मयानघ ।
न मेऽभ्यसूया कर्त्तव्या श्रुत्वेतत् कुरुसत्तम ॥२४॥
नित्यमुद्यतदण्डः स्याब्रित्यं विवृतपौरुषः ।
अच्छिद्रशिछद्रदर्शी स्यात्परेषां विवरानुगः ॥२५॥

अर्थ-हे निष्पाप कुरुश्रेष्ठ राजन ! मेरा यह कथन छुनें परन्तु सुनकर मुझे दोष न दें, यनुष्य को चाहिये कि ओरों को दण्ड देता हुआ अपने प्रताप को सदा प्रकाशित करता रहे, दूसरों को अपनी हानि करने का अवकाश न दे, किन्तु शत्रुओं का छिद्रान्वेपी रहकर सदा अवकाश हूंढता रहे।

नित्यमुद्यतदण्डाद्धि भृशमुद्धिजते जनः । तस्मात्सर्वाणि कार्याणि दण्डेनैव विधारयेत् ॥२६॥ नास्य छिद्रं परः पश्येच्छिद्रेण परमन्वियात् । गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्रिवरमात्मनः ॥२७॥

अर्थ-सदा दण्ड देने वाले पुरुष से सब कोई अत्यन्त भय करता है, इसलिये सब कार्यों को दण्ड से ही सुरक्षित रखे, अपना दोष दूसरे को न देखने दे, किन्तु दूसरे के दोष को दृंढता रहे तथा अपने दोषों को ऐसे ग्रप्त रखे जैसे कछुवा अपने अङ्गों को छिपाये रखता है।।

नासम्यक्कृतकारीस्यादुपकम्य कदाचन । कंटको ह्यपि दुश्छित्र आस्नावं जनयोचिरम् ॥२८॥ वधमेव प्रशंसंति शत्रूणामपकारिणाम् । स्विदीणं स्विकाःतं सुयुद्धं सुपलायतम् । आपद्यापदि काले च कुर्वीत न विचारयेत् ॥२९॥

अर्थ-कभी अनुचित रूप से किसी पर आक्रमण करके कार्य न करे, क्योंकि उलटी रीति से आक्रमण किया हुआ कांटा भी चिरकाल तक रक्त वहाता है,हानिकारक शचुओं का मार डालना ही प्रशंसनीय है, जब २ आपित्त का समय आवे तब २ समय के अनुसार युद्ध, पराक्रम, दृसरे का विनाश करना अथवा देशकाल देखकर पीछे हटजाना, इन वातों को विना विचारे करे॥

नावज्ञेयो रिपुस्तात दुर्नलोऽपि कथंचन । अल्पोऽप्यिमर्वनं कृत्स्रं दहत्याश्रयसंश्रयात् ॥३०॥ अन्धःस्यादन्धवेलायां वाधिर्यमपि चाश्रयेत् । कुर्याचृणमयंचापं शयीत सगराायिकाम् ॥३१॥

अर्थ-हे तात! दुर्बल शच्च को भी बेपर्वाही से कभी न छोड़े, क्योंकि थोड़ा अग्नि भी आश्रय पाकर सारे वन को जला देता है, कभी अन्धा वनने की आवश्यकता समझे तो देखता हुआ भी अन्धा वनजाय तथा समय पड़ने पर वहरेपन को भी धारण करले, ऐसे ही भयभीत करने के लिये तिनकों का ही 'ानुप समय पड़ने पर बना लेवे तथा उचित समझे तो मृग की भां सो जावे॥

सान्त्वादिभिरुपायेस्तु हन्याच्छत्रुं वशे स्थितम् । दया न तस्मिन् कर्त्तव्या शरणागत इत्युत ॥३२॥ निरुद्धिमो हि भवति न हताञ्जयते भयम् । हन्यादिमत्रं दानेन तथा पूर्वापकारिणम् ॥३३॥ अर्थ-शञ्ज को साम आदि उपायों से दश में करके हनन करे, उस पर दया कदापिन करे चाहे वह अपने को शरण में आया भी कहे, नयों कि मारे हुए श्रञ्ज से मनुष्य अभय हो कर निश्चिन्त हो जाता है, जिसने पहले अपनी हानि की हो उस शञ्ज को दान से वश करके मार डाले॥

हन्यात्त्रीन् पश्रसप्तेति परपक्षस्य सर्वदाः । मूलमेवादिति रिख्टन्द्यात्परपक्षस्य नित्यशः ॥३४॥ ततः सहायांस्तत्पक्षान् सर्वोश्च तदनन्तरम् । छित्रमूले ह्यधिष्ठाने सर्वे तज्जीवनो हताः । कथं च शासास्तिष्ठेरं। रिख्नमूले वनरपतौ ॥३५॥

अर्थ-रात्रपक्ष के तीन, पांच, सात वा जितने मनुष्य हों उन सब का हनन करे, परन्तु सबसे पहले रात्रपक्ष के जो मूल पुरुष हों उनका ही सदा छेदन करता रहे, मूलपुरुषों के नाश होने पर शत्रपक्ष के जो सहायक हों उनको वश में करे, पश्चात जो कोई भी उनसे संबन्ध रखने वाला हो उन सब को भी नष्ट करदे, क्योंकि मूल के नष्ट होजाने पर उसके आश्रय में रहने वाले सब मारे जासकते हैं, जैसे वृक्ष की मूल काट जाने पर फिर उसकी शाखायें नहीं रहसकतीं।

एकामः स्यादिववृतो नित्यं विवरदर्शकः । राजिन्नत्यं सपत्नेषु नित्योद्धिमः समाचरेत् ॥३६॥ अग्न्याधानेन यज्ञेन काषायेण जटाजिनैः । लोकान् विस्वासियत्वेव ततो लुम्पेद्यथा वृकः । अंकुशं शौचिमत्याहुर्रथानामुपधारणे ॥३०॥ अर्थ-हे राजन धृतराष्ट्र! एकाग्र तथा गुप्तरूप से रहकर सदा दूसरों का छिट्टान्वेषी तथा नित्य चौकन्ना हुआ २ शञ्चओं पर राज्य करे, लोक दिखलावे के लिये हवन तथा यज्ञ भी करता रहे और उचित समझे तो भगवा वस्त्र, जटा और मृगचर्म को भी धारण करले, पश्चाद लोगों को विश्वास दिलाकर भेड़िये के समान उन सब शञ्चओं को भक्षण करजावे, क्योंकि अपने प्रयोजनिसिद्धि के लिये पाखण्ड ही अंकुशस्त्र है॥

अनाम्य फिलतां शाखां पकं पकं प्रशातयत् । फलाथोंऽयं समारम्भो लोके पुंसां विपिश्चताम्॥३८॥ वहेदिमत्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः। ततः प्रत्यागते काले भिंद्यात्घटमिवाश्मिन ॥३९॥

अर्थ-फलवाली शाखा को झुकाकर पके २ फल तोड़लेवे, क्योंकि विद्वान पुरुषों का यह सब पुरुषार्थ फल के लिये ही है, जब तक समय अनुकूल न हो शच्च को कन्ये पर उठाकर भी ले चले, किंतु समय बदलने पर उसको ऐसे पटक मारे जैसे मिट्टी का घट चट्टान पर पटका हुआ चूर २ होजाता है॥

अमित्रो न विमोक्तव्यः कृपणं बह्वपि ब्रुवन् । कृपा न तस्मिन् कर्त्तव्या हन्यादेवापकारिणम्॥४०॥ हन्यादिमत्रं सान्त्वेन तथा दानेन वा पुनः । तथैव भेददण्डाभ्यां सर्वोपायैः प्रशातयेत् ॥४१॥

अर्थ-शत्र चाहे कितने ही दीन बचन कहे उसको कभी न छोड़े, उस पर कदापि कुपान करे किंतु शत्र की मार देना ही

महाभारत

उचित है, शत्र को साम = सन्धि, दान = लालच, भेद = फूट और दण्ड, इन सब उपायों से वश में करके पश्चाद हनन करे॥

धृतराष्ट्र उवाच

कथं सान्त्वेन दानेन भेदैर्दण्डेन वा पुनः। अमित्रः शक्यते हन्तुं तन्मे ब्रुहि यथातथम्॥१२॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोले कि हे मंत्रिन ! मुझे यह यथार्थक्ष से स्पष्टतया बतलावें कि शत्र साम,दान,भेद वा दण्ड द्वारा कैसे मारा जासकता है ? ॥

काणिक उवाच

भयेन भेदयेद्वीरं शूरमञ्जलिकमणा । छुन्धमध्यदानेन समं न्यूनं तथौजसा ॥४३॥ पत्रः सखा वा भाता वा पिता वा यदि वा ग्ररः। रिपुस्थानेषु वर्त्तन्तः कर्त्तन्या भूति।मिन्छता ॥४४॥

अर्थ-तब मन्त्री बोला कि हे राजन ! डरपोक शत्रु को भय दिखाकर फोड़ लेना "मेद" बहादुर को हाथ बांधकर अर्थात विनयद्वारा अपनी ओर मिला लेना "साम " लालबी शत्रु को कुछ धन देकर अपने वश में कर लेना "दान " और बराबर वाले वा अपने से निर्वल शत्रु को पराक्रम द्वारा विजय करना "दण्ड" कहाता है अर्थात इन चारो उपायों से शत्रु को वशिभृत करे, अपना कल्याण चाहने वाले पुरुप को उचित है कि अपना पुत्र, मिन्न, भाई, पिता वा गुरुभी यदि शत्रुपक्ष में भिला जायं तो उनका भी सिर काट लेने ॥

श्रपथनाप्यिः हन्यादर्थदानेन वा पुनः। विषेण मायया वापि नोपेक्षेत कथंचन ॥ ४५॥ यरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः। उत्पथप्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ॥४६॥

अर्थ-झुठी रापथ खाकर वा धन देकर अथवा अन्य किसी प्रकार के छल द्वारा राचु का हनन करना ही श्रेय है, यदि अपना कोई वड़ा मान्य पुरुप भी घमंड में आकरकार्य अकार्य का विचार न करता हुआ कुमार्ग में चले तो उसको भी दण्ड देना न्याय युक्त है।

कुद्धोऽप्यकुद्धरूपः स्यात् स्मितपूर्वाभिभाषिता । नचाप्यन्यमप्ध्वंसत् कदाचित्कोपसंयुतः॥ १७॥

अर्थ-भीतर से कुद्ध हुआ भी वाहर से क्रोध प्रकाशित न होने दे, किंतु सदा मुसकराहट से दातचीत करे और क्रोंध में आकर भी अपने शत्रु के अतिरिक्त और किसी को हानिन पहुंचांश।

आश्वास्येचापि परंसान्त्वधर्मार्थवृत्तिभिः। अथास्यप्रहरेत्काले यदा विचलिते पथि।।४८॥ अपि घोरापराधस्य धर्ममाश्रित्यतिष्ठतः। स हि प्रच्छाद्यतेदोषः शैलो मेघैरिवासितैः॥४९॥

अर्थ-शत्रु को शान्ति, धर्म और अर्थ की बातों से परम आक्वासन = धैर्य देता रहे, और जब वह विचलित मार्गमें आजाय तब उस पर वार करे, चाहे मनुष्य भयानक अपराधी भी हो तब भी धर्म की आड़ में रहने वाले का दोष ऐसे छिप जाता है जैसे काले बादलों से पहाड़ छिप जाता है ॥

अशंकितेभ्यः शंकेत शंकितेभ्यश्च सर्वशः। अशंक्याद्रयमुत्पन्नमपि मूलं निकृन्ति॥५०॥ न विश्वसेद्विश्वस्ते।विश्वस्ते नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्रयमुत्पन्नं मूलान्यपि।निकृन्तिति॥५१॥

अर्थ—जो शच्च अपने से शंका न रखते हों उनसे तथा जो शंका रखते हों उनसे भी सदा सावधान होकर रहे, क्योंकि शंका न करने योग्य पुरुष से यदि कोई भयउत्पन्न होजाय तो वह जड़ों को भी काट डालता है, अविश्वसनीय पुरुष पर कभी विश्वास न करे, और विश्वसनीय पुरुष पर भी अत्यन्त विश्वास न करे, क्योंकि विश्वास होने पर भी यदि भय उत्पन्न होजाय तो वह भी जड़ों तक को उखाड़ देता है॥

वारं सुविहितः कार्य आत्मनश्च परस्य च । पाषण्डास्तपसादींश्च परराष्ट्रेष्ठ योजयेत् ॥५२॥ उद्यानेषु विहारेषु देवतायतनेषु च । पानागारेषु रथ्यासु सर्वतीर्थेषु चाप्यथा॥५३॥ चत्वरेषु च कूपेषु पर्वतेषु वनेषु च । समवायेषु सर्वेषु सरित्सु च विचारयेत् ॥५४॥

अर्थ-अपने देश तथा विदेश के लिये गुप्तचर नियत करे, दूसरे देशों में पाखण्डी तथा माधुओं के वेश में गुप्तचर भेजे, और उन लोगों को वग़ीचों, मठों, देवमन्दिर, शराव की दुकानों, गलियों, सब तीर्थां, घरों के आंगनों, कूओं, पहाड़ों, जंगलों, सब मेलों तथा नदियों पर विचरने की आज्ञा देवे ॥

वाचाभृशंविनीतःस्याद्हृदयेन तथाश्चरः । स्मितपूर्वाभिभापी स्यात् सृष्टो रौद्रेण कर्मणा ॥५५॥ अञ्चलिः शपथः सान्त्वं शिरसा पादवन्दनम् । आशाकरणमित्येवं कर्त्तव्यं भृतिमिच्छता ॥५६॥

अर्थ-बाणी से वड़ा मीटा और हृदय में छुरे के समान कर रहे, यदि कोई भयानक कर्म करने वाला भी हो तो भी शब्द के साथ मुसकराहट द्वारा प्रसन्नता से बात चीत करे, कल्याण चाहने वाले पुरुष को चाहिये कि समय २ पर हाथ जोड़ना, शपथ खाना, मान्त्वना देना चरणों में सिर रखकर वन्दना करना तथा आशा दिलाना. इत्यादि कार्य करता रहे॥

सुपुष्पितः स्याद्फलः फलवान्स्याद्दुराहृहः । आमः स्यात्पकसंकाशो नच जीर्येत कर्हिचित्॥५७॥ त्रिवर्गे त्रिविधा पीडा ह्यनुबन्धास्तथैव च । अनुबन्धाः शुभा ज्ञेयाः पीडास्तु परिवर्जयेत् ॥५८॥

अर्थ-यदि स्वयं फलरहित हो तो पहले फुलों बाला वने, और जब फल वाला होजाय तो किसी को अपने पर आक्रमण न करने दे, कचा हो तो भी पके हुए के समान होकर रहे और कभी अपने को गिरने न दे, धर्म अर्थतथा काम इन तीनों में तीन प्रकार के दुःख और सुख भी हैं सो सुखों को शुभ=प्रहण करने योग्य समझे और दुःखों से वचकर रहे॥

धर्म विचरतः पीडा सापि द्वाभ्यां नियच्छित । अर्थचाप्यर्थलुब्धस्य कामंचातिप्रवर्त्तिनः ॥५९॥ अगर्वितात्मा युक्तश्च सान्त्वयुक्तोऽनस्य्यता । अविक्षितार्थः शुद्धात्मा मन्त्रयीत द्विजैःसह ॥६०॥

अर्थ-"धर्म" का आचरण करने वाले को यदि दुःख होतो वह काम तथा अर्थ के प्रभाव से रुक सक्ता है, इसी प्रकार "अर्थ"= धन के लोभी को यदि धनोपार्जन में पीडा हो तो वह भी धर्म और काम के सामर्थ्य से रुकसक्ती है, ऐसे ही यदि "काम" में आसक्त पुरुष को पीडा हो तो वह भी शेष दोनों धर्म और अर्थ के द्वारा रुक सकती है, पुरुष को उचित है कि अपने आत्मा में गर्व न रखता हुआ कार्य में तत्पर, शान्ति से युक्त, दूसरों पर दोष न लगाकर शुद्ध आत्मा से विषय को भले प्रकार विचारकर द्विज=विद्वान ब्राह्मणों से सम्माति किया करे।।

कर्मणा येन केनैव मृदुना दारुणेन च । उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थों धर्ममाचरेत् ॥६१॥ न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति । संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति॥६२॥

अर्थ-यदि स्त्रयं दीनदृशा में हो तो चाहे जैसे कोमल वा कूर कर्म करके अपना उद्धार करे, और जब समर्थ होजाय तब धर्म का आचरण करे,मनुष्य संशय=विपत्ति में विना पहे कल्याण नहीं देखता और संशय में पड़कर भी यदि जीवित रहे तो कल्याण देखता है अन्यथा नहीं॥

यस्य बुद्धि परिभवेत्तमतीतेन सान्त्वयेत् । अनागतेन दुर्बुद्धिं प्रत्युत्पन्नेन पण्डितम् ॥६३॥ योऽरिणा सहसन्धाय शयीत कृतकृत्यवत् । स वृक्षाप्रे यथा सुप्तः पतितः प्रतिबुध्यते ॥६४॥

अर्थ-जिसकी बुद्धि तिरस्कृत=इटकर कुछ काम न करसके उसको भूतकाल की कथायें सुनाकर इंद्र करे, अल्पबुद्धि को भविष्य की कथा सुनाकर और पण्डित को वर्तमान की कथायें सुनाकर उद्यत करे, जो शञ्च के साथ सन्धि करके अपने आपको कृतकृत्य मानकर सोता है वह वृक्ष की शाखाओं पर सोये दुए पुरुष के समान गिरकर ही जागता है, इसलियें उचित है कि शञ्च के साथ सन्धि करके भी सदा सावधान रहे।

मन्त्रसंवरणे यतः सदा कार्योऽनस्यता । आकारमभिरक्षेत चारेणाप्यचुपालितः ॥६५॥ नाच्छित्वा परमर्गाणि नाकृत्वा कर्मदारुणम् । नाहृत्वा मत्स्यघातीव प्राप्तोति महृतीं श्रियम् ॥६६॥

अर्थ-मनुष्य को चाहिये कि दृसरे की वृथा निन्दा से दृर रहता हुआ अपने ग्रप्त मन्त्र की रक्षा में सदा यव करे तथा ग्रुप्त दृतों से अपन्मरक्षा करता हुआ अपने आकार द्वारा कोई भाव प्रकट न होने दे, दृसगें के मर्मस्थानों को विना छेदे वा कोई

महाभारत

भयंकर कर्म विना किये तथा मछुए के समान औरों के विना मारे मनुष्य को ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं होती ॥

किंपतं व्याधितं क्विन्नमपानीयमघासकम् । परिविश्वस्तमन्दं च प्रहत्तव्यमरेर्बलम्।।६७॥ नार्थिकोऽर्थिनमभ्येति कृतार्थे नास्ति संगतम् ।

तस्मात्सर्वाणि साध्यानि सावशेषाणि कारयेत् ॥६८॥

अर्थ-दुर्वल, वीमार, क्षीण, भूख प्यास से पीड़ित और विकासत दशा को पाप्त शत्र पर वार न करे, विना अर्थ से कोई किसी का अर्थी नहीं बनता, क्योंकि कृतार्थ हुआ पुरुष कभी किसी की सेवा में सङ्गत नहीं होता इसलिये सब पुरुषों को अर्थी बनाकर अपना कार्य्य सिद्ध करे॥

संग्रहे विग्रहे चैव यतः कार्योऽनसूयता । उत्साहश्चापि यत्नेन कर्त्तव्यो भृतिमिच्छता ॥६९॥ नास्य कृत्यानि बुध्येरिनमत्राणि रिपवस्तथा । आरव्धान्येव पश्येरन् सुपर्यवसितान्यपि ॥७०॥

अर्थ-कल्याण चाहने वाले पुरुष को उचित है कि दूसरों को दोष न देकर अपने अनुकूल सहायकों का संग्रह और मितकूल लोगों के साथ विग्रह=युद्ध करने में यत्नवान हो और अपने आत्मा में सदा उत्साह की वृद्धि करे, जो कुछ कार्य भविष्यत में करने हों उनको अपने मित्रों वा शञ्जुओं पर पहले ही मकाशित न होने दे किन्तु इस सीति से करे कि जब वह कार्य समाप्त होने पर आवें तब लोग उनको आरम्भ किया हुआ जानें ॥ भीतवत् संविधातव्यं यावद्भयमनागतम् । आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहत्तव्यमभीतवत् ॥७१॥। दण्डेनोपनतं शञ्जमनुगृह्णाति यो नरः । स मृत्युसुपगृह्णीयाद्गभमश्वत्तरी यथा ॥७२॥

अर्थ-जबतक भय की वात अपने तक न पहुंचे तब तक इरा हुआ सा रहे और यदि भय को अपने समीप आया हुआ देखे तो निर्भय होकर वीरता से प्रहार करे, जो दण्ड से चरणों में पड़े हुए शच्च पर अनुग्रह करके छोड़देता है वह अपनी मौत को बुलाता है, जैसे गर्भ धारण कर विचरी मृत्यु को प्राप्त होती है वैसे ही वह पुरुष भी उस शच्च के हाथ से मारा जाता है।

अनागतं हि बुध्येतं यच कार्य पुरः स्थितम्। न तु बुद्धिक्षयात् किंचिदतिकामेत्प्रयोजनम्।।७३॥ विभज्य देशकालौ च दैवंधर्मादयस्त्रयः। नैःश्रेयसौ तु तौ ज्ञेयौ देशकालाविति स्थितिः।।७४॥

अर्थ-जो कार्य भविष्यत में होने वाला हो वा अपने मामने वर्त्तमान हो उस पर विचार करे और अपनी बुद्धि को नष्ट करके किसी प्रयोजन को उल्लङ्घन न करे, देश काल का विभाग करके देव=पारव्य तथा धर्भ-अर्थ-काम इन तीनों का भी देश काल के अनुसार ही विभाग करे. क्योंकि यह निश्चय है कि देश काल ही निःश्रेयम = कल्याण का माधन है।

तालवत् कुरुते मृलं वालः शत्रुरुपेक्षितः। गहनेऽमिग्वित्सृष्टः क्षिप्रं संजायते महान् ॥७५॥

अभिस्तोकमिवात्मानं संगुक्षयति यो नरः । स वर्द्धमानो ग्रसते महान्तमपि सञ्चयम् ॥७६॥

अर्थ-यदि छोटा शच्च भी छोड़ दियाजाय तो वह ताड़ वृक्ष के समान अपनी जड़ जमा लेता है, जैसे जंगल में त्यागी हुई थोड़ी अग्नि भी वड़ी होजाती है, जो मनुष्य अङ्गारों के देर समान अपने आपको घौंकता रहता है वह उन्नत होकर बड़े शच्च समुदाय को भी ग्रस लेता है ॥

आशां कालवतीं दद्यात् कालं विघ्नेन योजयेत्। विघ्नं निमित्ततो ब्र्यान्निमित्तं वापि हेतुतः॥७७॥

अर्थ-जिस शत्र को सान्त्वना=धैर्य्य देना हो उसको दीर्घ-काल में होने वाली आशा दिलावे, जब आशा पूर्ण करने का काल आवे तब उसको विघ्न डालकर टाल दे, विघ्न का कोई कारण बनलादे और उस कारण का भी कोई हेतु जतला देवे॥

पाण्डवेषु यथान्यायमन्येषु च कुरूद्रह वर्त्तमानो न मजेस्त्वं तथा कृत्यं समाचर ॥७८॥ सर्वकत्याणसम्पन्ने विशिष्ट इति निश्चयः । तस्मात्त्वं पाण्डपुत्रेभ्यो रक्षात्मानं नराधिप॥७९॥

अर्थ-हे कुरुओं में श्रेष्ट राजन ! जिस उपाय से तुम पाण्डवों तथा अन्य शत्रुओं से वर्तते हुए दुःख में न पड़ो वैसा उपाय नीति के अनुसार करो, और यह निश्चय है कि आप सब कल्याणों से सम्पन्न होंगे. इसलिये आप पाण्डु के पुत्रों से अपनी रक्षा करें ॥ श्रातृत्या बिलनो यस्मात् पाण्डपुत्रा नराधिप । वर्वामि तस्माद् विस्पष्टं यत्कर्तव्यमिरिन्दम ॥८०॥ सपुत्रः शृणु तद्राजन् श्रुत्वा च भव यत्नवान् । यथा भयं न पाण्डभ्यस्तथा कुरु नराधिप । पश्चात्तापो यथा न स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥८१॥

अर्थ-हे राजन ! पाण्डुपुत्र अपने भाई दुर्योधनादिकों से वलवान हैं, इसलिये मैंने तुम्हारा सब कर्त्तच्य स्पष्टक्ष से कहिंदिया है. हे शत्रुनाशक! आप पुत्रों समेत मेरी यह वात सुनकर यत्रवान होकर जिस उपाय द्वारा पाण्डवों से निर्भय हो जायं वैसा हीकरें, और ऐसी नीति ग्रहण करें जिससे तुम्हें पश्चात्ताप न करना पड़े ॥

वैद्यम्पायन उवाच

एवसुक्त्वा संप्रतस्थे कणिकः स्वगृहं ततः । धृतराष्ट्रोऽपि कौरव्यःशोकार्तः समपद्यत ॥८२॥

अर्थ-वैशम्पयान बोले कि हे राजन ! मंत्री कणिक ऐसा कहकर अपने घर चलागया और कुरुवंशी धृतराष्ट्र भी चिन्तातुर रहने लगा॥

इति विंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकविंशांऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः सुबलपुत्रस्तु राजा दुर्योधनश्च ह । दुःशासनश्च कर्णश्च दुष्टं मन्त्रममन्त्रयन् ॥१॥ ते कौरव्यमनुज्ञाप्य धृतराष्ट्रं नराधिपम् । दहने तु सपुत्रायाः कुन्त्या बुद्धिमकारयन् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन! तब राजा सुबल का पुत्र शकुनि, राजा दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण, इन्होंने एक दृष्ट यन्त्रणा=सलाह की, उक्त चारों ने राजा धृतराष्ट्र से अनुमित करके पुत्रों समेत कुन्ती को जला देने का संकल्प किया ॥

तेषामिङ्गितभावज्ञो विदुरस्तत्त्वदिशिवान् । आकारेण च तं मन्त्रं बुबुधे दुष्टचेतसाम् ॥३॥ ततो विदुरवाक्येन नावं विक्षिप्य पाण्डवाः । वनं चादाय तैर्दत्तमिरष्टं प्राविशन् वनम् ॥४॥

अर्थ-तत्वदर्शी विदुर जो उनकी चेष्टा और भावको पहचानते ये उन्होंने उन दुष्ट संकल्प वालों के आकार से ही सब जान लिया, तब पाण्डव लोग विदुर के कथन से नाव चलाकर और उनके दिये हुए जंगल को ग्रहण करके उत्तम वन में प्रविष्ट होगये॥

जनमेजय उवाच

पुनर्विस्तरशः श्रोतिमच्छामि दिजसत्तम । दाहं जतुगृहस्यैव पाण्डवानां च मोक्षणम् ॥ ५॥ वैशम्पायन उवाच शृष्य विस्तरशो राजन् वदतो मे परन्तप । दाहं जतुगृहस्यैतत् पाण्डवानां च मोक्षणम् ॥६॥

अर्थ-जनमेजय बोला कि हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं लाक्षाभवन का जलना और पाण्डवों का उससे निकलना आदि किर विस्तार में सनना चाहता है ॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे शत्रुसंतापकारी राजन ! मैं लाक्षाभवन के जलने तथा पाण्डवों के उससे निकलने का वृत्तान्त बिस्तारपूर्वक कहता हूं आप सुनें :—

प्राणाधिकं भीमसेनं कृतिवद्यं धनञ्जयम् । दुर्योधनो लक्षियत्वा पर्यतप्यत दुर्मनाः ॥७॥ ततो वैकर्तनः कर्णः शक्तिश्चापि सौबलः । अनेकैरभ्युपायसते जिघांसन्ति स्म पाण्डवान् ॥८॥

अर्थ-वल में अधिक भीमसेन और युद्धविद्या में शिक्षित अर्जुन को देखकर दुष्ट दुर्योधन मन में जलता था, तब विकर्त्तन का पुत्र कर्ण, सुबल का पुत्र शकुनि और दुर्योधन यह सब मिलकर अनेक उपायों द्वारा पाण्डवों के मारने की चेष्टा करने लगे॥ पाण्डवा अपि तत् सर्व प्रतिचक्रुर्यथागतम्। उद्घावनमक्रर्वन्तो विदुरस्य मते स्थिताः॥९॥

अर्थ-पाण्डव लोग भी विदुर की सलाइ में रहकर उन वातों को प्रकाशित न करते हुए अर्थात अनजान के तुब्य बने हुए उन सबका यथोचित उपाय करते रहे ॥ गुणैः समुदितान् दृष्ट्वा पौराः पाण्डस्तांस्तदा । कथयांचिकिरे तेषां गुणान् संसत्स भारत ॥१०॥ राज्यप्राप्तिं च संप्राप्तं ज्येष्टं पाण्डस्तं तदा । कथयन्तिसम सम्भूय चत्वरेषु सभासु च ॥११॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! तब पुरवासी लोग पाण्ड के पुत्रों को सर्वगुणनिधान देखकर सभाओं में उनके गुणों का वर्णन करने लगे, वह लोग अपने घरों तथा सभाओं में इकहे होकर कहने लगे कि राज्यप्राप्ति का अधिकार प्राण्ड के बड़े पुत्र गुधिष्ठिर को ही है॥

प्रज्ञाचश्चरचश्चष्ट्वाद्धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । राज्यं न प्राप्तवान् पूर्वं स कथं नृपितर्भवेत्।।१२॥ तथा शान्तनको भीष्मः सःयसन्धो महाव्रतः। प्रत्याख्याय पुरा राज्यं न स जातु प्रहीष्यित।।१३॥

अर्थ-राजा धृतराष्ट्र प्रज्ञाचक्षु है और इसी कारण वह पहले राज्य प्राप्त नहीं करसका, सो अब वह कैसे राजा दन सक्ता है, ऐसे ही पहाव्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ शन्तनुपुत्र भीष्मजी जो पहले ही राज्य ग्रहण करने से निष्ध कर चुके हैं वह भी कदापि राज्य को ग्रहण नहीं करेंगे॥

ते वयं पाण्डवज्येष्ठं तरुणं युद्धशालिनम् । आभिषश्चाम साध्वाद्य सत्यकारुण्यवेदिनम्।।१४॥ स हि भीष्मं शान्तनवं धृतराष्ट्रं च धर्मवित् । स पुत्रं विविधैभोंगैयोंजियिष्यित पूजयन् ।।१५॥ अर्थ-सो अब हम पाण्डु के बड़े पुत्र युधिष्टिर को जो युवा, युद्धशाली ओर जो सत्य तथा करुणा का तत्त्ववेत्ता है उसकी राज्याभिषेक देना चाहते हैं, क्योंकि वह धर्मज शन्तनुपुत्र भीष्म तथा पुत्रों समेत धृतराष्ट्र को आदरपूर्वक अनेक सुख भुगायेगा ॥

तेषां दुर्योधनः श्रुत्वा तानि वाक्यानि जल्पताम् । युधि। ष्ठेरानुरक्तानां पर्यतप्यत दुर्मतिः ॥१६॥ स तप्यमानो दुष्टात्मा तेषां वाचो न चक्षमे । ईष्यया चापि सन्तप्तो धृतराष्ट्रमुपागमत् ॥१७॥

अर्थ-इस प्रकार उन युधिष्ठिर के पक्षपाती पुरवासियों की वातें सुनकर दुर्बुद्धि दुर्योधन मन ही मन जलने लगा, वह दुष्टात्मा इस प्रकार जलता हुआ उनकी वातें न सह सका, और ईर्षा से तपा हुआ धृताराष्ट्र के समीप आया॥

ततो विरहितं हष्ट्वा पितरं परिप्रज्य सः । पौरानुरागसन्तप्तः पश्चादिदमभाषत ॥१८॥ श्रुता मे जल्पतां तात पौराणामशिवागिरः । त्वामनाहत्य भीष्मं च पतिमिच्छन्ति पाण्डवम्॥१९॥

अर्थ-तव वह पिता को एकान्त में देखकर सत्कार करके पश्चात पुरिनवासियों की उस भिक्त से जला हुआ बोला कि हे पिता! मैंने पुरवासियों की यह अश्वभ वातें सुनी हैं कि वह तुम्हारा और भीष्म कां निरादर करके युधिष्ठिर को राजा बनाना चाहते हैं. और :-

मतमेतच भीष्मस्य न स राज्यं बुशुक्षति। अस्माकं तु परां पीडां चिकीर्षन्ति पुरे जनाः॥२०॥ पितृतः प्राप्तवान् राज्यं पाण्डरात्मग्रणैः पुरा । त्वमन्धग्रणसंयोगात्प्राप्तं राज्यं न लब्धवान् ॥२१॥

अर्थ-भीष्मजी का यह संकल्प है कि वह राज्य ग्रहण नहीं करेंगे, इसलिये नगरिनवाती हम लोगों को परम क्रेश देना चाहते हैं, पूर्वकाल में पाण्डु ने अपने गुणों द्वारा पिता से राज्य पालिया था परन्तु आप केवल अन्धे होने के कारण प्राप्त हुए राज्य को भी नहीं पासके ॥

स एप पाण्डोर्दायाद्यं यदि प्राप्तोति पाण्डवः। तस्य प्रत्रो ध्रुवं प्राप्तस्तस्य तस्यापि चापरः।।२२॥ ते वयं राजवंशेन हीनाः सह सुतैरिप । अवज्ञाता भविष्यामो लोकस्य जगतीपते।।२३॥

अर्थ-सो अब यदि पाण्डु के दायभाग=राज्य को पाण्डुपुत्र पुधिष्ठिर पावेगा तो यह िश्चय है कि उसके ही पुत्र पौत्र मपौत्रा-दि इसको पाते रहेंगे, हे राजन । इससे हम लोग अपने पुत्रादि सहित राजवंश से रहित हुए २ संसार की दृष्टि में अपमानित रहेंगे॥

सततं निरयं प्राप्ता परिपण्डोपजीविनः । न भवेम यथा राजंस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥२४॥ यदि त्वं हि पुरा राजिन्नदं राज्यमवाप्तवान् । ध्रुवं प्राप्त्याम च वयं राज्यमप्यवशे जने ॥२५॥ अर्थ-हे राजन ! अब आप इस मकार की नीति का मयोग करें जिसमें हमछोग सदा दुःखग्रस्त और दूसरों का टुकड़ा खाने वाले न बनें, हे महाराज! यदि आपने बड़े होने के कारण पहले इस राज्य को पालिया था तो हम भी लोगों को विवश करके अवश्य राज्य को पावेंगे॥

वैशम्पायन उवाच एवं श्रुत्वा तु पुत्रस्य प्रज्ञाचश्चर्नराधिपः । कणिकस्य च वाक्यानि तानि श्रुत्वा स सर्वशः । धृतराष्ट्रो द्विधाचित्तः शोकार्तः समपद्यत ॥२६॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! प्रज्ञाचक्ष राजा धृतराष्ट्र इस प्रकार पुत्र की बातें सुनकर तथा किणक मन्त्री के वचनों को पूर्णतया स्वरण करके चित्त में दुविधा होने से शोक में पड़गया॥ दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिः सोवलस्तथा । दुःशासनचतुर्थस्ते मन्त्रयामासुरेकतः ॥२७॥ ततो दुर्योधनो राजा धृतराष्ट्रमभाषत । पाण्डवेभ्यो भयं न स्यात्तान विवासयतां भवान् । निपुणेनाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥२८॥

अर्थ-तत्पश्चात दुर्योधन, कर्ण, सुवल का पुत्र शकुनि और चौथा दुःशासन, यह चारो एकान्त में सलाह करने लगे, तब राजा दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा कि आप किसी उत्तम उपाय से पाण्डवों को "वारणावत" नगर में निर्वासन करदें जिससे हमें पाण्डवों से कोई भय न रहे॥ धृतराष्ट्रम्तु पुत्रेण श्रुत्वा वचनमी। रितम् । मुद्द्र्तिमिव संचिन्त्य दुर्योधनमथा ब्रवीत् ॥ २९॥

अर्थ-धृतराष्ट्र अपने पुत्र की उक्त बात सुन और थोड़ी देर मोचकर दुर्योधन में बोला कि :-

धर्मनित्यः सदा पाण्डस्तथा धर्मपरायणः । सर्वेषु ज्ञातिषु तथा मिय त्वासीद्विशेषतः ॥३०॥ नासौ किंचिद्रिजानाति भोजनादि चिकीर्षितस्। निवेदयति नित्यं हि मम राज्यं धृतब्रतः ॥३१॥

अर्थ-पाण्डुसदा धर्म में तत्पर तथा सब बन्धुओं और विशेषतः मुझ पर धर्म परायण था, वह भोजनादि साधारण प्रयोजनीय वस्तुओं का भी विज्ञान नहीं रखता था और दृढ़ प्रतिज्ञा वाला होकर सदा मुझे राज्य अर्पण किये हुए था ॥

तस्य पुत्रो यथा पाण्डस्तथा धर्मपरायणः । यणवान् लोकविष्यातः पौरवाणां सुसम्मतः ॥३२॥ स कथं शक्यतेऽस्माभिरपाकर्त्रं बलादितः । पितृपैतामहाद्राज्यात्स सहायो विशेषतः ॥३३

अर्थ-जैसा पाण्ड धर्मपरायण था वैसा ही उसका पुत्र युधि-ष्ठिर भी गुणवान, लोक प्रासिद्ध और पुरवासियों का माननीय है, हे पुत्र! उसकी पिता पितामह से पाये हुए इस राज्य से कैसे बल पूर्वक हटा सकते हैं, जब कि वह इस समय विशेष सहायकों को भी माथ में लिये हुए है ॥ भृता हि पाण्डनामात्या बलं च सततं भृतम् ।
भृताः पुत्राश्च पौत्राश्च तेषामपि विशेषतः ॥३४॥
ते पुरा सत्कृतास्तात पाण्डना नागरा जनाः ।
कथं युधिष्ठिरस्यार्थं न नो हन्युः सबान्धवान् ॥३५॥
अध-पाण्ड ने अपने हम्य में मंत्रियों और हेना का पूर्णक्ष से
भरणपोषण किया तथा उन होगों के पुत्र पौत्रों को भी विशेष
प्रकार से तृप्त किया था,हे पुत्र !वह पूर्वकाल में पाण्ड सेसत्कार पाये
हुए नगर निवासी इस समय युधिष्ठिर के लिये हम लोगों को
बन्धुओं समेत क्यों नहीं मार डालेंगे अर्थात् अवश्य मार देंगे॥

दुर्योधन उकाच

एवमेव यथा तात भावितं दोषमात्मनः। दृष्ट्वा प्रकृतयः सर्वा अर्थमानेन प्रजिताः॥३६॥ ध्रुवमस्मत्सहायास्ते भविष्यन्ति प्रधानतः। अर्थवर्गः सहामात्यो मत्संस्थोऽद्य महीपते ॥३७॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे पिता! जैसा आप कहते हैं सो ठीक है, अपने संभावित दोषों पर विचार करके यदि हम लोग धन और मान से प्रजा का सत्कार करेंगे तो निश्चयपूर्वक वह प्रधानक्ष से हमारी सहायक होजायगी और हे राजन ! धनकोष तथा मन्त्री लोग तो आज दिन मेरे ही अधीन हैं॥

स भवान् पाण्डवानाशु विवासियतुमहिति।
महुनैवाभ्युपायेन नगरं वारणावतम् ॥३८॥

यदा प्रतिष्ठितं राज्यं मिय राजन् भविष्यति । तदा कुन्ती सहापत्या पुनरेष्यति भारत ॥३९॥

अर्थ-सो आपको उचित है कि किसी उत्तम उपाय द्वारा शीघ ही पाण्डवों को वारणावत नगर में निर्वासन करदें, हे भार-तीय राजन ! जब मुझ में यह राज्य दृह्ह से स्थिर होजायगा तब कुन्ती पुत्रों समेत यहां छोट आयेगी ॥

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन ममाप्येतदहृदि संपिरवर्तते। अभिप्रायस्य पापत्वान्नेवं तु विवृणोम्यहम्।।४०॥ नच भीष्मो नच द्रोणो नच क्षत्ता न गौतमः। विवास्यमानान् कौन्तेयाननुमंस्यंति कर्हिचित्।।४१॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोले कि हे दुर्योधन ! मेरे हृदय में भी यह बात बसी हुई है परन्तु पाप के भय से मैं इस अभिप्राय को प्रका-शित नहीं करता, भीष्म, द्रोण, विदुर और कृप, यह कभी नहीं चाहेंगे कि कुन्ती के पुत्रों को निर्वासन कर दिया जाय ॥

समा हि कौरवेयाणां वयं ते चैव पुत्रक । नैते विषमिमच्छेयुर्धर्मयुक्ता मनस्विनः ॥४२॥ ते वयं कौरवेयाणामेतेषां च महात्मनाम् । कथं न बध्यतां तात गच्छाम जगतस्तथा ॥४३॥

अर्थ-हे पुत्र ! इन लोगों की दृष्टि में हम लोग और पाण्डव समान ही हैं, इसलिये यह धर्मपरायण ज्ञानी पुरुष विषमभाव

आदिपर्व-एकविशाध्याय

२३३

करना नहीं चाहेंगे, हे पुत्र ! फिर वताओं ऐसा करने पर इम लोग अन्य कुरुवांशियों, इन महात्माओं तथा सारे जगत की दृष्टि में क्या सारे जाने योग्य नहीं होजावेंगे अर्थात अवश्य होजावेंगे ॥

दुर्योधन उवाच

मध्यस्थः सततं भीष्मो द्रोणपुत्रो मिय स्थितः । यतः पुत्रस्ततो द्रोणो भिवता नात्र संशयः ॥४४॥ कृपः शारद्वतंश्चेव यत एतौ ततो भवेत् । द्रोणं च भागिनयं च न स त्यक्ष्यति कर्हिचित्॥४५॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि है पिता! भीष्मजी तो सदा उदा-सीन रहते हैं तथा द्रोणाचार्य्य का पुत्र अञ्चत्थामा मेरी ओर मिला हुआ है, और इसमें भी संदेह नहीं कि जिस ओर पुत्र रहेगा उसी ओर द्रोणाचार्य्य भी होंगे, शरद्रत का पुत्र कृपाचार्य भी जिधर यह दोनों होंगे उधर ही रहेगा, क्योंकि वह अपने बहनोई द्रोणाचार्य्य तथा भानजे अञ्चत्थामा को कभी नहीं त्यागेगा॥

क्षत्तार्थबद्धस्त्वस्माकं प्रच्छन्नं संयतः परैः । न चैकः समर्थोऽस्मान् पाण्डवार्थेऽभिबाधितुम् ॥४६॥ स्विश्रब्धः पाण्डपुत्रान् सहमात्रा प्रवासय । वारणावतमद्येव यथा यान्ति तथा कुरु ॥४७॥

अर्थ-विदुर हमारे धनदान से वंधा हुआ और गुप्त रूप से पाण्डवों के साथ भी मिला हुआ है, परन्तु वह अकेला हम लोगों को पाण्डवों के हितार्थ कुछ वाधा नहीं पहुंचा सकता,सो तुम पूर्ण-तया निश्चिन्त होकर पाण्डवों को माता समेत निर्वासन करदो, 238

महाभारत

और ऐसा उपाय करो कि वह आज ही यहां से वारणावत नगर को चले जायं।।

विनिद्रकरणं घोरं हृदि श्रन्यिमवार्पितम् । शोक पावकमुद्भृतं कर्मणेतेन नाशय ॥४८॥

अर्थ-सो आप इस जलती हुई शोकािय को जो हृदय में चुभे हुए तीरों के समान भयानक तथा नींद को भी नाश करने वाली है उसको इस पूर्वोक्त कर्म द्वारा निर्मूल करें॥

इति एकविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ दाविंशोऽध्यायः प्रारम्यते

षैशम्पायन उवाच

ततो दुयोंधनो राजा सर्वाः प्रकृतयः शनैः । अर्थमानप्रदानाभ्यां संजहार सहानुजः ॥१॥ धृतराष्ट्रप्रयुक्तास्ते केचित्कशलमित्रणः । कथयांचिक्ररे रम्यं नगरं वारणावतम् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तव अपने छोटे भाई दुःशासन समेत राजा दुर्योधन ने सारी मजा को धनदान तथा मानदान द्वारा धीरे २ अपनी ओर करिल्या, पुनः धृतराष्ट्र सं मेरित दुए कुछ चतुर मंत्रियों ने पाण्डवों के माति "वारणावत" नगर की रमणीयता का कथन किया ॥ कथ्यमाने तथा रम्ये नगरे वारणावते । गमने पाण्डपुत्राणां जज्ञे तत्र मतिर्नृप ॥३॥ यद्रा त्वमन्यत नृपो जातकौत्हला इति । उबाच वैतानथ तान् पाण्डवानिककासुतः ॥४॥

अर्थ-हे राजन ! इस प्रकार कई वार वारणावत नगर की रमणीयता का वर्णन सुनकर पाण्डवों का विचार वहां जाने का होगया, अम्विका के पुत्र राजा धृतराष्ट्र ने जब देखा कि पाण्डव अब जाने के लिये उत्काण्टित हुए २ हैं तब उनसे इस प्रकार कहा कि :-

ममैते पुरुषा नित्यं कथयन्ति पुनः पुनः । रमणीयतमं लोके नगरं वारणावतम् ॥५॥ ते ताता यदि मन्यध्वमुत्सवं वारणावते । सगणाः सान्वयाः चैव विहरध्वं यथाऽमराः ॥६॥

अर्थ-हे पुत्रो ! यह लोग मेरे सन्मुख वार २ यह कहते हैं कि लोक में वारणावत नगर अत्यन्त रमणीय है सो यदि तुम लोग वारणावत नगर जाने में कुछ आनन्द समझो तो अपने सा-धियों तथा कुल के लोगों सहित वहां जाकर देवताओं के समान विहार करो ॥

कंचित् कालं विहत्यैवमनुभ्य परां मुदम् । इदं वे हास्तिनपुरं सुखिनः पुनरेष्यथ ॥७॥ अर्थ-कुछ काल तक इस प्रकार विहार करके तथा परमानन्द भोगकर फिर मुखपूर्वक इस्तिनापुर में लौट आना ॥

महाभारत

वैशम्पायन उवाच

धतराष्ट्रस्य तं काममनुबुध्य युधिष्ठिरः । आत्मनक्ष्वासहायत्वं तथेति प्रत्युवाच तम् ॥८॥

अर्थ-युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की ऐसी इच्छा समझ और अपने आपको असहाय जानकर बांछे कि अच्छा ऐसा ही करेंगे॥ ततो भीष्मं शान्तनवं विदुरं च महामितिम्। द्रोणं च बाह्ळीकं चैव सोमदत्तं च कौरवम् ॥९॥ कृपमाचार्यपुत्रं च भृरिश्रवसमेव च। मान्यानन्यानमात्यांश्च ब्राह्मणांश्च तपोधनान् ॥१०॥ पुरोहितांश्च पौरांश्च गान्धारीं च यशस्विनीम्। युधिष्ठिरः शनैदीन उवाचेदं वचस्तदा ॥११॥

अर्थ-उस समय युधिष्ठिर दीन होकर शन्तनुपुत्र थीष्मजी,
महाबुद्धि विदुर, द्रोणाचार्य, बाहलीक,कुरुवंशी सोमदत्त, कृपाचार्य,
द्रोणाचार्य के पुत्र अञ्चत्थामा, भूरिश्रवा तथा अन्य माननीय
मन्त्रियों, तपस्वी ब्राह्मणों, पुरोहितों, पुरवासियों और यशस्विनी गान्धारी से बोले कि:-

रमणीय जनाकीर्णे नगरे वारणावते । सगणास्तत्र यास्यामो धतराष्ट्रस्य शासनात् ॥१२॥ प्रसन्नमनसः सर्वे पुण्या वाचो विसुश्चत । आशीर्भिर्न्नीहितानस्मान्न पापं प्रसाहिष्यते ॥१३॥

अर्थ-हम लोग राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से अपने साथियों समेत रमणीय तथा मनुष्यों से परिपूर्ण वारणावत नगर को जायंगे मो

आप लोग प्रसन्न चित्त हुए २ हम लोगों को पवित्र आशीर्वाद दें, वयोंकि आपके आशीर्वादों से सुरक्षित हुए २ हम लोगों को कोई क्रेश न सतावेगा ॥

एवमुक्तास्तु ते सर्वे पाण्डपुत्रेण कारेवाः। प्रसन्नवदना भूत्वा तेऽन्ववर्त्तन्त पाण्डवान् ॥१४॥ स्वस्त्यस्तु वः पथि सदा भूतेभ्यश्चेव सर्वदाः। मा च वोऽस्त्वशुभं किंचित्सर्वशःपाण्डनन्दनाः॥१५॥

अर्थ-युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर वह सब कुरुवंशी प्रसन्न चित्त हुए २ पाण्डवों को आशीर्वाद देने लगे कि हे पाण्डवो ! मार्ग में तुम्हारा कल्याण हो, तुम सदा सब पाणियों से सुरक्षित रहो और तुम्हारा किसी पकार भी कुछ अनिष्ट न हो ॥

ततः कृतस्वस्त्ययना राज्यलम्भाय पार्थिवाः । कृत्वा सर्वाणि कार्याणि प्रययुर्वारणावतम् ॥१६॥

अर्थ-तब राज्यपाप्ति के उपयोगी मङ्गलाचार तथा अन्य सब कार्य समाप्त करके पाण्डव "वारणावत" नगर में जाने के लिये तैयार होगये॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तेषु राज्ञा तु पाण्डुपुत्रेषु भारत । दुर्योधनः परं हर्षमगच्छत्स दुरात्मवान् ॥१७॥ स पुरोचनमेकान्तमानीय भरतर्षभ । यहीत्वा दक्षिणे पाणौ सचिवं वाक्यमब्रवीत् ॥१८॥

महाभारत

अर्य-वेशम्पायन बोले कि हे भारतीय राज्त ! राजा धृत-राष्ट्र की पाण्डवों के प्रांत ऐसी आज्ञा होने पर दुष्टात्मा दुर्योधन परम हर्ष को प्राप्त हुआ, हे भरतकुल श्रेष्ठ राजन ! वह अपने मन्त्री पुरोचन को एकान्त में लेजाकर और उसका दहना हाथ पकड़ इस मकार बोला कि :-

ममेयं वसुसंपूर्णा पुरोचन वसुन्धरा । यथेयं मम तद्रत् ते स तां रिक्षतुमहीसे ॥१९॥ निह मे कश्चिदन्योऽस्ति विस्वासिकतरस्त्वया । सहायो येन सन्धाय मन्त्रयेयं यथा त्वया ॥२०॥

अर्थ-हे पुरोचन ! यह धनपूर्ण पृथ्वी जैसे मेरी है वैसे ही तुम्हारी भी है, सो तुम्हें उचित है कि इसकी रक्षा करो, तुम से अधिक विश्वासपात्र मेरा अन्य कोई नहीं जिसके साथ मिल कर तुम्हारे समान सलाह कर सकूं॥

संरक्ष तात मंत्रं च सपतांश्च ममोद्धर । निपुणनाभ्यपायेन यद्भवीमि तथा करु ॥२१॥ पाण्डवा धतराष्ट्रेण प्रोषिता वारणावतम् । उत्सवे विहरिष्यन्ति धतराष्ट्रस्य शासनात् ॥२२॥

अर्थ-हे तात! तुम इस मन्त्र को गुप्त रखकर मेरे शत्रुओं को निर्मूल करो और जैसा मैं कहूं वैसा ही चतुराई के साथ उपाय करो, राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को "वारणावत" नगर में जाने की आज्ञा देदी है और वह धृतराष्ट्र की आज्ञा से वहां आनन्दपूर्वक निवास करेंगे॥

म त्वं रासभयक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना। वारणावतमद्येव यथा यासि तथा करु ॥२३॥ तत्र गत्वा चतुःशालं गृहं परमसंवृतम्। नगरोपान्तमाश्रित्य कारयेथा महाधनम् ॥२४॥

अर्थ-सो तुम ऐसा उपाय करो कि शीघगामी रथ में तेज़ घोड़े जोतकर आज ही "वारणावन" नगर में पहुंच जाओ, और वहां पहुंच नगर के समीप रहकर महान् धनपूर्ण एक परम गुप्त चतुःशाल=चार शालाओं वाला भवन तैयार कराओ ॥

शणसर्जरसादीनि यानि द्रव्याणि कानिचित्। आमेयान्यत सन्तीह तानि तत्र प्रदापय ॥२५॥ सर्पिस्तैलवसाभिश्च लाक्षया चाप्यनल्पया। मृत्तिकां मिश्रयित्वा त्वं लेपं कुडचेषु दापय॥२६॥

अर्थ-सण, राल आदि अप्नि से शीघ्र जलने वाली वस्तुयें जितनी यहां मिलसकें वह सब वहां भिजवादो, उन सब वस्तुओं तथा धी, तैल और चर्बी के साथ बहुतसी लाख मिट्टी में मिलाकर उस भवन की दीवारों पर लेपन कराओ, और :-

शणं तैलं वृतं चैव जतुदारूणि चैव हि । तिसमन् वेश्मिन सर्वाणि निक्षिपेथाः समन्ततः।।२७॥ यथा च तन्न पश्येरन् परीक्षन्तोऽपि पाण्डवाः। आमेयमिति तत्कार्यमिप चान्येऽपि मानवाः।।२८॥ अर्थ-उस घर में सब ओर सण, तैल, धी, लाख और लक-

महाभारत

हियें डालदो, जिससे पाण्डव तथा और लोग परीक्षा करने पर भी उसको आग्नेय=अग्नि से बीघ्र जलने वाला न समझसकें वैसा उपाय करना ॥

वेश्मन्येवं कृते तत्र गत्वा तान्परमार्चितान् । वासयेथाः पाण्डवेयान् कृन्तीं च ससुहज्जनान्॥२९॥ आसनानि च दिव्यानि यानानि शयनानि च । विधातव्यानि पाण्डूनां यथा तुष्येत वै पिता ॥३०॥

अर्थ-ऐसा भवन तैयार होजाने पर उसमें परम सत्कारपूर्वक पाण्डवों और कुन्ती को बन्धुवर्ग सहित वहां बसा देवें, और तुम पाण्डवों के लिये अद्भुत आसन, गाड़ियें और सेज तैयार करा देना जिससे पिता धृतराष्ट्र सन्तुष्ट रहें ॥

यथा च तन्न जानित नगरे वारणावते । तथा सर्व विधातव्यं यावत् कालस्य पर्ययः ॥३१॥ ज्ञात्वा च तान् स्विक्वस्तान् रायानानकतोभयान् । अग्निस्त्वया ततो देयो द्वारतस्तस्य वेश्मनः ॥३२॥

अर्थ-जिसमकार वारणावत नगर में इस बात को कोई न जान सके उसी मकार सब कार्य करो, जबतक ठीक अवसर न आवे तबतक कुछन करना और जब तुम उनको देखो कि यह पूर्ण विश्वास के साथ वेखटके सोरहे हैं तब उस भवन के द्वार पर आग लगा देना॥

दह्ममाने स्वके गेहे दग्धा इति ततो जनाः। न गईयेयुरस्मान् वै पाण्डवार्थाय कर्हिचित्।।३३॥

आदिपर्व-त्रिविंशाध्याय

5,83

स तथेति प्रतिज्ञाय कीखाय प्ररोचनः । प्रायाद्वासभयुक्तेन स्यन्दनेनाशुगामिना ॥३४॥

अर्थ-तब सब लोग यही समझेंगे कि पाण्डवों का अपना घर जल जाने से वह जल गये, कोई हम पर उनकी मृत्यु का दोष न लगावेगा, तब पुरोचन दुर्योधन के आगे वैसा करने की मितिझा करके तेज घोड़ों से जुते हुए शीघ्रगामी रथ पर चढ़कर वारणावत नगर की ओर चल दिया ॥

स गत्वा त्वरितं राजन् दुर्योधनमते स्थितः।
यथोक्तं राजपुत्रेण सर्वं चके पुरोचनः॥३५॥

अर्थ-हे राजा जनयेजय! तब पुरोचन ने दुर्योधन की सम्मिति में स्थिर होकर वहां शीघतया पहुंच जैसी राजकुमार दुर्योधन ने आज्ञा दी थी वैसा ही किया ॥

इति द्वाविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिविंशोऽध्यायः प्रारम्यते

——O%%%O—

वैशम्पायन उवाच

पाण्डवास्तु रथान्युक्ता सदश्वेरिनलोपमैः । आरोहमाणा भीष्मस्य पादौ जगृहुरात्तेवत् ॥१॥ राज्ञश्च धतराष्ट्रस्य द्रोणस्य च महात्मनः । अन्येषां चैव वृद्धानां कृपस्य विदुरस्य च ॥२॥

महाभारत

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! पाण्डवों ने वायु के समान शीघगामी उत्तम घोड़ों को रथों में जुतवाया और उन पर चढ़ने से पहले भीष्मजी, राजा धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य, विदुर तथा अन्य वृद्ध पुरुषों के चरणों में दीनतापूर्वक प्रणाय किया॥

एवं सर्वान् कुरून् बृद्धानिभवाद्य धृतब्रताः । समालिङ्गय समानान्ये बालिश्चाप्यभिवादिताः ॥३॥ सर्वा मातृस्तथापृच्छय कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् । सर्वाः प्रकृतयश्चेव प्रययुर्वारणावतम् ॥४॥

अर्थ-इस प्रकार व्रतथारी पाण्डव सब वृद्ध कुरुवंशियों को अभिवादन तथा बरावर वालों को आलिङ्गन करके बालकों से अभिवादन किये हुए वह सब माताओं से आज्ञा लेकर और उनकी तथा प्रजा के प्रधान पुरुषों की प्रदक्षिणा करके वारणावत नगर को चल दिये॥

विदुरश्च महाप्राज्ञस्तथाऽन्ये कुरुपुङ्गवाः । पौराश्च पुरुषव्याघ्रानन्वीयुः शोककर्षिताः ॥५॥ तत्र केचिद्रब्रुवन्तिस्म पौरजानपदा नराः । दीनान् दृष्टवा पाण्डसुतानतीव भृशदुःखिताः ॥६॥

अर्थ-उन सिंह पुरुष पाण्डवों के साथ शोक से पीड़ित हुए २ महाबुद्धिमान विदुर तथा कुरुओं में अन्य श्रेष्ठ पुरुष और नगरवासी भी चले. और कितने ही नगरवासी तथा पान्त में रहने वाले लोग पाण्डवों को दीन देखकर अत्यन्त दुःख में इस प्रकार बोले कि :- विषमं पश्यते राजा सर्वथा स समन्दधीः । कौरवयो धतराष्ट्रस्तु नच धर्म प्रपश्यति ॥७॥ भीमो वा बिलनां श्रेष्ठः कौन्तेयो वा धनञ्जयः । कृत एव महात्मानौ मादीपुत्रौ करिष्यतः ॥८॥ न हि पापमपापात्मा रोचियष्यति पाण्डवः । तान् राज्यं पितृतः प्राप्तान् धतराष्ट्रो न मृष्यते ॥९॥

अर्थ-कुरुवंशी राजा धृतराष्ट्र सर्वथा मन्दबुद्धि है जो दुभांत से पाण्डवों को देखता है अर्थात समानता से नहीं देखता और न धर्म का विचार करता है, इस पापमय वर्ताव को पाण्डुपुत्र युधि-ष्टिर, बलवानों में श्रेष्ट भीमसेन और कुन्ती पुत्र अर्जुन कभी पसंद न करेंगे और न इसको माद्री के पुत्र महात्मा नकुल, सहदेव पसंद करेंगे, परन्तु धृतराष्ट्र पिता से माप्त हुए पाण्डवों के राज्य को देखकर सह नहीं सक्ता ॥

अधर्म्यमिदमत्यन्तं कथं भीष्मोऽनुमन्यते । विवास्यमानानस्थाने नगरे योऽभिमन्यते ॥१०॥ पितेव हि नृपोऽस्माकमभूच्छान्तनवः पुरा । विचित्रवीयों राजर्षिः पाण्डश्च कुरुनन्दनः॥११॥

अर्थ-इस अत्यन्त अधर्भयुक्तकार्य में भीष्मजी कैसे अनुमतिदेत होंगे जो विना अवसर प्राण्डवों को वारणावत नगर में निर्वासन किया जाता है, पूर्वकाल में शन्तनुपुत्र राजार्थ राजा विचित्रवीर्य और उनके पुत्र कुरुवंश के आनन्दकारी पण्ड हम लोगों के पिता समान रक्षक थे॥ स तिस्मन् पुरुषन्याघे देवभावं गते सित । राजपुत्रानिमान् बालान् धृतराष्ट्रो न मृष्यते ॥१२॥ वयमेतदानिच्छन्तः सर्व एव पुरोत्तमात् । गृहान् विहाय गच्छामो यत्र गन्ता अधिष्ठिरः॥१३॥

अर्थ-अव उस सिंहपुरुष पाण्डु के स्वर्गवास होजाने पर राजा धृतराष्ट्र इन बालक राजपुत्रों को देख नहीं सकता और इम सब टोग इस बात को अनुचित समझते हैं, जहां युधिष्ठिर जायंगे वहीं पर इम सब लोग अपने घरों को त्यागकर इस उत्तम नगर हिस्तनापुर में चल देंगे ॥

तांस्तथा वादिनः पौरान् दुःखितान् दुःखक्षितः।
उवाच मनसा ध्यात्वा धर्मराजी युधिष्ठिरः ॥१२॥
पिता मान्यो युकः श्रेष्ठो यदाह पृथिवीपितः।
अशङ्गानेस्तत्कार्यमस्माभिरिति नो वतम् ॥१५॥

अर्थ-उन दुःखित पुरवासियों को इस प्रकार बातें करते हुए देख उनके दुःख से दुःखी हुए २ धर्मराज पुषि छिर मन में सोचकर बोले कि हम लोगों का यह धर्म है कि राजा धृतराष्ट्र जो हमारे पिता, माननीय, बड़े और श्रेष्ठ हैं वह जो कुछ आज्ञा दें इम लोग निःशंक होकर उसी का पालन करेंगे॥

भवन्तः सहदोऽस्माकमस्मान् कृत्वा प्रदक्षिणम् । प्रतिनन्द्य तथाशीर्भिनिवर्त्तः यथा गृहम् ॥१६॥ यदा तु कार्यमस्माकं भवद्भिरुपपतस्यते । तदा करिष्यथः प्रिंगणि च हितानि च ॥१७॥ अर्थ-आप होग हमारे मित्र हैं, अब आप हमारी मदक्षिणा तथा आशीर्वादों से हमें आनिदत करके अपने २ घर होट जायं, जब हमारा आप होगों से कुछ काम पड़ेगा तब हमारे हिये मिय और हित के कार्य करना ॥

एवसुक्तास्तदा पौराः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् । आशीर्भिश्चाभिनन्द्येतान् जग्मुर्नगरमेव हि ॥१८॥ पौरेषु विनिवृत्तेषु विदुरः सर्वधर्मवित् । बोधयन् पाण्डवश्रेष्ठमिदं वचनमत्रवीत् । प्राज्ञः प्राज्ञः प्रलापज्ञमिदं वचः ॥१९॥

अर्थ-युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर पुरवासी लोग पाण्डवों की मदक्षिणा तथा उनको आशीर्वादों से मसन्न करके नगर को ही लोट चले, पुरवासियों के लौट जाने पर संपूर्ण धर्मों के ज्ञाता,कूट भाषा के जानने बाले बुद्धिमान विदुरजी पाण्डु के बड़े पुत्र युधिष्ठिर को संबोधन करके बोले कि:-

यो जानाति परप्रज्ञां नीतिशास्त्रानुसारिणीम् । विज्ञायेह तथा कुर्यादापदं निस्तरेद् यथा ॥२०॥ अलोहं निशितं शस्त्रं शरीरपरिकर्त्तनम् । यो वेत्ति न तु तं शन्ति प्रतिघातविदं द्विषः ॥२१॥

अर्थ-जो मनुष्य नीतिशास्त्र के अनुसार चलने वाली दूसरों की बुद्धि को समझ लेता है उसको उचित है कि समझकर ऐसा उपाय करे जिससे इस संसार में आपित्तयों से तर जावे, जो मनुष्य ऐसे शस्त्र को जानता है जो लोहे से नहीं बनता किंतु बड़ा तेज़ और शरीर का नाश करने वाला है उनको शत्रु लोग नहीं मारसकते, वयोंकि वह शत्रु का मितकार जानना है।। कक्षप्रः शिशिरप्रश्च महाकक्षे विलोकसः।

न दहेदिति चात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥२२॥ नाचक्षुर्वेत्ति पन्थानं नाचक्षुर्विन्दते दिशः । नाधितभूतिमाप्रोति बुध्यस्यैवं प्रबोधितः ॥२३॥

अर्थ-जो महावन में बिल वनाकर रहता हुआ यह समझता है कि बन तथा शीत का नाशक अग्नि अपने को न जला रुके वही अपनी रक्षा करता हुआ जीवित रह रुकता है अन्य नहीं. नेत्रहीन पुरुष मार्गों को नहीं पहचानता और नाही नेत्रहीन को दिशाओं का पता लग सकता है, और न धेर्यहीन पुरुष कल्याण को मास होता है, ऐसा समझकर तुम सावधान रहो।।

अनामैर्दत्तमादत्ते नरः शस्त्रमलोहजम् । श्वाविच्छरणमासाद्य प्रमुच्येत हुताशनात् ॥२४॥ चरन् मार्गान् विजानाति नक्षत्रैर्विन्दते दिशः । आत्मना चात्मनः पञ्चपीडयन्नानुपीड्यते ॥२५॥

अर्थ-यदि मनुष्य दुष्ट पुरुषोंद्वारा प्रयुक्त हुए अलोहज=लोहें से न वने हुए अग्नि आदि शस्त्रों को प्राप्त हो तो उसको चाहिये कि सेह के बिल समान दोनों ओर द्वार वाला बिल बनाकर अपनी रक्षा करे, घूमता हुआ मार्गों तथानक्षत्रों को देखकर दिशाओं को जाने, अपने आप अपने पांच=काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद=अहंकार इनको भीड़ा देता हुआ अर्थाद इनके पीछे न चलता हुआ स्वयं दु:ख में नहीं पड़ता ॥ एवसुक्तः प्रत्यवाच धर्मराजो युधिष्ठिरः। विदुरं विदुषां श्रेष्ठं विज्ञातमिति पाण्डवः ॥२६॥ अनुशिक्ष्यानुगम्यैताच् कृत्वा चैव प्रदक्षिणम्। पाण्डवानभ्यनुज्ञाय विदुरः प्रययो गृहाच्॥२०॥

अर्थ-विदुरजी के ऐसा कहने पर पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्टिर विद्वानों में श्रेष्ठ विदुरजी से वोले कि मैं आपका आशयसमझ गया, तब विदुरजी इनको शिक्षा देकर तथा कुछ दूर तक इनके साथ २ चलकर पश्चात प्रदक्षिणा करके पाण्डवों की अनुकासे घर आये॥

िनवृत्ते विदुरे चापि भीष्मे पौरजने तथा । अजातशत्रुमासाद्य कुन्ती वचनमत्रवीत् ॥२८॥ क्षत्ता यदत्रवीद् वाक्यं जनमध्येऽब्रुवन्निव । त्वया च स तथेत्युक्तो जानीमो नच तदयम् ॥२९॥

अर्थ-विदुर, भीष्म तथा पुरवासियों के लौट जाने पर कुन्ती अजातशञ्च=युधिष्ठिर के समीप जाकर उनसे एकान्त में बोली कि विदुर ने और लोगों के बीच न कहकर तुमसे एकान्त में जो वातें कहीं तथा तुमने "वहुत अच्छा" कहकर उनको स्वीकार किया वह क्या थीं ? हम लोग उनको नहीं समझे ॥ यदिदं शक्यमस्माभि ज्ञातुं नच सदोषवत् । श्रोतुमिच्छामि तत्सर्व संवादं तव तस्य च ॥३०॥

अर्थ-यदि हमलोग उस वात को जान सकते हों और इस में कोई हानि न हो तो मैं तुम्हारी और उनकी सब बातचीत मुन-ना चाइती हूं॥ देशह

महाभारत

युधिष्ठिर उवाच

गृहादिमिश्र बोद्धन्य इति मां विदुरोऽब्रवीत् । पन्थाश्र वो नाविदितः कश्चित् स्यादिति धर्मधीः॥३१॥ जितेन्द्रियश्च वसुधां प्राप्स्यतीति च मेऽब्रवीत् । विज्ञातिमिति तत्सर्वे प्रयुक्तो विदुरो मया ॥३२॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि धर्मबुद्धि विदुरजी ने मुझसे यह कहा है कि तुम उस घर को अग्निरूप समझना और तुम्हें वन का कोई मार्ग भी अज्ञात नहीं रहना चाहिये, और यह भी कहा है कि जितेन्द्रिय पुरुष पृथ्वी के राज्य को पासकता है, तब मैंने विदुरजी से कहा कि मैंने यह सब कुछ समझ लिया ॥

वैशम्पायन उवाच

अष्टमेऽहिन रोहिण्यां प्रयाताः फाल्यनस्य ते । वारणावतमासाद्य ददृशुर्नागरं जनम् ॥३३॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! पाण्डव लोगों ने फाल्गुन मासकी अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र में वारणावत पहुंचकर पुरवासी स्रोगों को देखा ॥

इति त्रिविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुर्विशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः सर्वा प्रकृतयो नगराद्वारणावतात् । सर्वमङ्गलसंयुक्ता यथाशास्त्रमतिन्द्रताः ॥१॥ श्रुत्वागतान् पाण्डपुत्रान् नानायानेः सहस्रशः । अभिजग्मुनरश्रेष्ठान् श्रुत्वैव परया मुदा ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजा जनमेजय! तव सब प्रजा के लोग श्रेष्ठ पाण्डवों को वहां आया सुनकर शास्त्र के अनुसार सम्पूर्ण मङ्गल चिह्नों समेत निरालस हो अनेकसवारियों पर चढ़कर आनन्दपूर्वक उनके स्वागत के लिये वारणावत नगर से चले॥

ते समासाद्य कौन्तेयान् वारणावतका जनाः । कृत्वा जयाशिषः सर्वे परिवार्यावतस्थिरे ॥३॥ सत्कृताश्चेव पारेस्ते पारान् सत्कृत्य चानघ । अलंकृतं जनाकीणं विविश्चर्वारणावतम् ॥४॥

अर्थ-वह वारणावत के रहने वाले लोग पाण्डवों के समीप पहुंच उनको जय २ के आशीर्वाद देते हुए चारो ओर घेरकर खड़े होगये, हे निष्पाप राजन ! इस प्रकार पुरवासियों से सत्कार पाकर तथा स्वयं उनका सत्कार करके सुसिज्जित लोगों से अप्रपूर वारणावत नगर में प्रविष्ट हुए ॥

ते प्रविश्य पुरीं वीरास्तूर्णं जग्मुखो गृहार । ब्राह्मणानां महीपाल रतानां स्वेषु कर्मसु ॥५॥

नगराधिकृतानां च गृहाणि रथिनां तदा । उपतस्थुनरश्रेष्ठा वेश्यश्रद्रगृहाण्यपि ॥६॥

अर्थ-हे राजन ! वह वीर पाण्डव उस नगरी में प्रविष्ट हो-कर शीघ्र ही ब्राह्मणों के घरों पर गये जो अपने कर्मानुष्ठान में तत्पर थे, पश्चात नगर के अधिकारियों तथा सैनिक छोगों और वैश्य-शहों के घरों में भी वहश्रेष्ठ पुरुष उनके सन्मानार्थ उपस्थित हुए ॥

अर्चिताश्च नरेः पैरिः पाण्डवा भरतर्षभ । जग्मुरावसथं पश्चात पुरोचनपुरःसराः ॥७॥ तेम्यो भक्ष्याणि पानानि शयनानि शुभानि च । आसनानि च मुख्यानि प्रददौ स पुरोचनः ॥८॥

अर्थ-हे भरतकुलभूषण! इस प्रकार पाण्डव पुरवासी लोगों से सत्कार पाकर पश्चाद पुरोचन को आंग करके गृह में प्रविष्ट हुए, वहां पुरोचन ने उनको उत्तमोत्तम भक्ष्य, पान, सेज तथा मुख्य आसनादि प्रदान किये॥

तत्र ते सत्कृतास्तेन सुमहाईपरिच्छदाः । उपास्यमानाः पुरुषेरूषुः पुरनिवासिभिः ॥९॥

अर्थ-तदनन्तर पाण्डव लोग पुरोचन से सत्कार पाकर तथा उत्तम सामान के साथ पुरवासी लोगों से सेवा किये जाते हुए वहां रहने लंगे॥

दशरात्रोषितानां तु तत्र तेषां पुरोचनः । निवेदयामास गृहं शिवाख्यमशिवं तदा ॥१०॥ तत्र ते पुरुषव्याघाः विविशुः सपरिच्छदाः । तचागारमभिषेक्य सर्वधर्मभृतांवरः ॥११॥ उवाचामेयमित्येवं भीमसेनं युधिष्ठिरः । जिघाणोऽस्य वसा गन्धं सर्पिजेतुविमिश्रितम् ॥१२॥

अथ-जब उनको वहां उहरे हुए दश दिन होचुके तब पुरो-चन ने उनको अपने वनवाये हुए भवन में रहने के लिये निवेदन किया जो भवन वाहर से श्रम किन्तु वास्तव में अश्रम था,तब वह सिंहपुरुव अपने सामान सहित उस भवन में प्रविष्ट हुए, सम्पूर्ण धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने उस लाक्षागृह को निरीक्षण किया जिसमें घी और लाख से मिली हुई चर्बी की गन्ध आती थी, उस गन्ध को संघकर युधिष्ठिर भीमसेन से बोले कि यह मकान आग्नेय=अग्नि से जलाये जाने वाला है॥

कृतं हि व्यक्तमामयिमदं वेश्म परन्तप । शणसर्जरसंव्यक्तमानीय गृहकर्मणि ॥१३॥ मुञ्जवल्वजवंशादि द्रव्यं सर्वे घृतोक्षितम् । शिलिपभिः सुकृतं ह्याप्तैर्विनीतैर्वेश्मकर्मणि ॥१४॥

अर्थ-हे शत्रुसंतापक ! यह स्पष्ट है कि यह भवन आग्नेय बनाया गया है, गृहनिर्माण विद्या में शिक्षित विश्वासी कारीगरों ने सण, राल, मूंज, छाल, बांस आदि सब वस्तुयें घी में भीगी हुई एकत्रित करके इसको ऐसा रमणीय बनाया है॥

विश्वस्तं मामयं पापो दुग्धुकामः पुरोचनः ।
तथा हि वर्त्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः ॥१५॥

२५२

महाभारत

इमां तु तां महाबुद्धिर्विदुरो दृष्टवांस्तथा । आपदं तेन मां पार्थ स सम्बोधितवान पुरा ॥१६॥

अर्थ-यह पापी पुरोचन मुझको विश्वासी वनाकर जलाना चाहता है, क्योंकि यह दुर्योधन के वश में हुआ २ नीच होगया है, हे पृथा के पुत्र भीमसेन! महाबुद्धि विदुरजी ने इस आपित को पहले ही जानकर मुझे सब समझा दिया था॥

ते वयं वोधितास्तेन नित्यमस्मिद्धितेषिणा । पित्रा कनीयमा स्नेहाद्बुद्धिमन्तोऽशिवं गृहम् । अनार्थैः सुकृतं गूरैर्दुर्योधनवशानुगैः ॥१७॥

अर्थ-सो हमारे नित्य हितैषी पिता के छोटे भाई विदुरजी ने स्नेह से इस अग्रुभ वर की बात समझा कर हमें सावधान कर दिया है जिसको दुर्योधन के वश में रहने बाले दुष्ट दुर्वद्धि पुरुषों ने तैय्यार किया है ॥

भीमसेन उवाच यदीदं गृहमामेयं विहितं मन्यते भवान् । तत्रैव साधु गच्छामो यत्र पूर्वोषिता वयम् ॥१८॥

अर्थ-भीमसेन वोला कि हे जाता युधिष्ठिर ! यादे आप समझते हैं कि यह मकान आग्नेय बनाया गया है तो जहां हम पहले रहते थे वहीं चलना अच्छा है ॥

युधिष्ठिर उवाच इह यत्तैर्निराकारैर्वस्तव्यमिति रोचये । अप्रमत्तैर्विचिन्वद्धिग्तिमिष्टां ध्रुवामितः ॥१९॥ अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे भाई भीमसेन ! में यह अच्छा समझता हूं कि हम यनपूर्वक अपने आकार=वेश को ग्रप्त रलकर सावधानतापूर्वक अपने निकलने का कोई उत्तम दृढ़ उपाय मोचते हुए यहीं गहें, क्योंकि:—

यदि विन्देत चाकारमस्माकं स पुरोचनः। क्षिप्रकारी ततो भृत्वा प्रसद्यापि दहेत नः।।२०॥ नायं विभेत्यपक्रोशादधर्माद्रा पुरोचनः। तथा हि वर्त्तते मन्दः सुयोधनवशे स्थितः॥२१॥

अर्थ-यदि पुरोचन हमारे आकार को पहचान लेगा तो शीघता से वलपूर्वक भी हमें जला देगा, यह पुरोचन दुर्योधन के वश में हुआ २ ऐसा नीच होगया है कि यह न लोकनिन्दा से हरता और नाही अधर्म से भयभीत होता है ॥

अपि चायं प्रदर्भेषु भीष्मोऽस्मासु पितामहः । कोपं कुर्यात् किमर्थं वा कौरवान् कोपयीत सः॥२२॥ अथवापीह दर्भेषु भीष्मोऽस्माकं पितामहः । धर्म इत्येव कुप्येरन् ये चान्ये कुरुपुङ्गवाः ॥२३॥

अर्थ-भीष्मिपितामह भी हम लोगों के जल जाने पश्चात उन पर किस निमित्त से क्रोध करेंगे ? या किस प्रयोजन से अन्य कौरवों को क्रोधित करेंगे अर्थात उस समय उनका क्रोध करना निष्फल है, वयोंकि हम लोग तो मर ही जायंगे, हमारे पितामह भीष्म तथा अन्य कुरुवंशी यदि क्रोध भी करें तो केवल धर्म के विचार से करेंगे, और :-

व्यं तु यदि दाहस्य विभ्यतः प्रद्रवेमिह ।

महाभागन

स्परोर्निर्घातयेत्सर्वाच् राज्यलुब्धः सुयोधनः॥२४॥ अपदस्थान् पदे तिष्ठन्नपक्षान् पक्षसंस्थितः । हीनकोशान्महाकोशः प्रयोगैर्घातयेदः ध्रुवस् ॥२५॥

अर्थ-यदि हम जलने से डर्ते हुए यहां से भाग जावें तो राज्य का लोभी दुर्योधन हम लोगों को ग्रप्तचरों से मरवादेगा यह निश्चय है,क्योंकि उत्तमपद पर स्थित पुरुष पदहीन मनुष्यों को, सहायकों वाला असहायकों और धनवान निर्धनों को नीति के उपायों से मरवां मकता है, इसलिये:—

तदस्माभिरिमं पापं तं च पापं सुयोधनम् । वश्चयद्भिनिवस्तव्यं छन्नवासं कचित् कचित् ॥२६॥ ते वयं मृगयाशीलाश्चराम वसुधामिमाम् । तथा नो विदिता मार्गा भविष्यन्ति पलायताम्॥२७॥

अर्थ-हमें आवश्यक है कि हम इस पापी पुरोचन तथा उस पापात्मा दुर्योधन को बञ्चन करते हुए छिपकर इधर उधर रहें अथवा हम नित्य शिकार खेळते हुए इस पृथ्वी पर विचरें, क्योंकि इस प्रकार से हमें भागने के छिये सब मार्ग ज्ञात होजावेंगे,और:-

भौमं च विलमचैव करवाम सुसंवृतम् ।

गूढ्खासान्न नस्तत्र हुताशः संप्रधध्यित ॥२८॥

वसतोऽत्र यथा चारमान्न बुध्येत पुरोचनः ।

पौरा वापि जनः कश्चित्तथा कार्यमतिद्रतैः ॥२९॥

अर्थ-आज ही हमें पृथ्वी में एक ग्रुप्त विल = सुरंग वना लेना

आदिपर्व-पंचित्रशाध्याय

344

चाहिये जिसमें गुप्तक्ष से रहते हुए हमको आग्न भी नहीं जला सकेगी, इम लोगों को यहां रहते हुए सब कार्य सावधान होकर इस प्रकार करने चाहियें जिससे पुरोचन वा अन्य पुरवासी लोगों को यह बात विदित न हो ॥

इति चतुर्विशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचविंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

विदुरस्य सहत् कश्चित् खनकः कुशलो नरः । विविक्ते पाण्डवान् राजित्रदं वचनमत्रवीत् ॥१॥ प्रहितो विदुरेणास्मि खनकः कुशलो ह्यहम् । पाण्डवानां प्रियं कार्यमिति किं करवाणि वः ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन! विदुरजी का एक खनक= खोदने वाला मित्र जो वड़ा चतुर था, एकान्त में पाण्डवों के समीप आकर बोला कि मैं खनक = सुरंग खोदने का काम करने वाला है, और मुझे विदुरजी ने आपकी सेवा में इसलिये भेजा है कि तुम पाण्डवों की सहायता करो, सो आप बतलावें कि मैं आपकी क्या सेवा कर्ड ॥

प्रच्छनं विदुरेणोक्तः श्रेयस्त्विमह पाण्डवान् । प्रतिपादय विश्वासादिति किं करवाणि वः ॥३॥ कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां रात्रावस्यां पुरोचनः ।

भवनस्य तव द्रारि प्रदास्यति हुताशनम् ॥४॥

अर्थ-मुझे विदुरजी ने गुप्तक्ष से कहा है कि तुम विक्वास के साथ पाण्डवों का कल्याण करो, सो आप बतावें अब में तुम्हारा क्या काम ककं ? क्योंकि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन अंधेरी रात्रि के समय पुरोचन तुम्हारे इस भवन के द्वार में आग लगावेगा ॥

मात्रा सह प्रदग्धन्याः पाण्डवाः पुरुषर्षभाः । इति न्यवसितं तस्य धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः॥५॥ किंचिच विदुरेणोक्तो म्लेन्छवाचासि पाण्डव । त्वया च तत् तथेत्युक्तमेतद्विश्वासकारणम् ॥६॥

अर्थ-हे पुरुषश्रेष्ठ ! धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्बुद्धि दुर्योधन ने यह संकल्प किया है कि पाण्डवों को माता कुन्ती समेत जला दिया जाय, सो मुझ पर आपविश्वास करें और विश्वास का कारण यह है कि विदुरजी ने आपसे कुछ कूट भाषा में कहा और आपने वैसा करना स्वीकार किया था, इसलिये तुम मुझे विदुरजी का ही समझो॥

अभिजानामि सौम्य त्वां सुहृदं विदुरस्य वै। शुचिमाप्तं प्रियं चैव सदा च हृदभक्तिकम्। न विद्यते कवेः किचिंदविज्ञातं प्रयोजनम्।।।।।

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे सौम्य! मैं तुम्हें पहचानता हूं कि तुम विदुरजी के मित्र तथा धर्मात्मा, हितकारी और सदा हुढ़ भक्ति रखने बाले पिय हो,इसलिये हे विद्वन ! मुझे विक्वास दिलाने के लिये किसी बात का स्मरण कराने की कोई आवक्यकता नहीं ॥ यथा तस्य तथा नस्त्वं निर्विशेषा वयं त्विय । भवतश्च यथा तस्य पालयास्मान्यथा कविः ॥८॥ इदं शरणमान्नेयं मदर्थमिति मे मितिः । पुरोचनेन विहितं धार्त्तराष्ट्रस्य शासनात् ॥९॥

अर्थ-जैसे तुम विदुरजी के प्यारे हो वैसे ही हमारे हो, हमें तुम्हारे मित कोई अविश्वास नहीं, जैसे हम विदुरजी के अनुग्रह पात्र हैं वैसे ही आपके भी हैं, इसिलिये विदुरजी के समान ही आप भी हमारी रक्षा करें,मैं भले प्रकार जानता हूं कि पुरोचन ने धृतराष्ट्र के पुत्र की आज्ञा से हमारे जलाने के लिये यह आग्नेय-भवन तैयार कराया है।

स पापः कोषवांश्चेव ससहायश्च दुर्मतिः । अस्मानिप च पापात्मा नित्यकालं प्रवाधते ॥१०॥ स भवान् मोक्षयत्वस्मान् यत्नेनास्माद्धताशनात् । अस्मास्विह हि दुर्भेषु सकामः स्यात्सुयोधनः॥११॥

अर्थ-वह दुर्बुद्धि धनवान तथा सहायकों वाला होने से हमें सदा क्रेश देता रहता है, सो आप यत्न करके हमको इस अग्नि से छुड़ायें, क्योंकि यदि हम जल गये तो दुर्योधन कृतार्थ होजायगा॥

इदं तदशुभं नूनं तस्य कर्म चिकीर्षितम्। प्रागेव विदुरो वेद तेनास्मानवनोधयत् ॥१२॥ सेयमापदनुप्राप्ता क्षत्ता यां दृष्ट्वान् पुरा। पुरोचनस्याविदितानस्मांस्तवं प्रतिमोचय ॥ १३॥ 348

पहाभारत

अर्थ-उसका यह संकल्पित निश्चित अशुभ कर्म विदुरणी ने पहले ही जानकर हम लोगों को सचेत करिंदिया था, सो वही आपित अब प्राप्त हुई है जिसको विदुरणी पहले ही जानते थे, अब आप हम लोगों को इस आपित्त से इस प्रकार छुड़ावें जिससे पुरोचन को कुछ ज्ञान न हो ॥

म तथेति प्रतिश्रुत्य खनको यत्नमास्थितः । परिखामुक्तिरन्नाम चकार च महाबिलम् ॥१४॥ चक्रे च वेश्मनस्तस्य मध्ये नातिमहाबिलम् । कपाटयुक्तमज्ञातं समं भूम्याश्च भारत ॥१५॥

अर्थ-तव वह एनक वैसा ही करने की प्रतिज्ञा करके यत्न पूर्वक पृथ्वी में खाई खोदता हुआ एक बड़ा विल्ञ=सुरंग बनाने लगा, हे भारतीय राजन ! उस भवन के बीच में उसने एक छोटा द्वार बनाया, जिसमें अज्ञात किवाड़ लगाये तथा उसको भवन की भूमी के साथ समधरातल करिंद्या ॥

पुरोचनभयादेव व्यादधात् संवृतं मुख्य । स तस्य तु गृहद्वारि वसत्यशुभधीः सदा ॥१६॥ तत्र ते सायुधाः सर्वे वसन्तिस्म क्षपां नृप । दिवा चरन्ति मृगयां पाण्डवेया वनाद्वनम् ॥१७॥

अर्थ-पुरोचन के भय से ही उस विल का मुख छोटा बनाया, वह दुर्बुद्धि पुरोचन सदा उस भवन के द्वार पर रहने लगा, हे राजन! तब वह सब पाण्डव रात्रि में शस्त्रों समेत उस विल में रहने लगे और दिनभर एक वन से दूसरे वन में शिकार खेलते फिरतेथे॥

आदिपर्ब-पड्विशाध्याय

२५०

विश्वस्तवदविश्वस्ता वश्चयन्तः पुरोचनम् । अतुष्टास्तुष्टवद्राजन्नूषुः परमविस्मिताः ॥१८॥ न चैनानन्वबुध्यन्त नरा नगरवासिनः । अन्यत्र विदुरामात्यात्तस्मात्वनकसत्तमात् ॥१९॥

अर्थ-हेराजन! वह पाण्डव अविश्वस्त हुए २ भी पुरोचन को विश्वस्त प्रतीत होते तथा भीतर अप्रसन्न होते हुए भी प्रसन्न से ही ज्ञात होते थे, इस प्रकार परम आश्चर्य के साथ पुरोचन को वंचन करते हुए वहां रहने लगे, मन्त्री-विदुर तथा उस चतुर खनक के अतिरिक्त अन्य कोई इस चरित्र को नहीं जानता था और नाही नगरवासी इनके इस चरित्र को समझते थे॥

वैशम्पायन उवाच

तांस्तु दृष्ट्वा सुमनसः परिसंवत्सरोपितान् । विश्वस्तानिव संलक्ष्य हर्ष चक्रे पुरोचनः ॥२०॥ पुरोचने तथा हृष्टे कौन्तेयोऽथ युधिष्ठिरः । भीमसेनार्जुनौ चोभौ यमौ प्रोवाच धर्मवित् ॥२१॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जब एक साल से अधिक वहां रहते हुए होगया तब पुरोचन उनको प्रसन्नचित्त तथा विश्वासी देखकर हर्ष मनाने लगा. पुरोचन के हर्षित होने पर कुन्तीपुत्र धर्मज्ञ युधिष्ठिर, भीमसेन. अर्जुन तथा दोनों जोड़ले भाई नकुल, सहदेव को संबोधन करके बोले कि :-

अस्मानयं सुविश्वस्तान् वेत्ति पापः पुरोचनः । विज्ञतोऽयं नृशंसात्मा कालं मन्ये पलायने ॥२२॥ आयुधागारमादीप्य दग्ध्वा चैव पुरोचनम् । षट् प्राणिनो निधायह द्रवामोऽनभिलक्षिता ॥२३॥

अर्थ-यह पापी पुरोचन हम लोगों को अत्यन्त विश्वासी समझता है पर यह हमसे ठगा गया है, अब में यह अवसर भागने का अच्छा समझता हूं, इस शस्त्रग्रह=लाक्षाभवन को जलाकर और साथ ही इस पुरोचन को भी भस्म करके तथा यहीं इन छओं माणियों को छोड़ छिपकर हमारा भाग जाना ही अच्छा है ॥

अथ दानापदेशेन कुन्ती ब्राह्मणभोजनम् । चके निशि महाराज आजग्मुस्तत्र योषितः ॥२४॥ ता विहत्य यथाकामं भुक्त्वा पीत्वा च भारत । जग्मुर्निशि गृहानेव समनुज्ञाप्य माधवीम् ॥२५॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे महाराज! इसके पश्चात् कुन्ती ने दान के बहाने से ब्रह्मभोज किया और वहां रात्रि में निमंत्रित हुई बहुत सी स्त्रियें आई, हे भारतीय राजन! वह स्त्रियें इच्छापूर्वक उत्सव मनाकर तथा भोजन-पान करके रात्रि में ही कुन्ती से आज्ञा लेकर अपने २ घर को चली गई॥

निषादी पञ्च पत्रा तु तिस्मन् भोज्ये यह च्छया।
अन्नार्थिनी समभ्यागात् सपुत्रा कालचोदिता ॥२६॥
सा पीत्वा मदिरां मत्ता सपुत्रा मदिवहला।
सह सर्वैः सुतैराजंस्तिस्मन्नेव निवेशने।
सुष्वाप विगतज्ञाना मृतकल्पा नराधिप ॥ २७॥
अर्थ-परन्तु उस भोज में दैवयोग से एक चाण्डाली अपने

पांच पुत्रों समेत भोजन की इच्छा से मौत की भेजी हुई वहां आप हुंची, हे राजन ! वह स्त्री अपने पुत्रों सिहत वहुत सी मिदरा पीकर नशे से बेहोश हुई २ उसी घर में सब पुत्रों समेत सो रही, और नशे की प्रबलता से बेसुध तथा मृतमाय होगई ॥

अथ प्रवाते तुमुले निशि सुप्ते जने तदा । तदुपादीपयद्भीमः शेते यत्र पुरोचनः ॥२८॥ ततो जतुगृहद्वारं दीपयामास पाण्डवः । समन्ततो ददौ पश्चादिमं तत्र निवेशने ॥२९॥

अर्थ-इसके पश्चात जब बड़े वेग से वायु चल रही थी और सब लोग सोये हुए थे तब भीमसेन ने पहले वहां आग लगाई जहां पुरोचन सोया हुआ था, पश्चात उस लाक्षाभवन के द्वार में और फिर उसके चारो ओर अग्नि लगादी ॥

ज्ञात्वा तु तद्गृहं सर्वमादीप्तं पाण्डनन्दनाः । सुरङ्गां विविश्यस्तूर्णं मात्रा सार्द्धमरिन्दमाः ॥३०॥ ततः प्रतापः सुमहाञ्छन्दश्चैव विभावसोः । पादुरासीत्तदा तेन बुबुधे सजनवजः ॥३१॥

अर्थ-तब शबुओं को दमन करने वाले पाण्डुपुत्र उस सारे भवन को जलता देखकर शीघ्र ही माता समेत सुरंग में घुस गये, पुनः तत्काल ही अग्नि का बड़ा भारी तेज़ और बड़ा शब्द होने लगा जिससे सब पुरवासी लोगों का समूह जाग उठा, और:-

दुर्योधनप्रयुक्तेन पापेनाकृतबुद्धिना । गृहमात्मविनाशाय कारितं दाहितं च तत् ॥३२॥ अहो थिग् धृतराष्ट्रस्य बुद्धिर्नातिसमञ्जसा । यःशुचीन् पाण्डदायादान्दाहयामास शत्रुवत्।।३३।।

अर्थ-वह सब पुरवासी लोग आपस में कहने लगे कि दुर्योधन से मेरित हुए इस दुर्बुद्धि पुरोचन ने यह भवन अपने नाश के लिये ही बनवाकर उसे जला दिया, हाय धृतराष्ट्र की दुष्टबुद्धि को धिकार है जिसने धर्मात्मा पाण्डु के दायभागी पुत्रों को शत्रुओं के समान जल वा दिया है।।

दिष्ट्यात्विदानीं पापात्मा दग्धोऽयमतिदुर्मतिः । अनागसः सुविश्वस्तान् यो ददाह नरोत्तमान्।।३४॥ एवं ते विलपन्तिस्म वारणावतका जनाः । परिवार्य गृहं तच तस्थूरात्रौ समन्ततः ॥३५॥

अर्थ-अच्छा हुआ कि अब यह महा दुईिद्ध पुरोचन स्वयं भी जलगया जिसने विश्वासी निरपराध श्रेष्ठ पाण्डवों को जलाया, इस मकार वारणावत के रहने वाले रातभर विलाप करते हुए उस लाक्षाग्रह को चारो ओर घेरकर खड़े रहे॥

पाण्डवाश्चापि ते सर्वे सह मात्रा सुदुः खिताः । विलेन तेन निर्गत्य जग्मुईतमलाक्षताः ॥३६॥

अर्थ-तब वह सब पाण्डव माता समेत दुःखी हुए २ उस सुरंग के मार्ग से निकलकर छिपे हुए शीघ्र भाग गये॥

तेन निद्रोपरोधेन साध्वसेन च पाण्डवाः । न शेकुः सहसा गन्तुं सहमात्रा परन्तपाः ॥३७॥ भीमसेनस्तु राजेन्द्र भीमवेगपराक्रमः । दहरू

आदिपर्व-पंचिवंशाध्याय

जगाम आतृनादाय सर्वान् मातरमेव च ॥३८॥

अर्थ-हे राजन ! रात की निद्रा के श्रम तथा भय से वह शञ्चनाशक पाण्डव माता समेत एकाएक चल नहीं सकते थे परन्तु बड़े वेग तथा पराक्रम वाला भीमसेन उन सब भाइयों और माता को साथ लेकर चल दिया ॥

स्कन्धमारोप्य जजनीं यमावङ्केन वीर्यवान् । पार्थी गृहीत्वा पाणिभ्यां भ्रातरी समहाबलः ॥३९॥ उरसा पादपान् भञ्जन् महीं पद्म्यां विदारयन् । स जगामाश्च तेजस्वी वातरंहो वृकोदरः ॥४०॥

अर्थ-वह गहाबली भीमसेन कन्ये पर माता को चढ़ाकर तथा नकुल, गहदेव को गोद में उठाका और युधिष्ठिर तथा अर्जुन को हाथों से पकड़कर छाती से वृक्षों को तोड़ता फोड़ता तथा पैरों से पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ वायु के वेश समान बन में दौड़ गया॥

इति पंचिवंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पड्विंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच एतिसमन्नेव काले तु यथा संप्रत्ययं किवः। विदुरः प्रेषयामास तद्धनं पुरुषं शुचिम्॥१॥ स गत्वा तु यथोद्देशं पाण्डवान स दहशे वने।

जनन्या सह कौरव्यमापयानान्नदीजलम् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उसी समय विद्वान विदुरजी ने संकेत के अनुसार उस बन में एक विश्वासी पुरुष भेजा, उसने उस बन में जाकर नदी के जल को मापने हुए माना कुन्ती सहित पाण्डवों को देखा ॥

विदितं तन्महाबुद्धेर्विदुरस्य महात्मनः ।
ततस्तस्यापि चारेण चेष्टितं पापचेतसः ॥३॥
ततः स प्रेषितो विद्धान् विदुरेण नरस्तदा ।
पार्थानां दर्शयामास मनोमारुतगामिनीम् ॥४॥
सर्ववातसहां नावं यन्त्रयुक्तां पताकिनीम् ।
शिवं भागीरथी तीरे नरैर्विस्निम्भिभः कृताम् ॥४॥

अर्थ-उस पापात्मा पुरोचन के लिये जो कुछ उस रात्रि में किया गया था वह बुद्धिमान विदुरजी ने गुप्त पुरुष द्वारा सब जान लिया, इसके पश्चाद विदुरजी ने उस चतुर पुरुष को पाण्डवों के पास भेजदिया और तब उसने गङ्गा के सुन्दर तटपर विश्वासी लोगों की बनाई हुई नाव दिखलादी जो मन तथा वायु के समान वेगवाली, वड़ी वायु को सहारने वाली, यन्त्र से युक्त और ध्वजा वाली थी ॥

ततः पुनरथोवाच ज्ञापकं पूर्वचोदितम् । युधिष्ठिर निबोधेदं संज्ञार्थं वचनं कवेः ॥६॥ कक्षप्तः शिशिरप्रश्च महाकक्षे विलोकसः । न हन्तीत्येवमात्मानं यो रक्षति स जीवति ॥७॥ अर्थ-तव वह पुरुष विश्वास दिलाने के लिये विदुरजी की पहली कही हुई शिक्षा बतलाने लगा कि हे युधिष्ठिर ! मुझ पर विक्वास करने के लिये विद्वान विदुरजी का वह वचन स्मरण करें कि जो पुरुष महावन तथा सुरंग में रहता हुआ यह ध्यान रखता है कि वन तथा शीत नाशक अग्नि हमें न मारसके वही अपनी रक्षा करता हुआ जीवित रहता है॥

तेन मां प्रेषितं विद्धि विश्वस्तं संज्ञयानया । भूयश्चेवाह मां क्षत्ता विदुरः सर्वतोऽर्थवित् ॥८॥ कर्ण दुर्योधनं चैव भ्रातृभिः सहितं रणे । शकुनिं चैव कौन्तेय विजेतासि न संशयः ॥९॥

अर्थ-विदुरजी के इस संकेत से मुझको तुम उनका भेजा हुआ विश्वासी पुरुष समझो और सब मकार तत्वज्ञानी विदुरजी ने मुझसे यह भी कहा है कि हे युधिष्ठिर! तुम कर्ण, भाइयों समेत दुर्योधन तथा शकुनि को युद्ध में जीत लोगे, इसमें संशय नहीं॥

इयं वारिपथे युक्ता नौरष्सु सुलगामिनी । मोचियष्यित वः सर्वानस्मादेशात्र संशयः ॥१०॥ अथ तान् व्यथितान् दृष्ट्वा सह मात्रा नरोत्तमान्। नावमारोप्य गङ्गायां प्रस्थितानत्रवीत्युनः ॥११॥

अर्थ-यह जलमांग में नियुक्त कीहुई सुखपूर्वक चलने वाली नौका तुम मवको इस देश में अन्य देश में लेजायणी. नत्पश्चात वह उन श्रेष्ठ पुरुषों को माना समेन नाव पर चढ़ाकर गङ्गा में चलने हुए उन्हें दुःखित देखकर बोला कि :— महाभारत

विदुरो मूर्ध्यपात्राय परिस्वज्य वचोमुहः। अरिष्टं गच्छताव्यथाः पन्थानमिति चात्रवीत्।।१२॥ इत्युक्त्वा स तु तान् वीरान् पुमान् विदुरचोदितः। तारयामास राजेन्द्र गङ्गां नावा नर्र्षभान्।।१३॥

अर्थ-विदुरनी ने यह भी कहा है कि मेरी ओर से पाण्डवों का मस्तक चूमकर तथा बार २ आलिझन करके यह आशीर्वाद देना कि तुम निश्चिन्त होकर कल्याणयुक्त मार्ग से चलो, हे राजेन्द्र ! विदुरनी के भेने हुए उस पुरुप ने ऐसा कहकर उन श्रेष्ठ वीर पाण्डवों को नाव द्वारा गङ्गा से पार करिंद्या ॥ तारियत्वा ततो गङ्गां पारं प्राप्ताश्च सर्वशः । जयाशिषः प्रयुज्याथ यथागतमगाद्धि सः॥१४॥ पाण्डवाश्च महात्मानः प्रतिसन्दिश्य वे कवेः। गङ्गामुत्तीर्य वेगेन जग्मुगू इमलक्षिताः ॥१५॥

अर्थ-उनके कुशल पूर्वक पार पहुंच जाने पर पश्चात जय की आशीर्वाद देकर अपने स्थान को चला गया, महात्मा पाण्डव भी अपना संदेश विदुरजी को दे गङ्गा से पार होकर शीव्रतया गुप्तक्ष से भाग निकले ॥

वैशम्पायन उवाच अथ रात्र्यां व्यतीतायामशेषो नागरो जनः । तत्राजगाम त्वरितो दिदृश्चः पाण्डनन्दनान् ॥१६॥ निर्वापयन्तो ज्वलनं ते जना दृहशुस्ततः । जातुषं तद्गृहं दृग्धममात्यं च पुरोचनम् ॥१७॥ अर्थ-वेशम्पायन बोले कि हे राजन ! इसके पश्चात रात बीत जाने पर तगर के सब लोग पाण्डवों को देखने के लिये शीव वढ़ां आ पहुंचे, उन मनुष्यों ने अधि को बुझाते हुए यह देखा कि वढ लाक्षाभवन और साथ में मन्त्री पुरोचन भी जलगया॥ नृनं दुर्योधनेनेदं विहितं पापकर्मणा। पाण्डवानां विनाशायत्येवं ते चुकुशुर्जनाः ॥१८॥ विदिते धृतराष्ट्रस्य धार्त्तराष्ट्रो न संरायः। दुरुधवान् पाण्डदायादान्न होनं प्रतिषिद्धवान्॥१९॥ दुरुधवान् पाण्डदायादान्न होनं प्रतिषिद्धवान्॥१९॥

अर्थ-वहां के मनुष्य यह कहते हुए "कि अवश्य ही यह कुकर्म पाण्डवों के नाशार्थ पापकर्मा दुर्योधन ने किया है" विलाप करने लगे, वह यह भी कहने लगे कि धतराष्ट्र को इस पड्यन्त्र का ज्ञान होते हुए भी उसने अपने पुत्र दुर्योधन को निषेध न किया किन्तु दुर्योधन ने पाण्ड के दायभागी पुत्रों को जला ही दिया, इसमें संशय नहीं ॥

न्नं शान्तनवोऽपीह न धर्ममनुवर्तते । द्रोणश्च विदुरश्चेव कृपश्चान्ये च कौरवाः ॥ २० ॥ ते वयं धृतराष्ट्रस्य प्रेषयामा दुरात्मनः । संवृत्तस्ते परः कामः पाण्डवान्दग्धवानसि ॥ २१॥

अर्थ-हमारे विचार में शन्तनुपुत्र भीष्त्र, हो गाचार्य, विदुर, कृपाचार्य और अन्य कुरुवंशी लोग भी इत विषय में धर्म का अनु-सरण नहीं कर रहे, सो हम दुशत्मा धृतराष्ट्र के समीप संदेश भिजवाये देते हैं कि तुम्हारा महान मतोरथ सफल हुआ, क्योंकि तुमने पाण्डवों को जला दिया है ॥ ततो व्यपोहमानास्ते पाण्डवार्थे हुताशनम् । निषादीं दृहशुर्दग्धां पञ्चप्रज्ञामनागसम् ॥ २२॥ खनकेन तु तेनैव वेश्म शोधयता विलम् । पांसुभिः पिहितं तच पुरुषेस्तैन लिक्षतम् ॥ २३॥

अर्थ-वह लोगपाण्डवों को देखने के लिये अग्निइधर उधर हटाने लगे तो निरएराध चाण्डाली को पांच पुत्रों समेत जली हुई देखा, उसी खनक ने उस मकान को ठीक करते हुए मिट्टी से उस सुरंग को भरदिया, परंतु उन मनुष्यों ने इस बात को नहीं देखा॥

ततस्ते ज्ञापयामासुर्धृतराष्ट्रस्य नागराः । पाण्डवानग्निना दग्धानमात्यं च पुरोवनस् ॥२४॥ श्रुत्वा तु धृतराष्ट्रस्तद्राजा सुमहद्शियस् । विनाशं पाण्डपुत्राणां विललाप सुःदुखितः ॥२५॥

अर्थ-तव उन नगर के लोगों ने धृतराष्ट्र को सूचना दी कि पाण्डव लोग तथा मन्त्री पुरोचन अग्नि से जल गये, राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों के मृत्युक्षी इस वड़े अशुभ समाचार को सुनकर दुःखी हो रोने लगे॥

अद्य पाण्डर्मतो राजा मम भ्राता महायशाः । तेषु वीरेषु दग्धेषु मात्रा सह विशेषतः ॥ २६ ॥ गच्छन्तु पुरुषाः शीघ्रं नगरं वारणावतम् । संस्कारयन्तु तान्वीरान् कुन्तिभोजसुतां च ताम्॥२०॥

अर्थ-धृतराष्ट्र ने कहा कि माना सभेन वीर पाण्डवीं के जल जाने से आज मेरा प्रतापी भाई राजा पाण्डु निश्चय ही मर चुका, हे मनुष्यो ! तुम शीघ ही वारणावत नगर को जाओ और उन वीर पाण्डवों तथा कुन्तिभोज की पुत्री कुन्ती का संस्कार करो ॥ रुरुद्धः सहिताः सर्वे भृशं शोकपरायणाः । हा युधिष्ठिर कौरव्य हा भीम इति चापरे । हा फाल्यनेति चाप्यन्ये हा यमाविति चापरे ॥२८॥

अर्थ-तब सब लोग शोक ग्रस्त हुए २ इक हे हो कर अत्यन्त विलाप करने लगे, कोई हाय कुरुवंशी युधिष्ठिर ! हाय भीमसेन ! पुकारने लगे,कोई हाय अर्जुन ! हाय नकुल-सहदेव! कह कर कर चिल्लाने लगे॥

अन्ये पौरजनाश्चेवमन्वशोचन्त पाण्डवान् । विदुरस्त्वल्पराश्चेत्रे शोकं वेद परं हि सः ॥ २९ ॥ पाण्डवाश्चापि निर्गत्य नगराद्वारणावतात् । नदीं गङ्गामनुप्राप्ता मातृषष्ठा महाबलाः ॥ ३० ॥ दाशानां भुजवेगेन नद्याः स्रोतोजवेन च । वायुना चानुकूलेन तूर्ण पारमवाप्नुवन् ॥ ३१ ॥

अर्थ-नगर के अन्य लोग भी पाण्डवों का शोक करने लगे, परन्तु विदुरजी ने बहुत थोड़ा शोक किया, क्योंकि वह तत्व को जानते थे, इधर महावली पांचो पाण्डव, छटी माता समेत वारणावत नगर से निकलकर गङ्गा नदी पर पहुंचे, मल्लाहों के बाहुबल तथा नदी के प्रवाह की शीघ्रता और अनुकूल वायु के कारण शीघ्र ही पार पहुंच गये॥

ततो नावं परित्यज्य प्रययुर्दिक्षणां दिशम्। विज्ञाय निशि पन्थानं नक्षत्रगणस्चितम्।

यतमाना वनं राजन् गहनं प्रतिपेदिरे ॥ ३२॥

अर्थ-तत्पश्चात नाव से उतर कर दक्षिण दिशा की ओर चलदिये, हे राजन ! वह लोग नक्षत्रों की गति से रात में मार्ग पहचानकर यत्नपूर्वक सधन वन में धुन गये।!

ततः श्रान्ताः पिपासार्ता निद्रान्धा पाण्डनन्दनाः । पुनरूचर्महावीयं भीमसेनिमदं वचः ॥ ३३ ॥ इतः कष्टतरं किं च यद्वयं गहने वने । दिशश्च न विजानीमो गन्तुं चैव न शकुमः ॥३४॥

अर्थ-तब नींद से अन्ध हुए २ थके मांदे तथा भृख प्यास से व्याकुल हुए पाण्डव महापराक्रमी भीमसेन से बोले कि इससे अधिक कष्ट क्या होगा कि हम इस गंभीर बन में न दिशाओं को पहचान सकते और नाही कहीं जासकते हैं॥

तं च पापं न जानीमो यदि दग्धः पुरोचनः।
कथं तु विष्रमुच्येम भयादस्मादलक्षिताः।।३५॥
पुनरस्मानुपादाय तथेव व्रज भारत।
त्वं हि नो बलवानेको यथा सततगस्तथा।।३६॥

अर्थ-हम यह भी नहीं जानते कि वह पाषी पुरोचत जड़ा वा नहीं ? हम लोग गुप्त रहकर इस भय से कैसे छूटेंगे, हे भरत-वंशी भीमसेन ! तुम पहले के समान ही हम लोगों को लेकर चलो, क्योंकि तुम्हीं अकेले हम लोगों में वायु के तुल्य महावलवान हो ॥

इत्युक्तो धर्मगजेन भीममेनो महाबलः।

आदिपर्व-सप्तविशाध्याय

299

आदाय कुन्तीं भ्रातृंश्च जगामाशु महावलः ॥३७॥

अर्थ-धर्मराज युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर महावली भीमसेन कुन्ती तथा भाइयों को लेकर शीघ्रता से चल दिया॥

इति पड़विंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तविशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच तेन विक्रममाणेन ऊरुवेगसमीरितम् । वनं सवृक्षविटपं व्यायूर्णितिभवाभवत् ॥१॥ स मृद्रनच् पुष्मितांश्चेव फितांश्च वनस्पतीन् । अवरुज्य ययो ग्रत्मान् पथस्तस्य समीपजान् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! भीमसेन के दौड़ते समय उसकी टांगों के वेग से आघात किया हुआ वन वृक्षों तथा शा-खाओं समेत चलायमानसा होगया, उस मार्ग के समीप उग हुए फूले-फले तथा ठूंठ वृक्षों को पकड़ २ कर उखाड़ता हुआ चलने लगा॥

कृछेण मातरं चैव सुकुमारीं यशस्विनीम् । अवहत् स तु पृष्ठेन रोयः सुविषमेषु च ॥३॥ अगमच वनोद्देशमल्पमूलफ्लोर्कम् । कृषिक्षिमृगंघोरं सायाद्वे भरत्षेभ ॥४॥

महाभारत

अर्थ-वह नदी के प्रवाहों तथा विषम स्थानों में अपनी सुकु-मार यशस्विनी माता को पीठ पर चढ़ाकर क्षेश के साथ छे चला, हे भरतवंशी ! वह सायकाल के समय ऐसे वनस्थान में जा निकला जहां मूल-फल तथा जल बहुत कम मिलता और जहां भयानक तथा क्रूर पशु-पक्षी विद्यमान थे॥

घोरा समभवत सन्ध्या दारुणा मृगपिक्षणः। अप्रकाशा दिशः सर्वा वातैरासन्ननात्तेवैः ॥५॥ ते श्रमेण च कौर्व्यास्तृष्णया च प्रपीडिताः। नाशक्तुवंस्तदा गन्तुं निद्रया च प्रवृद्धया ॥६॥

अर्थ-तब वहां भयानक रात्रि के समय अनेक हिंसक पशु-पशी विचरने लगे, सब दिशायें प्रकाशशून्य और ऋतुविरुद्ध वायुओं से पूर्ण होगई, वह कुरुवंशी थकावट और भूख प्यास से व्याकुल तथा भारी निन्द्राग्रस्त हुए २ उस समय चल न सके ॥

न्यविश्वन्त हि ते सर्वे निरास्वादे महावने । ततस्तृषापरिक्वान्ता कुन्ती पुत्रानथात्रवीत् ॥७॥ माता सती पाण्डवानां पञ्चानां मध्यतः स्थिता । तृष्णया हि परीताऽस्मि पुत्रान् भृशमथात्रवीत् ॥८॥

अर्थ-वह सब उस आनन्दश्रन्य महावन में बैठ गये, तब प्यास से घबराई हुई कुन्ती पुत्रों से बोली कि मैं पांचो पाण्डवों की माता होती हुई तथा उनके बीच में बैठी हुई भी प्यास से व्याकुल होरही हुं, इस प्रकार उसने पुत्रों से बार २ कहा ॥ तच्छुत्वा भीमसनस्य मातृस्नेहात् प्रजित्पतम् । कारुण्येन मनस्तप्तं गमनायोपचक्रमे ॥९॥ ततो भीमो वनं घोरं प्रविश्य विजनं महत् । न्यग्रोधं विपुलच्छायं रमणीयं ददर्श ह ॥१०॥

अर्थ-माता का उक्त बचन सुनकर उनके खेह तथा करणा में भीमसेन का मन दुःखी हुआ और वह चलने के लिये तैयार हो गया, तब वह वहां से चलकर एक बड़े भारी भयंकर सूने वन में प्रविष्ट हुआ और उसने वहां एक रमणीय बड़ी छाया वाला वरगट का बुक्ष देखा ॥

तत्र निक्षिप्य तान् सर्वानुवाच भरतर्षभः । पानीयं स्गयामीह विश्रमध्वमिति प्रभो ॥११॥ एते रुवन्ति मधुरं सारसा जलचारिणः । ध्रुवमत्र जलस्थानं महचेति मतिर्मम ॥१२॥

अर्थ-हे राजन ! वह भरतकुल्श्रेष्ठ भीमसेन उन सब को वहां छोड़कर बोला कि भैं यहां पानी ढूंढता हूं, तुम सब विश्राम करो, यह जल के जीव सारस मधुर शब्द कर रहे हैं, आशा है यहां अवश्य कोई भारी तालाव होगा ॥

अनुज्ञातः स गच्छेति आत्रा ज्येष्ठेन भारत । जगाम तत्र यत्र स्म सारसा जलचारिणः ॥१३॥ स तत्र पीत्वा पानीयं स्नात्वा च भरतर्षभ । तेषामर्थे च जग्राह आतृणां आतृवत्सलः ॥१४॥

महाभारत

अर्थ-हेभारतीय राजन! वह बड़े भाई से आज्ञा पाकर वहां गया जहां जलमें विचरने वाले सारस शब्द कर रहे थे, हे भरतकुलश्रेष्ठ! उस भाइयों के प्रेमी भीमसेन ने जल पीकर तथा स्नान करके उन सबके लिये भी जल ग्रहण किया ॥

गन्यतिमात्रादागत्य त्वरितो मातरं प्रति । शोक दुःलपरीतात्मा निदाखासोरगो यथा ॥१५॥ स सुप्तां मातरं दृष्ट्वा भ्रातृंश्च वसुधातले । भृशं शोकपरीतात्मा विललाप वृकोदरः ॥१६॥

अर्थ-वह दो कोस से शीघ ही माता के समीप पहुंचकर शोक और दुःख से व्याकुल हुआ २ सांप की भांति वेग से सांस लेने लगा, वह भीमसेन अपनी माता तथा भाइयों को भूमी पर सोये हुए देखकर शोकग्रस्त हुआ २ अत्यन्त विलाप करने लगा कि:-

अतः कष्टतरं किंतु द्रष्टव्यं हि भविष्यति । यत् पश्यामि महीसुप्तान् भ्रातॄनद्य सुमन्दभाक्।।१७॥ शयनेषु परार्द्धचषु ये पुरा वारणावते । नाधिजग्मुस्तदा निदां तेऽद्यसुप्ता महीतले ॥१८॥

अर्थ-इससे अधिक कष्ट और क्या होगा जो आज मैं दुर्भागी अपने भाइयों को भूमी में सोये हुए देख रहा हूं, जिनको पहले वारणावत नगर में परमोत्तम सेजों पर भी नींद नहीं आती थी वह आज भूमी पर सोये हुए हैं।

स्वसारं वसुदेवस्य शत्रुसङ्घावमर्दिनः । कुन्तिराजसुतां कुन्तीं सर्वलक्षणपूजिताम् ॥१९॥ स्तुषां विचित्रवीर्यस्य भायां पाण्डोर्महात्मनः । तथेव चास्मज्जननीं पुण्डरीकोदरप्रभाम् ॥२०॥ सुकुमारतरामेनां महाईशयनोचिताम् । शयानां पश्यताद्येह पृथिव्यामतथोचिताम् ॥२१॥

अर्थ-शञ्चसमूह के हननकर्त्ता वसुदेव की बहिन, कुन्ती-राज की पुत्री, सर्वगुणालङ्कृत विचित्रवीर्य की पुत्रवधू, महात्मा पाण्डु की स्त्री तथा हमारी माता कुन्ती जो परम कोमल शरीर बाली, कमल के मध्यभाग जैसी रूपवती और परमोत्तम सेज पर सोनेवाली को आज हम दुर्दशा मेंग्रस्त भूमीपर सोई हुई देख रहे हैं॥

ज्ञातयो यस्य नैव स्युर्विषमाः कुलपांशनाः । स जीवेत सुखं लोके ग्रामद्रम इवैकजः ॥२२॥ येषां च बहवः शूरा ज्ञातयो धर्ममाश्रिताः । ते जीवन्ति सुखं लोके भवन्ति च निरामयाः॥२३॥

अर्थ-जिस मनुष्य के बहुत से भाई बन्धु कुल को दृषित करने वाले तथा दृष्टात्मा नहीं होते वही पुरुष सुख से जीते हैं, जैसे गांव में उत्पन्न हुआ केवल एक ही वृक्ष सुखदायक होता है, और जिन पुरुषों के बहुत से ज्ञाति होने पर भी यदि वह धर्मात्मा तथा शूरवीर हों तो लोग सुख से जीते और निर्विद्य रहते हैं॥

वयं तु धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण दुरात्मना । विवासिता न दग्धाश्च कथंचिद्दैवसंश्रयात् ॥२४॥ तस्मान्मुक्ता वयं दाहादिमं वृक्षमुपाश्रिताः । कां दिशं प्रतिपत्स्यामः प्राप्ताः क्वेशमन्त्रक्तमम् ॥२५॥

महाभारत

अंध-परन्तु हम लोगों को तो दुष्टात्मा धृतराष्ट्र और उसके पुत्र ने निर्वासन करके जलाने का भी यत्र किया पर किसी कारण से हम न जलसके, उस जलने से बचे हुए हम इस वृक्ष के नीचे आये और परम होश को माप्त हुए ? हम अब न जाने किस दिशा को जावेंगे॥

नन्वद्य सस्तामात्यं सकर्णानुजसोवलम् । गत्वा कोधसमाधिष्टः प्रेपिष्ये यमक्षयम् । किंनु शक्यं मयाकर्त्तं यत्ते न ऋध्यते नृषः ॥२६॥

अर्थ-में क्रोध में भरा हुआ आज ही जाकर धृतराष्ट्र, उसके मंत्रीं, पुत्र, भाई तथा कर्ण ओर शकुनी समेत सबको मृत्यु लोक में पहुंचा मकता हुं परन्तु क्या कर्ष धृतराष्ट्र पर युधिष्ठिर को क्रोध ही नहीं आता ॥

धर्मात्मा पाण्डवश्रेष्ठः पापाचारे। युधिष्ठिरः । एवमुक्त्वा महाबाहुः कोधसन्दीप्तमानसः ॥२७॥ करं करेण निष्पिष्य निःश्वसन्दीनमानसः । भ्रातृन् महीतले सुप्तानवेश्वत वृकोदरः ॥२८॥

अर्थ-महाबाहु भीमसेन क्रोध से मन में जलता हुआ कहने लगा कि पाण्डवों का बड़ा भाई युधिष्ठिर इस समय धर्मात्मा नहीं किन्तु पापकारी है, ऐसा कहकर तथा दुःखी चित्त से मन में दीन हुआ २ हाथ मलकर फिरभूमी पर सोये हुए भाइओं की ओर देखने लगा॥

नातिदूरेण नगरं वनादस्माद्धि लक्षये । जागर्तव्ये स्वपन्तीमे इन्त जागर्म्यहं स्वयम् ॥२९॥

प्राश्यन्तीमे जलं पश्चात् प्रतिबुद्धा जितक्कमाः । इति भीमो व्यवस्यव जजागार स्वयं तदा ॥३०॥

अर्थ-भीमसेन मन में बोला कि मुझे मतीत होता है कि इस वन से नगर अधिक दूर नहीं परन्तु जागने के अवसर पर भी यह लोग सोरहे हैं, अच्छा अव मैं ही जागता रहुंगा, यह लोग थकावट उतर जाने पर जागकर पीछे स्वयं जल पीलेंगे, यह सोचकर भीमसेन स्वयं जागता रहा॥

इति सप्तविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टविंशोऽध्यायः प्रार्भ्यतं

वैशम्पायन उवाच

अथ तेषु शयानेषु हिडिम्बो नाम राक्षसः । अविदूरे वनात्तस्माच्छालवृक्षं समाश्रितः ॥ १ ॥ क्रो मानुषमांसादो महावीर्यपराक्रमः । प्रावृड् जलधरस्यामः पिङ्गाक्षो दारुणाकृतिः ॥ २ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! तत्पश्चात उनके शयन करते समय एक हिडिम्ब नामक राक्षस उस वन के समीप आकर साल के वृक्ष पर चढ़गया, वह वड़ा कठोर, मनुष्य का मांस खाने वाला, महाबली, पराक्रमी, बरसात के बादल जैसा काले रंग वाला, पीले नेत्र तथा डरावनी सूरत का था ॥ दंष्ट्रा करालवदनः पिशितेष्सः श्वधार्दितः । लम्बस्फिग्लम्बजठरो रक्तश्मश्वशिरोरुहः ॥ ३॥ महावृक्षगलस्कन्धः शङ्करणों विभीषणः । यद्दच्छया तानपश्यत् पाण्डपुत्रान्महारथान् ॥ ४॥

अर्थ-तीक्ष्ण दाढ़ों से भयानक मुख वाला, भूखा होने पर मांस का ही खाने वाला, लंबे नितम्ब तथा लंबे पेट वाला, लाल दाढ़ी और वड़े वालों वाला, बड़े वृक्ष के समान गले तथा कंधों वाला और खूंटों के समान लंबेकानों वाला बड़ा भयमद था, उसको अचानक ही महावीर पाण्डव दिखलाई दिये॥

आघाय मानुषं गन्धं भगिनीमिदमत्रवीत्। उपपन्नश्चिरस्माद्य भक्ष्योऽयं मम सुप्रियः ॥ ५॥ मानुषो बलवान् गन्धो घाणं तर्पयतीव मे । हत्वैतान्मानुषान् सर्वानानयस्व ममान्तिकम् ॥६॥

अर्थ-मनुष्य के शरीर का गन्ध मुंघते ही अपनी बहिन "हिडिम्बा" से बोला कि आज बहुत दिनों में मुझे प्रिय भोजन माप्त हुआ है, यह मनुष्य के शरीर का तीव्र गन्ध मेरी नासिका को बड़ा तृप्त कर रहा है, सो हे बहिन ! तू इन सब मनुष्यों को मारकर मेरे पास ले आ ॥

भक्षयित्वा च मांसानि मानुषाणां प्रकामतः। नृत्यावसहितावावां दत्ततालावनेकशः॥ ७॥

एवमुक्ता हिडिम्बातु हिडिम्बेन तदा वने । जगाम तत्र यत्र स्म पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ८॥

अर्थ-इन मनुष्यों का यथेष्ट मांस खाकर हम दोनों अनेक प्रकार में ताल दे २ कर नाच करेंगे. हे भरतकुल श्रेष्ठ राजन ! उस समय हिडिम्ब के ऐसा कहने पर हिडिम्बा वहां पहुंची जहां पाण्डव विराजमान थे॥

ददर्श तत्र सा गत्वा पाण्डवान् पृथया सह । शयानान् भीमसेनं च जाग्रतं त्वपराजितम् ॥ ९॥ दृष्टेवैव भीमसेनं सा शालपोतिमवोद्गतम् । राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ १०॥

अर्थ-उस "हिडिम्बा" ने वहां जाकर कुन्ती समेत पाण्डवों, को सोते हुए देखा, केवल अजेय भीमसेन को जागता हुआ पाया, वह राक्षसी भीमसेन को देखते ही "जो छोटे साल बुक्ष के समान महाकाय तथा पृथ्वी पर सौन्दर्य्य में अनुपमथा" उससे विवाह करने की कामना करने लगी॥

अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः । कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम ॥ ११ ॥ नाहं भ्रातृवचो जातु कुर्यो क्र्रोपसंहितम् । पतिस्नेहोतिबलवान्न तथा भ्रातृसौहृदम् ॥ १२ ॥

अर्थ-हिडिम्बा कहने छगी कि यह पुरुष तरुण, महाबाहु, सिंह के समान कन्धों वाला, महातेजस्वी, शंख जैमी सुन्दर गर्दन

महाभारत

वाला तथा कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाला होने से यह मेरा पति वनने योग्य है, मैं अपने भाई का क्रूरता से भरा हुआ कथन कभी न करंगी, क्योंकि जैसा पति का प्रेम अधिक वलवान होता है वैसा भाई का नहीं होता ॥

मुहूर्तमेव तृप्तिश्च भवेद् श्रातुर्ममैव च । हतैरतैरहत्वा तु मोदिष्ये शास्वतीः समाः ॥ १३ ॥ सा कामरूपिणी रूपं कृत्वा मानुषमुत्तमम् । उपतस्थे महाबाहुं भीमसेनं शनैः शनैः ॥ १४ ॥

अथ-यदि इन लोगों को मारकर खालिया जाय तो मेरी और मेरे भाई की थोड़ी देर के लिये तृप्ति होसकती है परन्तु इनको बिना मारे मैं सदा इनके साथ आनन्द भोगुंगी, बहुद्धिणी हिडिम्बाएक सुन्दर स्त्री का वेश बनाकर धीरे २ भहाबाहु भीयसेन के समीप गई॥

लजमानेव ललना दिव्याभरणभूषिता।
सिमतपूर्वमिदं वाक्यं भीमसेनमथात्रवीत्।। १५॥
कतस्त्वमिसं संप्राप्तः कश्चासि पुरुषर्पभ।
क इमे शेरते चेह पुरुषा देवरूपिणः।। १६॥

अर्थ-तब अद्भुत भूषण वस्त्र पहने हुए तरुणी हिडिम्बा लजाती हुई सी भीमसेन से कहने लगी कि हे पुरुषोत्तम! तुम कौन हो, कहां से आये हो और यह दिन्यरूप वाले पुरुष यहां कौन मोये हुए हैं ? ॥

आदिपर्व-अष्टविशाःयाय

261

नेदं जानाति गहनं वनं राक्षससेवितम् । वसाति ह्यत्र पापत्मा हिडिम्बो नाम राक्षसः ॥१७॥ तेनाहं प्रोषिता भ्रात्रा दुष्टभावेन रक्षसा । बिभक्षयिषता मांसं युष्माकममरोपमाः ॥१८॥

अर्थ-आप नहीं जानते यह गंभीर वन राक्षतों से विरा हुआ है और यहां महापापी "हिडिम्ब" नामक राक्षत मेरा भाई रहता है, हे देवताओं के तुल्य अद्धुतगुण वालो! मेरे दुष्टभाई हिडिम्बने तुम लोगों का मांस खाने की दुष्ट इच्छा से मुझे यहां भेजा है ॥ साहं त्वामिभसंप्रेक्ष्य देवगर्भसमप्रभम् । नान्यं भर्त्तारमिच्छामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१९॥ त्रास्यामि त्वां महाबाहो राक्षसात् पुरुषादकात् । वत्स्यावो गिरिदुर्गेषु भर्त्ता भव ममाऽनघ॥२०॥

अर्थ-सो मैं दिन्य कुमार के ममान तेजस्वी आपका दर्शन करके अन्य पुरुष को अपना पात बनाना नहीं चाहती यह तुम से सत्य कहती हूं, हे महाबाहु! मैं इस मनुष्यभक्षक राक्षस से तुम्हें बचा दूंगी और हम दोनों पहाड़ की कन्दराओं में मुलपूर्वक रहेंगे, आप मेरे पति बनजायं॥

भीमसेन उवाच

मातरं भ्रातरं ज्येष्ठं सुलसुप्तान् कथंत्विमान् । परित्यजत कोन्वद्य प्रभविष्ठह राक्षसि ॥२१॥ को हि सुप्तानिमान् भ्रातृन् दत्त्वा राक्षसभोजनम् । मातरं च नरो गच्छेत् कामार्त्त इव मिद्रधः ॥२२॥

महाभारत

अर्थ-भीमसेन बोले कि हे राक्षिस ! ऐसा कौन पापी होगा जो सामर्थ्यवान होकर भी मुखपूर्वक सोये हुए अपनी माता, बड़े भाई तथा छोटे भाइयों को त्याग दे, यदि मैं ऐसा करूं तो मेरे जैसा कामातुर पापी पुरुष कौन होगा जो सोये हुए भाइयों तथा माता को राक्षसों के भोजन के लिये देकर यहां से चला जाय ॥

राक्षसी उवाच

यत्र प्रियं तत् करिष्ये सर्वानेतान् प्रबोधय ।
मोक्षयिष्याम्यहं कामं राक्षसात् पुरुषादकात् ॥२३॥

अर्थ-राप्तसी हिडिम्बा बोली कि जो कुछ तुम चाहोगे वैसा करंगी तुम इन सबको जगादो तो मैं उस मनुष्यभक्षक राक्षस से भले मकार छुड़ांद्गी ॥

भीमसेन उवाच

सुलसुप्तान् वने आतृन् मातरं चैव राक्षसि । न भयाद्रबोधयिष्यामि आतुस्तव दुरात्मनः ॥२४॥ गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे यद्वापीच्छिस तत् कुरु । तं वा प्रेषय तन्विङ्ग आतरं पुरुषादकम् ॥२५॥

अर्थ-भीमसेन ने कहा कि हे राक्षिस ! मैं सुख से सोये हुए अपने भाइयों तथा माता को तेरे दुष्ट भाई के भय से नहीं जगा-उंगा, इसिलये हे सुन्दिर ! चाहे द जा चाहे ठहर वा जो कुछ द चाहे सो कर और यदि द चाहे तो अपने भाई मनुष्यभक्षक को भेजदे पर मैं ऐसा कदापि न करुंगा ॥

इति अष्टविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

तां विदित्वा चिरगतां हिडिम्बो राक्षसेश्वरः । अवतीर्य हुमात् तस्मादाजगामाश्च पाण्डवान् ॥१॥ तमापतन्तं दृष्ट्वेव तथा विकृतदर्शनम् । हिडिम्बोवाच वित्रस्ता भीमसेनमिदं वचः । आपतत्येष दृष्टात्मा संकुद्धः पुरुषादकः॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह राक्षस हिडिम्ब अपनी बहिन को देर से गई देखकर उस वृक्ष से उतर शीघ ही पाण्डवों की ओर आया, हिडिम्बा उसको भयानक रूप बनाये आता देखकर घवराई हुई भीमसेन से बोली कि यह दुष्टात्मा मनुष्यभक्षक राक्षम क्रोध में भरा हुआ यहां आरहा है॥

भीमसेन उवाच

मा भैस्तं पृथुसुश्रोणि नैष कश्चिन् मिय स्थिते। हिंसितुं शक्तुयात् रक्ष इति मे निश्चिता मितिः। अहमेनं हिनष्यामि पश्यन्त्यास्ते सुमध्यमे ॥३॥

अर्थ-भीमसेन बोले कि हे सुन्दर विशाल नितम्बों तथा सुन्दर मध्यभाग वाली सुन्दरि! तू डर मत मुझे यह निश्चय है कि मेरे जीते जी कोई राक्षस किसी को नहीं मार सकता मत्युत मैं ही तेरे देखते देखते इसका अभी इनन करता हूं॥ 264

महाभारत

नायं प्रतिवलो भीरु राक्षसापसदो मम । सोडं युधि परिस्पन्दमथवा सर्वराक्षसाः ॥४॥ पश्य बाहू सुवृत्तो मे हस्तिहस्तिनभाविमौ । ऊरूपरिघसङ्काशो संहतं चाप्युरो महत् ॥४॥

अर्थ-हे भीरु ! यह नीच राक्षस वा अन्य सब राक्षस भी मेरे समान योद्धा नहीं हैं और नाही युद्ध में मेरे देग को सहार सकते हैं, तू मेरे सुडील तथा हाथी की सुंड के समानइन भुजाओं, परिघ = लोह से मढ़े दण्ड समान जंघों तथा मेरी इस कठोर और विशाल छाती को देख ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा सञ्जल्पतस्तस्य भीमसेनस्य भारत । वाचः शुश्राव ताः कुद्धो राक्षसः पुरुषादकः ॥६॥ तां तथा मान्तपं रूपं विश्वतीं सुमनोहरम् । पुंस्कामां शङ्कमानश्च सुकोध पुरुषादकः ॥७॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे भारतीय राजन ! उस क्रोध में भरे हुए राक्षस ने भीमसेन की कही हुई सबबातें सुनीं,वह राक्षस अपनी बहिन को सुन्दर वेश बनाये देखकर तथा पुरुष की कामना करने वाली समझकर क्रोध में भर गया ॥

संकुद्धो राक्षसस्तस्या भगिन्याः कुरुसत्तम । उत्फाल्य विपुले नेत्रे ततस्तामिदमत्रवीत् ॥८॥ यानिमानगित्रताकार्षीर्विप्रियं समहन्मम । एष तानद्य वे सर्वान् हनिष्यामि त्वया सह॥९॥

आदिपर्व-एकोनिर्विशाध्याय

264

अर्थ-हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ राजन ! तब वह राक्षस अपनी वहिन पर कुद्ध हुआ २ दोनों वड़ी २ आंखें फाड़कर बोला कि जिनका आश्रय लेकर तैने मेरे अत्यन्त विरुद्ध काम किया हैं अब मैं तुझ समेत इन सब को मारता हूं॥

एवमुक्ता हिडिम्बां स हिडिम्बां लोहितेक्षणः। वधायाभिपपातैनान् दन्तैर्दन्तानुपस्पृश्चन् ॥१०॥ तमापतन्तं संप्रेक्ष्य भीमः प्रहरतां वरः। भर्त्सयामास तेजस्वी तिष्ठ तिष्ठेति चात्रवीत् ॥११॥

अर्थ-वह हिडिम्ब नामक राक्षस अपनी वहिन हिडिम्बा से इस मकार कहकर लाल आंखें किये हुए तथा दांत से दांत पीसता हुआ मारने के लिये दौड़ा, तब युद्ध करने में कुशल ते-जस्बी भीमसेन उसको आता देखकर धमकाता हुआ "खड़ा रह" "खड़ा रह" इस मकार कहकर बोला कि:—

किं ते हिडिम्ब एतैर्वा सुखसुरेः प्रबोधितैः ॥
मामासादय दुर्बुद्धे तरसा त्वं नराशन ॥१२॥
मिय तिष्ठति दुष्टात्मन्न स्त्रियं हन्तुमहिसि ।
सङ्गच्छस्व मया सार्द्धमेकेनेको नराशन ॥१३॥

अर्थ-हे हिडिम्ब ! तुझे इन मुख से सोये हुओं को जगाने से क्या लाभ ! हे मनुष्यभक्षक दुष्टबुद्धि राक्षस ! तू मुझ पर अपना बल दिखला, हे दुष्टात्मा ! तू मेरे होते हुए स्त्री को नहीं मार सकता, तू अकेला मुझ अकेले के साथ युद्ध कर ॥ अहमेको नियज्यामि त्वामच यमसादनम् । अद्य मद्धलिनिष्ण्ष्टं शिरो राक्षसदीर्यताम् ॥१४॥ निरावाधास्त्विय हते मया राक्षसपांसनः । वनमेतचरिष्यन्ति पुरुषा वनचारिणः ॥१५॥

अर्थ-हे राक्षस! मैं अकेला ही आज तुझे मृत्युलोक में पहुंचा दूंगा, आज तेश्व शिर मेरे बल से आघात किया हुआ फट जायगा, हे दुष्ट राक्षस! मेरे हाथ से तेरी आज मृत्यु होजाने पर वन में विचरने वाले पुरुष निर्विद्रता से यहां भ्रमण किया करेंगे॥

हिडिम्ब उवाच

न तावदेतान् हिंसिष्ये स्वपन्त्वेते यथासुखम् । एष त्वामेव दुर्बुद्धे निहन्म्यद्याप्रियम्बदम् ॥१६॥ पीत्वा तवासृग्गात्रेभ्यस्ततः पश्चादिमानपि । हनिष्यामि ततः पश्चादिमां विषियकारिणीम्॥१७॥

अर्थ-हिडिम्ब बोला कि हे दुष्टबुद्धि ! अब मैं पहले इनको नहीं मारुंगा यह तब तक मुख से सोते रहें, अव तुझ कटुभाषी को ही पहले मारता हूं, तेरे अंगों का रुधिर पीकर पीछे इनको मारुंगा और इनके मारने के पश्चात् इस विरुद्ध आचरण करने बाली का भी बध करुंगा ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा ततो बाहुं प्रगृह्य पुरुषादकः । अभ्यद्रवत संकुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥ १८॥

तस्याभिद्रवतस्तूर्ण भीमो भीमपराक्रमः । वेगेन प्रहितं बाहुं निजग्राह हसन्निव ॥ १९ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तव वह मनुष्यभक्षक राक्षल ऐसा कहकर क्रोध में भरा हुआ बाहें फैलाकर शञ्चदमन-कारी थीयसेन की ओर दौड़ा, परन्तु महापराक्रमी भीमसेन ने उस दौड़ते हुए की सामने आई बांह को तुरंत ही हंसते २ पकड़ लिया ॥

निगृह्य तं बलाद्गीमो विस्फुरन्तं चकर्ष ह । तस्माद्देशाद्धनूष्यष्टो सिंहः धुद्रमृगं यथा ॥ २०॥ ततः स राक्षसः ऋद्धः पाण्डवेन बलार्दितः । भीमसेनं समालिङ्गय व्यनदद्भैरवं खम् ॥ २१॥

अर्थ-भीमसेन ने उसकी फड़कती हुई वांह को पकड़कर उस स्थान से आठ धनुष के प्रमाण तक इस प्रकार घसीटा जैसे छोटे पश्च को पकड़कर सिंह घसीटता है, तब भीमसेन के वल से मार्दित हुआ २ वह राक्षस क्रोधमें भरकर उससे लिपट गया और भयानक शब्द करता हुआ चिल्लाने लगा ॥

पुनर्भीमो बलादेनं विचकर्ष महाबलः । मा शब्दः सुखसुप्तानां आतृणां मे भवेदिति ॥२२॥ अन्योऽन्यं तौ समासाद्य विचकर्षतु रोजसा । हिडिम्बो भीमसेनश्च विकमं चक्रतः परम् ॥ २३ ॥

अर्थ-तव महावली भीमसेन ने फिर उस राक्षस को बलपूर्वक यसीटा कि मुख से सोये हुए मेरे भाइयों को यह शब्द करके न जगावे, इस प्रकार हिडिम्ब तथा भीमसेन बलपूर्वक एक दूसरे 266

महाभारत

को पकड़ २ कर खेंचने लगे और उन दोनों ने बढ़ा पराक्रम दिखलाया ॥

वभञ्जतस्तदा वृक्षां छताश्चाकर्षतुस्तदा ।
मत्ताविव च संरच्धो वारणो षष्टिहायनो ॥ २४ ॥
तयोः शब्देन महता विद्यद्धास्ते नर्र्षभाः ।
सहमात्रा च ददृशुहिंडिम्बामग्रतः स्थिताम् ॥२५॥

अर्थ-उस समय उन दोनों ने लड़ते हुए वृक्षों को तोड़ डाला तथा लताओं को खेंचडाला और उस समय वह दोनों साठ २ वर्ष के मतवाले दो हाथियों के समान क्रोध में भरगये, उनके भयानक शब्द से वह सब श्रेष्ठ पुरुष युधिष्ठिर आदिक माता समेत जाग उठे और उन्होंने अपने सामने खड़ी हुई हिडि-म्बा को देखा ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः कुन्ती समीक्ष्येनां विस्मिता रूपसम्पदा । उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वपूर्वमिदं शनैः ॥ २६ ॥ कस्य त्वं सुरगर्भाभे का वासि वरवर्णिनि । केन कार्येण संप्राप्ता कुतश्चागमनं तव ॥ २७ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! तब कुन्ती हिडिम्बा को देखकर उसके सौन्दर्य से अचिम्भत हुई २ शान्ति-पूर्वक धीरे२ मधुरवाणी द्वारा बोली कि हे देवपुत्री के समान शोभा वाली सुन्दरि! त कौन, किसकी स्त्री, किस मयोजन से यहां आई और कहां से तेरा आना हुआ है ? ॥

आदिपर्व-एकोनत्रिशाध्याय

260

हिडिम्बा उवाच यदेतत् पश्यिस वनं नीलमेघनिभं महत्। निवासो राक्षसस्यैष हिडिम्बस्य ममैव च ॥ २८॥ तस्य मां राक्षसेन्द्रस्य भगिनीं विद्धि भाविनि। भ्रात्रा संप्रेषितामार्थे त्वां सपुत्रां जिघांसितुम्॥२९॥

अर्थ-हिडि म्वा बोली कि हे कुन्ती! यह जो तुम नीले बादल के समान भारी वन देख रही हो यहां पर हिडिम्ब राक्षस और मेरा निवास है, हे माननीय सुन्द्ररी! मुझे तुम उस राक्षस की बहिन जानो और तुमको पुत्र समेत मारने के लिये मेरे भाई ने यहां भेजा था॥

ऋरबुद्धे रहं तस्य वचनादागता त्विह । अद्राक्षं नव हेमाङ्गं तव पुत्रं महावलम् ॥३०॥ ततो वृतो मया भर्ता तव पुत्रो महावलः । अपनेतुं च यतितो न चैव शिकतो मया ॥३१॥

अर्थ-उस निर्यवृद्धि के कहने से मैं यहां आई और यहां भैंने नवीन सुवर्ण के समान गोरे रंग वाले महावली सुम्हारे पुत्र भीमसेनको देखा,और देखते ही मैंने उस महावीर को अपना पनि वर लिया है, मैंने यहां से उसको हटाने का यत्र भी किया परन्तु भैं न हटा सकी ॥

चिरायमाणां मां ज्ञात्वा ततः स पुरुषादकः। स्वयमवागतो हन्तुर्ममान् सर्वास्तवात्मजान् ॥३२॥ स तेन मम कान्तेन तव पुत्रेण धीमता । बलादितो विनिष्पिष्य व्यपनीतो महात्मना ॥३३॥
अर्थ-तब वह मनुष्यभक्षक मुझको बहुत देर से गई जानकर
स्वयं ही तुम्हारे इन सब पुत्रों को मारने के लिये यहां आगया, पुनः
तुम्हारे बुद्धिमान महात्मा पुत्र अर्थात मेरे पात ने बलपूर्वक उस
राक्षस को इस स्थान से घसीट कर दूर हटा दिया है ॥

वैद्यम्पायन उवाच तस्याः श्रुत्वैव वचनमुत्पपात युधिष्ठिरः । अर्जुनो नक्तुलश्चेव सहदेवश्च वीर्यवान् ॥३४॥ तो ते दहशुरासक्तो विकर्षन्तो परस्परम् । कांक्षमाणो जयं चैव सिंहाविव मदोत्कटो ॥३५॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उसकी उक्त बात मुनते ही पराक्रमी युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी वहां से दौड़कर उन दोनों के समीप पहुंचे और वहां उन्होंने उन दोनों को युद्ध में आसक्त तथा एक दूसरे को खेंचते हुए देखा, मानो दो मतवाले सिंह अपनी २ जीत चाहते हुए युद्ध कर रहे हैं।।

राक्षसेन तदा भीमं क्विस्यमानं ।निरीक्ष्य च । उवाचेदं वचः पार्थः प्रहसञ्छनकैरिव ॥३६॥ भीम मा भैर्महाबाहो न त्वां बुध्यामहे वयम् । समेतं भीमरूपेण रक्षसा श्रमकर्षितम् ॥३७॥

अर्थ-तब भीमसेनको उस राष्ट्रस से पीड़ित हुआ देखकर अर्जुन इंसते हुए धीरे २ भीमसेन से बोला कि हे महाबाहु भीमसेन ! तुम हरो मत हम तुम्हारा भयानकहर देख रहे हैं और तुम राष्ट्रस से सताये हुए मतीत होते हो ॥

आदिपर्व-एकोनित्रशाध्याय

563

साहाय्येऽस्मि स्थितः पार्थ पातियव्यामि राक्षसम् । नकुलः सहदेवश्च मातरं गोपयिव्यतः ॥३८॥

अध-मैं और युधिष्ठिर तुम्हारी महायता के लिये खड़े हुए हैं, मैं इस राक्षस का अभी तत्काल हनन करूंगा और नकुल तथा सहदेव माता की रक्षा करेंगे॥

भीमसेन उवाच

उदासीनो निरीक्षस्व न कार्यः संभ्रमस्त्वया। न जात्वयं पुनर्जीवेन्मदाह्वन्तरमागतः॥३९॥

अर्थ-भीमसेन बोला कि हे अर्जुन ! तुम चुप चाप खेड़ हुए देखो उतावली मत करो, मेरी भुजाओं के बीच आया हुआ यह राक्षम कटापि जीवित नहीं रहसक्ता ॥

अर्जुन उवाच

किमनेन चिरं भीम जीवता पापरक्षसा । गन्तव्ये न चिरं स्थातुमिह शक्यमरिन्दम ॥४०॥ रोदे मुहूत्तें रक्षांसि प्रबलानि भवन्त्युत । त्वरस्व भीम मा क्रीड जिह रक्षो विभीषणम् ॥४१॥

अर्थ-अर्जुन बोला कि है शत्रु मंतापकारी भीमसेन ! इस पापी राक्षम को अधिक देर तक जीता रखने से क्या लाभ ? गमन समय में यहां चिरकाल तक टहरना जचित नहीं, क्योंकि रात्रि के समय राक्षमों की पवलता होजाती है, इसलिये है भीममेन! तुम खेल न करते हुए इस भयानक राक्षम का शीघ ही बध करों ॥ 393

महाभारत

वैशम्पायन उवाच

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु भीमो रोषाज्ज्वलान्नव । बलमाहारयामास यद्धायोर्जगतः क्षये ॥४२॥ ततस्तस्याम्बदाभस्य भीमो रोषानु रक्षसः । उत्किप्याभ्रामयदेहं तूर्ण शतग्रणं तदा॥४३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! अर्जुन के ऐसा कहने पर क्रोध से जलते हुए भीमसेन ने ऐसा बल दिखलाया जैसे पर क्रोध से वायु का बल होता है, तब भीमसेन ने क्रोध से शीव ही उस काले मेघ समान राक्षम के शरीर को उठाकर बहुत बार घुमाया॥

भीमसेन उवाच

वृथा मांसैर्वृथा पृष्टो वृथा वृद्धो वृथामितः । वृथा मरणमहस्त्वं वृथाद्य न भविष्यति ॥१४॥ क्षेममद्य करिष्यामि यथा वनमकण्टकम् । न पुनर्मानुषान् हत्वा भक्षायिष्यसि राक्षस ॥४५॥

अर्थ-तब भीमसेन ने कहा कि हे राक्षस ! तू मनुष्यों का वृथा मांस खाकर व्यर्थ ही इतना मोटा तथा वड़ा हुआ और तेरी बुद्धि भी वृथा ही है, इसिल्ये तू विना प्रयोजन ही मारे जाने योग्य है, सो आज मेरा परिश्रम व्यर्थ न होगा, आज में सब मनुष्यों के लिये क्षेम-कुशल करदंगा जिसमे यह वन अकण्टक हो जायगा और अब फिर तू मनुष्यों को मारकर नहीं खायगा ॥

आदिपर्व-एकोनित्रशाध्याय

203

अर्जुन उदांच

यदि वा मन्यसे भारं त्विममं राक्षसं युधि । करोमि तव साहाय्यं शीघ्रमेष निपात्यताम् ॥४६॥ अथवाप्यहमेवैनं हिनष्यामि वृकोदर । कृतकर्मा परिश्रान्तः साधु तावदुपारम ॥४७॥

अर्थ-तब अर्जुन ने कहा कि हे भीमसेन ! यदि तुम इस् राक्षस को युद्ध में मारना कुछ भार=कठिन समझते हो तो मैं तुम्हारी महायना करूं जिसमे इसका शीघ वध होजाय अथवा मैं ही इसको मारडालूं तुम बहुत काम करके थक गये हो, इसलिये आप भलेपकार आराम करें॥

तस्य तद्भवनं श्रुत्वा भीमसेनोऽत्यमर्षणः । निष्पिष्यैनं बलाद्भुमौ पश्रुमारममारयत् ॥४८॥ स मार्यमाणो भीमेन ननाद विपुलं स्वनम् । पूर्यस्तद्भनं सर्व जलाई इव दुन्दुभिः ॥ ४९॥

अर्थ-अर्जन का उक्त वचन सुनते ही क्रोध में भरे हुए भीमसेन ने बलपूर्वक राक्षस को पृथ्वी में दे मारा और रगड़कर पश्च के समान मारडाला, भीमसेन के हाथ से मरते समय उस राक्षस ने बड़े उंचे शब्द से उस सारे वन को गुंजार दिया, जैसे जल से भीगे हुए नगारे की ध्विन होती है ॥

बाहुभ्यां योक्त्रयित्वा तं बलवान्पाण्डनन्दनः । मध्ये भङ्कत्वा महाबाहुईर्षयामास पाण्डवान् ॥५०॥ हिडिम्बं निहतं हष्ट्वा संहृष्टास्ते तपस्विनः । अपूजयनरव्याघं भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-बलवान महाबाहु पाण्डुपुत्र भीमसेन ने उस राहस की बाहों में मुक्क लगाकर तथा शरीर के बीच में से उसके दो दुकहे करके अपने भाईपाण्डवों को हार्पत कर दिया, तब वह मतापी पाण्डव हिडिम्ब को मरा हुआ देखकर परम मसन्न हुए और उन्होंने श्रेष्ठ पुरुष शत्रुसंतापक भीमसेन का पूजन=सत्कार किया।

अभिष्रज्य महात्मानं भीमं भीमपराक्रमम् । पुनरेवार्जुनो वाक्यमुवाचेदं वृकोदरम् ॥ ५२॥ न दूरं नगरं मन्ये वनादस्मादहं विभो । शीघं गच्छाम भदं ते न नो विद्यातस्योधनः ॥५३॥

अर्थ-भयंकर पराक्रम वाले महात्मा भीमसेन का सरकार करके अर्जुन पुनः उनसे वोला कि हे सामर्थ्यवान ! मैं समझता हूं कि नगर इस वन से दूर नहीं है, सो हमें शीघ्र ही यहां से चलना चाहिये जिससे दुर्योधन हमको न जान ले, तुम्हाराक ल्याण हो॥

ततः सर्वे तथेत्युक्त्वा मात्रा सह परन्तपाः । प्रययुः पुरुषव्याघाः हिडिम्बा चैव राक्षसी ॥ ५४ ॥

अर्थ-इसके पश्चाद वह सब शास्त्रतंतापकारी श्रेष्ठपुरुष माता समेत वहां से चलदिये और हिडिम्बा राक्षसी भी साथ ही गई॥

इति एकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते



भीमसेन उवाच

स्मरिन्त वैरं रक्षांसि मायामाश्रित्य मोहिनीम् । हिडिम्बे ब्रज पन्थानं त्विममं आतृसेवितम् ॥ १॥

अर्थ-भीमसेन! बोले कि हे हिडिम्बा! राक्षस लोग भ्रम में डालने वाले होते तथा छल कपट करके अपने वैर का पलटा लेते हैं सो तू भी उसी मार्ग से जा जिस मार्ग से तेरा भाई गया है॥

युधिष्ठिर उवाच

कुद्धोऽपि पुरुषव्याघ्र भीम मास्म स्त्रियं वधीः। शरीरगुप्त्यभ्यधिकं धर्म गोपाय पाण्डव ॥ २ ॥ वधाभिप्रायमायान्तमवधीस्त्वं महाबलम् । रक्षसस्तस्य भगिनी किं नः कुद्धा करिष्यति ॥३॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे पाण्डुपुत्र भीमसेन ! तुम कुद्ध हुए २ भी स्त्री को मत मारो किंतु शरीर की रक्षा से भी अधिक रक्षणीय जो धर्म है उसकी तुम रक्षा करो, तुमने मारने के लिये आते हुए महाबली राक्षस को तो मार ही दिया है अब उसकी बहिन कुद्ध हुई २ भी हमारा क्या करेगी ॥

वैशम्पायन उवाच

हिडिम्बा तु ततः कुन्तीमभिवाद्य कृताञ्जलिः । युधिष्ठिरं तु कीन्तेयमिदं वचनमत्रवीत् ॥ ४ ॥

आर्ये जानासि यदुःखामिह स्त्रीणामनङ्गजम्। तदिदं मामनुप्राप्तं भीमसेनकृतं शुभे ॥ ५॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब हिडिम्बा कुन्ती तथा कुन्ती के बड़े पुत्र युधिष्ठिर को अभिवादन करके हाथ जोड़ कर बोली कि हे आर्ये ! स्त्रियों को जो काम से उत्पन्न होने बाला दुःख है उसको तुम जानती हो, हे माननीये ! वही दुःख भीमसेन की ओर से मुझे तपा रहा है ॥

सोढं तत् परमं दुःखं मया कालप्रतीक्षया । सोऽयमभ्यागतः कालो भविता मे सुखोदयः ॥६॥ मया ह्युत्सृज्य सुहृदः स्वधर्म स्वजनं तथा । वृतोऽयं पुरुषव्याव्यस्तवपुत्रः पतिः शुभे ॥७॥

अर्थ-वह परम दुःख मैंने समय की प्रतीक्षा करते २ अव तक सहा अब मेरे लिये सुख का उदय करनेवाला समय आवेगा, है माननीये ! मैंने अपने बन्धुओं, अपना धर्म तथा अपने लोगों कोत्यागकर तुम्हारेइस मिंह पुरुष पुत्र को अपना पति वर लिया है॥

वीरेणाहं तथा तेन त्वया वापि यशस्विन । प्रत्याख्याता न जीवामि सत्यमेतद्ववीमि ते ॥८॥ तद्रहिस कृपां कर्त्तुं मिय त्वं वरवर्णिनि । मत्वा मृदेति तन्मां त्वं भक्ता वाऽनुगतेति वा ॥९॥

अर्थ-हे कीर्तिमती! मैं तुमसे सत्य कहती हूं कि यदि उम तीर वीममेन ने या तुमने मुझे न्याग दिया तो मैं जीती न रहुंगी सो हे सुन्दरि ! मुझको मूढ़ अथवा अपनी भक्त वा दासी समझ-कर तुम्हें मुझपर कृपा करनी उचित है ॥

भर्त्रानेन महाभागे संयोजय सुतेन ते । तसुपादाय गच्छेयं यथेष्टं देवरूपिणम् । पुनश्चैवानियष्यामि विसम्भं कुरु मे शुभे ॥१०॥

अर्थ-हे पूजनीय भाग्यवती ! तुम अपने इस पुत्र से मेरा सम्बन्ध करादो जिससे मैं इस दिन्यक्ष्पवाले को साथ लेकर यथेष्ट स्थान में पहुंच आनन्द पूर्वक रहूं और तुम मुझपर विश्वास करो कि मैं फिर इनको ले आउंगी ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतद्यथात्य त्वं हिडिम्बे नात्र संशयः । स्थातव्यं तु त्वया सत्ये यथा ब्रूयाः सुमध्यमे ॥११॥ स्नातं कृताद्विकं भद्रे कृतकौतुकमङ्गलम् । भीमसेनं भजेथास्त्वं प्रागस्तगमनाद्रवेः ॥१२॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे सुन्दिर हिडिम्बा! तैने जो कुछ कहा वह सब ठीक है इसमें संदेह नहीं, परंतु तुझे उचित है कि जैसा तैने कहा है तू अपने उसी कथन पर दृद्रह्ना, हे भद्रे! तुम स्नान तथा प्रातः कृत्य=सन्ध्योपासनादिकर्म और आनन्दोत्सव मनाते हुए दिन में भीमसेन के साथ रहसकती हो जब तक सूर्य्य अस्त न हो ॥

अहःसु विहरानेन यथाकामं मनोजवा । अयं त्वानियतव्यस्ते भीमसेनः सदा निशि ॥१३॥

अर्थ-तू दिनभर भीमसेन के साथ चाहे जहां विचर परन्तु रात होते ही सदा इसको यहां लाना होगा ॥ महाभागन

तथित तन् प्रतिज्ञाय भीममनोऽत्रवीदिदम् ।
शृणु गुन्नाम मत्यन ममयं ते वदाम्यहम् ॥१८॥
यावत्कालेन भवित पुत्रम्योत्पादनं शुभे ।
तावत् कालं गमिष्यामि त्वया सह सुमध्यमे ॥१५॥
अर्थ-वेशम्पायनवाले कि हे गजनः । उस राहसी ने वैसा करना स्वीकार किया नव भीमसेन वोले कि हे गङ्गिनः । में सत्यभाव से यह नियम तुझे दतलाता हं जिसे त सन, हे सुन्दरि ! जब तक तरे पुत्र उत्पन्न न होगा तवतक ही में तेरे साथ श्रमण करंगा फिर नहीं॥
तथिति तत् प्रतिज्ञाय हिडिम्बा राक्षसी तदा ।
संजल्पन्ती सुमधुरं रमयामास पाण्डवम् ॥१६॥

तथैव वनदुर्गेषु पुष्पितदुमसानुषु । सरःसु रमणीयेषु पद्मोत्पलयुतेषु च ॥१७॥

अर्थ-तब हिडिम्बा राक्षमी भीममेन का कथन स्वीकार करके मधुरभाषणकरती हुई उनके साथ रमण करने लगी, पह भीमसेन को साथ लेकर बन, उपवन, पहाड़ों की गुफाओं तथा फूले हुए बृक्षों वाले खण्ड पर्वतों में रमणीय कमल और कुमुद से पूर्ण तालावों पर भ्रमण करती रही ॥

काननेषु विचित्रेषु पुष्पितद्रमविष्ठेषु । हिमवद्गिरिक्केषु यहासु विविधासु च ॥१८॥ पत्तनेषु च रम्येषु महाशालवनेषु च । विश्रती परमं रूपं रमयामास पाण्डवम् ॥१९॥ अर्थ-विचित्र वन जिनमें वृक्ष तथा लतायें फूली हुई थीं तथा हिमालय पहाड़ के कुंजभवनों, विविध गुफाओं और मुन्दर नगरों तथा बड़े २ साल वृक्ष के जंगलों में रहकर परम मौन्दर्य धारण किये हुए हिडिम्बा पाण्डुपुत्र भीममेन के साथ रमण करती रही॥

प्रजि राक्षसी पुत्रं भीमसेनान्महाबलम् । विरूपाक्षं महावक्षं शंकुकर्णं विभीषणम् ॥२०॥ बालोऽपि योवनं प्राप्तो मानुषेषु विशाम्पते । सर्वास्त्रेषु परं वीरः प्रकर्षमगमद्बली ॥२१॥

अर्थ-पुनः कालान्तर में भीमसेन से उस राक्षमी ने एक महावली पुत्र उत्पन्न किया, जो भयानक नेत्र, वड़ा मुख तथा वड़े २ कान और भयानक आकार वाला था, हे राजन ! वह बलवान बालक वाल्यावस्था में ही औरों से युवा मतीत होता था और वह धीरे २ संपूर्ण शस्त्रविद्या में परमनिपुण होगया ॥

घटो हास्योत्कच इति माता तं प्रत्यभाषत । अबवीत् तेन नामास्य घटोत्कच इति सम ह ॥२२॥ अनुरक्तश्च तानासीत् पाण्डवान् स घटोत्कचः । तेषां च दियतो नित्यमात्मनित्यो बभृव ह ॥२३॥

अर्थ-उसका घट के समान शिर उत्कच = केशों मे रहित होने के कारण माता बोली कि इसका नाम "घटोत्कच" होगा, वह पाण्डवों से पीति करने वाला, उनका प्यारा और स्वतन्त्र विचरने वाला घटोत्कच नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥ संवाससमयो जीर्ण इत्याभाष्य ततस्तु तान्। हिडिम्बा समयं कृत्वा स्वां गतिं प्रत्यपद्यत ॥ २४ ॥ कृत्यकाल उपस्थास्ये पितृनिति घटोत्कचः। आमन्त्र्य रक्षसां श्रेष्ठः प्रतस्थे चोत्तरां दिशम् ॥२५॥

अर्थ-इसके पश्चात् हिडिम्बा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके अर्थात भीमसेन के साथ रहने का समय पूरा होचुका, इस प्रकार उन पाण्डवों से कहकर अपने अभीष्ठ स्थान को चली गई, राक्षसों में श्रेष्ठ घटोत्कच भी अपने पिता आदिकों से यह कहकर कि मैं समय पड़ने पर उपस्थित होडंगा, उनसे अनुमित लेकर उत्तर दिशा की ओर चला गया॥

इति त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच ते वनेन वनं गत्वा घ्रन्तो मृगगणान् बहुन् । अपक्रम्य ययूराजंस्त्वरमाणा महारथाः ॥ १ ॥ मत्स्यांस्त्रिगर्तान् पञ्चालान् कीचकानन्तरेण च । रमणीयान् वनोद्देशान् प्रेक्षमाणाः सरांसि च ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तदनन्तर महायोद्धा पाण्डव बन बन में घूमते, अनेक जंगली पशुओं का आखेट करते तथा मत्स्यदेश, त्रिगर्त्तदेश, पाञ्चालदेश, कीचकदेश और रमणीय

आदिपर्व-एकत्रिशाध्याय

309

वनस्थान तथा तालावों को देखते हुए शीघ्रता से विचरने लगे।।

जटाः कृत्वात्मनः सर्वे वल्कलाजिनवाससः। सहकुन्त्या महात्मानो विभ्रतस्तापसं वपुः ॥३॥ कचिद् वहन्तो जननीं त्वरमाणा महारथाः। कचिच्छन्देन गच्छन्तस्ते जग्मुः प्रसभं पुनः ॥४॥

अर्थ-वह सब महायोद्धा पाण्डव कुन्ती समेत अपनी जटायें बनाये, तपस्वियों का वेश और वल्कल तथा मृगचर्म के वस्त्र धारण किये हुए कहीं २ माता को पीट पर चढ़ाकर तथा कहीं स्वच्छन्द्रता से चलते और फिर शीघ्रता से चलने लगते थे॥

ब्राह्मं वेदमधीयाना वेदाङ्गानि च सर्वशः । नीतिशास्त्रं च सर्वज्ञा ददृशुस्ते पितामहम् ॥५॥ तेऽभिवाद्य महात्मानं कृष्णद्वेपायनं तदा । तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे सह मात्रा परन्तपाः ॥६॥

अर्थ-एक समय उन सर्वज्ञानी पाण्डवों ने ईश्वरीय वेद तथा वेदों के अङ्गों और नीतिशास्त्र का अध्ययन करते समय पितामह व्यासजी का दर्शन=समागम किया, तब वह शञ्चसंतापकारी पाण्डव माता समेत महात्मा व्यासजी को प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़े होगये॥

व्यास उवाच

मयेदं व्यसनं पूर्व विदितं भरतर्षभाः। यथा तु तैरधर्मेण धार्त्तराष्ट्रिर्विवासिताः॥ ७॥ तिद्वित्वास्मि संप्राप्तश्चिकीर्षः परमं हितस् । न विषादोऽत्र कर्तव्यः सर्वमेतत्सुखाय वः ॥ ८॥

अर्थ-तब व्यासनी बोले कि हे भरतकुल के श्रेष्ठ पुरुषो ! यह तुम्हारी आपत्ति मुझे पहले निदित होचुकी है कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने अधर्भ से तुम्हें निर्वासन किया है, यह समाचार पाकर में तुम्हारा परम हित करने के लिये यहां आया हूं, तुम शोक मत करो यह सब तुम्हारे सुख के लिये ही हुआ है ॥

समास्ते चैव मे सर्वे यूयं चैव न संशयः। दीनतो वालतश्चेव रनेहं कुर्वन्ति मानवाः॥ ९॥ तस्मादभ्यधिकः स्नेहो युष्मासु मम सांप्रतम्॥ स्नेहपूर्व चिकिषामि।हितं वस्तन्निबोधत॥ १०॥

अर्थ-इसमें संदेह नहीं कि मेरे लिये तुम और सब कौरव लोग समान हैं परंतु बुद्धिमान पुरुष दीन और बालकों पर अधिक स्नेह किया करते हैं, इसलिये अब मेरा प्रेम आप लोगों में अधिक है, सो मैं स्नेह के कारण तुम्हारा हित करना चाहता हूं, तुम मेरा कथन सुनो, और :-

इदं नगरमभ्यासे रमणीयं निरामयम् । वसतेह प्रतिच्छन्ना ममागमनकाङ्क्षिणः ॥ ११ ॥ अर्थ-इस समीपस्य रमणीय तथा क्रेशरहित नगर में मेरे आने की प्रतीक्षा करते हुए यहां छिपकर रहो ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स तान् समाश्वास्य व्यासः सत्यवतीस्रतः । एकचकामभिगतः कुन्तीमाश्वासयत्प्रभुः ॥ १२॥

आदिपर्व-एकत्रिंशाध्याय

303

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! हत्यवती के पुत्र व्यासजी इस प्रकार उनको धैर्य दे "एकचका" नगरी में लेजा-कर कुन्ती को इस प्रकार सान्त्वना देने लगे कि:—

जीवत्यित्रि सुतास्तेऽयं धर्मनित्यो युधिष्ठिरः । धर्मेण पृथिवीं जित्वा महात्मा पुरुपर्पभः । पृथिव्यां पार्थिवान् सर्वान् प्रशासिष्यति धर्मराट् ॥१३॥

अर्थ-हे चिरंजीव पुत्रों वाली कुन्ती ! तुम्हारा यह धर्म में स्थित पुत्र महात्मा युधिष्टिर धर्मपूर्वक पृथिवी को विजय करके धर्मात्मा राजा बनकर पृथ्वीभर के सब राजाओं पर शासनकरेगा॥

पृथिवीमिष्ठां जित्वा सर्वा सागरमेख्ठाम् । भीमसेनार्जनवलाद् भोक्ष्यते नात्र संशयः ॥१४॥ पुत्रास्तव च माद्रयाश्च सर्व एव महारथाः । स्वराष्ट्रे विहरिष्यन्ति सुर्वं सुमनसः सद्य॥१५॥

अर्थ-यह युधिष्ठिर समुद्र रूपी मेखला वाली सम्पूर्ण पृथ्वी को भीमसेन और अर्जुन के बल से जीतकर राज्य भोगेगा, इस में सन्देह नहीं, तुम्हारे और माद्री के यह सब महावीर पुत्र प्रसन्न चित्त हुए २ सदा अपने देश में सुखपूर्वक रहेंगे, और:—

यक्ष्यन्ति च नरव्यात्रा निर्जित्य पृथिवीमिमाम् । राजस्याखमेधाद्येः ऋतुभिर्भुरिदाक्षिणैः ॥१६॥ अनुगृह्य सुहृद्धर्गं भोगैक्वर्यसुलेन च । पितृपैतामहं राज्यमिमे भोक्ष्यन्ति ते सुताः ॥१७॥ 808

महाभारत

अर्थ-यह सिंह पुरुष इस पृथ्वी को विजय करके "राज-सूय" तथा "अश्वमेध" आदि वड़ी २ दक्षिणाओं वाले यज्ञ करेंगे और अपने बन्धुवर्ग को ऐश्वर्यरूप सुख भुगाते हुए तेरे पुत्र अपने पिता पितामह के राज्य को पावेंगे॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता निवेश्येतान् ब्राह्मणस्य निवेशने । अब्रवीत् पाण्डवश्रेष्ठमृषिद्धेपायनस्तदा ॥१८॥ इह मासं प्रतीक्षध्वमागमिष्याम्यहं पुनः । देशकालौ विदित्वैव लप्स्यध्वं परमां मुदम् ॥१९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब ऋषि व्यास ऐसा कह और इन लोगों को एक ब्राह्मण के घर ठहराकर पाण्डवों में बड़े युधिष्ठिर से बोले कि तुम लोग एक मास तक मेरी प्रतीक्षा करो, मैं फिर यहां आउंगा और तुम देशकाल को भलेमकार समझकर ही परमानन्द को प्राप्त होंगे॥

स तैः प्राञ्जलिभिः सँवैस्तथेत्युक्तो नराधिप । जगाम भगवान् व्यासो यथागतमृषिः प्रभुः॥२०॥

अर्थ-हे राजन ! उन सब पाण्डबों ने हाथ जोड़कर वैसा करने की प्रतिज्ञा की, तब भगवान न्यासजी यथेष्ट स्थान को चले गये॥

इति एकत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ दात्रिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

जनमेजय उवाच

एकचकां गतास्ते तु क्रन्तीपुत्रा महारथाः। अत अर्घे दिजश्रेष्ठ किमक्रवत पाण्डवाः॥१॥

अर्थ-राजा जनमेजय बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! महापराक्रमी कुन्तीपुत्र पाण्डवों ने एकचका नगरी में पहुंचकर वहां वास करते हुए क्या २ किया ? ॥

वैशम्पायन उवाच

एकचकां गतास्ते तु कुन्तीपुत्रा महारथाः। जचनीतिचिरं कालं ब्राह्मणस्य निवेशने ॥२॥

अर्थ-वैद्याम्पायन बोले कि हे राजन ! महावली कुन्तीपुत्र एकचका नगरी में ब्राह्मण के घर चिरकाल तक नहीं रहे ॥

चेरुभैक्षं तदा ते तु सर्व एव विशाम्पते । बभुवुनीगराणां च स्वैर्युणैःप्रियदर्शनाः ॥ ३ ॥ निवेदयन्ति स्म तदा कुन्त्या भैक्षं सदा निशि । तया विभक्तान्भागांस्ते भुञ्जतेस्म पृथक् पृथक्॥ ॥

अर्थ-हे राजन ! वह सब पाण्डव भिक्षा मांगकर खाने लगे और अपने गुणों से नगरवासियों के प्यारे बनगये, वह भिक्षा लेकर रात्रि में आते और कुन्ती के सामने रखदेते, तदनन्तर कुन्ती जब उसके अलग २ भागकरदेती तबबह अपने २ भागका भोजनकरते थे॥ अर्द्ध ते भुञ्जते वीराः सहमात्रा परन्तपाः। अर्द्ध सर्वस्य भैक्षस्य भीमो भुंक्ते महाबलः ॥५॥ तथा त तेषां वसतां तिस्मन् राष्ट्रे महात्मनाम्। अतिचकाम सुमहान् कालोऽथ भरतर्षभ ॥६॥

अर्थ-सम्पूर्ण भिक्षा का आधा थाग माता समेत चारो पाण्डव खाते और महावली भीमसेन अकेला आधा भाग खाता था, है भरतकुलश्रेष्ठ राजन ! इस प्रकार उन महात्मा पाण्डवों को उस देश में रहते हुए बहुत काल व्यतीत होगया ॥

ततः कदाचिद्भैक्ष्याय गतास्ते पुरुषर्थभाः । संगत्या भीमसेनस्तु तत्रास्ते पृथया सह ॥७॥ अथात्तिजं महाशब्दं ब्राह्मणस्य निवेशने । भृशमुत्पतितं घोरं कुन्ती शुश्राव भारत॥८॥

अर्थ-तत्पश्चात एक समय वह महात्मा पाण्डव मिलकर भिक्षा के लिये गये हुए थे और भीमसेन कुन्ती के पास विद्यमान था, है भारतीय राजन ! इसी बीच में कुन्ती को उस ब्राह्मण के घर भयानक दुःल का घोर विलाप होता हुआ छुनाई दिया ॥ रोरूयमाणांस्तान् दृष्ट्वा परिदेवयतश्च सा । कारुण्यात् साधुभावाच कुन्ती राजन्न चक्षमे ॥९॥ मध्यमान्व दुःलेन हृदयेन पृथा तदा । उवाच भीमं कल्याणी कृपान्वितमिदं वचः ॥१०॥ अर्थ-हे राजन ! कुन्ती उन लोगों को हाहाकार करते और

रोते हुए देखकर दयालुना नथा सज्जनना के कारण सह न सकी

तब धर्मात्मा कुन्ती दुःख से हृदय में व्याकुल दुई २ भीमसेन के मित इस मकार कुपापूर्ण बचन बोली कि :-

वसाम सुसुवं पत्र ब्राह्मणस्य निवेशने । अज्ञाता धार्तराष्ट्रस्य सत्कृता वीतमन्यवः ॥११॥ सा चिन्तये सदा पत्र ब्राह्मणस्यास्य किन्वहम् । प्रियं कुर्यामिति गृहे यत् कुर्युरुषिताः सुलम् ॥१२॥

अर्थ-हे पुत्र ! हम लोग इस ब्राह्मण के घर सुलपूर्वक निश्चिन्त हुए २ दुर्योधन से छिपकर वसते हैं, हे पुत्र ! हमने जो इस घर में रहकर खुल पाया है इससे में रात्रि दिवस इसी चिन्ता में रहती हूं कि इस ब्राह्मण का क्या मत्युपकार करूं॥

एतावान् पुरुषस्तात् कृतं यिसमन्न नश्यति । यावच कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यिषकं ततः ॥१३॥ तदिदं ब्राह्मणस्यास्य दुःखमापिततं ध्रवम् । तत्रास्य यदि साहाय्यं कुर्यामुपकृतं भवेत् ॥१४॥

अर्थ-हे तात! इसका कोई ऐसा प्रत्युपकार करना चाहिये जो अन्य पुरुषों के उपकार से अधिक और नाश होने वाला न हो, यही पुरुष का पुरुषत्व है,निश्चयकरके यह ब्राह्मण एकदुःखमें ब्रस्त है,यदि हम इसको उस दुःखसे मुक्त करदें तो बहा उपकार होगा॥

भीमसेन उवाच

ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम् । विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात्सुदुष्करम्॥१५॥

महाभारत

अर्थ-भीमसेन बोला कि हे मात! यह जानना चाहिये कि इसके यहां क्या दुःख है और वह किस कारण से हुआ है? यह ज्ञात होने पर मैं उसको अवस्य निवारण करुंगा चाहे वह महा कठिन ही क्यों न हो॥

वैशम्पायन उवाच एवं तो कथयन्तो च भ्यः शुश्रुवतुः खनम् । आर्त्तिजं तस्य विप्रस्य सभार्यस्य निवेशने ॥१६॥

अर्थ-वैश्वन्पायन बोले कि हे राजन ! वह दोनों इस प्रकार बात चीत कर ही रहे थे कि उन्होंने उस घर में ब्राह्मण और उस की स्त्री का फिर दुःख से भरा हुआ विलाप सुना ॥ अन्तःपुरं ततस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः । विवेश त्विरता कुन्ती बद्धवत्सव सौरभी ॥१७॥ ततस्तं ब्राह्मणं तत्र भार्यया च सुतेन च ॥ दुहित्रा चैव सहितं ददर्शावनताननम् ॥१८॥

अर्थ-तब शीघ्रता से कुन्ती उस महात्मा ब्राह्मण के घर में भीतर चली गई, जैसे वंधे हुए बछड़े को देखकर गाय जाती है, वहां उसने ब्राह्मण, उसकी स्त्री, पुत्र और कन्या इन शिर झुकाये बैठे हुओं को अत्यन्त दुःख से विलाप करते हुए देखा ॥

बाह्मण जवाच धिगिदं जीवितं लोके गतसारमनर्थकम् । दुःखमूलं पराधीनं भृशमिषयभागि च ॥१९॥ जीविते प्रमं दुःखं जीविते परमोज्वरः । जीविते वर्त्तमानस्य दुःखानामागमो ध्रुवः ॥२०॥ अर्थ-ब्राह्मण बोला कि इस संसार में यह जीवन असार, व्यर्थ, दुःख का मूल, पराधीन और अत्यन्त अहितकारी होने से ऐसे जीवन को थिकार है, इस जीवन में परमदुःख, परमसन्ताप और इसमें वर्त्तमान पुरूप को दुःखों का मिलना अटल है ॥ आत्सा होको हि धर्मार्थी कामं चैव निषेवते । एतेश्च विश्रयोगोऽपि दुःखं परमनन्तकम् ॥२१॥ आहुः केचित् परंमोक्षं स च नास्ति कथंचन । अर्थश्राप्ती तु नरकः कृत्स्न एवोपपद्यते ॥२२॥

अर्थ-आत्मा अकेला ही धर्म, अर्थ तथा काम की माप्ति करता और इनसे वियोग होना भी अनन्त महादुःख है, कोई मनुष्य कहते हैं कि परममोक्ष होसक्ता है परन्तु वह किसी मकार भी सिद्ध नहीं होता, यदि अर्थ=धन की माप्ति ही करली जाय तो वह भी संपूर्ण नरक की माप्ति होजाती है ॥

अर्थेप्सुता परं दुःखमर्थप्राप्ती ततोऽधिकम् । जातस्रेहस्य चार्थेषु विप्रयोगे महत्तरम् ॥२३॥ न हि योगं प्रपश्यामि येन सुच्येयमापदः । पुत्रदारेण वा सार्द्धं प्राद्रवेयमनामयम् ॥२४॥

अर्थ-प्रथम तो धन कमाने में परम दुःख, यदि धन की माप्ति होजाय तो उससे भी अधिक दुःख रहता है किंतु माप्त हुए धन में जिसका मेम होजाता है उसको उसके वियोग में बहुत ही दुःख होता है, मैं ऐसा कोई उपाय नहीं देखता कि इस आपित से छटकर पुत्र स्त्री सहित निर्विध्न भाग सकूं।

यंतितं वे मया पूर्व वेत्थ ब्रह्मणि तत्तथा। क्षेमं यतस्ततो गन्तुं त्वया तु मम न श्रुतम् ॥२५॥ पित्रा मात्रा च विहितां सदा गाईस्थ्यभागिनीम्। वरियत्वा यथान्यायं मन्त्रवत् परिणीय च ॥२६॥

अर्थ-हे ब्राह्मणी ! मैंने पहिले जो यत्न किया था कि जहां कुशल से रहसकें उस स्थान में चलें, सो तू जानती है परन्तु तैने मेरी बात नहीं मानी, तेरे माता पिता ने तुझे सदा के लिये मेरी घरवाली बनाया और मैंने न्यायपूर्वक वेद्मन्त्रों के अनुसार तुमे वर कर विवाह किया है ॥

कुलीनां शिलसम्पन्नामपत्यजननीं तथा । त्वामहं जीवितस्यार्थे साध्वीमनपकारिणीम् । परित्यक्तुं न शक्ष्यामि भार्यो नित्यमनुन्नताम् ॥२०॥

अर्थ-तू कुलीन, शीलवती, सन्तानों की माता, पतित्रता, निरपराध और सदा मेरे अनुकूल रहने वाली भार्या है, अब प्रै अपने जीवन के लिये तुझे त्याग नहीं सक्ता ॥

कृत एव परित्यक्तुं सुतं शक्ष्याम्यहं स्वयम् । बालमप्राप्तवयसमंजातन्यञ्जनाकृतिम् ॥२८॥ भर्जुरर्थाय निक्षिषां न्यासं धात्रा महात्मना । स्वयसुत्पाद्यतां बालां कथसुत्सष्टुसुत्सहे ॥२९॥

अर्थ-इस बालक पुत्र को तो मैं स्वयं त्याग ही कैसे सकता है जो अभी योग्य आयु तक नहीं पहुंचा और न जिसमें युवावस्था के अभी कोई चिह्न उत्पन्न हुए हैं, और जिस कन्या को परमात्मा ने हमारे पास पति के लिये धरोहर के समान रखा हुआ है उस बालक कन्या को अध्यही उत्पन्न करके कैसे त्याग सकता हूं॥ अन्यन्ते केचिद्धिकं स्नाहं पुत्रे पितुर्नराः। कन्यायां केचिद्परे ममतुल्या बुभी स्मृती ॥३०॥

एषां चान्यतमत्यागो नृशंसो गर्हितो बुधैः । आत्मत्यागे कृते चेमे मरिष्यन्ति मया विना ॥३१॥

अर्थ-कई एक मनुष्य पिता का पुत्र में अधिक प्रेम मानते तथा दूसरे कन्या में अधिक प्रेम समझते हैं, परन्तु मेरे लिये तो दोनों एक समान हैं, इन तीनों में से एक का त्याग भी विद्वानों ने निन्दित कहा है, और यदि मैं अपने शरीर को त्याग दूं तो मेरे बिना यह सब मरजायंगे ॥

स कुछामहमापन्नो न शक्तर्स्तुमापदम् । अहो धिक् कां गतिं त्वद्य गमिष्यामि सबान्धवः । सर्वैः सह मृतं श्रेयो नच मे जीवितं क्षमम् ॥३२॥

अर्थ-सो मैं बड़ी आपत्ति में पड़गया हूं, अब इससे पार नहीं होसकता, हा धिकार है, मैं अब बन्धुओं समेत किस दशा में पहुंचुंगा, मेरा अब सबके साथ मर जाना ही अच्छा है जीना उचित नहीं ॥

इति दात्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रयस्त्रिशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

बाह्मणी उवाच

न सन्तापस्त्वया कार्यः प्राकृतेनेव किहिचित्। न हि सन्तापकालोऽयं वैद्यस्य तव विद्यते ॥१॥ अवश्यं निधनं सर्वेर्गन्तव्यमिह मानवेः। अवश्यं भाविन्यर्थे वै सन्तापो नेह विद्यते ॥२॥

अर्थ-ब्राह्मणी बोली कि हे देव! तुम्हें नीच पुरुषों के समान शोक करना कदापि उचित नहीं, आप इस समय वैद्य=उपाय बताने वाले हैं, तुम्हारे लिये यह शोक करने का अवसर नहीं, सब ने इस संसार में मरना अवश्य है सो अवश्य होने बाली बात में यहां शोक करना व्यर्थ है ॥

भार्या पुत्रोऽथ दुहिता सर्वमात्मार्थिमिष्यते । व्यथां जिह सुबुद्धचा त्वं स्वयं यास्यामितत्रच ॥३॥ एतद्धि परमं नार्याकार्य लोके सनातनम् । प्राणानिष परित्यज्य यद्भर्त्तुर्हितमाचरेत् ॥४॥

अर्थ-स्त्री, पुत्र तथा पुत्री, इन सबकी मनुष्य अपने सुख के लिये ही इच्छा करता है सो आप उत्तम बुद्धि से इस चिन्ता को छोड़दें और मैं वहां स्त्रयं राक्षस को भोजन देने के लिये चली जाउंगी, क्योंकि मंमार में स्त्री का यही सनातन परमधर्म है कि वह प्राणों को त्यागकर भी अपने स्त्रामी का दिन करे॥ तच तत्र कृतं कर्म तवापीदं सुखावहम्।
भवत्यसुत्र चाक्षय्यं लोकेऽस्मिश्च यशस्करम्।।५॥
यद्र्थमिष्यते भार्या प्राप्तः सोऽर्थस्त्वया मिय ।
कन्या चैका कुमारश्च कृताहमनृणा त्वया ।।६॥

अर्थ-सो मेरा किया हुआ यह पुण्य कर्ष तुम्हारे लिये भी सुखकारी और इसलोक तथा परलोक में मेरे यश का वढ़ाने वाला है, और जिस मयोजन से स्त्री की इच्छा की जाती है वह तुम्हारा मयोजन भी मुझसे सिद्ध हो चुका है, क्योंकि एक कन्या और एक पुत्र तुम्हें मान होगया, और इससे आपने मुझे भी उऋण कर दिया है।

समर्थः पोषणे चासि सुतयो रक्षणे तथा । न त्वहं सुतयो शक्ता तथा रक्षणपोषणे ॥७॥ मम हि त्वब्रिहीनायाः सर्व प्राणधनेस्वर । कथं स्यातां सुतौ बालौ भवेयं च कथं त्वहंम् ॥८॥

अर्थ-पुत्र और कन्या के पालन तथा रक्षण करने में आप समर्थ हैं किन्तु में इन सन्तानों की रक्षा तथा पालन नहीं कर सकती, हे संपूर्ण प्राण और धन के स्वामी ! तुम्हारे विना मेरे यह दोनों बालक और मैं भी कैसे जीवेंगे॥

क्थं हि विधवानाथा बालपुत्रा विना त्वया । मिथुनं जीविधण्यामि स्थिता साधुगते पथि ॥९॥ अहंकृता वालिप्तेश्च प्रार्थमानामिमां सुताम् । अयुक्तेस्तव संवन्धे कथं शक्ष्यामि रक्षितुम् ॥१०॥ 868

अर्थ-में बालक=पुत्र, पुत्री वाली, तुम्हारे विना विधवा और अनाथ हांकर सज्जनों के मार्ग पर स्थित हुई इस जोड़े को कैसे जीवित रख सकुंगी, यादे अभिमानी दृष्ट पुरुष इस कन्या से विवाह करना चाहेंगे तो मैं उनके साथ तुम्हारे संबन्ध की कैसे रक्षा कर सकुंगी अर्थाद ऐसों के साथ संबन्ध रखना मुझे इष्ट नहीं है।। उत्सृष्टमामिषं भूमो प्रार्थयन्ति यथा खगाः। प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम्।।११॥ कथं तव कुलस्यकामिमां बालामनागसम्। पितृपतामहे मार्गे नियोक्तमहमुत्सहे।।१२॥

अर्थ-जैसे भूमी पर फैंके हुए मांस को सब पक्षी चाहते हैं वैसे ही पितहीना स्त्री को सब लोग दुष्टभाव से पाने की इच्छा करते हैं, तुम्हारे कुल की एकमात्र इस बालक निरपराध कन्या को पिता-पितमह के मार्ग में कैसे रखसकूंगी अर्थात तुम्हारे पिता-पितामह के समान कैसे इसका योग्य संबन्ध करूंगी ॥

कथं शक्ष्यामि बालेऽस्मिन् ग्रणानाधातुमीप्सितान् । अनाथं सर्वतो छप्ते यथा त्वं धर्मदर्शिवान् ॥१३॥ इमामपि च ते बालामनाथां परिभूय माम् । अन्हीः प्रार्थियष्यन्ति शुद्रा वेदश्रुतिं यथा ॥१४॥

अर्थ-तुम्हारे विना इस पुत्र के अनाथ तथा सर्वस्वहीन हो जाने से इस वालक पुत्र में कैसे उत्तम गुण उत्पन्न कर सकुंगी, जैसे आप धर्म के पारदर्शी हैं, तुम्हारी इस वालक तथा अनाथ कन्या को भी अयोग्य पुरुष मुझे दवाकर लेलेंगे, जैसे वेद की श्रृति को शृद्ध=अयोग्य पुरुष अन्यथा ग्रहण करते हैं।

तां चेदहं न दित्सेयं त्वद्युणैरुपबृंहिताम् । प्रमध्येनां हरेयुस्ते हविर्धाक्षा इवाध्वरात् ॥१५॥ अवज्ञाता च लोकेषु तथात्मानमजानती । अविलिप्तेनरैर्वह्मन् मरिष्यामि न संशयः ॥१६॥

अर्थ-तुम्हारे जैसे उत्तम गुणों वाली इम कन्या का यदि मैं उन अयोग्य पुरुषों के साथ विवाह न करूंगी तो वह वलपूर्वक सुझसे छीनकर लेजावेंगे, जैसे कौवे यज्ञ में हावि को ग्रहण करते हैं, हे ब्रह्मत! में संसार में अपने आपको भूली हुई तथा दुष्ट पुरुषों से निन्दित कीहुई मरजांउगी, इसमें सन्देह नहीं ॥

तौ च हीनो मया बालो त्वया चैव तथात्मजो। विनश्येतां न सन्देहो मत्स्याविवजलक्षये।।१७॥ त्रितयं सर्वथाप्येवं विनशिष्यत्यसंशयम्। त्वया विहीनं तस्मात्त्वं मां परित्यक्तुमहीस।।१८॥

अर्थ-इस प्रकार यह दोनों वालक मेरे और तुम्होर विना निःसन्देह मरजायंगे, जैसे पानी के विना मछिल्यें मरजाती हैं. सब प्रकार से तुम्हारे विना तीन प्राणी नष्ट होंगे इसमें मंशय नहीं, सो तुम्हें मुझ अकेली को ही त्याग देना उचित है।।

परित्यक्तः सुतश्चायं दुहितयं तथा मया। वान्यवाश्च परित्यक्तास्त्वदर्थं जीवितं च मे ॥१९॥ स कुरुष्व मया कार्यं तारयात्मानमात्मना। अनुजानीहि मामार्य सुतौ में परिपालय ॥२०॥ 398

महाभारत

अर्थ-मैंने अब इस पुत्र कन्या तथा सब बन्धुओं को त्याग दिया है और तुम्हारे लिये तो मेरा जीवन ही है, सो तुम मेरे द्वारा यह कार्य्य को सिद्ध करो और अपने पुरुवार्थ से अपने को दुःख से बचाओ, हे आर्य स्वामिन ! मुझे वहां जाने की अनुमति दें और आप मेरे बालकों की रक्षा करें॥

अबध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मानिश्चये । धर्मज्ञान् राक्षसानाहुन हन्यात्स च मामिप ॥ २१ ॥ निःसंशयं वधः पुंसां स्त्रीणां संशियतो बधः । अतो मामेव धर्मज्ञ प्रस्थापियतुमहीस ॥ २२ ॥

अर्थ-हे धर्म के ज्ञाता ! धर्मशास्त्र में निपुण ऋषिलोग स्त्री को अवध्य=न मारने योग्य बतलाते हैं और यह भी कहते हैं कि राक्षस लोग कुछ न कुछ धर्मशास्त्र के ज्ञाता होते हैं सो संभव है कि वह मुझे न भी मारे, पुरुषों का मारा जाना संदेहरहित और स्त्रियों का मारा जाना संशययुक्त है, इसलिये तुम्हें उचित है कि मुझे ही वहां भेजो ॥

भुक्तं पियाण्यवाप्तानि धर्मश्च चिरतो महान् । त्वत्प्रसूतिः प्रिया प्राप्ता न मांतप्स्यत्यजीवितम्।।२३॥ जातपुत्रा च वृद्धा च प्रियकामा च ते मदा । समीक्ष्येतदहं सर्व व्यवसायं करोम्यतः ॥ २४॥

अर्थ-मैं पूर्णतया सब कुछ भोग चुकी, सुखों को पाचुकी, महान्धर्म का अनुष्टान किया और तुम्हारे छिये प्यारी स्नतान भी उत्पन्न की, इसिछिये मुझे मरना दुःखदायी नहीं होगा, मैं सस्तान उत्पन्न करके अब वृद्धा होचली हूं और तुम्हारी सदा भलाई करना मेरा कर्तव्य है, यह सब देखकर ही मैं ऐसा उद्यम करने को उद्यत हुई हूं॥

एतत् सर्व समीक्ष्यत्वमात्मत्यागं च गर्हितम् । आत्मानं तारयाद्याशु कुलं चेमो च दारकौ ॥२५॥

अर्थ-सो आप यह सब सोच विचार कर अपने प्राण त्याग को निन्दनीय समझ आज अपने आपको, अपने वंश को तथा इन दोनों बालकों को शीघ्र ही आपित्त से पार करें॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तया भर्ता तां समालिङ्ग्य भारत ।
मुमोच वाष्पं शनकेः सभायों भृशदुः खितः ॥ २६ ॥
अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे भारतीय राजन ! उस ब्राह्मणी
के ऐसा कहने पर उसका पित अत्यन्त दुः खी हुआ २ उसको
आलिङ्गन करके भार्या सहित धीरे २ आंसु वहाने लगा ॥

इति त्रयस्त्रिशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुस्त्रिशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

तयो दुः खितयोर्वाक्यमितमात्रं निशम्य तु । ततो दुः खपरीताङ्गी कन्या तावभ्यभाषत ॥ १॥

किमेवं भृशदुः खात्तीं रोरूयेतामनाथवत् । ममापि श्रूयतां वाक्यं श्रुत्वा च कियतां क्षमम् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजा जनमेजय ! उन दुिलया मा बाप के अत्यन्त दुःख भरे उक्त वचन सुन कन्या दुखी होकर उनसे बोली कि तुमदोनों अत्यन्त दुखी हुए २ अनाथों की भांति क्यों रो रहे हो ? मेरी बात भी सुनें और सुनकर यथोचित कार्य करें॥

धर्मतोऽहं पिरत्याज्या युवयोर्नात्र संशयः। त्यक्तव्यां मां पिरत्यज्य त्रातं सर्व ममेक्या ॥ ३ ॥ इत्यर्थमिष्यतेऽपत्यं तारियष्यति मामिति। अस्मिन्छपस्थिते काले तरध्वं प्रववन्मया ॥ ४ ॥

अर्थ-इसमें सन्देह नहीं कि धर्मपूर्वक विवाह के पश्चात मैं आपसे अवश्य त्यागी जाउंगी, सो त्यागने योग्य मुझ एक को इसी समय त्याग देने से तुम सबकी रक्षा होजायगी, और सन्तान की इच्छा इसीलिये कीजाती है कि यह हमें आपित्त से पार करेगी, अतएव अब ऐसा अवसर पड़ने पर नाव के समान मेरे द्वारा इस आपित्त से पार होजाओ, और:-

अति च मम बालोऽयं गते लोकममुं त्विय । अचिरणैव कालेन विनश्येत न संशयः ॥ ५ ॥ पित्रा त्यक्ता तथा मात्रा आत्रा चाहमसंशयम् । दुःखाददुःखतरं प्राप्य प्रियेयमतथोचिता ॥६॥

अर्थ-मेरा यह भाई अभी वालक होने से निःसन्देह तुम्हारे परलोकगामी होजाने पर शीघ्र ही मरजायगा, और यदि मैं पिता, माता तथा भाई मे त्यागी जाउंगी तो दुःख पर दुःख पाकर बड़ी दुईशा से महंगी॥

अनाथा कृपणा वाला यत्र कचन गामिनी।
भविष्यामि त्वया तात विहीना कृपणा सदा।।।।।
अथवाहं करिष्यामि कुलस्यास्य विमोचनम्।
फलसंस्था भविष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करम्।।।।
अथवा यास्यसे तत्र त्यक्त्वा मां द्विजसत्तम।
पीडिताहं भविष्यामि तदवेक्षस्व मामिप ।।९।।

अर्थ-हे पिता ! मैं वालक तुम्हार तिना अनाथ और दीन होकर नजाने किसके यहां व्याही जाउंगी और सदा दुःखी रहुंगी, हे श्रेष्ठद्विज! एकपक्ष में मैं इस महाकठिन कार्य को करके तुम्हारे वंश को दुःख से मुक्त कर फलभागिनी वनुंगी, दूसरे पक्ष में यदि आप मुझको त्याग कर परलोक जायंगे तो मैं दुःखी रहुंगी, मो मेरी ओर भी ध्यान करें॥

तदस्मदर्थं धर्मार्थं प्रसवार्थं च सत्तम । आत्मानं पिररक्षस्व त्यक्तव्यां मां च सन्त्यज ॥१०॥ किं त्वतः परमं दुःखं यद्वयं स्वर्गते त्विय । याचमानाः परादन्नं परिधावेमहि स्ववत् ॥११॥

अर्थ-हे श्रेष्ठ पिता ! मेरे लिये, धर्म के लिये तथा सन्तान के लिये अपने आपकी रक्षा करें और मुझ त्यागने योग्य को त्याग दें, तुम्हारे स्वर्गवास होजाने पर इससे बढ़कर और क्यादुःख होगा कि हम लोग कुत्तों के समान दसरों से भीख मांगते फिरेंगे॥ 330

पहाभारत

वैशम्पायन उवाच

एवं बहुविधं तस्या निशम्य परिदेवितम् । पिता माता च सा चैव कन्या प्ररुहदुस्त्रयः ॥१२॥ ततः प्रहिदतान् सर्वान् निशम्याथ सुतस्तदा । उत्फलनयनो बालः कलमव्यक्तमत्रवीत् ॥ १३॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! इस मकार उस कन्या का अनेक रीति से विलाप सुनकर माता, पिता और वह कन्या तीनो रोने लगे, तब उन सब का रोना सुनकर वह बालक पुत्रहर्ष से मसन्न नेत्रों वाला हुआ २ इस मकार अस्पष्ट बचन बोला कि:-

मा पितः ऋन्द मा मातर्मा स्वसस्त्वित चानवीत्। प्रहसन्निव सर्वीस्तानेकैकमुपसर्पति ॥ १४ ॥ ततः स तृणमादाय प्रहष्टः युनरत्रवीत्। अनेनाहं हनिष्यामि राक्षसं पुरुषादकम् ॥ १५ ॥

अर्थ-हे पिता, हे माता, हे बहिन ! तुम रोओ मत, ऐसा कह कर मुसकराता हुआ वह एक २ के पास गया, इसके पश्चाद वह हर्ष में भरा हुआ एक तिनका उठाकर फिर बोला कि उस मनुष्य-भक्षक राक्षस को मैं इससे मार डालुंगा ॥

तथापि तेषां दुःखेन परीतानां निशम्य तत्। बालस्य वाक्यमञ्यक्तं हर्षः समभवन्महान् ॥१६॥ अयं काल इति ज्ञात्वा क्रन्ती समुपसृत्यतान् । गतासूनमृतेनेव जीवयन्तीदमब्रवीत् ॥१७॥ अर्थ-वह ऐसे दुः त्यप्रस्त होने पर मी उस बालक की अस्पष्ट-तोतली वाणी मे उक्त वात सुनकर उनको महान हर्ष हुआ, तब कुन्ती उस हर्ष के समय में उनसे बात चीत करने का उचित अवसर समझ उनके पास जाकर इस प्रकार मधुर बचन बोली कि मानो मरे हुओं को अमृत से जीवित कर रही है।

कुन्ती उवाच कृतोमूलिमदं दुःखं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः । विदित्वाप्यपक्षेयं शक्यं चेदपक्षितुम् ॥ १८ ॥

अर्थ-कुन्ती बोली कि हे ब्राह्मण ! मैं यह जानना चाहती हूं कि वास्तव में इस दुःख का मूल क्या है ? यह जानकर यदि वह इटाने योग्य हुआ तो मैं उसके इटाने का अवश्य उपाय करंगी॥

ब्राह्मण उवाच

उपपन्नं सतामेतद् यद ब्रवीषि तपोधने । न तु दुःखिमदं शक्यं मानुषेण व्यपोहितम् ॥ १९ ॥ अर्थ-ब्राह्मण बोला कि हे तपिस्वनी! जो तुम कहती हो सो सज्जनों के लिये उचित ही है परन्तु इस दुःख को कोई मनुष्य हटा नहीं सकता ॥

समीपे नगरस्यास्य वको वसति राक्षसः । ईशो जनपदस्यास्य पुरस्य च महाबलः ॥ २०॥ पृष्टो मानुषमांसेन दुर्बुद्धिः पुरुषादकः । रक्षत्यसुरराट नित्यमिमं जनपदं बली ॥ २१॥

अर्थ-इस नगर के समीप "वक" नामक एक महावली राक्षस रहता है जो इस मान्त तथा नगर का राजा है, वह दृष्टबुद्धि बलवान मनुष्याहारी राक्षमराज मनुष्य के मांस से ही पुष्ट हुआ और मदा इस मान्त की रखवाली किया करता है ॥ वेतनं तस्य विहितं शालिवाहस्य भोजनम् । महिषो पुरुषश्चेको यस्तदादाय गच्छति ॥ २२ ॥ एकेकश्चापि पुरुषस्तत्प्रयच्छति भोजनम् । स वारो बहुभिवषेभिवत्यसुकरो नेरैः ॥ २३ ॥

अर्थ—उस राक्षस का वेतन यह नियत हुआ २ है कि उसको प्रतिदिन दो भैंसे और एक मनुष्य जो उन भैंसों को लेकर जाता है भोजन के लिये मिला करे, सो प्रतिदिन एक २ मनुष्य उसको भोजन देने जाता है, इस प्रकार बारी २ से जाना बहुत वर्षों से मनुष्यों को अत्यन्त असहा होगया है ॥

तदिमोक्षाय ये केचिद् यतित पुरुषाः क्विचित् । सोऽयमस्माननुप्राप्तो वारः कुलविनाशनः ॥ २४ ॥ सपुत्रदारांस्तान् हत्वा तद्रक्षो भक्षयत्युत । भोजनं पुरुषश्चैकः प्रदेयं वेतनं मया ॥ २५ ॥

अर्थ-और जो कोई मनुष्य उससे छुड़ाने का यत्न कहीं पर करते हैं तो वह राक्षस उनको स्त्री, पुत्र समेत मारकर खा लेता है सो आज कुल का नाश करने के लिये यह हमारी बारी आगई है, मुझे भी उस राक्षस के लिये पूर्वोक्त भोजन और एक मनुष्य वेतन की भांति देना पड़ेगा ॥

गतिं चैव न पश्यामि तस्मान्मोक्षाय रक्षसः । सोऽहं दुःखार्णवे मग्नो महत्यसुकरे भृशम् ॥ २६॥

आदिपर्व-पंचित्रशाध्याय

323

सहैवैतिर्गमिष्यामि बान्धवैरद्य राक्षसम् । ततो न सहितान् श्चद्रः सर्वानेवोपभोक्ष्यति ॥ २७॥ अर्थ-में उस राक्षम से छुटने का अब कोई उपाय नहीं देखता,

अथ-में उस राक्षम से छूटने का अब कोई उपाय नहीं देखता, इसिंछिये मैं महाघोर दुःखसागर में पूर्णतया हूबा हुआ हूं, सो आज मैं अपने वन्धुओं = कुटुम्ब के सिंहत ही उस राक्षम के पास जाउंगा तब वह नीच हम सबको ही भक्षण करजायगा॥

इति चतुस्त्रिशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

कुन्ती उवाच

न विषादस्त्वया कार्यो भयादस्मात् कथंचन। उपायः परिदृष्टोऽत्र तस्मान्मोक्षाय रक्षसः ॥ १ ॥ एकस्तव स्रुतो बालः कन्या चैका तपस्विनी। न चैतयोस्तथा पत्न्या गमनं तव रोचये ॥ २ ॥

अर्थ-कुन्ती बोली कि हे ब्राह्मण ! तुम्हें इस भय से किसी प्रकार भी विषाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि भैंने उस राक्षस से छुड़ाने का उपाय सोच लिया है, देखो तुम्हारा एक ही बालक पुत्र तथा एक ही विचारी कन्या है सो इन दोनों का वा तुम्हारी स्त्री का अथवा तुम्हारा वहां जाना मैं उचित नहीं समझती॥

मम पञ्च स्रता ब्रह्मंस्तेषामेको गमिष्यात । त्वदर्थं बिलमादाय तस्य पापस्य रक्षसः ॥३॥ 328

महाभारत

अर्थ-हे ब्राह्मण ! मेरे पांच पुत्र हैं, उनमें से एक पुत्र तुम्हारे हित के लिये उस पापी राक्षस के पास उसका भोजन उकर चला जायगा॥

ब्राह्मण उवाच

नाहमेतत् करिष्यामि जीवितार्थं कथंचन ॥ ब्राह्मणस्यातिथेश्चेव स्वार्थे प्राणान् वियोजयन् ॥४॥ नत्वेतदकुर्लानासु नाधर्मिष्ठासु विद्यते । यद् ब्राह्मणार्थं विसृजेदात्मानमपि चात्मजम् ॥५॥

अर्थ-ब्राह्मण बोला कि हे धर्मपरायण ! मैं ऐसा कदापि न करुंगा कि अपने लाभ के लिये ब्राह्मण वा अतिथि का प्राण नाश करके अपना जीवन बचाऊं, और किसी ब्राह्मण के लिये अपने आत्मारूप पुत्र को त्याग देना अकुलीन स्त्रियों का काम है तुम्हारे समान धार्मिक स्त्रियों का नहीं ॥

आत्मनस्तु मयाश्रेयो बोद्धन्यमिति रोचते । ब्रह्मबध्यात्म बध्या वा श्रेयानात्मबधो मम ॥६॥ न त्वहं बधमाकांक्षे स्वयमेवात्मनःशुभे । परैः कृते बधे पापं न किंचिन्मिय विद्यते ॥७॥

अर्थ-और यह भी ज्ञात रहे कि मैं अपना मरना अधिक अच्छा मानता हूं, क्योंकि किमी ब्राह्मण=तुम्हारे पुत्र की हत्या और एक ओर मेरी आत्महत्या, इन दोनों में मेरे लिये आत्म-हत्या अधिक फलदायक है, हे भट्टे! मैं स्वयं तो अपनी हत्या की

आदिपर्व-पंचित्रशाध्याय

324

इच्छा ही नहीं करता और दूसरों के हाथ से मेरी हत्या होजाने से मुझे कुछ "आत्महत्या" का पाप भी नहीं है ॥ अभिसन्धे कृते तिस्मिन् ब्राह्मणस्य बधे मया । निष्कृतिं न प्रपश्यामि नृशंसं क्षुद्रमेव च ॥८॥ आगतस्य गृहं त्यागस्तथेव शरणार्थिनः। याचमानस्य च बधो नृशंसो गर्हितो बुधैः॥९॥

अर्थ-और यदि मैं जान बूझकर ब्राह्मण का वध कराऊं तो यह बड़ा क्रूर और निर्दय कर्म है जिसका मैं कोई प्रायश्चित्त नहीं देखता, क्योंकि अपने घर आये हुए को, शरणागत को तथा विनति करते हुए पनुष्यको परवा देनाविद्वानों नेनिन्दित कर्म कहा है॥

क्यां निन्दितं कर्म न नृशंसं कथंचन । इति पूर्वे महात्मानः आपद्धमिविदो विदुः ॥१०॥ श्रेयांस्तु सहदारस्य विनाशोद्य मम स्वयम् । ब्राह्मणस्य वधं नाहमनुमंस्य कदाचन ॥११॥

अर्थ-आपद्धर्म के जानने वाले पाचीन महात्मा कहते हैं कि निन्दित और क्रूर कर्म किसी प्रकार भी न करे, सो आज मेरा स्त्री साहित स्वयं नाश होना अच्छा है किन्तु किसी ब्राह्मण का बध करने के लिये मैं कभी अनुमति न दुंगा॥

कुन्ती उवाच

ममाप्येषा मतिर्ब्रह्मन् विप्रा रक्ष्या इति स्थिरा । न चाप्यानिष्टः पुत्रो मे यदि पुत्रशतं भवेत् ॥१२॥ न चासौ राक्षसः शक्तो मम पुत्रविनाशने । वीर्यवान मन्त्रसिद्धश्च तेजस्वी च सुतो मम ॥१३॥

अर्थ-कुन्ती वोली की हे ब्राह्मण ! मेरी भी यही सम्मित है कि ब्राह्मणों की रक्षा करनी चाहिये और यह भी बात नहीं कि मुझे अपना पुत्र प्यारा न हो, चाहे मेरे सौ पुत्र भी हों वह सभी प्रिय हैं, परन्तु बात यह है कि वह राक्षस मेरे पुत्र को मार नहीं सकता, क्योंकि मेरा पुत्र पराक्रमी, युद्धविद्या के मन्त्रों से सिद्ध तथा तेजस्वी है।

गक्षसाय च तत्सर्व प्रापिष्यित भोजनम् । मोक्षाियष्यित चात्मानिमिति मे निश्चिता मितः॥१४॥ न त्विदं केषुचिद्ब्रह्मन् व्याहर्त्तव्यं कथंचन । विद्यार्थिनो हि मे पुत्रान् विप्रकुर्युः कुत्हूलात्॥१५॥

अर्थ-मेरा यह दृढ निश्चय है कि मेरा पुत्र राक्षस के पास वह सब भोजन पहुंचा देगा और अपने आपको छुड़ा भी लेगा, हे ब्राह्मण ! यह बात तुम अन्य किन्हीं लोगों में किसी प्रकार भी न कहना, क्योंकि विद्यार्थी लोग हंसी में मेरे पुत्रों का भेद प्रकट करदेंगे॥

एवमुक्तस्तु पृथया सविप्रो भार्यया सह । इष्टः सम्पूजयामास तदाक्यममृतोपमम् ॥१६॥

अर्थ-कुन्ती के ऐसा कहने पर उस ब्राह्मण ने भार्या समेत हर्षित होकर कुन्ती के अमृत समान बचनों का परम आदर किया॥ इति पंचित्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पट्त्रिशां ऽध्यायः प्रारम्यते

वैश्वम्पायन उवाच

करिष्य इति भीमेन प्रतिज्ञातेऽथ भारत । आजग्मुस्ते ततः सर्वे भैक्षमादाय पाण्डवाः ॥१॥ आकारेणेव तं ज्ञात्वा पाण्डपुत्रो युधिष्ठिरः । रहः समुपविश्येकस्ततः पप्रच्छ मातरम् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! तव भीमसेन के वैसा करने की प्रतिज्ञा करने पश्चात वह सब पाण्डव भिक्षायें लेकर वहां आगये, तब पाण्डु का बड़ा पुत्र युधिष्ठिर भीमसेन की आकृति से ही उसका भाव जान एकान्त में विठाकर माता से पूछने लगा कि :—

किं चिकीर्षत्ययं कर्म भीमो भीमपराक्रमः। भवत्यनुमते किचत् स्वयं वा कर्तुमिच्छिमि ॥३॥

अर्थ-यह बड़े पराक्रम वाला भीमसेन क्या कार्य्य करना चाहता है और इसमें आपकी अनुमति है वा स्वयं अपनी इच्छा से ही ऐसा करने लगा है ॥

कुन्ती उवाच

ममैव वचनादेष करिष्यति परन्तपः । ब्राह्मणार्थे महत् कृत्यं मोक्षाय नगरस्य च ॥४॥ ३२८

महाभारत

अर्थ-कुन्ती बोली कि हे युधिष्ठिर ! यह श्रत्रमन्तापकारी भीम मेरी ही आज्ञा से इस ब्राह्मण के हितार्थ नशा नगर को राक्षम में छुड़ाने के लिये वड़ा कार्य करेगा ॥

युधिष्ठिर उवाच

किमिदं साहमं तीक्ष्णं भवत्या दुष्करं कृतस् । परित्यागं हि पुत्रस्य न प्रशंसन्ति साधवः ॥ ५॥ कथं परस्तस्यार्थे स्वस्तं त्यक्तुमिच्छिस । लोकवेदविरुद्धं हि पुत्रत्यागात् कृतं त्वया ॥ ६॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे माता! आपने यह क्या दुष्कर तथा कठोर माहस किया है, क्योंकि सज्जन लोग पुत्र के त्याग की प्रशंसा नहीं करते, तुम दूसरे के पुत्र के लिये अपने पुत्र को क्यों त्यागना चाहती हो? पुत्र को त्यागकर तुम लोक तथा वेद विकद्ध कर्म करोगी॥

यस्य बाहू समाश्रित्य सुखं सर्वे शयामहे। राज्यं चापहृतं श्चेद्रेराजिहीर्षामहे पुनः ॥ ७ ॥ यस्य दुर्योधनो वीर्यं चिन्तयन्नमितौजसः। न शेते रजनीः सर्वाः दुःखाच्छकुनिना सह॥ ८ ॥

अर्थ-जिस भीमसेन की भुजाओं के भरोसे पर हम लोग सुख से सोते और नीच पुरुषों से छीने हुए राज्य के फिर पाने की आशा करते हैं, और जिस महापराक्रमी के पराक्रम की चिन्ता करता हुआ शकुनि समेत दुर्योधन दुःख के मारे रात भर नहीं सोता ॥ यस्य वीरस्य वीर्येण मुक्ता जतुगृहाद्वयम्। अन्येभ्यश्चेव पापेभ्यो निहतश्च पुरोचनः ॥९॥ यस्य वीर्यं समाश्रित्य वसुपूर्णां वसुन्धराम् । इमां मन्यामहे प्राप्तां निहत्य धृतराष्ट्रजान् ॥१०॥

अर्थ-जिस वीर के पराक्रम से हम लोग लाक्षाग्रह से छूटकर अन्य क्रेशों से बचे, जिसने पुरोचन को भारा, जिसके पराक्रम के भरोसे हम लोग धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर इस धनपूर्ण पृथ्वी को पाने की इच्छा करते हैं॥

तस्य व्यवसितस्यागो बुद्धिमास्थाय कां त्वया। किचिन्तु दुःसैर्बुद्धिस्ते विलुप्ता गतनेतनः ॥११॥

अर्थ-उस भीमसेन के साग का संकल्प तुमने क्या समझ कर किया है ? क्या दुःखों के मारे विवेकहीन होने से तुम्हारी बुद्धि लुप्त तो नहीं होगई ॥

कुन्ती उवाच

युधिष्ठिर न सन्तापस्त्वया कार्यो वृकोदरे। न चायं बुद्धिदौर्बल्याद व्यवसायः कृतो मया॥१२॥

अर्थ-कुन्ती बोली कि हे युधिष्ठिर! तुम भीमसेन के लिये कुछ पश्चात्ताप मत करो और नाही मैंने यह संकल्प बुद्धि की दुर्बलता से किया है॥

इह विप्रस्य भवने वयं पुत्र सुलोषिताः। अज्ञाता धार्त्तराष्ट्राणां सत्कृता वीतमन्यवः। तस्या प्रातिक्रिया पार्थ मयेयं प्रसमीक्षिता ॥१३॥ 330

महाभारत

अर्थ-हे पुत्र युधिष्ठिर ! हम लाग इस ब्राह्मण के घर में सत्कार पाये हुए निश्चिन्त रहकर धृतराष्ट्र के पुत्रों से छिपे हुए सुलपूर्वक रहे हैं सो उस उपकार का बदला मैंने यह सोचा है ॥

एतावानेव पुरुषः कृतं यिममन्न नश्यति । यावच क्यादन्योऽस्य क्याद्वहुग्रणं ततः ॥१४॥ दृष्ट्वा भीमस्य विकान्तं तदा जतुगृहे महत्। हिडिम्बस्य बथाचैवं विश्वासो मे वृकोदरे ॥१५॥

अर्थ-"पुरुष" तभी तक है अर्थात पुरुष का पुरुषत्व इतना ही है कि जिसमें किया हुआ उपकार वृथा न जाय, प्रत्युत जितना कोई इसका उपकार करे इसको उससे कई गुणा अधिक करना चाहिये, और भीमसेन का लाक्षाभवन में बड़ा भारी पराक्रम देखकर तथा "हिडिम्ब" राक्षस के बध से मुझे इसके बल पर पूर्ण विश्वास है।।

येन यूयं गजप्रस्यानिन्यूढा वारणावतात् । वृकोदरेण सदृशो बलेनान्यो न विद्यते ॥१६॥ तद्दं प्रज्ञया ज्ञात्वा बलं भीमस्य पाण्डव । प्रतिकार्ये च विप्रस्य ततः कृतवती मित्रम् ॥१७॥

अर्थ-जिसने हाथी जैसे महाकाय तुम लोगों को वारणावत से यहां तक उठा २ कर पहुंचाया उस भीमसेन के समान वल में दूसरा कोई महीं है, हे पाण्डवो ! सो मैंने अपनी बुद्धि से भीम-सेन का ब्रेल जानकर ब्राह्मण के प्रत्युपकार के लिये संकल्प करिलया है ॥ नेदं लोभान्नचाज्ञानान्नच मोहाद्विनिश्चितम् । बुद्धिपूर्वं तु धर्मस्य व्यवसायः कृतो मया ॥१८॥ अर्थो द्वाविप निष्पन्नो युधिष्ठिर भविष्यतः । प्रतीकारश्च वासस्य धर्मश्च चिरतो महान् ॥१९॥

अर्थ-मैंने यह संकल्प न तो लोभ से किया, न अज्ञान से और नाही मोह से किया है किन्तु सोच समझकर धर्मपूर्वक यह उद्योग करने को उद्यत हुई हूं, हे युधिष्ठिर ! इससे दो प्रयोजन सिद्ध होंगे, एक तो ब्राह्मण के घर में निवास का बदला, दूसरे महान्द्रधर्म का आचरण अर्थाद नगरवासियों की रक्षा होगी॥

यो ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्याद्र्येषु किहिनित्। क्षत्रियः स शुभां होकान् प्राप्नुयादिति मे मितः॥२०॥ क्षत्रियस्यैव कुर्वाणः क्षत्रियो वधमोक्षणम्। विपुलां कीर्त्तिमाप्नोति लोके असमिश्च परत्र च॥२१॥

अर्थ-मेरा यह निश्चय है कि जो क्षत्रिय कदाचित ब्राह्मण की सहायता किसी बात में करे तो वह उत्तम जन्मों को प्राप्त होता है तथा क्षत्रिय ही यदि अन्य क्षत्रिय को मरने से बचा देवे तो वह भी इस जन्म और परजन्म में भी भारी यश का लाभ करता है ॥

वैश्यस्यार्थे च साहाय्यं कुर्वाणः क्षत्रियो भुवि । स सर्वेष्विप लोकेषु प्रजा रञ्जयते भ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्रृद्धं तु मोचयेद्राजा शरणार्थिनमागतम् । प्राप्नोतीह कुले जन्म सदद्वये राजप्रजिते ॥ २३ ॥ 333

महाभारत

अर्थ-इसी मकार यदि क्षत्रिय इस भूमि पर वैक्य की सहा-यता करे तो वह सब अवस्थाओं में अपनी मजाओं को मसन्न कर सकता है, और यदि राजा क्षरणमें आये हुए शूद्र को भी आपत्ति से छुड़ादे तो वह इस संसार में धनपूर्ण तथा राजा से सत्कार किये हुए कुल में जन्म पाता है ॥

एवं मां भगवान् व्यासः पुरा पौरवनन्दन । प्रोवाचासुकरप्रज्ञस्तस्मादेवं चिकीषितम् ॥ २४॥

अर्थ-हे पुरुवंशियों को आनन्द देने वाले पुत्र ! महाबुद्धिमान् भगवान् व्यास ने इस प्रकार मुझे पहले उपदेश किया था,इसलिये मैंने ऐसा करने का संकल्प किया है॥

इति षट्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

युधिष्ठिर उवाच उपपन्निमदं मातस्त्वया यद् बुद्धिपूर्वकम् । आर्त्तस्य ब्राह्मणस्यैतद् कृतोशादिदं कृतम् ॥ १॥ ध्रुवमेष्यति भीमोऽयं निहत्य पुरुषाद्कम् । सर्वथा ब्राह्मणस्यार्थे तद्वकोशवत्यसि ॥ २॥

अर्थ-युधिष्ठिर वोले कि हे माता ! तुमने जो सोच समझकर दयाभाव से इस दुःखी ब्राह्मण के लिये किया है सो ठीक है, यह भीमसेन उस मनुष्यभक्षक राक्षस को मारकर अवस्य ही लीट आयेगा, सो तुमने इस ब्राह्मण के ऊपर सर्वथा ही कृपा की है।। यथा त्विदं न विन्देयुर्नरा नगरवासिनः । तथायं ब्राह्मणो वाच्यः परिग्राह्मश्च यव्रतः ॥ ३॥

अर्थ-परन्तु जिसप्रकार नगरवासी इस समाचार को न जानने पार्वे ऐसा इस ब्राह्मण को समझाकर यत्नपूर्वक इस पर अनुग्रह करें॥

वैशम्पायन उवाच

ततो रात्र्यां व्यतीतायामन्नमादाय पाण्डवः । भीमसेनो ययो तत्र यत्रासो पुरुषादकः ॥ ४ ॥ आसाद्य तु वनं तस्य रक्षसः पाण्डवो बली । आजुहाव ततो नाम्ना तदन्नमुपपादयन् ॥ ४ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब रात बीत जाने पर पाण्डुपुत्र भीमसेन अन्न लेकर वहां गया जहां वह मनुष्य-भक्षक राक्षस था, वलवान पाण्डव ने उस राक्षसके वन में पहुंचकर उसको उसके नाम से पुकारा और उस अन्न को वहां रखदिया॥

ततः स राक्षसः कुद्धो भीमस्य बचनात्तदा । आजगाम सुसंकुद्धो यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥६॥ भुञ्जानमन्नं तं दृष्ट्वा भीमसेनं स राक्षसः । निवृत्य नयने कुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

अर्थ-तब भीमसेन के बचन से कोध में भरा हुआ वह राक्षस वहां आया जहां कोधयुक्त भीमसेन बैठा हुआथा,वह राक्षस भीमसेन को अन्न खाता हुआ देख क्रोधसे आंखें फाड़कर बोला कि:-

कोऽयमन्नामिदं अङ्क्ते मदर्थमुपकित्पतम् । पश्यतो मम दुर्बुद्धिर्यियासुर्यमसादनम् ॥ ८॥ भीमसेनस्ततः श्रुत्वा प्रहसन्निव भारत । राक्षसं तमनादृत्य भुङ्क एव पराड्सुखः ॥ ९॥

अर्थ-यह कौन दुर्नुद्धि है जो मेरे देखते २ मेरे निमित्त आये हुए अन को खाकर मृत्युलोक में जाना चाहता है. हे भरतवंशी राजन !भीमसेन मुसकराता हुआ उसकी वात सुनकर भी उस राक्षम का आदर न करके मुख फेरकर खाता ही रहा॥

खं स भैरवं कृत्वा समुद्यम्य करावुभौ । अभ्यद्रवद् भीमसेनं जिघांसुः पुरुषादकः ॥ १०॥ तथापि परिभूयेनं प्रेक्षमाणो वृकोदरः । राक्षसं भुङ्क एवान्नं पाण्डवः परवीरहा ॥ ११॥

अर्थ-वह मनुष्यभक्षक राक्षस मारने की इच्छा से अयंकर कोलाहल करता हुआ दोनों हाथ उठाकर भीमसेन की ओर दौड़ा परन्तु वीर शत्रुओं का नाशक पाण्डव भीमसेन राक्षस की ओर देखता हुआ भी उसका तिरस्कार करके अन्न खाता ही रहा ॥

अमर्षेण तु संपूर्णः कुन्तीपुत्रं वृकोद्रम् । जघान पृष्ठे पाणिभ्यामुभाभ्यां पृष्ठतः स्थितः॥१२॥ तथा बलवताभीमः पाणिभ्यां भृशमाहतः । नैवावलोकयामास राक्षसं भुंक्त एव सः ॥१३॥

अर्थ-तब क्रोध में भरे हुए राक्षस ने पीछे की ओर खड़े रहकर कुन्तीपुत्र भीमसेन की पीठ पर दोनों हाथ पटक कर मारे, ऐसे वलवान राक्षस के हाथों की बार २ चोट लगने पर भी भीमसेन इसकी ओर न देखकर उस अन्न को खाता ही रहा ॥ ततः स भ्यः संकुद्धो वृक्षमादाय राक्षसः । ताडियष्यंस्तदा भीमं पुनरभ्यद्रवद्वली ॥ १४ ॥ ततो भीमः शनैभुक्ता तदन्नं पुरुषर्पभः । वार्श्वपस्पृत्रय संहष्टस्तस्थी युधि महाबलः ॥ १५ ॥

अर्थ-इस पर वह बलवान राक्षस फिर क्रोध में भरा हुआ मीमसेन को मारने के लिये वृक्ष उठाकर उसकी ओर दौड़ा तब महाबली भीमसेन धीरे २ उस अन्न को खाकर जल सेआच-मन करके प्रसन्न होकर युद्ध के लिये खड़ा होगया ॥

ततः स पुनरुद्यम्य वृक्षान् बहुविधान् बली । प्राहिणोद्भीमसेनाय तस्मै भीमश्च पाण्डवः ॥१६॥ तद्वृक्षयुद्धमभवन्महीरुहविनाशनम् । घोरूपं महाराज नरराक्षसराजयोः ॥ १७॥

अर्थ-तव उसवलवान राक्षस ने अनेक वृक्ष उठा २ कर भीमसेन पर फेंके तथा इधर पाण्डुपुत्र भीमसेन ने भी उस पर फेंके, है महाराज ! राजा भीमसेन तथा राक्षसराज "वक" का वह घोर वृक्षयुद्ध हुआ जो वृक्षों का नाश करने वाला था ॥ नाम विश्राब्य तु बकः समिभिद्वत्य पाण्डवम् ।

भुजाभ्यां परिजग्राह भीमसेनं महाबलम् ॥१८॥ भीमसेनोऽपि तद्रक्षः परिरभ्य महाभुजः । विस्फुरन्तं महावाहुं विचकर्ष वलाद्बली ॥१९॥

अर्थ-तदनन्तर वह "वक" राक्षस अपना नाम सुनाकर पाण्डुपुत्र भीमसेन की ओर दौड़ा और उसने महाबली भीमसेन को दोनों भुजाओं के बीच लेकर पकड़िल्या, बड़ी भुजाओं वाले वलवान् भीमसेन ने भी उस फड़कते हुए महावाहु राक्षस को बलपूर्वक आलिज्जन करके भुजाओं में दबा लिया ॥

स कृष्यमाणो भीमेन कर्षमाणश्च पाण्डवस् । समयुज्यत तीत्रेण क्रमेण पुरुषादकः ॥२०॥ तयोर्वेगेन महता पृथिवी समकम्पत । पादपांश्च महाकायांश्चूर्णयामासतुस्तदा ॥२१॥

अर्थ-वह मनुष्यभक्षक राक्षस कभी भीमसेन से खेंचा जाता और कभी भीमसेन को अपनी ओर खेंच छेता था,इस प्रकार उसने तीव्र चाल धारण की, उन दोनों के बड़े वेग से वहां की पृथ्वी कांपने लगी और उन्होंने बड़े २ वृक्षों को चूर २ कर डाला॥

हीयमानं तु तदक्षः समीक्ष्य पुरुषादकम् । निष्पिष्य भूमौ जानुभ्यां समाजन्ने वृकोदरः ॥२२॥ ततोऽस्य जानुना पृष्ठमवपीड्य बलादिव । बाहुना परिजग्राह दक्षिणेन शिरोधराम् ॥२३॥

अर्थ-भीमसेन ने जब देखा कि वह मनुष्याहारी राक्षस हारने लगा तब उसको पृथ्वी पर दबाकर दोनों गोड़ों से आघात किया तथा बलपूर्वक एक गोड़े से उसकी पीठ दबाकर दहनी भुजा से उसकी गर्दन पकड़ली, और:—

सब्येन च कटीदेशे गृह्य वासिस पाण्डवः। तद्रधो द्विष्ठणं चक्रे रुवन्तं भैरवं रवम्।।२४॥

आदिपर्व-अष्टींत्रशाध्याय

339

ततोऽस्य रुधिरं वक्रात्पादुरासीद्विशाम्पते । भज्यमानस्य भीमेन तस्य घोरस्य रक्षसः ॥२५॥

अर्थ-वायें हाथ से उस चिछाते हुए राक्षस को वस्त्र समेत कटि स्थान से पकड़कर उसके शरीर को दुहरा करिदया, है राजन ! तब भीमसेन के हाथ से भन्न हुए २ उस भयानक राक्षस के मुख से रुधिर वहने लगा ॥

इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टत्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः स भगपार्श्वाङ्गो निद्त्वा भैरवं खम् । शैलराजप्रतीकाशो गतासुरभवद् बकः ॥१॥ तेन शब्देन वित्रस्तो जनस्तस्याथ रक्षसः । निष्पपात गृहाद्राजन् सहैव परिचारिभिः ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तव वह पर्वत के समान
महाकाय "वक" राक्षम पसिलयें और अङ्गों के टूट जाने से भयानक शब्द करके प्राणहीन होगया, हेराजन !तब उस महान कोलाहल से डरे हुए उस राक्षम के बन्धु लोग भी अपने सेवकों समेत
घर से भागने लगे ॥

तान् भीतान् विगतज्ञानान् भीमः प्रहरतांवरः । सान्त्वयामास बलवान् समये च न्यवेशयत् ॥३॥

न हिंस्या मानुषा भूयो युष्माभिरिति कर्हिचित्। हिंसतां हि बधः शीघ्रमेवमेव भवेदिति ॥ ।।

अर्थ-तत्पश्चात पराक्रमी भीमसेन ने उनको डरे हुए तथा वेसुध हुए २ देखकर धैर्य दिया और उनसे यह नियम करालिया कि अब तुम्हें फिर कभी मनुष्यों को नहीं मारना होगा, यदि मारोगे तो शीघ इसी प्रकार तुम्हारा भी वध कियाजायगा ॥

तस्य तद्धचनं श्रुत्वा तानि रक्षांसि भारत ।
एवमित्वित तं प्राहुर्जगृहुः समयं च तस् ॥५॥
ततः प्रभृति रक्षांसि तत्र सौम्यानि भारत ।
नगरे प्रत्यहश्यन्त नरैर्नगरवासिभिः ॥६॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! भीमसेन की उक्त बात सुनकर उन राक्षसों ने कहा कि ऐसा ही होगा, तभी से उन्होंने उस नियम को भी स्वीकार करिल्या, और तब से उस नगर के वासियों ने उन राक्षसों को सभ्यतापूर्ण अपने नगर में देखा ॥

ततो भीमस्तमादाय गतासुं पुरुषादकम् । द्वारदेशे विनिक्षिप्य जगामानुपलक्षितः ॥ ७ ॥ ततः स भीमस्तं हत्वा गत्वा ब्राह्मणवेश्म तत् । आचचक्षे यथावृत्तं राज्ञः सर्वमशेषतः ॥ ८ ॥

अर्थ-तव भीमसेन उस मरे हुए मनुष्याहारी राक्षस को उठा नगर के द्वार पर फेंककर गुप्तक्ष्य से चला गया, उस राक्षस को मारने के पश्चाद भीमसेन ने उस ब्राह्मण के घर पहुंचकर जो २ वृत्तान्त उस नगर के राजा राक्षस के साथ हुआ था सब पूर्णतया कह सुनाया ॥

ततो नरा विनिष्कान्ता नगरात कल्यमेव तु । ददृश्यनिंहतं भूमो राक्षसं रुधिरोक्षितम् । एकचकां ततो गत्वा प्रवृत्तिं प्रदृदुः पुरे ॥ ९ ॥

अर्थ-इसके पश्चात प्रातःकाल होते ही ज्योंही मनुष्य नंगर के बाहर जाने को निकले त्योंही उन्होंने रुधिर से सने हुए मृतक राक्षस को भूमी पर पड़ा हुआ देखा, तब उन्होंने "एकचका" नगरी में जाकर यह सब समाचार फैला दिया ॥

ततः सहस्रशो राजन्नरा नगरवासिनः । तत्राजग्मुर्वकं द्रष्टुं सस्त्रीवृद्धकुमारकाः ।। १० ॥ ततः प्रगणयामासुः कस्य वारोऽद्य भोजने । ज्ञात्वा चागम्य तं विप्रं पप्रच्छुः सर्व एव ते ॥११॥

अर्थ-हे राजन ! तव नगर के रहने वाले सहस्रों पुरुष स्त्रियां और वालक उस "वक" राक्षस को देखने के लिये वहां आगये, तदनन्तर उन सब ने गिन्ती की कि आज राक्षस को भोजन खिलाने की किसकी वारी है, पश्चाद उस ब्राह्मण की बारी जानकर उसके समीप आकर सब पूछने लगे॥

एवं पृष्टः स बहुशो रक्षमाणश्च पाण्डवात् । उवाच नागरान् सर्वानिदं विप्रपेभस्तदा ॥ १२ ॥ आज्ञापितं मामशने रुदन्तं सह बन्धुभिः । ददर्श ब्राह्मणः कश्चिन्मन्त्रसिद्धो महामनाः ॥१३॥

महाभारत

अर्थ-इस प्रकार बहुतवार पूछने पर वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पाण्डवों की रक्षा करता हुआ उन सब नगरवासियों से इस प्रकार बोलाकि राक्षस को भोजन खिलाने की जब मुझे आज्ञा मिली तो एक मन्त्रसिद्ध महातेजस्वी ब्राह्मण ने मुझे अपने बन्धुओं समेत रोते देखा॥

परिष्टच्छ्य स मां पूर्व परिक्केशपुरस्य च । अन्नवीद् न्नाह्मणश्रेष्ठो विश्वास्य प्रहसन्निव ॥१४॥ प्रापियच्याम्यहं तस्मा अन्नमेतद् दुरात्मने । मन्निमित्तं भयं चापि न कार्यमिति चान्नवीत् ॥१५॥

अर्थ-उस श्रष्ठ ब्राह्मण ने पहले मुझसे मेरा और इस नगर का कष्ट पृछा और तब उसने मुझे धैर्य देकर मुसकराते हुए कहा कि उस दुष्ट राक्षस के पास में उसका अन्न पहुंचादृंगा, और मेरे लिये तुम्हें कुछ भय नहीं करना चाहिये॥ स तदन्रमुपादाय गतो बकवनं प्रति। तेन नूनं भवेदेतत् कर्म लोकहितं कृतम्।।१६॥

ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च सुविस्मिताः । वैश्याः शुद्राश्च सुदिताश्चकुर्बह्ममहं तदा ॥१७॥

अर्थ-वह ब्राह्मण अन्न लेकर "वक" राक्षस के वन की ओर गया था, सो उसीने यह लोकहितकारी काम किया होगा, तब अचिम्भत हुए २ उन सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों ने आनन्दित होकर उस ब्राह्मण का सत्कार किया॥ ततो जानपदाः सर्वे आजग्मुनगरं प्रति।

तद्रुततमं दृष्ट्वा पार्थास्त्रत्रेव चावसन् ॥१८॥

आदिपर्व-एकोनचत्वारिंशाध्याय

389

अर्थ-इसके पश्चात वह सब लोग नगर में लौट आये और पाण्डव लोग इस आश्चर्ययुक्त घटना को देखते हुए वहीं पर रहे॥

इति अष्टत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारभ्यते

जनमेजय उवाच

ते तथा पुरुषव्याघा निहत्य बकराक्षसम् । अत ऊर्ध्वं ततो ब्रह्मन् किमकुर्वत पाण्डवाः ॥१॥ अर्थ-जनमेजय बोले कि हे ब्रह्मन् ! उनिसंहपुरुष पाण्डवों ने इस प्रकार "बक" राक्षस को मारने के पश्चात क्यार किया ?॥

वैशम्पायन उवाच

तथैव न्यवसन् राजन् निहत्य बकराक्षसम् । अधीयाना परंब्रह्म ब्राह्मणस्य निवेशने ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह लोग "बक" राक्षस को मारने के पश्चाद भी इसी प्रकार वेटपाट करते हुए उस ब्राह्मण के घर निवास करते रहे ॥

ततः कतिपयाहस्य ब्राह्मणः शंसितव्रतः । प्रतिश्रयार्थी तद्वेश्म ब्राह्मणस्याजगाम ह ॥३॥ स सम्यक् प्रजायत्वा तं विप्रं विप्रर्पभस्तदा । ददौ प्रतिश्रयं तस्मै सदा सर्वातिथिवृतः ॥४॥

महाभारत

अर्थ-तदनन्तर कुछ दिनों पश्चात एक प्रशंसनीय व्रतधारी ब्राह्मण उस ब्राह्मण के घर रहने के लिये आया, तब संपूर्ण अतिथियों के भक्त उस श्रेष्ठ द्विज ने उक्त अतिथि ब्राह्मण का भलीभांति सत्कार करके उसको अपने घर में आश्रय दिया ॥

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सहकुन्त्या नर्षभाः । उपासांचिकिरे विप्रं कथयन्तं कथाः शुभाः ॥५॥ कथयामास देशांश्च तीर्थानि सरितस्तथा । राज्ञश्च विविधाश्चर्यान् देशांश्चैव पुराणि च ॥६॥

अर्थ-तब वह उत्तम पुरुष पाण्डव कुन्ती समेत उस उत्तमो-त्तम कथायें कहने वाले ब्राह्मण के सभीप बैठ गये, उसब्राह्मण ने विविध देशों, तीर्थों, निद्यों, राजाओं, भांति २ के आश्चरयुक्त स्थानों और नगरों का वर्णन किया ॥

स तत्राकथयदिप्रः कथान्ते जनमेजय । पश्चालेष्वदुताकारं याज्ञसेन्याः स्वयंवरम् ॥७॥

अर्थ-हे जनमेजय! उस ब्राह्मण ने कथा के अन्त में पाञ्चाल देश के राजा यहसेन की पुत्री द्रौपदी के भावी आश्चर्यमय स्वयंवर का भी वर्णन किया॥

ततस्ते नरशार्दृला भ्रातरः पश्च पाण्डवाः । प्रययुद्रीपदीं द्रष्टुं तं च देशं महोत्सवम् ॥ ८ ॥ ते प्रयाता नरव्याघाः सहमात्रा परन्तपाः । ब्राह्मणान् ददृशुर्मार्गे गच्छतः सङ्गतान्बहून् ॥ ९ ॥

आदिपर्व-एकोनचत्वारिंशाध्याय ३४३

अर्थ-तदनन्तर वह पांचो भाई पाण्डव द्रौपदी तथा उस महान आनन्दपूर्ण देश को देखने के छिये चछे, माता समेत जाते हुए उन शञ्च संतापकारी पाण्डवों ने मार्ग में इकट्ठे जाते हुए बहुत से ब्राह्मणों को देखा।

त उच्चर्वाह्मणा राजन् पाण्डवान् ब्रह्मचारिणः। क्य भवन्तो गमिष्यन्ति कृतो वाऽभ्यागता इह॥१०॥

अर्थ-हे राजन ! उन ब्राह्मणों ने ब्रह्मचारियों का वेश धारण किये हुए पाण्डवों से पृछा कि आप लोग कहां जायंगे और कहां से आये हैं ? ॥

युधिष्टिर उवाच

आगतानेकचकायाः सोदर्यानेकचारिणः । भवन्तो वै विजानन्तु सहमात्रा द्विजर्षभाः ॥ ११ ॥

अर्थ-युघिष्टिर वोले कि हे द्रिजश्रेष्टो ! हम लोग एक साथ विचरने वाले माता समेत सब भाई "एकचका" नगरी से आये हैं, ऐसा आप लोग जानें॥

ब्राह्मणा ऊचुः

गच्छताद्येव पात्रालान् द्वपदस्य निवेशने । स्वयंवरो महांस्तत्र भविता सुमहावनः ॥ १२ ॥ एकसार्थप्रयाताः स्म वयं तत्रेव गामिनः । तत्र ह्यद्भुतसंकाशो भविता सुमहोत्सवः ॥ १३ ॥

अर्थ-वह ब्राह्मण वोले कि तुम लोग आज ही पाञ्चालदेश में राजा हुपद के घर चलो, क्योंकि वहां भारी धनपूर्ण एक स्वयंवर महाभारत

होगा, हम लोग भी इकट्टे होकर वहीं जारहे हैं, वहां परम आश्चर्य-युक्त महान उत्सव होने वाला है ॥

यज्ञसेनस्य दुहिता द्रुपदस्य महात्मनः । दर्शनीयानवद्याङ्गी सुकुमारी मनस्विनी ॥१४॥ यज्ञसेनस्य च सुतां स्वयंवरकृतक्षणाम् । गच्छामो व वयं द्रष्टुं तं च दिव्यं महोत्सवस्॥१५॥

अर्थ-यहसेन जिसको महात्मा दुपद भी कहते हैं उस राजा की पुत्री दर्शनीय,निर्दोष अङ्गों वाली, कोमल शरीर वाली तथा विदुषी है, उस यहसेन की पुत्री के लिये यह स्वयंवर उत्सव किया गया है सो हम लोग उस कन्या तथा उस अद्भुत उत्सव को देखने के लिये जारहे हैं॥

राजानो राजपुत्राश्च यज्वानो भूरिदक्षिणाः । स्वाध्यायवन्तः शुचयो महात्मानो यतत्रताः ॥१६॥ तरुणा दर्शनीयाश्च नानादेशसमागताः । महारथाः कृतास्त्राश्च समुपेष्यन्ति भूमिपाः ॥१७॥

अर्थ-वहां पर यज्ञ करने वाले तथा बड़ी २ दक्षिणायें देने बाले, स्वध्यायशील, सदाचारी ब्रतधारी, युवा और सुन्द्र रूप बाले, बड़े २ योद्धा तथा अस्त्रविद्या के ज्ञाता महात्मा राजा लोग और राजकुमार भिन्न २ देशों से आयेंगे, और:—

नटा वैतालिकास्तत्र नर्त्तकाः सूतमागधाः । नियोधकाश्च देशेभ्यः समेष्यन्ति महाबलाः ॥१८॥ एवं कातृहलं कृत्वा दृष्ट्वा च प्रतिगृह्य च । सहास्माभिमहात्मानः पुनः प्रतिनिवर्त्स्यथ ॥१९॥

अर्थ-वहां पर नट, स्तुतिपाठक, नृत्य करने वाले, स्तूत, मागंध तथा महावली योद्धा लोग भी देश देशान्तरों से आयेंगे, हे
महात्माओ ! इस प्रकार वहां मनोरञ्जक जत्सव देखकर और
भिक्षा ग्रहण करके तुम लोग हमारे ही साथ लौट आना ॥
दर्शनीयांश्च वः सर्वान् देवरूपानवस्थितान् ।
समीक्ष्य कृष्णा वरयत्सङ्गत्येकतमं वरम् ॥२०॥
अयं भ्राता तव श्रीमान् दर्शनीयो महाभुजः ।
नियुज्यमानो विजयेत् संगत्या द्रविणं बहु ॥२१॥

अर्थ-कदाचित दैवयोग से तुम सबको दिन्यक्प तथा दर्शनीय देखकर तुम में से किसी एक को द्रौपदी वर छेवे, यह तुम्हारा भाई "अर्जुन" शोभायुक्त, दर्शनीय तथा बढ़ी भुजाओं वाठा है, यदि दैवयोग से इसके साथ संयोग होजाय तो यह बहुत धन को विजय करेगा ॥

युधिष्ठिर उवाच

परमं भो गमिष्यामो द्रष्टं चैव महोत्सवम् ।
भवद्भिः सहिताः सर्वे कन्यायास्तं स्वयंवरम् ॥२२॥
अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे ब्राह्मणो ! हम लोग आप लोगों
के साथ उम परम महोत्सव तथा उस कन्या के स्वयंवर को देखने
के लिये अवश्य चलेंगे ॥

इति एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ताः प्रयातास्ते पाण्डवा जनमेजय । राज्ञा दक्षिणपात्रालान्द्रपदेनाभिरक्षितान् ॥१॥ ततस्तेषु महात्मानं शुद्धात्मानमकल्मषम् । दृहशुः पाण्डवा वीरा मुनिं द्वैपायनं तदा ॥ २॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! वह पाण्डब ऐसा कहकर दक्षिणी पाञ्चालदेश में गये जहां राजा द्रुपद राज्य करता था, वहां पर उन वीर पाण्डवों ने निष्पाप महात्मा ज्यास मुनि के दर्शन किये॥

तस्मै यथावत् सत्कारं कृत्वा तेन च सत्कृताः । कथान्ते चाभ्यनुज्ञाताः प्रययुर्द्वपदक्षयम् ॥३॥ पश्यन्तो रमणीयानि वनानि च सरांसि च । तत्र तत्र वसन्तश्च शनैर्जग्मुर्महारथाः ॥४॥

अर्थ-उन लोगों ने वहां व्यासजी का सत्कार किया और उन्होंने व्यासजी से सत्कार पाया, पश्चात कथा के समाप्त होने पर वह व्यासजी से आज्ञा लेकर राजाद्रुपद के घर की ओर चलादिये, वह महायोद्धा रमणीय वन तथा तालाव देखते और जहां तहां ठहरते हुए थीरे २ चले ॥

स्वाध्यायवन्तः शुचयो मधुराः प्रियवादिनः।

आनुपूर्व्येण संप्राप्ताः पञ्चालान्पाण्डनन्दनाः ॥५॥ ते तु दृष्ट्वा पुरं तच्च स्कन्धावारं च पाण्डवाः । कुम्भकारस्य शालायां निवासं चिकरे तदा ॥६॥

अर्थ-वह स्वाध्यायशील, सदाचारी, सुन्दर तथा मधुरभाषी पाण्डव यथाक्रम पाञ्चाल देशमें प्रविष्ट हुए और उन्होंने उस नगर तथा स्कन्धावार=मैनिकस्थान को देखने के पश्चात किसी कुम्हार के घर डेरा किया ॥

तत्र भेक्ष्यं समाजहुर्बाह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः । तान् सम्प्राप्तांस्तथा वीरान्जि होरे न नराः स्विचत्।।७।। यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने । कृष्णां दद्यामिति सदा नचतद् विवृणोति सः।।८॥

अर्थ-वहां वह लोग ब्राह्मणों के समान भिक्षावृत्ति धारण किये हुए निर्वाह करते रहे और वहां किसी ने भी उन वीरों को आया हुआ नहीं जाना, यज्ञसेन की सदा यह इच्छा रहती थी कि मैं अपनी पुत्री कृष्णा=द्रौपदी का विवाह पाण्डुपुत्र अर्जुन के साथ करूं परन्तु वह इस बात को प्रकाशित नहीं करता था॥

सोऽन्वेषमाणः कौन्तेयं पाञ्चाल्यो जनमेजय।

हढं धनुरनानम्यं कारयामास भारत।।९॥

यंत्रं वैहायसं चापि कारयामास कृत्रिमम्।

तेन यन्त्रेण समितं राजा लक्ष्यं चकार सः ॥१०॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजा जनमेजय ! उम पांचालदेशके राजा

महाभारत

द्रुपद ने कुन्तीपुत्र अर्जुन को दूड़ने के लिये एक महा कठोर धनुष बन-बाया जो किसीसे द्रुक नहीं सकताथा तथा उसने एक आकाशीययंत्र भी बनवाया और उस यन्त्र के साथ जुड़ा हुआ एक लक्ष्य=नि-शाना नियत करके:—

दुपद उवाच

इदं सज्यं धनुः कृत्वा संजैरेभिश्च सायकैः। अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिति ॥११॥

अर्थ-द्रुपद ने यह प्रतिक्वा की कि जो पुरुष इस धनुष की चढ़ा के इन्हीं बाणों को उसमें लगाकर इस लक्ष्य की वीधिगा वहीं मेरी पुत्री को वरेगा ॥

वैशम्पायन उवाच

इति स दुपदो राजा स्वयंवरमधोषयत् ।

तच्छूत्वा पार्थिवाः सर्वे समीयुस्तत्र भारत ॥ १२ ॥

ऋषयश्च महात्मानः स्वयंवरदिदृक्षवः ।

दुर्योधनपुरोगाश्च सकर्णाः क्रुरवो नृप ॥ १३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे भारतीय राजन ! इस मकार राजा दुपद ने स्वयंवर की सब स्थानों में घोषणा करदी अर्थाद दिंदोरा फिरवा दिया, यह सुनकर वहां पर सब राजा आये, हे राजन ! वहां पर महात्मा ऋषिलोग तथा कर्ण को साथ लिये दूप दुर्योधनादिक कुरुवंशी लोग भी स्वयंवर देखने के लिये आपहुंचे ॥ ततोर्चिता राजगणा दुपदेन महात्मना ।

उपोपविष्टाः मञ्जेषु द्रष्टुकामाः स्वयंवरम् ॥ १४ ॥

आदिपर्व-चत्वारिशाध्याय

386

प्रायत्तरेण नगराद् भूमिभागे समे शुभे । समाजवाटः शुशुभे भवनैः सर्वतो वृतः ॥ १५ ॥

अर्थ-तदनन्तर वह राजाओं के ममुदाय महात्मा द्रुपद राजा से सत्कृत हुए स्वयंवर देखने के टिये मंचों पर पाम २ बैठ गये, नगर की पूर्वोत्तर दिशा में प्रीयवी के मुन्दर समभाग पर उस राजसमाज के लिये एक आतिरमणीय वाग में सब ओर राजभवन बने हुए थे।

प्राकारपरिखोपेतो द्वारतोरणमण्डितः । वितानेन विचित्रेण सर्वतः समलङ्कृतः ॥ १६ ॥ तूर्योघशतसङ्कीर्णः पराद्धर्यागुरुपूपितः । चन्दनोदकसिक्तश्च माल्यदामोपशोभितः ॥ १७ ॥

अर्थ-उस बाग के चारो ओर कोट तथा खाई और उसका द्वार तोरण तथा बन्दनवारों से सजाया हुआ था, वह बाग विचित्र मकार के तम्बू और शामियानों से सब ओर शोभायमान था,वहां सैकड़ों बाजे बज रहे थे तथा उत्तम अगर की धूप से महक रहा था, उसमें चन्दन के जठ से छिड़काव होता और फूठों की मालाओं से सुशोभित था॥

कैलासशिखरप्रख्येर्नभस्तलिकेखिभिः । सर्वतः संवृतः शुभ्रैः प्रासादैः स्रकृतोल्ल्येः ॥ १८॥ स्रवर्णजालमंवीतेर्मणिकोट्टमभूषितेः । स्रवारोहणसोपानेर्महासनपरिच्छदैः ॥ १९॥ महाभारत

अप्राम्यसमबच्छनेरगुरूत्तमवासितैः । हंसांशुवर्णेर्बहुभिरायोजनसुगन्धिभः ॥ २० ॥ असंवाधशतदारैः शयनासनशोभितैः । बहुधातुपिनद्धाङ्गेर्हिमवच्छिखरैरिव ॥ २१ ॥

अर्थ—वह मभास्थान सब और पुण्यराशियों के समान बहेर उंचे श्वेत महलों से सुशोभित था जो कैलाश पर्वत के शिखर समान आकाश मण्डल से वातें करते थे,वह महल सोने के झरोखों से युक्त, मणियों से गच की हुई भूमि बाले, सुखपूर्वक चढ़ने योग्य सीढ़ियों वाले तथा बहे र आसन और सामान से भरपूर थे, नागरिक लोगों से बसे हुए उत्तम अगर की धूप से सुगन्धित तथा सूर्य की किरणों के समान रंग वाले, चार कोस तक सुगन्धि पहुंचाने वाले अनेक महलों से वह सभामण्डप शोभायमान था, जिनमें सैकड़ों विशाल द्वार थे, वह भवन शय्याओं और आसनों= फरशों से सुशोभित हुए र मानो नाना प्रकार की धातुओं से संयुक्त हिमालय की चोदियें थीं।।

तत्र नानाप्रकारेषु विमानेषु स्वलंकृताः ।
स्पर्छमानास्तदान्योन्यं निषेदुःसर्वपार्थिवाः ॥२२॥
तत्रोपविष्टान् दृहशुर्महासत्त्वपराक्रमान् ।
राजसिंहान्महाभागान् कृष्णाग्रक्षविभूषितान् ॥२३॥

अर्थ-वह भवन जो नाना प्रकार के विमानों=सात सहनों वाले थे उनमें अलंकत हुए सब राजा लोग एक दूसरे से वह चढ़कर बैठ गये, वहां बैठे हुए बड़े २ बलजाली, पराक्रमी तथा महाभाग्यवान राजा लोग अनेक गकार की सुगन्धों से भृषित हुए सिंह समान दिखाई देते थे॥

मञ्जेषु च परार्छेषु पौरजानपदा जनाः । कृष्णादशनसिद्धचर्यं सर्वतः समुपाविशन् ॥२४॥ बाह्मणैरते च सहिताः पाण्डवाः समुपाविशन् । ऋदिं पञ्चालराजस्य परयन्तस्तामनुत्तमाम् ॥२५॥

अर्थ-पुर और मान्त के रहने वाले लोग भी उत्तम मंचों पर ट्रोपदी को देखने के लिये सब ओर बैट गये, वह पाण्डव लोग भी उनब्राह्मणों समेतपाञ्चाल देश के राजा की अनुपम समृद्धि देखते हुए वहां बैट गये॥

वर्त्तमाने समाजे तु रमणीयोह्निषोडशे। आधुतांगी सुवसना सर्वाभरणभूषिता।। २६॥ मालां च ससुपादाय कांचनीं समलङ्कृताम्। अवतीर्णा ततो रङ्गं द्रौपदी भरतर्षभ॥ २७॥

अर्थ-हे भरतवंश में श्रेष्ट राजन ! जब सोछहवें दिन रमणीय जनसमाज वर्त्तमान हुआ तो द्रौपदी स्नान करके सुन्दर वस्त्रा-भूषणों से अलंकत हो सोने की शोभायमान माला लिये हुए रङ्गशाला में आई ॥

प्रशेहितः सोमकानां मन्त्रविद् ब्राह्मण शुचिः। परिस्तीर्य जुहावामिमाज्येन विधिवत्तदा ॥ २८॥ संतर्पयित्वा ज्वलनं ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च । वारयामास सर्वाणि वादित्राणि समन्ततः ॥२९॥ ३५२

महाभारत

अर्थ-तब सामक=सोमयाग करने वाले बेद् त्र तथा सदा-चारी द्विज पुरोहितों ने कुशों से परिस्तरण करके विधिपूर्वक घृत से अग्नि में हवन किया, हवन के पश्चात ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर सब ओर से सब बाजों का बजना रोक दिया ॥

निःशब्दे तु कृते तस्मिन् धृष्टसुम्रो विशाम्पते । कृष्णामादाय विधिवन्मेघदुन्दुभि निःस्वनः ॥३०॥ रङ्गमध्ये गतस्तत्र मेघगम्भीरया गिरा । वाक्यमुंबैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम् ॥३१॥

अर्थ-हे राजन ! जब शब्द का होना रुक गया तब धृष्ट
गुम्न विधिपूर्वक अपनी बहिन द्रौपदी को साथ लेकर बादल तथा

नगारों के समान गर्जता हुआ रङ्गभवन के बीच में गया और वहां

मेघ के समान गम्भीर ऊंचे स्वर से प्रयोजन सहित यह उत्तम

मधुर बचन बोला कि :—

इदं धनुर्रुक्ष्यमिमे च बाणाः शृष्वन्तु मे भूपतयः समेताः। छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं शरैः शितैव्योमचरैर्दशार्धैः।३२। एतन्महत् कर्म करोतियोवै कुलेन रूपेण बलेन युक्तः। तस्याद्यभार्याभगिनीममेयंकृष्णाभवित्रीनमृषात्रवीमि।३३

अर्थ—हे सब राजा लोगो ! सुनो यह धनुष है, यह लक्ष्य है और यह बाण हैं, आप लोग इम यन्त्र के छिट्ट में मे आकाश में चलने वाले तेज़ पांच बाणों द्वारा इस लक्ष्य को बींभें,जो उत्तम-कुल, इप और बलसम्पन्न पुरुष इस महान कार्य को करेगा

आदिपर्व-एकचलार्शाव्याय

343

उसी की आज यह मेरी वहिन कृष्णा=द्रौपदी भार्या होगी, यह मैं सत्य कहना हूं ॥

तानेवसुक्ता द्रुपदस्य पुत्रः पश्चादिदं ता भगिनीसुवाच । नाम्ना च गोत्रेण च कर्मणा च संकीर्चयन् भूमिपतीन् समेतान् ॥३४॥

अर्थ-हुपद का पुत्र घृष्ट्युम्न उन राजाओं से इस मकार कहकर पश्चात अपनी वहिन को मव राजाओं के नाम, कुल और कर्म इस प्रकार बनाने लगा कि :—

इति चलारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

दुर्योधनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुष्प्रधर्षणः । विविंशतिर्विकर्णश्च सहो दुःशासनस्तथा ॥१॥ युरुखुर्वायुर्वेगश्च भीमवेगरवस्तथा । उप्रायुधो बलाकी च कनकायुर्विरोचनः ॥२॥ कुण्डकश्चित्रसेनश्च सुर्वचाः कनकध्वजः । नन्दको बाहुशाली च तुहुण्डो विकटस्तथा ॥ ३॥ एते चान्ये च बहवो धार्त्तराष्ट्रा महाबलाः । कर्णेन सहिता वीरास्त्वद्यं समुपागताः ॥ ४॥ 348

महाभारत

अर्थ-हे होपित ! दुर्योधन, दुविपह, दुर्मुख, दुष्प्रधर्षण. विविश्वान विकर्ण, मह, दुःशामन, वायु के समान वेग और भयानक शब्द करने वाला युयुत्स, उग्रायुध, बलाकी, कनकायु, विरोचन, कुण्डक, चित्रमेन, सुवर्चा, कनकध्वज, बाहुशाली नन्दक, तुहुण्ड और विकट, यह महावली धृतराष्ट्र के बीर पुत्र तथा अन्य बहुत में राजा "कर्ण" महित यहां तेरे लिये आये हैं॥

शकुनिः सौबलश्चेव रूपकोथ बृहद्बलः । एते गान्धारराजस्य सुताः सर्वे समागताः ॥ ५॥ अश्वत्थामा च भोजश्च सर्वशस्त्रभृतांवरौ । समवेतौ महात्मानौ त्वदर्थे समलंकृतौ ॥६॥

अर्थ-सुबल के पुत्र शकुनि, बृषक और बृहद्बल, यह सब गान्धार नरेशके पुत्रभी आये हैं, सब शस्त्रधारियों में उत्तम अलंकृत हुए महात्मा अश्वत्थामा और भोज भी तेरे लिये आये हैं॥

वृहन्तो मणिमांश्चेव दण्डधारश्च पार्थिवः । सहदेवजयत्सेनौ मेघसन्धिश्च पार्थिवः । विराटः सह पुत्राभ्यां शङ्क्षेनैवोत्तरेण च ॥७॥

अर्थ-बृहन्त, मणिमान, राजा दण्डधार, सहदेव, जयत्सेन, राजा भेघमन्धि और "शङ्ख" तथा "उत्तर" नामक दोनो पुत्रों समेत राजा विराट भी यहां आये हैं॥

बार्छक्षेमिः सुशर्मा च सोमविन्दुश्च पार्थिवः । सुकेतुः सह पुत्रेण सुनाम्ना च सुवर्चसा ॥ ८॥ सुचित्रः सुकुमारश्च वृकः सत्यधृतिस्तथा ।

सूर्यध्वजो रोचमानो नीलश्चित्रायुधस्तथा ॥ ९॥

अर्थ-बार्द्धक्षेमि का पुत्र सुशर्मा, राजा सोमिनन्दु "सुनाम" तथा "सुवर्चा" नामक दोनो पुत्रों समेत सुकेतु, सुचित्र, सुकुमार, वृक, सत्यधित, सूर्यध्वज, रोचमान,नील और चित्रापुध, यह सब राजा भी तेरे अर्थ यहां आये हुए हैं॥

अंशुमांरचेकितान्य श्रेणिमांरच महावलः । समुद्रसेनपुत्रस्च चन्द्रसेनः प्रतापवान् ॥१०॥ जलसन्धः पितापुत्रौ विदण्डो दण्ड एव च । पौण्डको वासुदेवरच भगदत्तरच वीर्यवान् ॥११॥

अर्थ-अंशुमान, चेकितान, महावली श्रेणिमान, समुद्रसेन का प्रतापी पुत्र चन्द्रसेन, जलसन्य, दण्ड तथा विदण्ड यह दोनों पिता पुत्र, पौण्ड्रक, वासुदेव, पराक्रमी भगदत्त, यह सब राजालोग भी तेरे लिये यहां आये हैं॥

किल्किस्ताम्रिलप्तरच पत्तनाथिपतिस्तथा । मदराजस्तथा शल्यः महपुत्रो महारथः ॥१२॥ रुक्माङ्गदेन वीरेण तथा रुक्मरथेन च । कौरव्यः सोमदत्तश्च पुत्राश्चास्य महारथाः ॥१३॥

अर्थ-कलिङ, ताम्रलिप्त तथा पत्तन का राजा, पुत्र सहित पट्टेश का राजा महायोद्धा शल्य, रुक्माङ्गद तथा रुक्मरथ नामक वीरों के सहित कुरुवंशी सोमदत्त और इसके महावीर पुत्र भी यहां आये हैं॥ समवेतास्त्रयः शूराः भूरिर्भूरिश्रवाः शलः । सुदक्षिणश्च काम्बोजो दृद्धन्वा च पौरवः ॥१४॥ बृहद्बलः सुषेणश्च शिविरौशीनरस्तथा । पटचरनिहन्ता च कारूषाधिपतिस्तथा ॥१५॥

अर्थ-भूरि, भूरिश्रवा और शल यह एकत्रित हुए तीनों बीर तथा काम्बोजदेश का राजा सुदक्षिण, पुरुवंशी दृहधन्वा, बृहद्बल, सुषेण, शिवि, औशीनर तथा चोरों का नाशक काष्ट्रप देश का राजा भी आया हुआ है।।

संकर्षणो वासुदेवो रैकिमणेयश्च विश्ववात् । शाम्बश्च चारुदेष्णश्च प्राशुक्षिः सगदस्तथा ॥१६॥ अकूरः सात्याकिश्चैव उद्धवश्च महामितः । कृतवर्मा च हार्दिक्यः पृथुर्विपृथुरेव च ॥१७॥

अर्थ-बलभट्ट, कृष्ण, पराक्रमी, रुक्मिणीपुत्र, शास्त्र, चारु-देष्ण, मद्युम्न का पुत्र सगद अक्रूर, सात्यिक. महाबुद्धिमान, उद्धव, हार्दिकि का पुत्र कृतवर्मा, पृथु और विष्टुयु, यह राजा लोग भी ओय हुए हैं॥

विदूरथरच कङ्करच शंछरच सगवेषणः ।
आशावहोऽनिरुद्धरच समीकः सारिमेजयः ॥१८॥
वीरो वातपतिरुचैव झिली पिण्डारकस्तथा ।
उशीनररच विकान्तो वृष्णयस्ते प्रकीर्त्तिताः ॥१९॥
अर्थ-विदूरथ, कंक, शंकु, गवेषण, आशावह, अनिरुद्ध,

आदिपर्व-एकचत्वारिंशाध्याय

349

समीक, सारिमेजय, वीर वातपित, ब्रिझी,पिण्डारक और पराक्रमी उंशीनर, यह मव तेरे सामने वृष्णिवंश वाले वताये गये हैं ॥ भगीरथो वृहत्क्षत्रः सैन्धवश्च जयद्रथः । वृहद्रथो वाह्लिकश्च श्रुतायुश्च महारथः ॥२०॥ उल्क्रकः कैतवा राजा चित्राङ्गदशुभाङ्गदौ । वत्सराजश्च मतिमान् कोशलाधिपतिस्तथा ॥२१॥

अर्थ-भगीरथः बृहत्सत्र, सैन्धवः, जयद्रथः, बृहद्रथः, वाह्निकः, महावीर श्रुतायः उलकः राजा केतवः, वित्राङ्गदः, युभाङ्गदः, बृद्धिमान् वत्सराज तथा कोशल=अवध का राजा भी आया है ॥ शिश्युपालश्च विकान्तो जरासन्धस्तथैव च । एते चान्ये च बहवो नानाजनपदेश्वराः ॥२२॥ त्वदर्थमागता भद्रे क्षत्रियः प्रथिता भृवि । एते भेत्स्यन्ति विकान्तास्त्वदर्थे लक्ष्यमुत्तमम् । विध्येत य इदं लक्ष्यं वरयेथाः शुभेऽद्य तम् ॥२३॥

अर्थ-हे भट्टे कृष्णा ! पराक्रमी शिश्यपाल तथा जरासम्ध और इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से पृथ्वी में विख्यात भिन्न २ देशों के स्वामी क्षत्रिय राजा तेरे लिये यहां आये हैं, हे कल्याणी बहिन! यह पराक्रमी राजा आज इस उत्तम लक्ष्य को तेरे वरने के लिये बींधने का यत्र करेंगे, सो जो पुरुष इस लक्ष्य को वींधेगा उसी का तैने वरण करना ॥

इति एकचत्वारिशोऽध्यायः समाप्तः

अथ दिचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

-000 k 000

तेऽलङ्कृताः कुण्डलिनो युवानः परस्परं-स्पर्धमाना नरेन्द्राः । अस्त्रं बलं चात्मिन-मन्यमानाः सर्वे समुत्पेतुरुद्धियास्ते ॥ १ ॥ रूपेण वीर्येण कुलेन चैव शिलेन वित्तेन-च यौवनेन । समिद्धदर्पा मदवेगिभन्ना-मत्ता यथा हैमवता गजेन्द्राः ॥ २ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह कुण्डल पहने हुए वस्त्राभृषणों से अलंकत तरुण राजा लोग एक दूसरे से ईपी करते तथा अपने २ शस्त्रों और वल को बढ़ा चढ़ा समझते हुए सब शस्त्र उठाकर तैय्यार होगये, वह लोग अपने रूप, पराक्रम, कुल, सदाचार, धन और युवावस्था के अभिमान तथा अपने मद के बेग में भरे हुए मानो हिमालय पहाड़ के मतवाल हाथियों के समान थे॥

परस्परं स्पर्धया प्रेक्षमाणाः संकल्पजेनाभि-परिष्छतांगाः। कृष्णा ममैवेत्यभिभाषमाणा नृपासनेभ्यः सहसोदितष्ठन् ॥ ३ ॥ कन्दर्पवाणाभिनिपीडितांगाः कृष्णागतेस्ते हृदयैनरेन्द्राः। रंगावतीणी द्रपदात्मजार्थं द्वेषं प्रचक्रुः सुहृदोऽपि तत्र ॥ ४ ॥ अर्थ-यह सब वीर्यसम्पन्न राजा एक दूनरे को ईर्पा से देखते तथा यह कहते हुए कि कृष्णा=द्रीपदी मेरी है, मेरी है, अपने २ आसन से उठकर एकाएक खड़े होगये.कामदेव के वाणों से सताये हुए अङ्गों वाळे राजा लोग दुपद की पुत्री के लिये रङ्गभृमि में आये हुए अपने २ हृद्य कृष्णा की ओर चले जाने के कारण आपस में मित्र होने पर भी द्रेव करने लगे॥

हलायुधस्तत्र जनार्दनश्च वृष्ण्यन्धकाश्चैव यथाप्रधानम् । प्रेक्षां स्म चकुर्यदुषुंगवास्ते स्थिताश्च कृष्णस्य मते महान्तः॥ ५॥

अथ-वहां पर बलराम, कृष्ण और अन्य बृष्णि तथा अधक दंश के यहुवंशी बड़े २ वीर कृष्ण के मत में स्थित कशपूर्वक बैठे हुए उत्सव देख रहे थे॥

हष्ट्वा तु तान्मत्तगजनद्ररूपान् पञ्चाभि पद्मा-निव वारणन्द्रान् । भस्मावृतांगानिव हव्य-वाहान् कृष्णः प्रदध्यौ यदुवीरमुख्यः ॥ ६ ॥

अर्थ-यदुकुल के मुख्यवीर कृष्ण ने उन पांचो पाण्डवों को मतवाले हाथियों जैसे रूप वाले, पांच कमलों के समान सुन्दर तथा पांच अग्नियों के समान राख से ढके हुए अङ्गों वाले छिपे हुए तेजस्वी देखकर ध्यान से पहचान लिया॥

शशंस रामाय युधिष्ठिरं स भीमं मजिष्णुं यमो च वीरो । शंनैः शनैस्तान् प्रसमीक्ष्य रामो जनार्दन प्रीतमना ददर्श ॥ ७॥

महाभारत

अर्थ-कृष्ण ने बलराम को बताया कि यह युधिष्ठिर हैं, यह भीम है, यह अर्जुन है और यह दोनों जोड़ले भाईवीर नकुल, सहदेव हैं, कृष्ण से प्रसन्न किये हुए बलराम ने भी धीरे २ उनको देखकर पहचान लिया ॥

अन्ये त वीरा नृपपुत्रपौत्राः कृष्णागतैर्नेत्र-मनः स्वभावैः । व्यायच्छमाना दहशुर्न तान् वे सन्दष्टदन्तच्छदताम्रनेत्राः ॥ ८ ॥ तथैव पार्थाः पृथुबाहवस्ते वीरौ यमौ चैव महानुभावौ । तां द्रौपदीं प्रेक्ष्य तदा स्म सर्वे कन्दर्पवाणाभिहता बभुनुः ॥ ९ ॥

अर्थ-परंतु जो अन्य राजा तथा उनके वीर पुत्र पौत्रादि थे उनके नेत्र, मन और स्वभाव द्रौपदी में लगे हुए होने के कारण क्रोध में दांतों से होंड पीसते तथा लाल आंखे किये हुए थे इस कारण उन्होंने पाण्डवों को नहीं देखा, इसी मकार कुन्ती के तीनों महावाहु पुत्र और जोड़ले भाई महामभावशाली वीर नकुल, सहदेव भी द्रौपदी को देखकर सब ही कामदेव के बाणों से पीड़ितहोगये॥

महास्वनैर्दुन्दुभिनादितैश्चवभूवतत्संकुल-मन्तिरक्षम् । विमानसंबाधमभूत्समन्तात् सवेणुवीणापणवानुनादम् ॥ १०॥

अर्थ-उस समय आकाश बड़े २ बाजों तथा नगारे आदि के शब्दों से परिपूर्ण, सब ओर विमानों से भरपूर तथा बांसरी, बीणा और ढोल आदि के शब्दों से गुंजायमान था॥ ततस्तु ते राजगणाः क्रमण कृष्णानिमित्तं कृतविक्रमाश्च । सर्कणंदुर्योधनशाल्वशल्य द्रोणायनिकाथसनीथ वक्राः ॥ ११ ॥ क्लिंगवंगाधिपपाण्डचपौण्डाविदेहराजो यवनाधिपश्च । अन्ये च नानानृपपुत्र-पौत्राःराष्ट्राधिपः पंकजपत्रनेत्राः ॥१२॥ किरीटहारांगदचकवालैर्विभूषितांगाः द्रभुवाहवस्ते । अनुक्रमं विक्रमसत्त्व- युक्ताः बलेन वीर्येण च नर्दमानाः ॥१३॥ तत्कार्मुकं संहननोपपन्नं सज्यं न शेकुर्भ- नसापि कर्तुम् । ते विक्रमन्तः स्फ्रस्ता हदेन विक्षिप्यमाना धनुषा नरेन्द्राः ॥१४॥

अर्थ-तव वह राजा लोगों के समुदाय जिनमें कर्ण, दुर्योधन, शाल्व, शल्य, ट्रोणाचार्य्य का पुत्र क्राथ, मुनीथ, वक्र, किल्क देश का राजा, वंग देश का राजा, पाड्य देश और पुण्ड़देश के राजा, मिथिला का राजा, यवनराज तथा अन्य बहुत से भिन्न २ राजाओं के पुत्र पीत्र ट्रीपदी को वरने के लिये पराक्रम दिखलाने वाले थे तथा जो अनेक देशों के स्वाभी कमलपत्र जैसे नेत्रों वाले, मुकट, हार, अक्रद, चक्रवाल इन आभृषणों से भृषित अक्रों वाले, महावाहु, एक दृशरे से वह चहकर पराक्रम तथा उत्साह सम्पन्न थे, उनमें मे बहुत से राजा अपने वल तथा पराक्रम से गर्जते दुए एक २ धन्य के उटाने का यत्नकरने लगे, परन्तु उस महाकठोर

धनुष की फड़क न सहारमके और फिर मिलन चित्त हुए उन राजाओं ने धनुष चढ़ाने का पुनः मन में संकल्प भी न किया॥

विचेष्टमाना धरणीतलस्था यथावलं शैध्य गुणकमाश्च । गतौजसः सस्तिकरीटहारा विनिश्वसन्तः शमयां बस्वुः ॥१५॥ हाहाकृतं तद् धनुषा हदेनविस्रस्तहारांग-दचकवालम् । कृष्णानिभित्तं विनिवृत्त कामं राज्ञां तदा मण्डलमार्त्तमासीत् ॥१६॥

अर्थ-उन पृथ्वी पर खड़े हुए राजाओं ने अपने वल, कि गा तथा गुण के क्रम से बहुत यत्न किये परन्तु अन्त में उत्साहीन होगये और उनके मुकुट तथा हार आदि गिर पड़े तब वह लोग वेग से सांस लेते हुए शान्तिपूर्वक बैठ गये, उस कठोर धनुषकी फड़क से राजाओं के हार, अद्भद,चक्रवाल आदि आभूषण गिरने के कारण द्रौपदी के निराश होजाने से हाहाकार होने लगा और उस समय राजमण्डल बहा दुःखित होगया॥

सर्वान्नृपांस्तान् प्रसमिक्ष्य कणीं धनुर्धराणां प्रवरो जगाम । उद्घृत्य तूर्ण धनुरुद्यतं तत् सज्यं चकाराश्च युयोज बाणान् ॥ १७ ॥ हृष्ट्वा सूतं मेनिरे पाण्डपुत्रा भित्त्वा नीतं लक्ष्यवरं धरायाम् । हृष्ट्वा तृतं द्रौपदी वाक्य-मुंचैर्जगाद नाहं वरयामि सूतम् ॥ १८ ॥

अर्थ-तब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कर्ण उन सबराजाओं को उत्साह-हीन देखकर धनुष के समीप गया और शीव्रता से उम धनुष को उटा तुरन्त ही उसमें चिल्ला चढ़ाकर वाण लगा दिये, जब उसने उस उत्तम लक्ष्य को वींधकर पृथ्वी पर गिराया तो पाण्डवों ने उसको सृतपुत्र=कर्ण समझ लिया, परन्तु द्रौपदी ने उसको देखते ही ऊंचे स्वर से कहा कि में सृत को नहीं वरंगी॥

एवं तेषु निवृत्तेषु क्षत्रियेषु समन्ततः ।
चेदीनामधिपो वीरो चलवानन्तकोपमः ॥१९॥
दमघोपस्तो धीरः शिशुपालो महामितः ।
धनुरादायमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ॥२०॥
अध-इस प्रकार चारो ओर से उन राजाओं के निवृत्त हो
जाने पर चंदेरी का राजा महाबुद्धिमान, वलवान, धीरवीर
और मृत्यु के समान भयानक दमघोप का पुत्र शिशुपाल धनुष
उठाने लगा परन्तु वह घुटनों के वल पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥
ततो राजा महावीयों जरासन्था महावलः ।
धनुषोऽभ्यासमागत्य तस्थों गिरिरिवाचलः ॥२१॥
धनुषो पीड्यमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीम् ।
तत उत्थाय राजा स स्वराष्ट्राण्यभिजिंग्मवान् ॥२२॥
वित्र उत्थाय राजा स स्वराष्ट्राण्यभिजिंग्मवान् ॥२२॥

अर्थ-तव महापराक्रमी राजा जरामन्य धनुष के ममीप पहुंच पर्वत के समान स्थिर हुआ खड़ा रहा, परन्तु जब धनुष के उठाने का यत्र करने लगा तो धनुष के आघात से यह भी घुटेंनी के बल एथ्वी पर गिरपड़ा, पश्चात यह राजा उठकर अपने देश को चलाएया। \$5%

महाभारत

ततः शल्यो महावीर्यो मद्रराजो महाबलः । तदप्यारोप्यमानस्तु जानुभ्यामगमन्महीस् ॥ २३॥ तस्मिस्तु संभ्रान्तजने समाजे निक्षिप्तवादेषु-जनाधिपेषु । कुन्तीसुतो जिष्णुरियेष कर्तु-सज्यं धनुस्तत्सशरं प्रवीरः ॥ २४॥

अर्थ-तद्नन्तर मद्र=मदरास देश का महापराक्रमी तथा महावली राजा शल्य भी धनुष को चढ़ाने का यत्न करने लगा, परन्तु घुटनों के कल भूमि पर गिर पड़ा, उस समय जब कि राजसमाज के सब लोग भ्रान्ति में पड़ गये और राजाओं ने बोलना त्याग मौन धारण करली तब कुन्ती के पुत्र महाबीर अर्जुन ने संकल्प किया कि मैं धनुष का चिल्ला चढ़ाऊं और उसमें बाण लगाकर यथोचित कार्य करंं।।

इति दिचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

यदा निरुत्ता राजानो धनुषः सज्यकर्मणः । अथोदितष्ठदिप्राणां मध्याज्ञिष्णुरुदारधीः ॥ १ ॥ उदकोशन् विप्रमुख्या विधन्वन्तोऽजिनानि च । दृष्ट्वा संप्रस्थितं पार्थिमन्द्रकेतुसमप्रभम् ॥ २ ॥ अर्थ-वैशम्भायन बोले कि हे राजन ! जब राजा लोगधनुष चढ़ाने रूप कार्य्य से हटकर बैठ गये तब उदारबुद्धि अर्जुन ब्राह्मणों के बीच में से उठ खड़ा हुआ, इन्द्रध्वज के समान शोभायमान अर्जुन को धनुष की ओर जाता देखकर बड़े २ ब्राह्मण अपने मृगचर्मी को हिलाते हुए कोलाहल करने लगे॥

केचिदासन् विमनसः केचिदासन्मुदान्विताः । आहुः परस्परं केचिन्निपुणा बुद्धिजीविनः ॥ ३ ॥

अर्थ-उनमें कुछ ब्राह्मण तो उदास होगये, कुछ आनन्दित हुए और कितने ही अपनी वृद्धि के प्रभाव से जीवन धारण करने वांले चतुर ब्राह्मण आपम में इस प्रकार वातें करने लगे कि :-

यत् कर्णशल्यप्रमुखैःक्षत्रियैलेंकिविश्वतैः । नानतं बलविद्धिर्हि धनुर्वेदपरायणैः ॥ ४ ॥ तत् कथं त्वकृतास्त्रेण प्राणतो दुर्वेलीयसा । वरुमात्रेण शक्यं हि सज्यं कर्त्व धनुर्दिजाः ॥ ५ ॥

अर्थ-जिस धनुष को शस्त्रविद्या में निपुण तथा वलवान् कर्ण, शल्य आदि लोकविष्ट्यात राजा नहीं चढ़ासके वह धनुष वल से हीन तथा अस्त्रविद्या के न जानने वाले इस ब्राह्मण से कैसे चढ़ाया जासकता है ॥

अवहास्या भविष्यन्ति ब्राह्मणाः सर्वराजसु । कर्मण्यास्मन्नसांसिद्धे चापलादपरीक्षित ॥ ६ ॥ यद्येप दर्पाद्धर्षाद्वाप्यथ ब्राह्मणचापलात् । प्रस्थितो धनुरायन्तुं वार्यतां साधु मागमत् ॥ ७ ॥ अर्थ-चपलता के कारण इस अपरीक्षित कार्य में सिद्धि न होने से हम सब ब्राह्मणों की राजसमुदाय में बड़ी हंसी होगी, सो यदि यह ब्राह्मण घंमड, हर्ष वा अपने ब्राह्मणपन की चञ्चलता से धनुष चढ़ाने चला हो तो इसे हटादो, वहां तक न जावे तो बहुत अच्छा है, क्योंकि :-

नावहास्या भविष्यामो नच लाघवमास्थिताः। नच विद्रिष्टतां लोके गमिष्यामो महीक्षिताम्॥८॥

अर्थ-इसमें हम लोगों की हंसी न होगी, न हम लोग चंचलता का काम करते हैं और नाही राजा लोग हमसे द्वेष करेंगे।।

केचिदाहुर्युवा श्रीमान् नागराजकरोपमः । पीनस्कन्धोरुवाहुश्च धेर्येण हिमवानिव ॥९॥ सिंह्षेल्णातिः श्रीमान्मत्तनागेन्द्रविक्रमः । संभाव्यमस्मिन् कर्मेदमुत्साहाचानुमीयते ॥१०॥

अर्थ-कितने ही ब्राह्मण बोले कि यह पुरुष युवा, शोभा-वान, हाथी की संड के समान लंबी भुजाओं वाला, मोटे कंधों वाला, धीरज में हिमालय के समान दृद्ग, सिंह की भांति मतवाली चाल वाला और मतवाले हाथी के समान पराक्रमी होने से संभव है कि यह इस काम को करदेवे, जैसाकि इसके उत्साह से अनु-मान किया जाता है ॥

एवं तेषां विलपतां विप्राणां विविधा गिरः । अर्जुनो धनुषोऽभ्यासे तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥११॥ अर्थ-वह ब्राह्मण इस प्रकार नाना भांति की बार्व चीत

कर रहे थे कि अर्जुन धनुप के पास गया और वहां पर्वत के समान स्थिर होकर खड़ा होगया ॥

यत् पार्थिवे रुक्मसुनीथवकैराधेय दुयोंधन शल्य शाल्वेः। तदा धनुर्वेदपरेर्नृसिंहैः कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात् ॥ १२ ॥ सज्यं च चके निमिपान्तरेण शरांश्च जग्राह-दशार्द्धसंख्याम्। विव्याध लक्ष्यं निपपाततच-छिद्रेण सुमौ सहसातिविद्धम् ॥ १३ ॥

अर्थ-जो धनुष उस समय अस्त्रविद्या में चतुर सिंह के समान रूक्म, सुनीय, वक्र, कर्ण, दुर्योधन, शस्य तथा शास्त्र आदि राजाओं से भारी यत्न करने पर भी नहीं चढ़ाया गया था उस धनुष को अर्जुन ने एक नियेष=पलभर में चढ़ा दिया और उसमें पांच वाण लगाकर छिद्र द्वारा तत्काल लक्ष्य को वींध दिया जिसमें वह भूमी पर आगिरा ॥

विलिक्षितास्ततश्चक्रुईाहाकारांश्च सर्वशः। शताङ्गानि च तूर्याणि वादकाः समवादयन्। सूतमागधंसघाश्चाप्यस्तुवंस्तत्र सुस्वराः॥१४॥

अर्थ-तव मव राजा लोग लिजित हुए २ सव ओर से हाहाकार करने लगे, इधर बाजा बजाने वाले सैकडों प्रकार के बाजे बजाने लगे और मृत,मागध आदि स्तुति करने वाले लोगों के समुदाय मधुर स्वर में स्तुति करने लगे॥

तं दृष्ट्वा दृषदः प्रीतो बभ्व रिपुस्दनः ।

सह सैन्यश्च पार्थस्य साहाय्यार्थिमयेष सः ॥१५॥ तिसम्तु शब्दे महित प्रवृद्धे अधिष्ठिरो धर्म-भृतां विरष्ठः । आवासमेवोपजगाम शीघं-सार्द्धे यमाभ्यां पुरुषोत्तमाभ्याम् ॥ १६ ॥

अर्थ-तब उस अर्जुन को देखकर राज्ञनाराक द्रुपद मसन्न होगया और उसने अपनी सेना सहित अर्जुन का सहायक होने की इच्छा की, जबवहां परवड़ा कोलाहल बढ़ने लगा तो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ गुधिष्ठिर जोड़ले भाई नकुल, सहदेव को साथ लेकर शीघ ही निवासस्थान को चले गये॥

विद्धं तु लक्ष्यं प्रसमिक्ष्य कृष्णा पार्थं च राक्रपतिमं निरीक्ष्य । आदाय शुक्काम्बर-माल्यदाम जगाम क्रन्तीसुतमुत्स्मयन्ती ॥ १७॥ स ता मुपादाय विजित्य रङ्गे द्विजातिभिस्तैर-भिप्रज्यमानः । रङ्गान्निरकामदिचन्त्यकर्मा-पत्न्या तथा चाप्यनुगम्यमानः ॥ १८॥

अर्थ-तब द्रौपदी उस लक्ष्य को विधा हुआ देखकर तथा इन्द्र के समान बलवान कुन्ती के पुत्र की ओर अवलोकन करके इवेत बस्त्र से दकी हुई माला लिये हुए मुसकराती हुई अर्जुन के समीप चलीगई, तब अद्भुत कर्म करने वाला अर्जुन उसको रङ्ग-स्थल में जीतकर साथ लिये हुए ब्राह्मण लोगों से प्रशंसित होता हुआ पत्नी साहत रङ्गभवन से बाहर निकल आया ॥

इति त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुश्चत्वारिंशांऽध्यायः प्रारम्यते

वैश्मपायन उवाच

तस्मे दित्सित कन्यां तु ब्राह्मणाय तदा नृपे। कोप आसीन्महीपानामालोक्यान्योन्यमन्तिकात्॥१॥ अस्मान्यमितकम्य तृणीकृत्य च सङ्गतान्। दातुमिच्छिति विप्राय द्रौपदीं योपितां वराम् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जब राजाओं ने देखा कि दुपदराजा अपनी कन्या ब्राह्मण को देना चाहता है तब वह एक दृसरे की ओर देखते हुए राजा दुपद पर क्रोध करने लगे कि यह राजाहम इकट्टे हुए २ इतने राजाओं का अतिक्रमणकर बिनके के समान समझता हुआ श्रेष्ट स्त्री द्रीपदी को एक ब्राह्मण के लिये अपण करता है ॥

अवरोप्येह वृक्षं तु फलकाले निपात्यते । निहन्मेनं दुरात्मानं योऽयमस्मान्न मन्यते ॥३॥ न ह्यहत्येष संमानं नापि वृद्धक्रमं युणैः । हन्मेनं सह पुत्रेण दुराचारं नृपद्धिषम् ॥ १॥ अध-यहां वृक्ष लगाकरफल आने के समय उलाइकर फेंका जारहा है, सो हम इस दुष्ट राजा को मार देंगे जो हम लोगों का निरादर करता है, यह राजा आदर के योग्य नहीं और नाही यह गुणों से वृद्ध होने योग्य है, इसलिये हम इस दुराचारी तथा राजाओं के शन्न का पुत्र समेत वध करेंगे॥ अयं हि सर्वानाहृय सत्कृत्य च नराधिपान् । गुणवङ्गोजियत्वान्नं ततः पश्चान्न मन्यते ॥५॥ अस्मिन्राजसमवाये देवानामिव संनये । किमयं सहशं कंचिन्नुपतिं नैव दृष्टवान् ॥६॥

अर्थ-यह राजा सब राजाओं को अपने घर बुला, सत्कार करके और उत्तमोत्तम भोजन खिलाकर पीछे सबका अपमान करता है,देवताओं के समृह समान इम राजसमाज मे क्या इसको कोई योग्य राजा ही नहीं दिखाई दिया ॥

अथवा यदि कन्येयं नच कश्चिद् बुभूषति । अग्नावनां प्रतिक्षिप्य याम राष्ट्राणि पार्थिवाः ॥७॥ अवमानभयाचैव स्वधमस्य च रक्षणात् । स्वयंवराणामन्येषां माभूदेवंविधा गतिः॥८॥

अर्थ-अथवा यह द्रौपदी कन्या ही रहेगी और इसका कोई योग्य पति होने की सम्भावना नहीं, तो इस कन्या को अग्नि में फेंक-कर हम सब राजा अपने २ राज्य को चलें, अपमान के भय से तथा अपने क्षत्रियधर्म की रक्षा करने के लिये हमें ऐसा करना चाहिये जिससे अन्य स्वयंवरों की ऐसी दशा न हो ॥

इत्यक्ता राजशार्द्रला हृष्टाः परिघबाहवः । हुपदं तु जिघांसन्तः सायुधाः समुपादवन् ॥९॥ तान् गृहीतशरावापान् ऋद्धानापततो बहून् । हुपदो वीक्ष्य संत्रासादबाह्मणाञ्छरणं गृतः ॥१०॥

आद्पर्व-चतुश्चत्वारिकाध्याय

399

अर्थ-इस पकार कहते हुए लोहदण्ड के समान भुजाओं वाले तथा सिंहसमान राजा लोग हर्ष में भरकर शस्त्र उठाये हुए दुपद को मारने की इच्छा से दोड़े, राजादुपद उन बहुत से राजा लोगों को कोध में भरे हुए तथा धनुष उठाकर अपनी ओर आते हुए देखकर भयभीत हुआ ब्राह्मणों की शरण में गया॥ वेगेनापततस्तांस्तु प्रभिन्नानिव वारणान्। पाण्डुपुत्री महेष्वासी प्रतियातावरिन्दमी ॥११॥

अर्थ-उन राजाओं को मतवाले हाथियों के समान वेग में आते हुए देखकर वाण चलाने में कुशल तथा शत्रुओं के दमन-कत्ती पाण्डु के दोनों पुत्र भीमसेन और अर्जुन उनके सामने गये॥

> ततः समुत्येतुरुदायुधास्ते महीक्षितो वद्ध-गोधांग्रलित्राः । जिघांसमानाः करुराज पुत्रावमर्षयन्तोऽर्जुनभीमसेनौ ॥१२॥

अर्थ-तब वह राजा लोग शस्त्र उटाये तथा हाथों में गोह के दस्ताने पहने हुए कुरुदेश के राजपुत्रों अर्थात भीमसेन और अर्जुन पर क्रोध किये हुए उनके मारने की इच्छा से इकहे होकर दौड़े ॥

ततस्तु भीमोऽद्भुतभीमकर्मा महाबलो वज्रसमानसारः। उत्पाट्य दोभ्यां दुममे-कवीरो निष्पत्रयामास यथा गजेन्द्रः॥१३॥

अर्थ-तब अद्भुत तथा दुष्करकर्म करने वाले, महाबली, बज के समान दृढ़ शरीर वाले अकेले वीर भीमसेन ने दोनों वाहों से एक वड़ा वृक्ष हाथी के समान उखाड़ और उसे हिलाकर बिना पत्तों का करिलया ॥

तं वृक्षमादाय रिपुप्रमाथी दण्डीव दण्डं पितृराज उग्रम् । तस्थौ समीपे पुरुषर्ष-भस्य पार्थस्य पार्थः पृथुदीर्घ बाहुः ॥१४॥

अर्थ-तब मोटी तथा लंबी भुजाओं वाला,शत्रुओं का नाशक कुन्तीपुत्र भीमसेन उस वृक्ष को उठाकर अर्जुन के समीप इस प्रकार खड़ा होगया कि मानो दण्डदायक मृत्युदेव अपने उग्र दण्ड को लिये खड़ा है।।

तत् प्रेक्ष्य कर्मातिमनुष्यबुद्धिर्जिष्णः स हि भ्रातुरचिन्त्यकर्मा। विसिस्मिये चापि भयं विहाय तस्थो धनुर्गृह्य महेन्द्रकर्मा।।१५॥

अर्थ-मनुष्यों की बुद्धि से बढ़कर बुद्धि वाला, अद्भुत कर्म-कर्त्ता तथा इन्द्र के समान महान बलवान अर्जुन अपने भाई का ऐसा कार्य देखकर अनाम्भित हुआ और निर्भय हो धनुष लेकर खड़ा होगया ॥

तत् प्रेक्ष्य कर्मातिमनुष्यन्नद्धिर्जिष्णोः सहभ्रातुरिचन्त्यकर्मा । दामोदरे भ्रातर-मुप्रवीर्यं हलायुंघं वाक्यमिदं बभाषे ॥१६॥

अर्थ-मनुष्यों में विचित्र बुद्धि तथा अचिन्तनीय कर्म करने वाले कृष्णजी अर्जुन तथा उसके भाई भीमसेन का उक्त कार्य्य देखकर अपने उग्र पराक्रमी भाई बलराम से बोले कि :- य एष सिंहर्षभषेलगामी महद्धनुः कर्षति तालमात्रम् । एषोऽर्जनो नात्र विचार्य-मस्ति यद्यस्ति सङ्कर्षणवासुदेवः ॥१७॥

अर्थ-हे बलभद्र !यह जो उत्तम सिंह की न्याई मतवाली चाल वाला ताड़ के बृक्ष समान वड़े धनुष को खेंचे खड़ा है वह अर्जुन है, यदि मैं वसुदेव का पुत्र हूं तो मेरे इस वचन में तिनक भी संदेह मत करो, और :-

> यस्त्वेष वृक्षं तरसावभज्य राज्ञां निकारे सहसा प्रवृत्तः । वृकोदरान्नान्य इहैतदद्य कर्तुं समर्थः समरे पृथिव्याम् ॥ १८ ॥

अर्थ-यह जो वलपूर्वक वृक्ष को उखाड़कर राजाओं का तिरस्कार करने के लिये एकाएक प्रवृत्त हुआ है यह भीमसेन है, क्योंकि इससे भिन्न अन्य कोई आजकल युद्ध में ऐसा कठिन काम करने के लिये पृथ्वी पर समर्थ नहीं है ॥

योऽसो पुरस्तात् कमलायताश्वस्तवुर्महा-सिंहगतिर्विनीतः । गौरः प्रलम्बोज्ज्वल-चारुघोणो विनिःसृतः सोऽच्युत धर्मपुत्रः । मुक्ताहितस्माज्जतुवेश्मदाहान्मया श्रुताः पाण्डुसुताः पृथा च ॥ १९॥

अर्थ-और वह जो कमल के समान वड़े २ नेत्रों वाला,पतले शरीर वाला, बड़े सिंह की भांति चाल वाला, विनययुक्त,गौरवर्ण, लंबी उज्वल सुन्दर नासिका वाला पुरुष जो रंगभवन से मथम

महाभारत

ही निकलकर चलागया है वह अपने कर्तव्य से पतित न होने वाला धर्मात्मा युधिष्ठिर है, जैसािक मैंने सुना है कि पाण्डुपुत्र तथा कुन्ती उस लाक्षागृह में जलने से वच गये वह सत्य है ॥

तमब्रवीन् निर्जलतोयदाभो हलायुधोऽ नन्तरजंप्रतीतः। प्रीतोऽस्मि हष्ट्वाहि पितृस्वसारं पृथां विमुक्तां सह कौरवाप्रयेः॥२०॥

अर्थ-तव जलरहित बादल के समान क्वेतवर्ण वाले बलभट्ट अपने छोटे भाई की बात पर विक्वास करके उससे बोले कि मैं अपनी बुआ कुन्ती तथा कुरुवंश के मुख्यपुत्र पांचो पाण्डवों को मृत्यु से छुटे हुए देखकर बड़ा आनन्दित हुआ हूं॥

इति चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

अजिनानि विधुन्वन्तः करकांश्च द्विजर्षभाः। ऊचुस्ते भीर्न कर्तव्या वयं योत्स्यामहे परान् ॥१॥ तानेवं वदतो विप्रानर्जनः प्रहसन्निव। उवाच प्रेक्षका भूत्वा यूयं तिष्ठथ पार्श्वतः॥ २॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! तब ब्राह्मण लोग अपने मृगचर्मों को फटकारते तथा कमण्डलुओं को हिलाते हुए बोले

कि हम शञ्जओं से युद्ध करेंगे तुम भय मत करो,इस प्रकार कहते हुए उन ब्राह्मणों से अर्जुन ने मुसकराते हुए कहा कि तुम लोग एक ओर खड़े रहकर तमाशा देखते रहो ॥

ततः कर्णमुखान् दृष्ट्वा क्षत्रियान् युद्धदुर्भदान् । सम्पेततुरभीतौ तौ गजौ प्रतिगजाविव ॥३॥ ऊचुश्च वाचः परुपास्ते राजानो युयुत्सवः । आहवे हि द्विजस्यापि वधो दृष्टो युयुत्सवः ॥४॥

अर्थ-तव वह दोनों भाई कर्ण आदि विकट युद्ध करने वाले क्षत्रियों को आते देख निर्भय होकर सामने दोहे, जैसे हाथियों को देखकर हाथी दौड़ते हैं, युद्ध में तत्पर वह राजा लोग यह भी कहने लोग कि संग्राम में युद्ध करने हुए ब्राह्मण को वध करना भी देखा गया है।।

ततः कणों महातेजा जिष्णुं प्रति ययौ रणे । युद्धार्थी वासिताहेतोर्गजः प्रतिगजं यथा ॥५॥ दुर्योधनादयः सर्वे ब्राह्मणेः सह सङ्गताः । मृदुपूर्वमयत्नेन प्रत्ययुध्यंस्तदाहवे ॥६॥

अर्थ-तब महातेजस्वी कर्ण युद्ध के लिये अर्जुन की ओर संग्राम स्थल में गया, जैसे मद की सुगन्ध से हाथी दूसरे हाथी की ओर जाता है, मद्र=मदरास देश का राजा बलवान् शल्य भीमसेन के सामने आया और दुर्योधन आदि सब अन्य ब्राह्मणों के साथ भिड़ गये, इस प्रकार वह विनायत्न के कोमलता पूर्वक रणभूमि में उन ब्राह्मणों के माथ युद्ध करने लगे॥ ततोऽर्जुनः प्रत्यविध्यदापतन्तं शितैः शरैः । कर्ण वैकर्त्तनं श्रीमान् विकृष्य बलवद्धनुः ॥७॥ तेषां राराणां वेगेन शितानां तिग्मतेजसाम् । विमुह्ममानो राधेयो यत्नात्तमनुधावति ॥८॥

अर्थ-तब श्रीमान अर्जुन ने बलपूर्वक अपना धनुष खेंचकर तेज़ बाणों द्वारा सन्मुख आते हुए विकर्तन पुत्र कर्ण को रोक दिया, उन तेज़ तथा कठोर प्रभाव वाले वाणों के वेग से बेसुध हुआ २ कर्ण बड़े यत्न से उसकी ओर दौड़ने लगा॥

ताबुभावप्यानिर्देश्यौ लाघवाज्ञयतां वरौ । अयुध्येतां सुसंख्यावन्योऽन्यविजिगीषिणौ ॥९॥ कृते प्रतिकृतं पश्य पश्य बाहुबलं च मे । इति शूरार्थवचनैरभाषेतां परस्परम् ॥१०॥

अर्थ-वह दोनों श्रेष्ठ विजयी निपुणता में अकथनीय, क्रोध में भरे हुए, एक दूसरे को विजय करने की इच्छा से युद्ध करने लगे वह दोनों वीरता के वचनों से आपस में एक दूसरे को कहते थे कि तुम अपने किये का बदला और मेरी भुजाओं का वल देखों ॥

ततोऽर्ज्जनस्य भुजायोर्वीर्यमप्रतिमं भुवि । ज्ञात्वा वैकर्त्तनः कर्णः संरव्धः समयोधयत् ॥११॥ अर्जुनेन प्रयुक्तांस्तान् वाणान् वेगवतस्तदा । प्रतिहृत्य ननादोचैः सैन्यानि तदप्रजयन् ॥१२॥

आदिपर्व-पंचचत्वारिंशाध्याय

ee ş

अर्थ-तबविकत्तनका पुत्रकर्ण अर्जुन की भुजाओं का संसार में अनुपम पराक्रम समझ सावधान होकर युद्ध करने लगा, कर्ण ने अर्जुन के फेंके हुए वेगवान वाणों को रोककर उच्च स्वर से गर्जना की, तब कर्ण का सब सेनाओं ने सत्कार किया ॥ कर्ण उवाच

तुष्यामि ते विषमुख्यभुजवीर्यस्य संयुगे । अविषादस्य चैवास्य शस्त्रास्त्रविजयस्य च ॥१३॥ किं त्वं साक्षाद्र धनुवेदो रामो वा विषमत्तम । अथ साक्षाद्र हरिहयः साक्षाद्रवा विष्णुरच्युतः॥१४॥

अर्थ-कर्ण वोठा कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! इस रणभूमी में तेरी भुजाओं के पराक्रम, तुझे विषाद रहित तथा तेरे कास-असों के प्रयोग को देखकर में वड़ा प्रसन्न हुआ हूं, हे श्रेष्ठ विष ! क्या तुम साक्षाद धनुर्वेद की मूर्ति हो वा परशुरांम हो अथवा साक्षाद इन्द्र हो वा च्युत न होने वाले साक्षाद विष्णु हो ? ॥

आत्मप्रच्छादनार्थं वै बाहुवीर्यमुपाश्रितः । विप्ररूपं विधायेदं मन्ये मां प्रति युध्यसे ॥१५॥ न हि मामाहवे कुद्धमन्यः साक्षाच्छचीपतेः । पुमान् योधियतुं शक्तः पाण्डवादा किरीटिनः॥१६॥

अर्थ-हे ब्राह्मण! मैं समझता हूं कि तुम उपरोक्त पुरुषों में से कोई एक हो और अपने छिपाने के लिये ब्राह्मण का वेश धारण कर रहे हो, क्योंकि जब मैं युद्ध में क्रोधयुक्त होजाता हूं तब साक्षात इन्द्र तथा पाण्डुपुत्र अर्जुन के सिवाय कोई अन्य पुरुष मेरे साथ युद्ध नहीं करसक्ता ॥ तमेवं वादिनं तत्र फाल्यनः प्रत्यभाषत । नास्मि कर्ण धर्ववदो नास्मिरामप्रतापवान् । ब्राह्मणोऽस्मि युधां श्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥१७॥

अर्थ-इस मकार कहते हुए कर्ण से अर्जुन ने कहा कि हे कर्ग ! न मैं धनुर्वेद की मूर्ति हूं और नाही मतापी परशुराम हूं किन्तु मैं युद्ध करने वाले तथा शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं॥

ब्राह्मे पौरन्दरे चास्त्रे निष्ठितो ग्रहशासनात् । स्थितोऽस्म्यद्य रणे जेतुं त्वा वै वीर स्थिरो भव।।१८॥

अर्थ-हे वीर ! मैं गुरु की शिक्षा से ब्रह्मसम्बन्धी तथा इन्द्र सम्बन्धी अस्त्रविद्या में परिपूर्ण आज तुझे युद्ध में जीतने के लिये खड़ा हुं तु तैय्यार रह ॥

वैशम्पायन उवाच एवमुक्तस्तु राधेयो युद्धात् कर्णोन्यवर्तत । ब्राह्मस्तेजस्तदाजय्यं मन्यमानो महारथः ॥१९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! अर्जुन के ऐसा कहने पर महावीर कर्ण ब्राह्मण के तेज को अजय समझ युद्ध से हटकर चल दिया ॥

अपरिमन्रणोद्देशे वीरौ शत्यवृकोदरौ । बिलनो युद्धसम्पन्नो विद्यया च बलेन च ॥२०॥ अन्योन्यमाहूयन्तौ तु मत्ताविव महागजौ । मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव निघन्तावितरेतरम् ॥२१॥ अर्थ-युद्ध के दूसरे स्थल में वलवान तथा युद्ध में परिपूर्ण, शल्य और भीमसेन अपनी विद्या तथा वल द्वारा मह युद्ध करते हुए वह मतवाले दो हाथियों के समान एक दूसरे को धिकयाते हुए मुक्कों और घुटनों की चोटों से परस्पर महार करने लगे॥

प्रकर्षणाकर्षणयोरभ्याकर्षविकर्षणैः। आचकर्षतुरन्योऽन्यं मुष्टिभिश्चापि जन्नतुः ॥२२॥ ततश्चटचटाशब्दः सुघोरे। ह्यभवत्तयोः। पाषाणसम्पातनिभैः प्रहारेरिभजन्नतुः। सुहूर्त्तं तौ तदान्योन्यं समरे पर्यकर्षताम् ॥२३॥

अर्थ-वह दोनों प्रकर्षण=दूर फेंकते, आकर्षण=नीचे गिराते, अध्याकर्षण=अपनी ओर खेंचते और विकर्षण=तिरछा फेंकते हुए एक दूसरे को धिकयाते तथा मुक्के मारने छगे, उस समय उन दोनों का बड़ा भयानक पटापट शब्द होने छगा और वह एक दूसरे को पत्थर की चोटों के समान मुक्कों से पीटने छगे,इस प्रकार संब्रामभूमि में घड़ी भर वह दोनों एक दूसरे को खेंचते रहे ॥

ततो भीमः समुत्क्षिप्य बाहुभ्यां शल्यमाहवे । अपातयत् क्रुरुश्रेष्ठो ब्राह्मणा जहसुस्तदा ॥२४॥ तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुष्पभः । पच्छल्यं पातितं भूमो नावधीदबिलनं बली ॥२५॥

अर्थ-इसके पश्चाद कुरुवंशियों में श्रेष्ठ भीमसेन ने युद्ध में शल्य को भुजाओं से ऊंचा उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया और उस समय सब ब्राह्मण इंसने लगे, वहां महात्मा बलवान भीमसेन ने यह आश्चर्यजनक दृश्यदिखाया कि उसवलवान शल्य की भूमी पर गिराकर भी वध नहीं किया ॥

पातिते भीमसेनन शल्ये कर्णे च शिक्कते । शिक्कताः सर्वराजानः परिवर्ब्धकोदरम् ॥ २६ ॥ ऊचुश्च सहितास्तत्र साध्विमौ ब्राह्मणर्षभौ । विज्ञायेतां क्वजन्मानौ क्वनिवासौ तथैव च ॥२७॥

अर्थ-इस प्रकार भीमसेन द्वारा शल्य के गिरने तथा कर्ण के शंकित होकर लौट जाने पर वह सब राजा भयभीत हो और भीमसेन के चारो ओर खड़े होकर एक स्वर से बोले कि इनश्रेष्ठ ब्राह्मणों को धन्यबाद है, पर यह अवज्य जानना चाहिये कि इन दोनों का जन्म तथा निवास स्थान कहां है ॥

को हि राधासुतं कर्ण शक्तो योधियतुं रणे । अन्यत्र रामाद् द्रोणाद्धा पाण्डवाद्धा किरीटिनः॥२८॥ कृष्णाद्धा देवकीपुत्रात् कृषाद्धापि शरद्धतः । को वा दुर्योधनं शक्तः प्रतियोधियतुं रणे ॥२९॥

अर्थ-परश्रराम, द्रोणाचार्य तथा पाण्डुपुत्र अर्जुन के सिवाय अन्य कौन है जो राधापुत्र कर्ण के साथ युद्ध करसके तथा देवकीपुत्र कृष्ण, शरद्वत के पुत्र कृपाचार्य से भिन्न अन्य कौन है जो दुर्योधन के साथ युद्ध करने में समर्थ हो ॥

तथैव मदाधिपतिं शल्यं बलवतांवरम् । बलदेवादृते वीरात् पाण्डवाद्वा वृकोदरात् ॥३०॥

आदिपर्व-पंचचत्वारिंशाध्याय

369

वीराहुयोंधनाद्धान्यः शक्तः पातियतुं रणे । क्रियतामवहारोऽस्माद्युद्धाद्रबाह्मणंसवृतात् ॥३१॥

अर्थ-इसी प्रकार वीर बलभद्र वा पाण्डुपुत्र भीमसेन अथवा बीर दुर्योशन के सिवाय और कोई नहीं जो मद्रदेश के राजा बलवानों में श्रेष्ठ शल्य को युद्ध में गिरा सके, सो अब ब्राह्मणों के साथ युद्ध से निशृत्त होजाना चाहिये॥

वैशम्पायन उवाच

तत्कर्म भीमस्य समीक्ष्य कृष्णः कुन्ती सुतौ तौ परिशंकपानः । निवारयामास मही-पतींस्तान्धर्मेण लब्धेत्यसनीय सर्वान् ॥ ३२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजद! भीमसेन का वह अद्भुत पराक्रम देखकर उन दोनों को कुन्ती के पुत्र समझते हुए कृष्ण ने सब राजाओं को विनित करके यह कहते हुए वहां से हटा दिया कि इन्होंने धर्मपूर्वक द्रोपदी को प्राप्त किया है ॥

एवं ते विनिवृत्तास्तु युद्धायुद्धविशारदाः । यथावासं ययुः सर्वे विस्मिता राजसतमाः ॥३३॥ वृत्तो ब्रह्मोत्तरो रङ्गः पाञ्चाली ब्राह्मैणवृता । इति ब्रुवन्तः प्रययुर्वे तत्रासन् समागताः ॥३४॥

अर्थ-वह युद्ध में निपुण राजा इस प्रकार वहां से निवृत्त हुए २ आश्चर्यमय हो अपने २ घर गये, और जो अन्य पुरुष भी वहां आये थे वह यह कहते हुए चले गये कि ब्राह्मणों की विजय के साथ रङ्गोत्सव समाप्तहुआ और ब्राह्मणों ने द्रौपदी को वर लिया॥

ब्राह्मणैस्तु प्रतिच्छन्नो रौरवाजिनवासिभिः। कृछ्रेण जग्मतुस्तो तु भीमसेनधनञ्जयौ ॥३५॥

अर्थ-मृगदर्भ धारण करने वाले ब्राह्मणों से घिरे हुए भीम-सेन और अर्जुन कठिनता से घर की ओर गये ॥ विमुक्ती जनसंबाधाच्छत्रभिः परिवाक्षिती । कृष्णयानुगती तत्र नृवीरी तो विरेजतुः । पौर्णमास्यां घनेश्वकी चन्द्रसूर्याविवोदिती ॥३६॥

अर्थ-वह दोनों वीर पुरुष मनुष्यों के समूह से पृथक हो राष्ट्रओं से घायल किये हुए तथा द्रोपदी को साथ लिये हुए वहां पर परम शोभायमान प्रतीतहोते थे, जैसे पौर्णमासी के दिन बिना बादल के आकाश में उदय हुए २ चांद और सूर्य शोभायमान प्रतीत होते हैं॥

तेषां माता बहुविधं विनाशं पर्यचिन्तयत् । अनागच्छत्सपुत्रेषु भैक्ष्यकालेऽभिगच्छति ॥३७॥ धार्त्तराष्ट्रेहिताः नस्युर्विज्ञाय क्रुरुपुज्जवाः । इत्येवं चिन्तयामास सुतस्नेहावृता पृथा ॥३८॥

अर्थ-उनकी माता कुन्ती पुत्रों के न आने पर तथा भिक्षा का समय व्यतीत होता देखकर बहुत प्रकार से पुत्रों के नाश होने की शंका करने लगी, पुत्रमेम से भरी हुई कुन्ती यह सोच करने लगी कि कदाचित उन कुरुतंश श्रेष्ठ मेरे पुत्रों को धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पहचानकर मार दिया हो तो आश्चर्य नहीं ॥ ततः सप्त जनप्राये दुर्दिने मेघसंप्लुते । महत्यथापुराह्णे तु घनैः सूर्य इवारृतः । ब्राह्मणेः प्राविशक्तत्र जिष्णुर्भागववेश्म तत् ॥३९॥

अर्थ-तदनन्तर मध्याह्न के समय जब बादलों की घटा तथा वर्षा से सुर्य्य आच्छादित होरहा था और मनुष्य प्रायः सोये हुए थे तब ब्राह्मणों के सहित अर्जुन उस भागव=कुम्हार के घर में प्रविष्ट हुआ ॥

इति पंचचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पट्चत्वारिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

--०%ॐॐ० वैद्याम्पायन उवाच

मत्वा तु तां भागवकर्मशालां पार्थी पृथां-प्राप्य महानुभावौ। तांयाज्ञसेनीं परमप्रतीतौ भिक्षेत्यथावेदयतां नराग्र्यौ॥ १॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! उन दोनों महानुभाव कुन्ती के श्रेष्ठ पुत्रों ने उस कुम्हार की कुटि में पहुंच और कुन्ती के पास जाकर नित्य के पारेचय अनुसार द्रौपदी को लक्ष्य करके "भिक्षा ले आये" ऐसा उनसे निवेदन किया ॥

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भंक्तित समेत्य सर्वे । पश्चाच कुन्ती प्रसमीक्ष्य-कृष्णां कष्टं मया भाषितमित्युवाच ॥ २ ॥ अर्थ-उस समय कुन्ती कुटी के भीतर थी, उसने पुत्रों तथा द्रौपदी को बिना देखे ही अन की भिक्षा समझकर आज़ा दी कि सब मिलकर बांट खाओ, परंतु पीछे कुन्ती द्रौपदी को देखकर बोली कि शोक! मैंने ऐसी आज़ा दी ॥

सा धर्मभीता परिचिन्तयन्ती तां याज्ञसेनीं-परमप्रतीताम् । पाणौ गृहीत्वोपजगाम कुन्ती युधिष्ठिरं वाक्यसुवाच चेदम् ॥३॥

अर्थ-कुन्ती धर्म के भय से चिन्ता करती हुई उस परम परिचित द्रौपदी का हाथ पकड़कर युधिष्टिर के पास गई और यह बचन बोली कि:-

इयं तु कन्या दुपदस्य राज्ञस्तवानुजाभ्यां मिय सिन्नसृष्टा।यथोचित पुत्रमयापि चोक्तं समेत्य भुंकेति नृप प्रमादात्॥ ४॥

अर्थ-हे राजन ! यह राजा द्रुपद की कन्याहै और तेरे दोनों छोटे भाइयों ने मेरे सामने इसको निवेदन किया था, परन्तु मैंने भूल से "प्रतिदिन के समान भिक्षा समझकर" यह कह दिया कि तुम सब मिलकर भोगो ॥

> एतत् कथं नानृतमुक्तमद्य मया भवेत्कु-रूणामृषभ त्रवीहि। पात्रालराजस्यसुता-मधर्मो न चोपवर्त्तत न विश्रमेच ॥ ५॥

अर्थ-हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ ! तुम ऐसा उपाय बताओ कि मेरा यह कथन असत्य भी न हो और पाञ्चालराज की पुत्री को पाप भी न लगे तथा वह भ्रम में भी न पड़े ॥

आदिपर्व-षट्चत्वारिंशाध्याय

364

वैशम्पायन उवाच स एवमुक्तो मतिमान् नृवीरो मात्रा मुहूर्त

तु विचिन्त्य राजा। कुन्तीं समाश्वास्य कुरुप्रवीरो धनञ्जयं वाक्यमिदं बभाषे ॥६॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! माता के ऐसा कहने पर वह बुद्धिमान बीर पुरुषश्रेष्ठ कुरुवंशी राजा युधिष्ठिर कुछ काल सोचकर कुन्ती को धीरज दे अर्जुन से बोला कि :-

त्वया जिता फाल्यन याज्ञसेनी त्वयेव शोभि-ष्यति राजपुत्री । प्रज्वाल्यतामिशमित्रसाह गृहाण पाणि विधिवत् त्वमस्याः ॥ ७ ॥ अर्थ-हे अर्जुन!द्रौपद्रीको तैने जीता है, इसल्यियहराजकुमारी

अथ-ह अजुन !द्रापदाका तन जाता है, इसालय यह राजकुमारी तुम्हारे साथ ही शोभायमान रहेगी,हे शञ्जनाशक !तुम विवाह के लिये अप्रिजलाओ और विधिपूर्वक पाणिग्रहण=इसके साथ विवाह करो ॥

अर्जुन उवाच

मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं कृथा न धर्मोऽय-मिशिष्टदृष्टः । भवान्निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥ ८ ॥ अहं ततो नकुलोऽनन्तरं मे पश्चादयं सह-देवस्तरस्वी । वृकोदरोऽहं च यमो च राजन्नियं च कन्या भवतो नियोज्याः ॥९॥ अर्थ-अर्जुन ने कहा कि हे राजेन्द्र ! तुम मुझे अर्धम का भागी भत बनाओ, यह शिष्ट पुरुषों का कहा हुआ धर्म नहीं, पहले आप इस द्रौपदी के अधिकारी हैं, पश्चात यह महाबाहु भीमसेन है जिसने अद्भुत पराक्रम से इसे जीता है, इसके पश्चात में और मेरे पश्चात यह बलवान नकुल, सहदेव भी अधिकारी हैं, हे राजन ! भीमसेन, में, नकुल, सहदेव तथा यह द्रौपदी हम सब आपके अधीन हैं।

एवंगते यत् करणीयमत्र धर्म्य यशस्यं कुरु तिद्वचिन्त्य।पाञ्चालराजस्य हितं च यत्स्यात् प्रशाधि सर्वे स्म वशे स्थितास्ते ॥ १०॥

अर्थ-ऐसी दशा में जो कर्तव्य धर्मयुक्त तथा यश के बढ़ाने वाला हो तथा जिसमें पांचाल देश के राजा का हित भी हो वही सोचकर करें और हमें यथोचित आज्ञा दें, हम सब आपके अधीन हैं॥

वैशम्पायन उवाच

जिष्णेर्विचनमाज्ञाय भक्तिस्नेहसमन्वितम् । दृष्टिं निवेशयामासुः पाञ्चाल्यां पाण्डनन्दनाः ॥११॥ दृष्ट्वा ते तत्र पश्यन्तीं सर्वे कृष्णां यशस्विनीम् । सम्प्रेक्षान्योन्यमासीना हृद्येस्तामधारयन् ॥१२॥

अर्थ—तैशम्यायन बोले कि हे राजन ! कुरुवंश के भूषण सन पाण्डवों ने अर्जुन की भक्ति तथा प्रेम से भरी हुई बात सुनकर द्रौपदी की ओर दृष्टि डाली,वह लोग एक दृसरे की ओर देखते हुए कीर्तिमती कृष्णा को देखकर उसको अपने २ हृदय में धारण कर सुप हो रहे ॥

तेषां तु द्रौपदीं दृष्ट्वा सर्वेषामिनतीजसाम् । सम्प्रमथ्येन्द्रिप्रामं प्रादुरासीन्मनोभवः ॥१३॥

तेषामाकारभावज्ञः क्रन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। अत्रवीत् सहितान् भ्रातृन् मिथो भेदभयान्नृपः। सर्वेषां द्रीपदी भार्या भविष्यति हि नः शुभा ॥१४॥

अथ-उन सब महातेजिस्वयों के हृदयों में द्रौपदी के दर्शन से इन्द्रियसमूह पर आक्रमण करके कामदेव जाग उठा, तब कुन्ती के बड़े पुत्र राजा युधिष्टिर अपने सब भाइयों को परस्पर चित्त में भेद रखते हुए देख तथा उनके आकार से उनका अभिमाय समझकर बोले कि यह सुन्दरी द्रौपदी हम सब भाइयों की भार्या होगी ॥

बैशम्पायन उवाच

भ्रातुर्वचस्तत् प्रसमीक्ष्य सर्वे ज्येष्ठस्य पाण्डो-स्तनयास्तदानीम् । तमेवार्थं ध्यायमाना मनो-भिः सर्वे च ते तस्थुरदीनसत्त्वाः ॥ १५॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! वह सव बड़े भाई युधिष्ठिर की बात पर विचार करके उसी बात को अपने २ मन में चिन्तन करते हुए अन्त में दृढ़ चित्त होकर बैठ गये ॥

वृष्णिप्रवीरस्तु क्रम्यवीरानाशंसमानः सह रौहिणेयः । जगाम तां भागव कर्मशालां यत्रासते ते पुरुषप्रवीराः ॥ १६॥

अर्थ-इधर बृष्णिवंश के वीर कृष्णजी बलराम के सहित पाण्डवों से मिलने की आशा करते हुए उस कुम्हार की कुटी में पहुंचे जहां वह बीर पुरुष पाण्डव वैठे हुए थे॥ तत्रोपिवष्टं पृथुदीर्घबाहुं ददर्श कृष्णः सह-गौहिणेयः । अजातशत्रुं परिवार्यतांश्चाप्यु पोपविष्टान् ज्वलनप्रकाशान् ॥ १७ ॥

अर्थ-तब वलदेव समेत कृष्णने वहां बैठे हुए महाबाहु युधिष्ठिर और उनके चारो ओर ऋम से बैठे हुए अग्नि के समान तेजस्वी अन्य भाइयों को भी देखा ॥

तताऽत्रवीद् वासुदेवोऽभिगम्य क्वन्तिस्तिं धर्मभृतां वरिष्ठम् । कृष्णोऽहमस्मीति नि-पीडच पादौ युधिष्ठिरस्याजमीदस्य राज्ञः ॥१८॥

अर्थ-तब वसुदेव के पुत्र कृष्ण ने धर्मात्माओं में श्रेष्ठ अज-मीद राजा के वंशधर कुन्ती पुत्र युधिष्ठिर के समीप पहुंच और उनके चरण पकड़कर कहा कि मैं कृष्ण हूं॥

तथैव तस्याप्यनुरोहिणयस्तौ चापि हृष्टाः कुरवोऽभ्यनन्दन् । पितृष्वसुश्चापि यदु-प्रवीरावगृह्णतां भारतमुख्य पादौ ॥१९॥

अर्थ-इसी प्रकार कृष्ण के पश्चात वलराम ने उनको प्रणाम किया और उन कुरुवंशियों ने उनदोनों को हर्ष के साथ आशीर्वाद दिया, पश्चात उन दोनों यदुवंशी वीरों ने अपनी बुआ कुनती के चरणों में प्रणाम किया ॥

अजातशत्रुश्च कुरुप्रवीरः पप्रच्छ कृष्णं कु-शलं विलोक्य । कथं वयं वासुदेव त्वयेह गूढ़ा वसन्तो विदिताश्च सर्वे ॥ २० ॥

आदिपर्व-षद्चत्वारिंशाध्याय

368

अर्थ-कुरुवंशी वीर अजातशत्र युधिष्ठिर ने कृष्ण को देख कर कुशल पूछी और कहा कि हे वासुदेव ! आपने इम सब छिप कर रहते हुओं को कैसे जान लिया॥

तमब्रवीद् वासुदेवः प्रहस्य गूढोऽप्यग्निर्जाः यत एव राजन् । तं विक्रमं पाण्डवेयानती-त्य कोऽन्यः कर्ता विद्यते मानुषेषु ॥ २१ ॥

अर्थ-तव कृष्ण इंसकर युधिष्ठिर से बोले कि हे राजन् ! छिपा हुआ भी अग्नि मतीत हो ही जाता है, भला पाण्डवों के सिवाय मनुष्यों में अन्य कौन है जो ऐसे पराक्रम के काम करसक्ता हो॥

दिष्ट्या सर्वे पावकादिप्रमुक्ता यूयं घोरात् पाण्डवाः शत्रुसाहाः। दिष्ट्या पापोधतराष्ट्रस्य पुत्रः सहामात्यो न सकामोऽभविष्यत्॥२२॥

अर्थ-सौभाग्य की बात है कि आप सब शच्चनाशक पाण्डव लोग उस भयानक लाक्षाग्रह की आग्ने से बच गये, और यह भी सौभाग्य की बात है कि धृतराष्ट्र के पापी पुत्र दुर्योधन तथा उसके मन्त्री पुरोचन की कामना पूर्ण न हुई ॥

भद्रं वोऽस्तु निहितं यद् ग्रहायां विवर्द्धध्वं ज्वलना इवैधमानाः । मा वो विदुः पार्थिवाः केचिदेव या-स्यावहे शिविरायव तावत् । सोऽनुज्ञातः पाण्डवेना-व्ययश्रीः प्रायाच्छीघं बलदेवेन सार्द्धम् ॥ २३ ॥

अर्थ-जो कुछ भी सुख सम्पत्ति गुफा में छिपी हुई है वह तुम्हें माप्त हो और तुम अग्नि की भांति सदा छुद्धि करते रहो, अब हम दोनों अपनी सेना के ढेरे में ही जाते हैं जिससे अन्य राजा लोग तुम्हें न जान छें, नित्य शोभायुक्त कृष्ण ऐसा कह और युधिष्ठिर से जाने की अनुमित लेकर बलराम के सहित शीघ चले आये॥

इति षट्चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यत

वैशम्पायन उवाच

धृष्टग्रुम्नस्तु पाञ्चाल्यः पृष्ठतः कुरुनन्दनौ । अन्वगच्छत्तदा यान्तौ भागवस्य निवेदाने ॥१॥ सोऽज्ञायमानः पुरुषानवधाय समन्ततः । स्वयमारान्निलीनोऽभृद् भागवस्य निवेशने ॥२॥

अर्थ-चैशम्पायन बोले कि हे राजन ! पाञ्चाल देश के राजा हुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न उस समय कुम्हार के घर में घुसते हुए भीमसेन और अर्जुन के पीछे २ चला गया और वह चारो ओर अपने पुरुषों को नियत करके स्त्रयं गुप्त रूप से उस कुम्हार के घर के समीप छिपकर खड़ा होगया ॥

सायं च भीमस्तु रिपुप्रमाथी जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ। भैक्ष्यं चरित्वा तु युधिष्ठि-राय निवेदयाश्रकुरदीनसत्त्वाः ॥ ३ ॥ अर्थ-जब धृष्टयुम्न ने देखा कि सायकाल में शञ्च्यातक भीमसेन, अर्जुन और महानुभाव जोड़ले भाई नकुल, सहदेव भिक्षा करके लाये और उन्होंने उदारभाव से वह भिक्षा युधिष्ठिर के सामने रखदी ॥

ततस्तु क्रन्ती द्रुपदात्मजां तामुवाच काले वचनं वदान्या। त्वमग्रमादाय कुरुष्व भद्रे-बलिं च विप्राय च देहि भिक्षाम्॥ ४॥

अर्थ-तब उदारभाव कुन्ती ने द्रौपदी से समयानुसार कहा कि है भद्रे ! तुम इस भिक्षा को छेकर पहले जीव जन्तुओं को बिल तथा किसी ब्राह्मण को भी भिक्षा दो, और :—

ये चान्नमिच्छन्ति ददस्य तेभ्यः परिश्रिता ये परितो मनुष्याः । ततश्च देषं प्रविभज्य-शीघ्रमर्द्धं चतुर्द्धां मम चात्मनश्च ॥ ५ ॥

अर्थ-जो दीन मनुष्य यहां चारो ओर खड़े हुए भोजन की इच्छा करते हैं उनको भी इस भिक्षा में से दो, इसके पश्चाद शे-सब भिक्षा के दो भाग करके एक भाग में से चार तथा एक मेर एक अपना इस मकार छ भाग करो, और :-

अर्द्ध तु भीमाय च देहि भद्रे य एष नागर्षभ-तुल्यरूपः । गौरो युवा संहननोपपन्न एषो-हि वीरो बहुभुक् सदैव ॥ ६ ॥ अर्थ-हे भद्रे ! आधा भाग भीमसेन को दे, जो यह हाथी के समान महाकाय, गौरवर्ण, युवा तथा सुन्दर शरीर वाला है, क्योंकि यह वीर सदा से ही बहुत भोजन करता है।

सा हृष्टरूपेव तु राजपुत्री तस्थो वचः साधु-विशङ्कमाना । यथावदुक्तं प्रचकार साध्वी-ते चापि सर्वे बुभुजुस्तदन्नय् ॥ ७ ॥

अर्थ-तब वह धर्मात्मा राजकुमारी उनकी किसी बात पर शंका न करती हुई कुन्ती की आज्ञानुसार मसन्नतापूर्वक रहने लगी और जैसा कुन्ती ने कहा वैसा ही करती रही,तदनन्तर उन सबों ने मिलकर वह भिक्षा का अन्न खाया ॥

कुशैस्तु भूमौ शयनं चकार माद्रीपुत्रः सहदे-वस्तरस्वी । तथा स्वकीयान्यजिनानि सर्वे संस्तीर्य वीराः सुषुपुर्धरण्याम् ॥ ८॥

अर्थ-माद्री के पुत्र बलवान सहदेव ने कुशा की साथरी बनाई और वह सब बीर पाण्डव उस पर अपने र मृगचर्म बिछाकर पृथ्वी पर सो रहे ॥

ते तत्र श्र्राः कथयां त्रभुद्धः कथा विचित्राः पृतनाधिकाराः । अस्त्राणि दिव्यानि रथांश्र नागान् खड्गान् गदाश्रापि परव्वधांश्र ॥९॥

अर्थ-उन वीर पाण्डवों ने सोते समय विचित्र प्रकार की युद्ध-विषयक बात चीत की और अद्भुत प्रकार के शस्त्रों, रथों, हाथियों, तलवारों, गदाओं और परसा, आदि हथियारों का वर्णनकरते रहे॥ तेषां कथास्ताः परिकीर्त्यमानाः पञ्चालराजस्य स्रतस्तदानीम् । शुश्राव कृष्णां च तदा नि-षण्णां ते चापि सर्वे ददृशुर्मनुष्याः ॥१०॥

अर्थ-उनकी कही हुई सब कथायें पाञ्चालराज के पुत्र धृष्टुगुक्त ने उस समय सुनीं और उसने तथा उसके सब साथियों ने द्रौपदी को वहां बैठी हुई देखा ॥

धृष्टद्युम्नो राजपुत्रस्तु सर्ववृत्तं तेषां कथितं चैव रात्रो । सर्व राज्ञे द्वपदायाखिलेन नि-वेदयिष्यंस्त्वरितो जगाम ॥ ११ ॥

अर्थ-तब राजकुमार धृष्ट्युम्न यह सब समाचार तथा रात्रिमें उनकी आपस में हुई सब बातचीत राजा द्रुपद से पूर्णतया कहने के लिये शीघ चला गया ॥

पञ्चालराजस्तु विषण्ण रूपस्तान् पाण्डवानप्रतिविन्दमानः । धृष्टद्युम्नं पर्यपृच्छन्महात्मा
क्व सा गता केन नीता च कृष्णा ॥१२॥
अर्थ-महात्मा पाञ्चालनरेश द्रुपद ने पाण्डवों को न पहचानने
के कारण विषाद करते हुए अपने पुत्र धृष्टद्युम्न से पूछा कि
पुत्री कृष्णा कहां गई और उसको कौन लेगया है ?॥

किचन श्रुद्रेण न हीनजेन वैश्येन वा क-रदेनोपपन्ना। किचत्पदं मूर्धिन न पङ्कदिग्धं काचन्न माला पतिताश्मशाने ॥ १३॥ 368

महाभारत

अर्थ-कृष्णा को कोई श्रद्र वा दारिंद्र का पुत्र अथवा कर=टैक्स देने वाला कोई वैश्य तो नहीं लेगया ? किसी नीच का मैला पांव तो हमारे सिर पर नहीं रखा गया ? फूलों की माला मरघट में तो नहीं जापड़ी ?॥

किन्न तप्ये परमप्रतीतः संयुज्य पार्थेन नर्र्षभेण । वदस्व तत्त्वेन महानुभाव कोऽसौ विजेता दुहितुर्ममाद्य ॥ १४ ॥

अर्थ-हे महानुभाव ! क्या ऐसा तो नहीं हुआ कि मेरा संबन्ध कुन्तीपुत्र सिंहपुरुष अर्जुन के साथ होगया हो और इससे परम संतुष्ट होकर मुझे पछताना न पड़े ? सो तुम मुझे ठीक २ बताओं कि मेरी पुत्री को जीतने वाला पुरुष कीन हैं॥

विचित्रवीर्यस्य स्तस्य किचल्करं प्रवीरस्य भियन्ति पुत्राः। किचित्तं पार्थेन यवीय-साद्य धर्नुगृहीतं निहतं च लक्ष्यम् ॥१५॥

अर्थ-क्या ऐसा तो नहीं कि कुरुवंशी वीर विचित्रवीर्य के पौत्र अभी तक जीवित हों और पृथा=कुन्ती के छोटे पुत्र अर्जुन ने ही धनुष उटा लक्ष्य को बींधकर गिराया हो॥

इति सम्वत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच ततस्तथोक्तः परिहृष्टरूपः पित्रे शशंसाथ स राजपुत्रः । धृष्टशुप्तः सोमकानां प्रवहीं वृत्तं यथा येन हता च कृष्णा ॥ १ ॥

अर्थ-वैशम्पायन दोले कि हे राजन ! तव सोमकवंश के भूषण राजकुमार धृष्ट्युम्न ने पिता के ऐसा कहने पर मसन्नता- पूर्वक वह सब बृत्तान्त तथा जिसने कृष्णा को प्राप्त किया था उसका सब समाचार कहा ॥

योऽसौ युवा व्यायतलोहिताक्षः कृष्णाजिनी देवसमानरूपः । यः कार्मुकाग्रयं कृतवानिध-ज्यं लक्ष्यं च यः पातितवान् पृथिव्याम् ॥२॥

अर्थ-वह युवा जो वह २ छाछ नेत्रों वाछा तथा काछ मृग-चर्म को धारण किये हुए था और देवताओं के समान जिसका सुन्दर रूप था, जिसने उस भारी धनुष पर चिछा चढ़ाया और छक्ष्य को बींधकर पृथ्वी पर गिराया वह अर्जुन था ॥

कृष्णा प्रगृह्याजिनमन्वयात्तं नागं यथा नागवधः प्रहृष्टा । अमृष्यमाणेषु नरा-धिपेषु कुद्धेषु वै तत्र समापतत्सु ॥३॥

अर्थ-उस समय कृष्णा उसके मृमचर्म का आंचल पकड़कर उसके पीछे २ गई, जैसे हाथी के पीछे हर्षपूर्वक हथिनी चली

महाभारत

जाती है, तब अन्य सब राजा लोग ईर्धा करते हुए क्रोध में भरकर उसकी ओर युद्ध के लिये दौड़कर आये, और :-

ततो परः पार्थिवसंघमध्ये प्रवृद्धमारुज्य महीपरोहम् । प्रकालयन्नेव स पार्थिवी-घान् कुद्धोऽन्तकः प्राणभृतो यथैव ॥४॥

अर्थ-उससे दूसरा पुरुष भीमसेन था जो राजाओं के समु-दाय के बीच बड़े वृक्ष को उखाड़कर कोच में भरा हुआ उनको मारने के लिये उद्यत हुआ था, जैसे पाणियों को मृत्यु मारता है॥

तौ पार्थिवानां मिषतां नरेन्द्र कृष्णामुपा-दाय गतौ नराप्रयौ।विभाजमानाविव चन्द्र सूर्यो बाह्यां पुराद्वार्गव कर्मशालाम् ॥५॥

अर्थ-हे राजन ! वह दोनों चन्द्रमा और सूर्य के समान मकाशमान श्रेष्ठ पुरुष सब राजाओं के हलचल मचाते हुए भी कृष्णा को साथ लेकर नगर के बाहर एक कुम्हार की कुटीमें चले गये॥

तत्रोपविष्टार्चिरिवानलस्य तेषां जिनत्रीति मम प्रतर्कः। तथा विधेरेव नरप्रवीरेरुपोपविष्टेस्त्रिभरिमकल्पैः॥६॥

अर्थ-वहां आग्ने की ज्वाला के समान तेजवाली एक स्त्री बैठी हुई थी और मेरा अनुमान है कि वह उन पाण्डवों की माता है, उसके पास २ उसी प्रकार के आग्निसमान तेजस्वी तीन वीर पुरुष भी बैठे हुए थे॥ तस्यास्ततस्तावाभिवाद्य पादोवक्ता च कृष्णा त्वभिवादयोति । स्थितां च तत्रेव निवेद्य कृष्णां भिक्षा प्रचाराय गता नराष्ट्रयाः॥७॥

अर्थ-तव उन दोनों पुरुषों ने जाकर उस माता के चरणों में प्रणाम किया और कृष्णा से कहा कि प्रणाम कर, पश्चाद कृष्णा को वहीं टहरने के लिये कहकर वह श्रेष्ठ पुरुष भिक्षा करने के लिये चले गये॥

तेषां तु भैक्ष्यं प्रतिगृह्य कृष्णा दत्त्वा विंठ ब्राह्मणसाच कृत्वा । तां चैव वृद्धां परिवेष्य तांश्च नरप्रवीरान् स्वयमप्यभुक्त ॥८॥

अर्थ-जब वह भिक्षा लेकर आये तब कृष्णा ने उनसे भिक्षा लेकर मथम उसमें से बिलवैक्वदेव किया, फिर ब्राह्मण को देकर पश्चाद उस वृद्धा माता और पांचो वीर पुरुषों को भी परोसा तथा स्वयं भी भोजन किया ॥

सुप्तास्तु ते पार्थिव सर्व एव कृष्णा च तेषां चरणोपधाने । आसीत्पृथिव्यां शयनं च तेषां दर्भाजिनाग्रास्तरणोपपन्नम् ॥ ९ ॥

अर्थ-हे राजन ! जिस समय वह सब सोये तो कृष्णा उन सबके चरणों की ओर सोई तथा उन सब ने पृथ्वी पर ही उत्तम कुशा और मृगचर्म विछाकर शयन किया ॥ ते नर्दमाना इवकालमेघाः कथा विचित्राः कथयां बभूवुः । न वैश्यशूद्रोपयिकीः क-थास्ता न च द्विजानां कथयन्ति वीराः ॥१०॥

अर्थ-उन वीर पुरुषों ने उस समय वर्षाकाल के मेघ समान गर्जते हुए विचित्र वातचीत कीं, वह वातें न तो वैक्य और श्रूढ़ों से संबन्ध रखती थीं और नाही ब्राह्मणों से किन्तु बीर राजाओं का प्रसंग था॥

निःसंशयं क्षत्रियपुङ्गवास्ते यथा हि युद्धं कथयन्ति राजन् । आशा हि नो व्यक्तमियं समृद्धामुक्तान् हि पार्थान् शृणुमोऽमिदाहात् ॥११॥

अर्थ-हे राजन ! यह लोग युद्ध की ही बातचीत करते रहे, इससे निःसन्देह वह क्षत्रिय वीर हैं और यह स्पष्ट है कि हमारी आशा पूर्ण होगई जैसा हमने सुना था कि पाण्डव अग्नि में जलने से बच गये हैं॥

यथा हि लक्ष्यं निहतं धनुश्च सज्यं कृतं तेन तथा प्रसद्य । यथा च भाषन्ति परस्परं ते छन्ना ध्रुवं ते प्रचरन्ति पार्थाः ॥ १२ ॥

अर्थ-और जिसमकार उस वीर ने बलपूर्वक धनुष पर चिल्ला चढ़ा उस लक्ष्य को वींधकर गिराया और जैसी वह आपस में बातचीत करते हैं, इन सब चिन्हों से स्पष्ट है कि वह कुन्ती के पुत्र छिपे हुए भ्रमण करते रहते हैं॥

ततः स राजा दुपदः प्रहृष्टः पुरोहितं प्रेषया-

आदिपर्व-अष्टचत्वारिशाध्याय

399

मास तेषाम् । विद्याम युष्मानिति भाषमा-णो महात्मनः पाण्डसुतास्तु कचित् ॥१३॥

अर्थ-तब राजा द्रुपद ने मसन्न होकर उनके पास अपने पुरोहित को भेजा और कहा कि हम आप लोगों को जानना चाहते हैं क्या आप महात्मा पाण्डु के पुत्र हैं ?॥

गृहीतवाक्यो नृपतेः पुरोधा गत्वा प्रशं-सामभिधाय तेषाम् । वाक्यं समग्रं नृप-तेर्थथावदुवाच चानुक्रमविक्रमेण ॥ १४ ॥

अर्थ-तव राजा का पुरोहित सन्देसा लेकर उनके समीप गया, पहले उसने उनकी प्रशंसा की पश्चाद राजा का सन्देसा क्रमपूर्वक यथावद कह सुनाया, कि:-

विज्ञातिमच्छत्यवनीश्वरो वः पश्चालराजो वरदो वराहीः । लक्ष्यस्य वेद्धारिममं हि दृष्ट्वा हर्षस्य नान्तं प्रतिपद्यते सः ॥१५॥

अर्थ-हे योग्य पुरुषो ! पाश्चालनरेश वरदायक राजा द्रुपद आप लोगों को जानना चाहते हैं, क्योंकि इस लक्ष्य के वींधने वाले को देखकर उनको अति आनन्द प्राप्त हुआ है जिसका कोई वारापार नहीं ॥

आख्यात च ज्ञाति कुलानुपूर्वी पदं शिरः सु द्विपतां कुरुध्वम् । प्रहलादयध्वं हृदयं ममेदं पश्चालराजस्य च सानुगस्य ॥१६॥ अर्थ-सो अब आप लोग अपने बन्धुओं तथा कुल की वंशावली बतावें और शच्चओं के मस्तकों पर चरण रखकर मेरे तथा सेवकवर्ग समेत पाञ्चलनरेश द्रुपद के हृदय को आनान्दित करें॥

पाण्डिहि राजा दुपदस्य राज्ञः प्रियः सखा चात्मसमो बभूव । तस्येष कामो दुहिता ममेयं स्तुषां प्रदास्यामि हि कौरवाय ॥१०॥

अर्थ-राजा पाण्डु द्रुपद राजा के प्यारे मित्र तथा आत्मा के समान थे और राजा द्रुपद की यह कामना थी कि मैं अपनी पुत्री को राजा पाण्डु के घर की वधु बनाउंगा ॥

अयं हि कामो दुपदस्य राज्ञो हिदिस्थितो नित्यमनिन्दिताङ्गाम् । यदर्जुनो वै पृथुदीर्घवाहुर्धमेंण विन्देत सुतां ममैताम् ॥ १८॥

अर्थ-द्रुपद राजा के हृदय में यह कामना थी कि महाबाहु अर्जुन धर्मपूर्वक मेरी इस सुन्दर पुत्री से विवाह करे ॥ अथोक्तवाक्यं हि पुरोहितं स्थितं ततो वि-

नीतं समुदीक्ष्य राजा । समीपतो भीममिदं राशास प्रदीयतां पाद्यमर्घ्यं तथास्मे। मान्यः पु-

रोधा द्वपदस्यराज्ञस्तस्मैप्रयोज्याभ्यधिकाहिषूजा।१९।

अर्थ-जब विनीत पुरे।हित सब बातें कहकर चुप होरहा तब राजा युधिष्ठिर ने उनकी ओर देखकर पास खड़े हुए भीमसेन को आज्ञा दी कि इनके चरण धोओ तथा जलादि से सत्कार

आदिपर्व-अष्टचत्वारिंशाध्याय

809

करो, क्योंकि यह राजा द्रुपद के माननीय पुरोहित हैं इसिल्ये इनकी विशेषतया पूजा करनी उचित है।।

भीमस्ततस्तत् कृतवान्नरेन्द्र तां चैव पूजां प्रति-गृह्म हर्षात् । सुखोपविष्टं तु पुरोहितं तदा युधिष्ठिरो ब्राह्मणीमत्युवाच ॥ २०॥

अर्थ-हे राजन ! तव भीमसेन ने उनका सत्कार किया और पुरोहितजी उस सत्कार को हर्पपूर्वक ग्रहण करके मुख से वैठ गये तब उनसे युधिष्ठिर इस प्रकार कहने लगे कि:—

पञ्चालराजेन सुतानिसृष्टा स्वधर्मदृष्टेन यथानकामात् । प्रदिष्टशुक्का दुपदेन राज्ञा सा तेन वीरंण तथानुवृत्ता ॥२१॥

अर्थ-पाञ्चालनरेश राजा द्रुपद ने स्वार्थ को त्यागकर अपने क्षात्रधर्म के अनुसार अपनी पुत्री एक मण करके दान की और उस वीर अर्जुन ने उसी प्रकार उसको माप्त किया॥

न तत्र वर्णेषु कृताविवक्षा नचापिशीले-न कुलेनगोत्रे । कृतेनसज्येन हि कार्सु-केन विद्धेनलक्ष्येण हि सा विसृष्टा ॥२२॥

अर्थ-न तो वहां किसी वर्ण की अपेक्षा की, न शील की और नाही कुल की किन्तु वहां केवल यह प्रण था कि जो धनुष को चढ़ाकर लक्ष्य को बींध देगा वही द्रौपदी को प्राप्त करेगा॥ सेयं तथातेन महात्मनेह कृष्णाजितापार्थिव सङ्घमध्ये । नैवंगतेसीमाकिरद्यराजा स-न्तापमहत्यसुखाय कर्तुम् ॥ २३ ॥

अर्थ-सो उस माहात्मा अर्जुन ने राजाओं के समुदाय में इस कन्या को उसी प्रकार विजय किया है, अब ऐसी दशा में सोमकवंशी राजा द्रुपद को उचित है कि वह अपने आपको दुखी करने के लिये पश्चात्ताप न करे।।

कामश्रयोऽसौ दुपदस्य राज्ञः सचापिसं-पत्स्यतिपार्थिवस्य । संप्राप्तरूपां हि नरे-न्द्रकन्यामिमामहं ब्राह्मणसाधुमन्ये ॥ २४॥ अर्थ-हे ब्राह्मण ! राजा दुपद की जो कामना थी वह भी भलेमकार पूर्ण होगई, क्योंकि मेरे विचार में राजा की कन्या को योग्य वर मिलगया ॥

नतद्धनुर्मन्दबलेनशक्यं मौर्ग्यासमायोजियतंतथाहि । नचाकृतास्त्रेण न हीनजेन लक्ष्यं तथापातियतुं हि शक्यम् ॥२५॥
अर्थ-उस धनुष का चिल्ला चढ़ाना निर्वल पुरुष का काम
नहीं था और नाही अस्त्रविद्या से अनिभिन्न अथवा नीचकुल में
उत्पन्न हुए पुरुष से वह लक्ष्य बींधा जासकता था॥

एवं ब्रुवत्येवयुधिष्ठिरे तु पश्चालराजस्य समीपतोऽन्यः । तत्राजगामाश्चनरो द्वितीयो निवेदियष्यित्रह सिद्धमन्नम् ॥ २६॥

आदिपर्व-अष्टचत्वारिंशाध्याय

803

अर्थ-युधिष्ठिर ऐसा कह ही रहे थे कि पाश्चालनरेश राजा दुपद का भेजा हुआ दृसरा पुरुष भोजन की सूचना के लिये शीघ्र ही वहां पहुंचकर बोला कि:—

द्त उवाच

जन्यार्थमन्नं द्रुपदेन राज्ञा विवाहहेतोरूप-संस्कृतं च। तदाप्तुवध्वं कृतसर्वकार्याः कृष्णां च तंत्रव चिरंन कार्यम् ॥ २७॥

अर्थ-हे महाराज! राजा द्रुपद ने विवाह के कारण जनेत= वरात के लिये भोजन तैयार कराया है सो आप सब महाशय अपने नित्यकर्म से निवृत्त होकर घर पर चलें और कृष्णा को भी साथ लेते आवें, विलम्ब न हो ॥

इमे रथाः काञ्चनपद्मित्राः सद्श्वयुक्ताः वसुधाधिपाद्दाः । एतान्समारुद्य परैतसर्वे पञ्चालराजस्य निवेशनं तत् ॥ २८ ॥

अर्थ-राजा दुपद के भेजे हुए सोने के कमलों से शोभाय-मान, सुन्दर घोडों वाले, राजाओं के चढ़ने योग्य रथ बाहर खड़े हुए हैं सो आप सब लोग इन पर चढ़कर राजा के महल में पधारें॥

वैशम्पायन उवाच ततःप्रयाता कुरुपुङ्गचास्ते पुरोहितं तं परि-याप्यसर्वे । आस्थाययानानिमहान्तितानि कुन्ती च कृष्णा च सहैकयाने ॥ २९॥

महाभारत

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तव वह सब कुरुवंश के श्रेष्ठ पुरुष पाण्डव पुरोहित को विदाकरके बड़े २ रथों पर चढ़-कर चले और कुन्ती तथा कृष्णा साथ २ एक रथ में बैठकर चलीं ॥

कुन्ती तु कृष्णां परिगृह्य साध्वीमन्तः पुरं दुपदस्याविवेश । स्त्रियश्च तां कौरवरा-जपत्नी प्रत्यचयामासुरदीनसत्त्वाः ॥३०॥

अर्थ-तब कुन्ती पतित्रता कृष्णा को साथ छेकर राजा द्रुपद के रनवास में गई और वहां पर कौरवनरेश की पत्नी कुन्ती का वहां की स्त्रियों ने बड़े उत्साह से सत्कार किया ॥

तान् सिंहिविकान्तगति त्रिरीक्ष्य महर्षभाक्षानिजनोत्तरीयान् । ग्रहोत्तरांस्तान् भुजगेन्द्रभोगप्रलम्बबाहून् पुरुषप्रवीरान् ॥ ३१ ॥
राजा च राज्ञः सिचवाश्च सर्वे पुत्राश्च
राज्ञः सुहृदस्तथेव । प्रेष्याश्चसर्वे निष्विलेन राजन् हर्ष समापेतुरतीव तन्न॥३२॥
अर्थ-हे राजन् ! वह पराक्रमी सिहसमान चाल वाले, वहे
बृष्मों के समान तथा वहे २ नेत्रों वाले, मृगर्चम धारण किये हुए,
छिपे हुए ऊंचे कंधों वाले, बहे सांप के समान लम्बी बाहों
वाले वीर पाण्डवों को देखकर राजा के मन्त्री, पुत्र, मित्र तथा

ते तत्र वीराः परमासनेषु सपादपीठे स्वविशङ्कमानाः। यथानुपूर्वविविशुर्नराष्ट्रपास्तथामहाहेषुनविस्मयन्तः३३

नौकर लोग अत्यन्त हर्ष को माप्त हुए।।

अर्थ-वह उत्तम पुरुष वीर पाण्डव वहां वहे २ राजोचित आमर्नो पर जिन पर पांव रखने के लिये सुन्दर खड़ाऊं वने हुए थे निःशङ्क तथा विनीत हुए २ क्रमपूर्वक वैट गये॥ उच्चावचं पार्थिवभोजनीयं पात्रीषुजाम्बून-दराजतीषु । दासाश्चदास्यश्च सुमृष्टवेषाः संभोजकाश्चाप्युपजहनुरन्नम् ॥ ३४॥ अर्थ-तव सुन्दर वेष वाले दास दामियों तथा भोजन बनाने वालों ने सोने चांदी के पात्रों में उन पाण्डवों को राजोचित अन

ते तत्र भक्ता पुरुषप्रवीरा यथात्मकामं सुभृशं प्रतीताः। उत्क्रम्यसर्वाणि वस्ति राजन् सां-प्रामिकं ते विविशुर्न्वीराः॥ ३५॥

नेक प्रकार के भोजन जिमाये॥

अर्थ-हे राजन ! उन वीर पुरुषों ने वहां परम संतोषपूर्वक यथारुचि भोजन करने के पश्चाद सब धनों को उछङ्घन करके युद्ध में विजय किये हुए धन को ग्रहण किया ॥

तलक्षयित्वा दुपदस्यपुत्रो राजाचसर्वैः सहमन्त्रिमुख्यैः । समर्थयामासुरुपेत्य

इष्टाः कुन्तीसुतान् पार्थिव राजपुत्रान् ॥३६॥

अर्थ-हे राजन् ! राजा दुपद तथा उसके पुत्र धृद्युष्टम्त्र ने अपने सब मुख्य मन्त्रियों समेत यह घटना देखकर हर्षपूर्वक कुन्ती के पुत्रों के पास जाकर समर्थन किया कि आप वास्तव में राजकुमार हैं॥

इति अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनपंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततआहूयपाञ्चाल्यो राजपुत्रयुधिष्ठिरम् ।
पर्यपृच्छददीनात्मा कन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥१॥
कथं जानीमभवतः क्षात्रियान्त्राह्मणानुत ।
वैश्यान् वा गुणसम्पन्नानथवा श्रुद्रयोनिजान् ॥२॥
मायाभास्थाय वा विप्रांश्चरतः सर्वतो दिशम् ।
त्रवीतु नो भवान् सत्यं सन्देहो ह्यत्र नो महान् ॥३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! इसके पश्चाद महात्मा पाञ्चालनरेश ने राजकुमार महातेजस्वी कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर की बुलाकर पूछा कि हम आपको कैसे जानें कि आप लोग क्षत्रिय हैं वा ब्राह्मण अथवा गुणयुक्त वैश्य वा शूद्रवंशी हैं! अथवा आप लोग ब्राह्मण होते हुए कपट से गुप्त रहकर सब दिशाओं में घूमा करते हैं! आप हमें सत्य बतलावें, क्योंकि इसमें हमें बड़ा सन्देह है॥

अपिनःसंशयस्यान्ते मनः सन्तुष्टिमावहेत् । अपिनोभागधेयानि शुभानिस्युःपरन्तप ॥ ४॥ इच्छयाब्रहितत्सत्यं सत्यं राजसुशोभते । ध्रुवंविवाहकरणमास्थास्यामि विधानतः ॥ ५॥ अर्थ-हे शञ्जतापक ! क्या हमारा संशय मिटने पर इमारे मन का सन्तोष होगा ? और क्या हमारे भाग्य कल्याण-

आदिपर्व-एकोनपंचाशाध्याय

809

कारी होंगे ? आप अपनी प्रसन्नता पूर्वक सत्य वात बताओ, क्योंकि सत्य से राजाओं की शोभा है, और विवाह तो मैं विधिपूर्वक अवदय ही करुंगा ॥

युधिष्ठिर उवाच

मा राजन् विमनाभृस्त्वं पाञ्चाल्यप्रीतिररत्तते। ईप्सितस्ते ध्रवः कामः संवृत्तोऽयमसंशयम् ॥६॥ वयं हि क्षात्रियो राजन् पाण्डोः पुत्रा महात्मनः। ज्येष्ठंमांविद्धि कौन्तेयं भीमसेनार्जुनावुभौ ॥७॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि है पाञ्चालनरेश! आप उदास न हों किंतु तुम्हें पसन्नता होनी चाहिये, क्योंकि तुम्हारी यह सदा की इष्ट मनोकामना पूर्ण हुई, इसमें सन्देह नहीं, हे राजन ! हम लोग क्षत्रिय कुलोत्पन्न महात्मा राजा पाण्डु के पुत्र हैं, मुझे कुन्ती का बड़ा पुत्र समझो और यह दोनों भीमसेन तथा अर्जुन हैं॥

आभ्यांतवस्रताराजिन्नर्जिता राजसंसदि । बभौचतत्रकुन्तीच यत्रकृष्णाव्यवस्थिता ॥ ८ ॥ ब्येतुतेमानसंदुःखं क्षत्रियाःस्मो नर्र्षभ । पद्मिनीवस्रतेयंते हृदादन्यहृदं गता ॥९॥

अर्थ-हे श्रेष्ठराजन ! इन दोनों पुरुषों ने राजसभा में तुम्हारी
पुत्री कृष्णा को विजय किया है और जहां पर कृष्णा विद्यमान
है वहीं पर हमारी माता कुन्ती विराजमान है, हे राजन ! आप
अपने मन का सन्ताप दूर करें, क्योंकि हम लोग क्षत्रिय हैं और
कुम्हारी यह पुत्री कमलिनी के समान एक तालाव से दूसरे तालाव में चली गई है ॥

महाभारत

बैशम्पायन उवाच

ततः स द्रपदोराजा हर्षव्याकुललोचनः ।
प्रतिवक्तुंमुदायुक्तो नाशकत्तं युधिष्ठिरम् ॥१०॥
यत्नेन तु सतं हर्ष सिन्नगृद्य परंतप ।
अनुरूपंतदावाचा प्रत्युवाच युधिष्ठिरम् ॥११॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब राजा द्रुपद के नेत्रों में हर्ष के कारण जल भर आया और आनन्द के नेग में वह युधिष्ठिर को कुछ उत्तर न देसके, पश्चाव शञ्चदयनकर्ता द्रुपद राजा यत्न द्वारा अपने हर्ष को रोककर युधिष्ठिर से उचित वात चीत करने लगे ॥

पत्रच्छचैनंधर्मात्मा यथा ते प्रद्रुताः पुरात् । स तस्मै सर्वमाचरूयावानुपूर्वेण पाण्डवः ॥ १२॥ तच्छुत्वा द्रुपदोराजा क्रन्तीपुत्रस्यभाषितम् । विगर्हयामास तदा धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ॥१३॥

अर्थ-धर्मात्मा द्रुपद् ने वह सब समाचार भी पूछा जिस मकार वह नगर से भाग निकले थे, तब पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर ने क्रमपूर्वक सब कथा राजा को सुनाई, कुन्ती के पुत्र का कथन सुनकर राजा ने राजा धृतराष्ट्र की बड़ी निन्दा की ॥

आखासयामास च तं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । प्रतिजज्ञे च राज्याय दुपदो वदतांवरः ॥१४॥

प्रत्याश्वस्तस्ततो राजा सह पुत्रैरुवाच तम् । गृाहणातु विधिवत् पाणिमद्यायं कुरुनन्दनः । पुण्येऽहनि महावाहुरर्जुनः कुरुतां क्षणम् ॥१५॥

अर्थ-तत्पश्चात् प्रतिज्ञा करने वालों में श्रेष्ठ राजा हुपद ने कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर को धैर्य दिया और राज्य देने की भी प्रतिज्ञा की, इस के पश्चात स्वस्थ होकर राजा ने अपने पुत्रों समेत युधिष्ठिर के पास जाकर कहा कि आज पवित्र दिन है इसलिये यह महा-बाहु कुरुवंशभूषण अर्जुन मेरी पुत्री का विधिपूर्वक पाणिग्रहण करके आनन्दित हो ॥

युधिष्टिर उवाच

तमत्रवीत्ततो राजा धर्मात्मा च युधिष्ठिरः ।
ममापि दारसंबन्धः कार्यस्तावद्विशाम्पते ॥१६॥

अर्थ-तब धर्मात्मा राजा युधिष्टिर वोले कि हे राजन ! मेरा

भी विवाह आप अपनी पुत्री के साथ करें।।
द्रुपद् उवाच

भवान् वा विधिवत्पाणिं गृहणातु दुहितुर्भम् । यस्य वा मन्यसे वीर तस्य कृष्णामुपादिश ॥१७॥

अर्थ-राजा द्रुपद बोले कि हे वीर ! या तो आप मेरी पुत्री के साथ विधिपूर्वक अपना विवाह करें वा जिस भाई के साथ विवाह करना उचित समझें उसके साथ करेंदें ॥

युधिष्टिर उवाच

सर्वेषां महिषी राजन् द्वीपदी नो भविष्यति । एवं प्रव्याहतं पूर्वं मम मात्रा विशाम्पते ॥१८॥ एष नः समयो राजन् रत्नस्य सह भोजनम् । नच तं हातुमिच्छामः समयं राजसत्तम् ॥१९॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे राजन ! द्रोपदी हम सब भाइयों की रानी बनेगी, क्योंकि मेरी माता ने पहले ऐसी ही आज्ञा हमें दी है, हे राजन ! हमारा यह नियम है कि सब से उत्तम बस्त चाहे जिस भाईको मिले वह सब भाइयों के मिलकर भोगने योग्य है, सो हे महाराज ! हम अपने उस नियम को त्याग नहीं सक्ते ॥

ततो राजा यज्ञसेनः सपुत्रो जन्यार्थमुक्तं बहुतत्तदग्रम् । समानयामास सुतां च कृष्णामाष्ठाव्य रहेर्बहुभिर्विभूष्य ॥॥२०॥

अर्थ-तब पुत्रों समेत राजा यज्ञसेन ने जनेत का भांति २ के उत्तमोत्तम पदार्थों से सत्कार किया और अपनी पुत्री कृष्णा को स्नान कराकर उत्तम वस्त्र तथा आभूषणों से भूषित करके विवाह के लिये यज्ञमण्डप में पहुं वाया ॥

ततस्तु सर्वे सुहदानुपस्य समाजग्मः सहिता मन्त्रिणश्च । द्रष्टुं विवाहं परमप्रतीताद्विजा-रच पौराश्च यथा प्रधानाः ॥ २१ ॥

अर्थ-इसके पश्चात राजा के सब मित्र, मन्त्री लोग तथा नगर के प्रधान ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैद्य इकट्ठे होकर परम प्रसन्नता के साथ विवाह देखने के लिये वहां आये॥

ततोऽस्यवेश्माप्रयजनोपशोभितं विस्तीर्णप-द्मोत्पलभृषिताजिरम् । बलौघरत्नोघविचित्र-माबभौ नभो यथा निर्मलतास्कान्वितम् ॥२२॥ अर्थ-उस समय राजा दुपद का भवन बड़ेर पुरुषों से सुशोभित तथा आंगन में बड़ेर कमल और कुमुद के फूलों से अलंकृत तथा सेनासमूह और रत्रसमूह से ऐसा विचित्र शोभायुक्त था जैसे निर्मल तारागणों से पारिपूर्ण आकाशमण्डल होता है ॥

ततस्तु ते कौरवराजपुत्रा विभूषिताःकुण्ड-िलनोयुवानः । महाईवस्त्राम्बरचन्द्रनो-क्षिता कृताभिषेकाःकृतमङ्गलिकयाः॥२३॥ पुरोहितेनामिसमानवर्चसा सहैव धौम्येन यथाविधि प्रभो । क्रमेण सर्वे विविश्रस्ततः सदोमहर्षभा गोष्टमिवाभिनन्दिनः ॥२४॥

अर्थ-हे राजन ! तव कोरवों के राजा अर्थात पाण्ड के युवा पुत्र स्नान तथा मंगलकार्य करके चन्दन से सुगन्धित उत्तम वस्त्रों को धारण कर और कुण्डल पहने हुए आग्नि के समान तेज वाले अपने धौम्य नामक पुरोहित के साथ विधिपूर्वक कम २ से विवाहमण्डप में प्रविष्ट हुए, जैसे आनन्द्युक्त बड़े २ वृषभ अपनी शाला में प्रविष्ट होते हैं॥

ततःसमाधाय स वेदपारगो जहावमन्त्रेज्व-लितं हुताशनम् । युधिष्ठिरंचाप्युपनीय मन्त्रविन्नियोजयामास सहैव कृष्णया ॥२५॥ क्रमेणचानेन नराधिपात्मजा वरस्म्नियस्ते जगृहुस्तदाकरम् । अहन्यहन्युत्तमरूपधा-रिणो महारथः कौरववंशवर्धनाः ॥ २६ ॥

महाभारत

अर्थ-तब वेद पारगामी पुरोहित ने मन्त्रों द्वारा अग्न्याधान कर प्रज्वलित आग्न में हवन किया पश्चाद उस मन्त्रवेत्ता ने युधि-ष्ठिर को अपने पास वैठाकर विधिपूर्वक कृष्णा के साथ विवाह करादिया, इसी रीति से शेष चारो कुरुवंश की वृद्धि करने वाले राजकुमार वीर पाण्डवों ने उस उत्तम स्त्री कृष्णा के साथ एक २ दिन में विवाह किया ॥

कृतेविवाहे दुपदो धनंददो महारथेभ्यो बहुरू-पमुत्तमम् । शतं रथानांवरहेममालिनां च-तुर्युजां हेमखलीनमालिनाम् ॥ २७ ॥ शतंगजानामिष पिद्मनां तथाशतं गिरीणा-मिवहेमशृङ्गिणाम् । तथैव वस्त्राणि विभूष-णानिप्रभावयुक्तानि महानुभावः ॥ २८ ॥

अर्थ-विवाह होने के पश्चाद महाप्रतापी राजा द्रुपद ने उन महावीर पाण्डवों को अनेक प्रकार का उत्तमधन दान में दिया अर्थाद सो रथ जिनमें सुन्दर सुवर्ण की मालायें लगी हुई थीं तथा प्रत्येक में सुवर्ण के लगाम वाले चार २ घोड़े जुते हुए थे, सो हाथी जिन पर सोने के कमल लगाये हुए थे और जो सोने के शिखर वाले सो पहाड़ से प्रतीत होते थे, इनके अतिरिक्त उत्तमोत्तम गुणयुक्त वस्त्र तथा आभूषण भी दान में दिये॥

कृतेविवाहे तु ततस्तुपाण्डवाः प्रभूतरत्नामु-पलभ्यतांश्रियम् । विजद्वरिन्द्रप्रतिमामहा-बलाः प्ररेतुःपञ्चालनृपस्य तस्य ह ॥ २९॥

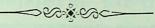
आदिपर्व-पंचाशाध्याय

863

अर्थ-विवाह के पश्चात इन्द्र समान महावलवान पाण्डव लोग वड़े २ रत्नों से परिपूर्ण राज्यलक्ष्मी को पाकर वहीं पश्चाल-नरेश के नगर में वास करते रहे ॥

इति एकोनपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते



वैशम्पायन उवाच

पाण्डवैः सह संयोगं गतस्य द्रुपदस्य ह । न बभ्वभयंकिंचिद्देवेभ्योपि कथंचन ॥१॥ कुन्तीमासाद्यतानायों द्रुपदस्यमहात्मनः । नामसंकर्त्तियन्त्योऽस्यजग्मः पादौस्वमूर्ध्निः॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! राजा दुपद का पांडवों के साथ सम्बन्ध होजाने से देवताओं का भी किसी प्रकार का कुछ भय न रहा, महात्मा दुपद राजा की स्त्रियों ने कुन्ती के पास जाकर अपना २ नाम बताते हुए अपने २ मस्तक से उसके चरणों का स्पर्श किया ॥

कृष्णा च क्षोमसंवीता कृतकौतुकमङ्गला । कृताभिवादना श्वश्चास्तस्थौ प्रह्वाकृताञ्चलिः ॥३॥ रूपलक्षणसम्पन्नां शीलाचारसमन्विताम् । द्रौपदीमवदत्प्रेम्णा पृथाशीर्वचनं स्तुषाम् ॥४॥

महाभारत

अर्थ-कृष्णा भी रेशमी वस्त्र पहिने तथा विवाहोत्सव के मङ्गलाचरण किये हुए अपनी साम्र को अभिवादन करके माता के साथ हाथ जोड़कर खड़ी होगई, तब कुन्ती रूप तथा मुलक्षणों से युक्त, शील और सदाचार से परिपूर्ण अपनी वधु द्रौपदी को इस मकार पेम से आशीर्वाद देने लगी कि:—

जीवस्वीरस्भेद्रे बहुसौख्यसमन्विता । सुभगाभोगसम्पन्ना यज्ञपत्नीपतित्रता ॥५॥ अतिथीनागतान् साधून्बृद्धान्वालांस्तथाग्ररून् । पूजयन्त्यायथान्यायं शखद्रच्छन्तु ते समाः ॥६॥

अर्थ-हे भद्रे ! तुम्हारे चिरंजीव वीरपुत्र हों, तुम अनंत सुखों से युक्त, सौभाग्यवती, उत्तम भोग्य पदार्थों से सम्पन्न, यज्ञ में पित का साथ देने वाली और पितव्रता होकर रहो, अपने घर आये हुए महात्मा अतिथियों, वृद्धों, वालकों तथा गुरुओं का यथोचित सत्कार करते हुए तुम्हारा समय व्यतीत हो, और:—

कुरुजाङ्गलमुख्येषु राष्ट्रेषु नगरेषु च ।
अनुत्वमभिषिच्यस्व नृपतिं धर्मवत्मला।।७।।
पृथिव्यांयानिरतानि ग्रणवन्तिग्रणान्विते ।
तान्याप्नुहित्वंकल्याणि सुखिनी शरदां शतम्।।८।।
अर्थ-कुरुक्षेत्र के जो मुख्य देश तथा नगर हैं उन सब के
राज्यासन पर द अपने पाते के साथ धर्मिय रानी बनाई जाय,
हे ग्रणवती कल्याणकारिणी १ पृथ्वी पर जितने उत्तमोत्तम ग्रण
युक्त पदार्थ हैं वह सब तुम्हें माप्त हों और तुम सुलपूर्वक सौ वर्ष
तक जीवित रहो ॥

यथा च त्वाभिनन्दामि वश्वद्य क्षीमसंवृताम् ।
तथा भ्योऽभिनन्दिष्ये जातपुत्रां गुणान्विताम्।।९॥
अर्थ-हे वधु ! जैसे मैं आज तुझ क्षीम वस्त्र धारण कीहुई को
आशीर्वाद दे रही हूं इससे भी अधिक मैं उस समय आशीर्वाद
दुंगी जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे॥

वैदाम्पायन उवाच

ततस्तु कृतदारेभ्यः पाण्डभ्यः प्राहिणोद्धरिः । वैदूर्यमाणाचित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥१०॥ वासांसि च महार्हाणि नानादेश्यानि माधवः । कम्बलाजिनरतानि स्पर्शवन्ति शुभानि च ॥११॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! इसके पश्चात कृष्णा ने विवाहित पाण्डवों के लिये उपहार की रीति पर वैदूर्य माणियों से जटित सोने के आभूषण, भिन्न २ देशों के उत्तमोत्तम बस्न, उत्तम स्पर्श वाले सुन्दर कम्बल तथा मृगचर्म भेजे ॥

रायनासनयानानि विविधानि महान्ति च । वैदूर्यवज्रविज्ञाणि शतरोभाजिनानि च ॥१२॥ गजान् विनीतान् भद्रांश्वसद्श्वांश्वस्वङ्क्कृतान् । रथांश्व दान्तान् सौवर्णैः शुभ्रैःपट्टैरलङ्कृतान् ॥१३॥ कोटिशश्व सुवर्णं च तेषामकृतकं तथा । वीथीकृतममेयात्मा प्राहिणोन्मधुसूदनः ॥१४॥

अर्थ-मधु राक्षस के घातक महात्मा कृष्ण ने भांति २ की वड़ी २ सेजें, आसन. सवारी, वैदुर्यमणि से चित्रित सैंकड़ों

बरतन, शिक्षा पाये हुए उत्तम हाथी, सजाये हुए अच्छे २ घोड़े, हाथीदांत के बने हुए तथा सुवर्ण के सुन्दर पट्टों से सज हुए रथ, करोड़ों मोहर तथा विना घड़ा हुआ सुवर्ण भी उपहार में भेजा,और:-

तत्सर्वे प्रतिजग्राह धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
मुदा परमया युक्तो गोविन्दप्रियकाम्यया ॥१५॥

अर्थ-धर्मराज युधिष्ठिर ने कृष्ण को प्रसन्न करने की कामना से परम आनन्दित होकर वह सब उपहार ग्रहण किया ॥

इति पंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकपंचाशोऽध्यायः प्रारभ्यते

वैशम्पायन उवाच

ततो राज्ञां चरेराप्तेः प्रवृत्तिरुद्नीयत । पाण्डवैरुपसम्पन्ना द्रौपदी पतिभिःशुभा ॥१॥ येन तद्धनुरायम्य लक्ष्यं विद्धं महात्मना । सोऽर्जुनो जयतां श्रेष्ठो महावाणधनुर्धरः ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि है राजा जनमेजरा ! तब प्रामाणिक राजदृतों द्वारा इधर उधर यह समाचार फैल गया कि मुन्दरी
द्रौपदी से पाण्डवों का विवाह होगया, जिस महात्मा ने वह धनुष
सैंचकर लक्ष्य को बींघा था वह महान बाण सहित धनुष के धारण
करने वाला श्रेष्ठ विजयी अर्जुन था, और :-

यः शल्यं मदराजं वै प्रोत्सिप्यापातयद्वली । त्रासयामास संकुद्धो वृक्षेण पुरुषात्रणे ॥३॥ न चास्य संभ्रमः कश्चिदासीत्तत्र महात्मनः । स भीमो भीमसंस्पर्शः शत्रुसेनाङ्गपातनः ॥ ४॥

अर्थ-जिसने मद्र=मदरास देश के राजा को उठाकर पटक दिया तथा जिस वलवान ने क्रोध से वृक्ष उठाकर युद्ध में पुरुषों को भयभीत कर दिया था और जिस महात्मा को उस समय कुछ भी घवराहट न हुई थी वह भयानकस्पर्श वाला तथा शञ्चओं की सेनाओं के शरीर निर्जीव करने वाला भीमसेन था।

ब्रह्मरूपधरान् श्रुत्वा प्रशान्तान् पाण्डनन्दनान् । कौन्तेयान् मनुजेन्द्राणां विस्मयः समजायत ॥५॥ सपुत्रा हि पुराकन्ती दग्धा जनुगृहे श्रुता। पुनर्जातानिवचतांस्तेऽमन्यन्त नराधियाः॥६॥

अध-राजा लोगों को उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्होंने सुना कि कुन्ती के पुत्र पाण्डव ब्राह्मणों के वेष धारण किये हुए थे, राजा लोगों ने पहले सुना था कि कुन्ती पुत्रों समेत लाक्षागृह में जलादी गई, इसलिये उन लोगों ने कुन्ती तथा पाण्डवों का पुनर्जन्मसा हुआ समझा ॥

धिगकुर्वस्तदा भीष्मं धतराष्ट्रं च कौरवम् । कर्मणातिनृशंसेन पुरोचनकृतेन वै ॥७॥ वृत्ते स्वयंवरे चैव राजानः सर्वएव ते । यथागतं विम्रजग्मुर्विदित्वा पाण्डवान् वृतान॥८॥ महाभारत

अर्थ-तब पुरोचन के किये हुए उस अत्यन्त घोरकर्म का समाचार पाकर राजा लोग कुरुवंशी भीष्म तथा धृतराष्ट्र को धिक्कार देने लगे, स्वयम्बर समाप्त होजाने पर पाण्डवों का विवाह हुआ समझ स्वयंवर में सम्मिलित हुए राजा लोग अपने २ स्थान को चले गये॥

अथ दुर्योधनो राजा विमना भ्रातृभिः सह।
अश्वत्थाम्ना मातुलेन कर्णेन च कृपेण च।। ९।।
विनिवृत्तो वृतंदृष्ट्वा द्रौपद्याश्वेतवाहनम्।
तन्तु दुःशासनो वीडो मन्दं मन्दमिवाववीत्।। १०।।

अर्थ-तब राजा दुर्योधन भी द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ हुआ देखकर उदास हुआ २ अपने भाइयों तथा अश्वत्थामा, मामा शकुनी, कर्ण और कृपाचार्य के साथ छौट चला, मार्ग में छिजित हुआ दुःशासन दुर्योधन से धीरे २ इस प्रकार बात चीत करने लगा कि:—

यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद्धिन्देत द्रौपदीं न सः । न हितं तत्त्वतो राजन् वेद कश्चिद्धनञ्जयम् ॥११॥ दैवं च परमंमन्ये पौरुषंचाप्यन्धकम् ।

थिगस्तु पौरुषं तात श्रियन्ते यत्र पाण्डवाः॥१२॥

अर्थ-हे राजन ! यदि अर्जुन ब्राह्मण के वेष में न होता तो वह द्रौपदी को नहीं पासकता था, क्योंकि कोई भी पुरुष य-थार्थक्प से अर्जुन को नहीं पहचानता था, हे भाई ! मैं प्रारब्ध को बड़ा और पुरुषार्थ को अनर्थक समझता हूं, धिकार है पुरुष्पार्थ को जो अवतक पाण्डव छोग जीवित हैं।।

एवं सम्भाषमाणास्ते निन्दन्तश्च पुरोचनम्।
विविश्रहीस्तिनपुरं दीना विगतचेतसः ॥१३॥
त्रस्ताविगतसङ्कल्पा दृष्ट्वा पार्थान्महोजसः।
सुक्तान्हव्यसुजश्चेव संयुक्तान्द्वपदेन च ॥ १४॥
पृष्ट्युमं तु सिचन्त्य तथेव च शिखण्डिनम्।
बुपदस्यात्मजांश्चान्यान्सर्वयुद्धविशारदान् ॥१५॥

अर्थ-वह लोग इस प्रकार वात चीत करते तथा पुरोचन की निन्दा करते हुए दु: खी और वेसुध हुए र हस्तिनापुर में प्रविष्ठ हुए, दुर्योधन आदिक कौरव महावली पाण्डवों को देख-कर तथा जनका अप्रि में जलने से लुटकारा, राजा दुपद के साथ संवन्ध और धृष्टद्युम्न,शिखण्डी तथादुपद राजा के संपूर्ण युद्धों में निपुण अन्य पुत्रों का विचार करके भयभीत और जत्साह हीन हो गये॥

विदुरस्त्वथ तांश्चत्वा द्रौपदीं पाण्डवेर्नृताम् । बीडितान्धार्त्तराष्ट्रांश्च भग्नदर्पानुपागतान् ॥१६॥ ततः प्रीतमनाः क्षत्ता धृतराष्ट्रं विशाम्पते । जवाच दिष्ट्या क्रस्वो वर्द्धत इति विस्मितः ॥१७॥ अर्थ-जव विदुर ने सुना कि पाण्डवों ने द्रौपदी को वरिलया तथा धृतराष्ट्र के पुत्र लक्षित और खाण्डतगर्व होकर लौट आये

महाभारत

तब वह यन में प्रसन्न होकर धृतराष्ट्र से अचिम्भितसे हुए २ बोले कि हे राजन ! सौभाग्य की बात है कि कुरुवंशी वृद्धि को पाप्तहुए॥

वैचित्रवीर्यस्तु नृपो निशम्य विदुरस्य तत् । अत्रवीत्परमप्रीतो दिष्ट्या दिष्ट्येति भारत ॥१८॥ मन्यते सवृतं पुत्रं ज्येष्ठं दुपदकन्यया । दुर्योधनमविज्ञानात्प्रज्ञाचक्षुर्नरेखरः ॥१९॥

अर्थ-तब विचित्रवीर्य का पुत्र राजा धृतराष्ट्र विदुरजीकी यह बात सुनकर परम प्रसन्न हुआ २ बोला कि हे भरतवंशी ! सौभा-ग्य है, सौभाग्य है, प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र ने भूलसे विदुरजी के कथन का आशय यह समझा कि मेरे बड़े पुत्र दुर्योधन के साथ दुपद की पुत्री का विवाह होगया है ॥

अथ त्वाज्ञापयामास द्रोपद्या भूषणं बहु ।
आनीयतां वे कृष्णोति पुत्रं दुर्योधनं तदा ॥२०॥
अथास्य पश्चाद्रिदुर आचल्यो पाण्डवान्वृतान् ।
सर्वान्कुशिलनो वीरान् प्रजितान् द्रुपदेन ह॥२१॥
अर्थ-इस पर धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र दुर्योधन को आज्ञा दी
कि बधु द्रौपदी को अनेक वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर
घर ले आओ, तब विदुर्जी ने उनको समझाया कि वीर पाण्डव
कुशलपूर्वक जीवित हैं और राजा द्रुपद ने सत्कार के साथ अपनी
पुत्री का विवाह उनके साथ किया है, और यह भी कहा कि :-

तेषां संबन्धिनश्चान्यान् बहून् बलसमन्वितान् ।

समागतान पाण्डवेयेस्तस्मिन्नेव स्वयंवरे ॥२२॥

आदिपर्व-एकपंचाशाध्याय

833

अर्थ-उसी स्वयंवर में उन पाण्डवों के अन्य बहुत से महावली संबन्धी भी उनसे मिल चुके हैं॥

धृतराष्ट्र उवाच

यथैव पाण्डोपुत्रास्तु तथैवाभ्यधिका मम । यथा चाभ्यधिका बुद्धिमम तान् प्रतितच्छृणु॥२३॥ यत्तेकुशिलनो वीरा मित्रवन्तश्च पाण्डवाः। तेषां संवधिनश्चान्ये वहवश्चमहावलाः॥२४॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोले कि हे विदुर! मुझे जैसे अपने पुत्र प्यारे हैं उनसे अधिक पाण्ड के पुत्र प्यारे हैं और जिस कारण से मेरा उनके साथ अधिक भाव है वह तुम सुनो, वह लोग युद्ध में निपुण तथा वीर हैं और उनके सम्बन्धी लोग भी वहुत तथा महाबली हैं॥

को हि द्रुपदमासाद्य मित्रंक्षत्तःसत्रांधवम् । न ब्रुभूषेद्भवेनार्थी गतश्रीरिप पार्थिवः ॥२५॥ अर्थ-हे मित्र विदुर ! ऐसा कौन अभागा राजा है जो ऐश्वर्य की इच्छा रखता हुआ सम्बन्धियों समेत द्रुपद राजाकी मितिष्ठान करे॥

वैशम्पायन उवाच

तं तथा भाषमाणं तु विदुरः प्रत्यभाषत ।
नित्यं भवतु ते बुद्धिरेषा राजञ्छतंसमाः ॥२६॥
ततो दुर्योधनश्चापि राधेयश्च विशाम्पते ।
धृतराष्ट्रमुपागम्य वचोब्र्तामिदं तदा॥२०॥
अर्थ-वैशम्पायन बोले कि ऐसा कहते हुए धृतराष्ट्र
से विदुर ने कहा कि "हे राजन ! तुम्हारा ऐसा भावसौ

वर्ष तक सदा बना रहे" हे राजा जनमेजय ! इसके पश्चात दुर्यो-धन और कर्ण धृतराष्ट्र के समीप आकर इस मकार बोले कि:—

सिन्नधो विदुरस्य त्वां दोषं वक्तुं न शक्नुवः। विविक्तिमिति वक्ष्यावः किं तवेदं चिकीर्षितस्।।२८॥ सपत्तवृद्धियत्तात मन्यसे वृद्धिमात्मनः। अभिष्टोषिचयत्क्षत्तः समीपे द्विषतांवरः।।२९॥

अर्थ-हे पिता ! हम विदुर के सामने तुम्हें तुम्हारे दोष की बात नहीं बतासकते, अब एकान्त में बताते हैं कि तुम कैसा उलटा कार्य करना चाहते हो, हे श्रेष्ठपुरुष राजन ! तुम जो विदुर के सामने सदा पाण्डवों की स्तुति किया करते हो तो कदाचित तुम शञ्जओं की उन्नति को अपनी उन्नति मानते हो ॥

अन्यस्मिन् नृपकर्तव्ये त्वमन्यत्क्ररुषेऽनघ ।
तेषां बलविघातो हि कर्तव्यस्तातिनित्यशः॥३०॥
ते वयं प्राप्तकालस्य चिकीषां मन्त्रयामहे ।
यथा नो न ग्रसेयुस्ते सपुत्रबलबान्धवान् ॥३१॥
वर्षन्ते निष्णाः साजन । कर्तव्य कल और है और तम

अर्थ-हे निष्पाप राजन ! कर्तव्य कुछ और है और तुम कुछ और कररहे हो, क्योंकि हम सबका कर्तव्य तो यही है कि सदा पाण्डवों के बल का नाश करें, सो अब हम इस अवसर के लिये जपाय की मन्त्रणा करते हैं जिससे वह लोग हमको तथा हमारे पुत्र, सेना और संबन्धियों को हानि न पहुंचा सकें।

इति एकपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ हिपंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते

धृतराष्ट्र उवाच

अहमप्येवमेवैतिचिकीर्षामि यथा युवाम् । विवेक्तुं नाहमिच्छामि त्वाकारं विदुरं प्रति ॥१॥ ततस्तेषांगुणानेव कीर्चयामि विशेषतः । नावबुध्येत विदुरो ममाभिष्रायमिङ्गितैः ॥ २॥

अर्थ-धृतराष्ट्र वोले कि जिसमकार तुम दोनों कार्य करना चाहते हो मैं भी वैसा ही करना चाहता हूं, परंतु विदुर के मित मैं अपना अभिमाय मकट करना नहीं चाहता, इसी मयोजन से मैं विदुर के सामने पाण्डवों के गुण ही विशेषता से कहा करता हूं जिससे मेरी चेष्टाओं द्वारा वह मेरा भीतरी आशयन समझ सकें॥

यच त्वं मन्यसे प्राप्तं तद्ववीहि सुयोधन । राधेय मन्यसे यच प्राप्तकालं वदाशु मे।।३॥

अर्थ-हे दुर्योधन तथा हे कर्ण! अब इस अवसर के लिये जो कुछ तुम दोनो कर्तव्य समझते हो सो मुझे शीघ बताओ ॥

दुर्योधन उवाच

अद्य तान् कुशलैर्विपः सुरुप्तेराप्तकारिभः । कुन्तीपुत्रान् भेदयामो मादीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥४॥

अर्थ-दुर्योधन ने कहा कि अब हमें यह करना चाहिये कि गुप्तक्ष्प से अपने विश्वासपात्र चतुर ब्राह्मणों द्वारा उपदेश दिल-वाकर कुन्ती तथा माद्री के पुत्रों में फूट डलवार्वे ॥

अथवा द्वपदो राजा महद्विर्वित्तसञ्चयैः । प्रताश्चास्य प्रलोभ्यन्ताममात्याश्चेव सर्वशः । परित्यजेद्यथा राजा कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥५॥

अर्थ-अथवा वहुत वड़े धन के लोभ से राजा दुपद और उसके पुत्रों तथा मन्त्रियों को पूर्णतया अपनी ओर मिला लिया जाय, जिससे राजा दुपद कुन्तीपुत्र युधिष्टिर को त्याग दें॥

अथ तत्रैव वा तेषां निवासं रोचयन्तु ते । इहैषां दोषवद्धासं वर्णयन्तु पृथक् पृथक् । ते भिद्यमानास्तत्रैव मनः कुर्वतु पाण्डवाः ॥६॥

अर्थ-अथवा वह गुप्तचर पृथक् २ पाण्डवों से मिलकर उनको वहीं पर रहने में रुचि दिलावें और यहां आकर रहना उनके लिये दोषपूर्ण जतलावें जिससे वह लोग उनके कहने में आये हुए वहीं पर रहना पसंद करें ॥

अथवा कुरालाः केचिदुपायनिपुणा नराः । इतरेतरतः पार्थान् भेदयन्त्वनुरागतः ॥७॥ व्युत्थापयन्तु वा कृष्णां वहुत्वासुकरं हि तत् । अथवा पाण्डवाँस्तस्यां भेदयन्तु ततश्चताम् ॥८॥

अर्थ-अथवा कोई ऐसे उपाय में चतुर गुप्तपुरुष भेजे जावें जो अपने अनुराग द्वारा कुन्ती के पुत्रों में आपस में फूट डलवादें वा द्रौपदी को उच्चाटित कर देवें, क्योंकि अनेक पति होने से ऐसा किया जाना सहज है अथवा पहले पांचो पाण्डवों को उस द्रौपदी से फोड़ लेकें पश्चाद द्रौपदी को उनसे उच्चाटित कर देवें॥ भीमसेनस्य वा राजन्नुपायकुशर्हिनरैः । मृत्युर्विधीयतां छन्नैः स हि तेषां बलाधिकः ॥९॥ तमाश्रित्य हि कौन्तेयः पुरा चास्मान्न मन्यते । स हि तीक्ष्णश्च शूरश्च तेषां चैव परायणम् ॥१०॥

अर्थ-हे राजन ! अथवा उपाय में निपुण ग्रप्तपुरुषों द्वारा श्रीमसेन को मरवा दिया जाय क्योंकि वही उनमें अधिक वलवान है, उसी के भरोसे पर युधिष्ठिर पहले भी हमलोगों को कुछ नहीं समझता था, और वही उन पांचों में तेज, वहादुर तथा उन सबका सहारा है।

तिसमस्विभिहते राजन् हतोत्साहा हतौजसः । यतिष्यंते न राज्याय सहि तेषां व्यपाश्रयः॥११॥ अजेयो हार्जुनःसंख्ये पृष्ठगोपे वृकोदरे । तमृते फाल्यनो युद्धे राधेयस्य न पादभाक्॥१२॥

अर्थ-हे राजन ! भीममेन के मरजाने पर वह लोग उत्साह-हीन तथा तेजरहित होकर राज्य बटवाने के लिये यह नहीं करेंगे, क्योंकि भीमसेन ही उनका महारा है. जब तक मीमसेन पाण्डवों का पृष्ठ पोषक है तब तक अर्जुन भी युद्ध में नहीं जीता जासका, किन्तु उस भीमसेन के न रहने पर अर्जुन कर्ण के चौथाई अंश के बराबर भी नहीं रहेगा ॥

ते जानानास्तु दोर्बल्यं भीमसेनमृते महत्। अस्मान् बलवतो ज्ञात्वा न यतिष्यन्ति दुर्वलाः॥१३॥

इहागतेषु वा तेषु निदेशवशवर्त्तिषु । प्रवर्त्तिष्यामहे राजन् यथाशास्त्रं निवर्हणम् ॥१४॥

अर्थ-हे राजन ! भीमसेन के विना वह लोग दुर्बछ हुए २ अपनी दुर्बलता तथा हमलोगों की पवलता पर ध्यान देकर हमारे विरुद्ध यत्र न करेंगे अथवा यहां उनके आजाने पर तथा हमारे आज्ञाधीन होजाने पर हम लोग नीतिशास्त्र के अनुसार उनके वध करने का यत्र करेंगे॥

अथवा दर्शनीयाभिः प्रमदाभिर्विलोक्यताम् । एकैकस्तत्र कौन्तेयस्ततः कृष्णा विरज्यताम् ॥१५॥ प्रेष्यतां चैव राधेयस्तेषामागमनाय वै ।

तैस्तैः प्रकारैः सन्नीय पात्यंतामाप्तकाशिभः ॥१६॥

अर्थ-अथवा कुन्ती के एक २ पुत्र को सुन्दर युवात स्त्रियं दिखलाकर लुभाया जाय और पीछे कृष्णा के साथ उनकी फूट करदी जावे, उनको बुलाने के लिये कर्ण को भेज दिया जाय और भिन्न २ उपायों द्वारा नीति के प्रयोग से प्रधाणिक गुप्तचरों द्वारा उनको मरवा दिया जाय ॥

एतेषामण्युपायानां यस्ते निर्दोषवान्मतः ।
तस्य प्रयोगमातिष्ठ पुरा कालोतिवर्तते ॥१७॥
यावद्भयकृतविश्वासा दुपदे पार्थिवर्षभे ।
तावदैव हि शक्यास्ते न शक्यास्तु ततःपरम्॥१८॥
अर्थ-इन सब उपायों में से जिस उपाय को आप निर्दोष
समझते हों, उसी उपाय का प्रयोग करें जब तक अवसर न बीत

आदिपर्व-त्रिपंचाशाध्याय

833

जाय, जब तक कि उन पाण्डवलोगों को राजा दुपद पर पूर्ण विश्वास न होने पावे, तब तक ही हम उनका उपाय कर सकते हैं पश्चाद नहीं ॥

एषा मम मित्स्तात निग्रहाय प्रवर्त्तते । साध्वी वा यदि वाऽसाध्वी किं वा राधेय मन्यसे।।१९।। अर्थ-हे पिता ! मेरी सम्मित उनको अपने अधीन करने के लिये होती है, सो इसकी भलाई बुराई आप विचार लें अथवा हे कर्ण ! जो कुछ तुम्हारी सम्मित हो तुम भी वतादो ॥

इति द्विपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिपंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते

कर्ण उवाच

दुर्योधन तव प्रज्ञा न सम्यगिति मे मितः। न ह्युपायेन ते शक्याः पाण्डवाः कुरुवर्द्धन ॥१॥ पूर्वमेव हि ते सूक्ष्मेरुपायैर्यतितास्त्वया। निग्रहीतुं तदा वीर न चैव शाकितास्त्वया॥२॥

अर्थ-कर्ण ने कहा कि हे कुरुवंश की वृद्धि करने वाले दुर्योधन! मुझे तुम्हारी सम्मात उचित नहीं जचती, क्योंकि हम नीति के उपायों से उन पाण्डवों का कुछ नहीं कर सकते, हे वीर! तुमने पहले भी गुप्त उपायों द्वारा उनको पराजित करने का यह किया था परन्तु तुम सफलता नहीं पासके ॥

ME

इहेव वर्त्तमानास्ते समीपे तव पार्थिव । अजातपक्षाः शिशवः शिकता नैव वाधितुम् ॥३॥ जातपक्षा विदेशस्था विवृद्धाः सर्वशोऽद्य ते । नोपायसाध्याः कौन्तेया ममेषा मातिस्च्युता ॥४॥

अर्थ-हे राजन ! जिससमय वह लोग वालकपन में इसी नगर में तुम्हारे समीप ही रहते थे और उनका कोई साथी भी नहीं वनने पाया था तब भी तुम उनको अपने अधीन नहीं बनासके थे, अब जब उनके साथी वहुत से बनगये और सब प्रकार से वह बढ़चढ़ गये तो इतनी दूर विदेश में रहते हुए पाण्डवों को तुम नीति के उपायों से कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते, यह मेरी अटल सम्मति है।

नच ते व्यसनैयोंवतुं शक्या दिष्टकृतेन च। शकिताश्चेष्सवश्चेव पितृपैतामहं पदम् ॥ ५॥ परस्परेण भेदश्च नाधातुं तेषु शक्यते । एकस्यां ये स्ताः पत्न्यां न भिद्यन्ते परस्परम् ॥६॥

अर्थ-वह लोग अपने पिता पितामह से प्राप्त हुए राज्यपद के अभिलाषी हैं और उनको तुम यन तथा पारब्ध से होने वाले किसी ब्यसन में नहीं फंसा सकते, उनमें तुम आपस में फूट भी नहीं डाल सकते, वयोंकि जो सब एकही भार्या में रमण करते हैं उनमें आपस में विरोध नहीं होसकता, और:—

नचापि कृष्णा शक्यते तेभ्यो भेद्यितं परैः । ५रिश्चनान् वृतवती किसुताद्य मृजावतः ॥७॥ अर्थ-कृष्णा को भी उनसे फोड़ नहीं सकते जबिक दुईशा में होतेहुए भी पाण्डवों को उसने वर लिया तो अब सुदशा में होते हुओं को कैसे त्याग सकेगी॥

आर्यव्रतश्च पाञ्चाल्यो न स राजा धनिष्रयः। न सन्त्यक्ष्यित कौन्तेयान् राज्यदानैरिष ध्रुवम्।।८॥ तथास्य पुत्रो ग्रणवाननुरक्तश्च पाण्डवान्। तस्मान्नोपायसाध्यांस्तानहं मन्ये कथंचन ॥९॥

अर्थ-और पाञ्चालनरेश राजा दुपद सदाचारी होने से धन का लालची नहीं, इसलिये यह निश्चय है कि वह राज्य के देने पर भी पाण्डवों को नहीं त्यागेगा तथा उसका पुत्र धृष्टद्युम्न भी गुण-वान और पाण्डवों का प्रेमी है, इन सब कारणों से मैं समझता हूं कि पाण्डवों को नीति के उपायों द्वारा हम किसी प्रकार भी वशी-भूत नहीं करसकते॥

इदं त्वद्य क्षमं कर्जुमस्माकं पुरुषर्षभ । यावन्नकृतमूलास्ते पाण्डवया विशाम्पते । तावत्प्रहरणीयास्ते तत्तुभ्यं तात रोचताम् ॥१०॥

अर्थ-हे प्यारे श्रेष्ठ पुरुष राजन ! अब हम केवल यह कर सकते हैं कि जब तक पाण्डवों की जड़ न जमने पावे तब तक उनके साथ युद्ध करने का यब करें,सो इसी बात को तुम उत्तम समझो॥

अस्मत्पक्षो महान् यावद्यावत्पाञ्चालको लघुः। तावत् प्रहरणं तेषां कियतां मा विचारय ॥ ११॥

वाहनानि प्रभ्तानि मित्राणि च छलानि च। यावन्न तेषां गान्धारे तावद् विक्रम पार्थिव ॥१२॥

अर्थ-जब तक हमारे साथी बहुत हैं और पाञ्चालनरेश छोटा है, तब तक उन पर चढ़ाई करदों इसमें सोचिवचार मत करों, हे गान्धारी के पुत्र राजा दुर्योधन! जब तक उनके पास बहुत सवारियें, बहुत मित्र तथा संबन्धी नहीं हैं तब तक उन पर चढ़ाई करनी चाहिये॥

यावच राजा पाचाल्यो नोद्यमे कुरुते मनः । सहपुत्रैर्महावीर्येस्तावद्विक्रम पार्थिव ॥१३॥ यावन्नायाति वाष्णेयः कर्पन्यादववाहिनीम् । राज्यार्थे पाण्डवेयानां पाचाल्यसद्नं प्रति ॥१४॥

अर्थ-हे राजन ! जब तक अपने महाबली बड़े २ पुत्रों समेत पाश्चालनरेश राजा दुपद युद्ध के उद्योग का संकल्प नहीं करता और जब तक यदुवंशिओं की सेना को साथ लिये हुए वृष्णिवंशि कृष्ण पाण्डवों को राज्य दिशन के लिये उनकी सहायतार्थ पाश्चालनरेश के घर पर नहीं आता तब तक तुम अपना पराक्रम दिखलाओं, और :-

वसूनि विविधान् भोगान् राज्यमेव च केवलम्।
नात्याज्यमास्त कृष्णस्य पाण्डवार्थे कथंचन ॥१५॥

अर्थ-धन, नानायकार के सुखभोग तथा राज्य इनमें से कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जिसको कुष्ण पाण्डवों के हित के लिये न त्याग सकता हो ॥

विक्रमेण मही प्राप्ता भरतेन महात्मना । विक्रमेण च लोकांस्त्रीच् जितवान्पाकशासनः॥१६॥ विक्रमं च प्रशंसन्ति क्षत्रियस्य विशाम्पते । स्वको हि धर्मः शूराणां विक्रमः पार्थिवर्षम।।१७॥ अर्थ-महात्मा भरत राजा ने पराक्रम से ही पृथ्वी को जीता और इन्द्र ने भी पराक्रम से ही तीनो लोकों को विजय किया था, हे श्रेष्ठ पुरुष राजन ! क्षत्रिय के लिये पराक्रम ही प्रशंसनीय है, और अपना धर्म भी शूरवीरों के छिये पराक्रम ही है।। ते बलेन वयं राजन् महता चतुरङ्गिणा । प्रमध्य दुपदं शीघ्रमानयामहे पाण्डवान् ॥१८॥ न हि साम्रा न दानेन न भेदेन च पाण्डवाः। शक्याः साधयितुं तस्माद्रिकमेणैव तान् जहि ॥१९॥ अर्थ-हे राजन ! सो इयलोग वड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना द्वारा रःजा द्रुपद को मारकर पाण्डवों को यहां ले आयगे, पाण्डवों को साम, दान तथा भेद, इन जपायों से नहीं जीत सकते, इस लिये चौथे उपाय दण्ड अर्थात पराक्रम द्वारा ही उनको जीतकर मारडालना चाहिये।।

तान् विक्रमेण जित्वेमामिखलां भुंक्ष्व मेदनीम् ।
अतो नान्यं प्रपत्थामि कार्योपायं जनाधिए॥२०॥
अर्थ-हे राजन् ! उनको पराक्रम से जीतकर इस सम्पूर्ण पृथ्वी
पर राज्य भोगें, मैं इसके अतिरिक्त और कोई अपनी कार्यसिद्धिका उपाय नहीं देखता ॥

सहाभारस

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा तु राघेयवचो धतराष्ट्रः प्रतापवान् । अभिपूज्य ततः पश्चादिदं वचनमत्रवीत् ॥ २१॥ उत्पन्नं महाप्राज्ञे कृतास्त्रे स्तनन्दने । त्विय विक्रमसम्पन्नमिदं वचनमीदृशम् ॥ २२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! प्रतापी राजा धृतराष्ट्र कर्ण की उक्त बात सुनकर उसका सत्कार करके पश्चाद कहने लगे कि हे सुतपुत्र कर्ण ! तुम बड़े बुद्धिमान तथा अस्त्रविद्या में निपुण हो, इसलिये यह पराक्रम से भरे हुए वचन तुम्हारे लिये ठीक ही हैं॥

भूय एव तु भीष्मश्च द्रोणो विदुर एव च । युवां च कुरुतं बुद्धिं भवेद्यानः सुखोदया ॥२३॥ तत आनाय्य तान् सर्वान्मिन्त्रणः सुमहायशाः॥ धृतराष्ट्रो महाराज मन्त्रयामास वै तदा ॥२४॥

अर्थ-परन्तु भीष्म, द्रोण, विदुर तथा तुमदोनों मिलकर इस बात पर विचार करो कि हमारे सुख के उदय का क्या उपाय है, हे राजन ! तब महाप्रतापी राजा धृतराष्ट्र सब मन्त्रियों को बुलवाकर इस विषय पर विचार करने लगे॥

इति त्रिपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुष्पंचाशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

भीष्म उवाच

न रोचते विग्रहो मे पांडुपुत्रैः कथंचन । यथैव धृतराष्ट्रो मे तथा पाण्डुरसंशयम् ॥१॥ गांधार्याश्चयथा पुत्रास्तथा कुंतीसुता मम । यथा च मम ते रक्ष्या धृतगृष्ट्र तथा तव ॥२॥

अर्थ-भीष्मजी वोले कि पाण्डुपुत्रों के साथ युद्ध करना
मुझे किसी प्रकार भी अभीष्ट नहीं, क्योंकि जैसा मेरे लिये
धृतराष्ट्र है वैसा ही पाण्डु था इसमें कुछ सन्देह नहीं,
है धृतराष्ट्र ! जैसे मेरे लिये गान्धारी के पुत्र हैं वैसे ही कुन्ती के
पुत्र हैं, इसलिये जिसपकार मुझे उनकी रक्षा करनी उचित है
उसीयकार तुम्हारे पुत्रों की भी रक्षा कर्तव्य है॥

एवं गते विश्रहं तैर्न रोचे सन्धाय वीरैर्दीय-तामर्द्धभूमिः । तेषामपीदं प्रिपतामहानां राज्यं पितुश्चेव कुरूत्तमानाम् ॥ ३ ॥

अर्थ-ऐसी दशा में मैं उनके साथ युद्ध करना उचित नहीं समझता पत्युत उन वीरों के साथ सन्धि करके आधी भूमी उन्हें देदेनी चाहिये, क्योंकि वह भी कुरुवंश के भूषण हैं और उनके भी दादा-परदादा तथा पिता का राज्य है ॥

दुर्योधन यथा राज्यं त्वामदं तात पश्यिस । मम पैतृकमित्येवं तेऽपि पश्यिनत पाण्डवाः ॥४॥ यदि राज्यं न ते प्राप्ताः पाण्डवेयायशास्त्रिनः। कृत एव तवापीदं भारतस्यापि कस्यचित् ॥५॥

अर्थ-हे प्यारे दुर्योधन ! जैसे तुम समझर्ते हो कि यह राज्य मेरे पिता की संपत्ति है वैसे ही वह पाण्डव भी समझते हैं, यंदि उन मतापी पाण्डवों का राज्यपर कोई अधिकार नहीं है तो तुम्हारा या किसी भी भरतवंशी का कैसे अधिकार होसक्ता है॥

अथ धर्मेण राज्यं त्वं प्राप्तवान् भरतर्षभ । तेऽपि राज्यमनुप्राप्ताः पूर्वमेविति मे मितः ॥६॥ मधुरेणैव राज्यस्य तेषामर्द्धं प्रदीयताम् । एतद्धि पुरुषव्यात्र हितं सर्वजनस्य च ॥७॥

अर्थ-हे भरतवंश श्रेष्ठ ! यदि तुम अपने आपको धर्म से राज्य के पाने वाला समझते हो तो मेरा यह निश्चय है कि उन्होंने भी पहले ही राज्य को पालिया, इसलिये उचित यही है कि सरलत के साथ उनका आधा राज्य देदियाजाय, हे श्रेष्ठ-पुरुष ! इसी में सबका भला है ॥

अतोऽन्यथाचेत कियते न हितं नो भविष्यति । तवाप्यकीर्तिः सकला भिष्यति न संशयः॥८॥ कीर्त्तिरक्षणमातिष्ठ कीर्त्तिर्हि परमं बलम् । नष्टकीर्तिमेनुष्यस्य जीवितं ह्यफ्लं स्मृतम् ॥९॥

आदिपर्य-चतुष्पंचाशाध्याय

४३५

अर्थ-यदि इससे उलटा किया जायगा तो हमारा भला न होगा और तुम्हारी भी भारी अपकीर्त्ति होगी इसमें संदेह नहीं, तुम अपनी कीर्त्ति की रक्षा का यत्न करो, क्योंकि कीर्त्ति ही परम बल है, जिस मनुष्य की कीर्त्ति नष्ट होजाय उसका जीवन ही निष्फल होजाता है॥

यावत्कीर्त्तिर्मनुष्यस्य न प्रणश्यति कौरव । तावज्जीवति गान्धारे नष्टकीर्त्तिस्तु नश्यित ॥१०॥ तिममं समुपातिष्ठ धर्म कुरु कुलोचितम् । अनुरूपं महाबाहो पूर्वेषामात्मनः कुरु ॥११॥

अर्थ-हे गान्धारी के पुत्र कुरुवंशी दुर्योधन! जब तक म-नुष्य की कीर्त्ति है तभी तक वह जीता है किंतु कीर्त्ति नष्ट होने पर मरजाता है, हे महाबाहु! इसिल्ये तम कुरुवंश के योग्य तथा अपने पुरुषाओं के अनुरूप जो अपना कर्तव्य हो उसका पालन करो।।

दिष्ट्या त्रियंते पार्था हि दिष्ट्या जीवति सा पृथा। दिष्ट्या पुरोचनः पापो न सकामोत्ययं गतः॥१२॥ यदा प्रभृति दग्धास्ते क्वंतिभोजसुतासुताः। तदा प्रभृति गांधारे न शकोम्यभिवीक्षित्रम् ॥१३॥

अर्थ-सौभाग्य की वात है कि वह कुन्ती और कुन्ती के पुत्र पाण्डव अभी जीवित हैं, सौभाग्य की वात है कि पापी पुरो-चन का मनोरथ पूरा नहीं हुआ और वह मर भी गया, हे गान्धारी के पुत्र ! जब से मैंने सुना था कि कुन्तीभोज की पुत्री कुन्ती के पुत्र पाण्डव जल गये तब से मैं तुम्हारी ओर देख भी नहीं सक्ता था।

लोके प्राणभृतां किञ्चछुत्वा कुन्तीं तथा गताम्।
न चापि दोषेण तथा लोको मन्येत्पुरोचनम्।
यथा त्वां पुरुषव्याघ्र लोको दोषेण गच्छिति ॥१४॥
अर्थ-हे सिहपुरुष दुर्योधन! संसार में कोई भी पुरुष जो
कुन्ती का पुत्रों समेत वैसा होना अर्थाद लाक्षागृह में जलाया
नाना सुनता था वह पुरोचन को वैसा दोष नहीं लगाता था
जैसा तुमको पाप लगाता था॥

तदिदं जीवितं तेषां तव किल्विषनाशनम् ।
सम्मन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम्।।१५॥
न चापि तेषां वीराणां जीवतां कुरुनन्दन।
पित्र्योंऽशः शक्यआदातुमिपवज्रभृतां स्वयम्।।१६॥
ते सर्वेऽविस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः ।
अधर्मे न निरताश्च तुल्ये राज्ये विशेषतः ॥१७॥
यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्य प्रियं च मे ।
क्षेमं च यदि कर्त्तव्यं तेषामर्द्धं प्रदीयताम् ॥१८॥

अर्थ-वह सभी पाण्डव धर्म पर दृढ़ तथा सब एक चित्त हैं, और विशेषकर उनका आधा राज्य होते हुए भी वह अधर्म की ओर नहीं जाते, यदि तुम धर्म और मेरी प्रसन्नता करना चाहते हो तथा अपना कल्याण करना अभीष्ठ है तो उनको आधा राज्य देदेना ही उचित है।

इति चतुष्पंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचपंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते



द्रोण उवाच

मन्त्राय समुपानीतैर्धृतराष्ट्र हितैर्नृप । धर्म्यमर्थ्य यशस्यं च वाच्यमित्यनुशुश्रुम ॥१॥ ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः । संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष मनातनः ॥२॥

अर्थ-द्रोणाचार्य बोले कि हे राजन धृतराष्ट्र ! हम यह सुनते आये हैं कि जो पुरुष सलाह के लिये बुलाये जावें उन्हें उचित है कि हितैषी होकर धर्म, अर्थ तथा यश करने वाली सलाह देवें, हे प्यारे ! मेरी भी यही सम्मति है जो महात्मा भीष्मजी की है, सो कुन्ती के पुत्रों को शीघ्र ही राज्य का बटवारा करके देदों, यही सनातन धर्म है ॥

प्रेष्यतां द्रुपदायाशु नरः कश्चितिप्रयंवदः । बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत ॥ ३॥ मिथः कृत्यं च तस्मै स आदाय वसु गच्छतु । वृद्धिं च परमां ब्रूयात्त्वत्संयोगोद्धवांस्तथा ॥ ४॥

अर्थ-हे भरतवंशी! किसी प्रियभाषी दृत को बहुत से रह देकर राजा दुपद के समीप पाण्डवों के बुछाने के छिये शीघ्र भेजना चाहिये, वह उनके समीप परस्पर के संबन्ध का कार्य तथा धन लोके प्राणभृतां कञ्चिछुत्वा कुन्तीं तथा गताम् ।

न चापि दोषेण तथा लोको मन्येत्परोचनम् ।

यथा त्वां पुरुषव्याघ्र लोको दोषेण गच्छिति ॥१४॥

अर्थ-हे सिंहपुरुष दुर्योधन! संसार में कोई भी पुरुष जो

कुन्ती का पुत्रों समेत वैसा होना अर्थाद लाक्षागृह में जलाया

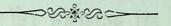
गाना सुनता था वह पुरोचन को वैसा दोष नहीं लगाता था

जैसा तुमको पाप लगाता था॥
तिदं जीवितं तेषां तव किल्विषनाशनम्।
सम्मन्तव्यं महाराज पाण्डवानां च दर्शनम्।।१५॥
न चापि तेषां वीराणां जीवतां करुनन्दन।
पित्र्योंऽद्याः शक्यआदातुमपिवज्रभृतां स्वयम्।।१६॥
ते सर्वेऽविस्थिता धर्मे सर्वे चैवैकचेतसः।
अधर्मे न निरताश्च तुल्ये राज्ये विद्योषतः॥१७॥
यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्य प्रियं च मे।
क्षेमं च यदि कर्त्तव्यं तेषामद्धं प्रदीयताम्॥१८॥

अर्थ-वह सभी पाण्डव धर्म पर दृढ़ तथा सब एक चित्त हैं, और विशेषकर उनका आधा राज्य होते हुए भी वह अधर्म की ओर नहीं जाते, यदि तुम धर्म और मेरी प्रसन्नता करना चाहते हो तथा अपना कल्याण करना अभीष्ट है तो उनको आधा राज्य देदेना ही उचित है॥

इति चतुष्पंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचपंचाशोऽध्यायः प्रार्भ्यते



द्रोण उवाच

मन्त्राय समुपानीतैर्धृतराष्ट्र हितैर्नृप । धर्म्यमर्थ्य यशस्यं च वाच्यमित्यनुशुश्रुम ॥१॥ ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः । संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः ॥२॥

अर्थ-द्रोणाचार्य बोले कि हे राजन धृतराष्ट्र ! हम यह सुनते आये हैं कि जो पुरुष सलाह के लिये बुलाये जावें उन्हें उचित है कि हितैषी होकर धर्म, अर्थ तथा यश करने वाली सलाह देवें, हे प्यारे ! मेरी भी यही सम्मित है जो महात्मा भीष्मजी की है, सो कुन्ती के पुत्रों को शीघ्र ही राज्य का बटवारा करके देदों, यही सनातन धर्म है ॥

प्रेष्यतां द्रुपदायाशु नरः कश्चितिप्रयंवदः । बहुलं रत्नमादाय तेषामर्थाय भारत ॥ ३॥ भिथः कृत्यं च तस्मै स आदाय वसु गच्छतु । वृद्धं च परमां ब्रूयात्त्वत्संयोगोद्भवांस्तथा ॥ ४॥

अर्थ-हे भरतवंशी! किसी पियभाषी दृत को बहुत से रह देकर राजा दुपद के समीप पाण्डवों के बुछाने के छिये शीघ भेजना चाहिये, वह उनके समीप परस्पर के संबन्ध का कार्य तथा धन हेकर जावे और वहां जाकर तुम्हारे और दुपद के परस्पर सं-बन्ध से होने वाली परमवृद्धि की मशंसा करे ॥ संप्रीयमाणं त्वां ब्रूयाद्राजन दुर्योधनं तथा । असकृद्दुपदे चैव धृष्टद्युम्ने च भारत ॥५॥ उचितत्वं प्रियत्वं च योगस्यापि च वर्णयेत् । पुनः पुनश्च कौन्तेयान मादीपुत्रौ च सान्त्वयन्॥६॥

अर्थ-हे भारतीय राजन धृतराष्ट्र! वह दृत वहां जाकर राजा द्रुपद तथा धृष्टद्युम्न से वार २ यह कहे कि राजा धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन पाण्डवों के समाचार से वड़े प्रसन्न हैं, वह दृत कुन्ती तथा माद्री के पुत्रों को धैर्य देते हुए इस विवाहसंबन्ध को भी वार २ उचित और प्रिय वर्णन करे॥

हिरण्मयानि शुभ्राणि बहून्याभरणानि च । वचनात्तव राजेन्द्र द्रौपद्या संप्रयच्छतु ॥७॥ तथा द्रुपदपुत्राणां सर्वेषां भरतर्षभ । पाण्डवानां च सर्वेषां क्रन्त्या युक्तानि यानि च ॥८॥

अर्थ-हे भरतवंश में श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र ! वह दृत तुम्हारी आज्ञा से बहुत से सुन्दर २ सुवर्ण के भूषण द्रौपदी, द्रुपद के सब पुत्रों और सब पाण्डवों तथा जो कुन्ती के योग्य हों वह कुन्ती को देवे ॥

एवं सान्त्वसमायुक्तं द्रुपदं पाण्डवैः सह । उक्त्वा सोऽनन्तरं ब्र्यात्तेषामागमनं प्रति ॥९॥

आदिपर्व-पंचपचाशाध्याय

39

अनुज्ञातेषु वीरेषु वलं गच्छतु शोभनम् । दुःशासनो विकर्णश्चाप्यानेतुं पाण्डवानिह ॥१०॥

अर्थ-इस मकार वह दृत, पाण्डवों सहित हुपद को धैर्य के बचन कहकर पश्चाद राजा हुपद से पाण्डवों के आने के विषय में कहे, जब उन वीरों को आने की अनुमित मिल्रजाय तब सुन्दरसेना सहित दुःशासन और विकर्ण पाण्डवों को यहां लिवा लाने के लिये जावें ॥

ततस्ते पाण्डवाः श्रेष्ठाः प्रज्यमाना सदा त्वया । प्रकृतीनामनुमते पदे स्थास्यन्ति पैतृके ॥११॥ एतत्तव महाराज प्रत्रेष्ठ तेष्ठ चैव हि । वृत्तमौपियकं मन्ये भीष्मेण सह भारत ॥१२॥

अर्थ-तब वह श्रेष्ठ पाण्डव सदा तुम से सत्कार किये हुए मजाओं की अनुमित से अपने पिता के राज्य पर स्थिर होजायंगे, है भरतवंशी महाराज धृतराष्ट्र! मैं भीष्म के साथ सहमत हूं कि तुम्हारे पुत्रों और पाण्डवों के लिये इस मकार न्याययुक्त वर्ताव करना जित्त है ॥

कर्ण उवाच

योजितावर्थमानाभ्यां सर्वकार्येष्वनन्तरौ । न मन्त्रयेतां त्वच्छेयः किमद्भुततरं ततः॥१३॥ दुष्टेन मनसा यो वै प्रच्छन्नेनांतरात्मना । ब्रुयान्निःश्रेयसं नाम कथं कुर्यात्सतां मतम् ॥१४॥ अर्थ-कर्ण बोला कि तुम्हारे दोनों मन्त्री जो धन तथा मान से सत्कार पाये हुए तथा सब कार्यों में प्रधान हैं वह यदि तुम्हारी भलाई की बात न कहें तो इससे अधिक और क्या आश्चर्य हो सकता है, परन्तु जो पुरुष दुष्ट मन से भीतर कुछ और ही भाव रखता हुआ भलाई की बात कहे तो वह सज्जनों के योग्य सम्मति कैसे देसकता है ?॥

न मित्राण्यर्थकृछेषु श्रेयसे चेतराय वा । विधिपूर्व हिसर्वस्य दुःषं वा यदिवा सुखम् ॥१५॥ कृतप्रज्ञोऽकृतप्रज्ञो बालो वृद्धश्च मानवः । ससहायोऽसहायश्च सर्व सर्वत्र विन्दति ॥१६॥

अर्थ-धन आदि के कि में मित्र लोग कुछ भलाई वा बु-राई नहीं करते किंतु अपने यत्र के अनुसार सब कोई दुःख वा सुख भोगता है, मनुष्य चाहे बुद्धिमान हो, निर्वृद्धि हो, चाहे बालक वा बुद्ध हो, सहायकों वाला वा असहाय हो, किंतु सब कुछ सब स्थानों में प्राप्त करसकता है ॥

श्रूयते हि पुरा कश्चिदम्ब्रवीच इतीश्वरः । आसीद्राजगृहे राजा माग्धानां महीक्षिताम् ॥१७॥ स हीनः करणेः सर्वेष्ठच्छ्वासपरमो नृपः । अमात्यसंस्थः सर्वेषु कार्येष्वेवाभवत्तदा ॥१८॥

अर्थ-मुना जाता है कि पहले मगधदेश के राजाओं के घराने में कोई "अम्बुवीच" नामक राजा था वह राजा अत्य-न्त विश्वास करने वाला होकर सब साधनों से हीन हुआ २ सब कार्यों में मन्त्रियों के भरोसे रहने लगा ॥

तस्यामात्यो महाकर्णिर्वभूवैकेश्वरस्तदा। स लब्धबलमात्मान मन्यमानोऽवमन्यते ॥१९॥ स राज्ञ उपभोग्यानि स्त्रियो रत्नधनानि च। आददे सर्वशो मृह ऐश्वर्यं च स्वयं तदा ॥२०॥

अर्थ-तव महार्काण नामक उसका मन्त्री ही राजा वन बैठा और वह अपने आपको वलवान समझकर राजा का अपमान करने लगा तथा लालच से अन्धे हुए २ उस मन्त्री ने राजा के भोगने योग्य िश्वयों, रत्रों तथा धनों को और राजा के ऐश्वर्य को भी स्वयं ब्रहण कर लिया ॥

तदादाय च लुब्धस्य लाभाहोभोऽप्यवर्द्धत । तथा हि सर्वमादाय राज्यमस्य जिहीपित ॥२१॥ हीनश्च करणेः सर्वेरुच्छ्वासिपरमस्य सः । यतमानोऽपितदाज्यं नशशाकेति नःश्रुतम् ॥२२॥

अर्थ-उस सबको लेकर ज्यों २ लाभ होने लगा त्यों २ उस मन्त्री का लोभ भी बढ़ता गया, तात्पर्य यह है कि वह सब कुछ लेकर उसके राज्य छीनने की इच्छा करने लगा, अन्त में वह राजा सब साधनों में हीन होगया और केवल मन्त्रियों पर विश्वास करता २ राज्य खो बैटा पश्चात यत्र करने पर भी वह राज्य को न पासका, ऐसा हमने सुना है ॥

एवं विद्वन्तुपादत्स्व मन्त्रिणां साध्वसाधुताम् । दृष्टानां चैव वोद्धव्यमदृष्टानां च भाषितम् ॥२३॥ 832

महाभारत

अर्थ-हे विद्वान ! इस प्रकार पहले तुम मन्त्रिलोगों की श्रेष्ठता और दृष्टता पर विचार करो, पश्चात दृष्टों तथा श्रेष्ठों के भाषण को सुनो और समझो ॥

द्रोण उवाच

विद्या ते भावदोपेण यदर्थामिदमुच्यते । दुष्ट पाण्डवहेतोस्त्वं दोपमाख्यापयस्यत ॥२४॥ हितं तु परमं कर्ण बवीमि कुलर्वर्द्धनम् । अथ त्वं मन्यसे दुष्टं बृहि यत्परमं हितम् ॥२५॥

अर्थ-द्रोणाचार्य बोले कि है दुष्ट कर्ण ! तुम्हारे दुष्ट अभि-प्राय को हम समझते हैं जिसलिये तैने यह सब छुछ कहा है, तुम पाण्डवों के लिये कुछ और हमनि की बात जनला रहे हो, है कर्ण !मैं तो हित की बात तथा कुछ की उन्नति करने की सम्म-ति बतला रहा हूं, यदि तृ हमें दुष्ट समझता है तो जो कुछ परम हित की बात हो वह तू कह।।

अतोऽन्यथा चेत्क्रियते यद्ब्रवीमि परं हितम् । न वो वै न विनङ्क्ष्यन्ति न चिरेणैव मेसितः॥२६॥

अर्थ-मैं जो कुछ अत्यन्त हित की वात कह रहा हूं यदि इस से उलटा किया जायगा तो मेरी सम्मति में तुमलोग शीघ ही नष्ट होजाओंगे॥

इति पंचपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अथ पट्पंचाशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

विदुर उवाच

राजिनःसंशयं श्रेयो वाच्यस्त्वमिस बान्यवैः । न त्वशुश्रूपमाणे वै वाक्यं संप्रति तिष्ठति ॥१॥ प्रियं हितं च तद्वाक्यमुक्तवान् कुरुनन्दनः । भीष्मःशान्तनवो राजन् प्रतिगृहणासि तन्न च ॥२॥

अर्थ-विदुर ने कहा कि है राजन ! इस में सन्देह नहीं कि तुम्हारे वन्धुलोगों को तुम्हारे हित की बात कहनी अचित है, परंतु जो पुरुष अपने हित की बात ग्रुनना ही नहीं चाहता हो,तो असके मन में बचन ठहर नहीं सकता, हे राजन ! कुरुवंशभूषण शन्तनु-पुत्र भीष्मजी ने तुम्हारे लिये प्यारी और हित की बात कही है परंतु तुम अस बात को ग्रहण नहीं करते ॥

तथा द्रोणेन बहुधा भाषितं हितमुत्तमम्।
तच राधासुतः कर्णा मन्यते न हितं तव ॥३॥
चिन्तयंश्च न पश्यामि राजंस्तव सहत्तमम्।
आभ्यां पुरुषसिंहाम्यां यो वा स्यात्प्रज्ञयाधिकः॥४॥

अर्थ-और द्रोणाचार्य ने भी तुम्हारे हितके लिये अनेक मकार से उत्तम २ उपदेश किये हैं पर राधा का पुत्र कर्ण उस में तुम्हारा हित नहीं समझता, हे राजन ! में बहुत सोचितचार करने पर भी यह नहीं देखता कि इन दोनों सिंहपुरुषों से अधिक तुम्हारा अन्य कोई हितकारी वा बुद्धि में अधिक है ॥ इमी हि वृद्धी वयसा प्रज्ञया च श्रुतेन च । समी च त्विय राजेन्द्र तथा पाण्डसतेषु च ॥५॥ धर्मे चानवरी राजन् सत्यतायां च भारत । रामाद्दाशरथरचेव गयाचैव न संशय: ॥६॥

अर्थ-हे राजेन्द्र ! यह दोनों महात्मा आयु,बुद्धि और विद्या में वड़े हैं तथा तुम और पाण्ड के पुत्र दोनों ही इनके टिये स-मान हैं, हे भारतीय राजद ! यह दोनों पुरुष धर्म तथा सत्यता में दथरथ के पुत्र रामचन्द्र और महात्मा गय=ग्रुग्रीव से कम नहीं हैं, इस में कुछ सन्देह नहीं॥

न चोक्तवन्तावश्रेयः पुरस्तादिप किंचन । न चाप्यपकृतं किंचिदनयोर्छक्ष्यते त्विय ॥७॥ ताबुभौ पुरुषव्याश्रावनागिस नृषे त्विय । न मन्त्रयेतां त्वच्छेयः कथं सत्यपराक्रमौ ॥८॥

अर्थ-हे राजन ! इन होनों ने पहले भी कोई अहित की बात नहीं कही और नाही आप केमित इनका कोई अपकार दीखता है, इसलिये आप की ओर से यह सिंहपुरुष सर्वथा निष्पाप हैं, हे नृप ! फिर यह दोनों सच्चेपराक्रमी सिंहपुरुष निरपराध होते हुए क्यों नहीं हुम्हारे हित की सलाह देंगे अर्थात अवदय देंगे॥

इति मे नैष्ठिकी बुद्धिर्वर्त्तते कुरुनन्दन । न चार्थहेतोर्धर्मज्ञौ वक्ष्यतः पक्ष पश्चितम् ॥९॥ दुयोंधनप्रभृतयः पुत्रा राजन् यथा तव । तथैव पाण्डवेयास्ते पुत्रा राजन्न संशयः ॥१०॥

अर्थ-हे कुरुवंशी राजन ! मेरा यह हट् निश्चय है कि यह दोनों धर्मात्मा पुरुष धन के छोभ से कभी पक्षपात की बात नहीं कहेंगे, हे राजन ! जैसे ही दुर्योधन आदिक तुम्हा रे पुत्र हैं वैसे ही पाण्डव भी तुम्हारे पुत्र हैं, इसमें संशय नहीं ॥

तेषु चेदहितं किंचिन्मन्त्रयेयुरतिद्धदः । मन्त्रिणस्ते न च श्रेयः प्रपश्यन्ति विशेषतः ॥११॥ अथ ते हृदये राजन् विशेषः स्वेषु वर्त्तते। अन्तरस्थं विवृण्यानाः श्रेयः कुर्युनं ते श्रुवम् ॥१२॥

अर्थ-हे राजन ! विशेषकर जो मन्त्री इस बात को न समझते हुए उन पाण्डवों की हानि करने की सलाह देवें वही तुम्हारे हित को नहीं समझते, हे राजन ! यदि तुम्हारे हृदय में अपने पुत्रों पर विशेष प्रेम है तो निश्चय रखना कि वह पुत्र तुम्हारे भीतरी भाव को प्रकट करते हुए तुम्हारे लिये भला न करेंगे ॥

एतद्थीममौ राजन् महात्मानौ महाद्यती । नोचतुर्विकृतं किंचित्र होष तव निश्चयः ॥१३॥ यचाप्यशक्यतां तेषामाहतुः पुरुषर्षभौ । तत्त्रथा पुरुषव्याघ्र तव तद्भद्रमञ्जू ते ॥१४॥

अर्थ-परंतु हे राजन ! तुम्हारा ऐसा निश्चय नहीं होगा, इसीलिये इन दोनों महाउद्यमी महात्माओं ने तुम्हारे चित्त को दुखाने वाली ऐसी कोई बात नहीं कही, हे सिंहपुरुष राजन ! इन दोनों श्रेष्ठ पुरुषों ने जो यह कहा है कि पाण्डवों को तुम जीत नहीं सकते, सो ठीक ऐवा है। है, ईवार तुम्हारा कल्याण करे॥

येवां पक्षवरो रामो येवां मन्त्री जनाईनः । किं न तैरिजितं संख्ये येवां पक्षे च सात्यकिः ॥१५॥ दुपदः श्वसुरो येवां येवां स्थालाश्च पार्वताः । घट्यत्र न वीरा भातरो दुनदात्वजाः ॥१६॥

अर्थ-नित्रका पश्चपति। वल्लान है और जितका मन्त्री अर्थात सलाहकार कृष्ण है तथा जितके पश्च में सात्यिक है, उन्होंने किस को युद्ध में नहीं जीत लिया अर्थात सबको वह जीत सकते हैं, राजा दुपद जिलका श्वसुर है और पृपती के पुत्र अर्थात दुपद के बीर पुत्र घृष्टदुम्न आदि सब भाई जिनके साले हैं उनका जीतना अतंमन है ॥

सोऽशक्यतां च विज्ञाय तेषामग्रे च भारत । दायाद्यतां च धर्मेंग सम्यक् तेषु समाचर ॥१७॥ इदं निन्दितमयशः पुरोचनकृतं महत् । तेषामगुत्रहेणाद्य राजव् प्रकालयातमनः ॥१८॥

अर्थ-हे भारतीय राजत ! सो तुन उनको जीतना अनंभन जानकर पहले ही धर्मपूर्वक उनके दायभाग को अर्पण करके उनके साथ अच्छा वर्ताव करो, हे राजत ! पुरोचन का किया हुआ यह जो भारी निन्दित कलंक तुम्हारे ऊपर लगा हुआ है इस अपने कलंक को तुम आज ही पाण्डवों पर अनुग्रह करके धो डालो ॥

तेषामनुग्रहश्चायं सर्वेषां चैव नः कुले । जीवितं च परं श्रेयः क्षत्रस्य च विवर्द्धनम् ॥१९॥ वलवन्त हा दाशाही बहवश्च विशाम्पते ।

यतः कुष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः ॥२०॥

अर्थ-उन पर यह अनुग्रह करना हमसब के हित का कृ

रण, जीवनस्प, परम कहयाण तथा क्षत्रियवंश की दृद्धि कर्रना है, हे राजव ! यदुवंशी बीर भी वहुत हैं और वस्त्रान भी
हैं, जिस ओर छुष्ण होंगे उसी ओर वह सब रहेंगे और जिस
ओर छुष्ण हैं, उसी ओर विजय होगा ॥

यच साम्नेव शक्येत कार्य साधायतुं नृप । को दैवशप्तस्तत्कार्य विश्रहेण समाचरत् ॥२१॥ श्रुत्वा च जीवतः पार्थाच् पौरजानपदा जनाः । बलवहर्शने हृष्टास्तेषां राजन् वियं क्रुरु ॥२२॥

अर्थ-हे राजन ! जो कार्य शानित से सिद्ध किया जासक-ता हो उसको शुद्ध करके सिद्ध करे ऐसा कौन दुर्भागी पुरुष होगा, हे राजन ! पुर और जान्त के रहने वाले पुरुष भी पण्डवों को जीवित सुनकर बहुत ही हार्पत हुए हैं, सो तुम उनका भी मनोरथ पूर्ण करो, और:—

दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौवलः। अधर्मयुक्ता दुष्पज्ञा बाला मेषां वचः कृथाः॥२३॥ उक्तमेतत् पुरा राजन्मया ग्रणवतस्तव। दुर्योधनापराधेन प्रजेयं वै विनङ्क्ष्यित ॥२४॥

अर्थ- हे राजन ! दुर्योधन, कर्ण, सुबल का पुत्र शकुनि यह लोग पापात्मा, निर्बुद्धि और वालक हैं, इसलिये इनका कहा महाभारत

288

मत करो, हे राजन ! तुम गुणवान हो, मैं ने पहले ही तुम से कहा था कि दुर्धोधन के अपराध से यह सब प्रजा नष्ट होजायगी ॥

इति षट्पंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तपंचाशोऽध्यायः प्रारभ्यते

धृतराष्ट्र उवाच

भीष्मः शान्त नवो विद्वान द्रोणश्च भगवानृषिः। हितं च परमं वाक्यं त्वंच सत्यं त्रवीषि माम्।।१॥ यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः। तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः।।२॥

अर्थ-धृतराष्ट्र ने कहा कि विद्वान शन्तनुपुत्र भीष्म, भगवान ऋषि द्रोणाचार्य तथा तुम भी मेरे लिये हितकारी तथा सची बात कह रहे हो, जिस प्रकार वह महायोद्धा वीर पाण्डव कुन्ती के पुत्र धर्मानुसार मेरे पुत्र हैं वैसे ही यह सब मेरे पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥

यथैव मम पुत्राणामिदं राज्यं विधीयते ।
तथैव पाइपुत्राणामिदं राज्यं न संशयः॥३॥
क्षत्तरानय गच्छेतान् सहमात्रा सुसत्कृतान् ।
तया च देवरू।पिण्या कृष्णया सह भारत ॥४॥
अर्थ-और इस में भी संशय नहीं कि जैसे मेरे पुत्रों का इस
राज्य पर अधिकार है वैसे ही पाण्ड के पुत्रों का भी है, हे भरत-

वंशी विदुर ! तुम जाओ और परमसत्कार के साथ पाण्डवों की उनकी माता तथा दिन्यक्षवाली कृष्णा समेत लिवा लाओ ॥

दिष्ट्या जीवान्त ते पार्था दिष्ट्या जीवति सा पृथा। दिष्ट्या दुपदकन्यां च लब्धवन्तो महारथाः ॥५॥ दिष्ट्या वर्द्धामहे सर्वे दिष्ट्या शान्तः पुरोचनः। दिष्ट्या मम परं दु खमपनीतं महाद्यते ॥६॥

अर्थ-हर्प की बात है कि वह कुन्ती के पुत्र तथा कुन्ती जीवित हैं और यह भी हर्प की बात है कि उन महाबीर पुरुषों ने दुपद की पुत्री को प्राप्त कर लिया, हर्प है कि हम सबकी उन्नति हुई और पुरोचन का नाश हुआ, हे महातेजस्वी विदुर ! मुझे यह भी हर्ष है कि तुमने मेरे भारी दुःख की दूर कर दिया है ॥

वैद्याम्प्रायन उवाच

ततो जगाम विदुरो धतराष्ट्रस्य शासनात् । सकाशं यज्ञसेनस्य पाण्डवानां च भारत ॥७॥ समुपादाय रत्नानि वस्त्वि विविधानि च । द्रौपद्याः पाण्डवानां च यज्ञसेनस्य चैव हि ॥८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे भारतीय राजन जनमेज्य ! तब धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर जी द्रौपदी तथा पाण्डवों और यज्ञ-सेन=द्रुपद राजा के लिये अनेक प्रकार के रक्ष और धन लेकर जनके समीप गये ।

स चापि प्रतिजग्राह धर्मेण विदुरं ततः। चकतुश्च यथान्यायं कुरालप्रश्नसंविदम्।।९॥

ददर्श पाण्डवांस्तत्र वासुदेवं च भारत । स्नेहात्परिष्वज्य स तान् पप्रच्छानामयं ततः॥१०॥

अर्थ-तब राजा दुपद भी धर्मपूर्वक सत्कार के साथ उनको िलवा लेगये और उन दोनों ने परस्पर शिष्टाचार के अनुसार कुशल पूछा, हे भरतवंशी! विदुरजी ने वहां पर पाण्डवों तथा छुष्णजी को देखाऔर पेम के साथ आलिङ्गन करके कुशल समाचार पूछा।

वचनाद्धतराष्ट्रस्य स्नेहयुक्तं पुनः पुनः । पप्रच्छानामयं राजंस्ततस्तान् पाण्डनन्दनान्।।११। पददो चापि स्नानि विविधानि वस्ति च । पाण्डानां च कुन्त्यास्च द्रौपद्यास्च विशाम्पते । द्रुपदस्य च पुत्राणां यथा दत्तानि कौरवैः ।।१२।।

अर्थ-हे राजन ! इसके पश्चात विदुर ने धृतराष्ट्र की ओर से प्रेमपूर्वक बार २ पाण्डवों की कुशल पूछी और अनेकमकार के रत्न तथा धन पाण्डवों, द्धन्ती, द्रौपदी तथा द्रुपद के पुत्रों को दिये, जो कौरवों ने उन्हें दिये थे॥

उवाच चामितमतिः प्रश्रितं विनयान्वितः । द्वपदं पाण्डपुत्राणां सन्निधौ केशवस्य च ॥१३॥

अर्थ-इस के पश्चात महाबुद्धिमान विनययुक्त विदुरजी पाण्डवों तथा कृष्णजी के सन्मुख इस मकार विनीत वचन बोले कि:-

राजन् शृणु सहामात्यः सपुत्रश्च वचो मम । धृतराष्ट्रः सपुत्रस्त्वां सहामात्यः सबान्धवः॥१४॥

आदिपर्व-सप्तपंचाशाध्याय

863

अनवीत् कुशलं राजन् प्रीयमाणः पुनः पुनः। प्रीतिमांस्ते दृढं चापि संबन्धेन नराधिप ॥१५॥

अर्थ-हे राजन ! तुम अपने मन्त्रियों तथा पुत्रों समेत मेरी बात सुनो, राजा धृतराष्ट्र ने प्रसन्नता के साथ अपने पुत्रों, मन्त्रि-यों तथा संवित्ययों समेत बार २ तुम्हारा कुशल पूछा है लथा हे राजन ! तुम्हारे साथ इस विवाह संवन्त्र से वह अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं, और:—

तथा भीष्मः शान्तनवः कैरिवैः सह सर्वशः। कुशलं त्वां महाप्राज्ञः सर्वतः परिपृच्छिति ॥१६॥ भारद्वाजो महाप्राज्ञो द्राणः प्रियससस्तव। समारुलेषमुपेत्य त्वां कुशलं परिपृच्छित ॥१७॥

अर्थ-शन्तनुपुत्र महाबुद्धिमान भीष्मजी ने सब कुरुवंशियों समेत तुम्डारी सब प्रकार से कुशल पूछी है और तुम्हारे प्यारे मित्र महाबुद्धिमान द्रोणाचार्य ने आलिङ्गन करके तुम्हारा कुत्रल-समाचार पूछा है ॥

घृतराष्ट्रश्च पाञ्चाल्य त्वया संबन्धमीयिवान् । कृतार्थ मन्यतेऽऽत्मानं तथा सर्वेऽिप कौरवाः॥१८॥ न तथा राज्यसंप्राप्तिस्तेषां प्रीतिकरी मता । यथा सबन्धकं प्राप्य यज्ञसेन त्वया सह ॥१९॥

अर्थ-हे पाञ्चाल नरेश ! तुम्हारे साथ सम्बन्ध होजाने से धृतराष्ट्र तथा अन्य सब कुरुवंशी अपने आपको कुतार्थ मानते हैं, हे द्रुपद राजन ! उनको राज्य की प्राप्ति से उतनी प्रसक्ता नहीं हुई जितनी तुम्हारे साथ सम्बन्ध होजाने से हुई है ॥

एतिदित्वा तु भवान् प्रस्थापयतु पाण्डवान् । दृष्टुं हि पाण्डुपुत्रांश्च त्वरन्ति क्रखो भृशम् ॥२०॥ विप्रोपिता दीर्घकालमेते चापि नर्र्षभाः । उत्सुका नगरं द्रष्टुं भविष्यन्ति तथा पृथा ॥२१॥

अध-ऐसा जानकर आप पाण्डवों को वहां भेजदें, क्योंकि पाण्डवों को देखने के लिये कुरुवंशी बहुत उत्कण्टा कर रहे हैं और यह सिंहपुरुषपाण्डव तथा कुन्ती बहुत समय से परदेश में रहते रहे हैं इसलिये इनको भी अपना नगर देखने की उत्कण्टा होगी, और:-

कृष्णामपि च पाञ्चालीं सर्वाः करुवरिश्चयः। द्रष्टुकामाः प्रतीक्षन्ते पुरं च विषयाश्च नः ॥२२॥ स भवान् पाण्डपत्राणामाज्ञापयतु मा चिरम्। गमनं सह दाराणामेतदत्र मतं मम ॥२३॥

अर्थ-पाञ्चाली कृष्णा = द्रौपदी को देखने के लिये सब कुरुवंशियों की स्त्रियें तथा हमारे नगर और देश की स्त्रियें भी मतीक्षा कर रही हैं, सो मेरी इसमें यह सम्मति है कि आप पाण्डवों को उनकी भार्या समेत शीब्रही वहां जाने की आझा दें।

निसृष्टेषु त्वया राजन् पाण्डवेषु महात्मस् । ततोऽहं प्रेषयिष्यामि धृतराष्ट्रस्य शीघ्रगान् । आगामैष्यन्ति कौन्तेयाःकुन्ती च सहकृष्णया।।२४॥

आदिपर्व-अष्टपंचाशाध्याय

४५३

अर्थ-हे राजन ! महात्मा पाण्डवों को तुम्हारी आज्ञा मिलने पर मैं वहां से धृतराष्ट्र के शीघ्रगामी रथ भिजवाऊंगा जिनपर चढ़कर कुन्ती के पुत्र, कुन्ती तथा द्रौपदी यह सब वहां आजायेंगे॥

इति सप्तपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टपंचाशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

द्रुपद् उवाच

एवमेतन्महाप्राज्ञ यथात्थ विदुराद्य माम् । ममापि परमो हर्षः संबन्धेऽस्मिन् कृते प्रभो ॥१॥ गमनं चापि युक्तं स्याद्दृदृमेषां महात्मनाम् । न तु तावन्मया युक्तमेतद्रकं स्वयं गिरा ॥२॥

अर्थ-द्रुपद ने कहा कि है महाविद्वान प्रभावशील विदुर! मुझ से जो कुछ आप कह रहे हैं वह ठीक है, इस सन्बन्ध के करने पर मुझे भी अत्यन्त हर्भ हुआ है, और इन महात्मा पाण्डवों का वहां जाना भी जिचत ही प्रतीत होता है, परन्तु यह बात मुझे अपनी वाणी से कहना जिचत नहीं है।

यदा तु मन्यते वीरः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । भीमसेनार्जुनौ वैव यमौ च पुरुर्षपभौ ॥३॥ रामकृष्णौ च धर्मज्ञौ तदा गच्छन्तु पाण्डवाः । एतौ हि पुरुषव्यात्रावेषां त्रियहिते रतौ ॥४॥ 868

महाभारत

अर्थ-जब इस वात को वीर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, श्रेष्ठ पुरुष भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, मान लें और धर्म के ज्ञाता बलराम और कुष्ण भी स्वीकार कर लें तब पाण्डवलोग वहां जावें, क्योंकि बलराम और कुष्ण यह दोनों सिंहपुरुष इन पाण्डवों की मसन्नता तथा हित करने में तत्पर रहते हैं॥

युधिष्ठिर उवाच

परवन्तो वयं राजंस्त्विय सर्वे सहानुगाः।
यथा वक्ष्यास नः प्रीत्या तत्करिष्यामहे वयम्॥५॥
ततोऽत्रवीद् वासुदेवो गमनं रोचते मम ।
यथा वा मन्यते राजा द्रुपदः सर्वधर्मवित् ॥६॥

अर्थ-याधिष्ठिर बोले कि हे राजन ! हम सब पराधीन और आपके आज्ञाकारी हैं, जैसे आप मसन्नतापूर्वक हमें कहेंगे वैसा ही हम करेंगे, तब कृष्ण ने कहा कि मेरी सम्मात में पाण्डवों का वहां जाना ही अच्छा मतीत होता है अथवा सम्पूर्ण धम्मों के ज्ञाता राजा दुपद जो कुछ जचित समझें वह कर्तव्य है ॥

द्वपद् उवाच

यथैव मन्यते वीरो दाशाईः पुरुषोत्तमः ।
प्राप्तकालं महाबाहुः सा बुद्धिर्निश्चिता मम ॥७॥
यथैव हि महाभागाः कोन्तेया मम साम्प्रतम् ।
तथैव वासुदेवस्य पाण्डुपुत्रा न संशयः॥८॥
अर्थ-राजा हुपद ने कहा कि पुरुषोत्तम महाबाहु यहुवंशी
कृष्ण जो कुछ इस अवसर के योग्य डिचत सम्मात देते हैं, मेरी

आदिपर्व-अष्टपंचाशाध्याय

४५६

भी वही दृढ़ सम्मिति है, क्योंकि महाभाग्यवान पाण्डव लोग जैसे इस समय मेरे प्यारे हैं ठीक वैसे ही कृष्ण के भी हैं, इसमें कुछ संदेह नहीं ।

न तद्धचायति कौन्तेयः पाण्डपुत्रो युधिष्ठिरः । यथैषां पुरुषव्याघः श्रेयो ध्यायति केशवः ॥९॥

अर्थ-कुन्ती पुत्र पाण्डव युधिष्ठिर भी उतनी भलाई की बात इन पाण्डवों के लिये नहीं सोचसकते जितनी सिंहपुरुष कृष्ण इनके लिये भलाई सोचते हैं॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्ते समनुज्ञाता द्वपदेन महात्मना । पाण्डवाश्चेव कृष्णश्च विदुरश्च महीपते ॥१०॥ आदाय द्वीपदीं कृष्णां कुन्तीं चैव यशस्विनीम् । सविहारं सुखं जग्मुनगरं नागसाह्वयम् ॥११॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब महात्मा हुपद राजा ने पाण्डवों को जाने की अनुमति देदी, तब पाण्डव, कृष्ण तथा विदुर यह सब लोग हुपद की पुत्री कृष्णा तथा मतापवती कुन्ती को साथ लेकर कुशलपूर्वक हस्तिना पुर को चले ॥

श्रुत्वा चाप्यागतान् वीरान् धृतराष्ट्रो जनेश्वरः । प्रतिग्रहाय पाण्डूनां प्रेषयामास कौरवान् ॥१२॥ विकर्णं च महेष्वासं चित्रसनं च भारत । द्रोणं च परमेष्वासं गौतमं कृपमेव च ॥१३॥ महाभारत

४५६

अर्थ-हे भारतीय राजन !तब राजा धृतराष्ट्र ने बीर पाण्डवों का आना सुनकर उनके लिवा लाने के लिये कुरुवंशी पुरुषों तथा महाधनुर्धारी विकर्ण, चित्रसेन, महाधनुर्धारी द्रोणाचार्य और गीतमवंशी कृपाचार्य को भेजा ॥

तैस्ते परिवृता वीराः शोभमाना महाबलाः । नगरं हस्तिनापुरं शनैः प्रविविशुस्तदा ॥१४॥ तत उचावचा वाचः पौरैः प्रियचिकिष्ठिभिः । उदीरिता अशृण्वंस्ते पांडवा हृदयङ्गमाः ॥१५॥

अर्थ-तब वह वीर पाण्डव उन आये हुए पुरुषों से घिरे हुए शोभा के साथ धीरे २ हस्तिनापुर नगर में प्रविष्ट हुए, इसके पश्चात मार्ग में पाण्डवों ने अपने हितकारी पुरवासियों की कही हुई भिन्न २ प्रकार की मनोहर वातें इसप्रकार सुनीं कि:—

अयं स पुरुषव्याघः पुनरायाति धर्मवित्। यो नः स्वानिव दायादान् धर्मेण परिरक्षति ॥१६॥ अद्य पाण्डर्मरहाजो वनादिव जनिष्रयः। आगतः प्रियमस्माकं चिकीषुनीत्र संशयः॥१७॥

अर्थ-आज यह वही सिंहसमान पुरुष धर्मज्ञाता युधिष्ठिर फिर छौट आये, जो हम लोगों को अपने सन्तान के समान समझ कर धर्म के साथ रक्षा करते थे, इस में सन्देह नहीं कि मानो आज मजा के मेमी महासज पाण्ड ही इमलोगों की भलाई करने की इच्छा करके वन से लौट आये हैं॥

ततस्ते धतराष्ट्रस्य भीष्मस्य च महात्मनः। अन्येषां च तदहीणां चकुः पादाभिवन्दनम्॥१८॥

आदिपर्व-अष्टपंचाशाध्याय

४५७

कृत्वा तु कुशलप्रश्नं सर्वेण नागरेण च । न्यविशन्ताथ वेश्मानि धृतराष्ट्रस्य शासनात् ॥१९॥

अर्थ-तत्र उन पाण्डवों ने राजा धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म और अन्य वृद्ध योग्य पुरुषों के चरणों में प्रणाम किया, पश्चाद उन से तथा अन्य सब नगर के मनुष्यों से कुशल प्रका हो चुकने के अनन्तर धृतराष्ट्र की आज्ञा से वहलोग महलों में प्रविष्ट हुए ॥

विश्रान्तास्ते महात्मानः कंचित्कालं महाबलाः। आहूता धृतराष्ट्रेण राज्ञा शान्तनवेन च ॥२०॥

अर्थ-उन महावली महात्मा पाण्डवों ने वहां ठहरकर कुछ समय तक विश्राम किया, तद्दनन्तर राजा धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह ने उनको बुलवाया ॥

धृतराष्ट्र उवाच

भ्रातृभिः सह कौन्तेय निबोध गदतो मम । पुनर्नो विग्रहो मा भूत् खाण्डवप्रस्थमाविश ॥२१॥ न च वो वसतस्तत्र किश्चिच्छक्तः प्रवाधितुम् । अर्द्ध राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविश ॥२२॥

अथ-धृतराष्ट्र ने कहा कि हे कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर ! तुम अपने भाइयों समेत मेरी बात पर ध्यान दो, तुम "खाण्डवमस्य" नामी प्रान्त में प्रवेश करो जिससे हमारा तुम्हारा किर कभी झगड़ा न हो, वहां रहते हुए तुमलोगों को कोई क्रेश नहीं पहुंचा सकता इसलिये तुम राज्य का आधा भाग ग्रहण करके "खाण्डं-वमस्थ" में चले जाओ ॥ ४५८

महाभारत

वैशम्पायन उवाच

प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं नृपं सर्वे प्रणम्य च । प्रतिस्थिरे ततो घोरं वनं तन्मनुजर्षभाः । अर्द्ध राज्यस्य संप्राप्य खाण्डवप्रस्थमाविशन् ॥२३॥

अंथ-वेशम्पायत बोले कि हे राजत ! वह सिंहपुरुष पांडव उस बचन को स्वीकार कर तथा राजा धृतराष्ट्र को प्रणाम करके "खाण्डवपस्य" नीमी भयंकर बन की ओर चल दिये और इस-प्रकार राज्य का आधा भाग पाकर खाण्डवपस्य में प्रविष्ट हो गये ॥

ततस्ते पाण्डवास्तत्र गत्वा कृष्णपुरोगमाः ।

गण्डयांचिकिरे तद्धे पुरं स्वर्गवदच्युताः ॥ २४ ॥

ततः पुण्ये शिवे देशे शान्ति कृत्वा महारथाः ।

नगरं स्थापयामासुद्धैपायनपुरोगमाः ॥२५॥

अर्थ-तन वह धैर्यगात पाण्डनकोग कृष्ण को आगे करके वहां पहुंचे और उन्होंने उस पुरी को सुलों से पूर्ण तथा अलंकृत कर दिया, उन महावीर पुरुषों ने ज़्यासजी को आगे करके उस पवित्र धुभस्थान में शान्तिपूर्वक अपनी राजधानी का वह नगर स्थापित किया ॥

सागरप्रतिरूपाभिः परिखाभिरलंकृतम् । प्राकारेण च संपन्नं दिवमावृत्य तिष्ठता ॥२६॥ यप्तमभ्रचयप्ररूपेगांपुरर्मन्दरोपमः । विविधेरपि निर्विद्धेः शस्त्रोपेतैः सुसंवृतैः ॥२७॥

भाादपर्व-अष्ट्रपंचाशाध्याय

869

अर्थ-उस नगर को उन्होंने समुद्र के समान बड़ी २ खाईयाँ से शोभित तथा आकाश से वातें करने वाले ऊंचे कोटों से भूषित किया, नगर के द्वार वादलों के समृह समान शोभायुक्त तथा मन्दर-पर्वत के समान ऊंचे और विविध प्रकार के शस्त्रों से युक्त, अत्यन्त हढ़ और भलेमकार वन्द होने वाले बनाकर उस नगर की रक्षाकी॥

शक्तिभिश्चावृतं तिद्ध द्विजिहैरिव पन्नगैः। तत्पैश्चाभ्यसिकेर्युक्तं शुशुभे योधरक्षितम् ॥२८॥ तीक्ष्णांक्वशशतव्यीभिर्यन्त्रजालेश्व शोभितम्। आयसैश्व महाचकैः शुशुभे तत्पुरोत्तमम् ॥२९॥

अर्थ-वह नगर दो जिड्वा वाले सांपों के समान "शक्ति" नामक शस्त्रों से परिपूर्ण तथा शस्त्रादि के अभ्यास में निपुण "तल्प" = रक्षक पुरुषों से युक्त और योधा लोगों से सुरक्षित किये जाने पर परम शोभायमान हुआ, वह उत्तमनगर तीक्षण अंकुश, शतन्नी तथा यन्त्र सहित शस्त्रों के समूह और लोहे के बने हुए महाचक्र नामी शस्त्रों से अत्यन्त शोभायमान होगया ॥

सुविभक्तमहारथ्यं देवताबाधवर्जितम् । विरोचमानं विविधेः पांडरैर्भवनोत्तमेः॥३०॥ तत् त्रिविष्टपंसकाशमिन्द्रप्रस्थं व्यरोचत । मेघवृन्दमिवाकाशे विद्धं विद्युत्समावृतम् ॥३१॥

अर्थ-उस नगर में बड़ी चौड़ी गिल्पें वनाई गई, और दे-वता अर्थात जल आदि के संवन्ध से होने वाली पीड़ाओं से वह नगर मुराक्षित किया गया, अनेक प्रकार के बढ़े २ श्रेत भवनों मे शोभायमान वह 'इन्ट्रप्रस्थ''राजधानी मानों स्वर्ग के समान प्रकाशमान आकाश में विजलियों से युक्त वादलों का समूह था॥

तत्र रम्ये शिवे देशे कौरव्यस्य निवेशनम् । शुशुभे धनसंपूर्णं धनाध्यक्षक्षयोपमम् ॥३२॥

अर्थ-उस नगर के एक उत्तमस्थान में कुरुवंशी राजा युधिष्ठिर का धनों से परिपूर्ण महल ऐसा शोभायमान था, मानों संसारभर के धनों के स्त्रामी का भवन प्रतीत होता था॥

तत्रागच्छन् द्विजा राजन् सर्ववेदविदांवराः । निवासं रोचयन्तिस्म सर्वभाषाविदस्तथा ॥३३॥ वणिजश्चाभ्ययस्तत्र नानादिग्भ्यो धनार्थिनः । सर्वशिल्पविदस्तत्र वासायाभ्यागमंस्तदा ॥३४॥

अर्थ-हे राजन ! उस इन्द्रप्रस्थ नगर में सम्पूर्ण वेदों के जानने वाले ब्राह्मण तथा सब भाषाओं के जानने वाले पुरुष आये और उन्होंने वहां वसना पसन्द किया, अनेक दिशाओं से धन कमाने के लिये व्योपारी वैश्यलोग तथा समस्त कलाकौशलों के ज्ञाता पुरुष भी वहां आकर वस गये॥

उद्यानानि च रम्याणि नगरस्य समंततः।
आम्रीराम्रातकैर्नीपैरशोकैश्चम्पकैस्तथा ॥३५॥
पुन्नागैर्नागपुष्पैश्च लकुचैः पनसैस्तथा ।
शालतालतमालैश्च वकुलैश्च सकेतकैः ॥३६॥
अर्थ-उस इन्द्रमस्य नगर के चारों ओर रमणीयबाग लगवाये गये जिनमें आम, आंबला, कदम्ब, अशोक, चमेली, पु-

आदिपर्व- अष्टपंचाशाध्याय

४६१

नाग = सुपारीं, नागपुष्प = नगकेसर, लकुच = आक, कटहल, शाल, ताड़, तमाल = अमलतास, मौलशरी, तथा केतकी आदि के वृक्ष लगवाये॥

वापीभिर्विविधाभिश्च प्रणीभिः परमाम्भसा । सरोभिरतिरम्यैश्च पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ॥३७॥ तेषां पुण्यजनोपेतं राष्ट्रमाविशतां महत् । पाण्डवानां महाराज शक्वत्प्रीतिरवर्द्धत ॥३८॥

अर्थ-उस नगर में उत्तम जल से परिपूर्ण नाना प्रकार की बावड़ियें और कमल तथा कुमुद के फूलों से मुगन्धित अत्यन्त रमणीय तालाव वनवाये, हे महाराज ! पुण्यात्मा लोगों से पूर्ण उस भारी राज्य में रहते हुए पाण्डवों को नित्यमित हर्ष बढ़ता गया॥

तत्र भीष्मेण राज्ञा च धर्मप्रणयने कृते । पाण्डवाः समपद्यन्त खाण्डवप्रस्थवासिनः ॥३९॥ तान् निवेश्य ततो वीरो रामेण सह केशवः। यथौ द्वारवतीं राजन् पांडवानुमते तदा ॥४०॥

अर्थ-वहां भीष्मिपतामह तथा राजा युधिष्ठिर के धर्मराज्य करने से पाण्डवलोग " खाण्डवप्रस्थ " के वासी बनगये, हे राजन ! तब बीर कृष्ण उन पाण्डवों को वहां बसाकर वलराम के सहित पाण्डवों की अनुमती से "द्वारकापुरी " को चले गये॥

इति अष्टपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनषष्टितमोऽध्यायः प्रारभ्यते



जनमेजय उवाच

एव संप्राप्य राज्यं तदिन्द्रप्रस्थं तपोधन । अत ऊर्ध्व महात्मानः किमक्कवत पाण्डवाः ॥१॥ कथं च पञ्च कृष्णायामेकस्यां ते नराधिपाः । वर्त्तमाना महाभागा नाभिद्यन्त परस्परम् ॥२॥

अर्थ-जनमेजय बोले कि हे तपोधन वैशम्पायन ! महात्मा पाण्डवों ने इस प्रकार इन्द्रप्रस्थ का राज्य पाकर इसके पश्चात क्या २ किया ! वह महाभाग्यवान पांचो पाण्डव एक भार्या द्रौपदी के साथ वर्तते हुए आपस में कैसे न फूटे ॥

श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्व विस्तरेण तपोधन । तेषां चेष्टितमन्योऽन्यं युक्तानां कृष्णया सह ॥३॥

अर्थ-हे तपोधन ! द्रौपदी के सम्बन्ध में उनका जैसा परस्पर का वर्ताव था वहसब मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूं ॥

वैशम्पायन उवाच

धृतराष्ट्राभ्य नुज्ञाताः कृष्णया सह पाण्डवाः ।
रेमिरे खाण्डवप्रस्थे प्राप्तराज्याः परन्तपाः ॥४॥
अर्थ-वैम्पायन बोले कि हे शत्रुओं के सन्तापकारी राजनः!
पाण्डवलोग धृतराष्ट्र की आज्ञा से राज्य पाकर खाण्डवप्रस्थ में
द्रौपदी के सहित सुखपूर्वक रहने लगे ॥

प्राप्य राज्यं महातेजाः सत्यसन्धो युधिष्ठिरः । पालयामास धर्मेण पृथिवीं भ्रातृभिः सह ॥५॥ जितारयो महाप्रज्ञः सत्यधमपरायणाः ।

मुदं परिमकां प्राप्तास्तत्रोषुः पाण्डनन्द्नाः ॥६॥

अर्थ-सत्यवादी महामतापी युधिष्ठिर राज्य को पाकर भाइयों समेत धर्मपूर्वक पृथ्वी की रक्षा करने लगे, महाबुद्धिमान पाण्ड के पुत्र अपने शञ्जओं को जीतकर सत्य और धर्म में तत्पर हुए २ परम आनन्दित हो वहां रहने लगे॥

कुर्वाणाः पौरकार्याणि सर्वाणि पुरुषर्वभाः । आसाञ्चकुर्महार्हेषु पार्थिवेष्वासनेषु च ॥७॥ अथ तेषूपविष्टेषु सर्वेष्वेव महात्मसु । नारदस्तत्र देवर्षिरा ॥म यहच्छ्या ॥८॥

अर्थ-वह सिंहपुरुष पाण्डव नगर का सवप्रकार न्यायसंबन्धी कार्य करते समय राजोचित वड़े उच्च सिंहासनों पर बैठा करते थे, एक समय वह सब महात्मा पाण्डव न्यायालय में बैठे हुए थे, कि अकस्मात देव ऋषि नारदजी वहां पर आये॥

आसनं रुचिरं तस्मै पददौ स्वं युधिष्ठिरः । प्रतिगृह्य तु तां प्रजामृषिः प्रीतमनास्तदा ॥९॥ आशाभिर्वर्द्धयित्वा च तमुवाचास्यतामिति । विविक्ते पाण्डवान् सर्वानुवाच भगर्वानृषिः ॥१०॥ अर्थ-तव युधिष्ठिर ने उनको अपना सुन्दर सिंहासन बैठने के लिये दिया पश्चात ऋषि नारद उनके उस सत्कार को ग्रहण करके तथा प्रसन्नता के साथ आशीर्वादें देकर बोले कि बैठ जाइये, तब एकान्त में भगवान नारद ऋषि सब पांण्डवों को सम्बोधन करके इसप्रकार उपदेश देने लगे कि:—

पात्राली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी । यथावो नात्र भेदः स्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥११॥ सुन्दे।पसुन्दे। हि पुरा भातरे। सहितानुभौ । आस्तामवध्यावन्येषां त्रिषु लोकेषु विश्रुतौ ॥१२॥

अर्थ-कीर्ति के योग्य पाञ्चाली=द्रौपदी तुम पांचों भाईयों की एक भार्या है सो तुम्हें इसप्रकार की नीति वर्तनी अचित है जिससे तुम्हारा आपस में विरोध न होने पावे, देखो प्राचीन समय में सुन्द तथा उपसुन्द नामक दो भाई हुए हैं जो सदा आ-पस में मेल रखते हुए शत्रुओं से अग्य = न मारे जाने वाले तथा तीनों लोकों में प्रसिद्ध थे॥

एकराज्यावेकगृहावेकशय्यासनाशनौ ।
तिलोत्तमायास्तौ हेतोरन्योऽन्यमभिजन्नतः ॥१३॥
तस्माद ब्रवीमि वः स्नेहात् सर्वान् भरतसत्तमः ।
यथा वो नात्र भेदः स्यात्सर्वेषां द्रौपदीकृते ।
तथा कुरुतभदं वो मम चेत्प्रियामिच्छथ ॥१४॥

अर्थ-उन दोनों भाइयों का एकही राज्य, एकही घर, इकछे मिलकर ही सोना, बैठना और खाना था, परन्तु " तिलोत्तमा " नामक सुन्दर स्त्री के लिये उन्होंने आपस में एक दूसरे को मार

आदिपर्व-एकोनपष्टितमाध्याय

886

हाला, हे भरतकुल भूषण पाण्डवो ! इसलिये में तुम सब को प्रेम से यह उपदेश करता हूं कि यदि तुम अपना कल्याण और मेरी प्रसन्नता चाहते हो तो जिस प्रकार द्रौपदी के लिये तुम्हारी आपस में फूट न पड़े वैसी नीति वरतो ॥

वैशम्पायन उवाच एवसुक्ता महात्मानो नारदेन महर्षिणा । समयं चित्ररे राजंस्तेऽन्योऽन्यं वशमागताः ॥१५॥ द्रौपद्या नः सहासीनमन्योऽन्यं योऽभिदर्शयेत । स नो द्वादश वर्षाणि ब्रह्मचारी वने वसेत् ॥१६॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! महर्षिनारद के इस प्रकार कहने पर उन महात्मा पाण्डवों ने ऐसा नियम बांध दिया जिससे कि वह आपस में एक दूसरे के वश में होगये, उन सब ने प्रतिज्ञा की, कि हम पांचों में से कोई किसी को ट्रोपदी के समीप वैटा हुआ देखले तो वह बारहवर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक वन में रहे॥

कृते तु समये तास्मन् पांडवैर्धर्मचारिभिः। नारदोऽप्यगमत्प्रीत इष्टं देशं महामुनिः।।१७॥ एवं तैः समयः पूर्व कृतो नारदचोदितैः। न चाभिद्यन्त ते सर्वे तदान्योन्येन भारत।।१८॥

अर्थ-धर्मात्मा पाण्डवों के ऐसी प्रतिज्ञा करने पर महामुनि नारद भी प्रसन्न होकर इच्छितदेश को चले गये, हे भारतीय-राजन ! इस प्रकार नारदंजी की पेरणा मे उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की और इसीलिये उन सबकी आपस में फूट न पड़ी ॥ इति एकोनपष्टितमोऽध्यायः समाप्तः

अथ षष्टितमोऽध्यायः प्रारम्यते

बैशम्पायन उवाच

एवं ते समयं कृत्वा न्यवसंस्तत्र पाण्डवाः । वशे शस्त्रतोपन कुर्वन्तोऽन्यान् महीक्षितः ॥१॥ तेषां मनुजसिंहानां पञ्चानाममितौजसाम् । बभूव कृष्णा सर्वेषां पार्थानां वशवार्त्तेनी ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! इस मकार पाण्डव नियम करके शस्त्रों के मताप से अन्य राजाओं को वश में करते हुए वहां रहने लगे और द्रौपदी भी उन सब महामतापी सिंहपुरुष पांचो पाण्डवों की आज्ञा में वर्त्तमान रहने लगी ॥

अथ दीर्घेण कोलन ब्राह्मणस्य विशाम्पते । कस्यचित्तस्करा जहुः केचिद्रा नृपसत्तम ॥ ३॥ हियमाणे धने तस्मिन् ब्राह्मणः कोधमूर्छितः। आगम्य खाण्डवप्रस्थमुदकोशत्स पाण्डवान् ॥॥॥

अर्थ-हे महापुरुष राजन ! इसके पश्चाद बहुत समय बीत जाने पर यह घटना हुई कि किसी ब्राह्मण की गौयें चोर चुराकर लेगये, उस गोरूपी धनकी चोरी होजाने पर वह ब्राह्मण क्रोध से बेसुधसाहुआर खाण्डवप्रस्थ में आकरपाण्डवों के आगेरोनेलगा कि:-

द्वियते गोधनं श्चुदैर्नृशंसैरकृतात्माभः । प्रसद्य चास्मद्विषयादभ्यधावत पाण्डवाः ॥५॥

आदिपर्व-षष्टितमाध्याय

889

ब्राह्मणस्वे हृते चैरिर्धमिथें च विलोपिते । रोरूयमाणे च मिय क्रियतां हस्तधारणा ॥ ६ ॥

अर्थ-हे पाण्डवो ! दुष्ट हत्यारे पापात्मा चोर बलपूर्वक मेरा गोरूपी धन चुराकर भाग गये हैं, मुझ ब्राह्मण का धन चोरों से चुराय जाने के कारण मेरा धर्म और अर्थ सब जाता रहा, अब मुझ रोते हुए का तुम हाथ पकड़ो ॥

वैशम्पायन उवाच

रोरूयमाणस्याभ्याशे भृशं विप्रस्य पाण्डवः । तानि वाक्यानि शुश्राव क्रन्तीपुत्रो धनञ्जयः ॥७॥ आयुधानि च यत्रासन् पाण्डवानां महात्मनाम् । कृष्णया सह तत्रास्ते धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उस रोते पीटते हुए ब्राह्मण के समीन उससमय कुन्तीपुत्र अर्जुन विद्यमान था और उसने वह सब बातें सुनीं, परंतु महात्मा पाण्डवों के सब शस्त्र वहां रक्ले थे जहां उससमय धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ वैठे हुए थे॥

सम्प्रवेशाय च शक्तो गमनाय च पाण्डवः । आकन्दे तत्र कौन्तेयश्चिन्तयामास दुःखितः ॥९॥ द्वियमाणे धने तस्मिन् ब्राह्मणस्य तपस्विनः । अश्वप्रमार्जनं तस्य कर्त्तव्यमिति निश्चयः ॥१०॥ अर्थ-पाण्डुपुत्र अर्जुन शस्त्रों के स्थान में प्रवेश करने के

लिये असमर्थ था, इसलिये वह दुःखी होकर रोने लगा, परंतु

४६८

उसने यह निश्चयं कर लिया कि इसदीन ब्राह्मण का धन चुराया गया है इसलिये इसके आंसू अब हमें अवश्य पोंछने चाहियें॥

अनुप्रवेशे राज्ञस्तु वनवासो भवेन्मम । सर्वमन्यत्परिहृतं धर्षणात्तु महीपतेः ॥११॥ एवं विनिश्चित्य ततः कुन्तीपुत्रो धनंजयः । अनुप्रविश्य राजानमामंत्र्य च विशाम्पते । धनुरादाय संहृष्टो ब्राह्मणं प्रत्यभाषत ॥१२॥

अर्थ-यदि में इससमय राजा युधिष्ठिर के समीप प्रवेश करूंगा तो मुझे वनवास होगा, किंतु में इन सब दुःखों की पर्वाह नहीं करता यदि राजायुधिष्ठिर मुझपर रुष्ट न हों, तब कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने ऐसा दृढ़ निश्चय करके राजा के समीप प्रवेश किया और उनकी आज्ञा से धनुष उठा हर्षपूर्वक बाहर आकर उस ब्राह्मण से इस प्रकार बोला कि:—

ब्राह्मणागम्यतां शीघं यावत परधनेषिणः ।
न दूरे ते गताः श्रुद्रास्तावद् गच्छावहे सह ॥१३॥
सोऽनुसृत्य महाबाहुर्धन्वी वर्मी रथी ध्वजी ।
रारेविध्वस्य तांश्र्यौरानवजित्य च तद्धनम् ॥१४॥
ततस्तद्गोधनं पार्थो दत्त्वा तस्मै द्विजातये ।
आजगाम पुरं वीर सव्यसाची धनञ्जयः ॥१५॥
अर्थ-दे ब्राह्मण!शीघ आइये ताकिवह दृष्ट चोर दूरन चले जांय,
हम दोनों साथ २ उनके पीछे चलें, तब वह महाबाद् धनुष लिये
और कवच पहने, रथपर चढ़े दृष्अपने झंदे के साथ उन चोरों के

आदिपर्व-षष्टितमाध्याय

889

पछि २ दौड़ा और उसने अपने बाणों से चोरों को मारकर उस धन को जीत लिया, पश्चाद गोरूपीधन उस ब्राह्मण को लीटा दिया और वह वीर सञ्यसाची *अर्जुन अपने नमर इन्द्रमस्थ को चला आया॥

धर्मराजमुनाचेदं वृतमादिश मे प्रभो । समयः समितकान्तो भवत्सन्दर्शने मया ॥१६॥ वनवासं गमिष्यामि समयो होष नः कृतः । उवाच दीनो राजा च धनञ्जयमिदं वचः । प्रमाणमस्ति यदि ते मत्तः शृणु वचोऽनघ ॥१७॥

अर्थ-और आकर धर्मराज युधिष्ठिर से बोला कि आप है राजन ! अब आप मुझे बारहवर्ष तक बन में ब्रह्मचर्य व्रत रखने की आज्ञा दीजिये क्योंकि मैंने द्रौपदी के समीप आपके दर्शन करके उस नियम को भड़ा करिदया है जैसीकि हमने मितज्ञा की थी कि ऐसी दशा में हम बनवास के लिये जायंगे, यह सुन-कर राजा युधिष्ठिर दुःखी हुए २ अर्जुन से बोले कि हे निष्पाप! यदि तुम मेरी बात को ममाण मानते हो तो सुनो :—

अनुप्रवेशे यद्वीर कृतवांस्त्वंममाप्तियम् । सर्व तदनुजानामि व्यळीकं न च मे हृदि ॥१८॥ युरोरनुप्रवेशो हि नोपद्यातो यवीयसः । यवीयसोऽनुप्रवेशो ज्येष्ठस्य विधिछोप्रकः ॥१९॥

[&]quot;बार्ये हाथ से भी धतुष चलने के कारण अर्जुन का नाम "सव्यासाची" था ॥

008

महाभारत

अर्थ-हे वीर ! तुमने जो मेरे समीप उससमय मवेश करके मेरे मितकूल काम किया है वह सब मुझे स्वीकृत है और मेरे हृदय में कोई बुराभाव नहीं है क्योंकि बड़े के पास ऐसी दशा में छोटे का चला जाना कोई बुरी बात नहीं, किन्तु छोटे के पास बड़े का चला जाना नियम का भड़ करने वाला है ॥

निवर्त्तस्व महाबाहो कुरुष्व वचनं मम ।
न हि ते धर्मलोपोऽस्ति न च मे धर्षणा कृता॥२०॥
अध-सो हे महाबाहु अर्जुन ! तुम मेरा कहना मानकर घर
को लौटो, क्योंकि न तो इसमें तुम्हारे धर्म की हानि है और
नाही तुमने मेरा अपमान किया है ॥

अर्जुन उवाच

न व्याजेन चरेद्धर्ममिति मे भवतःश्रुतम् । न सत्यादिचलिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥२१॥ अर्थ-अर्जुन बोला कि हे धर्मराजयुधिष्ठिर ! आपने मुझे उपदेश किया था कि "छल से धर्म न करे" इसलिये अव मैं सचाई से नहीं हदुंगा और सचाई से ही वत के पश्चाद शस्त्र उठाउंगा ॥

वैशम्पायन उवाच

सो अभ्य नुज्ञाय राजानं वनचर्याय दीक्षितः । वने द्वाददा वर्षाणि वासायानुजगाम ह ॥२२॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह अर्जुन राजा यु-धिष्ठिर की अनुमित लेकर वनवास की दीक्षा धारण किये हुए वारहवर्ष तक वनवास करने के लिये चलदिया ॥

इति षष्टितमोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकषष्टितमोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

तं प्रयातं महावाहुं कौरवाणां यशस्करम् । अनुजग्मुर्महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥१॥ पुण्यान्यपि च तीर्थानि ददर्श भरपर्षभः । स गङ्गाद्धारमाश्रित्य निवेशमकरोत्प्रभुः ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! कुरुवंशियों में महा-मतापी वह महाबाहु अर्जुन जब चला तब उसके साथ वेदपारगामी महात्मा ब्राह्मण भी चले, उस मभाववान भरतकुलसिंह अर्जुन ने पवित्रतीर्थस्थानों के दर्शन भी किये और गङ्गा के द्वार तक पहुंचकर वहां वाम करने लगा ॥

निविष्टे तत्र कौन्तेये ब्राह्मणेषु च भारत। अमिहोत्राणि विशास्ते पादुश्चकुरनेकदाः ॥३॥ कृताभिषेकैर्विद्धद्विनियतैः सत्यथे स्थितैः।

शुशुभेऽतीव तदाजन् गङ्गाढारं महात्मभिः ॥४॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! अर्जुन तथा उन ब्राह्मणों के वहां बास करने पर ब्राह्मणहोग वहां अनेक प्रकार से अग्निहोत्र करने छगे, हे राजन ! नित्य स्नान करने वाले तथा नियमपूर्वक सचे मार्ग पर रहने वाले उन विद्वान महात्मा ब्राह्मणों से गङ्गा के द्वार की भी अत्यन्त शोभा होगई ॥

प्रयमे हिमवत्पार्श्व ततो वज्रधरात्मजः । दृष्टवान् पांडवश्रेष्ठः पुण्यान्यायतनानि च ॥५॥ अवतीर्य नरश्रेष्ठो ब्राह्मणेः सह भारत । प्राचीं दिशमभिषेष्सुर्जगाम भरतर्षभः ॥६॥

अर्थ-इसके पश्चाद वज्जधारी का पुत्र श्रेष्ठ पाण्डव अर्जुन हिमालय की ओर गया और उसने वहां पर पवित्र तीर्थ देखे, हे भारतीय राजन ! तब वह भरतकुल श्रेष्ठ महापुरुष अर्जुन ब्राह्मणों समेत पर्वत से उतरकर पूर्व दिशा के स्थानों को देखने की

इच्छा से चल दिया॥

नन्दामपरनन्दां च कौशिकीं च यशस्विनीम् ।
महानदीं गयां चैव गङ्गामपि च भारत ॥७॥
अङ्गवङ्गकालेङ्गेषु यानि तीर्थानि कानिचित् ।
जगाम तानि सर्वाणि पुण्यान्यायतनानि च ॥८॥
अर्थ-हे भारतीय राजत ! नन्दा, अपरसन्दा, मसिद्ध नदी
कौशिकी, महानदी गङ्गा तथा गया, अङ्गदेश, वंगाल और कलिङ्ग
देश में जोर तिथितथा अन्य पवित्र स्थान थे उन सबमें अर्जुन गया ॥

हष्ट्वा च विधिवत्तानि धनं चापि ददौ ततः । सहायेरत्यकैः श्रूरः प्रययो यत्र सागरः॥९॥ महेन्द्रपर्वतं दृष्ट्वा तापसेरुपशोभितम् । समुद्रतीरेण शनैर्मणिपूरं जगाम ह ॥१०॥

अर्थ-अर्जुन ने उन सब स्थानों को विधिपूर्वक देखा और धनका भी दान किया, पश्चाद वह बीर थोड़े सहायकों सहित समुद्र के सपीप पहुंचा, वहां तपस्वियों से शोभायमान महेन्द्रपर्वत को देखता हुआ समुद्र के किनारे र माणिपुर नगर में जा पहुंचा ॥ तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च । अभिगम्य महाबाहुरभ्यगच्छन्महीपतिम् ॥११॥ मणिपूरेश्वरं राजन् धर्मज्ञं चित्रवाहनम् । उवास नगरे तिस्मन् तिस्नः कुन्तीसुतः समाः । अमन्त्र्य नृपतिं तं तु जगाम परिवर्त्तितुम् ॥१२॥ अधिनहे राजन् ! वहां महाबाहु अर्जुन ने सब तीर्थां तथा पित्र स्थानों में जाकर पश्चाद मणिपुर के धर्मज्ञाता चित्र-वाहन नामक राजा से भेट की, उस नगर में कुन्ती के पुत्र अर्जुन ने तीन वर्ष तक नियास किया, पश्चाद उस राजा से अनुमित

हेकर वहां से चल दिया।।
ततः समुद्रे तीर्थानि दक्षिणे भरतर्षमः ।
अभ्यगच्छत् सुपुण्यानि शोभितानि तपस्विभिः ।१३।
वर्जयन्ति स्म तीर्थानि तत्र पत्र स्म तापसः ।
अवकीर्णानि यान्यासन् पुरस्तानुतपस्विभिः ।१४।
अर्थ-तत्र भरतकुल श्रेष्ठ अर्जुन दक्षिणदिशा में समुद्रके समीप
जो पित्रेत्र सुन्दर तीर्थ तपस्तियों से पूर्ण थे उनकी ओर गया
वहां पर तस्त्रीलोग पांच तीर्थां पर जाने से सब किसी को निषेष
करते थे,जो तीर्थ पहले किसी समय में तपस्तियों से घिरे रहते थे॥

तपस्यिनस्ततोऽपृच्छत् प्राञ्जलिः कुरुनदन्नः । तीर्थानीमानि वर्ज्यन्ते किमर्थे ब्रह्मवादिभिः ॥१५॥

महाभारत

अर्थ-तव कुरुवंशभूषण अर्जुन ने हाथ जोड़कर तपस्त्रियों से पृछा कि इन तीर्थों पर जानेसे आप लोग हमें क्यों निषेध करते हैं॥ तापसा अनुः

ग्राहाः पत्रवसन्त्येषु हरान्ति च तयोधनान् । तत एतानि वर्ज्यन्ते तीर्थानि कुरुनन्दन ॥१६॥ अर्थ-तपस्त्री वोंछे कि हे अर्जुन इन पांचों नीर्थों में पांच ग्राह=मगर हैं जो तपस्त्रियों को केश देते हैं,इनिष्टिये इन तीर्थों पर जाना मना है ॥

वैद्यामपायन उचाच तेषां श्रुत्वा महाबाहुर्वार्यमाणस्त्र ग्रेथिनः । विगाह्य सहसा श्रूरः स्नानं चक्रे परंतपः ॥१९॥ अथ तं पुरुषव्यात्रमन्तर्जलक्रेश महान् । जग्राह चरणे ग्राहः क्रन्तीपुत्रं धनञ्जयम् ॥१८॥ स तमादाय कौन्तेयो विस्फ्रान्तं जलेक्स्म । उदातिष्ठन्महाबाहुर्वलेन चलिनांवरः ॥ १९॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे गजन । महावाद नगर स्वायन

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन! महावाह तथा शत्रुवनाप-कारी वीर अर्जुन उन तपिस्वयों की बात मुनते ही उनके मना करने पर भी उन तीथों में एकाएक घुसकर स्नान करने लगा, तब उस महापुरुष कुन्तीपुत्र अर्जुन को, भीतर ही उस बड़े जलचर ग्राह ने पांत्र से पकड़ लिया, परन्तु महावाह तथा व ज्वानों में श्रेष्ठ अर्जुन उस फड़कते हुए जलचर-ग्राह को बलपूर्वक बिंच-कर बाहर निकल आया॥ समुद्रे पश्चिमे यानि तीर्थान्यायतनानि च। तानि सर्वाणि गत्वा स प्रभासमुपजिमवान् ॥२०॥ प्रभासदेशं सम्प्राप्तं वीभत्सुमप्राजितम् । सुपुण्यं रमणीयं च श्रुश्राव मधुसूदनः ॥२१॥

अर्थ-इसके पश्चात अर्जुन पश्चिम दिशा की ओर समुद्र है समीप सब तीथों तथा उत्तम स्थानों में होता हुआ "मभास" देश में पहुंचा, वहां कृष्ण ने सुना कि पात्रित्र मनोहर मभास देश में अजय-बीर अर्जुन आया हुआ है ॥

ततोऽभ्यगच्छत् कौन्तेयं सखायं तत्र माधवः।
दहशाते तदान्योन्यं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ ॥२२॥
ततोऽर्जुनं वासुदेवस्तां चर्या पर्यपृच्छत ।
किमर्थ पाडण्वेतानि तीर्थान उचरस्यत ॥२३॥
ततोऽर्जुनो यथावृत्तं सर्वमाष्यातवांस्तदा ।
श्रुत्वोवाच च वार्ष्णेय एवमेतदिति प्रभुः ॥२४॥

अर्थ-तव कृष्णजी अपने मित्र अर्जुन से मिलने के लिये
प्रभास देश में गये और वहां कृष्ण तथा अर्जुन ने एक दूसरे के
दर्शन किये, पश्चाद कृष्ण ने अर्जुन से उस भ्रमण के विषय में
पूछा कि तुम किसकारण तीर्थ और वनों में भ्रमण करते हो?
तब अर्जुन ने सब वृत्तान्त यथावद कह सुनाया, उसको सुनकर
प्रभु कृष्ण ने कहा कि सत्य है ऐसा ही करना उचित था।

तौ विहत्य यथाकामं प्रभासे कृष्णपाण्डवौ । महीधरं रैवतकं वास्रायेवाभिजम्मतुः ॥ २५ ॥ महाभाग्त

पूर्वमेव तु कृष्णम्य वचनात्तं महीधरम् । पुरुषा मण्डयांचऋरुपजह्नुश्च भोजनम् ॥ २६ ॥

अर्थ-तब कृष्ण और अर्जुन "प्रभास" देश में यथेष्ट आ-हारविहार करके रवतकपर्वत पर कुछ समय निवास करने के लियं चले गये, वहां पर कृष्णजी के कहने से पहले ही वहां के लोगों ने उस पर्वत को सजाया हुआ था और भोजन भी तैयार कर रखा था॥

प्रतिगृह्यार्जुनः सवमुपभुज्य च पाण्डवः।
सहैव वासुदेवेन दृष्टवान् नटनर्त्तकान्।।२७॥
अभ्यऽनुज्ञाय तान् सर्वानर्चियत्वा च पाण्डवः।
सत्कृतं शयनं दिव्यमभ्यगच्छन्महामितः।।२८॥

अर्थ-तब पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उनका सत्कार ग्रहण कर और भोजन करके कृष्णजी के साथही नट और नाचने वालों का तमाशा देखा, इसके पश्चाद बुद्धिमान अर्जुन ने उन सब नट-लोगों का सत्कार किया और उनको छुट्टी देकर उत्तम दिव्या गुण युक्त शब्या पर जा लेटे ॥

मधुरेणैव गीतेन बीणाशब्देन चैव ह । प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मङ्गलैस्तथा ॥२९॥ स कृत्वावश्यकार्याणि वाष्णेयनाभिनन्दितः । रथेन काञ्चनांगेन द्वारकामभिजिंग्नवान् ॥३०॥ अर्थ-प्रातः काल होतेही मधुर गीतों, बीणों की ध्विन तथा स्तुति और मङ्गलाचार के शब्दों द्वारा जगाये जाने पर वह उठ खड़े हुए, तब अर्जुन प्रातः काल के आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर कृष्णजी के अनुरोध से सुवर्ण के रथ पर चढ़कर द्वारका नगरी की ओर गये।।

अलङ्कृता द्वारका तु वभूव जनमेजयः। कुन्तीपुत्रस्य पूजार्थमपि निष्कुटकेष्वपि ॥३१॥ दिदृक्षन्तश्च कौन्तेयं द्वारकावासिनो जनाः। नरेन्द्रमार्गमाजग्मुस्तूर्णं शतसहस्रशः॥३२॥

अर्थ-हे जनमेजय ! तव अर्जुन के सत्कारार्थ द्वारका नगरी बड़े २ घरों से लगाकर झोपड़ों तक सजाई गई, और अर्जुन के दर्शन करने के लिये सैकड़ों हज़ारों नगरवासी लोग शीघ ही राजसड़क पर आ इकट्टे हुए ॥

संतथा सत्कृतः सर्वेभोजवृष्ण्यन्धकात्मजैः । अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वेश्च प्रतिनान्तः ॥३३॥ कृष्णस्य भवने रम्ये रत्नभोज्यसमावृते । उवास सह कृष्णेन बहुलास्तत्र शर्वरीः ॥ ३४॥

अर्थ-तव अर्जुन का भोजवंशी, वृष्णवंशी, तथा अन्धक-वंशी इन सब लोगोंने सत्कार किया और अर्जुन ने अपने से बड़ों को अभिवादन किया, और उन लोगोंने आशिर्वादें दीं, इस के पश्चाद, अर्जुन ने कृष्णजी के सुन्दर रक्षपूर्ण तथा विविध

महाभारत

भोज्यपदार्थों से युक्त रमणीयभवन में कृष्ण जी के साथ बहुत दिनों तक निवास किया ॥

इति एकषष्टितमोऽध्यायः समाप्तः

अथ दिषष्टितमोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः कतिपयाहस्य तस्मिन् रैवतके गिरौ । वृष्ण्यन्यकानामभवदुत्सवो नृपसत्तम् ॥१॥ प्रासादैरत्वित्रैश्च गिरेस्तस्य समन्ततः । स देशः शोभितो राजन् कल्यवृक्षेश्च सर्वशः॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! इसके कुछ दिनों प-श्रात रैनतक पर्वत पर वृष्टिणवंशी क्षत्रियों ने एक उत्सव किया, उस पर्वत के सब स्थानों में मिणयों से महल सजाये गये तथा सब ओर परमोत्तम वृक्षों की सजावट की गई॥

वादित्राणि च तत्रान्ये वादकाः समवादयन् । ननृतुर्नर्त्तकाश्चेव जयुर्गयानि गायनाः ॥३॥ अलंकृताः कुमाराश्च वृष्णीनां सुमहोजसाम् । यानहिटकाचित्रेश्च चञ्चूर्यन्ते स्म सर्वशः ॥ ४॥ अर्थ-वहां पर भिन्न २ मकार के बाजा बजाने वाले बाजे वजाने लगे, नाचने वाले नाचने लगे गवैयालोग गाने लगे, और विविधमकार के पदार्थ वेंचने वाले वेंचने लगे तथा महामतापी वृष्णिवंक्षी क्षत्रियों के कुमार वालक सुवर्ण की गाड़ियों पर सब ओर घूमने फिरने लगे ॥

पौराश्च पादचारेण यानेरुचावचेस्तथा। सदाराःसानुयात्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥५॥ ततो हलधरः क्षीवो रेवतीसहितः प्रभुः। अनुगम्यभानो गन्धवेरैचरत्तत्र भारत॥६॥

अर्थ-सैकड़ों हज़ारों पुरवासी लोग भी पैदल तथा नाना प्रकार की गाड़ियों पर चढ़कर, अपनी ? स्त्रियों तथा साथियों समेत वहां घूमने फिरने लगे, हे भारतवंशी राजन ! तव प्रतापी तम बलराम भी अपनी स्त्री रवेती को साथ लेकर गवैया लोगों के साहित इयर उधर भ्रमण करने लगे॥

तथेव राजा वृष्णीनामुग्रसेनः प्रतापवान् ।
रोक्मिणयश्च साम्बश्च क्षीवौ समरदुर्मदौ ॥७॥
अक्रूरः सारणश्चेव गदो बभुर्विदूरथः ।
निशठश्चारुदेष्णश्च पृथुर्विपृथुरेव च ॥८॥
सात्यकः सात्यिकश्चेव भंगकारमहारवौ ।
हार्दिक्य उद्धवश्चेव ये चान्ये नानुकीर्त्तिताः ॥९॥
एते परिवृताःस्त्रीभिर्गन्थर्वैश्च पृथक् पृथक् ।
तमुत्सवं रैवतके शोभयांचिकरे तदा ॥१०॥

महाभारत

अर्थ-इन के अतिरिक्त, वृष्णिवंशी क्षत्रियों के मतापी राजा उग्रेसन, युद्ध से न हटने वाले रुक्मिणीपुत्र तथा साम्ब, अक्रूर, सारण, गद, वभ्रु, विदृर्थ, सात्यक और सात्यक का पुत्र भङ्ग-कार, महारव, हार्दिक्य, उद्धव तथा अन्य वीर क्षत्रिय भी जिनके नाम नहीं कहे गये यह सबलोग अपनी २ स्त्रियों तथा गायकलोगों के साथ जाकर उस समय रैवतक पर्वत पर उत्सव की शोभा बढ़ाने लगे ॥

चित्रकौत्हले तस्मिन् वर्त्तमाने महाद्वते । वासुदेवश्च पार्थश्च सहितौ परिजग्मतुः ॥११॥ तत्र चंक्रममाणौ तौ वसुदेवसुतां शुभाम् । अलंकृतां सलीमध्ये सुभद्रां दहशुस्तदा ॥१२॥

अर्थ-उस महान अद्भुत विचित्र उत्सव को देखने के लिये कृष्ण और अर्जुन भी साथ २ गये, उन दोनों ने इधर उधर भ्रमण करत समय सिवयों के बीच में बैठी हुई वस्त्राभूषणों से सुसाज्जित वसुदेव की सुन्दर पुत्री "सुभद्रा" को देखा॥

हरेव तामर्जनस्य कन्दर्पः समजायत ।
तदैवैकाग्रमनसं कृष्णः पार्थमलक्षयत् ॥१३॥
अन्नवीत् पुरुषव्याघः प्रहसन्निव भारत ।
वनेचरस्य किमिदं कामेनालोड्यते मनः ॥१४॥
अर्थ-उस सुभद्रा को देखते ही अर्जुन के चित्त में कामदेव
जाग उठा और उसीसमय कृष्णजी ने भी अर्जुन को

आदिपर्व- द्विपष्टितमाध्याय

869

राजन ! तन मुतकराते हुए पुरुषोत्तन कृष्णनी बोले कि वनवासी वतवारी पुरुष के चित्त को भी कामदेव ने क्यों च्याकुल कर दिया है॥

ममेषा भगिनी पार्थ सारणस्य सहोदरा । सुभद्रा नाम भद्रं ते पितुमें दायेता सुता । यदि ते वर्त्तते बुर्द्धिवक्ष्यामि पितरं स्वयम् ॥२५॥

अर्थ—हे अर्जुन! यह सुभद्रा नामक मेरी वाहिन है और मेरे मौसेरे भाई सारण की सगी वहिन तथा मेरे पिता वसुदेव की लाड़ली वेटी है, यदि तुन्हारा इसके साथ विवाह का विचार हो तो मैं स्वयं अपने पिता से कहदूं॥

अर्जुन उवाच

दुहिता वसुदेवस्य वासुदेवस्य च स्वसा । रूपेण चैवा सम्पन्ना किमवैवा न मोहयेत् ॥१६॥ कृतमेव तु कल्याणं सर्व मम भवेद्धुवम् । यदि स्यानमम वाष्णेया महिषीयं स्वसा तव ॥१७॥

अर्थ-तब अर्जुन ने कहा कि हे कृष्ण! यह वसुदेव की पुत्री तुम्हारी बहिन तथा रूपसम्पन्न होती हुई किस पुरुष को मोहित नहीं करसक्ती, यदि यह बृष्णिवंश की सन्तान अर्थात तुम्हारी बहिन सुभद्रा मेरी पटरानी बनजावे तो निश्चय है कि मेरा सब मकार से कल्याण होगा॥

प्राप्ती तु क उपायः स्यात्तं ब्रवीहि जनार्दन । आस्थास्यामि तदा सर्वे यदि शक्यं नरेण तत्।।१८॥

है कि क्या होगा ॥

अर्थ-हे परोपकारी कृष्ण! इसकी प्राप्ति के लिये जो उपाय हो सो बताओ, यदि उसका होसकना मनुष्य के लिये सम्भव हुआ तो मैं सब कुछ करूंगा॥

वासुदेव उवाच

स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ । सच संशयितः पार्थ स्वभावस्यानिमित्ततः ॥१९॥

अर्थ-कृष्ण जी बोले कि हे पुरुषोत्तम अर्जुन ! क्षत्रियों के लिये स्वयंवर विवाह बताया गया है, परंतु स्वभाव की भिन्नता के कारण उसके होने में संदेह है ॥

प्रसह्य हरणं चापि क्षत्रियाणां प्रशस्यते ।

विवाहहेतुः श्र्राणामिति धर्मविदो विदुः ॥२०॥

स त्वमर्जन कल्याणीं प्रसह्य भगिनीं मम ।

हर स्त्रयंवरे ह्यस्याः को वै वेद चिकीषितम् ॥२१॥

अर्थ-वीर क्षत्रियों के लिये बलपूर्वक कन्या को छीन ले
जाना भी विवाह का प्रशंसनीय कारण है, ऐसा धर्मवेत्तालोग

कहते हैं, सो हे अर्जन! तुम मेरी सुन्दर बहिन को बलपूर्वक उठा
कर ले नाओ, क्योंकि इसके स्वयंवर के विषय में कौन जानता

ततोऽर्ज्जनश्च कृष्णश्च विनिश्चित्येति कृत्यताम् । शीव्रगान् पुरुषानन्यान् प्रेषयामासतुस्तदा ॥२२॥ धर्मराजाय तत्सर्वमिन्द्रशस्थं गताय वै । श्रुत्वैव च महाबाहुरनुजज्ञे स पाण्डवः ॥२३॥

आदिपर्व-त्रिपष्टितमाध्याय

858

अर्थ-तव अर्जुन और कृष्ण ने सव कर्त्तव्य निश्चय करके धर्मराज युधिष्ठिर के समीप इन्द्रमस्थ में अन्य शीघ्रगामी पुरुषों को भेजा और वह सन्देश पहुंचा दिया, उसको छुनते ही महाबाहु पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन को वैसा करने की अनुमात देदी ॥

इति द्विषष्टितमोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः प्रारम्यते

वैद्याम्पायन उवाच
गतां रैवतके कन्यां विदित्वा जनमेजय ।
कृष्णस्य मतमादाय प्रययो भरतर्षभः ॥१॥
रथेन काञ्चनाङ्गेन कित्पतेन यथाविधि ।
मृगया व्यपदेशेन प्रययो भरतर्षभः ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे जनमेजय ! तब भरतकुष्ठ श्रेष्ठ अर्जुन कन्या सुभद्रा को रैवतकपर्वत पर गई हुई जानकर कृष्णजी की सलाह से उसी अवसर पर वहां को चल दिया और विधिपूर्वक सजे हुए सुवर्ण के रथ पर शिकार खेलने के बहाने से उसी स्थान की ओर चला गया, और :-

तामभिद्वत्य कौन्तेयः प्रसह्यारोपयद्रथम् । सुभद्रां चारुसर्वागीं कामनाणप्रपीडितः ॥ ३ ॥ ततः स पुरुषव्याघ्रस्तामादाय श्रुचिस्मिताम् । रथेन काञ्चनांगेन प्रययो स्वपुरं प्रति ॥४॥ YSY

अर्थ-कामदेव के वाणों में सताये हुए अर्जुन ने समस्त सुन्दर अक्कों वाली सुभद्रा को मार्ग में रोककर अपने रथ पर वलपूर्वक का लिया, तब वह सिंहपुरुष अर्जुन उस मनोहर मुसक्यान वाली सुवि को लेकर सुर्वण के रथ द्वारा अपने नगर इन्द्रमस्य की ओर चल दिया ॥

हियमाणां तु तां दृष्ट्वा सुभद्रां सैनिका जनाः। विकोशन्तोऽद्रवन् सर्वे द्वारकामभितः पुरीम् ॥५॥ ते समासाद्य सहिताः सुधर्मामभितः सभाम्। सभापालस्य तत्सर्वमाचल्यः पार्थविकमम्॥६॥

अर्थ-तब सुभद्रा का हरा जाना देखकर सब सैनिक लोग चिल्लाते पुकारते हुए द्वारका नगरी की ओर दौड़े और उन लोगों ने सुधर्मा नामक सभा के सामने जाकर उसके अध्यक्ष से अर्जुन का वह सब साहस कह सुनाया ॥

तेषां श्रुत्वा सभापालो भेरीं सान्नाहिकीं ततः । समाजन्ने महाघोषां जाम्बूनदपरिष्कृताम् ॥७॥ श्रुव्धास्तेनाथ शब्देन भोजनृष्ण्यन्धकास्तदा । अन्नपानमपास्याथ समापेतुः समन्ततः ॥८॥

अर्थ-सभा का अध्यक्ष उनकी बात सुनते ही युद्ध की तैयारी का सूचक भारी शब्द वाला सुवर्णालङ्कृत नगारा बजाने लगा, तब उस शब्द से क्रोध में भरे हुए भोजवंशी, वृष्णिवंशी तथा अन्यकवंशी वीर साना पीना त्याग सब ओर से आकर इकड़े होगये॥

आदिपर्व-त्रिषष्टितमाध्याय

864

तेषां समुपविष्टानां देवानामिव सन्नये । आचरव्यो चेष्टितं जिष्णोः सभापालः सहानुगः ।९। तच्छुत्वा वृष्णिवीरास्ते मदसंरक्तलोचनाः । अमृष्यमाणाः पार्थस्य समुत्पेतुरहङ्कृताः ॥१०॥

अर्थ-जब वह सवलोग देवताओं के समान सभाभवन में आकर बैठे तब सभापाल और उमके सहायकों ने अर्जुन की वह सब कार्यवाई कही, वह वृष्णिवंशी वीर यह सुनते ही क्रोध के मद से लाल नेत्रों वाले हुए २ अर्जुन की उस बात को न सहार कर अहङ्कार के साथ युद्ध के लिये तैयार होगये॥

वनमाली ततःक्षीव कैलाशशिखरोपमः । नीलवास मदोत्सिक्त इदं वचनमत्रवीत् ॥११॥ किमिदं क्रिथाप्राज्ञास्त्वणीं भूते जनार्दने । यदस्य रुचितं कर्ज्ञ तत्क्ररुःवमतन्द्रिताः ॥१२॥

अर्थ-तव कैलाश पर्वत की चोटी के समान श्वेतवर्ण वाले नीलाम्बर पहिने हुए मतवाले वलराम जी कहने लगे कि हे निर्दु-दियों! कृष्ण तो चुपचाप वैठे हुए हैं तुम यह क्या कोलाहल कर रहे हो ? कृष्ण का जो कुछ करना अभीष्ट हो वही काम तुम सब सावधान होकर करो ॥

ततस्ते तद्धचः श्रुत्वा त्राह्यरूपं हलायुधात् । तृष्णीभृतास्ततः सर्वे साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥१३॥ ततोऽब्रवीद् वासुदेवं वचो रामः परन्तपः । किमवायुपविष्टोऽसि प्रेक्षमाणो जनार्दन ॥१४॥

महाभारत

अर्थ- तब वह सबलोग बलरामजी की उचित वात सुनकर चुप होगये और वाह २ करने लगे, इसके पश्राद शञ्चसंतापक बलराम जी कृष्ण जी से बोले कि हे जनदुः खहारण कृष्ण तुम यह सब कुछ देखते हुए भी चुप चाप क्यों घेठे हुए हो? ॥

ततोऽत्रवीद् वासुदेवो वाक्यं धर्मार्थसंयुतम् । मावमानं कलस्यास्य युडाकेशः प्रयुक्तवान् । सम्मानोभ्यधिकस्तेन प्रयुक्तोऽयं न संशयः ॥१५॥

अर्थ-तत्र कृष्णजी धर्मनीति युक्त यह वात कहने छगे कि अर्जुन ने हमारे कुछ का अपमान नहीं किया पत्युत उसने हमारा अधिक सन्मान किया है, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥

अर्थलुब्धान् न वः पार्थो मन्यते सात्त्वतान् सदा। स्वयंवरमनाधृष्यं मन्यते चापि पाण्डवः ॥१६॥ प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोऽनुमन्यते। विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात्पुरुषो भुवि ॥१७॥ एतान् दोपांस्तु कौन्तेयो दृष्टवानिति मे मतिः। अतः प्रसह्यहृतवान् कन्यां धर्मण पाण्डवः ॥१८॥

अर्थ-अर्जुन सदा यह जानता है कि हम यदुवंशीलोग धन के लोभ से कन्या का विवाह करने वाले नहीं हैं, और यह भी जानता है कि स्वयंवर में सुभट्टा का मिलना सहज नहीं है, पशु के समान अपनी कन्या का दान करना कान अच्छा समझता है और कौन पुरुष पृथ्वी पर है जो अपनी मंतान को वेचेगा, मैं समझता हूं

आदिपर्व-त्रिपष्टितमाध्याय

638

कि अर्जुन ने इन सब दोषों को समझा होगा, इसीलिये उसने क्षत्रियधर्म के अनुसार कन्या को हर लिया है।।

उचितश्चेव संबन्धः सुभद्रा च यशस्विनी । एष चापीदृशः पार्थः प्रसह्य हृतवानिति ॥१९॥ तमभिद्वत्य सान्त्वेन परमेण धनञ्जयम् । न्यवर्त्तयत संहृष्टा ममेषा परमा मातिः ॥२०॥

अर्थ-और यह विवाह संवन्ध भी योग्य ही हुआ है, क्योंकि सुभद्रा भी जुणवती है और इधर अर्जुन भी वैसा ही गुणवान है जो वलपूर्वक हरकर लेगया है, सो मेरी यह दृद सम्मात है कि दौड़कर अर्जुन के समीप पहुंच हर्पपूर्वक परमशान्ति के साथ उसको यहां लौटा लाओ ॥

तच्छुत्वा वासुदेवस्य तथा चक्रुर्जनाधिप । निवृत्तश्चार्जनस्तत्र विवाहं कृतवान् प्रभुः ॥२१॥ उषित्वा तत्र कौन्तेयः संवत्सरपराः क्षयाः । पुष्करे तु ततः शेषंकालं वर्त्तितवान् प्रभुः । पूर्णे तु द्वादशे वर्षे खाण्डवप्रस्थमागतः ॥२२॥

अथ-हे राजन ! कृष्णजी का कथन सुनकर उन पुरुषों ने वैसा ही किया, तब वीर अर्जुन ने वहां छोटकर सुभद्रा के साथ विवाह किया द्वारकापुरी में वीर अर्जुन एकवर्ष तक रहा, पश्चात शेषकाछ पुष्करतीर्थ पर उन्होंने विताया, और वारहवर्ष का बनवास समाप्त करके फिर खाण्डवमस्थ में छोट आया ॥

ततोऽभिगम्य त्वरिता पूर्णेन्दुसहशानना । ववन्दे द्रौपदीं भद्रा प्रेष्याहमिति चात्रवीत् ॥२३॥ प्रत्युत्थाय तदा कृष्णा स्वसारं माधवस्य च । परिष्वज्यावदत् प्रीत्या निःसपत्नोऽस्तु ते पतिः॥२४॥

अर्थ-तय पूर्णचन्द्रमा के समान मुखवाली गुभट्टा ने शीघता से समीप जाकर द्रौपदीको मणाम कर कहा कि मैं तुम्हारी दासी हूं तब द्रौपदी ने कृष्ण की वहिन को उठाकर आलिङ्गन किया और प्रेम से बोली कि तुम्हारा पति शच्चहीन हो ॥

ततस्ते हृष्टमनसः पाण्डवेया महारथाः । कुन्ती च परमप्रीता बभूव जनमेजय ॥२५॥ अर्जुनं पाण्डवश्रेष्ठमिन्द्रप्रस्थगतं तदा । आजगाम विशुद्धात्मा रामेण सह केशवः ॥२६॥ वृष्ण्यन्धकमहामात्येः सह वीरैर्महारथेः । भ्रातृभिश्च कुमोरेश्च योधेश्च बहुभिर्वृतः ॥२७॥ अर्थ-हे जनमजय ! तव वह महावीर पाण्डव और कुन्ती

अर्थ-हे जनमजय ! तव वह महावीर पाण्डव और कुन्ती अर्जुन के आने से परमप्रसन्नहुए जब श्रेष्ठ पाण्डव अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में पहुंच गया तव वह पवित्रात्मा कृष्णजी वलरामजी के सहित तथा वृष्णिवंश और अन्धकवंशी के महामन्त्रियों में से बहुत से वीर सैनिक योद्धाओं, भाइयों तथा कुमार वालकों को साथ लिये हुए इन्द्रप्रस्थ में अर्जुन के समीप पहुंचे ॥

तेषां ददौ हषीकेशो जन्यार्थे धनमुत्तमम् । हरणेवै सुभद्राया ज्ञातिदेयं महायशाः ॥ २८॥

आदिपर्व-त्रिपष्टितमाध्याय

४८९

रामः पाणिग्रहणिकं ददौ पार्थाय लांगली। प्रीयमाणो हलधरः संबन्धं प्रतिमानयन् ॥२९॥

अर्थ-महाप्रतापी कृष्णजी ने सुभद्रा के हरण के सवन्थ में पाण्डवों को दहेज़ में बहुतसा उत्तम धन दिया जो उनके बन्धु छोगों को नियमानुसार देना आवश्यक था, हल के धारण करने वाले बलराम ने पसन्नता के साथ विवाहसम्बन्ध का सन्मान करते हुए विवाह का चिह्न ए हल अर्थाद हल के आकार का शस्त्र अर्जुन को दान के रूप में दिया ॥

रामं पुरस्कृत्य ययुर्वृष्ण्यन्धकमहारथाः। रत्नान्यादाय शुभ्राणि दत्तानि कुरुसत्तमेः ॥३०॥ वासुदेवस्तु पार्थेन तत्रैव सह भारत। उवास नगरे रम्ये शक्रप्रस्थे महात्मना ॥३१॥

अर्थ-वृष्णिवंशी और अन्धकवंशी वीरपुरुष पण्डवों के दिये हुए बहुत से उत्तमोत्तम रत्न छेकर वछरामजी के साथ द्वारका नगरी को चछे गये, हे भारतीय राजन ! परन्तु कृष्णजी महात्मा अर्जुन के साथ रमणीय इन्द्रपस्थ नगर में ही रहत रहे ॥

दीर्घबाहुं महोरस्कं वृषभाक्षमिर्दिमम् ।
सुभद्रा सुषुवे वीरमाभिमन्युं नर्र्षभम् ॥३२॥
जन्मप्रभृति कृष्णश्च चके तस्य कियाः शुभाः ।
स चापि ववृषे वालः शुक्रपक्षे यथा शशी ॥३३॥
अर्थ-तव सुभद्रा के अभिमन्यु नामक वीर पुत्र उतपन्न हुआ,
जिसकी हंवी भुजायें, विशाल हृदय, वृषभ के समान नेत्र थे और

वह शत्रुओं को दमन करने वाला तथा मनुष्यों में श्रेष्ट्रिया, कृष्णजी ने जन्म से लगाकर उसके सब धुभ संस्कारिकये और वह बालक भी धुक्रपक्ष में चन्द्रमा के समान प्रातिदिन बढ़ता गया ॥

चतुष्पादं दशविधं धनुर्वेदमरिन्दमः । अर्जुनाद् वेद वेदज्ञः सकलं दिव्यमानुषम् ॥३४॥ आगमे च प्रयोगं च चक्रे तुल्यमिवात्मना । तुतोष पुत्रं सौभदं प्रेक्षमाणो धनञ्जयः ॥३५॥

अर्थ-उस शत्रुनाशक बालक ने अपने पिता अर्जुन द्वारा दिन्य-मनुष्यों से संबन्ध खरने वाला चार खंडों से युक्त दश मकार का धनुर्वेद,पूर्णतयां सीख लिया, अर्जुन ने शस्त्रों के ज्ञान तथा प्रयोग में उसको अपने ही समान बनालिया और अर्जुन सुभद्रा के पुत्र को देखकर संतुष्ट हो गया॥

पात्राल्यपि तु पञ्चभ्यः पात्रभ्यः शुभलक्षणा । लेभे पञ्चस्तान् वीरान् श्रेष्ठान् पञ्चाचलानिव।।३६।। याधिष्ठरात्प्रतिविन्ध्यं सुतसोमं वृकोदरात् । अर्जुनाच्छुतकर्माणं शतानीकं च नाकुलम् । सहदेवाच्छुतसेनमेतान् पञ्च महारथान् ।।३७।।

अर्थ-तव श्रम लक्ष्णों वाली द्रौपदी के भी पांच पतियों से पांच पर्वतों के समान श्रेष्ठ पांच योद्धा वीर पुत्र उत्पन्न हुए अर्थात युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से सुतसोम, अर्जुन से श्रतकर्मा,

आदिपर्व-चतुःषष्टितमाध्याय

333

एकवर्षान्तरास्त्वेते द्रौपदेया यशस्विनः । अन्वजायन्त राजेन्द्र परस्पराहितैषिणः ॥३८॥ कृत्वा च वेदाध्ययनं ततः सुचरितव्रताः । जगृहुः सर्वमिष्वमर्जुनाद्दिव्यमानुषम् ॥३९॥

अथ-हे राजेन्द्र! द्रौपदी के यह पांची प्रतांपी पुत्र एक २ वर्ष के पश्चात उत्पन्न हुए और यह सब आपस में एक दृसरे के हितेषी वन गये थे, इसके अनन्तर इन पांचों ने नियमानुसार ब्रह्मचर्य ब्रतधारण करके दिव्यमनुष्यों से सम्बन्ध रखने वाली सम्पूर्ण शस्त्रविद्या अर्जुन से सीखली ॥

इति त्रिषष्टितमोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः प्रारम्यते

──×**~~

वैद्यान्पायन उवाच इन्द्रप्रस्थे वसन्तस्ते जच्छरन्यान् नराधिपान् । शासनाद् धतराष्ट्रस्य राज्ञः शान्तनवस्य च ॥१॥ ततः कतिपयाहस्य वीभत्सुः कृष्णमत्रवीत् । उष्णानि कृष्ण वर्त्तन्ते गच्छावो यसुनां प्रति ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! इन्द्रमस्थ में रहते हुए पाण्डवों ने राजा धृतराष्ट्र तथा भीष्मजी की आज्ञा से अन्य शञ्च राजाओं को पराजय किया और मारा, तब कुछ दिनों पश्चाद

महाभारत

अर्जुन ने कृष्णजी से कहा कि हे कृष्ण ! आजकल गर्मियों के दिन हैं इसलिये हमदोनों यमुना नदी की ओर चलें ॥ आमन्त्र्य तौ धर्मराजमनुज्ञाप्य च भारत । जग्मतुः पार्थगोविन्दो सहज्जनावृतो ततः ॥३॥

तत्र गत्वा महात्मानौ कृष्णौ परपुरञ्जयौ। महार्हासनयो राजंस्ततस्तौ संन्यसीदताम्॥४॥

अर्थ-हे भारतीय राजन् ! वह दोनों अर्जुन और कृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर से पूछकर उनकी अनुभित से अपने मित्र लोगों के सहित यमुना नदी की ओर गये,शञ्जओं के नगरों को विजय करने वाले दोनों महात्या अर्थात् कृष्ण तथा अर्जुन वहां जाकर राजोचित आसनों पर वैठे ॥

अभ्यागच्छत्तदा विष्रो वासुदेवधनञ्जयौ । अर्जुनो वासुदेवश्च तूर्णसुत्पत्य तस्थतुः ॥५॥ सोऽत्रवीदर्जुनं चैव वासुदेवं च सात्वतम् । भिक्षे वार्ष्णेयपार्थी वामेकां तृष्तिं प्रयच्छताम् ॥६॥

अर्थ-तव कृष्ण और अर्जुन के समीप एक ब्राह्मण आखड़ा हुआ, उसे देखते ही अर्जुन और कृष्ण शीघ उठ खड़े हुए, वह ब्राह्मण सत्त्वत्वंशी वसुदेवपुत्र कृष्णजी से तथा अर्जुन से बोला कि हे कृष्ण और अर्जुन! मैंतुम से भिक्षा मांगता हूं, तुम मेरी एक अभिलापा को पूर्ण करो॥

स युवाभ्यां सहायाभ्यामस्रविद्वयां समागतः । दहेयं लाण्डवं दावमेतदन्नं वृतं मया ॥७॥

आदिपर्व-चतुःषष्टितमाध्याय

893

अर्थ-मैं आप से यह भिक्षा मांगता हूं कि आप दोनों शस्त्र-धारियों की सहायता से मैं इस भयानक "खाण्डव" नामक वन की जला दूं॥

अर्जुन उवाच

उत्तमास्त्राणि मे सन्ति दिव्यानि च बहुनि च । येरहं शकुयां योद्धमपि वज्रधरान् स्वयम् ॥८॥ तथा कृष्णस्य वीर्येण नायुधं विद्यते समम् । येन नागान् पिशाचांश्च निहंत्यान्माधवो रणे॥९॥

अर्थ-अर्जुन ने कहा कि हे ब्राह्मण ! मेरे समीप बहुत से उत्तम २ अद्भुत शस्त्र हैं जिनके द्वारा मैं स्वयं वज्र के धारण करने वालों से भी युद्ध करसकता हूं, और कृष्णजी के पराक्रम के समान कोई अन्य शस्त्र नहीं है जिसके द्वारा कृष्ण इस बनके रहने वाले हाथियों, सांपों तथा मांसाहारी जंगली मनुष्यों वा हिंसक अन्य जीव जन्तुओं को मारसक्ते हैं॥

सर्वतः परिवार्येव दावमेतन्महत् प्रभो । कामं संप्रज्वलाद्येव कल्यो स्वः सह्य कर्मणि ॥१०॥ एवमुक्तः स भगवान् दाशाईणार्ज्जनेन च । ददाह खाण्डवं दावं युगान्तमिव दर्शयन् ॥११॥

अर्थ-हे प्रभावशील ब्राह्मण ! तुमचाहो तो इस भयानक वनके चारों ओर आग लगाकर अभी इसको जला सकते हो, हमदोनों अपना कर्तव्य पालन करने के लिये तैय्यार खड़े हुए हैं, कृष्ण और अर्जुन के ऐसा कहते ही भगवान ब्राह्मण ने प्रलयकाल की घटनासी दिखलाते हुए उस भारी खाण्डव बनको जलाना आरम्भ कर दिया ॥

तौ स्थाभ्यां रथिश्रेष्ठौ दावस्योभयतः स्थतौ । दिश्च सर्वा सुमृतानां चकाते कदनं महत् ॥१२॥ यत्र यत्र च दश्यन्ते प्राणिनः खाण्डवालयाः । पलायन्तः प्रवीरौ तौ तत्र तत्राभ्यधावताम् ॥१३॥

अर्थ-वह दोनों श्रेष्ठ योद्धा वन के दोनों ओर खड़े हो गये और सब दिशाओं में उस वन से भागने बाले दुष्टजन्तुओं को मार २ कर गिराने लगे, जिस २ ओर को खाण्डव वन के रहने वाले प्राणी भागते हुए दिखलाई देंते उसी ओर वह दोनों वीर दौड़कर जा पहुंचते थे॥

खाण्डवे दह्यमाने तु भूतानि शतसङ्घराः । उत्पेतुभैरवान्नादान् विनदन्तः समन्ततः ॥१४॥ ते शराञ्चितसर्वाङ्गा निनदन्तो महाखान् । ऊर्द्रवमुत्पत्य वेगेन निपेतुः खाण्डवे पुनः ॥१५॥

अर्थ-जिससमय लाण्डवबन जलने लगा तब सैकड़ों हज़ारों ग्रुंड के ग्रुंड डरावने प्राणी भयानक चिल्लाहट मचाते हुए उसबन के सब भागों से निकल २ कर दौड़ने लगे, परन्तु जब बाणों से उनके सब अङ्ग बिन्धने लगे तो बड़े वेग से शब्द करते हुए उछल २ कर फिर उसी जलते हुए खाण्डव बन में गिरपड़े॥

आदिपर्व-चतुःषष्टितमाध्याय

४९५

तथासुरं मयं नाम तक्षकस्य निवेशनात् । विषद्भवन्तं सहसा ददर्श मधुसूदनः ॥१६॥ जिघांसुर्वासुदेवस्तं चक्रमुद्यभ्य धिष्ठितः । स चक्रमुद्यतं दृष्ट्वा दिधक्षन्तं च पावकम् । आभिधावार्जनेत्येव मयस्त्राहीति चात्रवीत् ॥१७॥

अर्थ-जब कृष्णजी ने एकाएक देखा कि " मय " नामक राक्षस तक्षक के घर से निकल कर दौड़ रहा है तब कृष्णजी उस के मारने के लिये चक्र उटाकर दौड़े, जब मय ने देखा कि मेरे मारने को कृष्ण ने चक्र उटाया हुआ है और दूसरी ओर अग्नि भी मुझे जलाना ही चाहती है अर्थात अत्यन्त समीप आगई है, तब उस ने अर्जुन को पुकार कर कहा कि मैं "मय" हूं मुझे बीघ्र ही दौड़कर बचाओ ॥

तस्य भीतस्वनं श्रुत्वा माभैरिति धनञ्जयः । प्रत्युवाच मयं पार्थो जीवयान्नव भारत ।।१८॥ तं पार्थेनाभये दत्ते नमुचेर्भातरं मयम् । तं हन्तुभैच्छद दाशाईः पावको न ददाह च ॥१९॥

अर्थ-हे राजन ! उसके घबराहट की पुकार मुनकर कुन्ती पुत्र अर्जुन ने " मय " से कहा कि "-मतडरो" इस मकार कह-कर मानों उसको जीवित कर दिया, नमुचि के भाई "म्य" को जब अर्जुन ने अभयदान दिया, तब कृष्णजी ने उसके मारने की इच्छा त्याग दी और वह अग्नि में जलने से भी बचगया ॥

महाभारत

अर्जुनो वासुदेवश्च दानवश्च मयस्तथा । परिक्रम्य ततः सर्वे त्रयोऽपि भरतर्षभ । रमणीये नदीकुले सहिताः समुपाविशन् ॥२०॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! तव अर्जुन, कृष्ण तथा राक्षस
" मय " यह तीनो थोड़ी दूर चलकर रमणीय यमुना नदी के
ाट पर इकडे होकर वैठ गये॥

इति श्री पं॰ आर्घ्यमिननोपानेबद्धे महामारते आर्घ्यटीकायां आदिपर्व समाप्तम्।





अथ सभापर्व प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

ततोऽत्रवीन्मयः पार्थं वासुदेवस्य सान्निधौ । प्रांजलिः स्लक्ष्णया वाचा प्रजयित्वा पुनःपुनः ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हेराजा जनमेजय! खाण्डव वन जल-जाने के पश्चाद "मय" दानव, अर्जुन और कृष्ण का बारम्बार सत्कार करके कृष्ण के सन्मुख अर्जुन के प्रति हाथ जोड़ कर मधुरवाणी द्वारा बोला किः—

अस्मात्कृष्णात् सुसंख्धात्पावकाच दिधक्षतः । त्वया त्रातोस्मि कौन्तेय ब्रहि किं करवाणि ते॥शा

अर्थ-हे महाराज अर्जुन! आप ने मुझको इन कृष्णजी के क्रोध से और अग्नि से जलते हुए बचाया है, मैं भी आपका कुछ मृत्युपकार किया चाहता हूं, सो आप कृपाकरके बतलावें कि मैं आपका क्या कार्य कर्षं!।

अर्जुन उवाच कृतमेव त्वया सर्व स्वस्ति गच्छ महासुर । प्रीतिमान्भव मे नित्यं प्रीतिमंतो वयं च ते ॥३॥

महाभारत

अर्थ-यह सुनकर अर्जुन बोला कि आपने हमारा सब कार्य किया, में आप पर मसन्न हूं, अब आप कुशलपूर्वक अपने घर जायं और हम से सदाही मीति मानते रहें।।

मय खवाच

युक्तमेतत्त्विय विभो यथात्थ पुरुषर्गभ । भीतिपूर्वमहं किंचित्कर्त्तामिच्छामि भारत ॥४॥ अहं हि विश्वकर्मा वै दानवानां महाकविः । सोऽहं वै त्वत्कृते कर्त्तं किंचिदिच्छामि पाण्डव॥४॥

अर्थ-तब "मब" बोला कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपने ठीक कहा और आप इसी योग्य हैं, परंतु हे भरतकुलोत्पन्न अर्जुन ! मैं मीति-पूर्वक आपका कुछ कार्य किया चाहता हूं, वयोंकि मैं दानबों का बदा किव विश्वकर्मा होने से शिल्पविद्या भलेपकार जानता हूं॥ अर्जुन उचास्त्र

प्राणकृञ्छादिसुक्तं त्वमात्मानं मन्यसे मया।

एवं गतेन शक्ष्यामि किंचित्कारियतुं त्वया।।६।।

नचापि तव संकर्णं मोधिमञ्छामि दानव।

कृष्णस्य क्रियतां किंचित्तथा प्रतिकृतं मिथ ।।७।।
चोदितो वासुदेवस्तु मयेन भरतर्षभ।

सहूर्त्तमिव संद्ध्यो किमयं चोद्यतामिति।।८।।

पर्थ-यर धुनकर अर्जुन बोला कि हे दानव! आप अपनेको

हनसे रक्षा किया हुआ मानकर हमारा मत्युपकार करना चाहते

हो. परंत देसी दक्षा में मेरा कोई ऐसा कार्ष्य नहीं जो में आपसे

कराऊं, यदि आप इमारा कुछ कार्य्य किया चाइते ही हैं तो कुष्ण से पूछें और जो वह आज्ञा दें वही करें, क्योंकि उनका कार्य्य भी इमारा ही हैं, यह मुनकर मय ने कुष्ण से कहा और वह क्षणभर विचारकर बोले कि:—

कृष्ण उवाच
यदि त्वं कर्जुकामोसि प्रियं शिल्पवतांवर ।
धर्मराजस्य दैतेय यादृशीमिह मन्यसे ॥९॥
यां कृतां नानुकुर्वन्ति मानवाः प्रेक्ष्यधिष्ठिताः ।
मनुष्यलोके सकले तादृशीं कुरु वे सभाम् ॥१०॥
अर्थ- कृष्णजी बोले कि हे शिल्पजानने वालों में श्रेष्ठ ! यदि त्
धर्मराज युधिष्ठिर का प्रिय करना चाहता है, तो एक ऐसा सुन्दर
सभाभवन बना जिसके सदृश संसारभर में दृसरा कोई न हो,
और जिसको देखकर सब तेरी बुद्धि की प्रशंसा करें ॥

वैद्यान्पायन उवाच श्रतिगृह्य तु तद्धाक्यं संप्रदृष्टो मयस्तदा । विमानपितमां चके पाण्डवस्य शुआं सभाम् ॥११॥ अर्थ-वैद्यान्पायन बोले कि हे राजत ! कृष्ण का उक्त बाक्य धुनकर यय ने प्रसन्नतापूर्वक " विमानप्रतिमा " = विद्यान के समान उक्तम सभाभवन पाण्डवों के लिये बनाना स्वीकार किया॥

ततः कृष्णश्च पार्थश्च धर्मराजे युधिष्ठिरे । सर्वमेतत्समावेद्य दर्शयामासतुर्भयम् ॥१२॥ तस्मे युधिष्ठिरः पूजां यथाईमकरोत्तदा । स तु तां प्रतिजग्राह मयः सत्कृत्य भारत ॥१३॥

महाभारत

अर्थ-इसके अनन्तर कृष्ण और अर्जुन मय दालव को धर्मराक्ष युधिष्ठिर के समीप लेगये और उनसे सब खुतांत कहकर मय के सभाभवन बनाने का हाल कहा, तब युधिष्ठिर ने वह सब बुतांत सुनकर मय का यथोचित सत्कार किया,और मय ने भी युधिष्ठिर का सत्कार करके, उनके सत्कार को ग्रहण किया ॥

स कालं कंचिदाश्वस्य विश्वकर्मा विचिन्त्य तु । सभां प्रचक्रमे कर्तु पाण्डवानां महात्मनाम् ॥१४॥ सर्वर्तुग्रणसम्पन्नां दिन्यरूपां मनोरमाम् । दशकिष्क्रसहस्रां तां मापयामास सर्वतः ॥१५॥

अर्थ-तत्पश्चात कुछ काल स्वस्थिचित्त होकर विश्वकर्मा ने चिन्तन करके महात्मा पाण्डवों के लिये ऐसा सभाभवन बनाना प्रारम्भ किया जो बड़ा मनोहर दिन्यगुण सम्पन्न तथा सब ऋतुओं में गुणकारी हो, जिस के लिये उसने दश २ सहस्र हाथ चारों और से भूमि मापकर सभा बनाने का स्थान नियत किया ॥

उपित्वा लाण्डवप्रस्थे सुलवासं जनार्दनः ।
गमनाय मितं चके पितुर्दर्शनलालसः ॥१६॥
काश्रनं रथमास्थाय तार्ध्यकेतनमाश्रुगम् ।
स्यन्दनेनाथ कृष्णोऽपि त्वरितं द्वारकाममात्॥१७॥
अर्थ-कृष्णी ने क्या गाम कर्

अर्थ कृष्णजी ने कुछ समय तक खाण्डवमस्य में मुख्यपूर्वक निवास करके, पश्चाद पिता के दर्शन की उत्कण्डा से द्वारका-पुरी जाने का विचार किया, तब कृष्णजी सुवर्ष के भूषितामी

सभापर्व-द्वितीयाध्याय

609

रथ पर वैठकर जिसपर कि गरुड़ के चिह्न की ध्वजा लगी हुई थी, शीघ ही द्वारका नगरी में जा पहुंचे ॥

इति प्रथमोऽध्यायः समाप्तः

अथ द्वितीयोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच अथाबवीन्मयः पार्थमर्जुनं जयतांवरम् । उत्तरेण तु कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति। यियक्षमाणेषु पुरा दानवेषु मया कृतं ॥१॥ चित्रं मणिमयं भाण्डं रम्यं विन्दुसरः प्रति। सभायां सत्यसंधस्य यदासीद् वृषपर्वणः ॥२॥ आगमिष्यामि तद्गृह्य यदि तिष्ठति भारत । ततः सभां करिष्यामि पाण्डवस्य यशस्विनीम् ॥३॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे जनमेजय ! तब मयदानवने जीतने वालों में श्रेष्ट=अर्जुन से कहा कि हे भरतवंशी ! कैलासपर्वत के उत्तर की ओर मैनाकपर्वत है जिसमें एक विन्दुसर है, मैंने वहां पूर्वकाल में जब कि दानवों को यज्ञ करने की इच्छा हुई थी, सत्य-मतिज्ञ वृषपर्वा नामक राजा के लिये सभावनाई थी, उसी स्थान के निकट उस सभा के बनाने का सामान विचित्र माण-रवादिक रसे इए हैं, सो मैं वहां से उस सामान को लाकर आपके लिये बहा मनोहर उत्तम संभाभवन बनाऊंगा, और :-

मनः प्रहलादिनीं चित्रां सर्वरत्नविभूषिताम् । अस्ति विन्दुसरस्युष्रा गदा च कुरुनन्दन ॥४॥ वारुणश्च महाशंखो देवदत्तः सुघोषवान् । सर्वमेतत्प्रदास्यामि भवते नात्र संदायः ॥५॥

अर्थ-हे कुरुनन्दन ! वहीं विन्दुसर के निकट सब रहाँ से विभूषित, मनको आह्नाद = मसन्न करने वाली एक भारी गदा राजा वृष्पर्वा की रखी है, और राजा वरुण का "देवदत्त " नामक बढ़ा दाल, जिसका शब्द बड़ी दूर से छुनाई देता है, वहीं रखा हुआ है, सो मैं इन सब वस्तुओं को भी लेता आंऊंगा और आप को दूंगा, इसमें संशय नहीं।

तत्र गत्वा स जग्राह गदां शंखं च भारत ।
स्फाटिकं च सभादृज्यं यदासीद् वृषपर्वणः ॥६॥
किंकरेः सहरक्षोभिर्यदरक्षन्महद्धनम् ।
तदगृहणान्मयस्तत्र गत्वा सर्व महासुरः ॥७॥
गदां च भीमसेनाय प्रवरां प्रदरौ तदा ।
देवदत्तं चार्जुनाय शंखप्रवरमुत्तमम् ॥८॥

अर्थ-वह मय नामक दैत्य वहां जाकर गदा, शंख और माणि भादिक सभा बनाने का बढ़ा समान, जो राजा वृषपर्वा का वहां दैत्यों से राप्तित रखा हुआ था, उसको लेकर इन्द्रमस्थ को लीट आय, उसनेवह उत्तम गदा भीमसेन को तथा वह श्रेष्ठ शंख अर्जुन को देदिया और:—

तदाहत्य च तां चक्रे सोऽसुराऽप्रतिमां सभाम् । विश्वतां त्रिषु लोकेषु दिव्यां मणिमयीं शुभाम्।।९॥ अर्थ-वह सब सामान लाकर उस " मय " नामी असुर ने अनुपष सभा तैयार की, जो कि दिव्यमणिओं से बनाई गई और जिसकी तीनो लोकों में मिसिद्धि फैल गई थी॥

श्राजमाना तथात्यर्थ दधार परमं वपुः । अभिन्नतीव प्रभया प्रभामर्कस्य भास्वराम् ॥१०॥ अर्थ-उस सभा में ऐसा प्रकाश था कि उसके सन्मुख सूर्य्य का भी प्रकाश पन्द प्रतीत होता था, औरः—

प्रबभी ज्वलमानेव दिव्यादिव्येन वर्चसा।
नवमेघप्रतीकाशादिवमावृत्याविष्ठता।
आयता विपुला रम्या विपाप्मा विगतक्कमा॥११॥
उत्तमद्रव्यसम्पन्ना रत्नप्राकारतोरणा।
बहुचित्रा बहुधना सुकृता विश्वकर्मणा॥१२॥
तांस्म तत्र मयेनोक्ता रक्षन्ति च वहन्ति च।
सभामष्टा सहस्राणि किंकरा नाम राक्षसाः॥१३॥

अर्थ-वह सभाकृतिमतथा अकृतिम तेज से ऐसी शोभायमान थी कि मनुष्य की थकावट वहां जाते ही दूर होजाती थी, और छंबी चौड़ी तथा ऊंची इतनी थी कि आकाशसे मिली हुई नवीनमेघ जैसी जान पड़ती थी, उस दैत्यों के विश्वकर्मा = यय असुर ने उस सभा के लिये अनेक प्रकार के रत्नादि द्रव्यों से कोट = अहाता तथा तोरण = द्वार आदि वनाकर उसकी रक्षा के किये आठ हज़ार

महाभारत

किकर नामी दैत्य नियत कर दिये थे, और वह सभा ऐसी दिब्ब बनाई थी कि उस को जहां चाई वहां उठाकर लेजा सकते थे॥ तस्यां सभाया निलनीं चकाराप्रतिमां मयः।

तस्या सभाया नालना चकाराप्रतिमा मयः।
वैदूर्यपत्रविततां मणिनालमयां बुजाम् ॥१४॥
पद्मसौगन्धिकवतीं नानादिजगणायुताम् ।
पुष्पतेः पंकजेश्वित्रां क्रमेर्मत्स्येश्व कांचनेः।
चित्रस्पटिकसोपानां निष्पंकसालेलां शुभाम्॥१५॥
मंदानिलसमुद्धतां मुक्ताबिन्दुभिराचिताम् ।
महामणिशिलापट्टबद्धपर्यन्त वेदिकाम् ॥१६॥

अर्थ-" मय " दानव ने उस सभाभवन में एक निल्नी=
कमलयुक्त सरोवर बनाया था, जिसमें कि इरीमणिओं के पत्तों
बाले तथा मणिओं की ही दंदिओं वाले कमल बनाये थे, उस
सरोवर की सीदियां स्फटिक की बनी थीं, उसके चारों ओर
मणिओं का चौंतरा बना हुआ था, और उन कमलों में सुगन्ध
आती थी तथा उनपर नानामकार के पक्षी भी बैठाये गये थे, उस
सरोवर में अनेल मकार की मणियों से जिटत सुनहरे कछुये तथा
महालियां फिरती थीं और उसमें कींच रहित जल स्फटिक के सहश

तां सभामभितो नित्यं पुष्पवंतो महादुमाः। आसन्नानाविधालीलाःशीतच्छाया मनोरमाः॥१७॥ काननानि सुगन्धीनि पुष्करिण्यश्च सर्वशः। हंसकारंडवोपताश्चकवाकोपशोभिताः॥१८॥

सभापर्व-तृतीयाध्याय

404

जलजानां च पद्मानां स्थलजानां च सर्वशः ।

मारुतो गन्धमादाय पाण्डवान् स्म निषेवते।।१९॥

अर्थ-उस सभा के चारों ओर वेड़े २ सुन्दर तथा शीतल छाया देने वाले फूलों के वृक्ष लगे हुए थे और चारों ओर वेड़े सुगन्धित बाग थे, जिनमें कि कमल, हंस तथा चकवा चकवी आदि से युक्त सरोवरों के होने से सभा अत्यन्त सुशोभित बनी हुई थी, वहां वायु, सवमकार के जल में उत्पन्न होने वाले कमलों तथा स्थल में फूलने वाले फूलों की उत्तम सुगन्ध को लेकर बहता हुआ पाण्डवों की सेवा करने लगा ॥

वैशम्पायन उवाच

ईहशीं तां सभां कृत्वा मासैः परिचतुर्दशैः। निष्ठितां धर्मराजाय मयो राजन् न्यवेदयत्।।२०॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हेराजा जनमेजय! मयदानव ने उस सभा को १४ मास में बनाकर युधिष्ठिर के प्रति निवेदन करिदया॥

इति दितीयोऽध्यायः समाप्तः

अथ तृतीयोऽध्यायः प्रारम्यते

सङ्गति—अब महाराज युधिष्ठिर का सभा में प्रवेश करना और सबदेशों के राजा तथा ऋषिमुनियों का वहां आना कथन करते हैं:—
वैद्याम्पायन खवाच

ततः प्रवेशनं तस्यां चक्रे राजा युधिष्ठिरः । अयुतं भोजयित्वा तु ब्राह्मणानां नराधिपः ॥१॥

महाभारत

५०६

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उस सभा के वन-जाने पर,युधिष्ठिर ने उसमें प्रवेश करने के लिये दशसहस्र ब्राह्मणीं को भोजन कराया, और :—

ददौ तेभ्यः सहस्राणि गवां प्रत्येकशः पुनः । अहतेश्वेव वासोभिर्मात्येरुचावचरिष ॥ २ ॥ तर्पयामास विपेन्द्रान्नानादिगभ्यः समागतान् । पुण्याहघोषस्तत्रासाद्दिवम्पृगिव भारत ॥३॥ वादित्रोवीवियदिवयर्गन्धेरुचावचेरिष । पुजियत्वा कुरुश्रेष्ठो दैवतानि निवश्य च ॥४॥

अर्थ-हज़ारो गोयें दान की तथा मत्येक ब्राह्मण को नवीन वस्त्र तथा भांति २ की मालायें दीं, इसमकार नाना दिशाओं से आये हुए ब्राह्मणों को राजा ने भलेनकार तृप्त किया और उन ब्राह्मणों ने बड़े उबस्तर से नेदमन्त्रों की ध्वीन द्वारा राजा को आशीर्वाद दिया, तत्पश्चाद युधिष्ठिर ने नाना मकार के बाजे वजवाकर तथा उत्तरीत्तम सुगन्तिओं से सत्कार करके देवता=दिन्यगुणसम्पन्न ब्राह्मणों को वहां बैठाया पुनः आप सभा में विराजमान हुआ ॥

सभायामृषयस्तस्यां पाण्डवैःसह आसते । आसांचकुर्नरेन्द्राश्च नाना देशसमागताः ॥५॥

अर्थ-तदनन्तर अनेकदेशों से आये हुए ऋषि तथा राजा लोग उस सभा में महाराजा युधिष्ठिर के समीप स्थित हुए, जिन के नाम यह हैं:—

सं ० - अब मथम ऋषियों के नाम कथन करते हैं:-

असितो देवलः सत्यः सर्पिर्मालीमहाशिराः । अर्वावसः स्रमित्रश्च मैत्रेयः शुनको बलिः ॥६॥ वकोदल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनः शुकः । सुमंतुर्जेमिनिः पैलो न्यासशिष्यास्तथा वयम्॥७॥ तित्तिरिर्याज्ञवल्भ्यश्च सस्तो लोमहर्षणः । अप्सहोम्यश्च धोम्यस्च अणीमाण्डन्यकोशिको ॥८॥ दामोष्णीपस्त्रैवलिस्च पर्णादोघटजानुकः । मौजायनो वासुभक्षः पाराशर्यस्च सारिकः ॥९॥

अर्थ-असित, देवल, सत्य, सार्प, माली, महाशिरा, अर्वा-वसु, सुमित्र, मैत्रेय, शुनक, बलि, वक, दालभ्य, स्यूलशिरा,कृष्ण-द्वैपायन = न्यासजी, शुक्त, सुमंतु, जैमिनि, पैल और हम अर्थात वैशम्पायन यह सब न्यासजी के शिष्य, तित्तिरि, याज्ञवल्क्य, अपने पुत्र सहित लोमहर्षण, अप्सुहोम्य, धोम्य, अणीमांडन्य, कौशिक, दामोष्णीष, त्रैवलि, पर्णाद, घटजानुक, मौजायन, वायुभक्ष, पाराशर्य, सारिक, और:—

बिलवाकः सिनीवाकः सप्तपालः कृतश्रमः । जातूकर्णः शिखावांश्च आलंबः पारिजातकः॥१०॥ पर्वतश्च महाभागो मार्केडेयो महामुनिः । पवित्रपाणिः सावणों भालुकिर्गालवस्तथा ॥११॥ जंघाबन्धश्च रैभ्यश्च कोपवेगस्तथा भृग्रः । हरिबश्चश्च कोंडिन्यो बश्चमाली सनातनः ॥१२॥

महोभारत

काक्षीवानीशिजश्रेव नाचिकतोऽथ गौतमः।
पैरयो वराहः शुनकः शांडिल्यश्र महातपाः॥१३॥
अर्थ-बल्लिबाक, सिनीबाक, सप्तपाल, कृतश्रम, जातकर्ण,
शिक्षावाम, आलंब, पारिजातक, पर्वत, महाभाग, महामुनि मार्कदेय, पिबत्रपाणि, सावर्ण, भालुकि, गालब, जधाबन्धु, रैभ्य,
कोपनेग, भृगु, हरिबश्चु, कौंडिन्य, सनातन बश्चमाली, काक्षीवान,
औशिज, नाचिकेत, गौतम, पैंग्य, बराह, शुनक, महातपस्वी
शांडिल्य, और:—

क्रमकुरोवेणुजंघोऽथ कालापः कठ एव च । मुनयो धर्मविद्धांसो धृतात्मानो जितेन्द्रियाः॥१४॥ एते चान्ये च बहवो वेदवेदाङ्गपारगाः । उपासते महात्मानं सभायाम्यविसत्तमाः ॥१५॥ कथयन्तः कथाः पुण्या धर्मज्ञाः शुचयोमलाः । तथैव क्षत्रियश्रेष्ठा धर्मराजमुपासते ॥१६॥

अर्थ-कुनकुर, वेणुजंघ, कालाप तथा कठ और इनके अति-रिक्त अन्य बहुतसे धार्मिक विद्वान संयमी जितेन्द्रिय वेदवेदाङ्गों के ज्ञानने बाले श्रेष्ठ ऋषि मुनि महात्मा युधिष्ठिर के समीप बैठे,जो कि पवित्र, धार्मिक तथा पुण्य कथाओं के कहने वाले थे, इसी मकार अनेक श्रेष्ठ क्षात्रिय भी धर्मराज युधिष्ठिर की सेवा में उपस्थित थे, जिनके नाम यह हैं:—

श्रीमान्महात्मा धर्मात्मा मुंजकेतुर्विवर्द्धनः । संग्रामनिषुभुस्वस्य उप्रसेनस्य वीर्यवान् ॥१७॥

सभापर्व-तृतीयाध्याय

409

कक्षसेनः क्षितिपतिः क्षेमकश्चापराजितः । कंबोजराजः कमठः कंपनश्च महाबलः ॥१८॥ सततं कम्पयामास यवनानेक एव यः । बलपौरुषसम्पन्नान कृतास्त्रानमितौजसः ॥१९॥

अर्थ-श्रीमान महात्मा धर्मात्मा मुंजकेतु, विवर्द्धन, संब्रामिनत दुर्मुख, वीर्यवान उग्रसेन, कक्षसेन, क्षितिपाति, किसी के युद्ध में पराजित न होने वाला क्षेमक, कंबोजराज, कमर, तथा महाबल-वान कंपन, जिसने कि वलपौरुष सम्पन्न और अल्ल-शल्ल वेत्ता अनेक यवनों को युद्ध में कंपा दिया था, और:—

जटासुरो मद्रकानां च राजा छंतिः पुलिं-दश्च किरातराजः। तथाङ्गचाङ्गौ सह पुंड़-केण पांडचोड्राजौ च सहांष्रकेण ॥२०॥ अंगो वंगः समित्रश्च शैन्यश्चामित्रकर्शनः। किरातराजः समना यवनाधिपतिस्तथा॥२१॥ चाण्ररो देवरातश्च भोजो भीमरथश्च यः। श्वतासुधश्च कालिंगो जयसेनश्च मागधः॥२२॥

अर्थ-मद्रकदेशों का राजा जटाम्चर, राजा कुंति, किरातों का राजा पुलिंद, अंग तथा वंग देशों के राजा, मुंडू, पाण्डच, जड़-राज, राजा अंध्रक, अंग, वंग, मुनित्र, शञ्चनाशक शैब्य, किरातों का राजा मुमना, यवनों का राजा, चाणूर, देवरात, भोज, भिमस्थ, श्रुतायुध, राजा कालिंग, तथा मगध देश का राजा जयसेन, और:—

सुकर्मा चेकितानश्च पुरुश्चामित्रकर्शनः।

केतुमान्वसुदानश्च वैदेहोऽथ कृतक्षणः॥२३॥
सुधर्मा चानिरुद्धश्चश्चतायुश्च महाबलः।
अनूपराजो दुर्धषः कमजिच सुदर्शनः॥२४॥
शिशुपालः सहस्रतः करूपाधिपतिस्तथा।
वृष्णीनां चैव दुर्धषीः क्रमारा देवरूपिणः॥२५॥
अर्थ-सुकर्मा, चेकितान,शञ्चनाशक पुरु, केतुमान, वसुदान, वैदेह, कृतक्षण, सुधर्मा, अनिरुद्ध, महावली श्रुतायु, अनृपराज, दुर्धष, कमजित, सुदर्शन, पुत्रसमेत शिशुपाल,करूपराज तथा वृष्णि=यदु कुलके दुर्धष=कितनता से जीते जाने योग्य योद्धा,और दिव्यद्धप-सम्पन्न कुमार भी थे, जिनके नाम यह हैं:—

आहुको विष्धुश्चैव गदः सारण एव च ।
अकूरः कृतवर्मा च सत्यकश्च शिनः सुतः ॥२६॥
भीष्मकोथाकृतिरुचैव द्युमत्सेनरुच वीर्यवान् ।
केकयारुच महेष्वासा यज्ञसेनरुच सौमिकिः ॥२०॥
केतुमान्वसुमांरुचैव कृतास्त्रश्च महाबलः ।
एते चान्ये च बहवः क्षत्रिया मुख्यसंमताः॥२८॥
अर्थ-आहुक, विष्यु, गद, सारण, अकूर, कृतवर्मा और शिनि
का पुत्र सत्यक, तथा भीष्मक, आकृति, वीर द्युमत्सेन, महाबलवात्
केकयदेशके राजा, सोमकवंशी यज्ञसेन, केतुमान, तथा शस्त्रविद्या
में निपुणमहाबली वसुमान इत्यादि अनेक राजा वहां उपस्थित थे
जिन में से मुख्य २ राजाओं के यह नाम दिये गये हैं, औरः—

सभापर्व-तृतीयाध्याय

683

उपासते सभायां सम कुंतीपुत्रं युधिष्ठिसम् । अर्जुनं ये च संश्रित्य राजपुत्रा महावलाः ॥२९॥ अशिक्षंत धनुर्वेदं रौरवाजिनवाससः । तत्रेव शिक्षिता राजन् कुमारा वृष्णिनन्दनाः॥३०॥ रौक्मिणेयश्च सांवश्च युपुधानश्च सात्यिकः । सुधर्मा चानिरुद्धश्च शैव्यश्च नरपुंगवः ॥३१॥ एते चान्ये च वहवो राजानः पृथिवीपते । धनंजयसला चात्र नित्यमास्ते सम तुंबुरुः ॥३२॥

अर्थ-कुन्तीपुत्र युधिष्टिर की सभा में ऐसे कई वलवान राजपुत्र उपस्थित थे जिन्होंने अर्जुन के समीप रहकर मृगचर्म धारण किये हुए धनुर्वेद सीखा था, हे राजन ! वहीं पर बृष्णि-वंशी राजकुबारों ने शिक्षा पाई थी जिनके नाम यह हैं—रुक्मिणी का पुत्र मह्मुन्न, सांव, युपुधान, सात्यिक, सुधर्मा, आनिरुद्ध, तथा श्रेष्ठ पुरुष शैष्य आदि अनेक अन्य बहुतसे राजालोग, जो अर्जुन के मित्र थे और तुंबुरु नामक गन्धर्व जो नित्य अर्जुन के समीप रहता था,यह सबभी उस महासभा में अर्जुनके समीप उपस्थित थे॥

उपासते महात्मानमासीनं सप्तविंशतिः । गीतवादित्रकृशलाः साम्यतालविशारदाः ॥३३॥ प्रमाणेऽथ लयेस्थाने किन्नराः कृतनिश्रमाः। संचोदितास्तुंबुरुणा गन्धर्वसहितास्तदा । गायन्ति दिव्यतानस्ते यथान्यायं मनस्विनः॥३४॥ 493

महाभारत

अर्थ-उस सभा में सत्ताईस गन्धर्व भी थे, जो गाने बजाने में कुशल तथा तालस्वर मिलाने और विराम तथा लय में बड़े निपुण थे, उन सुयोग्य किन्नर तथा गन्धर्वों ने "तुंबुरु" की मेरणा द्वारा विधिपूर्वक मधुर आलाप से बड़ा मनोहर गान किया ॥

इति तृतीयोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुर्थोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं ० – अब उक्त सभा में नारदजी का आना और युधिष्ठिर के उपदेश करना कथन करते हैं : –

वैशम्पायन उवाच

अथ तत्रोपविष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु । महत्सु चोपविष्टेषु गंधर्वेषु च भारत ॥१॥ वेदोपनिषदां वेत्ता ऋषिः सुरगणार्चितः । इतिहासपुराणज्ञः पुराकल्पविशेषवित् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जब महाराज युधिष्ठिर आदि पाण्डव लोग तथा अन्य बड़े २ राजा गन्धर्वी साहित उस महासभा में विराजमान थे तब वहां नारद जी आये, जो चार वेद तथा दश उपनिषदों के वेत्ता, ऋषि, तथा देवताओं से पूजित इतिहास—पुराणों के ज्ञाता और विशेषतः पुराकल्प=अर्थवाद के जानने वाले थे॥

न्यायविद्धर्मतत्त्वज्ञः षडंगविदनुत्तमः । ऐक्यसंयोगनानात्व समवायविशारदः ॥३॥

सभापर्व-चतुर्थाध्याय

493

अर्थ-नारदजी न्यायशास्त्र के ज्ञाता, धर्म के तत्व को जानने वाले, वेदों के छः अंग-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष के जानने वाले, ऐक्य=अद्वैतवाद, संयोग सम्बन्ध, नानात्व=भेद और समवाय सम्बन्ध के लक्षणों को जानने वाले थे।।

वक्ता प्रगल्भो मेधावी स्मृतिमान्नयवित्कविः । परापरिवभागज्ञः प्रमाणकृतिनश्चयः ॥४॥ पंचावयवयुक्तस्य वाक्यस्य ग्रणदोषवित् । उत्तरोत्तरवक्ता च वदतोऽपि वृहम्पतेः ॥४॥ धर्मकामार्थमोक्षेषु यथावत्कृतिनश्चयः ।

तथा भुवनकोशस्य सर्वस्यास्य महामितः ॥६॥
अर्थ-बोलने में चतुर, बुद्धिमान, स्मृतिमान, नीति
के जानने वाले, पण्डित तथा पर=ज्ञानकाण्ड, अपर=कर्मकाण्ड
को प्रमाणसिहत निश्चय करने वाले, पंचावयव=प्रतिज्ञा, हेतु,
उदाहरण, उपनय तथा निगमन, इन पांचों से युक्त प्रत्येक विषय
के गुणदोष को जानने वाले, प्रश्लोत्तर की रीति में वृहस्पित
के कथन का भी उत्तर देने वाले,धर्म, अर्थ,काम,मोक्ष का जिन्होंने
यथावद निश्चय किया है तथा इस सम्पूर्ण संसार के तत्व को
जानने वाले, आत्मज्ञ, और :-

प्रत्यक्षदंशीं लोकस्य तिर्यग्रूर्ध्वमधस्तथा । सांख्ययोगिवभागज्ञो निर्विवित्सुः सुरासुरान् ॥७॥ संधिविष्रहतत्त्वज्ञस्त्वन्तमानविभागवित् । षाद्रगुण्यविधियुक्तश्च सर्वशास्त्रविशारदः ॥८॥ 498

महाभारत

अर्थ-वह तिर्यक् = मध्यलोक, ऊर्ध्व = ऊर्ध्वलोक और अधः = अधोलोक इनतीन प्रकार के लोकों की लोकगाति को प्रत्यक्षवत देखने वाले, सांख्यशास्त्र तथा योगशास्त्र के विषय को पृथक् २ करके जानने वाले, देवता और असुरों का भेद जानने वाले, सान्ध = सुलह और विग्रह = युद्ध के तत्व को जानने वाले, राजा के छः गुणों की विग्रह के जाता, अनुमान के जानने वाले तथा सब शास्त्रों के पाण्डत थे, और :-

युद्धगान्धर्वसेवी च सर्वत्राप्रतिघस्तथा । एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्युक्तो गुणगणेर्मुनिः॥९॥ लोकाननुचरन्सर्वानागमक्तां सभां नृप । नारदः सुमहातेजा ऋषिभिः सहितस्तदा ॥१०॥ पारिजातेन राजेन्द्र पर्वतेन च धीमता । सुमुखेन च सौम्येन देवार्षिरमितद्युतिः ॥११॥ सभास्थान्पाण्डवान्द्रष्टुं प्रीयमाणो मनोजवः । जयाशीर्भिस्तु तं विष्रो धर्मराजानमार्चयत् ॥१२॥

अर्थ-युद्ध तथा गान्धविविद्या में निपुण और सर्वत्र विना रोक टोक जाने आने वाले, इत्यादि गुणपूर्ण तथा अन्य अनेक गुणसम्पन्न मुनि महातेजस्वी नारद, बुद्धिमान पारिजात, पर्वत, सुमुख और सौम्य ऋषियों सहित देश देशान्तरों में भ्रमण करते हुए, महाराज युधिष्ठिर की सभा में पाण्डवों को देखने की इच्छा से आये और उन्होंने युधिष्ठिर को प्रीतिपूर्वक "जय" कहकर आशीर्वाद दिया ॥

सभापर्व-चतुर्थाध्याय

494

तमागतमृषि दृष्वा नारदं सर्वधर्मवित् ।
सहसा पाण्डवश्रेष्ठः प्रत्युत्थायानुजैः सह ॥१३॥
अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा ।
तदर्हमासनं तस्मै संप्रदाय यथाविधि ॥१४॥
गां चैव मधुपर्क च संप्रदायार्घ्यमेव च ।
अर्चयामास रत्नेश्च सर्वकामेश्च धर्मवित् ॥१५॥
नुतोष च यथावच पूजां प्राप्य युधिष्ठिरात् ।
धर्मकामार्थसंयुक्तं पप्रच्छेदं युधिष्ठिरम् ॥१६॥

अर्थ-सबधमों के ज्ञाता युधिष्ठिर, नारद को आया हुआ देखकर अपने सब भाइयों सहित सहसा उठकर खड़ा होगये, और विनययुक्त प्रीति से दण्दवत करके उनको विधिपूर्वक उत्तम आसन पर विठा कर गौ, मधुपर्क, अर्घ्य, रत्न और अन्य सम्पूर्ण इच्छित पदार्थों से उनका विधिवत सत्कार किया, तब नारद जी पाण्डवों से यथोचित सत्कार पाकर संतुष्ट हुए और धर्म, अर्थ तथा काम से संवन्ध रखने वालीं वातें युधिष्ठिर से इसमकार पूछने लगे, कि:—

कचिदर्थाश्च कल्पन्ते धर्मे च रमते मनः ।
सुलानि चानुभूयन्ते मनश्च न विहन्यते ॥१७॥
कचिदाचरित पूर्वैर्नरदेविपतामहैः ।
वर्त्तसे वृत्तिमश्चद्रां धमार्थसिहतां त्रिषु ॥१८॥
कचिदर्थं च धर्म च कामं च जयतांवर ।
विभज्य काले कालज्ञः सदा वरद सेवसे ॥१९॥

498

महाभारत

अर्थ-आपके सब अर्थ=प्रयोजन सिद्ध होते हैं ? मन प्रसन्नतासे धर्म करने में लगता है वा नहीं ? आप छुखों को भोगते हैं वा
नहीं ? हे राजन !परमात्मा में ध्यान लगाते समय मन इधर उधर तो
नहीं जाता ? अपने पूर्वजपुरुषाओं के धर्म, अर्थ, काम से युक्त
उत्तम आचरणों में आपकी वृत्ति लगती है वा उससे निवृत्त हो
गये हो ? हे जीतने वालों में श्रेष्ठ ! आपने धर्म, अर्थ तथा काम
के लिये कालविभाग किया हुआ है वा नहीं ? और सदा उसी
के अनुसार सेवन किया करते हो वा नहीं ? ॥

किचदाजरुणेःषड्भिः सप्तोपायांस्तथानघ । बलावलं तथा सम्यक् चतुर्दश परीक्षसे ॥२०॥ किचदात्मानमन्वीक्ष्य परांश्च जयतांवर । तथा संधाय कर्माणि अष्टौ भारत सेवसे ॥२१॥

अर्थ-हे अनघ=निष्पाप भारतीय राजन! राजाओं के षद=छः
गुण=(१) द्त तथा मिन्त्रयों को उपदेश करना (२) शत्रुओं को
दबाने में उत्कर्ष दिखाना(३)तर्क में कुशल होना(४)स्मृति (५)भूत,
भविष्यत को बुद्धिबल से जानना (६) नीति में कुशल होना, सप्तउपाय=(१)साम(२)दान(३)दण्ड(४)भेद (५)मन्त्र (६) औषध (७)
अपनेतथा शत्रु केवल अबल का विवेक,चौदह दोष = (१)नास्तिकता
(२)असावधानता(३)दीर्घसूत्रता = देरी से कार्य करना(४) इन्द्रियों
के आधीन रहना(५)किसी गृढ़ प्रयोजन को अकेले चिंतन करना
(६) विपरीत अर्थ देखने वालों के साथ विचार करना (७) क्रोध
(८) झानियों का दर्शन न करना (९) निश्चित किये हुए कार्य को
आरम्भ न करना (१०) अपने विचार को सब से कहदेना (११)
मंगल कार्यों को न करना (१२) सब शत्रुओं पर एकसाथ चढ़ाई

करना (१३) झूंटबोलना और (१४) आलस्य, इन सब गुण और दोषों की तौ आप परीक्षा करते रहते हैं ? और हे राजन ! दूसरे चौदह को भी देखते हो वा नहीं ? अर्थाद (१) घोड़े (२) हाथी(३)क़िला(४)योद्धा(५)देश(६)कोष=ख़ज़ाना (७) अधिकारी (८)शञ्च(९)शास्त(१०)व्यवहार (१९)दृत(१२)महल (१३)आय = आमदनी,व्यय = ख़र्च और(१४)रथादि राजकीय सामानकी गणना करते होवा नहीं ? तथा हे भारत ! अपना और अपने शञ्च के बलावल का निरीक्षण करके सावधानी के साथ इन आठ कर्मों का सेवन करते हो वा नहीं ? (१)कृषि = खेती का प्रवन्ध(२)सड़कें बनवाना (३) किले बनाना (४) पुल बनवाना (५) हाथियों को चारे के लिये ग्राम २ वंधवाना (६) सोने चांदी की खानों पर कर = महसूल वांधना (७) उजड़े हुए अथवा शून्य देशों को वसाना और (८) व्योपार का प्रवन्ध करना ॥

कचित्रकृतयः सप्त न लुप्ता भरतर्षभ । आद्यास्तथा व्यसनिनः स्वनुरक्ताश्च सर्वशः॥२२॥

अर्थ-हे राजन ! सप्त प्रकृति = (१)सेनापाति (२) अमात्य = मन्त्री (३) सुहृद = मित्र (४) कोष = ख़ज़ाना (५)राज्य (६)दुर्ग = किला और (७) सेना यह नष्ट तो नहीं होगये ? और धनिक तथा निर्धन लोग आप में पूर्णतया भक्ति तो रखते हैं ? ॥

किन्न कृतकैर्दूतैयें चाप्यपिरशंकिताः । त्वत्तो वा तव चामात्यैभिद्यते मंत्रितं तथा॥२३॥ मित्रोदासीनशत्रूणां किन्नद्रित्स चिकीर्षितम् । किन्तित्संधिं यथाकालं विग्रहं चोपसेवसे किन्नद्रवृत्तिमुदासीने मध्यमे चानुमन्यसे ॥२४॥ 496

महाभारत

अर्थ-आपके गृहमन्त्र = सलाह को तुम्हारे विश्वासी मनुष्य, वनावटी दृत, तुम स्वयं तथा मन्त्रीलोग मकाश तो नहीं करदेते ? और आप अपने मित्र, उदासीन तथा शत्रु मनुष्यों के संकल्पों को,काल के अनुसार सन्धि विग्रह को जानते हो वा नहीं ? जो न आपके मित्र नशत्रु, किन्तु मध्यमहैं अर्थात् आप से और आपके शत्रु दोनों से मिलेहुएहैं, उनके कर्तव्यकर्मको भी जांचते रहते हो वा नहीं ॥

कुलीनाश्चानुरक्ताश्च कृतास्ते वीर पंन्त्रिणः । विजयो मन्त्र मुलो हि राज्ञो भवति भारत ॥२५॥ कचित्संवृतमंत्रैस्ते अमात्यैः शास्त्रकोविदैः । राष्ट्रं सुरक्षितं तात शत्रुभिनं विलुप्यते ॥२६॥

अर्थ-हे भारत ! आपने कुलीन, प्रीतिमान, बुद्धिमान तथा वृद्ध पुरुष, अपने मन्त्री नियत किये हैं वा नहीं ? क्योंकि राजा की विजय का मूल "मन्त्र" ही गिना जाता है, हे तात ! आपके राज्य में ऐसे मन्त्री हैं जो अपना भेद किसी से न कहें और शास्त्र के जानने वाले हों ? तथा ऐसे मन्त्रिओं से आपका राज्य तो सुरक्षित है, शञ्चलोग तो नष्ट नहीं करते ?॥

किश्विद्रावशं नैषि किश्वित्काले विबुध्यसे । किश्वित्वापररात्रेषु त्रिंतयस्पर्थमर्थवित् ॥२७॥ किश्वित्मंत्रयसे नैकः किश्वित्र बहुभिः सह । किश्वित्ते मंत्रितो मंत्रो न राष्ट्रं परिधावित ॥२८॥

अर्थ-आप समय पर जाग पड़ते हैं ? निद्रा के वशीभृत तो नहीं रहते हैं ? हे अर्थ के जानने वाले ! अपने अर्थ का चिन्तन ब्राह्ममुहुर्त्त में करते हो वा नहीं ? कहीं सर्वथा अकेले वा वहुतों में वैठकर तो मन्त्रविचार नहीं करते जो सब राज्य में फैलजाय ॥ किच्चदर्थान्विनिश्चित्य लघुमूलान्महोदयान् । क्षिप्रमारभसे कर्त्तुं न विष्ठयसि तादृशान् । किच्चन्न सर्वे कर्मान्ताः परोक्षास्ते विश्वंकिताः॥२९॥

अर्थ-जिन कार्यों के करने में परिश्रम थोड़ा और फल अधिक हो, ऐसे कार्यों के शीघ्र करने में विघ्र तो नहीं होता ? आपके राजकर्मचारी अविश्वासी और ऐसे तो नहीं हैं जिनके स्वभाव को आप न जानते हों ?

किच्चिद्राजन् कृतान्येव कृतप्रायाणि वा पुनः । विदुरस्ते वीरकर्माणि नानवाप्तानि कानिचित् ॥३०॥ किच्चिन्नेको बहूनर्थान्सर्वशः साम्परायिकान् । अनुशास्ति यथाकामं कामात्मा शासनातिगः ॥३१॥ किच्चत्पुरुषकारेण पुरुषः कर्म शोभयन् । स्याते मानमधिकं भयो वा भक्तवेतनम् ॥३२॥

लभते मानमधिकं भूयो वा भक्तवेतनम् ॥३२॥
अर्थ-हे वीर राजन ! क्या आप ऐसा करते हैं ! कि आप
के कार्यों को पूर्णतया अथवा प्रायः समाप्त होजाने पर ही मनुष्य
जान सकें, किंतु आरम्भ समय में किसी कार्य को कोई न जान
सकें, कहीं आप ऐसा तौ नहीं करते कि शास्त्र की आज्ञा उछङ्घन
करके अपनी इच्छानुसार मनमानी आज्ञा योद्धाओं को देदेते हों !
आपके राज्य में कोई मनुष्य अपने पुरुपार्थ से कोई अच्छा काम
करे तो वेतन से पृथक उसका आदरपूर्वक धन से सन्मान करते
हो वा नहीं ! और :-

कचिद्रिद्याविनीतांश्च नरान् ज्ञानिवशारदान्।
यथार्ह गुणतश्चैव दानेनाभ्युपपद्यसे ॥३३॥
अर्थ-विद्या विनीत तथा ज्ञानसम्पन्न पुरुषों को, उनके
गुणानुसार, यथायोग्य पारितोषिकादि दान देते हो वा नहीं?॥
कच्चिद्दारान्मनुष्याणां तवार्थे मृत्युमीयुषाम् ।
व्यसनं चाभ्युपेतानां विभिष् भरतर्षभ ॥३४॥

अर्थ-हे भरतकुल श्रेष्ठ ! जो मनुष्य तुम्हारे लिये अपने प्राण देचुके हैं, अथवा व्यसनों के उपस्थित होने से जो दुःख पारहें हैं, उनके कुटुम्ब का पालन पोषण करते हो वा नहीं ?॥

किन्द्रियादुपगतं क्षीणं वा रिप्रमागतम् । युद्धे वा विजितं पार्थ पुत्रवत्परिरक्षासि ॥३५॥

अर्थ-हे राजन ! राष्ठ के भय से वा धनहीन होने से अथवा युद्ध में हार जाने के कारण जो राष्ठ आपकी रारण आता है, उसका आप पुत्र के समान पालन करते हैं वा नहीं ? ॥

किचदायस्य चार्छेन चतुर्भागेन वा पुनः । पादभागेस्त्रिभिर्वापि व्ययः संशुद्धचते तव ॥३६॥ किच्चित्र्ज्ञातीन्यरून्वृद्धान्वणिजःशिल्पिनःश्रितान्। अभीक्ष्णमनुगृह्णासि धनधान्येन दुर्गतान् ॥३७॥

अर्थ-आपका व्यय, आमदनी से अर्धभाग, चौथाईभाग, अथवा तीसरे भाग में भलेपकार पूर्ण होजाता है वा नहीं? कहीं सम्पूर्ण लाभ को तो व्यय नहीं करदेते ? और स्वज्ञाति = बन्धु-लोग, गुरु, वृद्ध,व्योपारी, शिल्पविद्याजानने वाले,अपने आश्रित,

तथा दरिद्र इनपर धनधान्य से अनुग्रह = दया तो रखते हो, अर्थाद इनको कोई कष्ट तो नहीं होने देते ? ॥

किन्वन्नायन्ययेयुक्ताः सर्वे गणकलेखकाः। अनुतिष्ठिन्त पूर्वाद्दणे नित्यमायं न्ययं तव ॥३८॥ किन्वदर्थेषु संशोदान् हितकामाननुप्रियान् । नापक्षिति कर्मभ्यः पूर्वमप्राप्यकिल्विषम् ॥३९॥

अर्थ-सम्पूर्ण आय व्यय का हिसाव रखने वाले गणक तथा लेखक अथात व्यय करने वाले और लिखने वाले, नित्य पूर्वाह्न में आय व्यय का हिसाव यथावत करते हैं वा नहीं ? और मौढान = धनकार्य में बुद्धिमान वृद्ध, प्यारे तथा आपके भले की इच्छा करने वाले, जिनका पहले कोई अपराध सिद्ध नहीं हो चुका हो, ऐसे निरपराध अधिकारियों को उनके अधिकार से च्युत तो नहीं करदेते ? ॥

किच्च्छारीरमावाधमौषधैर्नियमेन वा ।
मानसं वृद्धसेवाभिः सदा पार्थापकर्षासे ॥४०॥
किच्चेद्धेद्याश्चिकित्सायामष्टांगायां विशारदाः ।
सुहृदृश्चानुरक्ताश्च शरीरे ते हिताः सदा ॥४१॥
अर्थ-किसी शारीरिक रोग को औषध अथवा पथ्य से,
और मानसदुःख को सदा वृद्धों की सेवा करके उनके सदुपदेश से दूर करते हो वा नहीं ? आपके आष्टांग विकित्सा-शास

^{* (}१) निदान (२) पूर्विलिंग (३) रूप (४) उपशय (५) सम्प्राप्ति (६) औषध (७) गेंगी (८) परिचारक ॥

महाभारत

422

में प्रवीण वैद्य, सुहृद, आपसे प्रेम करने वाले, आपके बारीर से सदा हित करने वाले हैं वा नहीं ?॥

किन्त्सिवें उनुरक्तास्त्वां भूमिपालाः प्रधानतः । किन्त्राणांस्त्वद्यें पु संत्यजिन्त त्वया हृताः॥४२॥ किन्त्रते सर्वविद्यासु गुणतोऽर्चा प्रवर्त्तते । ब्राह्मणानां च साधूनां तव नैःश्रेयसी शुभा ॥४३॥

अर्थ-प्रधान राजालोगों की आप से प्रीति है वा नहीं ? और जो राजा तुम्हारे आधीन हैं वह तुम्हारे लिये अपने प्राण देने को तैयार हैं वा नहीं ? और आप विद्यातथा गुणसम्पन ब्राह्मण वा साधुओं का सत्कार करते हैं वा नहीं ? क्योंकि यह आपके लिये कल्याण का मार्ग हैं, अर्थात उनकी सेवा करके उनसे सदुपदेश ग्रहण करना परमात्मप्राप्ति का साधन है ॥

कि कि से पाला वेदाः कि चित्र से सफ्लं धनम् । कि कि कि सफला दाराः कि चित्र से सफलं श्रुतम्।। १४।। अर्थ-हे राजन ! आपके वेद्र, धन, स्त्री और पढ़े हुए शास्त्र तो सफल हैं ? ॥

युधिष्टिर उवाच

कथं वै सफला वेदाः कथं वै सफलं धनम्। कथं वै सफला दाराः कथं वै सफलं श्रुतम्।। १८५॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे महाराज ! वेद. धन, स्त्री और शास्त्र किस मकार सफल होते हैं ?॥

सभापर्व-चतुर्याध्याय

423

नारद उवाच

अमिहोत्रफला वेदाः दत्तभुक्तफलं धनम् । रतिपुत्रफला दाराः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ॥४६॥

अर्थ-नारद वोले कि हे राजन ! आग्नहोत्र से वेद सफल होते, अधिकारियों को दान देने तथा उचित व्यय करने से धन सफल होता, विषय सुख तथा पुत्रोत्पत्ति से स्त्री सफल होती और शील तथा सदाचारसम्पन्न होने से शास्त्र सफल होता है ॥

किचदंधांश्च मूकांश्च पंगून्व्यंगानवान्धवान्। पितेव पासि धर्मज्ञ तथा प्रवाजितानपि ॥४७॥

अर्थ-हे धर्मज्ञ ! अन्धे, गूंगे, लंगड़े, अंगहीन तथा अवान्धव = नाति से बाहर किये हुओं का वा अनाथलोगों का पालन, सदा ा के समान करते हो वा नहीं ? और:—

षडनर्था महाराज किन्चित्ते पृष्ठतः कृताः । निद्रालस्यं भयं क्रोधोऽमार्दवं दीर्घसूत्रता ॥४८॥

अर्थ- हे महाराज! निद्रा,आलस्य, भय, कोघ, कठोरता और दीर्घसूत्रता, यह छः दोप आपने छोड़े हैं वा नहीं ॥

समर्थोंसि महीं जेवुं भातरस्ते स्थिता वशे । राजसूर्यं ऋतुश्रेष्ठमाहरस्वेति भारत ॥४९॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! तुम सम्पूर्ण पृथ्वी को विजय करने में समर्थ हो और तुम्हारे भाई भी तुम्हारी आज्ञा में हैं, सो तुम "राजसूय" नामी श्रेष्ठ यज्ञ करो ॥ 428

महाभारत

वैशम्पायन उवाच

ततः कुरूणामृषभो महात्मा श्रुत्वा गिरो ब्राह्मणसत्तमस्य । प्रणम्य पादावभिवाद्य तुष्टो राजाब्रवीन्नारदं देवरूपम् ॥५०॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! कुरुवंशिओं में श्रेष्ठ महात्मा युधिष्ठिर,देवतुल्य उत्कृष्ट ब्राह्मणनारद के उक्त बचन सुनकर, दण्डवत करके पसन्नता के साथ नम्रतापूर्वक बोले कि:—

एवं करिष्यामि त्वया यथोक्तं प्रज्ञा हि मे भूय एवाभिवृद्धा । उक्त्वा तथा चैव चकार राजा लेभे महीं सागरमेखलां च ॥५१॥

अर्थ-जैसा आपने उपदेश किया है भें वैसा ही करूंगा, क्योंकि आपके उपदेश से मेरा ज्ञान और भी वढ़गया है, ऐ कहकर राजा युधिष्ठिर ने वैसा ही आचरण किया और समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी को विजय कर लिया ॥

नारद उवाच

एवं यो वर्त्तते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे ।

स विहत्येह सुसुखी राक्रस्यैति सलोकताम्।।५२।।

अर्थ-तत्पश्चात, फिर नारदजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! जो
राजा उक्त रीति से चारो वर्णों की रक्षा करता है वह इस संसार
में परमसुख भोगकर शक = इन्द्र = परमात्मा की सलोकता =
समीपता = मुक्ति को माप्त होता है ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचमोऽध्यायः प्रारम्यते

सं ० - अव महाराज युधिष्ठिर का राजसूययज्ञ करने का विचार कथन करते हैं:-

वैद्यम्पायन उवाच ऋषेस्तद्रचनं श्रुत्वा निशश्वास युधिष्ठिरः । चिन्तयन् राजसूयेष्टिं न लेभे शर्म भारत ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजा जनमेजय ! ऋषि नारद के उक्त बचन सुनकर महाराज युधिष्ठिर ऊंचा श्वास भरकर राज-सूय यज्ञ विषयक चिन्ता करने लगे, और हे भारत ! वह उस समय शान्ति को प्राप्त न थे॥

युधिष्ठिरस्ततः सर्वानर्वियत्वा सभासदः । प्रत्यर्चितश्च तैः सर्वैर्यज्ञायैव मनो दधे ॥२॥ स राजसूयं राजेन्द्र क्ररूणामृषभस्तदा । आहर्त्त प्रवणं चके मनः संचिन्त्य चासकृत् ॥३॥ भूयश्चाद्भुतवीय्योजा धर्ममेवान्जिन्तयन् । किं हितं सर्वलोकानां भवेदिति मनो द्धे ॥॥॥

अर्थ-तदनन्तर युधिष्ठिर ने अपने सभासद राजा आदिकों का सन्मान करके और उन सब से आपभी सत्कार पाकर बार २ विचार करके राजसूय यज्ञ करने का दृढ़ निश्चय किया, इसी अन्तर में, वह अद्भुत तेजस्वी कुरुओं का राजा धर्म करने की इच्छा से पुनः २ यह चिन्तन करने लगा कि इस अवसर में मुझे कोई ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे सब ठोकों का हित हो, अर्थात वह अपनी प्रजा का श्रम चिन्तन करने छगा ॥ अनुगृहणन् प्रजाः सर्वाः सर्वधर्मभृतांवरः । अविशेषेण सर्वेषां हितं चक्रे युधिष्ठिरः ॥५॥ सर्वेषां दीयतां देयं मुष्णन्कोपमदानुभौ । साध धर्मेति धर्मेति नान्यच्छ्रयेत भाषितम् ॥६॥

अर्थ-तब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ने अपनी सब प्रजा पर समानभाव से अनुग्रह करने के लिये सबके हित की यह बात सोची कि क्रोध और मद को त्याग कर, जो पदार्थ जिसके योग्य हो, वह सबको देना चाहिये, क्योंकि धर्म सब से श्रेष्ठ है, इससे उत्तम कोई पदार्थ नहीं, ऐसा विद्वान लोग कहते हैं॥

एवं गते ततस्तिस्मिन्पितरीवाश्वसन् जनाः । न तस्य विद्यते द्रेष्टा ततोस्याजातशत्रुता ॥७॥

अर्थ-युधिष्टिर के उक्त प्रकार विचारने तथा उसके अनुसार आचरण करने पर उसको सब प्रजा पिता के समान मानने लगी और उसका कोई शञ्च उत्पन्न न होने से उसका नाम "अजातशत्र" पड गया, क्योंकि :—

परिग्रहान्नरेन्द्रस्य भीमस्य परिपालनात् । शात्रुणां क्षपणाच्चैव बीभत्सोः सव्यसाचिनः ॥८॥ धीमतः सहदेवस्य धर्माणामनुशासनात् । वैनत्यात्सर्वतश्चैव नकुलस्य स्वभावतः । अविग्रहा वीतभयाः स्वकर्मनिरताः सदा ॥ ११ ॥ अर्थ-युधिष्टिर के कृपाल होने,भीमसेन के मजापालन करने, अर्जुन के शत्रुनाशक होने, बुद्धिमान सहदेव के धर्मपूर्वक शासन करने और नकुल के पूर्णतया नम्रस्वभाव होने से उनके सम्पूर्ण देश निवासी कलहराहित,निभर्य और धर्ममेंनिरन्तर रत होगये थे॥

निकामवर्षाः स्फीतारच आसन् जनपदास्तथा । वार्धेषी यज्ञसत्त्वानि गोरक्षं कर्षणं वाणिक् ॥१२॥ विदेशपात्सर्वमेवैतत्संजज्ञे राजकर्मणा । अनुकर्षं च निष्कर्षं व्याधिपावकमूर्छनम् ॥९३॥

अर्थ-उस वहे विस्तृत राज्य में वर्षा समय पर यथेष्ट्र से होने लगी, व्याज की उपजीविका, यज्ञ करने की सामर्थ्य, गोरक्षा,कृषी=खेती और व्योपार ने वही वृद्धि पाई, राज्य के प्रवन्ध से युक्त सब काम भलेपकार होने लगा, दिरहों से पिछले वर्ष का कर लेना तथा प्रजा पर कर बढ़ाना बन्द कर दिया गया और उससमय सब प्रजा रोग और अप्नि के भय से मुक्त होकर मुखपूर्वक रहने लगी।

सर्वमेव न तत्रासी द्धर्मनित्ये युधिष्ठिरं । दस्युभ्यो वंचकेभ्यश्च राज्ञः प्रतिपरस्परम् ॥१४॥ राजवल्लभतश्चेव नाश्रूयत मृषाकृतम् । प्रियं कर्तुमुपस्थातुं बलिकमं स्वकर्मजम्॥१५॥ अभिहर्त्तुं नृपाः षट्सु पृथक्जात्यैश्च नैगमैः । वर्ष्ये विषयस्तत्र धर्मनित्ये युधिष्ठिरे ॥१६॥ 426

महाभारत

अथ-युधिष्ठिर के इसमकार धर्मयुक्त होने पर चोर तथा टगों की पीड़ा और राजाओं का परस्पर असत्य व्यवहार तथा राजाओं के पिय मनुष्यों का अत्याचार कहीं सुनने में भी नहीं आता था, माण्डलिक राजालोग युधिष्टिर के समीप बैटने, प्रेमपूर्वक वर्ताव करने और उपार्जन की हुई अपनी आय में से वार्षिक करचुकाने तथा सन्धि, विग्रहादि छः गुणों के व्यवहार में और भिन्न २ प्रकार के व्योपारियों के साथ सम्बन्ध रखने से, एवं धर्मराज-युधिष्टिर के राज्य की वड़ी वृद्धि हुई ॥

यस्मित्रधिकृतः सम्राड्भाजमानो महायशाः । यत्र राजन् दशदिशः पितृतो मातृतस्तथा । अनुरक्ताः प्रजाआसन्नागोपालाद् द्विजातयः॥१७॥

अर्थ-हे राजन् ! राजा युधिष्टिर जिस २ देश का अधिकारी होता जाता था उस २ देश के लोगों की राजा में पिता माता से भी अधिक भक्ति होजाती थी, इसकारण गोपाल से लेकर ब्राह्मण पर्यन्त सभी प्रजा युधिष्टिर से अत्यन्त प्रीति मानने लंगी थी॥

समन्त्रिणः समानाय्य भ्रातृंश्च वदताम्बरः । राजस्यं शति तदा पुनः पुनरपृच्छत।।१८॥ ते पृच्छमानाः सहिता वचोऽध्यं मन्त्रिणस्तदा । युधिष्ठिरं महाप्राज्ञं यियश्चामिदमब्रुवन् ।।१९॥

अथ-राज्यप्रवन्ध के स्थिर होजाने पर एकसमय बोलने वालों में चतुर युधिष्टिर ने अपने सब मन्त्री और भ्राताओं को सभा में बुलाकर उन से "राजम्ययक्त" करने की सम्मित पूंछी तब

सभापर्व-पञ्चमाध्याय

438

मन्त्रि तथा भ्राताओं ने महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर के मित एकस्वर से अर्थसहित यह वचन वोछे कि :—

तस्य सम्राड्यणाईस्य भवतः कुरुनन्दन । राजसूयस्य समयं मन्यंते सुहृदस्तव ॥२०॥

अर्थ-हे कुरुनन्दन! आप को आप के सब सुहृद्छोग सम्राट् होने के योग्य जानकर यह अवसर "राजसूययज्ञ " करने के योग्य मानते हैं॥

तस्य यज्ञस्य समयः स्वाधीनः क्षत्रसम्पदा । साम्रा षडमयो यस्मिश्चीयंते शंसितव्रतः ॥२१॥ दवींहोमानुपादाय सर्वान्यः प्राप्नुते कतृन् । अभिषेकत्र यस्यान्ते सर्वजित्तेन चोच्यते ॥२२॥

अर्थ-उस यज्ञ करने का समय वह है, जब कि राजा, क्षित्र-योंकी सम्पूर्ण संपत्तियों पर स्वाधीन हो और हे राजन ! जिसमें व्रतधारी वेदज्ञ ब्राह्मण साम वेद से छः अग्नियों का स्थापन करते हैं, और जिसमें राजा प्रथम द्वी-होम करके पुनः अन्य सब यज्ञों को पूर्णतया करता हुआ, यज्ञ के अन्त में सब माण्डिक राजाओं को जीतने के अनन्तर, राज्याभिषेक अर्थाद विशेष मकार से स्नान करके राज्यतिलक को प्राप्त होता है, इसी कारण इस राजसूययज्ञ का दूसरा नाम "सर्वजिद" यज्ञभी है ॥

समर्थांसि महबाहो सर्वे ते वशगा वयम् । अचिरात्त्वं महाराज राजसूयमवाप्स्यसि ॥२३॥ अविचार्य महाराज राजसूये मनः कुरु । इत्येवं सहदः सर्वे पृथक् च सह चात्रुवन् ॥२४॥

अर्थ-हे महावाहो राजन ! आप यज्ञ करने में समर्थ और हम सब आपके आज्ञाकारी हैं, अतः आप थोड़े ही समय में यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे,तदनन्तर सब मित्रलोग तथा वन्धुवर्ग एक २ करके तथा साथ मिलकर एकस्वर से यह वचन बोले कि हे महाराज ! आप विना कुछ विचारे निःसन्देह "राजम्ययज्ञ" कीजिये क्योंकि आप सर्वथा समर्थ हैं॥

श्रुत्त्वा सुहृद्वचस्तच्च जानंश्चाप्यात्मनः क्षमम्।
सभातृभिः पुनर्धीमानृत्विगिभश्चमहात्मभिः।।२५॥

मन्त्रिभिश्चापि सहितो धर्मराजो खिधिष्ठरः। धीम्यद्वैपायनाद्यैश्च मन्त्रयामास मन्त्रवित् ॥२६॥

अर्थ-अपने आप को यज्ञ करने के समर्थ जानते हुए भी, मित्रजन तथा अन्य सबों की "राजसूययज्ञ" विषयक अपने अनुकूठ सम्मत्ति सुनकर,यज्ञ करने का निश्चित विचार करने के छिये अपने भ्राता, मन्त्री और ऋत्विजों सहित धौम्य तथा व्यास आदि ऋषि मुनियों को बुठाकर मन्त्र को भठीभांति जानने वाछे युधिष्ठिर ने इन के साथ सम्मति और मन्त्रणा = सठाह की ॥

युधिष्ठिरं उवाच

इयं या राजसूयस्य सम्राडहस्य सुक्रतोः । श्रद्दधानस्य वदतस्पृहा मे सा कथं भवेत् ॥२७॥ अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे महाराज! मेरी इच्छा सम्राद्

के योग्य "राजसूययज्ञ" करने की है, इस कारण आप लोगों से

सभापर्व-पञ्चमाध्याय

439

श्रद्धा के साथ पूछता हूं, कि मेरी यह इच्छा क्योंकर पूर्ण हो सकती है?॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तास्तु ते तेन राज्ञा राजीवलोचन । इदमूचुर्वचः काले धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥२८॥ अर्हस्त्वमिस धर्मज्ञ राजसूयं महाकतुम् । अथैवमुक्ते नृषितावृत्विग्भिक्षंषिभिस्तथा मन्त्रिणो भ्रातरश्चास्य तद्भचः प्रत्यप्रजयन् ॥२९॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे कमल समान नेत्रों वाले राजा जनमेजय! युधिष्ठिर के उक्त प्रकार कहने पर सब ऋत्विज् तथा ऋपिमुनि, धर्म्मराज युधिष्ठिर के पात समयानुसार यह वचन बोले कि हे धर्मज्ञ! आप इस महान "राजसूययज्ञ" करने के योग्य हैं, तदनन्तर ऋत्विजों तथा ऋषियों की इस सम्मात का सब मन्त्री तथा युद्धिष्ठिर के भाइयों ने सत्कारपूर्वक अनुमोदन किया॥

सं २ - अब यज्ञ की सम्माति के निश्चयार्थ युधिष्ठिर का कृष्ण को द्वारकापुरी से बुछवाना कथन करते हैं:-

स तु राजा महाप्राज्ञः पुनरेवात्मनात्मवान् । मुयो विमम्धे पार्थे लोकानां हितकाम्यया । सामर्थ्ययोगं सम्प्रेक्ष्य देशकाली व्ययागमी ॥३०॥ विम्ह्य सम्यक् च थिया कुर्वन् प्राज्ञो न सीद्ति । नहि यज्ञसमारम्भः केवलात्मविनिश्चयात् ॥३१॥ महाभारत

५३२

भवतीति समाज्ञाय यत्नतः कार्यमुद्धहन् । स निश्चयार्थं कार्यस्य कृष्णमेव जनार्दनम् । युरुवद्भुत्यस्वे पाहिणोददूतमञ्जसा ॥३२॥

अर्थ-वह महाबुद्धिमान पुरुषार्थी राजा युधिष्ठिर लोक का हित करने की इच्छा से फिर भी अपने आप अकेला बैठकर विचारने लगा कि अपनी सामर्थ्य, आय व्यय, देश और भूत भाव-प्यत काल को, जो राजा कार्यपारम्भ से पूर्व बुद्धिपूर्वक सम्यक्त विचार लेता और पश्चाद कार्य आरम्भ करता है, वह बुद्धिमान कभी दुः व नहीं पाता, इसलिये "अपनी ही सम्मात तथा यव से "राजम्यय " जैसे महान कार्य का पारम्भ करना ठीक नहीं" यह विचारकर यव के साथ कार्य का निर्वाह करने के लिये,तथा कार्य के सम्यक्त निश्चयार्थ,जनार्दन कृष्ण को सब प्राणिओं में बड़ा तथा श्रेष्ठ मानकर उनके बुलाने के निमित्त राजा युधिष्ठिर ने शीघ ही द्वारकापुरी की ओर दूत भेजा।

शीव्रगेन रथेनाशु स दूतः प्राप्य यादवान् । द्रारकावासिनं कृष्णं द्रारवत्त्यां समासदत् । दर्शनाकांक्षिणं पार्थं दर्शनाकांक्षयाच्युतः ॥३३॥ इन्द्रभेनेन सहित इन्द्रप्रस्थमगात्तदा । व्यतीत्य विविधान् देशांस्त्वरावान्क्षिप्रवाहनः । इन्द्रप्रस्थगतं पार्थमभ्यगच्छज्जनार्दनः ॥३४॥ अर्थ-वह इन्द्रभेन नामक द्रत शीव्रगामी स्थ पर चहकर

शीघ्र द्रारकापुरी में यादवों के सभीप पहुंचकरद्वारकावासी कृष्ण जी

के समीप पहुंच गया, और उन्हें राजा युधिष्ठिर का संदेशा सुनाया, उसको सुनते ही युधिष्ठिर को अपना दर्शनोत्सुक जानकर कृष्णजी दृत को साथ लिये हुए तुरन्त द्वारकापुरी से चंल दिये, और अनेक देशों को लांघते हुए शीघ्रगामी सवारियों द्वारा न्द्रप्रस्थ में धर्मराज युधिष्ठिर के समीप आपहुंचे ॥

स गृहे पितृवद्भात्रा धर्मराजेन पूजितः । भीमेन च ततोऽपश्यत्स्वसारं प्रीतिमान्पितुः । प्रीतः प्रीतेन सहदा रेमे स सहितस्तदा ॥३५॥ अर्जुनेन यमाभ्याञ्च ग्रुख्तपर्श्रपासितः । तं विश्रान्तं शुभे देशे क्षणिनं कल्पमच्युतम् । धर्मराजः समागम्याज्ञापयत्स्वप्रयोजनम् ॥३६॥

अर्थ-तव प्रथम धर्मराज युधिष्ठिर और वीर भीमसेन ने कृष्णजी का पीतिपूर्वक सम्मान किया, इसके पश्चाद कृष्णजी ने प्रेम के साथ अपनी बुआ कुन्ती के दर्शन किये, पुनः अर्जुन जो कि उनका प्यारा मित्र था, उसके साथ मिलकर आनन्द की बातें कीं, तदनन्तर नकुल तथा सहदेव ने गुरु के समान आदर सत्कार किया, तत्पश्चाद कुछकाल विश्राम करने के अनन्तर शुभस्थान में स्थित, अमोध = आनिष्फल सामर्थ्यवान कृष्णजी के समीप जाकर अवसर देख धर्मराज युधिष्ठिर अपना प्रयोजन इस् प्रकार जताने लगे, कि:—

युधिष्ठिर उवाच प्रार्थितो राजसूयो मे न चासौ केवलेप्सया। प्राप्यते येन तत्ते हि विदितं कृष्ण सर्वशः ॥३७॥ यस्मिन्सर्व सम्भवति यश्च सर्वत्र पूज्यते । यश्च सर्वेश्वरो राजा राजस्यं स विन्दति ॥३८॥ तं राजस्यं सहदः कार्य्यमाद्यः समेत्य मे । तत्र मे निश्चिततमं तव कृष्ण गिरा भवेत् ॥३९॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे कृष्ण ! मेरी "राजम्ययह "
करने की पूर्ण इच्छा है, परन्तु विना यह के केवल इच्छामात्र मे
वह पूर्ण नहीं हो सकता, सो उसके करने के लिये जो २,
आवश्यकतायें होती हैं उन मब को आप भलीभांति जानते हैं,
अर्थात "राजम्ययह" वहीं कर सकता है जो सम्पूर्ण सामर्थ्यवान,
सब राजाओं का स्वामी तथा सब देशों में पूजा जाता हो. मेरे
मुहृद्लोग और सब बन्धुवर्ग तो मुझे "राजम्ययह" करने योग्य
बताते हैं, परंतु हे कृष्ण ! मैं अपनी योग्यता तथा अयोग्ता के
विषय में आपका कथन सर्वोपिर निश्चित मानता हूं, इसलिये
मुझे निश्चयत्व होगा, जब कि आप अपनी जिह्वा से कहेंगे, क्योंकि:-

केचिद्धि सौहदादेव न दोषं पिरचक्षते ।
स्वार्थहेतोस्तथैवान्ये प्रियमेव वदन्त्युत ॥४०॥
प्रियमेव परीप्सन्ते केचिदात्मिन यद्धितम् ।
एवं प्रायाश्च दृश्यन्ते जनवादाः प्रयोजने ॥४१॥
त्वन्तु हेत्नतीत्यैतान्कासकोधौ व्युदस्य च ।
परमं यत्क्षमं लोके यथावद्धक्तुमईसि ॥४२॥

अर्थ-यह सब बन्युवर्ग तो, कोई सम्बन्ध, कोई स्वार्थ आर कोई अपने हितकारी प्रयोजन तथा कोई स्तेह के कारण से मेरी

सभापर्व-षष्टाध्याय

686

निर्वलता और दोष नहीं कहते, किंतु जैसा हम कहते हैं वैसी ही हमारे अनुकूल मियसम्मात देते हैं, परंतु आप तौ उक्त कारणों से निर्लिप और काम क्रोध को त्याग कर परम सामर्थ्य को माप्त हो, इसलिये जो बात श्रेष्ठ तथा करने योग्य हो उसे आप बताइये ॥

इति पश्चमोऽध्यायः समाप्तः

अथ षष्ठोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं०-अव कृष्ण की युधिष्ठिर के पाति "राजसूययज्ञ" करने के लिये पथम राजा जरासन्ध के मारने की सम्मति देना कथन करते हैं:-

कृष्ण उवाच

सर्वेर्गणेर्महाराज राजस्यं त्वमहिस । जानतस्त्वेव ते सर्वं किश्चिद्रक्ष्यामि भारत ॥१॥ जामदग्न्येन रामेण क्षत्रं यदवशोषितम् । तस्मादवरजं लोके यदिदं क्षत्रसंज्ञितम् ॥२॥

कृतोऽयं कुलसंकल्पः क्षत्रियैर्वसुधाधिप । निदेशवाग्भिस्तत्तेह विदितं भरतर्षभ ॥३॥

अर्थ-युधिष्ठिर के उक्त प्रयोजन को सुनकर श्रीकृष्ण बोले कि हे भरतकुलश्रेष्ठ महाराज ! तुम सम्पूर्ण गुणों से युक्त सर्वथा "राजसूययज्ञ" करने योग्य हो और सब बातों को भी भले प्रकार जानते हो, परन्तु उस में मैं कुछ विशेष तुम्हारे प्रति कहता हूं, वह यह कि जिससमय जमदिश के पुत्र परश्रराम ने क्षत्रियों का वीज नाश किया था, उस समय जो क्षत्रिय इथर उथर जान बचाकर भाग गये थे, उन से यह क्षत्रियवंश फिरमें हुआ है, और हे राजन ! जब क्षत्रियों का कुल वृद्धि को प्राप्त हुआ तब सबने मिलकर यह संकल्प किया था, जो कि तुमने भी पृत्र पुरुपाओं से सुना होगा, अर्थात "जो क्षत्रिय हम सब को जीत लेवे वही "सम्राद्" पदवी पावेगा"॥

ऐलस्येक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते । राजानः श्रेणिवद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भवि ॥४॥ ऐलवंश्याश्च ये राजस्तेथेवेक्ष्वाकवो नृपाः । तानि चैकशतं विद्धि कुलानि भरतर्षभ ॥४॥

अर्थ-हे भरतकुलश्रेष्ठ युधिष्ठिर! में जानता हं और तुमने भी कुलपरम्परा से सुना होगा कि "इला" के पुत्र पुरूरवा और "इक्षाकु" वंशी राजाओं की प्रकृति = स्वभाव को सब क्षत्रिय लोग मानते हैं, अर्थात इला के पुत्र पुरूरवा जिनसे चन्द्रवंश चला, और इक्ष्वाकु के पुत्र नाभाग आदि जिनसे सूर्यवंश चला है, इन दोनों की यही प्रकृति थी कि वहलोग राजाओं को जीत २ कर सन्नाद की पदवी को पहुँचे थे, इन दोनों वंशों के राजा तथा अन्य क्षत्रियलोग एकता की श्रृङ्खला में बद्ध रहते थे, और देश के अन्य सब माण्डलिकराजा इन्हीं की आज्ञा में श्रोणविद्ध रहते थे, हे राजन! आपको ज्ञात हो कि इन दोनों वंशों में आजतक जितने यह छोटे २वंश फैलगये हैं,इन में एक सौ कुलीन सम्नाट = वादशाह हो चुके हैं॥

ययातेस्त्वेव भोजानां विस्तरो गुणतो महान् । भजतेऽद्य महाराज विम्तरं स चतुर्दिशम् ॥६॥ तेषां तथैव तां लक्ष्मीं सर्वक्षत्रमुपासते । इदानीमेव वै राजन जरासन्धो महीपतिः ॥॥। अभिभूय श्रियं तेषां कुलानामभिषेचितः। स्थितो मूर्धिन नरेन्द्राणामोजसाकम्य सर्वशः। सोऽवनीं मध्यमां भुक्त्वा मिथो भेदममन्यत ॥८॥ अर्थ-हे महाराज ! ययातिवंश में राजा भोज की सन्तान अपने महान् गुणों के कारण यहां तक बढ़ी कि चारों दिशाओं में उस का राज्य फैल गया था और अन्य व राजा उसकी उपा-सना करने लगे थे, परन्तु हे राजन ! आजकल राजा जरासन्य उन सब राजाओं की लक्ष्मी का तिस्कार करके अपने बल से उन सबको जीतकर राज्यतिलक पाये दुए उनके मस्तकपर स्थित है, और वह राजाजरासन्य मथुरा के समीप मध्यदेश को भी भोगता हुआ हम से भेद=वरबुद्धि रखता है ॥

प्रभुर्यस्तु परो राजा यस्मिन्नेकवशे जगत्। स साम्राज्यं महाराज प्राप्तो भवति योगतः। तं स राजा जरासन्धं संश्रित्य किठ सर्वराः॥९॥ राजन् सेनापतिर्जातः शिश्यपालः प्रतापवान्। तमेव च महाराज शिष्यवत्समुपस्थितः॥१०॥ अर्थ-हे पहाराज! जो राजा परम सामर्थ्यवान् हो, और जिस एक के वश में यह सव जगत् हो वही राजा उपाय द्वारा सम्राद की पदवी को प्राप्त होने योग्य है, हेराजन ! देखो महावीर प्रतापशाली राजा शिशुपाल जरासन्थ को ही आश्रय करके उस का सेनापित हुआ है और शिष्यकी भांति उसके समीप बना रहता है॥

वकः करूषाधिपतिर्मायायोधी महावल । अपरो च महावीय्यों महात्मानो समाश्रितो ॥११॥ जरासन्धं महावीय्यं तो हंसडिम्भकावुभो । वकदन्तः करूपश्च करभो मेघवाहनः । मुर्ना दिव्यमणि विश्वद्यमद्भुतमणि विदुः ॥१२॥ मुरुष्य नरक्षेव शास्ति यो यवनाधिपः । अपर्यन्त बलो राजा प्रतीच्यां वरुणो यथा ॥१३॥

अर्थ-और करूपदेश का राजा मायायोधी, महाबलवात "वक" और महावीर महात्मा "हंम " तथा "हिम्भक" नामी दोनों महायोद्धा, "दन्तवक, करूप, करभ " अं.र "मेघवाहन" तथा मुरु और नरक नामी देशों पर राज्य करने वाला यवनों का राजा जो कि मस्तक पर अद्भुतमाण भारण करने से प्रसिद्ध है, और पश्चिम दिशा में राजा वरुण के समान अपरिमितवल वाला है, यह सब राजालोगभी महावीर्घ्य-जरासन्ध के अधीन हैं॥

भगदत्तो महाराज वृद्धस्तव पितुः सखा । स वाचा प्रणतस्तस्य कर्मणा च विशेषतः ॥१४॥ स्नेहबद्धश्च मनन्या पितृवद्भक्तिमांस्त्विय । प्रतीच्यां दक्षिणं चान्तं पृथिव्याः प्रति यो नृपः॥१५॥ मातुलो भवतः शूरः पुरुजित्क्वान्तिबर्द्धनः । स ते सन्नतिमानेकः स्नेहतः शत्रुसूदनः ॥१६॥

अर्थ-हे महाराज ! तुम्हारे पिता का मित्र तथा तुम में झीति पूर्वक अन्तः करण से ।पितासमान भाक्ति रखने वाला वृद्ध राजा भग-दत्त जो पश्चिम दिशा में पृथिवी के दक्षिण देश के अन्त तक राज्य करता है वह भी वाणी तथा विशेषकर कर्म से तो राजा जरासन्ध के ही अधीन है, उस दिशा में तो तुम से मीति रखने वाला शत्रु-नाशक, शूरवीर, एकमात्र कुन्तिभोज नामक तुम्हारा मामा ही सहायक है अन्य कोई नहीं ॥

जरासन्धं गतस्त्वेव पुरा यो न मया हतः ।
पुरुषोत्तमविज्ञातो योसौ चेदिषु दुर्मतिः ॥१७॥
आत्मानं प्रतिजानाति लोकेऽस्मिन्पुरुषोत्तमम् ।
आदत्ते सततं मोहाद्यः स चिन्हं च मामकम् ॥१८॥
वंगपुण्ड्रिकरातेषु राजा वलसमन्वितः ।
पौंड्रको वासुदेवति योसौ लोकेऽभिविश्रुतः ॥१९॥
अर्थ-और चन्देरी का राजा पुरुषोत्तम को अपनी हुर्जुदि
से अपने को पुरुषोत्तम मानकर मेरे चिन्ह शङ्क, कक आदि भारक
करता है, इसको मैंने पहिले मारते २ छोड़ दिया था, और बङ्ग,
पुंड्र तथा किरातदेश का राजा पौंड्रक वासुदेव जो लोक में महावलवान विसद्ध है,यह दोनों राजाभी जरासन्थ के आक्राकारी हैं ॥

चतुर्थभाङ् महाराज भोज इन्द्रसखो क्ली । विद्याबलाद्यो व्यजयत्स पांड्यकथकैशिकान् ॥ २०॥ भ्राता यस्याकृतिः शूरो जामदग्न्यसमोऽभवत् । स भक्तो माग्धं राजा भीष्मकः परवीरहा ॥ २१ ॥ प्रियाण्याचरतः प्रद्वान् सदा सम्बन्धिनस्ततः । भजतो न भजत्यस्मानप्रियेषु व्यवस्थितः ॥ २२ ॥ न कुळं सबळं राजन्नभ्यजानात्तथात्मनः । पश्यमानो यशोदीषं जरासन्धमुपस्थितः ॥ २३ ॥

अर्थ-हे महाराज! भोजवंशी राजा भीष्मक जो वड़ावली, इन्द्रका मित्र तथा पृथिवी के चतुर्थाशभाग पर अकेला राज्य करता है, और जिसने अपनी विद्यावल से पांड्य. क्रथ तथा कैशिक देशों को विजय किया, और जिस राजा भीष्मक का भाई आकृति नामक जो परश्ररामजी के समान श्र्रवीर था, अब वह वीर शत्रुओं का नाशक भीष्मक भी अपने कुल की श्रता तथा बल को भूल गया है, और यह दोनों भाई अब मगधदेश के पशस्वी राजा जरासन्थ के ही आज्ञाकारी हैं, यह हमारे शत्रुओं से भिलकर हमारा और अपने संवन्धिओं का सदा बुरा ही चाहता रहता है, परन्तु हमलोग अपने सम्बन्धियोंसहित सदा नम्रतापूर्वक उसका प्रियाचरण ही करते रहते हैं।

उदीच्याश्च तथा भोजाः कुलान्यष्टादश प्रभो । जरासन्धभयादेव प्रतीचीं दिशमास्थितः ॥२४॥ श्वरसेना भद्रकारा बोधाः शाल्वाः पटच्चराः । स्रस्थलाश्च सुकुट्टाश्च कुलिन्दाः कुन्तिभिःसह॥२५॥ शाल्वायनाश्च राजानः सोद्यां नुचरैः सह । दक्षिणा ये च पञ्चाला पूर्वाः क्रन्तिषु कोशलः ।।२६॥ तथोत्तरां दिशञ्चापि परित्यज्य भयार्दिताः । मत्स्याः संन्यस्तपादाश्च दक्षिणां दिशमाश्रिताः।२७।

अर्थ-हे प्रभो = स्वामित ! भोजवंशी अठारह कुल, जो उत्तर दिशा में राज्य करते थे, राजा जरासन्ध के भय से अव पश्चिम दिशा को भाग गये हैं, और श्रम्सेन,भद्रकार, बोध,शाल्व, पटचर, सुस्थल, सुकुह, कुलिन्द, कुनित, अपने भ्राताओं तथा सहायकों समेत शाल्वायन, कुनित देश के दक्षिण में पाश्चाल देश के अधिपात, तथा कुन्तिदेश के पूर्व में कौशल, और उत्तर दिशा में रहने वाले मत्स्य तथा संन्यस्तपादााद देशों के राजाभी जरासन्ध के भय से भयभित हुए २ उत्तर दिशा को छोड़कर अव सब के सब दक्षिण दिशा में जाबसे हैं॥

तथैव सर्वपञ्चाला जरासन्धभयार्दिताः ।
स्वराज्यं सम्परित्यज्य विद्वताः सर्वतो दिशम्।।२८॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य कंसो निर्मध्य यादवान् ।
वाहद्रथस्रते देव्यावुपागच्छद्वृथामितः ॥२९॥
अस्तिः प्राप्तिश्च नाम्ना ते सहदेवानुजेऽवले ।
बलेन तेन स्वज्ञातीनिभिभूय वृथामितः ।
श्रेष्ठयं प्राप्तः स तस्यासीदतीवापनयो महान्॥३०॥
अर्थ-एवं पाञ्चालदेश के सभी राजा अपने२ देशों को जरासन्ध
के भय से त्यागकर जहां तहां भागगये हैं, और कुछ काल का

अन्तर हुआ कि राजा उग्रसेन के कंस नामी दुर्बुद्धि पुत्र ने याद्वों का तिरस्कार करके अपना विवाह जरासन्ध की "अस्ति" और "प्राप्ति" नाम वाली दोनों पुत्रियों से किया था, जो कि सह-देव की दोनों छोटी वहिनें हैं, तथा वह उसके वल से मोहित होकर अपने जाति वालों को भी महान दुःख देने लगा था॥

भोजराजन्यवृद्धेश्च पीड्यमानैर्दुरात्मना । ज्ञातित्रागमभीष्माद्धिरस्मत्सम्भावना कृता ॥३१॥ संकर्षणद्वितीयेन ज्ञातिकार्य मया कृतम् । हतौ कंससुनामानौ मया रामेण चाप्युत ॥३२॥

अर्थ-हे राजन ! उससमय दुष्टात्मा कंस की पीड़ा से अत्यन्त दुःखित हुए २ वृद्ध भोज क्षत्रियों ने, अपने वन्धुवर्ग की रक्षा चाहते हुए मेरा स्मरण किया अर्थात् मेरी सहायता चाही, तव मैंने अपने भाई वलराम को साथ लेकर स्वज्ञाति के लोगों की रक्षा के निमित्त कंस और छुनामा को, उसके अनुयायियों सहित मारकर अपनी ज्ञाति की रक्षा की।

भये तु समातिकान्ते जरासन्धे समुद्यते । मन्त्रोऽयं मन्त्रितो राजन् कुलैरष्टादशावरैः ॥३३॥ अनारमन्तो निघन्तो महास्त्रैः शत्रुघातिभिः । न हन्यामो वयं तस्य त्रिभिवर्षशतैर्बलम् ॥३४॥

अर्थ-हे राजन ! राजा जरासन्थ कंस का वध सुनकर बड़ी भारी सेना सहित हमारे उत्पर चढ़ आया, तव हमसब अठारह कुल यादव, अपने मन्त्रिपुरोहितादिकों से सम्मित करने लगे कि यदि हमलोग शञ्चयातक महा अस्त्र-शस्त्रों से लगातार भी युद्ध करना चाहें, तो तीनसौवर्ष में भी इसकी सेना को न मार सकेंगे, क्योंकि:—

तस्य ह्यमरसंकाशी बलेन बलिनाम्वरी।
नामभ्यां दंसिडिम्भकावशस्त्रिनिधनावुभी ॥३५॥
तावुभी सहिती वीरी जरासन्धश्च वीर्यवान्।
त्रयस्त्रयाणां लोकानां पर्याप्ता इति मे मातिः॥३६॥
अर्थ-उस के समीप बलवानों में श्रेष्ठ, देवताओं के समान
बलवान,शस्त्रों से अवध्य=न मरने योग्य, "इंस" और "हिम्भक"
नामी दोनों वीर मन्त्री रक्षा करने वाले थे, मेरी समझ में तो
महाबीर "इंस" और "हिम्भक" तथा पराक्रमी राजा जरासन्ध"

यह तीनों ही तीनो छोकों को पराजय करने में पर्याप्त=सर्मथ थे ॥
अथ हंस इति ख्यातः कश्चिदासीन्महान्नृपः ।
रामेण स हतस्तत्र सङ्ग्रामेऽष्टादशावरे ॥३७॥
हतो हंस इति प्रोक्तमथ केनापि भारत ।
तच्छुत्त्वा डिम्भको राजन् यमुनांभस्यमज्जत ॥३८॥

विना हंसेन लोकेऽस्मिन् नाहं जीवितुमुत्सहे। इत्येतां मतिमास्थाय डिम्भको निधनं गतः॥३९॥

अर्थ-हे भरतकुलोत्पन्न राजन ! जरासन्य की सेना में एक "हंस" नामक वलीराजा भी था जो अठारह कुलों के साथ युद्ध में मेरे भाई बलराम के हाथ से मारा गया, तब डिम्भक से कोई मनुष्य यह कहने लगा कि तुम्हारा साथी, बलराम 688

ने मार डाला. ऐसा सुनकर डिम्भक इसलोक में हंस के विना अपने अकेले का जीवन व्यर्थसमझकर यमुना में इवकर मरगया॥

तथा तु हिम्भकं श्रुत्त्वा हंसः परपुरञ्जयः ।
प्रपेदे यमुनामेव सोऽपि तस्यां न्यमज्जत ॥४०॥
तौ स राजा जरासन्धः श्रुत्त्वा च निधनं गतौ ।
पुरं शून्येन मनसा प्रययौ भरतर्षभ ॥४१॥
ततो वयममित्रघ्न तस्मिन्प्रतिगते नृपे ।
पुनरानन्दिनः सर्वे मथुरायां वसामहे ॥४२॥

अर्थ-तदनन्तर, डिम्भक की मृत्यु का हाल सुनकर शोक के वशीभृत हुआ २ शञ्चनगरविजयी हंस भी यमुना में डूबमरा, हे भरतकुलश्रेष्ठ ! तब राजा जरासन्थ दोनों महावीरों का मरना सुनकर शून्यमन हुआ २ अपने नगर में लौट आया, हेशञ्चनाशक-राजन ! तत्पश्चात जरासन्थ के लौट जाने पर हमसब लोग फि मथुरापुरी में सुखपूर्वक रहने लगे।।

यदा त्वभ्येत्य पितरं सा वै राजीवलोचना । कंसभायी जरासन्धं दुहिता मागधं नृपम् । चोदयत्येव राजेन्द्र पतिव्यसनदुःखिता ॥४३॥ पतिष्रं मे जहीत्येवं पुनः पुनरारिन्दम । ततो वयं महाराज तं मन्त्रं पूर्वमन्त्रितम् ॥४४॥ संस्मरन्तो विमनसो व्यपयाता नराधिप । पलायामो भयात्तस्य सस्तुतज्ञातिवान्थवाः । इति सर्त्रित्य सर्वेस्म प्रतीचीं दिशमाश्रिताः॥४५॥ अर्थ-हे राजेन्द्र ! तदनन्तर कमलसमान नेत्रों वालीं राजा जरासन्ध की पुत्रियां " जोिक कंस को विवाही थीं " उन दोनों ने अपने पिता मगधदेश के राजा जरासन्ध के सभीप पहुंच पितिवियोग से दुःखित होकर वार कहा कि हे शच्चनाशक-राजन ! हमारे पित के घातक को आप मारिये, यह मुनकर जरासन्ध ने वड़ी भारी सेना के सहित हमारे ऊपर चद आने की सलाह की,तत्र हमलोग सब पुत्र स्त्री भाईवन्धु कुदुम्ब सहित उसके भय के मारे यवराये, तथा उसके पूर्वोक्त विचार को चिन्तन करते हुए पश्चिमदिशा को चले गये, और:—

तथेव दुर्गसंस्कारं देवैरिप दुरासदम् ।
तस्यां वयमिमित्रघ्न निवसामोऽकृतो भयाः ॥४६॥
अष्टादशसहस्राणि भ्रातृणां सन्ति नः कुले ।
आहुकस्य शतं पुत्रा एकैकिस्त्रदशावरः ॥४७॥
अर्थ-हे शञ्चनाशक राजनः! वहां देवताओं सेभी अजय=नजीतेजाने योग्य एक उत्तम दुर्ग=िकृष्टा वनाकर उस दिशा में ही निभर्य
हो हमसव रहने लगे, हे महाराज ! मेरे कुलमें अठारह सहस्र सब
भाईवन्धु हैं, और आहुक के सौ पुत्र देवताओं के समान बळवान,
महायोद्धा, तथा वक्ष्यमाण हम महारथी भी हैं:—

चारुदेष्णः सहभात्रा चऋदेवोऽथ सात्याकिः। अहञ्च रोहिणेयश्च साम्बः प्रद्युम्न एव च ॥४८॥ कृतवर्मा ह्यनाधृष्टिः समीकः ममितिञ्जयः। कंकः शंकुश्च कृन्तिश्च समैते वै महारथाः॥४९॥ पुत्रो चान्धकभोजस्य वृद्धो राजा च ते दश। वज्रसंहनना वीरा वीर्यवन्तो महारथाः ॥५०॥

अर्थ-१-भ्राता समेत चारुदेष्ण २-चऋदेव ३-सात्यिक ४-में अर्थात कृष्ण ५-वलदेव ६-साम्व और ७-प्रद्युम्न तथा सात मुख्यमहारथी हैं जिन के नाम यह हैं, १-कृतवर्मा २-अना-धृष्टि ३-समीक ४-समितिअय ५-कंक ६-शङ्कु तथा ७-कुन्ति, और अन्धकवंशी भोज के दो पुत्र, तथा वृद्धराजा यह दश महा-बलवान, वज्रतुल्य शरीर वाले और बड़े पराक्रमी महावीर हैं॥

स तं सम्राइएंगेश्चिक्तः सदा भरतसत्तम । क्षत्रे सम्राजमात्मानं कर्त्तुमहिसि भारत ॥५१॥ न तु शक्यं जरासन्धे जीवमाने महाबले । राजसूय स्त्वयावासुमेषा राजन्मतिर्मम ॥५२॥

अर्थ-हे भरतकुल श्रेष्ठ ! तुम सदा से चक्रवर्ती राजा होन योग्य गुणों से सम्पन्न हो और तुम्हें उाचित है कि क्षत्रिय-जगत में अपने आपको चक्रवर्ती राजा बनाओ, परन्तु हे राजन् ! मेरी सम्माति यह है कि जब तक महाबली राजा जरासन्ध जीता रहेगा, तब तक तुम राजसूययज्ञ द्वारा अपने आपको चक्रवर्ती राजा नहीं कर सकते॥

तेन रुद्धा हि राजानः सर्वे जित्वा गिरिव्रजे। कन्दरे पर्वतेन्द्रस्य सिंहेनेव महा द्विपाः ॥५३॥ वयं चैव महाराज जरासन्धभयात्तदा । मथुरां संपरित्यज्य गता द्वारवतीं पुरीम् ॥५४॥

सभापर्व-सप्तमाध्याय

683

अर्थ-राजा जरासन्थ ने सब राजाओं को जीत २ कर पर्वत की गुफ़ा में पशुओं की भांति रोक रक्खा है, जैसे कि सिंह ने हाथिओं को, और हे महाराज! हमलोग भी उससमय जरासन्थ के ही भय से मथुरा त्याग कर द्वारकापुरी को चले गये थे॥ यदि त्वेनं महाराज यनं प्राथमधीरम्मि ।

यदि त्वेनं महाराज यज्ञं प्राप्तुमभी प्सिस ।
यतस्व तेषां मोक्षाय जरासन्धवधाय च ॥५५॥
इत्येषा मे मती राजन्यथा वा मन्यसे ८ नघ ।
एवं गते समाचक्ष्व स्वयं निश्चित्य हेतु भिः ॥५६॥
अर्थ – हे महाराज! यदि आप इस यज्ञ को पूर्ण करना चाहते
हैं तो पहले उन राजाओं के छुड़ाने तथा जरासन्ध के मारने का
यत्न करें, हे निष्पाप राजन ! मेरी तो यही सम्माति है, अन्यथा अव ऐसी
दशा में आप जैसा उचित समझें वैसा हेतुओं से निश्चय करके
इन्दर्य सुझ से कहें ॥

इति षष्टोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तमोऽध्यायः प्रारभ्यते

युधिष्ठिर उवाच उक्तं त्वया बुद्धिमतां यन्नान्यो वक्तुमहित । संशयानां हि निर्मोक्ता त्वं नान्यो विद्यते भुवि ॥१॥ गृहे गृहे हि राजानः स्वस्य स्वस्य प्रियङ्कराः । नचसाम्राज्यमाप्ताम्ते सम्राटशब्दोहि कृच्छ्भाक्॥॥॥ अर्थ-पुधिष्ठिर बोले कि हे कृष्ण ! तुमने जो सम्मित दी है वैसी देने की किसी अन्य बुद्धिमान में सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि संशयों के काटने वाले पृथ्वीभर में तुम हो, अन्य नहीं। अपने २ घर में सब राजालोग अपना २ हित करते रहते हैं, परन्तु इससे उनको साम्राज्य की माप्ति नहीं हुई, क्योंकि सम्राट् पदवी बड़े कहों से मिलती है॥

शममेव परं मन्ये शमात् क्षेमं भवेन्मम् । आरम्भे पारमेष्ठ्यन्तु न प्राप्यमिति मे मातिः ॥३॥ वयं चैव महाभाग जरासन्धभयात्तदा । शङ्किताःस्म महाभाग दौरात्म्यात्तस्य चानघ ॥४॥

अर्थ-में समझता हूं कि इससमय शानित करना ही उत्तम है और शानित से ही मेरा कल्याण होगा, किन्तु यादि हम राजसूय-पज्ञ करेंगे, तो मेरी सम्मात में वह पूर्ण न हो सकेगा, हे निष्पाप, महाभाग्यतान ! हमलोग भी जरासन्थ के भय से और उसकी दुष्टता से उससमय डर गये थे॥

अहं हि तव दुर्धर्ष भुजवीर्याश्रयः प्रभो । नात्मानं बलिनं मन्ये त्वायि तस्माद्धिशङ्किते ॥५॥ त्वत्सकाशाच रामाच भीमसेनाच माधव । अर्जुनाद्धा महाबाहो हन्तुं शक्यो नवेति वै ॥६॥ एवं जानन् हि वार्ष्णेय विमृशामि पुनः पुनः । तच्छुत्वा चात्रवीद् भीमो वाक्यं वाक्यविशारदः॥७॥

अर्थ-हे अजय स्वामित ! मैं तो तुम्हारी भुजावल के सहारे पर हूं, जब तुम ही उससे शंका करते हो, तो मैं अपने आप को

सभापर्व-सप्तमाध्याय

683

वलवान नहीं समझता, हे महावाहु कृष्ण ! तुम से, वलराम से, भीमसेन से वा अर्जुन से, अर्थात किसी से भी वह जरासन्थ मारा जासकता है वा नहीं, इसी बात पर मैं वार २ विचार कर रहा हूं, यह सुनकर बोलने में चतुर भीमसेन यह बात कहने लगे ॥

भीम उवाच

अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदित । दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योधितिष्ठति ॥८॥ अतिन्द्रतस्तु प्रायेण दुर्बलो बलिनं रिपुम् । जयेत् सम्यक्पयोगेण नीत्यार्थानात्मनो हितान्॥९॥ कृष्णे नयो मिय बलं जयः पार्थे धनञ्जये । मागधं साधियष्याम इष्टिं त्रय इवामयः ॥१०॥

अर्थ-भीमसेन वोले कि जो राजा अपनी उन्नतिका यत नहीं करता वह बल्मीक=वांबी की भांति क्षीण हो जाता है, और यत्र न करने वाले वलवान को दुर्वलपुरुष भी दबालेता है, परन्तु जो राजा सदा सवाधान रहकर नीति द्वारा यथोचित व्यवहार करता है, वह दुर्वल होने पर भी अपने वलवानशञ्ज और लाभकारी पदार्थों को प्रयाः विजय कर लेताहै, कृष्ण में नीति है, मुझ में वल है तथा अर्जुन के हाथ विजय है, इसमकार हम तीनों मिलकर मगधदेश के राजा जरासन्ध को जीत लेंगे, जैसे कि तीन अग्निएं मिलकर यज्ञ को पूर्ण करती हैं।

कृष्ण उवाच

अर्थानारभते बालो नानुबन्धमवेक्षते । तस्माद्रिं न मृष्यन्ति बालमर्थपरायणम् ॥ ११ ॥ हित्त्वा करान् यौवनाश्विः पालनाच भागीरथः। कार्त्तवीयस्तपोवीर्याद्वलातु भरतो विभुः। ऋद्ध्या मरुत्तस्तान् पत्र सम्राजस्त्वनुशुश्रुम्॥१२॥

अर्थ-कृष्ण जी बोले कि-मूर्खमनुष्य कार्य तो आरम्भ कर देता है परन्तुजपाय के अच्छे बुरे होने का विचार नहीं करता, इसीलिये कार्य में तत्पर हुए र मूर्खशञ्ज को अन्य प्रतिपक्षी लोग सहन नहीं करसकते, युवनाश्च के पुत्र ने प्रजा के कर=शुल्क दूर करके, भागीरथ ने प्रजा के उत्तम पालन से, कार्त्तवीर्य ने तपके प्रभाव से, राजा भरत ने वल से और राजा महत्त ने बड़ी भारी समृद्धि के बल से साम्राज्य प्राप्त किया, हम इन पांच चक्रवर्ती राजाओं का भिन्न र पांच उपायों द्वारा स्वराज्यपाना इतिहास में सुनचुके हैं॥

न चैनमनुरुध्यन्ते कुलान्येकशतं भृपाः । तस्मादिह बलादेव साम्राज्यं कुरुते हि सः॥१३॥ रत्नभाजो हि राजानो जरासन्धमुपासते । न च तुष्यति तेनापि बाल्यादनयमास्थितः॥१४॥

अर्थ-राजा जरासन्थका, सौ बड़े र राजा भी अनुरोध=मुक़ा-बला नहीं करसकते, इसलिये वह अपने वल से ही पृथ्वी पर चक्रवर्ती राज्य कर रहा है,देखों बड़े र स्वधारण करने वाले राजा-लोग जरासन्थ की सेवा में लगे हुए हैं, परन्तु वह मूर्वता के कारण अनीति धारण किये हुए है, इसलिये उन राजाओं की इतनी सेवा से भी सन्तुष्ट नहीं होता ॥ एवं सर्वान् वशे चक्रे जससन्धः शतावसन्।
तं दुर्वलतरो राजा कथं पार्थ उपैष्यति ॥१५॥
पडशीतिः समानीताः शेषा राजंश्रवुर्दश ।
जससन्धेन राजानस्ततः क्रूरं प्रवत्स्यते ॥१६॥
प्राप्तुयात् स यशो दीप्तं तत्र यो विष्ठमाचरेत् ।
जयेद्यश्र जससन्धं स सम्राट् नियतं भवेत्॥१७॥

अर्थ-हे युधिष्टिर ! इसमकार जरासन्य ने मायः सौ राजाओं को अपने वश में किया हुआ है, तौ फिर अत्यन्तिन विल राजा उसके साथ कैसे युद्ध करसकता है ! हे राजन ! राजा जरासन्य ने छयासी ८६ राजाओं को तो लाकर केंद्र कर लिया है और अब चौदह शेष हैं, इनको केंद्र करने के पश्चाद वह महान अत्याचार फैलावेगा, और इसमकार वह पज्वलितयश को प्राप्त करलेगा, परन्तु जो मनुष्य उसके उक्त कार्य में विद्य डाल दे और जरासन्य को जितले, तौ निश्चय है कि वह चक्रवर्तीराजा होजायेगा॥

इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टमोऽध्यायः प्रारम्यते

युधिष्ठिर उवाच

सम्राइग्रणमभीप्सन् वै युष्मान् स्वार्थपरायणः। कथं प्राहिण्यां कृष्ण सोऽहं केवलसाहसात् ॥१॥ भीमार्जनावुभौ नेत्रे मनो मन्ये जनार्दनम्। मनश्रक्षविहीनस्य कीदृशं जीवितं भवेत्॥॥ 443

महाभारत

अर्थ-याधिष्ठिर वोले कि हे कृष्ण ! मैं स्वार्थ में तत्पर होकर अपने लिये चक्रवर्त्तीराज्य चाहता हुआ केवल साहसमात्र से आप लोगों को वहां कैसे भेज सक्ता हूं, भीमसेन और अर्जुन दोनो मेरे नेत्र हैं और कृष्ण मेरा हृदय है, सो हृदय तथा नेत्रों के बिना मेरा जीवन किस प्रकार का हो जायेगा ? और:—

जरासन्धवलं प्राप्य दुष्पारं भीमविक्रमम् । यमो हिन विजेताजो तत्र वः किं विचेष्टितम्।।३॥ अस्मिस्त्वर्थान्तरे युक्तमनर्थः प्रतिपद्यते । तस्मान्न प्रतिपत्तिस्तु कार्या युक्ता मता मम ।।४॥

अर्थ-जोड़ले भाई=नकुल, सहदेव में से भी कोई जरा-सन्धकी भयानकपराक्रमवाली दुर्जय=कठिनता से जीते जाने योग्य सेना को युद्ध में नहीं जीत सकता, तव हम क्यों ऐसी व्यर्थचेष्टा करें, इस राजसूययज्ञ के कार्य में अवश्य अनर्थ होगा, इसिल्ये मैं ऐसी अनर्थ की बात को स्वीकार करना उचित नहीं समझता॥

यथाहं विमृशाम्येकस्तत्तावत् श्रूयतां मम । संन्यासं रोचये साधु कार्यस्यास्य जनार्दन । प्रतिहन्ति मनो मेऽद्य राजसूयो दुराहर ॥५॥

अर्थ-हे कृष्ण! मैं स्वयम जो कुछ विचार कर रहा हूं, सो तुम सुनो, मेरी सम्मित में इस राजसूययज्ञ के संकल्प का त्याग देना ही अच्छा है, क्योंकि यह महान दुष्कर राजसूययज्ञ मेरे चित्त को कंपा रहा है॥

सभापर्व-अष्ट्रमाध्याय

443

अर्जुन उवाच

धनुः शस्त्रं शरावीर्य पक्षो भूमिर्यशोबलम् । प्राप्तमेतन्मया राजन् दुष्प्रापं यदभीष्मितम् ॥६॥ क्षत्रियः सर्वशो राजन् यस्य वृद्धिर्द्धिषज्जये । सर्वेर्यणैर्विहीनोऽपि वीर्यवान् हि तरेद्रिप्तन् ॥७॥ अर्थ-अर्जन बोला कि हे राजन् ! धनुष, शस्त्र और वाण

ही मेरा पराक्रम है, पृथ्वी, यश और वल ही मेरे पक्षपाती अर्थात सहायक हैं, इनकी ही सहायता से भैंने जिस दुर्लभ वस्तु की इच्छा की वह प्राप्त करली, हे राजन ! वही क्षत्रिय कहलाने के योग्य है जो शाञ्चओं को जीत कर अपनी वृद्धि करे, क्योंकि पराक्रमी पुरुष अन्य सब गुणों से हीन होकर भी शञ्चओं को जीतसकता है॥

सर्वेरिष उणेर्श्वको निर्वीर्यः किं करिष्यति । उणीभ्ताः उणाः सर्वे तिष्ठन्ति हि पराक्रमे ॥८॥ संयुक्तो हि वलैः कश्चित्रमादान्नोपयुज्यते । तेन द्वारेण शत्रुभ्यः क्षीयते सवलो रिपुः ॥९॥

अर्थ-सब गुणों से सम्पन्न भी पराक्रमहीन पुरुष क्या कर-सकता है, क्योंकि पराक्रम के आगे अन्य सब गुण अप्रधान हैं, बलवान तथा सेनाओं वाला शह भी कभी २ असाययानी करके अपने बल का प्रयोग नहीं करपाता, और उसी प्रमादक्षी छिट्ट के द्वारा शहुओं से नाश को पास होजाता है ॥

दैन्यं यथा बलवित तथा मोहो बलान्विते। ताबुभी नाशको हेत् राज्ञा त्याज्यो जयार्थिना॥१०॥ 448

जरासन्धविनाशं च राज्ञां च परिरंक्षणम् । यदि कुर्याम यज्ञार्थं किं ततः परमं भवेत् ॥११॥

अर्थ-वलवान पुरुष के लिये जैसे दीनता निषिद्ध है, वसे ही असावधानी=भूल भी निषिद्ध है, ये दोनों नाश करने वाले साधन विजय चाहने वाले राजा के लिये त्यागने योग्य हैं, यदि हम अपने राजस्ययं की सिद्धि के लिये जरासन्ध को सारें और उसके केंद्र किये हुए राजाओं को छुड़ाकर उनकी रक्षा करें तो इसमे अच्छी और क्या बात होसक्ती है।

अनारम्भे हि नियतो भवेदग्रणनिश्चयः । ग्रणान्निःसंशयाद्राजन् नैग्रण्यं मन्यसे कथम् ॥१२॥ कषायं सुलभं पश्चान्सनीनां शममिन्छताम् । साम्राज्यं तु भवेन्छक्यं वयं योतस्यामहे परान्॥१३॥

अर्थ-हे राजन ! यदि हम यह कार्य आरम्भ न करेंगे तो जरासन्ध से कभी न कभी हमारी हानि होनी िश्चित है, सो तुम निःसन्देह होने वाले लाभ से हानि किस प्रकार मानते हो ! शान्ति चाहने वाले मुनियों को भगवे वस्त्र बनालेना सहज हैं परन्तु हमें तो सार्वभौम राज्य तभी प्राप्त होसकता है जब हम शत्रुओं के साथ युद्ध करें॥

वासुदेव उवाच जातस्य भारते वंशे तथा कुन्त्याः सुतस्य च । या वे युक्ता मितः सेयमर्जनेन प्रदर्शिता ॥१४॥ नस्म मृत्युं वयं विद्य रात्रौ वा यदि वा दिवा । न चापि कंचिदमरमयुद्धे नानुशुश्रुम ॥ १५॥

सभापर्व-अष्टमाध्याय

444

अर्थ-कृष्णजी वोले कि भरतराजा के वंश में उत्पन्न तथा कुन्ती के पुत्र की जैसी सम्मिति होनी चाहिये, वैसीही अर्जुन ने बतलाई है, हमें इस बात का क्या पता है ? कि आज रात में बा दिन में ही हमारी मृत्यु होजाय, और ना ही हमने यह सुना है कि युद्ध न करने पर कोई अमर होगया हो ॥

एतावदेव पुरुषेः कार्य हृदयतोषणम् ।
नयेन विधिदृष्टेन यदुपक्रमते परान् ॥१६॥
ते वयं नयमास्थाय शत्रुदेहसमीपगाः ।
कथमन्तं न गच्छेम वृक्षस्येव नदीरयाः ।
परं रन्ध्रे समाक्तान्ताः स्वरन्ध्रावरणे स्थिताः ॥१९॥
अर्थ-सो,हे गजन ! इसी का नाम पुरुषार्थ है, और यही कार्य हृदय को सन्तोष देने वाला है कि विधिपूर्वक नीति के द्वारा सञ्जर्भे पर आक्रमण किया जाय, और हमलोग नीति का अवलम्बन करके अपने दोष छिपाते हुए तथा दृतरे के छिद्रों पर आक्रमण करते हुए, शञ्च के शरीर के समीप पहुंचकर क्यों नहीं उसका नाश कर सकेंगे, जैसे कि नदी का प्रवाह वृक्ष को नष्ट करदेता है ॥

व्यूढानीकैरितवर्छेर्न युध्येदिरिभिः सह । इति बुद्धिमतां नीतिस्तन्ममापीह रोचते ॥१८॥ अनवद्या ह्यसंबद्धाः प्रविष्टाः शत्रुसद्म तत् । शत्रुदेहमुपाकम्य तं कामं प्राप्तुयामहे॥१९॥ अथवैनं निहत्याजौ शेषेणापि समाहताः । प्राप्तुयाम ततः स्वर्गं ज्ञातित्राणपरायणाः ॥२०॥ ५५६

महाभारत

अर्थ-बड़ी सेनाओं वाले महाबली शत्रुओं के साथ शस्त्रों
द्वारा युद्ध करना उचित नहीं, किन्तु उन्हें कूटनीति द्वारा मारना
चाहिये, ऐसी बुद्धिमानों की नीति है और मुझे भी यह उचित
मतीत होती है, इसलिये हमलोग दृष्ति न होकर अत्यन्त ग्रप्तकृप से शत्रु जरासन्ध के घरमें घुसकर उसके शरीर पर आक्रमण
करके अपने संकल्प को पूर्ण करेंगे अर्थात शत्रु को विजय करके
राजसूययज्ञ को निर्विध्न समाप्त करेंगे। दृसरे पक्ष में यादि हमलोग
इसको मारकर उसके शेष सहायकों द्वारा युद्ध में हमलोग भी
मारे गये, तो अपने ज्ञाति अर्थात वन्धुओं की रक्षा के कार्य में
बिल = कुर्बान होकर स्वर्ग को प्राप्त होंगे॥

पतितौ हंसडिम्भकौ कंसश्च सगणो हतः। जरासन्धस्य निधने कालोऽयं समुपागतः।।२१॥ मिय नीतिर्वलं भीमे रिक्षता चावयोर्जयः। मागधं साधियष्याम इष्टिं त्रय इवामयः।।२२॥

अर्थ-इंस और डिम्भक मरचुके हैं तथा कंस भी सेना समेत मारा जाचुका है, अब जरामन्ध के मरने का समय आगया है, मुझमें नीति और भीममेंबल है तथा अर्जुन हमदोनों का रक्षक है, सो इम तीनों मिलकर मगधदेश के राजा को जीत लेंगे, जैसे कि तीन अग्निएं मिलकर यज्ञ को पूर्ण करती हैं॥

त्रिभिरासादितोऽस्माभिर्विजने स नराघिपः । न सन्देहो यथा युद्धमेकेनाप्युपयास्यात ॥२३॥ अवमानाच लोभाच वाहुवीर्याच दर्पितः। भीमसेनेन युद्धाय ध्रुवमम्युपयास्यति ॥२४॥ अर्थ-राजा जरासन्ध जब एकान्त में हमें मिलेगा तो इसमें सन्देर नहीं कि वह अकेला एक के साथ युद्ध करेगा और इसमें भी सन्देह नहीं कि वह अभिमान और प्रतिष्ठा के लोभ तथा अवने भुजवल के गर्व से भीमसेन के ही साथ युद्ध करना स्वीकार करेगा म

अलं तस्य महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः । लोकस्य समुदीर्णस्य निधनायान्तको यथा ॥२५॥ यदि मे हृदयं वेत्सि यदि ते प्रत्ययो मिय। भीमसेनार्जुनौ शीघं न्यासभूतौ प्रयच्छ मे ॥२६॥

अर्थ-उस जरातन्थ के नाश करने के लिये महावाहु तथा
महावली भीमसेन ऐसा समर्थ है जैसे इस विस्तृत संसार के नाध्य
करने के लिये मृत्यु होती है, सो यदि तुम मेरे हृदय का अभिमाय
यथावत समझते तथा मुझपर विश्वास करते हो तो शीघ्र ही
भीमसेन और अर्जुन को धरोहर के इप में मेरे लिये देदो ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तो भगवता प्रत्युवाच युधिष्ठिरः। भीमार्जुनौ समालोक्य संप्रहृष्टमुखौ स्थितौ ॥२७॥ अच्युताच्युत मा मैवं व्याहरामित्रकर्षण। पाण्डवानां भवान्नाथो भवन्तं चाश्रिता वयम्॥२८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! उस समय भगवान कृष्ण के ऐसा कहने पर युधिष्टिर नेमसन्नमुख खड़े हुए भीमसेन और अर्जुन की ओर देखकर कृष्णजी से इस मकार कहा कि हे शद्यनाशक कृष्ण ! आप ऐसी बात "न कहिये,

महाभारत

न कहिये" आप हमसव पाण्डवों के स्वामी हैं और हमसव आपके अधीन अर्थात आज्ञाकारी हैं॥

निहतश्च जरासन्धो मोक्षिताश्च महीक्षितः । राजसूयश्च मे लब्धो निदेशे तव तिष्ठतः ॥२९॥ त्रिभिभवद्गिर्हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे । धर्मार्थकामरहितो रोगार्त्त इव दुःखितः ॥३०॥

अर्थ-तुम्हारी आज्ञा में रहने से जरासन्थ मर गया, राजा होगों का छुटकारा होगया और मेरा राजम्ययज्ञ भी समाप्त हुआ समझना चाहिये, तुम तीनों के विना मेरा जीवन इस प्रकार दुःखित है जैसे कि धर्म, अर्थ और काम इन तीनों के विना मनुष्य रोगग्रस्त के तुल्य दुःश्वी रहता है।।

न शौरिणा विना पार्थों न शौरिः पाण्डवं विना। नाजेयोस्त्यनयोर्छोंके कृष्णयोरिति में मितः ॥३१॥ अयं च बिलनां श्रेष्ठः श्रीमानिप वृकोदरः । युवाभ्यां सहितो वीरः किं न कुर्यान्महायशाः ॥३२।

अर्थ-कृष्ण के विना अर्जुन और अर्जुन के विना कृष्ण नहीं जीसकता और यह भी मेरी सम्मति है कि संसार में कोई ऐसा वीर नहीं जिसे यह दोनों कृष्ण और अर्जुन न जीत सकें तथा यह बल्जानों में श्रेष्ठ श्रीमान महाप्रताभी वीर भीम-सेन भी तुम दोनों के साथ रहकर क्या कुछ नहीं करसकता॥

तस्मान्नयविधानज्ञं पुरुषं लोकविश्वतम् । वयमाश्रित्य गोविन्दं यतामः कार्यसिद्धये ॥३३॥ एवमेव यदुश्रेष्ठ यावत् कार्यार्थासद्धये ।
अर्जुनः कृष्णमन्वेतु भीमोऽन्वेतु धनञ्जयम् ।
नयो जयो बलं चेति विक्रमे सिद्धिमेष्यति ॥३४॥
अर्थ-इस लिये इमलोग, नीति के उपाय जानने वाले, लोक
प्रांसद्ध, गोरक्षक कृष्ण जी का आश्रय लेकर कार्य की सिद्धि के
लिये यत्र करेंगे, हे यदुकुल श्रेष्ठ ! जो कुल कार्य सिद्धि का तुएने
उपाय दताया, वह मुझे स्वीकृत है, सो अर्जुन कृष्ण का,
और भीमसेन अर्जुन का साथ देवे, तब इसपकार नीति, विजय
तथा वल यह तीनों मिलकर पराक्रम पर विजय पाजायंगे अर्थात
नीतीयुक्त कृष्ण, विजययुक्त अर्जुन और वलयुक्त भीमसेन यह
तीनो मिलकर पराक्रमयुक्त जरासन्य को जीतलेंगे॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तास्ततः सर्वे भातरो विष्ठोजसः । वार्षोयः पाण्डवयो च प्रतस्थुमीगधं प्रति ॥३५॥ वर्चिस्वनां ब्राह्मणानां स्नातकानां परिच्छदम् । आच्छाद्य सहदां वाक्यैमनोज्ञैरभिनिद्तताः ॥३६॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! युधिष्ठिर के इसप्रकार कहने के पश्चात वे महाप्रतापी तीनों भाई = कृष्ण, अर्जुन और भीमसेन मगधदेश=विहारप्रदेश की ओर चलदिये, उन तीनों ने तेजस्वी स्नातक ब्राह्मणों का भेप बनाया, और वह मित्रों के मधुरवचनों से आनन्दि होते हुए यात्रा करने लगे॥

अमर्षारभितप्तानां ज्ञात्यर्थं मुख्यते जसाम् । रविसोमाग्निवयुषां दीप्तमासीत् तदा वपुः ॥३७॥

महाभारत

अर्थ-वह महातेजस्वी अपने ज्ञाति के निमित्त क्रोध से मदीप्त हो रहे थे और उन तीनों का शरीर उससमय सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि के समान प्रज्वालित हो रहा था॥

करुभ्यः प्रस्थितास्ते तु मध्येन करुजाङ्गलम् । रम्यं पद्मसरो गत्वा कालकूटमतीत्य च ॥३८॥ गण्डकीं च महाशोणं सदानीरां तथेव च । एकपर्वतके नद्यः क्रमेणत्यात्रजन्त ते ॥३९॥

अर्थ-वह तीनों कुरुदेश से चलकर कुरुजाङ्गलप्रदेश के बीच में होते हुए,रमणीय = शोभायमान "पद्मसर" नामी झील पर पहुंचे और वहांसे कालकूट पर पहुंचकर,एक ही पर्वतपर वहने वालीं गण्डकी, महाशोण तथा सदानीर, इन तीनों निदयों को क्रम से लांघकर आगे को चले॥

उत्तीर्य सरयू रम्यां दृष्ट्वा पूर्वाश्च कोशलान् । अतीत्य जग्मुर्मिथलां मालां चर्मण्वतीं नदीम्॥४०॥ अतीत्य गङ्गां शोणं च त्रयस्ते प्राङ्मुखास्तदा । कुशचरिच्छदा जग्मुर्मागधं क्षेत्रमच्युताः ॥४१॥ ते शक्वद्रोधनाकीर्णमम्बुमन्तं शुभद्रमम् । गोरथं गिरिमासाद्य दृहशुर्मागधं पुरम् ॥४२॥

अर्थ-रमणीय सरयूनदी को लांघकर पूर्तीकोशल=अवध-प्रदेश को देखते हुए मिथिलापुरी में पहुंचे, पुनः वहां से माला, चर्मण्वती, गङ्गानदी तथा शोणनद को पार करके, कर्तव्य से विचलित न होने वाले वे तीनों, कुशा तथा मृगचर्म आदि के

सभापर्व-नवमाध्याय

45?

बस्त्र पहने हुए पूर्व दिशा की ओर मगधदेश को चल्रदिये, उनतीनों ने गोरथ नामक पर्वत पर पहुंचकर "जो कि सदा गोरूपी धन से परिपूर्ण,उत्तमजलयुक्त तथा उत्तम वृक्षों से सम्पन्न था" वहां से मगधदेश के राजधानी नगर को देखा ॥

इति अष्टमोऽध्यायः समाप्तः

अथ नवमोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वासुदेव उवाच

एष पार्थ महान् भाति पशुमान् नित्यमम्बुमान् । निरामयः सुवेश्माद्यो निवेशो मागयः शुभः ॥१॥ वैहारो विपुलः शैलो वराहो वृषभस्तथा । तथा ऋषिगिरिस्तात शुभाश्चैत्यकपञ्चमाः ॥२॥ एते पञ्च महाशृङ्गाः पर्वताः शीतलद्रुमाः । रक्षन्तीवाभिसंहत्य संहताङ्गा गिरित्रजम् ॥३॥

अर्थ-श्रीकृष्णजी बोले कि हे अर्जुन! यहां से महान मागध-नगर दिखाई दे रहा है जिसमें कि बहुत से उत्तमोत्तम गौ, भैंस, घोड़े आदि पश्च हैं तथा जिसमें सदा उत्तमजल बहता है, यह उत्तम नगर रोगरहित, सुन्दरभवनों से संपन्न और उत्तमोत्तम मकार की रचनाओं से युक्त है,हे प्यारे! यहां पांच बड़े २ उत्तम पर्वत हैं=(१) बेहार (२) बराह (३) वृषभ (४) ऋषिगिरि और पांचवां (५) चैत्यक, ये पांचो बड़ी ऊंची चोटिओं वाले,शीतल वृक्षयुक्त पर्वत, मानो परस्पर एक दूसरे से अड़े हुए अपने दृढ़ अङ्गों से अन्य पर्वतसमूह की रक्षा कर रहे हैं॥

एवं प्राप्य पुरं रम्यं दुराधर्षं समन्ततः । अर्थिसिद्धिं त्वनुपमां जरासन्धोऽभिमन्यते । वयमासादने तस्य दर्पमद्य हरेमहि ॥४॥

अर्थ-इसप्रकार चारों ओर से सुरक्षित इस रमणीय नगर को पाकर जरासन्य अपनी पूर्णतया कार्यसिद्धि मान बैटा है, परंतु हमलोग उसके समीप पहुंचकर उसके घमंड को दूर करेंगे ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता ततः सर्वे भातरो विष्ठुठौजसः। वाष्णेयः पाण्डवो चैव प्रतस्थुमीगधं पुरम् ॥५॥ ततो द्वारं समासाद्य पुरस्य गिरिमुच्छ्तम्। मागधानां तु रुचिरं चैत्यकान्तरमादवन् ॥६॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे जनमेजय! कृष्ण जी के ऐसा कहने पर, तीनो महातेजस्वी भाई अर्थात वृष्णिवंशी कृष्ण तथा पाण्ड के दोनों पुत्र = भीमसेन और अर्जुन, मागधनगर को चले, तब ऊंचे पर्वत समान नगर के द्वार में प्रवेश कर मगधवासिओं के सुन्दर यहभवन में जा पहुंचे, और :-

भंक्त्वा भेरीत्रयं तेऽपि चैत्यप्राकारमादवन् । दारतोऽभिमुखाः सर्वे ययुर्नानायुधास्तदा ॥७॥ स्थिरं सुविपुलं शृङ्गं सुमहत्तत् पुरातनम् ।

विषुलैर्वाहुभिर्वीरास्तेऽभिहत्याभ्यपातयन् । ततस्ते मागधं हृष्टाः पुरं प्रविविशुस्तदा ॥८॥

अर्थ-उन्हों ने वहां यज्ञभवनमें रक्ले हुए तीन नगारे तो इ फीड़ डाले तथा उस यज्ञशाला से मिले हुए नगर के कोट को उलांच कर नानाप्रकार के शस्त्र अस्त्र युक्त द्वार के सन्मुल जा पहुंचे, वहां पर एक पर्वत का शिखर जो कि दृढ़, विस्तृत तथा प्राचीन था और नगर के भीतर जाने को रोकता था, उसे उन वीर-पुरुषों ने अपनी वड़ी २ दृढ़ भुजाओं के आघात से गिरा दिया, इसके पश्चाद वे लोग निर्विष्ठरूप से मागधनगर के भीतर प्रविष्ठ होगये और उसको देखते भालते हुए आगे बढ़े ॥

स्नातकव्रतिनस्ते तु बाहुशस्त्रा निरायुधाः । युयुत्सवः प्रविविशुर्जरासन्धेन भारत ॥९॥ भक्ष्यमाल्यापणानां च ददृशुः श्रियमुत्तमाम् । स्फीतां सर्वयुणोपेतां सर्वकामसमृद्धिनीम् ॥१०॥ तां तु दृष्ट्वा समृद्धिं ते वीथ्यां तस्यां नरोत्तमाः । निवेशनमथाजग्मुर्जरासन्धस्य धीमतः ॥११॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! वहां से फिर उन्हों ने स्नातक-ब्रह्मचारियों का भेष बदल लिया और शख़ हीन होकर केवल भुजारूपी शख़ों द्वारा ही जरासन्ध के साथ युद्ध करने की इच्छा से भीतर प्रविष्ट हुए, उन्हों ने नगर के भीतर जाते हुए खाद्य-वस्तुओं तथा माला आदि सब पदार्थों के उत्तम शोभायमान, विस्तृत, सर्वगुणसम्पन्न, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले बाजारों का अवलोकन किया, तब वह महान पुरुष बाज़ार की उस उत्तम शोभा का अवलोकन करने के अनन्तर बुद्धिमान राजा जरासन्थ के भवन पर जा पहुंचे ॥

शालस्तम्भनिभास्तेषां चन्दनायरुक्षिताः । अशोभन्त महाराज बाहवो युद्धशालिनाम् ॥१२॥ तान् दृष्ट्वा द्विरद्पष्यान् शालस्कन्धानिवोद्गतान् । व्यूदोरस्कान् मागधानां विस्मयः समपद्यत ॥१३॥

अर्थ-हे महाराज! उन युद्धशील वीरपुरुषों की साल के खम्बों के समान मोटी, इट तथा चन्दन और अगर से सुग-नियत भुजाएं परम शोभायमान मतीत होती थीं, हाथी के समान महाकाय तथा सालवृक्ष के तनों के समान ऊंचे हट शरीर और चौड़ी छाती वाले, उन वीरपुरुषों को देखकर मगधनिवासियों को आश्चर्य उत्पन्न हुआ।

ते त्वतीत्य जनाकीर्णाः कक्ष्यास्तिस्रो नर्षभाः । अहङ्कारेण राजानसुपतस्थुर्गतन्यथाः ॥१४॥ प्रत्युत्थाय जरासन्ध उपतस्थे यथाविधि । उवाच वैतात्राजासौ स्वागतं वोऽस्त्वित प्रसुः ॥१५॥

अर्थ-वे उत्तम पुरुष मनुष्यों से घिरे हुए तीन कक्ष्याओं = कीटों को छांघकर, अहंकार के साथ निःशंक होकर राजा जरासन्थ के समीप जा पहुंचे,तब मभावशील राजा जरासन्थ विधि-पूर्वक उनका सत्कार करने के लिये उठकर समीप गया, और कहा कि आपका स्वागत हो ॥

सभापर्व-नवमाध्याय

५६५

तांस्त्वपूर्वेण वेशेन दृष्ट्वा स नृपसत्तमः । उपतस्थे जरासन्धो विस्मितश्चाभवत्तदा ॥१६॥ ते तु दृष्ट्वेव राजानं जरासन्धं नर्र्षभाः । इदम् चुरमित्रमाः सर्वे भरतसत्तम । स्वस्त्यस्तु कुशलं राजिन्निति तत्र व्यवस्थिताः॥१७॥

अर्थ-हे महाराज ! तव राजा जरासन्थ उनका अपूर्व भेष देखकर उनके समीप खड़े रहे और आश्चर्ययुक्त हो गये, हे भरतकुलश्रेष्ठ ! वे तीनो शञ्चनाशक महात्मा पुरुष, राजा जरासन्थ को देखते ही नियमानुसार वोले कि हे राजन ! तुम्हारा कल्याण हो ॥

तानविश्वित्रासन्धस्तथा पाण्डवयादवान् । आस्यतामिति राजेन्द्र वाह्मणच्छद्मसंवृतान् ॥१८॥ अथोपविविश्वः सर्वे त्रयस्ते पुरुष्पेभाः । तानुवाच जरासन्धः सत्यसन्धो नराधिपः । विग्रहमाणः कौरव्य वेशग्रहणवैकृतान् ॥१९॥

अर्थ-हे राजेन्द्र ! इसके पश्चाद जरासन्ध ने ब्राह्मण के भेष से छिपे हुए उन भीमसेन,अर्जुन तथा कृष्ण के प्रति कहा कि आप छोग बैठ जाइये, हे कुरुवंशी ! जब वे तीनो महात्मा बैठ गये, तब सत्यप्रतिज्ञ राजा जरासन्ध उनके अनुचित भेष बनाने की निन्दा करता हुआ, उन से यह कहने लगा कि :-

न स्नातकत्रता विषा बहिर्माल्यानुलेपनाः । भवन्तीति नृलोकेऽस्मिन् विदितं मम सर्वशः ॥२०॥ के यूयं पुष्पवन्तश्च भुजैर्ज्याकृतलक्षणैः। विभ्रतः क्षात्रमोजश्च बाह्मण्यं प्रति जानथ॥२१॥

अर्थ-मुझे यह बात भलेपकार विदित है कि बनावटी पुष्प माला तथा चन्दनादि धारण करने वालेलोग इस मनुष्यलोक में स्नातकब्राह्मण नहीं होसकते, तुम फूलों की माला धारणिकये हुए हो, किन्तु तुम्हारी भुजाओं में धनुब के चिल्ले के चिह्न पड़े हुए हैं और तुममें क्षत्रियों का तेज प्रतीत होता है, परन्तु तुम अपने आप को ब्राह्मण स्वीकार करते हो, सो बताओं कि तुम कौन हो ?॥

एवं विरागवसना बहिर्माल्यानुलेपनाः ।
सत्यं वदत के यूयं सत्यं राजस्र शोभते ॥२२॥
वैत्यकस्य गिरेः शृङ्गं भित्त्वा किमिह छद्मना ।
अद्बारेण प्रविष्टाःस्थ निर्भया राजिकल्विषात्॥२३॥
एवं च मासुपास्थाय कस्माच विधिनाईणास् ।
प्रणीतां नानुगृहणीत कार्यं किं वास्मदागमे ॥२४॥

अर्थ-इसमकार तुमलोग वैरागिओं केसे वस्त्र धारण कर बाहर फूल चन्दन आदि धाणर किये हुए क्षत्रिय प्रतीत होते हो, तुम सत्य बताओं कि कौन हो ? क्योंकि राजाओं के लिये सत्य-भाषण शोभित है,तुम लोग छल-कपट से चैत्यक पर्वत के शिखर को तोड़ फोड़ कर राजदण्ड से निर्भय हुए २ द्वार से भिन्न मार्ग अर्थात दीवार फलांगकर नगर में क्यों प्रविष्ठ हुए हो ? और इसप्रकार मेरे समीप आकर भी, मेरे विश्विप्तक किये हुए पूजन-सत्कार को क्यों ग्रहण नहीं करते हो ? अथवा यही बताओं कि मेरे समीप आने का तुम्हारा प्रयोजन ही क्या है ? ॥ एवमुक्ते ततः कृष्णः प्रत्युवाच महामनाः । स्निग्धगम्भीरया वाचा वाक्यं वाक्यविशारदः॥२५॥ स्नातकान् ब्राह्मणान् राजन् विद्धचस्मांरत्वं नराधिप। स्नातकबतिनो राजन् ब्राह्मणाः क्षात्रिया विशः॥२६॥

अर्थ-जरासन्ध के ऐसा कहने पर, बोलने में चतुर, महाधैर्य-वान कृष्ण स्नेहयुक्त गम्भीरवाणी से इसप्रकार कहने लगे, कि हे-राजन ! ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य,यह तीनों स्नातक होसकते हैं, सो तुम हमें स्नातकब्राह्मण समझो ॥

विशेषिनयमाश्चेषामिवशेषाश्च सन्त्युत । विशेषवांश्च सततं क्षात्रियः श्रियमृच्छिति ॥२७॥ क्षत्रियो बाहुवीर्यस्तु न तथा वाक्यवीर्यवान् । तिहृदक्षिस चेद्राजन् दृष्टास्यद्य न संशयः ॥२८॥

अर्थ-इन तीनो स्नातकवर्णों के विशेष और साधारण नियम हैं, इनमें विशेष नियमों का पालन करने वाला क्षत्रिय सदा लक्ष्मी को प्राप्त करता है, क्षात्रिय के भुजाओं में पराक्रम रहता है निक बचनों में, सो हे राजन ! यदि तुम उस पराक्रम को देखना चाहते हो, तौ आज देख लोगे, इस में सन्देह नहीं ॥

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान् । प्रविशन्ति नरा धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः ॥२९॥ कार्यवन्तो गृहान्येत्य शत्रुतो नार्हणां वयम् । प्रतिगृहणीम तद्विद्धि एतन्नःशास्वतं न्रतम् ॥३०॥ 4६८

महाभारत

अर्थ-हे राजन ! धीर पुरुष, शञ्च के घरमें द्वारमार्ग से नहीं घुसते, किन्तु अन्य मार्ग बनाकर प्रविष्ट होते हैं, और मित्र के घरमें द्वार मार्ग से प्रविष्ट होते हैं, यही धर्मानुकूल द्वार कहाते हैं, हे राजन ! हम शत्रुओं के घर में किसी अन्य प्रयोजन से आकर शञ्चके पूजनसत्कार को ग्रहण नहीं करते हैं यह आप हमारा सदा का व्रत समिक्षिये ॥

इति नवमोऽध्यायः समाप्तः

अथ दशमोऽध्यायः प्रारम्यते

जरासन्ध उवाच

न स्मराभि कदा वैरं कृतं युष्माभिरित्युत । चिन्तयंश्च न पश्यामि भवतां प्रति वैकृतम् ॥१॥ वैकृते वाऽसति कथं मन्यध्वं मामनागसम् । अरिं वै बृत हे विप्राः सतां समय एष हि ॥२॥

अर्थ-जरासन्थ बोला कि हे ब्राह्मणो ! मुझे स्मरण नहीं है कि मैंने तुम लोगों के साथ कब वैर किया था, और ना ही मुझे यह स्मरण आता है कि मैंने आप लोगों का कुछ भी विगाड़ किया है जब मैं ने तुमलोगों का कोई भी अपकार नहीं किया, तो तुम मुझ निरपराध को क्यों शञ्च मानते और कहते हो ? हे विप्रो ! क्या सत्पुरुषों का यही नियम है ?॥

अर्थधर्मोपघाताद्धि मनः समुपतप्यते । योऽनागसि प्रसजति क्षत्रियो हि न संशयः ॥३॥

सभाविर्द-दशमाध्याय

680

त्रैलोक्ये क्षत्रधमों हि श्रेयान्वे साधुचारिणाम् । नान्यं धर्म प्रशंसान्ति ये च धर्मविदो जनाः ॥४॥ तस्य मेऽद्य स्थितस्येह स्वधर्मे नियतात्मनः । अनागसं प्रजानां च प्रमादादिव जल्पथ ॥५॥

अर्थ-जो क्षत्रिय निरपराध पर अत्याचार करता है उसके अर्थ और धर्म का नाश होजाता तथा वह पीछे मनमें सन्ताप करता है इस में सन्देह नहीं, धर्मक पुरुष, सदाचारियों के लिये क्षत्रिय-धर्म अर्थाद राजनीति को ही तीनों लोकों में श्रेष्ठ धर्म बताते हैं अन्य धर्म को नहीं, सो मैं उस स्वकीय क्षत्रियधर्म में इट्डूप से स्थिर तथा प्रजाओं पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करता हूं, तो भी तुम मेरे विषय में अज्ञान से उक्त बातें कह रहे हो ॥

कृष्ण उवाच

कुलकार्य महाबाहो कश्चिदेकः कुलोबहः। वहते यस्तिन्नयोगादयमभ्युद्यतास्त्वाय ॥६॥ त्वया चोपहृता राजन् क्षत्रियो लोकवासिनः। तदागः क्रूरमुत्पाद्य मन्यसे किमनागसम्॥७॥

अर्थ-फृष्ण जी बोले कि हे महावाहु! कुल अर्थात जाति के निमित्त, कोई एक विरला ही कुलभूषणपुरुष कर्नव्यभार को धारण करता है, उसी कर्तव्य को लक्ष्य करके हम ने तुम पर आक्रमण किया है, तात्पर्य यह है कि यद्यपि तुमने हमारा निज का कोई विगाड़ नहीं किया, परन्तु तुम ने जातिद्रोह किया है, इसी का प्रत्युपाय करने केलिये हमलोग सुम्हारे साथ युद्ध करने 6,90

महाभारत

को उद्यत हुए हैं, हे राजन ! तुम ने स्वदेशवासी क्षत्रियों को काट २ कर अपने किस्पतदेवता के निमित्त विट्यान = कुर्वान किया है, सो इस महाघोरपाप को करके भी अपने आपको निरपराध कैसे समझते हो ? ॥

राजा राज्ञः कथं साधून् ।हिंस्यान्नृपातिसत्तम् । तद्राज्ञः सिनगृह्य त्वं रुद्रायोपजिहीषीस् ॥८॥ अस्मांस्तदेनोपगच्छेत् कृतं बाईद्रथ त्वया । वयं हि शक्ता धमस्य रक्षणे धमचारिणः ॥९॥

अर्थ-हेमहाराज! राजा के लिये यह किस मकार उचित हो सकता है कि वह सत्पुरुषराजाओं को मारे, परन्तु तुम राजाओं को पकड़ २ कर शिव की मूर्ति के आगे वालिदेने की चेष्टा करते हो, हे बृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध! यह तुम्हारा किया हुआ पाप हमें भी लगता है, क्योंकि हम धर्मचारी वीरक्षत्रिय धर्म की रक्षा करने में समर्थ हैं, तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य पापिओं को पाप से हटाने में समर्थ हैं उन्हे उचित है कि पापिओं को दण्ड देकर धर्म की रक्षा करें, याद वह ऐसा नहीं करते तो उस पापी का किया हुआ पाप उन्हें भी लगता है॥

मनुष्याणां समालम्भो न च दृष्टः कदाचन । स कथं मानुषेर्देवं यष्टुमिच्छिस शङ्करम् ॥१०॥ सवणों हि सवर्णानां पश्रुसंज्ञां करिष्यसि । कोऽन्य एवं यथा हि त्वं जरासन्ध वृथामितः॥११॥ अर्थ-दे जरामन्ध!यह बात कभी नहीं देखी गई कि मनुष्यों का विलिदान किया जाय, परन्तु त् मनुष्यों की विलिद्वारा कैसे अपने रुद्रदेवता की पूजा करना चाहता है, हे जरासन्ध ! त् अपनी जाति के क्षत्रियों का "पशु" नाम रखकर उनकी बिलि देता है तो तू भी उसी जाति का होने से पशु ही रहा, भला तुझ जैसा वृथाबुद्धि और कौन होगा ॥

यस्यां यस्यामवस्थायां यद्यत् कर्म करोति यः । तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समवाप्तुयात्।।१२॥ ते त्वां ज्ञातिक्षयकरं वयमार्त्तीनुसारिणः । ज्ञातिवृद्धिनिमित्तार्थं विनिहन्तुमिहागताः ॥१३॥

अर्थ-मनुष्य जिस २ दशा में जैसा २ उपकार वा अपकार करता है वह स्वयं उस २ दशा में होकर अपने उस २ कर्म का फल प्राप्त करता है, तात्मर्य यह है कि त् राजाओं को पशुओं की भांति काट २ कर विले देता है सो इतिष्ठिये तू भी पशु की भांति ही काटा जावेगा, हम लोग जो दुःखी पुरुषों के सहायक हैं अपनी जाति उन्नति के निमित्त, तुझ जाती का नाश करने वाले पापी को झारने के लिये यहां आये हैं, और :-

नास्ति लोके पुमानन्यः क्षित्रयोष्यिति चैव तत् । मन्यसे सच ते राजन् सुमहान् बुद्धिविप्लवः॥१४॥ को हि जानन्नभिजनमात्मवान् क्षित्रयो नृप । नाविशेत् स्वर्गमतुलं रणानन्तरमञ्ययम् ॥१५॥ स्वर्ग होव समास्थाय रणयज्ञेषु दीक्षिताः । जयन्ति क्षित्रयालोकांस्तिद्धिस् मनुजर्षम् ॥१६॥ अर्थ-हे राजन ! तू जो समझता है कि क्षत्रियों में मेरे समान अन्य कोई वीर नहीं सो तेरी बुद्धि में भारी श्रम है, कौन ऐसा धीरवीर क्षत्रिय राजा है जो अपनी कुछीनता का विचार करता हुआ भी तुझ जैसों के साथ युद्ध करके चिरस्थायी अनुपम स्वर्ग सुख को माप्त न हो, हे महात्मन ! स्वर्ग अर्थात सुख को छक्ष्य करके ही क्षत्रियवीर संग्रामयज्ञ की दीक्षा छेकर देशदेशान्तरों पर विजय पाते हैं, सो तू इस वात पर ध्यान दे॥

स्वर्गयोनिमहद्बद्धा स्वर्गयोनिमहद्यशः । स्वर्गयोनिस्तयो युद्धे मृत्युः सोऽव्यभिचारवान् । स्वर्गमार्गाय कस्य स्याद्विग्रहो वै यथा तव ॥१७॥

अर्थ-हे राजन ! यह महती वेदिवद्या, वहायश, तप और युद्ध में होने वाली मृत्यु, यह सब कार्य स्वर्ग की प्राप्ति के साधन हैं, इनके होने पर स्वर्ग की प्राप्ति होना आवश्यक है, और हे राजन ! जैसा तरे साथ युद्ध करना स्वर्ग का साधन है वैसा अन्य किसके साथ होगा ॥

मागधैर्विपुलैःसैन्यैः बाहुल्यबलदर्पितः । मावमंस्थाः परात्राजन्नस्ति वीर्य नरे नरे । समं तेजस्त्वया चैव विशिष्टं वा नरेश्वर ॥१८॥ यावदेतदसंबुद्धं तावदेव भवेत्तव ।

विषद्यमेतदस्माकमतो राजन् ब्रवीमि ते ॥१९॥ अर्थ-हे राजन ! त मगधशासी भारी सेनाओं की अधि-कता के बल पर घमंड करके दूसरों का अपमान मत कर, क्योंकि मनुष्य र में तेरे समान वा तुझ से भी अधिक वल दृष्टिगोचर होता है, परन्तु तुम इस बात को जब तक नहीं जानते हो, तब तक ही तुम अपभा बल सबसे आधिक मान रहे हो, हैं राजन ! हमें तुम्हारा यह वर्जाव सहन नहीं हो सकता, इसीलिये तुम से हम यह हित की बात कहते हैं कि :—

जिह त्वं सदृशेष्वेव मानं दर्पं च मागध। मा गमः सस्रुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम् ॥२०॥ युयुक्षमाणास्त्वत्तो हि न वयं ब्राह्मणा ध्रुवम् । शौरिरस्मि हृषींकेशो नृवीरौ पाण्डवाविमौ ॥२१॥ त्वामाह्वयामहे राजन् स्थिरो युध्यस्व माग्ध । सुञ्च वा नृपतीन सर्वान् गच्छ वात्वं यमक्षयम्॥२२॥ अर्थ-हे जरासन्ध ! तुम्हें अपने समान प्रातिष्ठा वाले पुरुषों के साथ तो अभिमान तथा घमंड न करना ही उचित है, तुम अपने पुत्र, मन्त्री और सेनासमेत मृत्यु के घरको मत जाओ, हे राजन् ! हमलोग तुम से युद्ध करना चाहते हैं, सो तुम यह निश्चय समझो कि इम ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु मैं शुरसेन की सन्तान कृष्ण हूं, और ये दोनों वीरपुरुष पाण्डु के पुत्र हैं, हे जरासम्ध राजन ! हम तुम्हें आह्वान करते हैं कि तुम हमारे सामने दृद्ता के साथ स्थिर होकर युद्ध करो, अथवा तुम सब कैदी राजाओं को छोड़ दो, अन्यथा स्वयम मौत के मुख में जाओ ॥

जरासन्ध उवाच नाजितान् वै नरपतीनहमादाद्म कांश्चन । अजितः पर्यवस्थाता कोऽत्रयो न मया जितः॥२३॥ क्षत्रियस्यैतदेवाहुधम्यं कृष्णोपजीवनम् । विक्रम्य वशमानीय कामतो यत्समाचरेत् ॥२४॥

अर्थ-जरासन्ध वोला कि हे कृष्ण! मैं विना विजय किये किसी राजा को नहीं पकड़ता, ऐसा कौन क्षत्रिय है जिसको मैंने जीता नहों और वह यहां ठहर सकता हो, क्षत्रिय का जीवनक्ष्प यही धूम कहा गया है, कि वह अपने पराक्रम से अन्य क्षत्रियों को वश में लाकर उनके साथ चाहे जैसा वर्ताव करे।

देवतार्थमुपाहत्य राज्ञः कृष्ण कथं भयात् । अहमद्य विमुच्येयं क्षात्रं व्रतमनुस्मरन् ॥२५॥ सैन्यं सैन्येन ब्यूदेन एक एकेन वा पुनः । द्राभ्यां त्रिभिर्वा योत्स्येहं युगपत् पृथगेव वा ॥२६॥

अर्थ-हे कृष्ण ! मैं कैदी राजाओं को अपने देवता के लिये विलदान देने का संकल्प = मण कर चुका हूं, अब मैं अपने क्षात्रधम का स्मरण रखता हुआ तुम लोगों के भय से उन राजाओं को कैसे छोड़ सकता हुं, सो यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो तुम्हारी सेना के साथ अपनी नियमयन्त्रित सेना द्वारा युद्ध करंगा अथवा यदि तुम में से एक, दो वा तीनों ही युद्ध करना चाहें, तो मैं अकेला ही तुम सब के साथ एकही वार वा एक २ के साथ युद्ध करंगा ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता जरासन्यः सहदेवाभिषेचनम् । आज्ञापयत्तदा राजा युयुत्सुभीमकर्माभः ॥२७॥ स तु सेनापितं राजा सस्मार भरतर्षभ । कौशिकं चित्रसेनं च तस्मिन् युद्धे उपस्थिते ॥२८॥ ययोस्ते नामनी राजन् हंसेति डिम्भकेति । पूर्व संकथितं पुंभिनृलोके लोकसत्कृते ॥२९॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे जनमेजय! जरासन्थ ने ऐसा कहकर भयानक उपायों द्वारा युद्ध करने की इच्छा से प्रथम अपने पुत्र सहदेव को राज्याभिषेक = राज्यातिलक देने की आज्ञा अर्थाद घोषणा कर दी, हे भरतकुल श्रेष्ठ राजन ! उस युद्ध के अवसर पर राजा जरासन्थ अपने मृत सेनापातिओं अर्थाद कौशिक और चित्रसेन "जिनके मनुष्यलोक में आदरणीय नाम " हंस " और " डिम्भक " हम पहले बता चुके हैं" उनका स्मरण करने लगा॥

ततस्तं निश्चितात्मानं युद्धाय यदुनन्दनः । उवाच वाग्मी राजानं जरासन्यम् वीक्षजः ॥३०॥ त्रयाणां केन ते राजन् योद्धमुत्सहते मनः । अस्मदन्यतमेनेह सजी भवतु को युधि ॥३१॥

अर्थ-हे राजा जनमेजय ! इसप्रकार राजा जरासन्ध के युद्ध निमित्त तैयार होजाने पर, बोलने में चतुर यदुंबशी कृष्ण जस से यह कहने लगे, कि हे राजन ! हम में से किसके साथ युद्ध करने का तुम्हारे चित्त में जत्साह है ? अर्थात हम तीनों में से कौन एकपुरुष तुम्हारे साथ युद्ध करनेके लिये तैयार होजावे ? ॥

एवमुक्तः स नृपतिर्श्रुद्धं वत्रे महाद्युतिः । जरासन्धस्ततो राजा भीमसेनेन मागधः ॥३३॥ आदाय रोचनां माल्यं मङ्गल्यान्यपराणि च। धारयन्नगदान् मुख्यान् निर्वृतीर्वेदनानि च। उपतस्थे जरासन्धं युयुत्सुं वै पुरोहितः ॥३३॥

अर्थ-कृष्णजी के ऐसा कहने पर उस महातेजस्वा मगध-वंशी राजा जरासन्थ ने भीमसेन के साथ युद्ध करना स्वीकार किया, इसके अनन्तर जब जरासन्थ युद्ध की तैयारी करने लगा तब उसका पुरोहित समयानुकूल शिष्टाचार के अनुसार गोरो-चन, फूल तथा अन्य मङ्गलीकबस्तुएं, मुख्य २ औषधिएं, और मुख तथा चैतन्य=होश में लाने के अन्यान्य साधन लिये हुए वहां आ पहुंचा॥

कृतस्वस्त्ययनो राजा ब्राह्मणेन यशस्विना। समनह्मजरारुन्धः क्षात्रं धर्ममन्तरमरन् ॥३४॥ अवमुच्य किरीटं स केशान् समनुगृह्म च। उदितष्टज्जरासन्धो वेलातिग इवार्णवः ॥३५॥

अर्थ-जब यशस्त्री ब्राह्मण स्वस्तिवाचन आदि शिष्टाचार करचुका, तब जरासन्थ अपने क्षत्रियधर्म का स्मरण करता हुआ युद्ध के लिये तैयार होने लगा, और राजा जरासन्थ अपने मुकुट को उतार के विखरे हुए बालों को संभालकर, भिन्नमर्यादा वाले समुद्र के समान बड़े वेग से युद्ध के लिये आखड़ा हुआ ॥

ततः सम्मन्त्र्य कृष्णेन कृतस्वस्त्ययनो बली । भीमसेनो जरासन्धमाससाद युयुत्सया ॥३६॥ ततस्तौ नरशार्दूलौ बाहुशस्त्रौ समीयतुः । वीरौ परमसंहष्टावन्योन्यजयकांक्षिणौ ॥३७॥

अर्थ-तव बलवान भीमसेन भी कृष्णजी के साथ कुछ
गुप्त सलाह करके स्वस्तिवाचन आदि शिष्टाचार करने के पश्चाद
युद्ध की इच्छा से जरासन्थ के सामने आगया,तब वह दोनों सिंहपुरुष केवल भुजारूपी शस्त्रों वाले वीर परमहर्षयुक्त परस्पर
एक दूसरे को विजय करने के इच्छुक हुए२ आपस में भिड़गये॥

करग्रहणपूर्व तु कृत्वा पादाभिवन्दनम्।

कक्षैः कक्षां विधन्वाना वास्फोटं तत्र चक्रतुः॥३८॥ स्कन्धे दोभ्यां समाहत्य निहत्य मुहुर्मुहुः।

अंगमंगैः समाश्ठिष्य पुनरास्फालनं विभो ॥३९॥

अर्थ-उन्होंने नियमानुसार पहले हाथ से हाथ मिलाया, पश्चात अपने २ गुरुओं को लक्ष्य करके प्रणाम किया, तदनन्तर कक्षा से कक्षा टकराकर पटापट शब्द किया, हे राजन ! कन्धों पर भुजाओं से आधात करके बार २ एक दूसरे को धक्का देकर परस्पर पत्येक अङ्ग टकराते हुए पुनः उसी प्रकार अञ्यक्त शब्द करने लगे।

चित्रहस्तादिकं कृत्वा कक्षाबन्धं च चकतुः ।
गलगण्डाभिघातेन सस्फुलिंगेन चाशनिम् ॥४०॥
बाहुपाशादिकं कृत्वा पादाहतशिरावुभौ ।
उरोहस्तं ततश्चके पूर्णकुम्भौ प्रयुज्य तौ ॥४१॥
अर्थ-इसके पश्चाद उन दोनों ने " चित्रहस्त, कक्षाबन्ध "

ज्वालासहित वज्रपात के समान "गलगण्ड" तथा "वाहुपाज्ञ " आदि मल्लयुद्ध के प्रयोग करके पैरों द्वारा शिर को आघात पहुंचाते हुए "उरोहस्त" तथा "पूर्णकुम्भ" नामक प्रयोग किये॥

करसम्पीडनं कृत्वा गर्जन्तौ वारणाविव । नर्दन्तौ मेघसङ्काशौ वाहुप्रहरणावुभौ ॥४२॥ तलेनाहन्यमानौ तु अन्योन्यं कृतवीक्षणौ । सिंहाविव सुसंकुद्धावाकृष्याकृष्य युध्यताम्॥४३॥

अर्थ-केवल भुजारूपी शस्त्रों वाले वह दोनों वीर हाथियों के समान चिंघाड़ते तथा मेघ के सामान गर्जते हुए हाथ से हाथ दवाकर लात से एक दूसरे को मारते और परस्पर कोधयुक्त सिंह के समान घूर २ कर देखते हुए एक दूसरे को खेंच २ कर मछ्युद्ध करने लगे॥

सर्वातिकान्तमयीदं पृष्ठभङ्गं च चक्रतुः । सम्पूर्णमूर्छो बाहुभ्यां पूर्णकुम्भं प्रचक्रतुः ॥४४॥ तृणपीडं यथाकामं पूर्णयोगं समुष्टिकम् । एवमादीनि युद्धानि प्रकुर्वन्तौ परस्पस्म् ॥४५॥

अर्थ-तदनन्तर वह दोनों सब मर्यादाओं को उल्लब्धन करके "पृष्ठभङ्ग, संपूर्णमूर्छा" भुजाओं द्वारा "पूर्णकुम्भ, तृणपीड" तथा यथेष्टरूप से "पूर्णयोग" और "मुष्टिक" इत्यादि प्रयोग करते हुए परस्पर मल्लयुद्ध में रत होगये॥

तयोर्थुद्धं ततो द्रष्टुं समेताः पुरवासिनः । त्राह्मणाः सत्रियाश्चेव वणिजश्च सहस्रशः ॥४६॥

सभापने-दशमाध्याय

499

श्रदाश्च नरशार्द्रल स्त्रियो वृद्धाश्च सर्वशः । निरन्तरमभूत्तत्र जनौधेर्भिसंवृतम् ॥४७॥

अर्थ-हे नरकार्द् ल राजन ! उस समय उन दोनों का युद्ध देखने के लिये सहस्रों पुरवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, २, स्त्रियें और वृद्धपुरुष भी इतने एकत्रित हुए कि मनुष्यसमुदाय की भीड़ के कारण स्थान का अवकाश न रहा ॥

तयोरथ अजाघाताान्निग्रहपग्रहात्तथा । आसीत्सुभीमसंपातो वज्रपर्वतयोरिव ॥४८॥ उभौ परमसंहष्टे। बलेन बलिनां वरौ । अन्योन्यस्यान्तरं प्रेप्सू परस्परजयेषिणौ ॥४९॥ प्रकर्षणाकर्षणाभ्यामनुकर्षविकर्षणैः । आकर्षतुरन्योन्यं जानुभिश्चावजन्नतुः ॥५०॥

अर्थ-उन दोनों के भुजाओं के आघात तथा एक दूसरे की धक्का मुक्की के कारण वज्र और पर्वत के पतन के समान शब्द होता था, वह दोनो बल्रवानों में श्रेष्ठ, परस्पर जीतने के इच्छुक, परम हर्षसम्पन्न एक दूसरे को गिराने का अवकाश चाहते हुए मक्षण = दूर फेंकते, आकर्षण = नीचे गिराते, अनुकर्षण = अपनी ओर खेंचते और विकर्षण = तिरछा फेंकते हुए एक दूसरे को धुटनों द्वारा ठोकर लगाते थे॥

ततः शब्देन महता भर्त्सयन्तौ परस्परम् । पाषाणसंघातानिभैः प्रहारैराभिजन्नतुः ॥ ५१॥

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ । बाहुभिः समसज्जतामायसैः परिघैरिव ॥ ५२॥

अर्थ-तव वह दोनों ऊंचे शब्द द्वारा एक दूसरे को धिकारने और पत्थरों के समान कठोर मुक्कों से मारने पीटने छगे, विशास छाती वाले मछयुद्ध में कुशल, महावाहु वह दोनों वीर छोहे के हथीड़े के समान कठोर भुजाओं द्वारा मछयुद्ध में आसक्त होगये॥

कार्त्तिकस्य तु मासस्य प्रवृत्तं प्रथमेऽहिन । अनाहारं दिवारात्रमाविश्रान्तमवर्त्तत ।। ५३ ॥ तद्भृतं तु त्रयोदश्यां समवेतं महात्मनोः । चतुर्दश्यां निशायां तु निवृत्तो माग्धःक्कमात्॥५४॥

अर्थ-उन दोनों महात्माओं का मछयुद्ध कार्त्तिकमास के मथम दिन अर्थाद प्रतिपदा से आरम्भ होकर दिनरात लगातार विना खाये पिये, त्रयोदशी तक उसी प्रकार प्रवृत्त रहा परन्तु चर्तुदशी अर्थाद चौदहवीं रात मगपराज जरासन्थ थककर युद्ध से निवृत्त होगया ॥

तं राजानं तथा क्वान्तं हट्वा राजन् जनार्दनः। उवाच भीमकर्माणं भीमं संबोधयन्निव ॥५५॥ क्वान्तः राजुर्न कौन्तेय लभ्यः पीडियंतु रणे। पीड्यमानोहि कात्स्न्येन जह्याजीवितमात्मनः॥५६॥

अर्थ-राजा जरासन्ध को इसप्रकार थका हुआ देखकर भयानककर्मकर्त्ता भीमसेन को संबोधन करके कृष्णजी यह

सभापर्व-एकादशाध्याय

969

कहने लगे कि है भीमसेन! युद्ध में थका हुआ शत्र पीड़ा दिये जाने योग्य नहीं, क्योंकि पीड़ित होकर वह सर्वथा ही अपने प्राणों को त्याग सक्ता है॥

तस्मात्ते नैव कौन्तेय पीडनीयो जनाधिपः। सममेतेन युध्यस्व बाहुभ्यां भर्त्तर्षभ ॥५७॥ एवमुक्तः स कृष्णेन पाण्डवः परवीरहा । जरासन्धस्य तदूपं ज्ञात्वा चक्रे मितं बधे ॥५८॥ ततस्तमजितं जेतुं जरासन्धं वृकोदरः । संरम्भं बलिनां श्रेष्ठो जग्राह कुरुनन्दनः ॥५९॥

अर्थ-हे शतकुलश्रेष्ठ कुन्ती के पुत्र भीमसेन ! तुम इस राजा को पीड़ा मत दो, किन्तु समानभाव से भुजाओं द्वारा इसके साथ युद्ध करो, तब उस शत्रुघाती वीर भीमसेन ने कृष्णजी के ऐसा कहते ही "ग्रप्त संकेत द्वारा" जरासन्ध का वैसा रूप समझकर उसके वध करते का दृढ़ संकल्प किया, तब उस अजय जरासन्धको जीतने के लिये बलवानों में श्रेष्ठ भीमसेन ने बढ़े वेग से भयानक केाधरूप को धारण करलिया॥

इति दशमोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकादशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैद्याम्पायन उवाच भीमसेनस्तदा कृष्णमुवाच यदुनन्दनम् । बुद्धिमास्थाय विपुलां जरासन्धवधेप्सया ॥१॥ ५८२

नायं पापो मया कृष्ण यक्तः स्यादनुरोधितुम्। प्राणेन यदुशार्दूळ बद्धकक्षेण वाससा ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे जनमेजय! तब भीमसेन ने जरासन्ध को मारने की इच्छा से दृढ़ बुद्धि स्थिर करके यदुकुलनन्दन कृष्णजी को यह उत्तर दिया कि हे यदुकुलश्रेष्ठ कृष्ण! में इससमय कमर कसे हुए युद्ध में तत्पर हूं और इस पापी जरासन्ध को जीता नहीं छोडुंगा ॥

एवमुक्तस्ततः कृष्णः प्रत्युवाच वृकोदरम् । त्वरयन् पुरुषव्याघो जरासन्धवधेष्सया ॥३॥ यत्ते दैवं परं सत्त्वं यच ते मातरिश्वनः । वलं भीम जरासन्धे दर्शयाशु तदद्य वै ॥४॥

अर्थ-भीमसेन के ऐसा कहने पर सिंहपुरुष कुष्ण जरासन्ध के बध के लिये शीघता करते हुए इसमकार भीमसेन से फिर बोले कि हे भीमसेन! तुम में जो परम दिच्य पराक्रम और वायु के समान बल है सो आज तुम शीघ ही जरासन्ध पर उस अपने महाबल को अवश्य दिखाओं।।

एवमुक्तस्तदा भीमो जरासन्धमरिन्दमः । उत्किप्य भामयामास बलवन्तं महाबलः ॥५॥ भामियत्वा शतग्रणं जानुभ्यां भरतर्षभ । बभञ्ज पृष्ठं संक्षिप्य निष्पष्य विननाद च । करे गृहीत्वा चरणं देधा चके महाबलः ॥६॥

सभापर्व-एकादशाध्याय

463

तस्य निष्पिष्यमाणस्य पाण्डवस्य च गर्जतः। अभवत्तुमुलो नादः सर्वप्राणिभयङ्करः ॥७॥

अर्थ-हे शत्रुविजयी राजा जनमेजय! कृष्णजी के ऐसा कहते ही महावली भीमसेन ने बलवान जरासन्थ की टांगे पकड़ कर जपर उटाके सौबार घुमाया पश्चाद अथोमुख नीचे पटककर अपने घुटनों की चोट से उसकी कमर तोड़ डाली, पुनः पृथ्वी पर उसे रगड़कर गर्जने लगा, अन्त में महावली भीमसेन ने उसकी एक टांग को अपने पांव से द्वाया और दूसरी टांग को हाथ से जपर उटाके बीच से चिरकर उसके दो दुकड़े करडाले, जिससमय जरासन्थ को भीमसेन ने अपने घुटने से द्वाया उस समय वह वड़ा भयानक शब्द करने लगा और इधर भीमसेन भी गर्जने लगा, एवं उन दोनों का किया हुआ और कोलाहल सब माणियों के लिये भयमद था॥

ततो राज्ञः कुलद्धारि प्रसिप्तमिव तं नृपम् । रात्रौ गतासुमुत्सृज्य निश्वक्रमुरिन्दमाः ॥८॥ जरासन्धरथं कृष्णो योजयित्वा पताकिनम् । आरोप्य भ्रातरौ चैव मोक्षयामास वान्धवान् ॥९॥

अर्थ-तब वह शत्रुदमनकर्ता कृष्ण और पाण्डव राजा जरा-सन्ध के मृतशरीर को राजमहल के द्वार पर लिटाकर रात में ही उसे छोड़ वाहर आगये, तत्पश्चाद कृष्णजी ने जरासन्ध के ध्वजायुक्त रथ को जुतवाया, पुनः दोनों भाइयों सहित उस पर चढ़कर केंद्री राजाओं के समीप गये और उन मब बन्धुओं का छुटकारा कर दिया॥ ते वे रत्नभुजं कृष्णं रत्नाहाः पृथिवीश्वराः । राजानश्रकुरासाद्य मोक्षिता महतो भयात् ॥१०॥ अक्षतः शस्त्रसंपन्नो जितारिः सह राजभिः । रथमास्थाय तं दिव्यं निर्जगाम गिरिन्नजात् ॥११॥

अर्थ-वड़े भारी भय से छुटकारा पाये हुए उन रत्नयोग्य राजाओं ने कृष्णजी के शरण आकर उनको बड़े २ रत्न भेट में दिये, इसमकार कृष्णजी स्वयं हानि न उठाके शञ्ज को जीतकर शक्ष धारण किये हुए उस दिन्य रथ पर चढ़ उन सब राजाओं को साथ लिये हुए पर्वतसमूह से अर्थाद जरासन्थ के देश से कुरुक्षेत्र जाने के लिये तैयार होगये॥

यःससोदयवान्नाम द्वियोधी कृष्णसारिथः । अभ्यासघाती संहश्यो दुर्जयः सर्वराजिभः ॥१२॥ भीमार्जनाभ्यां योधाभ्यामास्थितः कृष्णसारिथः। शुशुभे रथवर्योऽसौ दुर्जयः सर्वधन्विभः ॥१३॥

अर्थ-जरासन्ध का वह "सोद्यवान "नामक रथ जिस पर कृष्ण तथा पाण्डव चढ़े थे और दोनों हाथों से युद्ध करने वाले, समीप घात करने वाले, सुन्दररूपवान तथा सब राजाओं और धनुर्धारियों से न जीते जाने वाले कृष्णजी उस रथपर सारिथ बनकर बैठे तथा भीमसेन और अर्जुन यह दोनों योधा सवार हुए, इसमकार वह श्रेष्ठ रथ परम शोभायमान हुआ ॥

ततः कृष्णं महाबाहुं भ्रातृभ्यां सहितं तदा । रथस्थं मागधा दृष्ट्वा समपद्यन्त विस्मिताः॥१४॥

मभापर्व-एकादशाध्याय

6.66

हयैर्दिव्यैः समायुक्तो रथो वायुसमो जवे । अधिष्ठितः स शुशुभे कृष्णेनातीव भारत ॥१५॥ असङ्गो देवविहितस्तिस्मन्नथवरे ध्वजः । योजनाद्दहशे श्रीमानिन्द्रायुधसमप्रभः ॥१६॥

अर्थ-उससमय महावाहु कृष्ण को दोनों भाइयों अर्थात पाण्डवों समेत रथपर वैठे हुए देखकर मगधदेशनिवासी छोग अचिम्भत होगये, हे भारतीय राजन ! दिन्य घोड़ों से युक्त वायु समान वेग वाछा वह रथ कृष्णजी के वैठने से अत्यन्त सुहावना प्रतीत होताथा, उस रथ पर जो देव = विद्वान पुरुषों ने ध्वजा बनाई थी, वह रथ से न छूकर पृथक ही उसपर स्थिर रहती हुई इन्द्रधनुष के समान प्रभा धारण किये हुए एक योजन = चारकोस की दूरी से ही सुशोभित दिखाई देती थी॥

न स सज्जित वृक्षेषु शस्त्रैश्चापि न विध्यते । दिव्यो ध्वजवरो राजन् दृश्यते चेह मानुषैः ॥१७॥ तमास्थाय रथं दिव्यं पर्जन्यसमिनःस्वनम् । निर्ययौ पुरुषव्याघः पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः ॥१८॥

अर्थ-हे राजन ! वह ध्वजा इसमकार की विचित्र बनाई गई
थी कि न तो वह वृक्षों में ही अटकती और नाही शस्त्रों से
विंध सकती थी किन्तु मनुष्यों को केवल दिव्यरूप श्रेष्ठध्वजा
दिखाई अवस्य देती थी, वज्र के समान ध्विन करने वाले उस
दिव्य रथ पर वैठकर अच्युत = अपने कर्तव्य से विचलित न होने
वाले सिंहपुरुष कृष्णजी पाण्डवों समेत वहां से चल दिये ॥

स निर्याय महाबाहुः पुण्डरीकेक्षणस्ततः । गिरित्रजाद्बहिस्तस्थी समदेशे महायद्याः ॥१९॥ तत्रैनं नागराः सर्वे सत्कारेणाभ्ययुस्तदा । त्राह्मणप्रमुखा राजन् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥२०॥

अर्थ-तब महाबाहु, महामतापी, कमलनेत्र कृष्णजी पर्वतों की ऊंची नीची भूमी से निकलके समधरातलस्थान में पहुंचकर शान्तिपूर्वक ठहरगये, हे राजन् ! नगरवासीब्राह्मण आदि चारो वर्णों के मनुष्य विधि = शिष्टाचार के अनुसार कृष्णजी का सत्कार करने केलिये उस स्थान पर एकत्रित हुए, और:—

वन्धनाद्विप्रमुक्ताश्च राजानो मधुसूदनम् । पूजयामासुरू अश्व स्तुतिपूर्विमिदं वचः ॥२१॥ नति चित्रं महाबाहो त्विय देविकनन्दने । भीमार्जनबलोपेते धर्मस्य प्रतिपालनम् ॥२२॥ जरासन्धहदे घोरे दुःखपङ्के निमज्जताम् । राज्ञां समभ्यद्धरणं यदिदं कृतमद्य वै ॥२३॥

अर्थ-जिन राजाओं का कृष्णजी ने छुटकारा किया था वह लोग भी मधुराक्षम का नाश करने वाले कृष्णजी का सत्कार करके स्तुतिपूर्वक यह बचन बोले कि है महाबाहु देवकी पुत्र कृष्ण! आपके लिये यह आश्चर्य की बात नहीं कि आप भीमसेन और अर्जुन के बल से युक्त होकर धर्म की रक्षा करें, जैसाकि आपने आज दुःख-रूपी कीचड़ से पूर्ण जरासन्थरूपी भयंकर तालाव में इबते हुए हम सब राजा लोगों का उद्धार किया है॥ विष्णो समवसन्नानां गिरिदुर्गे सुदारुणे। दिष्ट्या मोक्षाचशोदीप्तमाप्तं ते यदुनन्दन ॥२४॥ किं कुर्मः पुरुषन्यात्र शाधि नः प्रणतिस्थितान्। कृतिमित्येव तिद्वाद्धे नृपैर्यचिष दुष्करम् ॥२५॥

अर्थ-हे यदुकुलश्रेष्ठ कृष्ण ! अहोभाग्य है कि पर्वत के भयानक दुर्ग में क़ैद हुए २ दुःखग्रस्त हमलोगों का छटकारा करके आपने पदीप्यमान यश प्राप्त किया, हे पुरुपितंह ! अब आप कृपाकरके हम सब आज्ञाकारियों को आज्ञा दीजिये कि हमलोगइसके प्रत्युपकार में आपकी क्या सेवा करें ! चाहे वह कार्यकटिन से कठिन भी हो परन्तु आप हम राजा लोगों से वह किया हुआ ही समिश्चिये।।

तानुवाच ह्षीकेशः समाखास्य महामनाः । युधिष्ठिरे। राजस्यं ऋतुमाहर्तुभिच्छति ॥२६॥ तस्य धर्भप्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः । सर्वेभवद्विविज्ञाय साहाय्यं ऋियातामिति ॥२७॥

अर्थ-महाधेर्यवान् जितेन्द्रिय कृष्णजी उन सब राजाओं को धेर्य देकर बोले कि राजा युधिष्ठिर राजसूययज्ञ करना चाहते हैं सो उस धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर को चक्रवर्ती राजा बनाने में आप सब लोगों को सहायता करना उचित है।

ततः सुशीतमनसस्ते नृपा नृपसत्तम् । तथेत्येवाब्रुवन् सर्वे प्रतिगृह्यास्य तां गिरम्॥२८॥ रत्नभाजञ्च दाशाई चक्रुस्ते पृथिवीश्वराः । कृच्छाज्जग्राह गोविन्दस्तेषां तदनुकम्पया ॥२९॥

अर्थ-हे राजोत्तम जनमेजय ! तव वह सव राजा छोग प्रसन्न चित्त से कृष्णजी की उस वात को स्वीकार करके वोछे कि "बहुत अच्छा" इसके पश्चाद उन राजाओं ने गोरक्षक कृष्णजी को बड़े र स्त्र भेट किये और कृष्णजी ने बड़े आग्रहपूर्वक उन राजाओं को प्रसन्न करने के छिये उनकी भेटें छीं ॥

जरासन्धात्मजश्चैव सहदेवो महामनाः । निर्ययो सजनामात्यः पुरस्कृत्य पुरोहितम् ॥३०॥ स नीचैः प्रणतो भूत्वा बहुरत्नपुरोगमः । सहदेवो नृणां देवं वासुदेवसुपस्थितः ॥३१॥

अर्थ-तब जरासन्ध का पुत्र महाचेता सहदेव भी अपने पुरोहित को आगे करके भाई बन्धुओं तथा मन्त्रियों समेत कृष्णजी के समीप गया और वह बहुत से रत्नों की भेटें आगे किये हुए अत्यन्त नम्रतापूर्वक मनुष्यों में देवता कृष्णजी की सेवा में आ उपस्थित हुआ।

भयार्चाय ततस्तस्मै कृष्णो दत्त्वाभयं तदा । आददेऽस्य महार्हाणि स्त्रानि पुरुषोत्तमः ॥३२॥ अभ्याषेत्रत तत्रैव जरासन्धात्मजं मुदा । गत्वैकत्वं च कृष्णेन पार्थाभ्यां चैव सत्कृतः ॥३३॥ विवेश राजा द्युतिमान् वार्हद्रथपुरं नृप । अभिषिक्तो महाबाहुर्जरासन्धिमहात्मभिः ॥३४॥

अर्थ-तबपुरुषोत्तम कृष्णजीने उस शरणालत आये हुए भयभीत राजकुमार को अभयदान देकर उसकी उत्तमोत्तम रत्नों की भेट स्वीकार की तथा कृष्णजीने जरासन्थ के पुत्र सहदेव को उसी स्थान में प्रसन्नतापूर्वक मगथदेश का राज्याभिषेक=राज्यातिलक दिया, तत्पश्चात वह महाबाहु तेजस्वी राजा सहदेव कृष्णजी और पाण्डवों के साथ मेल करके उनसे सत्कार पाया हुआ जरासन्थ के नगर अर्थात मगथ की राजधानी में प्रविष्ट हुआ और वहां पर शिष्टाचार के अनुसार अन्य महात्माओं ने उसको विधिवत राज्याभिषेक दिया ॥

कृष्णस्तु सह पार्थाभ्यां श्रिया परमया यतः । रत्नान्यादाय भूरीणि प्रययौ पुरुषर्पभः ॥३५॥ इन्द्रप्रस्थमुपागम्य पाण्डवाभ्यां सहाच्युतः । समेत्य धर्मराजानं प्रीयमाणोऽभ्यभाषत ॥३६॥

अर्थ-तदनन्तर श्रेष्ठपुरुष कृष्णजी भी असंख्य रतों को ग्रहण करके परम लक्ष्मी सहित दोनों पाण्डवों को साथ लिये हुए इन्द्रमस्थ को चले गये, पश्चात इन्द्रमस्थ में पहुंच दोनो पाण्डवों समेत धर्मराज युधिष्ठिर के समीप जाकर मसन्नतापूर्वक इस मकार बोले कि:—

दिष्ट्या भीमेन बलवान् जरासन्थो निपातितः। राजानो मोक्षिताश्चेव बन्धनान्नुपसत्तम्।।३७॥ दिष्ट्या कुशलिनौ चेमौ भीमसेनधनञ्जयौ। पुनः स्वनगरं प्राप्तावक्षताविति भारत ।।३८॥

महाभारत

अर्थ-हे भारतीय राजन युधिष्ठिर! तुम्हें वधाई है कि तुम्हारा बलवान्शञ्च राजा जरासन्य भीमतेन से मारा गया और कैंद से राजा लोग छूट गये तथा यह दोनों भीमसेन और अर्जुन विना कुछ हानि उठाये कुशलपूर्वक फिर अपने नगर में लौट आये॥

ततो युधिष्ठिरः कृष्णं यूजियत्वा यथाहतः। भीमसेनार्जनौ चैव प्रहृष्टः परिषस्वजे ॥३९॥ ततः क्षीणे जरासन्धे भातृभ्यां विहितं जयम्। अजातशत्रुरासाद्यं मुमुदे भातृभिः सह ॥४०॥

अर्थ-इसके अनन्तर युधिष्ठिर ने तिथिपूर्वक कृष्णजी का पूजन करके भीमसेन तथा अर्जुन को बड़े हर्ष के साथ आलिङ्गन किया, इस प्रकार जरासन्थ के नष्ट होजाने पर अपने भाइयों द्वारा मगधदेश पर विजय पाकर युधिष्ठिर ने सब भाइयों समेत आनन्द मनाया॥

यथावयः समागम्य भ्रातृभिः सह पाण्डवः। सत्कृत्य प्रजियत्वा च विससर्ज नराधिपान् ॥४१॥ युधिष्ठिराभ्यनुज्ञातास्ते नृपा हृष्टमानसाः।

जग्मः स्वेदशांस्त्विरिता यानैरुचावचैस्ततः ॥४२॥
अर्थ-तद्दन्तर भाइयों समेत युधिष्टिर केंद्र से छूटे हुए
राजा लोगों के साथ उनकी आयु के अनुसार अभिवादन,
आलिङ्गन वा आशीर्वाद की रीति से मिले, पश्चात उन सव
राजाओं का यथोचित सत्कार करके उनको विदा किया,
युधिष्टिर की अनुमति पाकर वह सब राजा लोग मसन्नचित्त हुए २
विविध मकार की सवारियों द्वारा शीध ही अपने २देश को चलेगये॥

एवं पुरुषशार्ष्ट्रलो महाबुद्धिर्जनार्दनः । पाण्डविर्घातयामास जरासन्धमिरं तदा ॥४३॥ घात।यत्वा जरासन्धं बुद्धिपूर्वमिरिन्दमः । धर्मराजमनुज्ञाप्य पृथां कृष्णां च भारत । धोम्यमामन्त्रियत्वा च प्रययौ स्वां पुरीं प्रति ॥४४॥

अर्थ-इस प्रकार सिंहपुरूप पहाबुद्धिमान कृष्णजी ने पाण्डवों द्वारा अपने शञ्च जरासन्थं को परवा दिया, हे भारतीय राजन ! शञ्चदमनकर्ता कृष्णजी बुद्धि के वल से जरासन्ध को परवाकर पश्चाद धर्मराज युधिष्ठिर अपनी बुआ कुन्ती तथा द्रौपदी और पाण्डवों के पुरोहित धौम्य, इन सब से अनुमित लेकर अपनी नगरी द्वारका को चले गये।

ततो गते भगवित कृष्णे देविकनन्दने । जयं लब्धा सुविपुलं राज्ञां दत्त्वाभयं तदा ॥४५॥ संवर्द्धितं यशोभ्यः कर्मणा तेन भारत । द्रोपद्याः पाण्डवा राजन् परां प्रीतिमवर्द्धयन् ॥४६॥ तस्मिन् काले तु यद्युक्तं धर्मकामार्थसंहितम् । तद्राजा धर्मतश्चके प्रजापालनकीर्त्तनम् ॥४७॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! तव देवकिपुत्र भगवान कृष्णजी के चले जाने पर पाण्डव लोग वड़ी भारी विजय को पाकर और सब राजाओं को अभयदान देकर उस कर्मद्वारा अधिकाधिक यश बढ़ाते गये और इसमकार स्वयं आनन्द भोगते हुए अपनी भार्या महाभारत

द्रौपदी की प्रसन्नता को भी उन्नत करते गये, उस समय राजा युधिष्ठिर धर्म, काम और अर्थ के साथ २ यथायोग्य मजा की रक्षा धर्मपूर्वक करने लगे॥

अर्जन उवाच धरुरस्नं शरावीर्यं पक्षोभृमिर्यशो बलम् । प्राप्तमेतन्मया राजन् दुष्प्रापं यदभीप्सितम् ॥४८॥ तत्र कृत्यमहं मन्ये कोषस्य परिवर्द्धनम् । करमाहारियष्यामि राज्ञः सर्वान्नुपोत्तम् ॥४९॥

अर्थ-तब कुछ काल बीतने के अनन्तर एक समय अर्जुन युधिष्ठिर के मित कहने लगे कि हे राजन ! मेरा महापराक्रमी धनुष और अस्त्र मेरा पक्ष अर्थाद सहायक है इनकी ही सहायता से मैंने भूमि, यश, बल वा सेना आदि दुर्लभ से दुर्लभ जो वस्तु चाही सो पाई, सो अब मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि कोष=ख़ज़ाने की बढ़ती कीजाय, हे महाराज ! इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये मैं सब राजाओं को विजय करके उन पर कर नियत करंगा॥

वैशम्पायन जनाच धनञ्जयवचः श्वत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः । स्निग्धगम्भीरनादिन्या तं गिरा प्रत्यभाषत ॥५०॥ स्वस्तिवाच्याईतो विप्रान् प्रयाहि भरतर्षभ। दुईदामप्रहर्षाय सुहृदां नन्दनाय च। विजयस्ते श्ववं पार्थ प्रियं काममवाप्यस्यसि ॥५१॥ अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे जनमेजय ! अर्जुन का उक्त वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर स्नेह तथा गम्भीरतायुक्त वाणी द्वारा वोले कि हे भरतकुलश्रेष्ठ ! तुम योग्य विमलोगों से स्वस्तिवाचन तथा शिष्ठाचार की रीति कराकर शञ्चओं को पीड़ित तथा मित्रों को आनन्दित करने के लिये जाओ, हे अर्जुन ! तुम्हें अवस्य विजय की प्राप्ति होकर तुम्हारा अभीष्ठ मनो-रथ पूर्ण होगा ॥

इत्युक्तः प्रययो पार्थः सैन्येन महतावृतः । तथेव भीमसेनोऽपि यमौ च पुरुषर्धभौ । ससैन्याः प्रययुः सर्वे धर्मराजेन प्रजिताः ॥५२॥

अर्थ-युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर अर्जुन वड़ी भारी सेना लिये हुए चल दिया,इसीनकार भीमसेन, दोनों जोड़ले भाई अर्थाद श्रेष्ठपुरुष नकुल और सहदेव भी युधिष्ठिर से सत्कार पाकर अपनी सेनायें लेकर चले गये॥

दिशं धनपतेरिष्टामजयत् पाकशासिनः । भीमसेनस्तथा प्राचीं सहदेवस्तु दक्षिणाम् । प्रतीचीं नकुलो राजन् दिशं व्यजयतास्त्रवित्।।५३। खाण्डवप्रस्थमध्यस्थो धर्मराजो युधिष्ठिरः । आसीत् परमया लक्ष्म्या सहद्भणवृतः प्रभुः ॥५४॥

अर्थ-अर्जुन ने कुवेर की पिय उत्तरिद्या को विजय किया, अस्त्रवेत्ता भीमसेन ने पूर्वदिशा को, सहदेव ने दाक्षणिदिशा को और नकुल ने पश्चिमिदिशा को विजय किया, हे राजन ! इसमकार महाभारत

468

प्रभावशाली धर्मराज युधिष्ठिर अपने बन्धुओं समेत इन्द्रमस्थ भें वैठे हुए ही परम संपत्तिसम्पन्न होगये ॥

इति एकादशोऽध्यायः समाप्तः

अथ दादशोऽध्यायः प्रारम्यते

जनमेजय उवाच

दिशामभिजयं बद्धन् विस्तरेणानुकीत्तय । न हि तृष्यामि पूर्वेषां शृष्वानश्चरितं महत् ॥ १,॥

अर्थ-जनमेजय ने कहा कि है विप्न वैशम्पायन! आप इनके दिग्विजय की कथा कृपाकरके विस्तारपूर्वक वर्णन करें,क्योंकि अपने पूर्वपुरुवाओं का महान्जीवनचरित्र सुनने से मेरी तृप्ति नहीं होती ॥

वैश्वाम्पायन उवाच धनञ्जयस्य वक्ष्यामि विजयं पूर्वमेव ते । यौगपद्येन पार्थेहिं निर्जितेयं वसुन्धरा ॥२॥ पूर्व कुलिन्द्विषये वशे चक्रे महीपतीन् । धनञ्जयो महाबाहुर्नातितीवेण कर्मणा ॥३॥

अर्थ-त्रैशम्पायन बोले कि हे जनमेजय ! मैं प्रथम अर्जुन के उत्तरिदिग्विजय का वर्णन करता हूं, क्योंकि चारो पाण्डवों ने एक ही समय में एक २ दिशा जीतकर सारी पृथ्वी को विजय किया था और महाबाहु अर्जुन ने सबसे पहले कुलिन्द प्रदेश के सब राजाओं को सहज ही में वश कर लिया था ॥

आनर्त्तान् कालकूटांश्च कुलिन्दांश्च विजित्य सः । समण्डलं चावजितं कृतवान् सहसैनिकम् ॥ ४ ॥ स तेन सहितो राजन् सन्यसाची परन्तपः । विजिग्ये शाकलं द्वीपं प्रतिविन्ध्यं च पार्थिवम् ॥५॥

अर्थ-इस मकार नर्त और कालक्र्य्देश तक कुलिन्द-मदेश के सब राजाओं को जीतकर सेना समेत "सुमण्डल" राजा को भी अपने अधीन कर लिया, हे राजन ! तब शञ्चसंतापकारी अर्जुन ने उस तिजित राजा सुमण्डल को अपना साथी बना लिया, पुनः दोनों ने मिलकर "शाकलद्वीप" तथा वहां के राजा "मतिविन्ध्य" को भी पराजित किया ॥

शाकलद्वीपवासाश्च सप्तद्वीपेषु ये नृपाः । अर्जुनस्य च सैन्यैस्तैर्विग्रहस्तुमुलोऽभवत् ॥ ६॥ स तानिष महेष्वासान् विजिग्ये भरतर्षम् । तैरेव सहितः सर्वैः प्राग्ज्योतिषमुपादवन् ॥ ७॥

अर्थ-शाकलद्वीप के निवासी जो कि अन्य सातद्वीपों में वास करते थे वह सब युद्ध के लिये इकट्ठे हुए और अर्जुन की सेनाओं के साथ उनका घोर संग्राम हुआ, हे भरतकुल श्रेष्ठ-राजन ! बीर अर्जुन ने उन सब महायनुर्धारी राजाओं को भी विजय करिलया और उन सबको सहायककृप में अपने साथ लेकर "माज्योतिष"=कामकृप देश पर चढ़ाई की ॥

तत्र राजा महानासीद् भगदत्तो विशाम्पते । तेनासीत् समहसुद्धं पाण्डवस्य महात्मनः ॥ ८॥ स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत्। अन्यश्च बहुभियोंथैः सागरानूपवासिभिः ॥९॥ ततः स दिवसानष्टौ योधियत्वा धनञ्जयम् । प्रहसन्नववीदाजा संग्रामिवगतक्कमम् ॥१०॥

अर्थ-हे राजन ! वहां प्राग्ज्योतिपप्रदेश में "भगदत्त" नामक एक वड़ा राजा राज्य करता था उसके साथ महात्मा अर्जुन का महासंग्राम हुआ प्राग्ज्योतिपाधिपित राजा भगदत्त के उस युद्ध में किरात, चीन तथा समुद्र के आम पास रहने वाले अन्य बहुत से वीर राजा सहायक होगये, तब राजा भगदत्त ने आठ दिन तक लगातार युद्ध करके भी जब अर्जुनको कुछ भी युद्ध की थकावट हुई न देखी तब वह हंसताहुआ अर्जुन से बोला कि:-

अहं सखा महेन्द्रस्य शकादनवरो रणे।
न शक्ष्यामि च ते तात स्थातुं प्रमुखतो युधि॥११॥
त्वमीप्सितं पाण्डवेय ब्रूहि किं करवाणि ते।
यद् वक्ष्यासे महाबाहो तत्करिष्यामि पुत्रक ॥१२॥
अर्थ-हे महाबाहु पुत्र अर्जुन! मैं इन्द्र का मित्र हूं और युद्ध
में इन्द्र से कम नहीं हं तो भी युद्ध में तुम्हारे सामने नहीं टहर
सकता, हे प्यारे पाण्डुपुत्र! तुम अपनामनोरथ बताओ मैं तुम्हारे
लिये क्या कक्षं े जो तुम कहो वही मैं करने को तैयार हूं॥

अर्जुन उवाच कुरूणामृषभो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥१३॥

सभापर्व-त्रयोदशाध्याय

499

तस्य पार्थिवतामीप्से करस्तरमै प्रदीयताम् । भवान् पितृसखा चैव शीयमाणो मयापि च । ततो नाज्ञापयामि त्वां प्रीतिपूर्वं प्रदीयताम् ॥१४॥

अर्थ-तव अर्जुन ने कहा कि हे मान्यवर राजन ! कुरुवंशियों में श्रेष्ठ धर्मात्मा पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर वड़ी दक्षिणा वाले राजसूययज्ञ को करना चाहते हैं सो मेरा मनोरथ यह है कि आप उन्हें चक्रवर्ती राजा स्वीकार करके कर देना स्वीकार करलें, आप मेरे पिता के मित्र थे और मुझ से भी प्रसन्न हुए हैं, इसिडिये मैं आपको आज्ञा तो नहीं देसकता किन्तु आप प्रसन्नता वा धीतिपूर्वक कर अवस्य दिया करें॥

भगद्त उवाच

कुन्तीमातर्यथा मे त्वं तथा राजा युधिष्ठिरः । सर्वमेतत् करिष्यामि किं चान्यत् करवाणिते ॥१५॥ अर्थ-राजाभगदत्तने कहा कि हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन! जैसे आप मुझे त्रिय हैं वैसे ही राजायुधिष्ठिरभी हैं, सो मैं यह सब कुछ करुंगा, इसके अतिरिक्त और जो कुछ कहो वह भी करने को उद्यत हूं॥

इति द्वादशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैद्याम्पायन उवाच एवमुक्तः प्रत्युवाच भगद्तं धनञ्जयः । अनेनैव कृतं सर्वं भविष्यत्यनुजानता ॥१॥ 496

महाभारत

तं विजित्य महावाहुः कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः। प्रययावुत्तरां दस्माद्दिशं धनदपालिताम् ॥२॥

अर्थ-वेशम्पायन वोले कि हे राजन ! भगदत्त के ऐसा कहने पर अर्जुन वोला कि आपने जो मेरे कथन को स्वीकार किया है इससे ही हमारा सब कार्य पूर्ण होजायगा, नव महावाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन उस भगदत्त राजा को जीतकर उससे भी आगे बड़े २ धताट्य राजाओं से सुरक्षित उत्तरिद्धा की ओर बहा ॥

अन्तर्गिरिं च कौन्तेयस्तथैव च वहिर्गिरिम् । तथैवोपगिरिं चैव विजिग्ये पुरुपर्यसः ॥३॥

अर्थ-कुन्तीपुत्रश्रेष्टपुरुष अर्जुनने पर्वत के भीतरी तथा वाहरी और आस पास के सब देशों को जीतकर अपने वश में करिलया॥

विजित्य पर्वतान् सर्वान् ये च तत्र नराधिपाः । तान् वशे स्थापयित्वा स धनान्यादाय सर्वशः॥४॥ तैरेव सहितः सर्वेरनुरज्य च तान्नुपान् ।

उद्धकवासिनं राजन् बृहन्त्मुपजिगमवान् ॥५॥

मृदङ्गवरनादेन रथनेमिस्वनेन च।

हस्तिनां च निनादेन कम्पयन् वसुधामिमाम् ॥६॥

अर्थ-हे राजा जनमजय ! अर्जुन ने इसपकार सव पर्वती-देशों और वहां के राजाओं को जीत उन्हें अपने वश में कर तथा सम्पूर्ण धन ग्रहण करके सब राजाओं को प्रसन्नतापूर्वक अपने साथ लिये हुए उल्क्रक्देश के राजा " बृहन्त " पर चढ़ाई की, जिससमय इस टाटबाट के साथ अर्जुन उस और चला उस समय बड़े २ मृदङ्गों के शब्द रथ के पहियों की आहट तथा हाथिओं की विंघाड़ के कोलाहल से पृथ्वी कांप उठी।

ततो बृहन्तस्विरतो बलेन चतुरिङ्गणा । ।निष्कम्यनगरात्तस्माद्योधयामास फाल्यनम् ॥७॥ सुमहान् सान्नपातोऽभूद्धनञ्जयबृहन्तयोः । न शशाक बृहन्तरतु सोढं पाण्डविकमम् ॥८॥

अर्थ-तव राजा बृहन्त भी चतुरङ्गिणी सेना को साथ छिये हुए बीघ्र ही नगर से बाहर निकला और उसने अर्जुन को लल-कारा, तदनन्तर अर्जुन और बृहन्तराजा का वड़ा भारी संग्राम हुआ अन्त में राजा बृहन्तअर्जुन के पराक्रमको सहार न सका ॥

सोऽविषद्यतमं मत्वा कौन्तेयं पर्वतेश्वरः । उपावर्त्तत दुर्धर्षो धनान्यादाय सर्वशः ॥९॥ स तद्राज्यमवस्थाप्य उद्यकसाहितो ययौ ।

सेनाविन्दुमथो राजत्राज्यादाशु समाक्षिपत् ॥१०॥

अर्थ-पर्वत का मतापी राजा उल्लक अर्जुन को अजय समझ-सब मकार के रत्नों की भेट टेकर शरण में आगया, तब अर्जुन ने उल्लक राजा के राज्य को सुरक्षित करके उसे अपने साथ टिये हुए राजा सेनाविन्दु पर चढ़ाई की और शीध ही उसको राज्य से पृथक् कर दिया ॥

मोदापुरं वामदेवं सुदामानं सुसंकुलम् । उल्कानुन्तरांश्चेव तांश्च राज्ञः समानयत् ॥११॥ तत्रस्थैः पुरुपेरेव धर्मराजस्य शासनात् । किरीटी जितवान् राजन्देशान् पञ्चगणां तः॥१२॥

अर्थ-तत्पश्चात् अर्जुन ने मोदापुर, वामदेव, सुदामा और संकुल नामक राजाओं को जीतकर उन्हें माथ लिये हुए उल्किदेश के उत्तरी प्रदेशों में जा पहुंचा, हे राजन् ! अर्जुन ने युधिष्टिर की आज्ञा से उन २ देशों के राजाओं द्वारा ही "पञ्चणण" नामक देशों को भी विजय कर लिया ॥

स देवप्रस्थमासाद्य सेनाविन्दोः पुरं प्रति । बलेन चतुरङ्गेण निवेशमकरोत् प्रसुः ॥१३॥ स तैः परिवृतः सर्वेविर्वेवग्यस्वं नराधिपम् । अभ्यगच्छन्महातेजाः पौरवं पुरुपर्धभम् ॥१२॥

अर्थ-तदनन्तर प्रभावशाली अर्जुन ने देवप्रस्थ में पहुंचकर सेनाविन्दुनगर के समीप चतुरङ्गिणी सेना समेत डेरा किया, पुनः महातेजस्वी अर्जुन ने उन सब राजाओं को साथ लिये हुए उत्कृष्ट घोड़े रखने वाले सिंहपुरुष राजा "पौरव" पर चढ़ाई की ॥

विजित्य चाहवे श्रूरान् पार्वतीयान्महारथान् ।
जिगाय सेनया राजन्पुरं पौरवरिक्षतम् ॥१५॥
पौरवं युधि निर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः।
गणानुत्सवसङ्केतानजयत् सप्त पाण्डवः ॥१६॥
अर्थ-हे राजा जनमेजय ! अर्जुन ने राजा पौरव के पर्वती
महायोदाओं को युद्ध में जीतकर पश्चाद सेना द्वारा पौरव की
सुरिक्षत राजधानी को जीत लिया, इस्प्रकार पौरव को युद्ध में

विजय करके पर्वत में रहने वाली दस्यु जाति के सात समुदायों को भी पाण्डुपुत्र अर्जुन ने जीता जो समय २ पर राजा को सहायता देने वाली सेना थी॥

ततः काश्मीरकान् वीरान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभः। व्यजयस्त्रोहितं चैव मण्डलैर्दशाभिः सह।।१७।। ततस्त्रिगर्ताः कौन्तेयं दार्वाः कोकनदास्तथा। क्षत्रिया बहवो राजन्तुपावर्त्तन्त सर्वशः।।१८॥ अर्थ-तत्पश्चाद क्षत्रियश्चेष्ठअर्जुनने कञ्मीरप्रदेशके वीर क्षत्रियों

तथा दशो मण्डलों समेत लोहित देश को भी विजय करिलया, हे राजा जनमेजय! तब त्रिगर्स, दार्व तथा कोकनद्वासी बहुत-से क्षत्रियलोग सब ओरसे कुन्तीपुत्र अर्जुन की शरण में आगये॥

अभिसारीं ततो रम्यां विजिग्ये करुनन्दनः । उरगावासिनं चैव रोचमाणं रणेऽजयत् ॥१९॥ ततः सिंहपुरं रम्यं चित्रायुधसुराक्षितम् । प्राथमद् बलमास्थाय पाकशासनिराहवे ॥२०॥

अर्थ-इसके अनन्तर कुरुवंशभूषण अर्जुन ने रमणीय "आभिसारी" नगरी को जीता और पश्चाद " उरगा" नगरी के निवासी राजा "रोचमाण" को युद्ध में परास्त किया, तदनन्तर अर्जुन ने चित्रायुध राजा से सुराक्षित रमणीय "सिंहपुर" नामक नगर को युद्ध में अपनी सेना द्वारा विजय किया ॥

ततः सद्दां सुमालांश्च किरीटी पाण्डवर्षभः । सहितः सर्वसैन्येन प्रामथत् क्रुरुनन्दनः ॥२१॥

ततः परमविकान्तो बाह्ळीकान् पाकशासिनः। महता पारमर्देन वशे चक्रे दुरासदान्॥२२॥

अर्थ-इसके उपरान्त पाण्डवश्रेष्ठ कुरुवंशभूषण अर्जुन ने अपनी सम्पूर्ण सेना द्वारा "सह्न" तथा "सुमाल" देशों को जीत कर महान पराक्रमपूर्वक दुर्जय वाह्लीक=वलख्वासी लोगों को भी भारी संग्राम करके अपने वश में करिलया ॥

गृहीत्वा तु बलं सारं फाल्यनः पाण्डनन्दनः । दरदान् सह काम्बोजैरजयत् पाकशासिनः ॥२३॥ प्रायत्तरां दिशं येच वसन्त्याश्रित्य दस्यवः । निवसन्ति वने येच तान् सर्वानजयत्प्रभुः ॥२४॥

अर्थ-पाण्डुपुत्र अर्जुन ने वड़ी वलवान सेना को साथ लेकर "दरद" तथा "कम्बोज" देशों को विजय किया और जो दस्यु-जाति के मनुष्य पूर्वीत्तर दिशा के ग्राम तथा वनों में रहते थे उन सबको भी उस पराक्रगी ने विजय किया ॥

लोहान् परमकाम्बोजानृषिकानुत्तरान् । सहितांस्तान्महाराज व्यजयत्पाकशासानः ॥२५॥ ऋषिकेस्वपि सङ्ग्रामो बभ्वातिभयङ्करः । तारकामयसङ्काशः परस्त्वृषिकपार्थयोः ॥२६॥

अर्थ-हे महाराज ! अर्जुन ने "होह, परमकाम्बोज, ऋषिक" और इनके उत्तरी देशों को भी विजय किया, ऋषिकदेश में राजा ऋषिक और अर्जुन का बड़ा भयंकर संग्राम हुआ जैसाकि तारकामय का हुआ था॥

स विजित्य ततो राजन्नृषिकात्रणमूर्धनि । शुकोद्रसमांस्तत्र हयानष्टो समानयत् ॥२७॥ मयूरसदृशानन्यानुन्रशनपरान्। । जवनानाशुगांश्चेव करार्थं समुपानयत् ॥२८॥ स विनिर्जित्य संप्रामे हिमवन्तं सनिष्कुटम् । स्वेतपर्वतमासाद्य न्यविशत् पुरुपर्पमः ॥२९॥

अर्थ-हे राजा जनमेजय! तव रणभूमी के मस्तक पर ऋषिक लोगों को विजय करके अर्जुन ने करक्ष में उनसे आठ बोड़े प्राप्त किये जिनका वर्ण तोते के उदर समान था और मोर के ममान विचित्र वर्ण वाले उत्तरीभाग के अनेक अन्य बोड़े जो वड़े शीव्रगामी थे ग्रहण किये, इसककार सिंहपुरुष अर्जुन ने संग्राम में वन-उपवनों समेत हिमालय को विजय करके " ब्वेतपर्वत " की ओर गया॥

स खेतपर्वतं वीरः समितिक्रम्य वीर्यवान् । देवं किम्पुरुपावासं द्रुमपुत्रेग रक्षितम् ॥३०॥ महता सन्निपातेन क्षित्रयान्तकरेण ह । अजयत्पाण्डवश्रेष्ठः करे चैनं न्यवेशयत् ॥३१॥

अर्थ-वह पराक्रमी वीर ज्वेतपर्वत को छांघता हुआ दुम राजा के पुत्र से सुरक्षित किम्पुरुष नामक मनुष्यों से वसे हुए दिच्य नगर में पहुंचा और वहां पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन ने क्षत्रियों के नाशक घोर संग्राम द्वारा उस देश को विजय करके "कर" देने वाला वना छिया॥ ६०४

महाभारत

तं जित्वा हाटकं नाम देशं ग्रह्मकरक्षितम् । पाकशासनिरव्यग्रः सहसेन्यः समासदत् ॥३२॥ ताँस्तु सान्त्वेन निर्जित्य मानसंसर उत्तामम् । ऋषिकुल्यास्तथा सर्वा ददर्श कुरुनन्दनः ॥३३॥

अर्थ-अर्जुन उक्त देश को जीतने के पश्चाद गुह्यक नामक मनुष्यों से सुरक्षित "हाटक "देश में सेना समेत उत्साह-पूर्वक जापहुंचा, कुरुवंशभूषण अर्जुन ने उनको साम=सन्धि द्वारा विजय करके उत्तम "मानसरे।वर " झील तथा ऋषियों से वसी हुई सब छोटी वड़ी नदियों का अवलोकन किया॥

सरोमानसमासाद्य हाटकानभितः प्रभुः। गन्धर्वरिक्षतं देशमजयत् पाण्डवस्ततः ॥३४॥ तत्र तित्तिरिकल्माषान् मण्डूकाख्यान् हयोत्तमान्। छेमे स करमत्यन्तं गन्धर्वनगरात्तदा ॥३५॥

अर्थ-प्रभु पाण्डुपुत्र अर्जुन ने मानसरोवर पर पहुंचने के पश्चाद गन्धर्व नामक मनुष्यों से सुरक्षितपदेश को भी विजय किया, और गन्धर्वों के नगर से अर्जुन ने करक्ष्प में तीतर के समान चितकबरे रङ्ग वाले "मण्डूक" नामक उत्तम घोड़े अधिकता से प्रहण किये॥

एवं स पुरुषव्याघो विजित्य दिशमुत्तराम् । संग्रामान् सुबहून् कृत्वा क्षत्रियैर्दस्युभिस्तथा ॥३६॥ स विनिर्जित्य राज्ञस्तान् करे च विनिवेश्य छ ।

मभापर्व-त्रयोदशाध्याय

804

धनान्यादाय सर्वेभ्यो रत्नानि विविधानि च ॥३७॥ हयांस्तित्तिरिकल्माषान् शुकपत्रनिभानिष् । मयूरसदशानन्यान् सर्वानिनल्रंहसः ॥ ३८॥ वृतः सुमहता राजन् बलेन चतुरङ्गिणा । आजगाम पुनर्वीरः शक्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ॥ ३९॥ धर्मराजाय तत् पार्थो धनं सर्व सवाहनम् । न्यवेदयदनुज्ञातस्तेन राज्ञा गृहान् ययो ॥ ४०॥

अर्थ-हे राजा जनमेजय! उस सिंहसमान वीरपुरुष अर्जुन ने इस प्रकार उत्तर दिशा को विजय करके क्षित्रियों तथा दस्यु जाति के पुरुषों को युद्ध द्वारा जीत उन पर कर नियत किया और सब से नानाप्रकार के उत्तमोत्तम रत्न, धन तथा तीतर, तोते और मोरके तुल्य विविध रंग वाले तथा वायु के समान शीघ्रगामी घोड़े ग्रहण करके वड़ी भारी चतुरिक्षणी सेना को साथ लिये हुए अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ को लौट आया, तब अर्जुन ने वह धन और बाहन आदि सब सामग्री धर्मराज युधिष्ठिर की सेवा में अर्पण करदी, पुनः उनसे अनुमति पाकर अपने भवन में चलागया।

इति त्रयोदशोऽध्यायः समाधः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैदाम्पायन उवाच

एतस्मिन्नेव काले तु भीमसेनोऽपि वीर्यवान् । धर्मराजमनुज्ञाप्य ययौ प्राचीं दिशं प्रति ॥ १ ॥ महता बलचकेण परराष्ट्रावमर्दिना । हस्त्यश्वरथपूर्णेन दंशितेन प्रतापवान् ॥ २ ॥

अर्थ—वैशम्पायन वोले कि हे जनमेजय ! जिस समय अर्जुन उत्तरिहिशा को गया था उसी समय पराक्रमी भीमसेन भी धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से शत्रुओं के राज्य को विध्वंस करने वाली हाथी. घोड़े और रथों से परिपूर्ण तथा कवच धारी योद्धाओं से सुसाज्जित भारी सेना को साथ लिये हुए पूर्व-दिशा को विजय करने के निभित्त चला ॥

स गत्वा नरशार्द्रलः पञ्चालानां पुरं महत् । पञ्चालान् विविधोपायैः सान्त्वयामास पाण्डवः ॥३॥ ततः स गण्डकान् शूरो विदेहान् भरतर्षभः । विजित्याल्पेन कालेन दशाणीनजयत्त्रभः ॥४॥

अर्थ-वह पुरुषसिंह पाण्डव भीमसेन सबसे प्रथम अपने सम्बन्धी पाञ्चाल लोगों की राजधानी में गया और उन लोगों को नाना प्रकार के उपायों द्वारा संतुष्ट किया,तत्पश्चात भरतकुल भूषण वीर भीमसेन ने गण्डक तथा विदेह लोगों को थोड़े ही समय में विजय करके "दशार्ण" देश को भी जीत लिया।

तत्र दाशाणिको राजा सुधर्मा लोमहर्पणम्। कृतवान् भीमसेनेन महद्युद्धं निरायुधम् ॥५॥ भीमसेनस्तु तद्दृष्ट्वा तस्यं कर्म महात्मनः। अधिसेनापतिं चके सुधर्माणं महाबलम् ॥६॥

अर्थ-द्शार्ण देश के "सुधर्मा" नामक राजा ने भीमसेन के साथ विना ही शस्त्रों के वड़ा भारी लोमहर्पण युद्ध किया,इसलिये भीमसेन ने उस महात्मा के इस महान्कार्य को देखकर महावली राजा "सुधर्मा" को अपनी सेना का सेनापित बनालिया॥

ततः प्राचीं दिशं भीमो ययो भीमपराक्रमः । सैन्येन महता राजन् कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥७॥ सोश्वमेधेश्वरं राजन्नोचमानं सहानुगम् । जिगाय समरे वीरो बलेन बलिनां वरः ॥८॥

अर्थ-हे राजन ! इसके पश्चात भयानकपराक्रमी तथा वलवानों में श्रेष्ठ वीर भीमसेन अपनी भारी सेना द्वारा पृथ्वी को कंपाता हुआ पूर्वदिशा की ओर वढ़ा और उसने अव्वमेध के राजा "रोच-मान" को सेना सहायकों समेत युद्ध में विजय किया॥

स तं निर्जित्य कौन्तेयो नातितीत्रेण कर्मणा । पूर्वदेशं महावीयों विजिग्ये कुरुनन्दनः ॥९॥ ततो दक्षिणमागम्य पुलिन्दनगरं महत् । सुकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नस्थिपम् ॥१०॥ अर्थ-महापराक्रमी, कुरुवंशभूषण कुन्तीपुत्र भीमसेन ने उस राजा को सहज में जीतकर उससे आगे के पूर्वीभाग को विजय किया, तत्पश्चाद दक्षिणीभाग में पुष्टिन्दछोगों के भारी नगर में आकर वहां के " सुकुमार " तथा "सुमित्र" नामक राजाओं को भी अपने वश में कराछिया॥

ततस्तु धर्मराजस्य शासनाद्वरतर्षभः । शिशुपालं महावीर्यमभ्यगाज्जनमेजय॥११॥ चेदिराजोऽपि तच्छुत्त्वा पाण्डवस्य चिकीर्षितम् । उपनिष्कम्य नगरात् प्रत्यगृहणत्परन्तप ॥११॥

अर्थ-हे जनमजय! इसके अनन्तर भरतकुलश्रेष्ठ भीमसेन धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से महापराक्रमी राजा शिथुपाल की ओर गया, शञ्चतापक चंदेरीनरेश राजा शिथुपाल भी पाण्डम भीमसेन का वह संकल्प सुनकर नगर से वाहर आया और भीमसेन को बड़े सत्कारपूर्वक अपनी राजधानी में लेगया॥

तौ समेत्य महाराज करुचेदिवृषौ तदा । उभयोरात्मकुलयोः कौशल्यं पर्यपृच्छताम् ॥१३॥ ततो निवेद्य तदाष्ट्रं चेदिराजो विशाम्पते । उवाच भीमं प्रहसन् किमिदं करुषेऽनघ ॥१४॥

अर्थ-हे महाराज जनमेजय! तब कुरुवंशभूषण भीमसेन तथा चन्देरीनरेश शिश्चपाल ने मीतिपूर्वक परस्पर एक दूसरे के कुल की कुशल पूछी, हे राजन ! तत्पश्चात चेदिराज शिश्चपाल भीमसेन के आंगे अपना राज्य निवेदन करके हंसता हुआ बोला कि हे निष्पाप! आपने यह क्या संकल्प भारण किया है ! ॥ तस्य भीमस्तदाचख्यौ धर्मराजाचिकीर्षितम् । स च तं प्रतिगृह्येव तथा चक्रे नराधिपः ॥१५॥ ततो भीमस्तत्र राजन्तुषित्वा त्रिदशाः क्षपाः । सत्कृतः शिशुपालेन ययौ सबलदाहनः ॥१६॥

अर्थ-तत्र भीमसेन ने युधिष्टिर के दिग्विजय का संकल्प शिशुपाल से कहा इस पर राजा शिशुपाल ने उनकी आज्ञा ग्रहण करके तदनुसार ही किया अर्थाद युधिष्टिर की अधीनता स्त्रीकार की, हे राजा जनमेजय! तदनन्तर भीमसेन ने वहां तेरह दिन तक विश्राम करके पश्चाद शिशुपाल से सत्कारपूर्वक-विदा होकर अपनी सेना तथा सत्रारियों समेत आगे गमन किया॥

ततः कुमार्राविषये श्रेणिमन्तमथाजयत् । कोशलाधिपतिं चैव बृहद्बलमरिन्दमः ॥१७॥ अयोध्यायां तु धर्मज्ञं दीर्घयज्ञं महाबलम् । अजयत् पाण्डवश्रष्ठां नातितीवेण कर्मणा ॥१८॥

अर्थ-पाण्डवश्रेष्ठ शञ्चतापक भीमसेन ने वहां से चलकर कुमारदेश के राजा "श्रेणियान" तथा कोशलनरेश राजा "बृहद्वल" को विजय किया,तत्पश्चात अयोध्या केमहावली धर्मात्मा "दीर्घयइ" नामक राजा को भीमसेन ने सहज में ही अपने अधीन कर लिया ॥

ततो गोपालकक्षं च सोत्तरानिप कोशलान् । मलानामिध्पं चैव पार्थिवं चाजयत्त्रभुः ॥१९॥ ततो हिमवतः पार्श्व समभ्येत्य जलोद्भवम् । सर्वमल्पेन कालेन देशं चक्रे वशं वली ॥२०॥ अर्थ-इसके अनन्तर प्रभावशाली भिष्मिन ने "गोपालकक्ष" देश तथा कोशलप्रदेश के उत्तरी भागों को जीतकर "मूछ " नामक पुरुषों के राजा को भी जीता पश्चाद बलवान भीमसेन ने हिमालय के समीप जलपाय देश में पहुंचकर उस सम्पूर्ण देश को थोड़े ही समय में अपने वशीभूत कर लिया॥

भहारमितो जिग्ये शुक्तिमन्तं च पर्वतम् । पाण्डवः सुमहावीयों बलेन बलिनां वरः ॥२१॥ स काशिराजं समरे सुबाहुमनिवर्तिनम् । वशे चक्रे महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥२२॥

अर्थ-इसके पश्चात् वलवानों में श्रेष्ठ महापराक्रमी पाण्डुपुत्र भीमसेन ने भल्लाटदेश को दोनों ओर से िजय करके "शुक्ति-मान् " पर्वत को विजय किया और भयानकपराक्रमी महाबाहु भीमसेन ने युद्ध से न हटने वाले महावली राजा काशीनरेश को भी अपने अधीन करिलया ॥

ततः सुपार्श्वमाभितस्तथा राजपति कथम् । युध्यमानं बलात् संख्ये विजिग्ये पाण्डवर्षभः॥२३॥ ततो मत्स्यान्महातेजा मलदांश्च महाबलान् । अन्धानभयांश्चेष पशुभूमिं च सर्वशः ॥२४॥

अर्थ-तदनन्तर पाण्डवश्रेष्ठ भीमसेन ने " सुपार्श्व " देश को दोनों ओर से जीतकर ऋथराज " राजपित " योद्धा को भी युद्ध में जीत छिया,इसके पश्चाद महातेजस्वी भीमसेन ने महाबली राजाओं से युक्त मत्स्य, मलद, अनघ, अभय और पश्चभूमि इन सब देशों को भी अपने अधीन करिलया ॥ निरुत्य च महाबाहुर्मदघारं महिधरम् । सोमधेयांश्च निर्जित्य प्रययावुत्तरामुखः ॥२५॥ वत्सभूमिं च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान्बलात् । भर्गाणामधिपं चैव निषादाधिपतिं तथा । विजिग्ये भूमिपालांश्च मणिमत्प्रमुखान् बहुन् ॥२६॥

अर्थ-तत्पश्चात महावाहु भीमसेन "मद्धार" पर्वत को फिर छौटा और "सोमध्य" देशको जीतकर उत्तराभिमुख चलदिया,पुनः बलवान कुन्तीपुत्र ने "वत्सभूमि" देश को जीतकर भगनरेश तथा निषादराज को विजय किया, इनके अतिरिक्त "मणिमान" आदि बहुत से राजाओं को भी भीमसेन ने अपने अधीन कर लिया ॥

ततो दक्षिणम्हांश्च भोगवन्तं च पर्वतम् । तरसेवाजयद्गीमो नातिति त्रिण कर्मणा ॥ २७॥ शर्मकान् वर्मकांश्चेव व्यजयत्सान्त्वपूर्वकम् । वेदेहकं च राजानं जनकं जगतीपतिम् ॥ २८॥ विजिग्य पुरुषव्याघ्रो नातिति त्रिण कर्मणा । श्वकांश्च वर्वरांश्चेव अजयच्छद्मपूर्वकम् ॥ २९॥

अर्थ-सूत्र भीमसेन ने दक्षिणी "मल्ल" देश तथा " भोगवान " नामक पर्वत को सहज में ही बलपूर्वक विजय किया, तत्पश्चाद "शर्मक" और "वर्मक" देश को सन्धि द्वारा अपने अधीन करके विदेह=मिथिलाप्रदेश के राजा "जनक" को सिंहपुरुक भीमसेन ने अनायास ही विजय करलिया, इसके अनन्तर "शक " और "वर्षर" देश को भी राजनीति के अनुसार कृटकपट करके अपने अधीन करिलयाँ॥

वैदेहस्थस्तु कौन्तेय इन्द्रपर्वतमन्तिकात् । किरातानामधिपतीनजयत्सप्त पाण्डवः ॥ ३०॥ ततः सुद्धान् प्रसुद्धांश्च स्वपक्षानितवीर्यवान् । विजित्यस्थि कौन्तेयो मागधानभ्यगाद्बली ॥३१॥

अर्थ-तव कुन्तीपुत्र पाण्डव भीमसेन ने विदेहपदेश में टहर कर इन्द्रपर्वत के समीप रहने वाले किरहत लोगों के सात राजाओं को जीता, इसके पश्चाद पराक्रमी भीमसेन ने अपने पक्ष के "सुझ" तथा "ममुझ" नामक देशों को युद्ध में जीतकर मगथ=विद्यारप्रदेश की ओर चढ़ाई की ॥

दण्डं च दण्डधारं च विजित्य पृथिवीपतीन् । तैरेव सहितैः सवींगीरिवजमुपादवत् ॥ ३२ ॥ जरासिन्धं सान्त्वियत्वा करे च विनिवेश्य तु । तैरेव सहितैः सर्वैः कर्णमभ्यदवद्बली ॥३३॥

अर्थ-बलवान भीमसेन ने "दण्ड" तथा "दण्डधार" राजाओं को जीता और इनको तथा पूर्वोक्त सब राजाओं को साथ लेकर पर्वतवृन्द की ओर चला, पुनः मगधदेश में जरासन्ध के पुत्र सहदेव से सन्धि तथा उस पर कर नियत करके उन सबको साथ लिये हुए राजा "कर्ण" पर चढ़ाई की ॥

स कम्पयन्निव महीं बलेन चतुरङ्गिणा । युरुषे पाण्डवश्रेष्ठः कर्णेनामित्रघातिना ॥३४॥

सभापर्व-चतुर्दशाध्याय

893

स कर्ण युधि निर्जित्य वशे कृत्वा च भारत । ततो विजिग्ये बलवान राज्ञः पर्वतवासिनः॥३५॥

अर्थ-पाण्डवों में श्रेष्ठ भीमसेन ने शाम्रधातक राजा कर्ण के साथ चतुरिक्षणी सेना द्वारा पृथ्वी को किम्पित करते हुए घोर युद्ध किया, है भारतीय राजन! वली भीमसेन ने युद्ध में कर्ण को परास्त करके पश्चात पर्वत के रहने वाले राजाओं को भी विजय किया॥

अथ मोदागिरौ चैव राजानं बलवत्तरम् । पाण्डवो वाहुवीर्येण निजघान महामधे ॥३६॥ ततः पुण्डाधिपं वीरं वासुदेवं महाबलम् । कौशिकीकच्छनिलयं राजानं च महोजसम्॥६७॥ उभौ बलभृतौ वीरावुभौ तीव्रपराक्रमौ । विजित्याजौ महाराज वक्तराजसुपादवत् ॥३८॥

अर्थ-तत्पश्चात पाण्डव भीमसेन ने मोदागिरी पर्वत के महावली राजा को भी महासंग्राम करके मारडाला, हे महाराज जनमेजय! तदनन्तर "पुण्ड्र" देश के राजा महावली वीर "वासु-देव" तथा कौशिकी नदी के तटपर रहने वाले "महौजाः" नामक राजा इन दोनों महापराक्रमी वीरपुरुषों को भी युद्ध में जतिकर बद्गराज = बङ्गालनरेश पर चढ़ाई की ॥

समुद्रसेनं निर्जित्य चन्द्रसेनं च पार्थिवम् । ताम्रिलंशं च राजानं कर्वटाधिपतिं तथा ॥३९॥ सुद्यानामधिपं चैव येच सागरवासिनः । महाभारत

888

सर्वान् म्लेच्छगणांश्चैव विजिग्ये भरतर्षभः। वस्रोतभ्य उपादाय लौहित्यमगमद् बली ॥४०॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! बलवान भीमसेन ने समुद्रसेन, चन्द्रसेन, ताम्रलिप्त, कर्वटनरेश तथा सुझनरेश, इन सब राजाओं और समुद्र के समीप रहने वाले सब म्लेच्छों को विजय करके उनसे धन ग्रहण किया, पुनः "लोहित्य" देश पर चढ़ाई की ॥

स सर्वान् म्लेच्छन्पतीन् सागरान्पवासिनः । करमाहारयामास रतानि विविधानि च ॥४१॥ चन्दनाग्रहवस्त्राणि मणिमोक्तिककम्बलम् । काञ्चनं रजतं चैव विद्वमं च महाधनम् ॥४२॥ ते कोटिशतसंख्येन कौन्तेयं महता तदा । अभ्यवर्षन् महात्मानं धनवर्षण पाण्डवम् ॥४३॥

अर्थ-भीमसेन नेसमुद्र के समीप रहने वाले सब म्लेख राजा-ओ पर कर नियत किया और उन लोगों ने भी महात्मा कुन्ती-पुत्र पाण्डव भीमसेन की सेवा में नानाप्रकार के रत, चन्दन, अगर, वस्त्र, मणि, मोती, कम्बल, सोना, चांदी तथा मूंगा आदि वस्तुयें और करोड़ों की संख्या में धन वर्षा करने की भांति अर्पण किया ॥

इन्द्रप्रस्थमुपागम्य भीमो भीमपराक्रमः । निवेदयामास तदा धर्मराजाय तद्धनम् ॥४४॥ अथ-इस प्रकार भयंकर पराक्रमी भीमसेन ने दिग्विजय करके

सभापर्व-पञ्चद्शाध्याय

694

इन्द्रप्रस्थ में आकर पूर्वोक्त विजय किया हुआ सम्पूर्ण धन धर्म-राज युधिष्ठिर की सेवा में अर्पण करिदया॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पञ्चदशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उत्ताच तथैव सहदेवोऽपि धर्मराजेन प्राजितः । महत्या सेनया राजन् प्रययौ दक्षिणां दिशम्॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! पूर्वोक्त प्रकार से सहदेव भी खुधिष्टिर से मन्कार पाकर महती सेना के साथ दक्षिण दिशा की ओर गया॥

स शुरसेनान् कात्स्न्यंन पूर्वमेवाजयत्प्रभुः।

मत्स्यराजं च कौरव्यो वशे चक्रे वलादवली ॥२॥

आधिराजाधिपं चैव दन्तवक्रं महावलम्।

जिगाय करदं चैव कृत्वा राज्ये न्यवेशयत ॥३॥

अर्थ-प्रभावशाली तथा वलवान कुर्विशी महदेव ने मव मे प्रथम

"श्रमेन" देश को विजय किया,तत्पश्चात मत्स्यराज गंजा अधिराज
और महावली दन्तवक्र, इन मव गंजाओं को जीता तथा इन पर

"कर"नियत करके पश्चात इनको अपने २ राज्य पर नियत करदिया॥

सकुमारं वशे चक्रे सुमित्रं च नराधिपम्।

CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

तथैवापरमतस्यांश्च ब्यंजयत म पटचरान् ॥ ३॥

696

निषादभूमिं गोशृङ्गं पर्वतं प्रवरं तथा । तरसेवाजयद्धीमान् श्रेणिमन्तं च पार्थिवम् ॥ ५ ॥ नवराष्ट्रं च निर्जित्य कुन्तिभोजमुपादवत् । प्रीतिपूर्वं च तस्यासो प्रतिजग्राह शासनम् ॥ ६ ॥

अर्थ-तत्पश्चात सहदेव ने "सुकुमार" तथा "सुमित्र" नामक राजाओं को जीतकर मत्स्यदेश के पश्चिमी भाग में रहने वाले चोर हाकुओं के समुदाय को विजय किया, पुनः बुद्धिमान सहदेव ने "निषादभूमि" तथा "गोश्ट्रङ्ग" नामक वड़े २ पर्वतों और राजा "श्रेणिमान" को भी बलपूर्वक अपने अधीन करिलया, इसके पश्चात सहदेव ने "नवराष्ट्र" देश को जीतकर कुन्ती के पिता राजा "कुन्तिभोज" की ओर मस्थान किया तव राजा कुन्तिभोज ने भी मसन्नतापूर्वक राजा युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार की ॥

ततश्चर्भण्वतीकूले जम्भकस्यात्मजं नृपम् । ददर्श वासुदेवेन शेषितं पूर्ववेरिणा ॥ ७ ॥ चके तेन स संग्रामं सहदेवेन भारत । स तमाजौ विनिर्जित्य दक्षिणाभिसुखो ययौ ॥८॥

अर्थ-तदनन्तर सहदेव ने "चर्मण्वती" नदी के किनारे पहुंचकर जम्भक राजा के पुत्र को देखा जोकि कृष्णजी के पहले वैरियों में से शेष था, हे भारतीय राजन ! उस राजा का सहदेव के साथ महान युद्ध हुआ, तदनन्तर सहदेव ने उसे भी विजय करके आगे दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥

सेकानपरसेकांश्च व्यजयत् सुमहावलः । करं तेभ्य उपादाय रत्नानि विविधानि च ॥ ९॥ ततस्तेनैव सहितो नर्भदामभितो ययौ । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्येन महतावृतौ । जिगाय समरे वीरावाहिवनेयः प्रतापवान् ॥ १०॥

अर्थ-तव महावली सहदेव "सेक" तथा "अपरसेक" नामक देशों को जीत और उनसे "कर" तथा नाना प्रकार के रतन लेकर वहां के राजा को साथ लिये हुए नर्मदानदी की ओर वहां और वहां वड़ी भारी सेना युक्त विन्द, अनुनिन्द तथा अवन्ती= मालवदेश के वीर राजाओं को प्रतापी सहदेव ने युद्ध में विजय किया।

ततो रत्नान्युपादाय पुरं भोजकटं ययो ।
तत्र युद्धमभूद्राजन् दिवसद्धयमच्युत ॥ ११ ॥
स विजित्य दुराधर्ष भीष्मकं मादिनन्दनः।
कोशलाधिपतिं चैव तथा वेणातटाधिपम् ।
कान्तारकांश्च समरे तथा प्राक्षोशलान् नृपान् ॥१२॥
नाटकेयांश्च समरे तथा हेएन्वकान् युधि ।
मारुधं च विनिर्जित्य मुञ्जप्राममथो वलात् ॥ १३ ॥
नाचीनानर्बुकांश्चेव राजानश्च महावलः ।
तांस्तानाटविकान सर्वानजयत् पाण्डनन्दनः ॥१४॥

६१८

महाभारत

अर्थ-हेकर्तव्य से च्युत न होने वाले राजा जनमेजय! वहा से रत्न
ग्रहण करके सहदेव "भोजकट" नगर में गया और वहां "भीष्मक"
राजा के साथ दो दिन तक युद्ध होता रहा, तत्पश्चात महाबली
माद्री के पुत्र सहदेव ने दुर्जय राजा भीष्मक को विजय करके को शल=
सरयूतटमदेश के राजा तथा को शलपदेश तक वनों के राजाओं
और नाटकेय, हेरम्वक, मारुध, मुझग्राम, नाचीन तथा अर्बुक
इन देशों और इनसे अतिरिक्त जितने जंगली राजा थे उन सवको
अपने बलद्वारा युद्ध में विजय किया ॥

वाताधिपं च नृपतिं वशे चक्रे महावलः । पुलिन्दांश्च रणे जित्वा ययौ दक्षिणतः पुरः ॥१५॥ युप्रधे पाण्ड्यराजेन दिवसं नकुलानुजः । तं जित्वा स महाबाद्दः प्रययौ दक्षिणापथम् ॥१६॥

अर्थ-तदनन्तर महावली सहदेव वातनरेश और पुलिन्द लोगों को युद्ध द्वारा अपने वश में करके दक्षिण की ओर आगे बढ़ा, पश्चाद महावाहु सहदेव ने पाण्डचनरेश के साथ दिनभर युद्ध करके उसे जीतकर आगे दक्षिण की ओर प्रस्थान किया ॥

यहामासादयामास किष्किन्धां लोकविश्रुताम् । तत्र वानरराजाभ्यां मैन्देन द्विविदेन च । युरुषे दिवसान् सप्त न च तौ विकृतिं गतौ॥१७॥

अर्थ-तत्पश्चात् सहदेव लोकपसिद्ध " किष्किन्धा " नामक गुफा तक पहुंचकर वहां वानर जाति के "मन्द" और "द्विविद"

मभापर्व-पञ्चदशांध्याय

593

राजाओं के साथ सात दिनतक युद्ध होता रहा पर वह दोनों राजा सहदेव से विजय न हुए, परन्तु:—

ततस्तुष्टौ महात्मानौ सहदेवाय वानरौ । ऊचतुश्चैव संहष्टौ प्रीतिपूर्विमदं वचः ॥१८॥ गच्छ पाण्डवशार्दूल स्त्रान्यादाय सर्वशः । अविद्यमस्तु कार्याय धर्मराजाय धीमते ॥१९॥

अर्थ-वह महात्मा वानरराज सहदेव के पराक्रम से सन्तुष्ट होकर स्वयं प्रसन्नतापूर्वक उससे वोले कि हे पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम सब प्रकार के रत्न ग्रहण करके जाओ और ईश्वर करे कि धर्मराज बुद्धिमान युधिष्ठर का कार्य निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त हो ॥

माद्रीस्रतस्ततः प्रायादिजयी दक्षिणां दिशम् । त्रेपुरं स वशे कृत्त्वा राजानममितौजसम् । निजग्राह महाबाहुस्तरसा पौरवेश्वरम् ॥२०॥

अर्थ-तत्पश्चात् महावाहु विजयी सहदेव दक्षिण की ओर आगे बढ़ा और " त्रिपुर " के महापराक्रनी राजा को वश में करके पौरव लोगों के राजा को भी बलपूर्वक विजय किया॥

आकृतिं कौशिकाचार्यं यतेन महता ततः । वशे चके महाबाहुः सुराष्ट्राधिपतिं तदा ॥२१॥

अर्थ-इसके अनन्तर महावाहु सहदेव ने "आकृति" नामक कौशिकों के आचार्य सुराष्ट्रनरेश को वड़े उद्योग से अपने वश में किया॥ सुराष्ट्रविषयस्थश्च प्रेषयामास रुक्मिणे। राज्ञे भोजकटस्थाय महामात्राय धीमते।।२२॥ भीष्मकाय स धर्मात्मा साक्षादिन्द्रसंखाय वै। स चास्य प्रतिजग्राह ससुतः शासनं तदा।।२३॥

अर्थ-धर्मात्मा सहदेव ने सुराष्ट्रप्रदेश में ठहरकर साक्षात् इन्द्र के मित्र राजा "भीष्मक " और "रुक्मी " तथा इनके बुद्धिमान महामन्त्री के समीप "भोजकट " नगर में अपना संदेशा भिजवा दिया, तव राजा भीष्मक ने अपने पुत्रसमेत उनकी आज्ञा को स्वीकार करित्या ॥

प्रतिपूर्व महाराज वासुदेवमवेक्ष्य च । ततः स रतान्यादाय पुनः प्रायाद्युधांपितः ॥२४॥ ततः श्र्पीरकं चैव तालाकटमथापि वा । वशे चक्रे महातेजा दण्डकांश्च महाबलः ॥२५॥

अर्थ-हे महाराज जनमेजय! तत्पश्चात् योधराज सहदेव भीतिपूर्वक कृष्णजी के दर्शन करके वहां से रत्नादि लिये हुए दक्षिण को बढ़ा और उस महातेजस्वी महावली ने शूर्पारक, तालाकट तथा दण्डक वन को भी अपने वश में करालिया।।

सागरदीपवासांश्च नृपतीन् म्लेच्छयोनिजान् । निषादान् पुरुषादांश्च कर्णप्रावरणानिप ॥२६॥ ये च कालमुखा नाम नरराक्षसयोनयः । कृत्सं कोलगिरिं चैव सुरभीपदृनं तथा ॥२७॥ दीपं ताम्राह्यं चैव पर्वतं रामकं तथा । तिमिङ्गिलं च स नृपं वशे कृत्वा महामितः ॥२८॥ नगरीं सञ्जयन्तीं च पापण्डं करहाटकम् । दूतैरेव वशे चक्रे करे चैनानदापयत् ॥२९॥

अर्थ-महाबुद्धिमान सहदेव ने समुद्रीद्वीप के रहने वाले म्लेच्छजाति के राजाओं, निपाद लोगों, मनुष्यभक्षक जंगली लोगों "कर्णमावरण" तथा "कालमुख" नामक राक्षमों और सम्पूर्ण कोलपर्वत, मुरभिष्ट्रन, ताल्लद्वीप, राप्तक पर्वत तथा "तिसिङ्गिल" राजा को वस में करके "मञ्जयन्ती" नामक नगरी "पापण्ड" और "करहाकट" इन सब देशों को अपने दृतों द्वारा ही वश में करके इन पर कर नियत किया ॥

पाण्ड्यांश्च द्रविडांश्चेव सहितांश्चोड्रकेग्लैः । अन्श्रांस्तालवनांश्चेव कालिङ्गानुष्ट्रकर्णिकान् ॥३०॥ आट्वीं च पुरीं रम्यां यवनानां पुरं तथा । दूतैरेव वशे चक्रे करं चैनानदापयत् ॥३१॥

अर्थ-तद्नन्तर सहदेव ने पाण्डच, द्रविड, उड्र=उड़ीसा, केरल, अन्ध्र, ताड़ के वन, कलिक्क और "उष्ट्रकार्णिक" इन सब देशों तथा यवन लोगों की रमणीय नगरी "आट्वी" को भी अपने दृतों द्वारा ही जीतकर उन पर "कर" नियत किया ॥

एवं निर्जित्य तरसा सान्त्वेन विजयन च । करदान पार्थिवान कृत्वा प्रत्यागच्छदरिन्दमः॥३२॥ ६२२

महाभारत

धर्मराजाय तत्सर्व निवेद्य भरतर्षभः । कृतकर्मा सुखं राजन्तुवास जनमेजय ॥३३॥

अर्थ-हेराजा जनमेजय! भरतकुलभूषण शच्चदमनकर्ता सहदेव इसप्रकार पराक्रम तथा सन्धि द्वारा दक्षिणदिशा के सब राजाओं को वश में करके उन्हें "कर" देने वाला वनाकर अपनी राजधानी इन्द्रपस्थ में लौट आया और वह सम्पूर्ण सामग्री धर्मराज युधिष्ठिर की सेवा में अर्पण करके कृतकार्य हो सुख से रहने लगा ॥

इति पञ्चदशोऽध्यायः समाप्तः

अथ षोडशोऽध्यायः प्रारभ्यते

वैद्याम्यायन उवाच नकुलस्य तु वक्ष्यामि कर्माणि विजयं तथा । वासुदेव जितामाशां यथासावजयत प्रभुः ॥१॥ निर्याय खाण्डवप्रस्थात् प्रतीचीमभितो दिशम् । उद्दिश्य मतिमान् प्रायान्महत्या सेनया सह ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे जनमेनय ! अप मैं नकुल के कार्य तथा विजय का वर्णन करता हूं जिस प्रकार उस प्रभाव-शाली ने कृष्णजी की प्रथम जीती हुई पश्चिम दिशा को फिर से विजय किया था, बुद्धिमान नकुल भारी सेना को साथ लिये हुए खाण्डवप्रस्थ की राजधानी इन्द्रप्रस्थ से चलकर पश्चिम दिशा को लक्ष्यकर के आगे बढ़ा ॥ ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धनधान्यवत् । कार्त्तिकेयस्य द्यितं रोहीतकमुपाद्रवत् ॥३॥ तत्र युद्धं महचासीच्छेरैर्मत्तमयूरकेः । मरुस्मिं स कात्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम् । शैरीषकं महेत्थं च वशे चक्रे महद्युतिः ॥४॥

अर्थ-तब नकुल ने बड़े धनाड्य, रमणीय गौ आदि पशुओं से सम्पन्न तथा सब पदार्थों से पारिपूर्ण "रोहीतक" नामक राजा पर चढ़ाई की जो कार्तिकेय का प्यारा था, वहां "मन्तमयूरक" नामक बाणों द्वारा उनका बड़ा भारी युद्ध हुआ, और अन्त में महाप्रतापी नकुल ने "मरुदेश" अन्नों के भाण्डारक्षप " शैरीपक" तथा "महेत्थ" देश को पूर्णतया अपने वश में किया, और:-

आक्रोशं चैव राजिं तेन युद्धमभ्नमहत्। तान् दशाणीन् साजित्वा च प्रतस्थे पाण्डनन्दनः॥५॥ शिवींस्त्रिगर्तानम्बष्ठान् मालवान् पत्रकर्पटान्। तथा मध्यमकेयांश्च वाट्धानान् द्विजान्थ ॥ ६॥

अर्य-नकुल का "आकोश" नामक राजऋषि के साथ भी भारी युद्ध हुआ किंतु उसे भी नकुल ने विजय किया, इस प्रकार पूर्वोक्त "दशार्ण" देशों को जीतकर आगे पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया और क्रमशः शिवि, त्रिगर्च, अम्बष्ट, मालव, पांचो कर्पट, मध्यमकेय तथा बाटधान नामक इन सब द्विजों= क्षत्रियों के देशों को वश में करिलया ॥ पुनश्च परिवृत्याथ पुष्करारण्यवासिनः । गणानुत्सवसङ्केतान् व्यजयतपुरुषषभः ॥ ७ ॥

अर्थ-हे राजन ! पुनः सिंहपुरुष नकुछ ने छोटकर पुष्कर वन के रहने वाले ''उत्सवसंकेत''=जातिविशेष के समुदायों को भी जीत लिया, और :-

सिन्धुकूलिशिता ये च श्रामणीया महानलाः । श्रद्राभीरगणाश्चेव ये चाश्चित्य सरस्वतीस् ॥ ८ ॥ वर्त्तयन्ति च ये मत्स्यैयें च पर्वतवासिनः । कृत्सनं पञ्चनदं चैव तथेवामरपर्वतस् ॥ ९ ॥ उत्तरज्योतिषं चैव तथा दिव्यकटं पुरस् । रामठान् हारहूणांश्च प्रतीच्याश्चेव ये नृपाः । तान् सर्वान् स वशे चक्रे शासनादेव पाण्डवः ॥१०॥

अर्थ-जो ग्रामीण महावली पुरुष सिन्धुनदी के किनारे रहते थे उन्हें तथा सरस्वती नदी के समीप रहने वाले श्रूड़ों, ग्वाले लोगों, पर्वत में रहने वालों, मछली खाने वालों और सम्पूर्ण पंजाब देश "अमर" नामक पर्वत "उत्तरज्योतिष" "दिन्यकट" नामक नगर रामठ, हारहूण=युहूदियों का देश और पश्चिम के रहने वाले अन्य सब राजाओं को सहदेव ने महाराज युधिष्ठिर के शासनपत्र द्वारा ही अपने अधीन करिलया ॥

तत्रस्थः प्रेषयामास वास्तुदेवाय भारत । स चास्य यादवैः सार्द्धं प्रतिजग्राह शासनम् ॥११॥

ततः शाकलमभ्येत्य मद्राणां प्रटमेदनम् । मातुलं भीतिपूर्वेण शल्यं चक्रे वशे बली ॥ १२॥ स तेन सत्कृतो राज्ञा सत्काराहीं विशाम्पते । रत्नानि भूरीण्यादाय संप्रतस्थे युधांपतिः ॥ १३॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! तव वीर राजा नकुल ने वहां ठहरकर द्वारकापुरी में कृष्णजी के समीप महाराज युधिष्ठिर का शासनपत्र भेजा और उन्होंने सब यादवों समेत उनकी आज्ञा को ग्रहण किया, तत्पश्चात् महावली नकुल ने मद्र—मद्रास की राजधानी "शाकल" नगर में पहुंचकर अपने मामा शल्य को प्रीति—सन्धि द्वारा वश में करालिया, हे राजा जनमेजय ! वह पूजनीय नकुल राजा शल्य से सत्कार पाकर और वहां से बहुतसे उत्तमोत्तम पदार्थ ग्रहण करके आगे पश्चिम दिशा की ओर बढ़ा ॥

ततः सागरकक्षिस्थान् म्लेच्छान् परमदारुणान् । पल्हवान् बर्वरांश्चैव किरातान् यवनान् शकान् ॥१४॥ ततो रत्नान्यपादाय वशे कृत्वा च पार्थिवान् । न्यवर्त्तत कुरुश्रेष्ठो नकुलश्चित्रमार्गवित् ॥ १५॥

अर्थ-विचित्रमार्गों का जाननेवाला कुरुवंशभूषण नकुल समुद्र के मध्यस्थल में रहने वाले महादुःखदायी म्लेच्छों अर्थात् पल्हव, वर्बर, किरात, यवन तथा शक देशों को जीतकर और उनसे रतन ग्रहण करके इन्द्रमस्थ को लौट चला॥

करभाणां सहस्राणि कोषं तस्य महात्मनः । जहुर्दश महाराज कृच्छादिव महाधनम् ॥ १६॥ महाभारत

६२६

इन्द्रप्रस्थगतं वीरमभ्येत्य स युधिष्ठिरम् । ततो मादीसुतः श्रीमान् धनं तस्मै न्यवेदयत् ॥१७॥

अर्थ-हे महाराज जनमेजय ! महात्मा नकुछ ने इतना धन विजय किया था कि दशहज़ार ऊंट भी कठिनता से उस खज़ाने को छेकर चछे थे,इस प्रकार माद्री के पुत्र नकुछ ने पश्चिम दिशा से इन्द्रप्रस्थ में पहुंचकर महाराज वीर युधिष्ठिर की सेवा में वह सम्पूर्ण धन अपण करदिया ॥

इति षोडशोऽन्यायः समाप्तः

अथ सप्तदशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैदाम्पायन उवाच

रक्षणाद् धर्मराजस्य सत्यस्य परिपालनात् । शत्रूणां क्षपणाचैव स्वकर्मनिरताः प्रजाः ॥१॥ बलीनां सम्यगादानाद्धर्मतश्चात्रशासनात् । निकामवर्षी पर्जन्यः स्फीतो जनपदोऽभवत् ॥२॥

अर्थ-नैशम्पायन बोले कि हे राजन ! महाराज युधिष्ठिर ने इस प्रकार प्रजा की रक्षा, सत्य का पालन तथा शत्रुओं का विध्वंस किया कि उनकी सारी प्रजा अपने २ कर्तव्य में तत्पर रहने लगी, उनके राज्य में उत्तम रीति से बलिवैक्वदेव आदि सम्पूर्ण यज्ञों की विधि तथा धर्मपूर्वक सव प्रकार का राज्य व्यवहार होने के कारण मेघ भी यथेष्ट वर्षने छगे, एवं उनके राज्य की दिनोदिन उन्नित होती गई॥

सर्वारम्भाः सुप्रवृत्ता गोरक्षा कर्षणं विणक् । विदेशपात् सर्वमेवैतत्संजज्ञे राजकर्मणः ॥ ३ ॥ दस्यभ्यो वश्रकेभ्यो वा राजन् प्रति परस्परम् । राजबस्नभतश्चैव नाश्रयन्त मृषा गिरः ॥४॥

अर्थ-राज्यप्रवन्य की विशेषता से गोरक्षा, कृषि और व्यापार आदि सब व्यवहारों ने वृद्धि पाई, हे राजन ! महाराज युधिष्ठिर के राज्य में दस्य जाति तथा धूर्च लोगों और राज्याधिकारियों के मुख से भी कभी झूठ बातें सुनने में नहीं आती थीं ॥

अवर्ष चातिवर्ष च व्याधिपावकमूर्छनम् । सर्वमेतत् तदा नासिद्धर्मनित्ये युधिष्ठिरे ॥५॥ प्रियं कर्त्तुमुपस्थातुं बालिकमे स्वभावजम् । अभिहर्त्तु नृपा जग्मुनीन्यैः कार्यैः कथंचन ॥६॥

अथ-महाराज युधिष्ठिर इतने धर्मनिष्ठ राजा थे कि उनके राज्य में वर्षा का अभाव, अतिवर्षा, रोगिवस्तार वा अग्नि से दाह आदि सब उत्तात सर्वथा अस्त होगये थे, अन्य राजा लोग महाराज युधिष्ठिर की सेवा में हितकारी कार्य करने, उपस्थिति = हाज़िरी देने वा नियत किया हुआ उनका "कर" चुकाने के लिये ही जाते थे अन्य विद्रोह आदि पयोजन के लिये कभी जाने की आवश्यकता नहीं होती थी।

धर्म्येर्धनागमस्तस्य वृद्धे निचयो महान् । कर्जुं यस्य न शक्येत क्षयो वर्षशतैरिप ॥७॥ स्वकोष्ठस्य परिमाणं कोषस्यैव महीपितः । विज्ञाय राजा कौन्तेयो यज्ञायैव मनो द्धे ॥८॥

अर्थ-धर्मपूर्वक धन की आमदनी से महाराज युधिष्ठिर का कोष इतना बढ़गया कि जो सैकड़ों वर्षों तक व्यय करने पर भी नष्ट नहीं होसकताथा, कुन्ती के पुत्र राजा युधिष्ठिर ने अपने देश और कोष का विस्तार देखकर पूर्वोक्त राजसूययज्ञ करने का दृढ़ संकल्प करिलया ॥

सहदश्चेव ये सर्वे पृथक् च सहिताब्रुवन् । यज्ञकालस्तव विभो क्रियतामत्र साम्प्रतम् ॥९॥ अथैवं ब्रुवतामेव तेषामभ्याययौ हरिः । बलाधिकारे निक्षिप्य सम्यगानकदुन्दुभिम् ॥१०॥

अर्थ-महाराज युधिष्ठिर के सब मित्र तथा बन्धुओं ने भी एक स्वर से यही सम्मित दी कि हे राजन ! यह समय आपके यज्ञ करने का है सो आप उसको आरम्भ की जिये, जिस समय सभा में इस विषय की बातचीत होरही थी उसी समय महाराज कृष्णजी भी अपने पिता वस्रुदेव को सेना के अधिकार पर नियत करके सभा में पधारे।

कृष्णेन समुपेतेन जहेष भारतं पुरम् । तं मुदाभिः समागम्य सत्कृत्य च यथाविधि॥११॥

सभापर्व-सप्तद्शाध्याय

629

स पृष्ट्वा कुशलं चैव सुलासीनं युधिष्ठिरः । धौम्यद्वैपायनमुखैर्ऋत्विग्भिः पुरुष्पभः । भीमार्जनयमैक्चैव सहितः कृष्णमब्वीत् ॥१२॥

अर्थ-छुष्णजी के आने से भारतवर्ष की राजधानी इन्द्र-प्रस्थ नगरी में सर्वत्र हर्ष फैल गया,श्रेष्ठ पुरुष महाराज युधिष्ठिर ने आनन्द के साथ उनसे भेट की और उनके सुखपूर्वक बैठ जाने पर यथोचित सत्कार तथा कुशलपश्च करके "धौम्य" तथा "व्यास" आदि ऋत्विजों और भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव इन चारोभाइयों समेतयुधिष्ठिर छुष्णजी से इस प्रकार बोले कि:-

त्वत्कृते पृथिवी सर्वा मद्भो कृष्ण वर्त्तते । धनं च बहु वाष्णेय त्वत्यसादादुपार्जितम् ॥१३॥ तदहं यष्टुमिच्छामि दाशाई सहितस्त्वया । अनुजैश्व महाबाहो तन्मानुज्ञातुमईसि ॥१४॥

अर्थ-हे कृष्ण ! मेरे अधीन जितनी पृथ्वी है वह सब तुम्हारे लिये है और हे यदुवंशी ! तुम्हारी ही कृपा से मैंने असंख्य धन उपार्जन किया है, सो हे महाबाहु कृष्ण ! अब मैं आपकी तथा अपने चारो छोटे भाइयों की सहायता से राजसूययज्ञ करना चाहता हुं सो आप मुझे अनुमति दें, और :-

तदीक्षापय गोविन्द त्वमात्मानं महाभुज । त्वयीष्ट्रवति दाशाहं विपाप्मा भविता ह्यहम् ॥१५॥

मां वाप्यभ्यनुजानीहि सहैभिरनुजैर्विभो । अनुज्ञातस्त्वया कृष्ण प्राप्नुयां क्रतुमुत्तमम् ॥१६॥

अर्थ-हे गोरक्षक महाबाहु कृष्ण ! आप स्वयं इस यज्ञ की दीक्षा छें, क्योंकि तुम्हारे यज्ञकर्ता होने से मैं निष्पाप होजाउंगा अर्थात तुम्हारे उपकार का ऋण निवट जायगा, हे स्वामिन ! यदि आपको यह इष्ट न हो तो आप मुझे इस महान यज्ञ करने की आज्ञा दीजिये, क्योंकि आपकी आज्ञा पाकर ही मैं अपने इन भाइयों समेत इस यज्ञ को करसकता हूं॥

वैशम्पायन उवाच

तं कृष्णः प्रत्युवाचेदं वर्णयन् युगविस्तरम् । त्वमेव राजशार्दूल सम्राडहीं महाऋतुम् ॥१७॥ संप्राप्तुहि त्वया प्राप्ते कृतकृत्यास्ततो वयम् । नियुद्धश्व त्वं च मां कृत्ये सर्वं कर्त्तास्मि ते वचः॥१८॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजत! तब कृष्णजी युधिष्ठिर के गुण वर्णन करते हुए उनके कथन का इस प्रकार उत्तर देने छो कि हे राजराजेश्वर! आपशी चक्रवर्ती राजा होने योग्य हैं, इसिलये आप इस महान यह का आरम्भ करें तब हम सब अपने आपको कृतकृत्य समझेंगे और हे राजन! आप मुझे भी यह के संबन्ध में जो आहा देंगे मैं भी उसका पालन करुंगा।

युधिष्ठिर उवाच

सफलः कृष्ण संकल्पः सिद्धिश्च नियता मम । यस्य मे त्वं ह्वीकेश यथेप्सितमुपस्थितः ॥१९॥

अर्थ-तव युधिष्ठिर बोले कि है जितेन्द्रिय कृष्ण ! मेरा संकल्प अवस्य सफल होगा और निश्चित मेरे कार्य की सिद्धि होगी,जबिक आप इस प्रकार मेरी यथेष्ट सहायता करने को उद्यत हैं॥ वैद्याम्पायन उवाच

अनुज्ञातस्तु कृष्णेन पाण्डवो भ्रातृभिः सह । ईजितुं राजस्रेयन साधनान्युपचक्रमे ॥२०॥ ततस्त्वाज्ञापयामास पाण्डवोरिनिवर्हणः । सहदेवं युधांश्रेष्ठं मन्त्रिणश्चैव सर्वशः ॥२१॥ अस्मिन् कतौ यथोक्तानि यज्ञाङ्गानि द्विजातिभिः । समानयन्तु पुरुषा यथायोगं यथाक्रमम् ॥२२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! तव पाण्डुपुत्र महा-राज युधिष्ठिर कृष्णजी से अनुमित पाकर अपने भाइयों समेत राजसूययज्ञ की तैयारी करने लगे, शत्रुविजयी युधिष्ठिर ने श्रेष्ठ योद्धा सहदेव तथा सब मन्त्रियों को आज्ञा दी कि इस यज्ञ के लिये विद्वान ब्राह्मणों ने जो २ सामग्री वताई है वह सब यथा-योग्य क्रमपूर्वक भृत्यों से मंगाओ, और :-

सर्वकामाश्च कार्यन्तां रसगन्धसमन्विताः । मनोहराः प्रीतिकरा द्विजानां कुरुसत्तम ॥२३॥

अर्थ-हे कुरुओं में श्रेष्ठ सहदेव! यज्ञ में सिम्मिलित होने वाले द्विजों अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लिये यथारुचि मनोहर तथा आह्लादकारी रस और मुगन्ध से पूर्ण भोजन भी तैयार कराओं॥ महाभारत

तद्वाक्यसमकांल तु कृतं सर्व न्येवद्यत् । सहदेवो युधांश्रेष्ठो धर्मराजे युधिष्ठिरे ॥२४॥

अर्थ-तव महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाते ही वीर सहदेव ने सब कार्य अत्यन्त शीघ्रता से पूर्ण करके धर्मराज युधिष्ठिर को सूचना दे दी॥

ततो द्वैपायनो राजन्नृत्विजः समुपायनत् । वेदानिव महाभागान् साक्षान्मूर्त्तिमतो द्विजान्॥२५॥ स्वयं ब्रह्मत्वमकरोत्तस्य सत्यवतीस्रुतः । धनञ्जयानामृषभः सुसामा सामगोऽभवत् ॥२६॥ याज्ञवत्क्यो बभ्वाथ ब्रह्मिष्ठोऽध्वर्युसत्तमः । पैलो होता वसोः पुत्रो धौम्येन सहितोऽभवत्॥२७॥ एतेषां शिष्यवर्गाश्च पुत्राश्च भरत्षभ । बभ्रुवहींत्रगाः सर्वे वेदवेदांगपारगाः ॥ २८॥

अर्थ-हे राजा जनमेजय! तव महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ के लिये व्यासजी ने चार महाभाग्यवान श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋत्विज् = यज्ञ कराने वाले नियत किये जो चार मूर्तिमान वेदों के तुल्य थे, उनमें से सत्यवती के पुत्र व्यासजी स्वयं उस यज्ञ में "ब्रह्मा" बने, धनअय नामक ब्राह्मणों में मुख्य " मुसामा " उद्गाता नियत हुए, ब्रह्मवेत्ता "याज्ञवल्क्य" अध्वर्यु तथा "वसु" के पुत्र "पैल" जो व्यासजी के शिष्य थे "धौम्य" ऋषि समेत होता बनाये गये, हे भरतकुलश्रेष्ठ राजन ! इन पूर्वोक्त ऋत्विजों के शिष्यगण तथा पुत्र लोग जो वेदवेदाङ्गों के पारदर्शी थे उस यह में होत्रग = मन्त्रगान करने वाले नियत किये गये॥

ते वाचियत्वा पुण्याहमूहियत्वा च तं विधिम् । शास्त्रोक्तं पूजयामासुस्तद्देवयजनं महत् ॥ २९॥ तत्र चक्रुरनुज्ञाताः शरणान्युत शिल्पिनः । गन्धवन्ति विशालानि वेश्मानीव दिवौकसाम्॥३०॥

अर्थ-मथम उन ऋषियों ने वेदोक्त विधि से स्वस्तिवाचन किया, पुनः शास्त्रोक्त राजस्य महायक्त का विचार निश्चित करके पश्चाद शिल्पी = कारीगर लोगों ने महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर वड़े २ भवन = महल तैयार किये जिनमें सुगन्धित वृक्षादि लगाये गये जो देवताओं के भवन समान शोभायमान थे।

तत आज्ञापयामास स राजा राजसत्तमः । सहदेवं तदा सद्यो मन्त्रिणं पुरुष्भमः । आमन्त्रणार्थं दूतांस्त्वं प्रेषयस्वाशुगान् दुतम् ॥३१॥

अर्थ-तत्पश्चात् पुरुषश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर ने अपने मन्त्री सहदेव को आज्ञा दी कि यज्ञ में वाहर के पुरुषों की बुलाने के लिये तुम शीघ्रगामी दृतों को भेजो ॥

उपश्रुत्य वचो राज्ञः स दूतान् प्राहिणोत्तदा । आमन्त्रयध्वं राष्ट्रेषु ब्राह्मणान् भूमिपान्थ । विशक्त्व मान्यान् श्रुद्रांश्च सर्वानान्यतीते च ॥३३॥ अर्थ-तब राजा की आज़ा पाते ही सहदेव ने दृतों को भेजा और आज़ा दी कि देश विदेश में जितने माननीय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और श्रुष्ट हैं उन सब को यज्ञ में आने के लिये निमन्त्रित करों ॥

वैशम्पायन उवाच

समाज्ञप्तास्ततो दूताः पाण्डवेयस्य शासनात् । आमन्त्रयांवभूबुश्च आनयश्चापरान् दुतस् । तथापरानिष नरानात्मनः शीघ्रगामिनः ॥ ३३ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! तब वह दृत पाण्डुपुत्र सहदेव की आज्ञा पाकर यज्ञ में आने वाले पुरुषों को निमन्त्रित करने गये और उन्होंने अपने से भी अधिक शीघ चलने वाले अन्य दृतों को अन्यान्य स्थानों में निमन्त्रण देने के लिये भेजा ॥

ततस्ते तु यथाकालं क्रन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् । दीक्षयात्रिके विप्रा राजसूयाय भारत ॥ ३४ ॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! तव उन पूर्वोक्त ऋत्विजों ने यथासमय युधिष्ठिर को राजम्ययक की दीक्षा दी ॥

दीक्षितः स तु धर्मात्मा धर्मराजो युधिष्ठिरः । जगाम यज्ञायतनं वृतो विषेः सहस्रशः ॥ ३५॥ अतृभिर्ज्ञातिभिर्श्चेव सुहृद्धिः सचिवैः सह । क्षत्रियेश्च मनुष्येन्द्रेर्नानादेशसमागतैः । अमात्येश्च नरश्रेष्ठो धर्मा विष्रह्वानिव ॥ ३६॥ अर्थ-तत्पश्चात धर्मात्मा युधिष्ठिर ने, यज्ञ के लिये दीक्षा पाकर सहस्रो ब्राह्मणों, सब भाइयों, सम्बन्धियों, मित्रों, मित्रियों, नाना देशों से आये हुए बड़े २ क्षात्रिय राजाओं तथा प्रधान सहायकों समेत मूर्तिमान धर्म के समान यज्ञमण्डप में प्रवेश किया॥

आजग्मुर्नाह्मणास्तत्र विषयेभ्यस्ततस्ततः ।
सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ॥३७॥
तेषामावसथांश्चकुर्धर्मराजस्य शासनात् ।
सर्वजुण्णसंपन्नान् शिल्पिनोऽथ सहस्रशः ॥३८॥
तेषु ते न्यवसन्नाजन् न्राह्मणा नृपसत्कृताः ।
कथयन्तः कथा बह्वीः पश्यन्तो नटनर्तकान् ॥३९॥

अर्थ-महाराज युधिष्ठिर के यह में देशदेशान्तरों से सर्व-विद्यानिपुण वेदवेदाङ्गों के पारगामी ब्राह्मण लोग पथारे, जिनके लिये धर्मराज युधिष्ठिर की आहा से शिल्पी लोगों ने उत्तमोत्तम सहस्रों महल तैयार किये जो सब ऋतुओं में मुखदायी थे, हे राजन ! महागाज युधिष्ठिर से सत्कार पाये हुए वह ब्राह्मण लोग उन महलों में ठहरे, वह मितिदिन अनेक मकार के उपदेश तथा कथाओं द्वारा सबको लाभ पहुंचाने लगे और यथासमय सब लोग नट नर्तक लोगों के कौतुक = तमाशे भी देखते थे॥

प्रावर्त्ततैवं यज्ञः स पाण्डवस्य महात्मनः। ततो युधिष्ठिरो राजा प्रेषयामास पाण्डवम्। नकुलं हास्तिनपुरं भीष्माय पुरुष्षभः॥४०॥ 383

महाभारत

द्रोणाय धतराष्ट्राय विद्रुराय कृपाय च । भ्रातृणां चैव सर्वेपा येऽनुरक्ता युधिष्ठिरे ॥४१॥

अर्थ-इस मकार महात्मा युधिष्ठिर का जब यज्ञहोना मारम्भ होगया तब महाराज युधिष्ठिर ने भीष्मिपतामह, द्रोणाचार्य, धृत-राष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य और दुर्योधन आदि सब भाइयों तथा अपने इष्ट मित्रों को यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये पाण्डुपुत्र नकुल को हस्तिनापुर में भेजा॥

इति सप्तदशोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टादशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

स गत्वा हास्तिनपुरं नकुलः समितिञ्जयः। भीष्ममामन्त्रयांचके धृतराष्ट्रं च पाण्डवः ॥१॥ सत्कृत्यामन्त्रितास्तेन आचार्यप्रमुखास्ततः। प्रययुः प्रीतमनसो यज्ञं ब्रह्मपुरःसराः॥ २॥

अर्थ-वैशम्यायन बोले कि हे राजन ! युद्धविजयी पाण्डव नकुल हिस्तिनापुर पहुंचा और उसने भीष्मिपतामह, धृतराष्ट्र तथा द्रोणाचार्य आदि सब को सत्कारपूर्वक यज्ञ में आने के लिये निमन्त्रण दिया, तब सब लोग प्रसन्न हो आचार्य को आगे करके युधिष्ठिरके यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये इन्द्रप्रस्थ को चलदिये॥ संश्रुत्य धर्मराजस्य यज्ञं यज्ञिवदस्तदा । अन्य च शतशस्तुष्टैर्मनोर्भिभरतर्षभ ॥३॥ द्रष्टुकामाः सभांचैव धर्मराजं च पाण्डवम् । दिरभ्यः सर्वे समापतुः क्षत्रियास्तत्र भारत । ससुपादाय खानि विविधानि महान्ति च ॥४॥

अर्थ-हे भरतकुलभूषण राजा जनमेजय ! तब धर्मराज युधि-ष्टिर के राजसूययज्ञ का वृतान्त सुनकर यज्ञ की महिमा जानने बाले सैकड़ों अन्य क्षत्रिय भी प्रसन्नतापृत्रक महाराज युधिष्ठर के दर्शन तथा उनके सभाभवन को अवलोकन करने के लिये नाना प्रकार के रत्नों की भेट लिये हुए देशदेशान्तरों से इन्ट्रयस्थ में आये॥

धृतराष्ट्रश्च भीष्मश्च विदुरश्च महामितः । दुर्योधनपुरोगाश्च श्चातरः सर्व एव ते ॥५॥ गान्धारराजः सुबलः शकुनिश्च महाबलः । अचलो वृषकश्चैव कर्णश्च रिथनां वरः ॥६॥ तथा शल्यश्च बलवान् बाल्हिकश्च महाबलः । सोमदत्तोऽथ कौरव्यो भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥७॥ अश्वत्थामा कृपो द्रोणः सैन्धवश्च जयद्रथः । यज्ञसेनः सपुत्रश्च शाल्वश्च वसुधाधिपः ॥८॥ प्राग्ज्योतिषश्च नृपतिर्भगदत्तो महारथः ॥ स तु सर्वैः सह म्लेच्छैः सागरान्पवासिभिः ॥९॥ पार्वतीयाश्च राजानो राजा चैव बृहद्धलः ।

पौण्ड्रको वासुदेवश्च उद्गः कालिङ्गकस्तथा ॥१०॥
आकर्षाः कन्तलाश्चैव गालवाश्चान्ध्रकास्तथा ॥
शाविड्राः सिंहलाश्चैव राजा काश्मीरकस्तथा ॥११॥
कृन्तिभोजो महातजाः पार्थिवो गौरवाहनः ।
वाहिलकाश्चापर श्रूरा राजानः सर्व एव ते ॥१२॥
विरादः सह पुत्राभ्यामावेलश्च महावलः ।
राजानो राजपुत्राश्च नानाजनपदेश्वराः ॥१३॥
शिश्यपालो महावीर्यः सह पुत्रेण भारत ।
आगच्छत् पाण्डवेयस्य यज्ञं समरदुर्मदः ॥१४॥

अर्थ-हे राजन ! पाण्डुपुत्र महाराज युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में निम्निलिबित राजालोग एकत्रित हुए जिनके नाम यह हैं:—

धृतराष्ट्र, भीष्मितामह, महाबुद्धिमान विदुर, दुर्योधन आदिक सव "सौ " भाई, गान्धार=कंधार देश का राजा सुबल, महावली शकुनि, अचल, बृषक, योद्धाओं में श्रेष्ठ कर्ण, बलवान शल्य, महावली वाल्हिक, सोमदत्त, कौरव्य, भूरि, भूरिश्रवा, शल, अश्वत्थामा,कृपाचार्य,होणाचार्य, सैन्यव जयद्रथ, अपने पुत्र धृष्ट्युम्न समेत यज्ञसेन=दुपद, राजा शाल्व, समुद्र के जलप्राय भाग में रहने वाले सब दस्यु राजाओं को साथ लिये हुए "प्राग्ज्योतिष" प्रदेश का राजा भगदत्त, पर्वतों के राजा लोग, राजा बृहद्धल, पुण्ड्राज वास्रुदेव, बङ्ग = बङ्गाल का राजा, कलिङ्ग देश का राजा, आकर्ष, कुन्तल,गालव तथा अन्ध्रकवंशी राजालोग द्वावेड्राज, सिंहल = लंका

का राजा, कश्मीरनरेश, महामतापी कुन्तिभोज, राजा गौरवाहन तथा वाल्हिक देश के सब वीरराजा लोग, अपने दोनों पुत्रों समेत विराट, महावली आवेल्ल, तथा भिन्न २ देश देशान्तरों के राजा और राजकुमार, युद्ध से न हटने वाला महापराक्रमी राजा शिथुपाल तथा उसका पुत्र भी सम्मिलित हुआ।।

रामश्चैवानिरुद्धस्य कङ्कस्य सहसारणः ।
गद्मद्युम्नसाम्बाश्य चारुदेष्णश्य वीर्यवान् ॥१५॥
उत्मुको निशठश्चैव वीरश्यांगावहस्तथा ।
वृष्णयो निषिठाश्चान्ये समाजग्मुमहारथाः ॥१६॥
एते चान्ये च बहवो रजानो मध्यदेशजाः ।
आजग्मः पाण्डपुत्रस्य राजस्यं महाकृतम् ॥१७॥

अर्थ-पूर्वोक्त राजाओं के अतिरिक्त यह वृष्णिवंशी वीर भी महाराज युधिष्ठिर के राजम्ययक में पधारे थे :—

बलराम, अनिरुद्ध, कंक, सारण, गद, प्रद्युम्न, साम्ब, महा-वली चारुदेष्ण, उल्मुक, निश्चठ, बीर अङ्गावह तथा अन्यान्य सब महायोद्धा वृष्णिवंशी और मध्यप्रदेश के बहुत से राजा लोग भी सम्मिलित हुए ॥

ददुस्तेषामावसथान् धर्मराजस्य शासनत् । बहुभक्ष्यान्वितान् राजन् दीर्घिकावृक्षशोभितान्॥१८॥

अर्थ-हे राजन ! धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से पूर्वोक्त सब राजाओं को ठहरने के लिये उत्तमोत्तम स्थान दिये गये जिनमें सव प्रकार के खानपान आदि का सामान संचित. था और जो बावली तथा वृक्षों से सुशोभित थे॥

तथा धर्मात्मजः पूजां चके तेषां महात्मनाम् ।
सत्कृताश्च यथोदिष्टान् जग्मुरावसथान्नुपाः ॥१९॥
कैलासाशिखरप्रख्यान् मनोज्ञान्द्रव्यभूषितान् ।
सर्वतः संवृतानुचैः प्राकारैः सक्तैः सितैः ॥२०॥
स्वर्णजालसंवीतान् मणिकृद्धिमभूषितान् ।
सुखारोहणसोपानान् महासनपरिच्छदान् ॥२१॥
सग्दामसमवच्छन्नानुत्तमाग्रुरुगन्धिनः ।
हंसेन्दुवर्णसदृशानायोजनसुदृशनान् ॥२२॥
असम्बाधान् समद्रारान् युतानुचावचैग्रणैः ।
बहुधा तु निबद्धाङ्गान् हिमवच्छिखरानिव ॥२३॥

अर्थ-सबसे प्रथम महाराज युधिष्टिर ने उन सब आये हुए
महात्मा राजा लोगों का यथायोग्य सत्कार किया, तत्पश्चात वह
लोग अपने २ नियत किये हुए भवनों में यथायोग्य ठहर गये, वह
भवन कैलास पर्वत के शिखर समान ऊंचे, श्वेतवर्ण, तथा अनेक
मनोहर द्रव्यों मे अलंकृत और जो श्वेतवर्ण के सुन्दर ऊंचे
कोट से घिरे हुए थे, उनमें स्थान २ पर सुवर्ण की जालियें लगी
हुई थीं,और भूमी माणियों की पचीकारी से सुशोभित थी, स्थान२
पर सुख से चढ़ने योग्य सीढ़ियें लगी थीं तथा बढ़े २ आसन आदि
सामान विद्यमान थे, सब ओर पुष्पमालायें लटकाई हुई थीं,
वह महल अगर आदि पदार्थों से सुगन्धित तथा उनका रंग इंस और

सभापर्व-एकोनविंशाध्याय

283

चन्द्रमा के समान उज्वल था और इतने ऊंचे थे कि एक योजन = चारकोस की दूरी से भली भांति दीख पड़ते थे, वह भवन भीतर से मुविस्तृत = खुले हुए और उनके द्वार एक समान वने हुए थे, इस पकार अनेक गुणों से मुशोभित हुए वह भवन ऐसे प्रतीत होते थे जैसे विविध पकार के रंग विरंगे धातुओं से परिपूर्ण हिमालय पर्वत के शिखर दृष्टिगोचर होते हैं॥

विश्रान्तास्ते ततोऽपरयन् भूमिपा भूरिदक्षिणम् ।

वृतं सदस्यैर्बहुभिर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥२४॥

अर्थ-वह सव राजा लोग अपने २ भवन में विश्राम करने
के पश्चात सभाभवन में अनेक सभासदों से सुशोभित हुए २
वहुदक्षिणा देने वाले धर्मराज युधिष्ठिर के दर्शन को गये ॥

इति अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनविंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैश्वाम्पायन उवाच
पितामहं ग्रुरु वेव प्रत्युद्गम्य युधिष्ठिरः ।
अभिवाद्य ततो राजिन्नदं वचनमन्नवीत् ॥१॥
भीष्मं द्रोणं कृपं द्रौणिं दुर्योधनिविविंशती ।
अस्मिन् यन्ने भवन्तो मामनुगृहणन्तु सर्वशः॥२॥
इदं वः सुमहचैव यदिहास्ति धनं मम ।
प्रणयन्तु भवन्तो मां यथेष्टमभिमन्त्रिताः ॥३॥

६४२

महाभारत

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! सभाभवन में सव राजा आदिकों के आने के पश्चाद महाराज युधिष्टिर अपने पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अक्वत्थामा, दुर्योधन, विविंशाति तथा अन्य मान्य पुरुषों का अभिवादन आदि से यथायोग्य सत्कार करके बोले कि आप सब लोग इस यज्ञ में मेरी सहायता करके मुझ पर अनुग्रह करें, आप सब निमन्त्रित हुए हैं और मेरा जो कुछ यह महद धन यहां विद्यमान है वह सब आप लोगों का ही है, आप लोग यज्ञ के संबन्ध में इसको यथायोग्य न्यय करके मुझे अपने मेम का परिचय दें॥

एवमुक्ता स तान्सर्वान् दीक्षितः पाण्डवायजः। ययोज स यथायोगमधिकोरष्वनन्तरम् ॥४॥

अर्थ-यज्ञ में दीक्षित हुए २ पाण्डवों में ज्येष्ठ महाराज युधिष्ठिर ने पूर्वोक्त वचन कहकर सव वन्धुओं को यथायोग्य अधिकारों पर इसप्रकार नियुक्त किया कि :—

भक्ष्यभोज्याधिकारेषु दुःशासनमयोजयत् । परिग्रहे त्राह्मणानामश्वत्थामानमुक्तवान् ॥५॥ राज्ञां तु प्रतिपूजार्थं सञ्जयं संन्ययोजयत् । कृताकृतपरिज्ञाने भीष्मद्रोणौ महामती ॥६॥ हिरण्यस्य सुवर्णस्य रत्नानां चान्ववेक्षणे । दाक्षणानां च वे दाने कृपं राजा न्ययोजयत् । तथान्यान् पुरुषव्याघ्रांस्तिस्मिस्तास्मित्रचयोजयत्॥७॥

सभापर्व-एकोनर्विशाध्याय

883

अर्थ-भोजन के पवन्य पर दुःशासन, ब्राह्मणों के सत्कारार्थ अध्यत्यामा, राजाओं के सत्कार के लिये सञ्जय, सब कार्यों की भलाई बुराई वा न्यूनाधिकता का निरीक्षण करने के लिये महाबुद्धि-मान भीष्मिपतामह और द्रोणाचार्य, धन, सुवर्ण तथा रत्नों की देखभाल और दक्षिणायें देने पर कुपाचार्य तथा अन्य उद्योगी सिंहपुरुषों को यथायोग्य भिन्न २ कार्यों के प्रवन्ध पर नियुक्त किया गया ॥

बाल्हिको धतराष्ट्रश्च सोमदत्तो जयद्रथः। नकुलेन समानीताः स्वामिवत्तत्र रेमिरे ॥८॥ क्षत्ता व्ययकरस्त्वासीदिदुरः सर्वधर्मवित्। दुर्योधनस्त्वर्हणानि प्रतिजग्राह सर्वशः॥९॥ चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत्। सर्वलोकसमावृत्तः पिप्रीषुः फलमुत्तमम् ॥१०॥

अर्थ-बाल्हिक, धृतराष्ट्र, सोमदत्त और जयद्रथ इन मान्य पुरुषों को नकुल उत्तम भवनों में लेगया और वह गृहस्वामियों के समान रहने लगे अर्थाद उनको कोई कार्य करने का कष्ट न दिया, सम्पूर्ण कर्तव्य के ज्ञाता विदुरजी यज्ञ में व्यय करने वाले नियत हुए और दुर्योधन को सब राजाओं की भेटें ग्रहण करने का कार्य सौंपा गया,विद्वान,तपस्त्री तथाधर्मात्मा ब्राह्मणों के चरण धोने के कार्य पर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं नियत हुए, क्योंकि वह चाहते थे कि जो उत्तम फल=यश पूर्वोक्त सब मनुष्यों को माप्त नहीं होसकता वह मुझे हो ॥ द्रव्दुकामः सभां चैवं धर्मराजं युधिष्ठिरम् । न कश्चिदाहरत्तत्र सहस्रावरमईणम् ॥११॥ कथं तु मम कौरव्यो स्त्रदानैः समाप्तुयात् । यज्ञमित्येव राजानः स्पर्द्धमाना दर्दुधनम् ॥१२॥

अर्थ-महाराज युधिष्ठिर तथा उनके सभाभवन के दर्शनार्थ वहां जो कोई भी आया उनमें ऐसा कोई मनुष्य न था जिसने कम से कम सहस्र मुद्रा भेट न किये हों. सब राजा छोग इस स्पर्दा = ईवा के साथ अपना २ धन पहिंछे भेट करने की उत्सुक थे कि किसी मकार महाराज युधिष्ठिर मेरे धन को यह में उपयुक्त करके सफल करें।

पडिमिनाथ यहोन सोऽयजहिषाणावता । सर्वात् जनान्सर्वकामैः सम्द्रिः समत्र्पयत् ॥१६॥ अन्नवान् बहुभक्ष्यस्य भुक्तवजनसंदृतः।

रत्नोपहारसम्पन्नो बभूव स समागमः ॥ १४ ॥

अर्थ-प्रशंक सब कार्य हो चुकने पर अर्थाद राजा लोगों की भेटें ग्रहण करने के पश्चाद महाराज युधिष्ठिर ने छः प्रकार की अग्नियें * विधिपूर्वक नियत करके प्रधान यज्ञ संबन्धी हवन किया और सब सत्पात्र अधिकारियों को दक्षिणायें देकर उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण किये, इस प्रकार इस यज्ञ महोत्सव के सम्मेलन पर अन तथा नाना प्रकार के भोजनवितरण किये गये और शिष्टाचार के अनुसार यथायोग्य रत्नों की भेटें भी दीगई ॥

^{* (}१) आरम्भणीय (२) क्षत्रभृति (३) स्युष्टि (४) द्विरात्र (५) दश्येय (६) सप्तेपेय ॥

सभापर्व-विशाध्याय

2,84

तिलाज्यहोमाहातिभिर्मन्त्रशिक्षाविशारदैः ।
तिलाज्यहोमाहातिभिर्मन्त्रशिक्षाविशारदैः ।
तिमिन्हि तेतृपुर्देवास्तते यज्ञे महिविभिः ॥१५॥
यथा देवास्तथा विप्रा दक्षिणान्नभहाधनैः ।
ततृपुः सर्ववर्णादन्त्र तिस्मन्यज्ञे मुदान्विताः ॥१६॥
अथ-वेदमन्त्रों की शिक्षा वें निपुण महिवियों ने उस विस्तृत
यज्ञ भें शास्त्रोक्त विथि से तिल, पृत, आदि सब हवन सामग्री की
आहुतियों द्वारा वायु, जल आदि देवताओं को तृप्त किया तथा
विद्वान ब्राह्मणों को दक्षिणा,अन्न आदि महाधन से सन्तुष्ट किया
गया, उस यज्ञ में केवल ब्राह्मण ही नहीं किन्तु सव वर्ण अर्थान
क्षत्रिय, वैदय और शृद्ध भी परम आनन्द के साथ सन्तुष्ट और
रसन्न किये गये ॥

इति एकोनविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ विंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच ततोऽभिषेचनीयेद्धि ब्राह्मणा राजिभः सह । अन्तर्वेदीं प्रविविशुः सत्काराही महर्षयः ॥१॥ नारद्रमुखास्तस्यामन्तर्वेद्यां महात्मनः । समासीनाः सुशुभिरे सह राजिषिभिस्तदा ॥२॥ अथ-वैशम्यायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! पूर्वोक्त यह के अन्त में जब अभिषेक का दिन आया तो पूजनीय महर्षि, ब्राह्मण तथा राजा छोग वेदी स्थान के भीतर चछेगये, उस समय वेदी के भीतर सुखपूर्वक वेठे हुए महात्मा नारद आदि विम तथा राजिंखोग परम सुशोभित होते थे॥

सा वेदिवेदसम्पन्नेदेविद्धजमहर्षिभिः। आवभासे समाकीर्णा नक्षत्रैद्यौरिवायता।।३॥ तां तु लक्ष्मीवतो लक्ष्मीं तदा यज्ञविधानजाम्। तुतोष नारदः पश्यन् धर्मराजस्य धीमतः॥४॥ तिस्मन् धर्मविदां श्रेष्ठा धर्मराजस्य धीमतः। महाध्वरे महाबुद्धिस्तस्यो स बहुमानतः॥५॥

अर्थ-वेदि के सुशोभित करने वाले देव अर्थात् राजालेग, ब्राह्मण और महर्षियों से परिपूर्ण वह विशाल वेदी ऐसी शोभाय-मान मतीत होती थी जैसे तारागणों से परिपूर्ण आकाशमण्डल सुशोभित होता है, इस मकार यज्ञ के विधान से माप्त हुई २ बुद्धिमान युधिष्ठिर की राज्यलक्ष्मी को देखकर नारद परम संतुष्ट हुए और महाबुद्धिमान धर्मगज युधिष्ठिर के उस महान राजस्ययज्ञ में धर्मज पुरुषों में श्रेष्ठ नारदजी बड़े गौरव के साथ विराजमानरहे॥

ततो भीष्मोऽत्रवीद्राजन् धर्मराजं युधिष्ठिरम्।
कियतामहेणं राज्ञां यथाहिमिति भारत ॥६॥
आचार्यमृत्विजं चैव संयुजं च युधिष्ठिर ।
रनातकं च ११यं प्राहुःषडर्घार्हान नृपं तथा ॥७॥
एषामेकैकशो राजन्नर्घ आनीयतामिति ।
अथ चैषां वरिष्ठाय समर्थायोपनीयताम् ॥८॥

सभापर्व-विंशाध्याय

683

अर्थ-हे राजा जनमेजय! अभिषेक के पश्चात भीष्मिपतामह धर्मराज
युधिष्टिर से बोले कि हे भारतीय राजन ! अव आप राजा लोगों
का यथायोग्य सत्कार कीजिये, हे युधिष्टिर ! आचार्य, ऋत्विज्=
यज्ञ कराने वाला, संयुक् = क्वशुर, स्नातक, लोक प्रिय
पुरुष और राजा, यह छः अर्ध्य = पूजन = सत्कार के
अधिकारी बताये गये हैं,सो हे राजन ! इनमें से एक २ का पृथक २
पूजन कीजिये अथवा इन सब में जो श्रेष्ठ और समर्थ हो उस
एक का सन्मानपूर्वक मथम पूजन करें।।

युधिष्ठिर उवाच

करमें भवान् मन्यतेऽर्घमेकरमें कुरुनन्दन । उपनीयमानं युक्तं च तन्मे बूहि पितामह ॥ ९ ॥

अर्थ-तव युधिष्ठिर ने कहा कि हे कुरुवंश के आनन्दकारी अतामहजी! आपकी सम्मति में किस एक के छिये अर्धप्रदान करना उचित है सो आप बतावें॥

वैशम्पायन उवाच

ततो भीष्मः शान्तनवो बुद्धचा निश्चित्य वीर्यवान् । वाष्णेयं मन्यते कृष्णमर्हणीयतमं सुवि ॥ १० ॥ एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः । मध्ये तपित्रवाभातिं ज्योतिषामिव भास्करः ॥११॥ असूर्यीमव सूर्येण निर्वातिमिव वासुना । भासितं हलादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः ॥१२॥ अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! युधिष्ठिर के पूछने पर पराक्रमी शन्तनुपुत्र भीष्मजी ने बुद्धिद्वारा निश्चय किया कि वृष्णिवंशी छुष्णजी ही भूमण्डल पर सब से अधिक पूजनीय हैं, क्योंकि इन सब राजा आदिकों में छुष्णजी ही तेज, बल और पराक्रम से इसप्रकार देदीष्यमान हैं जैसे ग्रह नक्षत्रादिकों के मध्य भास्कर= मूर्य देदीष्यमान मतीत होता है, देखो हमारी यह सभा भी छुष्णजी के प्रताप ने ऐसी प्रकाशित और आह्लादित हुई है जैसे अन्यकारमय स्थान मूर्य से प्रकाशित तथा वायुरहित स्थान वायु से आनन्दमय होजाता है।।

तस्मै ओष्माभ्यनुज्ञातः सहदेवः प्रतापवान् । उपजद्वेऽथविधिवद् वाष्णियायाधिमुत्तमम् । प्रतिज्ञश्राहः तत् कृष्णः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१३॥

अर्थ-इस प्रकार विचार करने के पश्चात भीष्मजी ने प्रतार्थ, सहदेव को वैसा करने की अनुमित दी और उसने विधिपूर्वक उत्कृष्टच्प से कृष्णजी को अर्घ्य प्रदान किया जिसको कृष्णजी ने शास्त्रोक्त रीति से स्वीकार किया ॥

शिशुपालस्तु तां पूजां वासुदेवे न चक्षमे । स उपालभ्य भीष्मं च धर्मराजं च संसदि । अपाक्षिपद्रासुदेवं चेदिराजो महाबल: ॥१४॥

अर्थ-इस प्रकार कृष्णजी का पूजन हुआ देखकर महाबली चन्द्रेगीनरेश राजा शिशुपाल न सह सका और वह सभा में खड़ा होकर भीष्मिपितामह तथा धर्मराज युधिष्टिर पर कटाक्ष करता हुआ वासुदव=श्रीकृष्ण पर इस प्रकार आक्षेप करने लगा कि:ि दिाद्युपाल ख्वाच

नायमहीत वाष्णेयस्तिष्ठित्स्वह महात्मसु । महीपातिषु कौरव्य राजवत् पार्थिवार्हणाम् ॥१५॥ नायं युक्तः समाचारः पाण्डवेषु महात्मसु । यत्कामात् पुण्डरीकाक्षं पाण्डवार्चितवानीस ॥१६॥

अर्थ-हे युधिष्ठिर!हे भिष्म!इस सभा में ऐसे२ महात्माओं तथा राजाओं के होते हुए यह वृष्णिवंशी कृष्ण इस राजोचित सन्मान का अधिकारी नहीं, हे पाण्डुपुत्र! तुमधर्मात्मा पाण्डव कहलाते हो तुम्हें यह व्यवहार उचित नहीं कि तुम स्वार्थ अर्थात सम्बन्ध का विचार करके कृष्ण का पूजन करो॥

बाला यूयं न जानीध्वं धर्मः सूक्ष्मो हिपाण्डवाः । अयं च स्मृत्यतिकान्तो ह्यापगेयोऽल्पदर्शनः॥१७॥ त्वाहशो धर्मयुक्तो हि कुर्वाणः प्रियकाम्यया । भवत्यभ्यधिकं भीष्म लोकेस्ववमतः सताम् ॥१८॥

अर्थ-हे पाण्डवो ! तुम लोग वालक हो इसलिये धर्म की सूक्ष्मता को नहीं जान सकते, परन्तु शोक है कि यह वृद्ध भीष्म भी अज्ञानी होगया और बृहापे के कारण इसकी स्मृति नष्ट हो गई है, हे भीष्म ! तुझजैसाधमीत्मा कहलाने वाला पुरुष यदि स्वार्थ की कामना से ऐसा अनुचित न्यवहार करे तो वह संसार में सज्जनों के आगे अत्यन्त निन्दनीय होता है ॥

कथं ह्यराजा दाशाहों मध्ये सर्वमहीक्षिताम्। अर्हणामहीति तथा यथा युष्माभिरिचितः ॥१९॥ अथवा मन्यसे कृष्णं स्थविरं कुरुपुङ्गव । वसुदेवे स्थिते वृद्धे कथमहीति तत्सुतः॥२०॥

अर्थ-यह यदुवंशी कृष्ण राजा न होता हुआ भी इन सब राजाओं के बीच में इस प्रकार के सन्मान का अधिकारी कैसे होसकता है जैसाकि तुम लोगों ने किया, हे कुरुओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! यदि तुम कृष्ण को वड़ा मानकर ऐसा करते हो तो कृष्ण के पिता वसुदेव के यहां होते हुए उनका पुत्र कैसे सन्मान पासकता है ? ॥

अथवा वासुदेवोऽपि प्रियकामोऽनुत्तवान् । द्रुपदे तिष्ठति कथं माधवोऽर्हति पूजनम् ॥२१॥ आचार्य मन्यसे कृष्णमथवा कुरुनन्दन । द्रोणे तिष्ठति वार्ष्णयं कस्मादार्चितवानसि ॥२२॥

अर्थ-हे कुरुवंश के आनन्दकारी युधिष्ठिर ! यदि तुम समझते हो कि कृष्ण ने तुम्हारे साथ सम्बन्ध किया हुआ है तो इससे बड़े सम्बन्धी "दुपद" के होते हुए कृष्ण कैसे पूजन का आधिकारी है ? और हे युधिष्ठिर ! यदि तुम वृष्णिवंशी कृष्ण को अपना आचार्य मानते हो तो द्रोणाचार्य की उपस्थिति में तुमने उनका सन्मान वयों किया, वयोंकि बड़े आचार्य तो वही हैं॥

ऋत्विजं मन्यसे कृष्णमथवा कुरुनन्दन । देपायने स्थिते वृद्धे कथं कृष्णोऽर्चितस्त्वया ॥२३॥

सभापर्व-विशाध्याय

६५१

भीष्मे शान्तनवे राजन् स्थिते पुरुषसत्तमे । स्वच्छन्दमृत्युकेराजन् कथं कृष्णोऽर्चितस्त्वया॥२४॥

अर्थ-हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! यदि तुम कृष्ण को ऋत्विज् मानते हो तो सब से बड़े ऋत्विज् वृद्ध व्यासजी की उपस्थिति में तुमने कृष्ण का क्यों पूजन किया, हे राजन! यदि उत्तम पुरुष मानकर ऐसा किया गया है तो शन्तनु पुत्र पुरुषोत्तम भीष्मिपितामह के होते हुए "जिन्होंने अपनी इच्छा-नुसार माणत्याग का सामध्य माप्त कियाहुआ है" कृष्ण का तुम ने क्यों सन्मान किया ?॥

अश्वत्थामि स्थिते वीरे सर्वशास्त्रविशारदे ।
कथं कृष्णस्त्वया राजन्नर्चितः कुरुनन्दन ॥२५॥
दुमं किंपुरुषाचार्यमतिन्नम्य त्वयार्चितः ।
भीष्मके चैव दुधेषें पाण्डवत्कृतलक्षणे ॥२६॥
नृषे च रुक्मिण श्रेष्ठे एकल्व्ये तथेव च ।
शल्ये मद्राधिषे चैव कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥२७॥

अर्थ-हे कुरुनन्दन राजा युधिष्ठिर ! यदि तुमने वीरता के विचार से ऐसा किया है तो सम्पूर्ण युद्धशास्त्र में निपुण वीर "अश्वत्थामा" किन्नर जाति के आचार्य "द्रुम" राजा पाण्डु के समान विद्यानिधान दुर्जयवीर "भीष्मक" श्रेष्ठ राजा "रुक्मी" वीर "एकलव्य" तथा "मद्रनरेश" और वीर "शल्य" इन सब वीर पुरुषों के होते हुए तुमने कृष्ण का सन्मान क्यों किया जब कि उसमें वीरता का लेश भी नहीं॥

महाभारत

अयं च सर्वराज्ञां वै बलश्लाघी महाबलः । जामदग्न्यस्य दियतः शिष्यो विषस्य भारत॥२८॥ येनात्मबलमाश्रित्य राजानो युधि निर्जिताः । तं च कर्णमतिकम्य कथं कृष्णस्त्वयार्चितः ॥२९॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! यह सब राजाओं में श्रेष्ठ महावली विष परश्राम का प्यारा शिष्य भी यहां विद्यमान है, जिस वीर ने केवल अपने वल के ही आश्रय पर सब राजाओं को युद्ध में विजय किया था उस वीर कर्ण का उल्लङ्घन करके तुमने कृष्ण का पूजन क्यों किया ?॥

नैव ऋतिङ् न चाचार्यो न राजा मधुसूदनः । अर्चितश्च कुरुश्रेष्ठ किमन्यत् शियकाम्यया ॥३०॥ अथवाभ्यर्चनीयोऽयं युष्माकं मधुसूदनः । किं राजभिरिहानीतैरवमानाय भारत॥३१॥

अर्थ-हे कुरुश्रेष्ठ युधिष्टिर! यह कृष्ण न ऋत्विज्, न आचार्य और नाही कोई राजा है तो फिर तुमने अपना क्या लाभ समझकर इसका सर्वोत्कृष्ट पूजन किया है, हे भारतीय राजन ! यदि तुमने यह निश्चय ही ठान लिया था कि कृष्ण का पूजन अवक्य करना है तो इन राजा लोगों को अपने यहां बुलाकर सबका क्यों अपमान किया !॥

वयं तु न भयादस्य कौन्तेयस्य महात्मनः । प्रयच्छामः करान् सर्वेन लोभान्न च सान्त्वनात्॥३२॥ अस्य धर्मे प्रवृत्तस्य पार्थिवत्वं चिकीर्षतः । करानस्मै प्रयच्छामः सोऽयमस्मान्न मन्यते ॥३३॥ अर्थ-हम सब राजा लोग इस कृष्ण के भय वा किसी लालच अथवा किसी प्रकार की सन्धि से राजा को "कर" नहीं देते किन्तु इस महात्मा कुन्ति पुत्र युधिष्टिर के भय से कर देते हैं, या यों कहो कि हम सब राजा लोग इस महात्मा युधिष्टिर के भय से दा किसी प्रकार के लोभ अथवा मन्धि के वश होकर "कर" नहीं देते, किन्तु इम लोग इस धर्मनिष्ठ राजा युधिष्टिर को

सम्राट् बनाने के लिये "कर" देते हैं, पन्तु यह हम लोगों को कुछ समझता ही नहीं अर्थात् हम सब राजा लोग इसको धर्मात्मा राजा समझकर ही अपना सम्राट् बनाना चाहते और "कर" देते हैं इसके भय से भयभीत होकर नहीं, इसलिये इसको भी हम राजा लोगों का सन्मान करना उचित है।

किमन्यदवमानाद्धि यदेनं राजसंसदि । अप्राप्तलक्षणं कृष्णमर्घेणाचितवानसि । ३४ ॥ अकस्माद्धर्मपुत्रस्य धर्मात्मेति यशो गतम् । को हि धर्मच्युते प्रजामेवं युक्तां नियोजयेत् ॥३५॥

अर्थ-इससे बढ़कर राजा लोगों का और क्या अपमान होगा कि राजसभा में सब राजाओं को त्यागकर कुलक्षणी कृष्ण का अर्घ द्वारा पूजन कियागया, शोक है कि बिना कारण ही धर्मपुत्र युधिष्ठिर का धर्मात्मापन का मसिद्ध यश जाता रहा, कौन ऐसा बुद्धिमान पुरुष है जो धर्मच्युत पुरुष का इस मकार पजन करे॥ योऽयं वृष्णिकुले जातो राजानं हतवान् पुरा । जरासन्धं महात्मानमन्यायेन दुरात्मवान् ॥ ३६ ॥ अद्य धर्मात्मता चैव व्यपकृष्टा युधिष्ठिरात् । दर्शितं कृपणत्वं च कृष्णोऽर्धस्य निवेदनात् ॥३७॥

अर्थ-यह वही दुष्टात्मा कृष्ण है जिसने वृष्णिवंश में जन्म लेकर भी पहले महात्मा जरासन्थ राजा को अन्याय = छल से मारा था, आज इसने युधिष्ठिर का धर्मात्मापन भी दूर करदिया, क्योंकि कृष्ण को अर्धदान करने से इसने आज अपनी नीचता पूर्ण ह्रप से दिखलादी है ॥

यदि भीताश्च कीन्तेयाः कृपणाश्च तपस्विनः । नतु त्वयापि बोद्धव्यं यां पूजां माधवाहिसि ॥३८॥ अथवा कृपणेरेतामुपनीतां जनार्दन । पूजामनहः कस्मात्त्वमभ्यनुज्ञातवानिस ॥ ३९॥

अर्थ-हे कृष्ण! माना कि यह कुन्ती के पुत्र विचारे डरपोक और नीच हैं पर तुझे भी तो यह सोचना चाहिये था कि तू किस मकार की पूजा के योग्य है, हे जनार्दन! जब तू इस पूजा के योग्य नहीं तो इन नीच पुरुषों के किये पूजन को तने कैसे स्वीकार करिंग्या ? ॥

अयुक्तामात्मनः पूजां त्वं पुनर्बहु मन्यसे । हविषः प्राप्य निस्यन्दं प्राशिता खेव निर्जने॥४०॥ न त्वयं पार्थिवेन्द्राणामपमानः प्रयुज्यते । त्वामेव कुखो व्यक्तं प्रलम्भन्ते जनार्दन ॥ ४१॥ अर्थ-हे कृष्ण ! वास्तव में वात यह है कि तू अयोग्य होकर भी इस पूजन से अपने को धन्य २ मानता है जैसे सूने वन में हिव का भाग पाकर कुत्ता प्रसन्न होता है,हे जनार्दन! तू यह मत समझ कि यह राजा लोगों का अपमान कियागया है किंतु सब कुरुवंशी भी खुल्लमखुला तुझे ही दोषी टहराते हैं॥

क्वीं व दारिकया याहरान्धे वा रूपदर्शनम् । अराज्ञो राजवत्यजा तथा ते मधुसूदन ॥ ४२ ॥ दृष्टो युधिष्ठिरो राजा दृष्टो भीष्मश्च यादृशः । वासुदेवोऽप्ययं दृष्टः सर्वमेतद्यथातथम् ॥ ४३ ॥

अर्थ-हे कुष्ण ! जैसे नपुंसक के साथ विवाह करना और अन्धे को रूप का दर्शन कराना व्यर्थ है वैसे ही राजा न होते हुए तेरा राजा की भांति पूजन करना भी वृथा है, राजा युधिष्टिर, भीष्म तथा कृष्ण भी जैसे हैं देखे गये, यह सब जैसे सुने थे वैसे ही निकले ॥

इत्युकृत्वा शिशुपालस्तानुत्थाय परमासनात् । ।निर्ययौ सदसस्तरमात्सहितो राजभिस्तदा ॥४४॥

अर्थ-राजा शिशुपाल उन सब के प्रति इस प्रकार के बचन कहकर अपने साथी राजाओं समेत उत्तम आसन से उठकर सभाभवन से चलदिया॥

इति विंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकविंशोऽध्यायः प्रारभ्यते

वैद्यम्पायन उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा शिशुपालमुपादवत्। उवाच चैवं मधुरं सान्त्वपूर्वामदं वचः ॥१॥ नेदं युक्तं महीपाल यादृशं वै त्वमुक्तवान् । अधमश्च परो राजन् पारुष्यं च निरर्थकम् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! तत्पश्चात महाराज
युधिष्ठिर शीघ्र ही शिशुपाल के समीप पहुंचे और सान्त्वनापूर्वक
इसप्रकार मधुर वचन बोले कि हे राजन ! आपने जिस प्रकार
भाषण किया है सो ठीक नहीं, यह वड़े अधर्म की बात और वृथा
की कठोरता है ॥

न हि धर्म परं जातु नावबुध्येत पार्थिवः । भीष्मःशान्तनवस्त्वेनं मावमंस्थाः कदाचन ॥३॥ पश्य चैतान्महीपालान् त्वत्तो वृद्धतरान् बहुन् । मृष्यन्ते चार्हणां कृष्णे तद्धत् त्वं क्षन्तुमहीसि ॥४॥ वेद तत्त्वेन कृष्णं हि भीष्मश्चेदिपते भृशम् । न ह्येनं त्वं तथा वेत्थ यथैनं वेद कौरवः ॥५॥

अर्थ-हे राजन ! यह बात कभी नहीं होसकती कि शन्तन-

कदापि अपमान न करें, हैं पार्थ ! देखो आपसे बहुत बड़े २ राजा छोगों को छुण्ण का पूजन स्वीकृत है सो तुम्हें भी क्षमा करना योग्य है, हे चन्देरीनरेश ! छुण्ण के विषय में कुरुवंशी भीष्मिपतामह जितना कुछ यथार्थ ज्ञान रखते हैं उतना आप नहीं जानते ॥

भीष्म उवाच

नास्मै देयो ह्यन्तयो नायमईति सान्त्वनम् । लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽईणां नाभिमन्यते ॥६॥

अर्थ-भीष्मिपितामह वोले कि हे युधिष्ठिर ! इस शिशुपाल की अनुनय=विनित मत करो यह अनुनय के योग्य नहीं जो भूमण्डल में ज्ञानवृद्ध श्रीकृष्णजी जैसे पुरुषको सहन नहीं करसकता, और:-

क्षत्रियः क्षत्रियं जित्वा रणकृतां वरः । यो मुत्रित वशे कृत्वा ग्रह्भवति तस्य सः ॥७॥ अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं ग्रिथ । न पश्यामि महीपाळं सात्त्वतीपुत्र तेजसा ॥८॥

अर्थ-यह सिद्धान्त है कि जो श्रेष्ठ युद्धवीर क्षत्रिय किसी क्षित्रिय को युद्ध में जीत अपने अधीन करके छोड़देता है वह उससे वड़ा होता है, मैं इस राजसभा में किसी भी राजा को ऐसा नहीं देखता जिसको सात्वती पुत्र युधिष्ठिर ने युद्ध में न जीता हो, इसलिये युधिष्ठिर ही इन सब का विजयी और बड़ा है॥

न हि केवलमस्माकमयमर्च्यतमोऽच्युतः। त्रयाणामपि लोकानामर्चनीयो महासुजः॥९॥ कृष्णेन हि जिता युद्धे बहवः क्षत्रियर्षभाः । जगत्सर्वे च वाष्णेये निष्ठिन प्रतिष्ठितम् ॥१०॥ तस्मात् सत्स्विप वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान् । एवं वक्तुं न चाईस्त्वं माभूते बुद्धिरीदृशी ॥११॥

अर्थ-यह महावाहु अच्युत कृष्ण केवल हम लोगों के ही परम पूजनीय नहीं किन्तु यह तीनों लोकों के पूज्य हैं, देखों फुष्णजी ने बहुत से क्षत्रिय वीरों को युद्ध में विजय करने के कारण सारा संसार वृष्णिवंशी कृष्ण की पूर्णतया प्रतिष्ठा करता है इस कारण अन्य बृद्ध पुरुषों के होते हुए भी भें कृष्णजी का पूजन करता हूं ओरों का नहीं, सो तुम्हें इस प्रकार के वचन कहने योग्य नहीं और न तुम्हें ऐसा विचार ही उत्पन्न होना चाहिये था।

ज्ञानवृद्धा मया राजन् बहवः पर्श्वपासिताः ।
तेषां कथयतां शौरेरहं ग्रणवतो ग्रणान् ॥१२॥
समागतां नामश्रोषं बहून् बहुमतान् सताम् ।
कर्माण्यपि हि यान्यस्य जन्मप्रशृति धीमतः ।
बहुशः कथ्यमानानि नरैभूय श्रुतानि मे ॥१३॥

अर्थ-हे राजा शिश्यपाल ! मैंने बहुत से ज्ञानवृद्ध महात्माओं की सक्रित की है जो महात्मा मुझे मिले उन सब के मुख से मैंने इस गुणसम्पन्न महाबुद्धिमान श्रूरसन्तान कृष्ण के जन्म से लगा-कर अब तक के बड़े २ उत्कृष्ट गुण और कर्म जो सज्जनसमाज में परम आदरणीय हैं अनेक बार श्रवण किये हैं। न केवलं वयं कामाचेदिराज जनार्दनम् । न सम्बन्धं पुरस्कृत्य कृतार्थं वा कथंवन ॥१४॥ अर्चामहेऽर्चितं सद्धिर्भुविभृतसुलावहम् । यशः शौर्यं जयं चास्य विज्ञायार्ची प्रयुंजमहे ॥१५॥

अर्थ—हे चन्देरीनरेश! हम लोग किसी स्वार्थ से वा सम्बन्ध को सामने रखकर अथवा किसी पहले किये हुए उपकार के बदले कुष्ण का सन्मान नहीं करते प्रत्युत हम इनको भूमण्डल भर के विद्वानों से सन्मानित तथा सब प्राणियों के सुखदाई मानकर इनके यश, श्रुरता और विजय आदि गुणों का विचार करके पूजन करते हैं॥

न च कश्चिदिहासमाभिः सुबालोऽप्यपरीक्षितः । गुणैर्गृद्धानितिकम्य हिर्रर्च्यतमो मतः ॥१६॥ ज्ञानगृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिकः । वैश्यानां धान्यधनवान् श्रद्धाणामेव जन्मतः ॥१७॥ प्रज्यतायां च गोविन्दे हेत् द्वाविष संस्थितौ । वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा । नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टःकेशवाहते॥१८॥

अर्थ - हे शिद्धपाल ! तुन यह मत समझो कि हम लोगों ने विना ही परीक्षा किये अन्य गुणबृद्ध पुरुषों को छोदकर अल्पायु छुष्ण को सबसे अधिक पूजनीय माना है, देखो ब्राह्मणों में ज्ञान से, क्षत्रियों में बल से. वैश्यों में धनवान्य से तथा श्ट्रों में जन्न से वड़प्पन माना जाता है किन्तु गोरक्षक कृष्णजी के पृज्य होने में दोनों हेतु विद्यमान हैं प्रथम वेदवेदाङ्गों का विशेष ज्ञान और दूसरे सब से अधिक वल, इसिलिये केशव=कृष्ण से अतिरिक्त संसार में कौन पुरुष सर्वोत्तम है ॥

दानं दाक्ष्यं श्रुतं वीर्य हीः कीर्त्तिवृद्धिरुत्तमा ।
सन्तितः श्रीर्धितस्तुष्टिः पृष्टिश्च नियताऽच्युते॥१९॥
तिममं लोकसम्पन्नमाचार्य पितरं ग्रुरुम् ।
अर्घ्यमर्चितमर्चाहं सर्वे संमन्तुमर्हथ ॥२०॥
ऋत्विग्यरुविवाह्यश्च स्नातको नृपितः प्रियः ।
सर्वमेतद् हृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः ॥२१॥

अर्थ-दान, सरलता, विज्ञान, पराक्रम, लज्जा, कीर्त्ति, उत्कृष्टबुद्धि, नम्रता, लक्ष्मी वा शोभा, धर्य, संतोष, पुष्टि यह सब गुण
कृष्ण में स्वाभाविक हैं, हे राजालोगो ! यह कृष्ण ही संसार
का भूषण, आचार्य, पिता, गुरु, माननीय, ऋत्विज्ञ, गुरु द्वारा
विवाह किये जाने योग्य स्नातक, राजा वा लोकिश्य आदि सब
कुछ यही है और इसीलिये इस हृषीकेश=जितेन्द्रिय तथा अच्युत=
कर्तव्य से भ्रष्ट न होने वाले श्रीकृष्ण का यहां पूजन किया
गया है सो आप लोगों को यह कार्य स्वीकार करना योग्य है।

यो हि धर्म विचित्रयादुत्कृष्टं मितमान्नरः ।
स वै पश्येद्यथा धर्म न तथा चेदिराहयम् ॥२२॥
स वृद्धवालेष्वथवा पार्थिवेषु महात्मसु ।
को नाई मन्यते कृष्णं को वाप्येनं पूजयेत॥२३॥

सभापर्व-द्वाविशाध्याय

इद्

अथनां दुष्कृतां पूजां शिशुपालो व्यवस्यति । दुष्कृतायां यथान्यायं तथायं कर्तुमईति ॥२४॥

अर्थ-जो बुद्धिमान मनुष्य धर्मसंचय वा अन्वेषण करता रहे वही धर्म के तत्त्व को समझकर उत्कृष्ट होसकता है न कि यह चन्देरीनरेश शिश्चपाल, इस सभा में वृद्ध पुरुषों से लगाकर बचों तक में कौन ऐसा पुरुष है जो कृष्ण को अयोग्य समझे वा उस का पूजन न करे, अस्तु, यह पूजा तो बुरी वा भली जैसी कुछ हुई सो होचुकी अर्थात अब यह हट नहीं सकती, यदि शिश्चपाल इसको अनुचित समझता है तो न्याय के अनुसार इसको यथेष्ट कार्य करना योग्य है।

इति एकविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ द्वाविंशोऽध्यायः प्रारम्यते

नैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा ततो भीष्मो विरराम महाबलः । व्याजहारोत्तरं तत्र सहदेवोऽर्थवद्भवः ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजा जनमेजय ! महावली भीष्मिपतामह इतना कहकर चुप होगये, इसके अनन्तर सहदेव इस प्रकार युक्तियुक्त वचन बोला कि :—

केशवं केशिहन्तारमप्रमयपराक्रमम् । पूज्यमानं मया यो वः कृष्णं न सहते नृपाः ॥ २॥ ६६२

महाभारत

सर्वेषां बिलनां मुर्धिन मयेदं निहितं पदम्। एवमुक्ते मया सम्ययत्तरं प्रब्रवीतु सः ॥ ३॥ मतिमन्तश्च ये केचिदाचार्य पितरं युरुम् । अर्च्यमर्चितमर्घाहमनुजानन्तु ते नृपाः ॥ ४॥

अर्थ-"केशी" नामक दस्यु के मारने वाले महान पराक्रमी कृष्णजी के मुझेस किये हुए पूजन को यदि तुम लोगों में से कोई राजा सहन नहीं करसकता तें मैं सब बलवानों के सिर पर यह अपनी लात रखता हूं और वह पुरुष मेरी बात का उत्तर दे, किंतु जो राजा लोग आप लोगों में बुद्धिमान हैं वह पूजनीय कृष्णजी को ही आचार्य, पिता और गुरु के समान मानकर उनके पूजन को स्वीकार करें।

ततो न व्याजहारैषां कश्चिद्बुद्धिमतां सताम्। मानिनां बलिट राज्ञां मध्ये वै दर्शिते पदे। ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिः सहदेवस्य मूर्धिन।। ५॥

अर्थ-सहदेव ने पूर्वोक्त वचन कहकर अपना पांव अभिमानी वलवान राजाओं के मध्य में स्थापित कर दिखाया, परंतु बुद्धिमान सज्जन राजाओं के मध्य में से किसी राजा ने खड़े होकर उत्तर न दिया तब सहदेव के मस्तक पर पुष्पों की वर्षा होने लगी ॥

सर्वसंशयनिमोंका नारदः सर्वलोकवित् । उत्राचा विलभूतानां मध्ये स्पष्टतरं वचः ॥ ६॥ कृष्णं कमलपत्राक्षं नार्चियष्यन्ति ये नराः । जीवन्मृतास्तु ते ज्ञेया न सम्भाष्याः कदाचन ॥७॥

अर्थ-तत्पश्चात् सम्पूर्ण होकों का वृत्तान्त जानने वाहे तथा
सव संशयों को दूर करने वाहे नारदमुनि सव मनुष्यों के बीच में
खड़े होकर सहदेव के वचनों की पुष्टि में बोहे कि कमल केसमान
सुन्दर नेत्रों वाहे कृष्ण भगवान का पूजन जो मनुष्य न करेंगे
वह जीते ही मृतक के समान हैं और उनसे सम्भाषण करना भी
योग्य नहीं।

वैशस्पायन उवाच

पूजियत्वा च पूजाहीन् ब्रह्मक्षत्रविशेषवित् । सहदेवो नृणां देवः समापयत कर्म तत् ॥ ८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमंजय ! तदनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि की विशेषता समझने वाले मनुष्यों में देवसमान सहदेव ने सवका यथायोग्य सन्मान करके राजम्ययह के कार्य को समाप्त किया ॥

तिसमन्नभ्यित कृष्णे सुनीयः शत्रुक्षणः । अतिताम्रेक्षणः कोपादुवाच मनुजाधिपान् ॥ ९ ॥ स्थितः सेनापितयीं हं मन्यध्वं किन्तु सांप्रतम् । युधि तिष्ठाम सन्नद्य समेतान् वृष्णिपाण्डवान् ॥१०॥

अर्थ-तत्पश्चात उस यज्ञ में कृष्ण के पूजन को देखकर अत्यन्त लाल २ आखें किये हुए शत्रुघातक "सुनीय" ने कोधित होकर राजाओं से कहा कि हे राजाओ ! मैं सेनापित युद्ध के लिये खड़ा हूं आप लोग वया देख रहे हैं ? अब हमें आवक्यक है कि वृष्णिवंशियों तथा पाण्डवों को आह्वान करके उन सबके साथ युद्ध के लिये तैयार होजावें॥

इति सर्वान् समुत्माह्य राज्ञस्तान् चेदिपुङ्गवः । यशोऽपघाताय ततः सोऽमन्त्रयत राजभिः ॥ ११ ॥ तत्राहृता गताः सर्वे सुनीथप्रमुखा गणाः । सम दृश्यन्त संकुद्धा विवर्णवदनास्तथा ॥ १२ ॥

अर्थ-चन्देरीनरेश राजा शिशुपाल ने इस प्रकार सब राजाओं को उत्तेजित करके कृष्ण और पाण्डवों का यश दूर करने के लिये सबरा जाओं को बुलवाकर मन्त्रणा=सलाह की,राजा शिशुपाल के बुलाने पर सुनीय आदि सब सभा में जा बिराजे, उस समय कोध के मारे उन सब राजाओं के मुखों का रंगविगड़ गया था॥

युधिष्ठिराभिषेकं च वासुदेवस्य चाईणम् । न स्याद्यथा तथा कार्यमेवं सर्वे तदाब्रुवन् ॥ १३ ॥ निष्कर्षात्रिश्चयात्सर्वे राजानः कोधमूर्छिताः । अब्रुवंस्तत्र राजानो निर्वेदादात्मनिश्चयात् ॥१४॥

अर्थ-तव राजसभा में सब राजाओं ने खड़े होकर एक स्वर से कहा कि जिस उपाय से युधिष्ठिर का राज्याभिषेक तथा कृष्ण का पूजन न हो वही उपाय करना आवश्यक है, कोध के मारे बेसुध से हुए २ राजा छोगों ने विश्वास और निश्चय के साथ तथा स्वाव छम्बन को ग्रहण करके खेद युक्त उपरोक्त वचन कहे॥

सभापर्व-त्रितिशाध्याय

६६५

सुहद्भिर्वार्यमाणानां तेषां हि वपुरावमी । आमिषादपकृष्टानां सिंहानामिव गर्जताम् ॥१५॥ तं बलौघमपर्यन्तं राजसागरमक्षयम् । कुर्वाणं समयं कृष्णो युद्धाय बुबुधे तदा ॥१६॥

अर्थ-उन राजा लोगों के बुद्धिमान मित्र उन्हें रोकते थे परन्तु उनका शरीर और भी अधिक क्रोधपूर्ण होताजाता था, जैसे मांस से हटाकर दूर किये गर्जते हुए सिंहों का क्रोध अधिक बढ़ता है, जब कुष्णजी ने देखा कि यह अंसच्य सेनाओं का समूह और महान राजसागर=राजाओं का समुदाय हमारे विरुद्ध उपस्थित है तब उनके नाश का समय समझकर युद्ध करना ही उचित समझा॥

इति द्राविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिविंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

वैशम्पायन उवाच

ततः सागरसङ्काशं दृष्वा नृपतिमण्डलम् । संवर्त्तवाताभिहतं भीमं धुन्धिमवाणवम् ॥१॥ रोषात्प्रचलितं सर्वमिदमाह युधिष्ठिरः । भीष्मं मतिमतां सुख्यं वृद्धं कुरुपितामहम् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! महाराज युधिष्टिर ने जब देखा कि वह राजमण्डल प्रलयकाल की तीव्रवायु से चलायमान भयानक

महाभारत

६६६

समुद्र के समान क्रोध के वेग से विचलित होचला तब वह कुरुओं के वृद्ध पितामह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भीष्मजी से बोले कि :—

असी रोषात् प्रचिलतो महान्नुपतिसागरः। अत्र यत्प्रतिपत्तव्यं तन्मे ब्रहि पितामह ॥३॥ यहास्य च न विधः स्यात्प्रजानां च हितं भवेत्। यथा सर्वत्र तत्सर्व ब्रहि मेऽद्य पितामह ॥४॥

अर्थ-हे पितामह! यह महान राजसमुदायक्ष्पी समुद्र कोध ते चलायमान होगया है सो इस निषय में हमें जो कुछ कर्तव्य हो वह आप बताइये, हे पितायह! ऐसा उपाय कीजिये जिससे यज्ञ में बिध्न न हो और न मजाओं की भी किश्चिन्मात्र हानि हो प्रत्युत हित हो ॥

इत्युक्तवित धर्मज्ञ धर्मराजे युधिष्ठिरे । उवाचेदं वाचो भीष्मस्ततः कुरुपितामहः॥५॥ याभस्तवं कुरुशार्दूलस्वा सिंहं हन्तुमहिति । शिवः पन्थाः सुनीतोऽत्र मया पूर्वतरंवृतः ॥६॥

अर्थ-धर्मराज युधिष्ठिर के उक्त मकार पूछने पर पितामह भीष्मजी ने कहा कि हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ राजन! तुम घवराओं मत क्या कुत्ता भी सिंह को मारसक्ता है, मैंने इसका उपाय पहले ही विचारकर स्थिर किया हुआ है ॥

प्रसित्ते हि यथा सिंहे खानस्तस्मिन् समागताः । भषेयुः सहिताः सर्वे तथेमे वसुधाधिपाः ॥७॥

सभापर्व-त्रिविशाध्याय

283

वृष्णिसिंहस्य सुप्तस्य तथामी प्रमुखे स्थिताः।
भवन्ते तात संकुद्धाः स्वानः सिंहस्य संनिधौ ॥८॥
अर्थ-हे राजन ! जैसे सोते हुए सिंह के समीप कुत्ते इक है
होकर भोंकने लगें,ठीक वैसे ही "इन राजाओं का हाल है"वृष्णिवंशी
सिंह कृष्णजी अभी तक क्रोध न आने से सोये हुए के
समान शान्त हैं उनके सन्मुख यह क्रोधित राजा लोग कुत्तों के
समान भोंक रहे हैं॥

न हि सम्बुध्यते यावत् सुप्तः सिंह इवाच्युतः । तेन सिंहिकरोत्येतान् नृसिंहश्चेदिपुङ्गवः ॥ ९ ॥ पार्थिवान् पार्थिवश्रेष्ठः शिश्यपालोऽप्यचेतनः । सर्वान् सर्वात्मना तात नेतुकामो यमक्षयम् ॥१०॥

अर्थ-हे वत्त युधिष्ठिर ! जब तक सोये हुए सिंह के समान कृष्णजी नहीं चेतते तब तक ही यह सिंहपुरुष चंदेरीनरेश राजा शिशुपाल अन्यान्य राजाओं को भड़काकर सिंह बना रहा है, परंतु उसे भी यह ज्ञान नहीं है कि वह सब राजाओं को मौत के घर लेजाने का यत्न कर रहा है ॥

नूनमेतत्समादातुं पुनिरच्छत्यधोक्षजः। यदस्य शिशुपालस्य तेजस्तिष्ठति भारत ॥ ११ ॥ विष्टुता चास्य भदं ते बुद्धिर्बुद्धिमतांवर। चेदिराजस्य कौन्तेय सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥ १२ ॥

अर्थ-हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भारतीय राजन युधिष्ठिर! दुम निश्चय जानो कि शिथुपाल जो अभी तक अपना मताप दिखा रहा है इससे अनुमान होता है कि कृष्णजी अवेष्य ही इसका संहार करेगें, हे कुन्तीपुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो, देखो इस चंदेरीनरेश शिशुपाल तथा इसके सब साथी राजाओं की बुद्धि श्रष्ट होरही है ॥

वैशम्पायन उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा ततश्चेदिपतिर्नुपः । भीष्मंरूक्षाक्षरावाचः श्रावयामास भारत ॥ १३॥

अर्थ-पैशम्पायन वोले कि हे भारतीय राजा जनमेजय!
तब चेदिराज शिश्रपाल भीष्मिपतामह के पूर्वोक्त बचन सुनकर
उनको इस प्रकार कटोर बचन सुनाने लगा॥

शिशुपाल उवाच

विभीषिकाभिर्वह्वीभिर्भीषयनसर्वपार्थिवान् । नव्यपत्रपसेकस्माद् वृद्धः सन् कुलपांसन ॥१४॥ युक्तमेतत् तृतीयायां प्रकृतौ वर्त्तता त्वया । वक्तुं धर्मादपेतार्थं त्वं हि सर्वकुरूत्तमः ॥१५॥

अर्थ-शिशुपाल बोला कि है कुल को कलंकित करने वाले भीष्म!त वृद्ध होकर सब राजाओं को अनेक प्रकार के वृथा डरावे दिखाकर भयभीत करना चाहता है क्या तुझे लज्जा नहीं आती, आयु के तीसरे भाग अर्थात बुढ़ापे में पहुंचकर तुझे ऐसा धर्मविरुद्ध भाषण करना उचित नहीं, क्योंकि तू ही सब कुरुओं में उत्तम है ॥

नावि नौरिव संबद्धा यथान्धोऽवान्धमन्वियात् । तथा भूता हि कौरव्या येषां भीष्म त्वमग्रणीः ॥१६॥ पूर्तनाद्यातपूर्वाणि व मीण्यस्य विशेषतः । ख्या कीर्त्तयतासमाकं भ्यः प्रव्यथितं मनः ॥१७॥

अर्थ-हे भीष्म ! जैसे नाव में वांधी हुई नाव वा अन्ध के पिछे चलने वाला अन्धा वच नहीं सकता, ऐसे ही यह कुरुवंशी लोग हैं, जिनका त मुालिया है, हे भीष्म ! तैने कृष्ण के "पृतना" नामक राहसी के मारने से आरम्भ करके सब कर्म बखानते हुए हंमोर मन को वड़ा दुःखित करदिया है ॥

अवित्रस्य मृर्वस्य केशवं रतोतुमिच्छतः । कथं भीष्म न ते ।जिद्वा शतधेयं विदीर्यते ॥१८॥ यत्र क्षरसा प्रयोक्तव्या भीष्म वालतरैर्नरैः । तभिमं ज्ञानवृद्धः सन् गोपं संस्तोतुमिच्छसि ॥१९॥

अर्थ-हे भीष्म! तु मृद्धता और घमण्ड के साथ जो कृष्ण की रतित करना चाहता है तो तेरी जिह्वा के सौ २ दुकड़े क्यों नहीं होजाते, हे भीष्म! जिस छुष्ण की निन्दा इसे २ कोकरनी उचित है तु झानबुद्ध होकर उस ग्वाले की स्तुतिकरना चाहता है॥

यद्यनेन हता बात्ये शक्तिश्चित्रमत्रिक्म ।
तो वाश्ववृष्भो भीष्म यो न उद्धविशारदो ॥२०॥
चेतना रहितं काष्ठं यद्यनेन निपातितम् ।
पादेन शक्टं भीष्म तत्र किं कृतमद्भुतम् ॥२१॥
वर्मीकमात्रः सप्ताहं यद्यनेन धृते उच्च ।
तदा गोवर्द्धनो भीष्म न तिचत्रं मतं मम ॥२२॥

अर्थ-हे भीष्म ! यदि इसने वालकपन में किसी पक्षी को मारडाला तो इसमें क्या आश्चर्य की बात थी अथवा यदि घोड़े और केल को मारडाला तो इसमें क्या वीरता हुई, क्योंकि वह पशु युद्ध करना क्या जानें, इसी प्रकार यदि अचेतन गाढ़ी को पांच की ठोकर से इसने गिराया था तो इसमें कौन आश्चर्य वा पराक्रम दिखाया और यदि गोवर्द्धन पर्वत का वांची के समान कोई पत्थर सात दिन तक उठाये रखा तो मैं इसको कोई आश्चर्य की वात नहीं मानता ॥

भुक्तमेतेन बहुन्नं कीडता नगसूर्द्धनि । इति ते भीष्म शृषानाः परं विस्मयमागताः ॥२३॥ यस्य चानेन धर्मज्ञ भुक्तमन्नं बळीयसः । स चानेन हतः कंस इत्येतन्न महाद्भुतम् ॥२४॥

अर्थ-हे शिष्प ! तैने जो यह कहा कि इसने पर्वत के उपर खेलते हुए बहुतमा अन खाडाला, इसे सुनकर तो हमें बड़ा ही आश्चर्य हुआ, और हे भीष्म ! जिस महावली कंस राजा का इसने अन खाया था उसे ही इसने मारडाला, यह भी क्या आश्चर्य की बात है ॥

न ते श्रुतिमिदं भीष्म नूनं कथयतां सताम् । यद्रक्ष्ये त्वामधर्मज्ञं वाक्यं कुरुकुलाधम ॥२५॥ स्त्रीषु गोषु न शस्त्राणि पातयेद्रबाह्मणेषु च । यस्य चान्नानि भुज्जीत यत्र च स्यात्प्रतिश्रयः॥२६॥ इति सन्तोऽ छशासन्ति सज्जनं धर्मिणः सदा ।
भीष्म लोके हि तत्सर्व वितथं विधि हस्यते ॥२०॥
अर्थ-हे कुरुवंश में नीच, धर्म से अज्ञात भीष्म ! तैने
जिन कथक डों की सङ्गति करके छण्ण की प्रशंसा सुनी है उन
से वह वातें नहीं सुनी हैं जो मैं तुझे बतलाता हूं, धर्मात्मा सत्पुरुष
लोग सदाचारी पुरुष के लिये सदा उपदेश करते हैं कि "िस्त्रयों,
गौओं, ब्राह्मणों तथा जिसका अन्न खाया हो उस पर शस्त्र
नहीं चलाना चाहिये "परन्तु हे भीष्म ! त् सव वातें इससे
विरुद्ध ही भकट कर रहा है॥

ज्ञानवृद्धं च वृद्धं च भूयांसं केशवं मम । अजानत इवाख्यासि संस्तुवन् कौरवाधम ॥२८॥ संभावयति चाप्येवं तद्धाक्याच जनार्दनः । एवमेतत्सर्वामिति तत्सर्वे वितथं ध्रुवम् ॥२९॥

अर्थ-हे कुरुवंशियों में अधम भीष्म ! तू मेरे प्रति कृष्ण की प्रशंसा करके उसे वड़ा ज्ञानवृद्ध और वलवृद्ध वतारहा है कि मानो मैं उसके विषय में कुछ जानता ही नहीं, और तेरे वचनों को कृष्ण भी " यह सब ठीक है " ऐसा कहकर अनुमोदन करता जाता है निःसन्देह यह सब झूठ है।

को हि धर्मिणमात्मानं जानन् ज्ञानविदांवरः । कुर्याद्यथा त्वया भीष्म कृतं धर्ममवेक्षता ॥३०॥ अन्यकामा हि धर्मज्ञा कन्यका प्राज्ञमानिना । अम्बा नामिति भदं ते कथं सापहृता त्वया ॥३१॥

महाभारत

तां त्वयापिहतां भीष्म कन्यां नौषतवान्यतः। भाता विचित्रवीर्यस्ते सतां मार्गमन्तिः।।३२॥

अर्थ-हे ज्ञानियों में श्रेष्ट भीष्म ! कीन ऐसा पुरुष है जो अपने आपको ज्ञानी मानता हुआ ऐसा कार्य करेगा जैसा तैने धर्म का विचार करते हुए किया था "अम्बा" नामक धर्मज्ञ कन्या जो अन्य पुरुष से विवाह करना चाहती थी तैने अपने को पिष्टत मानते हुए भी उसे क्यों हरण किया ? तेरा भला हो परन्तु हे भीष्म ! तेरा भाई विचित्रवीर्य जो सत्पुरुषों के मार्ग पर चलने वाला था उसने तुझसे हरण कि हुई कन्या को ग्रहण नहीं किया और उसको उसके अभीष्ट पति के पास भेजदिया अर्थात तुझ से किये अधर्म को उसने भी स्वीकार नहीं किया था।

दारयोर्यस्य चान्येनिमषतः प्राज्ञमानिनः । तवजातान्यपत्यानि सज्जनाचरिते पथि ॥३३॥ को हि धर्मोस्ति ते भीष्म ब्रह्मणचर्यमिदं वृथा । यदधारयसि मोहाद्राटकीवत्वाद्वा न संशयः॥३४॥

अर्थ-हे भीष्म ! तेरा कौनसा धर्म है, तेरा यह ब्रह्मचर्य वृथा है जिसे तैने अज्ञान से वा नपुंसक होने के कारण धारण किया हुआ है, इसमें सन्देह नहीं कि द अपने को बड़ा पराक्रमी, पण्डित और सत्पुरुषों के आचार पर चलने वाला समझता है परन्तु शोक है कि तैने मृत विचित्रवीर्य की दोनों स्त्रियों में अन्य पुरुष से ही आपद्धर्म नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न कराये तुझमें स्वयं सन्तानोत्पत्ति की सामर्थ्य न थी॥ नत्वहं तब धर्मज्ञ पश्याम्युपचयं कचित्। न हिते सेविता खद्धा य एवं धर्ममत्रवीः ॥३५॥ इष्टं दत्तमधीतं च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः। सर्वमेतदपत्यस्य कलां नार्हित षोडशीम् ॥३६॥ सोऽनपत्यश्चबद्धश्च मिथ्याधर्मानुसारकः। इंसवत्त्वमपीदानीं ज्ञातिभ्यः प्राप्नुयावधम् ॥३७॥

अर्थ-हे धर्मक्ष भीष्म ! मैं तेरी किसी वात में भी उन्नित हुई नहीं देखता और नाही तैने महात्माओं की संगति की है जैसाकि तैने धर्म का उपदेश किया है,हवन, दान,अध्ययन और वड़ी २ दक्षिणाओं बाले यक्ष, यह सब धर्म सन्तानोत्पत्ति की अपेक्षा सोलहवां अंश भी नहीं, परन्तु हे भीष्म ! तू सन्तानरहित बृदा और मिथ्या धर्म पर चलने वाला है सो तेरी अपने भाइयों के हाथ से ही मौत होगी, जैसाकि एक कहानी में हंस की मौत हुई थी।

वृद्धः किल समुद्रान्ते कश्चिद्धंसोऽभवत्पुरा । धर्मवागन्यथा वृत्तः पक्षिणः सोऽनुशास्ति च ॥३८॥ धर्म चरत माधर्ममिति तस्य वचः किल । पक्षिणः शुश्चनुर्भीष्म सततं सत्यवादिनः ॥३९॥

अर्थ—हे भीष्म ! वह हंस की कहानी इस प्रकार है कि समुद्र के किनारे एक बृद्धा हंस धर्म का उपदेशक किन्तु स्वयं अधर्माचारी बना हुआ वहां रहता था, वह पिश्तयों को उपदेश किया करता था कि हे पिश्तयों ! तुम धर्म का आचरण करो अधर्म का नहीं और सब पक्षी उसको सत्यवादी मानकर सदा उसका उपदेश सुना करते थे॥

अथास्य भक्ष्यमाजहुः समुद्रजलचारिणः । अण्डजा भीष्म तस्यान्ये धर्मार्थमिति शुश्रुम॥४०॥ ते च तस्य समभ्याशे निक्षिप्याण्डानि सर्वशः । समुद्राम्भस्यमज्जन्त चरन्तो भीष्म पक्षिणः ॥४१॥

अर्थ-हे भीष्म ! कहानी में हमने यह भी सुना है कि
समुद्र के जलचर तथा अन्य पक्षी उसे धर्मात्मा समझकर उसके
लिये धर्मार्थ लाने की वस्तुयें ला दिया करते थे और उन्हें उस
पर इतना विश्वास होगया था कि अपने अण्डे उसके पास रख
अर्थाद उसकी रक्षा में छोड़कर समुद्र के जल तथा अन्यान्य स्थानों
में निश्चिन्त हो घुमा करते थे॥

तेषामण्डानि सर्वेषां भक्षयामास पापकृत्। स हंसः सम्प्रमत्तानाम प्रमत्तः स्वकर्मणि ॥४२॥ ततः प्रक्षीयमाणेषु तेषुतेष्वण्डजो परः । अशङ्कत महाप्राज्ञः स कदाचिद्दर्श ह ॥४३॥

अर्थ-परन्तु वह पापी हंस जो अपने स्वार्थ में सावधान था उन सब प्रमादी पक्षियों के अण्डे खाने लगा, जब वह अण्डे प्रति-दिन घटने लगे तो एक बुद्धिमान पक्षी को शंका उत्पन्न होगई और उसने हंस को अण्डे खाते देख भी लिया ॥

ततः स कथयायास दृष्ट्वा हंसस्य किल्विषम् । तेषां परमदुः लार्तः सपक्षी सर्वपक्षिणाम् ॥४४॥

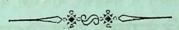
ततः प्रत्यक्षतो दृष्वा पक्षिणस्ते समीपगा । निजच्छस्तं तदाहंसं मिथ्यावृत्तं क्रुहत्तम ॥४५॥

अर्थ-हे कुरुओं में श्रेष्ठ भीष्म ! तब उस पक्षी ने दुःखी होकर मब पिक्षयों को उस इंस का दुराचार कह सुनाया और जब उन पिक्षयों ने स्वयं भी उसे वैसा करते पत्यक्ष देख लिया तब उसके समीप पहुंचकर उस पाखण्डी इंस को मारडाला॥

ते त्वां हंस स धर्माणमपीमे वसुधाधिपाः । निहन्युर्भीष्म संकुद्धाः पाक्षणस्तामवाण्डजम्॥४६॥

अर्थ-हें भीष्म ! तू भी उस इंस के समान पाखण्डी है, इस लिये यह सब राजा लोग कुद्ध हुए तुझे मारडालेंगे, जैसे पिक्षयों ने इंस को मारा था॥

इति चतुर्विदाां अध्यायः समाप्तः



अथ पंचविंशोऽध्यायः प्रारम्यते

शिशुपाल उवाच

स मे बहुमतो राजा जरासन्धो महाबलः । योऽनेन युद्धं नेयेषदासोऽयमिति संयुगे ॥१॥ केशवेन कृतं कर्म जरासन्ध वधे तदा । भीमसेनार्जुनाभ्यां च कस्तत्साध्विति मन्यते॥२॥

महाभारत

अर्थ-शिश्रपाल फिर बोला कि महाबली राजा जरासन्धका
मैं बढ़ा मान करता था, उसने कृष्ण को दास=गवाला समझकर
इसके साथ युद्ध करने की इच्छा नहीं की थी, इसके पश्चाद कृष्ण,
इसके साथी भीमसेन और अर्जुन ने जरासन्ध को मारने के लिये
जो कार्य्यवाही की थी उसे कौन बुद्धिमान अच्छा कहेगा ॥

अद्योरण प्रविष्टेन च्छद्मना ब्रह्मवादिनाः । हष्टः प्रभावः कृष्णेन जरासन्धस्य भूपतेः ॥३॥ येन धर्मात्मनात्मानं ब्रह्मण्यमविजानता । नेषितं पाद्ममस्मै तद्वातुमग्रे दुरात्मने ॥४॥

अर्थ-छल के साथ द्वार से भिन्न मार्ग द्वारा नगर में घुस और ब्राह्मण का वेश बनाकर कृष्ण ने जरासन्ध को अच्छी बहादुरी दिखलाई थी, परन्तु जब इस दुष्टात्मा को ब्राह्मण सम-झकर धर्मात्मा जरासन्ध ने इसके चरण धोने चाहे तो इसने मन में अपने आपको ब्राह्मण न समझकर अनिच्छा प्रकट की ॥

भुज्यतामिति तेनोक्ताः कृष्णभीमधनञ्जयाः। जरासन्धेन कौरव्य कृष्णेन विकृतंकृतम् ॥ ५ ॥ इदं त्वाश्चर्यभूतं मे यदीमे पाण्डवास्त्वया । अपकृष्टाः सतां मार्गान् मन्यन्ते तच्च साध्विति॥६॥ अथवा नैतदाश्चर्यं येषां त्वमिस भारत । स्त्रीसधर्मा च बृद्धश्च सर्वार्थानां प्रदर्शकः ॥७॥

अर्थ-रे कुरुवंशी भीष्म ! जब जरासन्ध ने कृष्ण, भीमसेन और अर्जुन को ब्राह्मण मानकर कहा कि आप होग भोजन करें

सभापर्व-पंचविशाध्याय

ees

तो कृष्ण ने झूटा वहाना बना दिया, मुझे सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि इन पाण्डवों को भी तैने धर्ममार्ग से गिरा दिया, क्योंकि यह लोग तेरे कहने को अच्छा मानते हैं,हे भरत-वंशी भीष्म! यह भी कैसा आश्चर्य है कि जिन पाण्डवों का द स्त्रीसमान=नपुंसक बृढ़ा पाखण्डी सब धर्मों का पदर्शक बना हुआ है वह लोग तो ऐसा ही करेंगे॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्धचनं श्रुत्वा रूक्षं रूक्षाक्षरं बहु । चुकोप बिलनां श्रेष्ठो भीमसेनः प्रतापवान् ॥८॥ तथा पद्मप्रतीकाशे स्वभावायत विस्तृते । भूयः क्रोधाभिता प्राक्षेरक्तनेत्रे बभृवतुः ॥९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! शिश्रपाल के कुले तथा अत्यन्त कठोर बचन सुनकर महावली प्रतापी भीमसेन को क्रोध आगया और उसके कमल समान स्वभाव से विस्तृत दोनों नेत्र क्रोध के कारण अत्यन्त लाल होगये॥

त्रिशिखां अकुटीं चास्य दहशुः सर्वपार्थिवाः ।
ललाटस्थां त्रिकूटस्थां गङ्गां त्रिपथगामिव ॥ १०॥
दन्तान् सन्दशतस्तस्य कोपाइ दशुराननम् ।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव जिघत्सतः ॥ ११॥
अर्थ-सब राजाओं ने देखा कि भीमसेन की भौहें तीन
शिखा वाली होगई, जैसे त्रिकूट पर्वत पर गङ्गा की तीन धारायें
होजाती हैं, क्रोध के कारण दांत पीसता हुआ उसका मुख पैसा

दिखलाई देता था जैसे पलयकाल में सब प्राणियों को भक्षण करने के इच्छक मृत्यु का मुख होता है ॥

तस्य भीमस्य भीष्मेण वार्यमाणस्य भारत । ग्रुरुणा विविधेर्वाक्यैः कोधः प्रशममागतः ॥ १२॥ नाति चकाम भीष्मस्य स हिवाक्यमरिन्दमः । समुद्रुतो घनापाये वेलामिव महोद्धिः ॥ १३॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजन ! पूजनीय भीष्मिपतामह ने विविध वाक्यों द्वारा भीमसेन को समझाया तब उसका क्रोध शान्त होगया, वह शत्रुनाशक भीमसेन भीष्मिपतामह के वचन को छांघ न सका, जैसे वर्षा के अन्त में उमड़ा हुआ महासागर अपने किनारों से बाहर नहीं जाता ॥

शिशुपालस्तु संकुद्धे भीमसेने जनाधिप । नाकम्पत तदा वीर पौरुषेस्वेब्यवस्थितः ॥ १४ ॥ उत्पतन्तं तु वेगेना पुनः पुनरिन्दम । न सतं चिन्तयामास सिंहः कुद्धो मृगं यथा ॥१५॥

अर्थ-हे राजा जनमेजय ! भीमसेन के क्रोधातुर होने से वीर शिशुपाल जो अपने पुरुषार्थ का अवलम्बन किये हुए था घवराया नहीं, हे राजन ! वार २ क्रोध से उछलते कूदते हुए भीमसेन की उसने कुछ पर्वाह न की, जैसे क्रोध में आया हुआ सिंह मृग की पर्वाह नहीं करता ॥

प्रहसंश्वात्रवीद् वाक्यं चेदिराजः प्रतापवान् । भीमसेनमतिऋदं दृष्टवा भीमपराक्रमम् ॥ १६॥

सभापर्व-पंचिवंशाध्याय

500

मुश्चेनं भीष्म प्रयन्तु यावदेनं जनाधिपाः । मत्प्रभावाविनिर्दग्धं पतङ्गीमव विद्वना ॥ १७ ॥ तत्रश्चेदिपतेविक्यं श्रुत्वा तत्क्रुसत्तमः । भीमसेनमुवाचेदं भीष्मो मतिमतांवरः ॥ १८ ॥

अर्थ-प्रतापी चंदेंरीनरेश शिशुपाल भयानक पराक्रमी भीमसेन को अत्यन्त क्रोध में भरा हुआ देखकर हंसता हुआ वोला कि है भीष्म ! तुम भीमसेन को छोड़दो, सब राजाओं के देखते २ यह मेरे प्रताप से अभी भस्म हुआ जाता है, जैसे अग्नि से पतङ्ग जल जाते हैं, चेदिराज शिशुपाल का उक्त वचन सुनकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कुरुवंशभूषण भीष्मिपतामह भीमसेन को संबोधन करके बोले कि:-

नैषा चेदिपतेर्ज्जिस्पिया त्वाह्वयते उच्युतम् ।
नूनमेष जगद्रर्जुः कृष्णास्येव विनिश्चयः ॥ १९ ॥
कोहि मां भीमसेनाद्य क्षितावर्हति पार्थिवः ।
क्षेप्तं कालपरीतात्मा यथेष कुलपांसनः ॥ २० ॥
येनेष कुरुशार्दूल शार्दूल इव चेदिराट् ।
गर्जत्यतीव दुर्ज्जिस सर्वोनस्मानचिन्तयन् ॥ २१ ॥

अर्थ-हे भीमसेन ! राजा शिश्यपाल जो कृष्ण को आह्वान कर रहा है यह इसकी अपनी समझ नहीं है मत्युत यह महाराज कृष्णजी का ही निश्चय है कि इसकी मृत्यु होजाय, हे भीमसेन! कौन पृथ्वी पर ऐसा राजा है जो मुझपर आक्षेप करसके जैसे मौत से घिरा हुआ यह कुलकलंकी शिश्यपाल कर रहा है, हे कुरुओं में श्रेष्ठ भीमसेन ! यही कारण है कि यह दुर्जुद्धि चन्देरीनरेज्ञ इम सब लोगों की उपेक्षा करके सिंह समान गर्ज रहा है ॥

शिशुपाल ज्वाच

द्विषतां नोऽस्तु भीष्मेष प्रभावः केशवस्य यः । यस्य संस्तववक्ता त्वं वन्दिवत्सततोत्थितः ॥२२॥ संस्तवे च मनो भीष्म परेषां रमते यदि । तदा संस्तौषि राज्ञस्त्विभयं हित्वा जनार्दनम् ॥२३॥

अर्थ-शिश्यपाल बोला कि है भीष्म ! जिस कृष्ण के मभाव की स्तुति तुम बन्दीजनों की तरह करते हो वह कृष्ण का मभाव मुझ द्वेषी पर मकट होना चाहिये, हे भीष्म ! यदि तुम्हारा मन दूसरों की ही स्तुति में लगता है तो इस कृष्ण को छोड़कर अन्य राजाओं की स्तुति क्यों नहीं करते॥

दरदं स्तुहि बाह्लीकिममं पार्थिवसत्तमम् । जायमानेन येनेयमभवद्दारिता मही ॥ २४ ॥ स्तुहि कर्णिममं भीष्म महाचाप विकर्षणम् । द्रोणं द्रौणिं च साधु त्वं पितापुत्रो महारथौ ॥२५॥ द्रोणस्य हि समं युद्धे न पश्यामि नराधिपम् । नाश्वत्थाम्नः समंभीष्म नच तौस्तोतुमिच्छिसि ॥२६॥

अर्थ-हे भीष्म ! तुम सर्वोत्तम राजा दरद बाह्मीक नरेश की स्तुति करो जिसके उत्पन्न होने पर भय से पृथ्वी विदीर्ण

होगई थी, हे भीष्म ! वहे भारी धनुप के चढ़ाने वाले इस वीर कर्ण की स्तुति करो अथवा द्रोणाचार्य वा उनके पुत्र अञ्चत्थामा इन दोनों महारथी पिता पुत्रों की भलीभांति स्तुति करो, हे भीष्म ! द्रोणाचार्य और अञ्चत्थामा के समान युद्ध में पराक्रमी मैं यहां किसी राजा को नहीं देखता परन्तु तुम उनकी स्तुति करना नहीं चाहते हो ॥

पृथिव्यां सागरान्तायां यो वै प्रतिसमो भवेत् । दुर्योधनं तं राजेन्द्रमतिक्रम्य महाभुजम् ॥२७॥ जयद्रथं च राजानं कृतास्त्रं दृदविक्रमम् । दुमं किम्पुरुपाचार्यं लोके प्रथित विक्रमम् ॥२८॥ वृद्धं च भारताचार्यं तथा शरद्धतं कृपम् । अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशंसिस केशवम् ॥२९॥

अर्थ-हे भीष्म ! तुम महावाहु राजेन्द्र "दुर्योधन" जो समुद्र पर्य्यन्त पृथ्वी पर राज्य करता है, शस्त्रविद्या में निपुण दृढ़ पराक्रमी राजा " जयद्रथ " संसार में विख्यात किन्नर छोगों का आचार्य "दुम"और भारतीय राजाओं के दृद्ध गुरु शरद्भत्र के पुत्र महापराक्रमी कृपाचार्य,इन सब योग्य पुरुषों का उद्धङ्घन करके कृष्ण की क्यों प्रशंसा करते हो ॥

भीष्मकं च महावीर्य दन्तवकं च मृमिपम् । भगदत्तं यूपकेतुं जयत्सेनं च मागधम् ॥३०॥ विराटदुपदौ चोभौ शकुनिं च वृहद्बलम् । विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पांण्डं स्वेतमथोत्तमम् । शङ्कं च सुमहावीर्य वृषसेनं च मानिनम् ॥३१॥ एकल्वं च विकान्तं कालिङ्गं च महारथम् । अतिकम्य महावीर्य किं प्रशंसासे केवशम् ॥३२॥ शल्यादीनिप कस्मात्त्वं न स्तौषि वसुधाधिपान् । स्तवाय यदि ते बुद्धिर्वत्तेते भीष्म सर्वदा ॥३३॥

अर्थ-हे भीष्म ! महापराक्रमी भीष्मक, राजा दन्तवक्र,भग-दत्त, यूपकेतु, जयत्सेन, मगधनरेश, विराट, द्रुपद, शकुनि, बृहद्धल, उज्जैन का राजा विन्द और अनुविन्द, पाण्डच, खेत, भाग्यशाली शक्क, मानसम्पन्न वृषसेन, महापराक्रमी एकलच्य, महारधी कलिङ्ग नरेश, इन सब योग्य राजाओं का उल्लङ्घन करके तुम कृष्ण की क्यों प्रशंसा कर रहे हो, हे भीष्म ! यदि स्तुति करना तुम्हारा स्वभाव ही है तो तुम पूर्वोक्त राजाओं या इनके आतिरिक्त शल्य आदि राजाओं की स्तुति क्यों नहीं करते॥

यदस्तव्याममं शक्वनमोशात्संस्तौषिभक्तितः। केशवं तच ते भीष्म न कश्चिदनुमन्यते ॥३४॥ इच्छतां भूमिपालानां भीष्मजीवस्य संशयम्। लोकविदिष्टकर्मा हि नान्योस्ति भवता समः॥३५॥

अर्थ-हे भीष्म ! त अज्ञान से वा भक्ति से जो स्तुति के अयोग्य इस कृष्ण की स्तुति कर रहा है इस बात को यहां कोई भी अनुमोदन नहीं करता, हे भीष्म ! संसार से विरुद्ध कर्म करने

सभापर्व-पंचविशाध्याय

663

वाला तुझसा अन्य कोई भी नहीं तो भी तू इन राजाओं के अनुष्रह से ही अभीतक जीता वचा हुआ है.इसमें संशय नहीं॥

वैशम्पायन उवाच

ततश्चेदिपतेः श्रुत्वा भीष्मः सकर्कं वचः । उवाचेदं वचो राजेश्चेदिराजस्य शृष्वतः ॥३६॥ इच्छतां किल नामाहं जीवाम्येषां महीक्षिताम् । सोहं न गणयाम्येतांस्तृणे नापि नराधिपान्॥३७॥

अर्थ-त्रैशम्पायन बोले कि हे जनमजय ! तत्र चन्देरीनेरश शिशुपाल के कटु वचन सुनकर उसके प्रति भीष्प्रजी ने कहा कि यदि तुम्हारी बुद्धि में थें इन सब राजाओं के अनुग्रह से अभीतक जीवित हूं तो लो मैं कहता हूं कि इन सब राजाओं को मैं तृण के समान भी नहीं समझता ॥

एवमुक्ते तु भीष्मेण ततः संचुकुशुर्नृपाः । केचिजहिपरेतत्र केचिद्धीष्मं जगिहिरे॥३८॥ केचिदूचुर्महेष्वासाः श्रुत्वा भीष्मस्य तद्धनः । पापो वृद्धोऽविष्ठप्तश्च नायंभीष्मोऽईति क्षमाम्॥३९॥ हन्यतां दुर्मितिभीष्मः पश्चवत्सादवयं नृपाः। सर्वेः समेत्य संरच्धे दह्यतां वा कटाग्निना ॥४०॥

अर्थ-भीष्म के ऐसा कहते ही राजसभा में कोलाहल होगया उनमें से कितने ही राजा प्रमन्न हुए किन्तु कितने ही भीष्म की निन्दा करने लगे, कितने ही बड़े २ वाण चलोन वाले बीर राजा लोग भीष्म के पूर्वोक्त बचनों को सुनकर कहने लगे किं यह भीष्प पापी वृद्ध बड़ा घमंडी है इसे क्षमा करना योग्य नहीं, प्रत्युत हे राजाओ ! इस दुर्बुद्धि को पशु के समान मारडालो अथवा इस अभिमानी को फूस की आग से जलादो ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा ततः क्रुरुपितामहः ।
उवाच मितमान् भीष्मस्तानेव वसुधाधिपान्।।४१॥
उक्तस्योक्तस्य नेहान्तमृहं समुपलक्षये ।
यतु वध्यामि तत्सर्व शृणुष्वं वसुधाधिपाः ॥४२॥
अथ-इस मकार उन राजाओं का कथन सनकर बुद्धिमान्
भीष्मिपितामह उनके मित कहने लगे कि मैं इस सभा में सब की
बातचीत का अन्त होता नहीं देखता, इसाल्ये हे राजाओ !
मैं जो कुछ निवेदन करता हूं उसे आप लोग पूर्णत्या सुनें ॥

पशुवद्घातनं वा मे दहनं वा कटामिना ।
कियतां मूर्धिनवोन्यस्तं मयेदं सकलं पदम् ॥४३॥
एष तिष्ठति गोविन्दः पूजितोऽस्माभिरच्युतः ।
यस्य वा त्वरते बुद्धिर्मरणाय स माधः म् ।
कृष्णमाह्वयतामद्य युद्धे चक्रगदाधरम् ॥४४॥

अर्थ-मेरा चाहे पशु के समान वध किया जाय, चाहे मुझे फूल की अपि द्वारा जला दिया जाय, मैं तुम्हारी सब मकार की ठोकर अपने मस्तक पर सहने के लिये उद्यत हूं परन्तु हम लोगों ने जिन गो भक्त, कर्तव्य से पतित न होने वाले भगवान कृष्ण का पूजन किया है वह यहां उपस्थित हैं सो जिस

सभापर्व-पंचविंशाध्याय

664

मनुष्य की मौत आपहुंची हो वह चक्र गदाधारी कृष्णजी को युद्ध के लिये आह्वान करे॥

वैशम्पायन उवाच

ततः श्रुत्वैव भीष्मस्य चेदिराइरुविक्रमः । युयत्सुर्वासुदेवेन वासुदेवसुवाच ह ॥४५॥ आह्वयेत्वां रणं गच्छ मया सार्छ जनार्दनः । यावदद्य निहन्मित्वां सहितं सर्व पाण्डवैः ॥४६॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! भीष्मजी का बचन सुनते ही महापराक्रमी चन्देरी-नरेश शिशुपालने युद्ध की इच्छा से कृष्णजी के मित कहा कि हे कृष्ण ! मैं तुझे युद्ध के लिये लल-कारता हूं तु मेरे साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो, और देख तुझे तेरे साथी पाण्डवों समेत अभी मारता हूं ॥

सह त्वया हि में बध्याः सर्वथां कृष्ण पाण्डवाः । नृपतीन् समितिकम्य यैरराजा त्वमर्चितः ॥ ४७ ॥ ये त्वां दासमराजानं वाल्यादर्चन्ति दुर्मतिम् । अन्हिमईवत् कृष्ण बध्यास्त इति मे मितिः । इत्युक्त्वा राजशार्दूल तस्थौ गर्जन्नमर्पणः ॥ ४८ ॥

अर्थ-हे कृष्ण ! मैं तुझे ही नहीं वरन इन पाण्डवों का भी बध करुंगा जिन्होंने सब राजाओं का निरादर करके राजा न होने पर भी तेरा पूजन किया है, हे कृष्ण ! मेरा यह निश्चय है कि जो छोग मूर्खता से तुझ शुद्र, राज्यहीन,निर्बुद्धि तथा अयोग्य को योग्य मानकर तेरा पूजन करते हैं उनको मार डालना आवश्यक है, हे महाराज जनमेजय! कोध में भरा हुआ शिशुपाल पूर्वोक्त वचन कहकर गर्जता हुआ युद्ध के लिये खड़ा होगया॥

एवमुक्तस्ततः कृष्णो मृदुपूर्विमिदं वचः । उवाच पार्थिवान् सर्वान् तत्समक्षं च पाण्डवान् ॥४९॥ एष नः शत्रुरत्यन्तं पार्थिवाः सात्वतीसृतः। सात्वतानां नृशंसात्मा न हितोऽनपकारिणाम् ॥५०॥

अर्थ-शिशुपाल के ऐसा कहने पर भगवान कृष्ण उसके सन्मुख सब राजाओं तथा पाण्डवों को संवोधन करके युसकराते हुए बोले कि हे राजाओं! यह सात्वती का पुत्र शिशुपाल हम यदुवंशियों का "जो किसी का अपकार नहीं करना चाहते"अत्यन्त शत्र तथा महाकूर हृदय और हानिकारक वना हुआ है।

प्राग्ज्योतिषपुरं यातानस्मान् ज्ञात्वा नृशंसकृत् । अदहद्धारकामेष स्वस्नीयः सन्नराधिपाः ॥५१॥ कीडतो भोजराजस्य एष रैवतके गिरौ । हत्वा बध्वा च तान्सर्वानुपायात्स्वपुरं पुरा ॥ ५२॥ अश्वमेधे हयं मेध्यमुत्सृष्टं रिक्षिभिवृतम् । पितुमें यज्ञविन्नार्थमहरूपापनिश्चयः ॥ ५३॥ सौवीरान् प्रतियातां च बभ्रोरेष तपस्विनः । भार्यामभ्यहरन् मोहादकामां तामितो गताम् ॥५४॥

एष मायाशतिच्छन्नः कारूपार्थे तपिस्वनीम् । जहार भद्रां वैशालीं मातुलस्य नृशंसकृत् ॥ ५५॥

अर्थ-हे राजाओ ! इस दुष्टात्मा शिशुपाल ने जो २ दुष्ट कर्म किये ह उनका नमृता छुनो-(१) हम लोग जब द्वारका नगरी से माग्ज्योतिष नगर की ओर गये हुए थे तो इसने वहिन का लड़का होते हुए भी अपनी रुष्टता का अवसर अच्छा समझकर पीछे द्वारका नगरी में आग लगाई थी (२) रैवतक पर्वत पर किंहा के लिये आये हुए भोजराज और उनके साथियों को यह दुष्ट मार पीट तथा वांधकर अपने नगर में लेगया था (३) इस दुष्टबुद्धि ने हमारे पिता के अक्वमेध यज्ञ में छोड़े हुए सिपाहियों से सुरक्षित पित्र वोहे को यज्ञ में विद्य डालने के लिये हरण किया था (४) यहां से सौवीर देश की ओर गई हुई तपस्वी बभ्रु की पित्रता भार्या को इसी दुष्ट ने हरण किया था (५) इसी दुष्टात्मा ने छल कपट से अपना रूप छिपाते हुए कारूप देश में अपने मामा की तपस्विनी धर्मात्मा वैशाली को भी हरण किया था, यह वही शिशुपाल है जो इस प्रकार के अनेक पाप और अपराध करचुका है।।

पितृष्वसुः कृते दुःखं सुमहन्मर्पयाम्यहम् । दिष्ट्या हीदं सर्वराज्ञां सिन्धावद्य वर्तते ॥ ५६ ॥ पश्यन्ति हि भवन्तोऽद्य मय्यतीव व्यतिक्रमम् । कृतानि तु परोक्षं मे यानि तानि निवोधत ॥५७॥ इमं त्वस्य न शक्ष्यामि क्षन्तुमद्य व्यतिक्रमम् ॥ अवलेपाद्वधाईस्य समग्रे राजमण्डले ॥ ५८॥

महाभारत

अर्थ-हे राजाओ ! मैं इसे अपनी यूआ का लड़का समझकर अपनी यूआ के लिये ही इसके यह वहें २ अपराध सहन करता रहा हूं, अहोभाग्य है कि आज आप सब राजाओं के समक्ष भी इसका अपराध विद्यमान है, आज इसने जो मुझपर अत्यन्त अपमानपूर्ण आक्षेप किये हैं वह सब आप लोग देख ही रहे हैं और आप लोगों के परोक्ष में इसने जो २ अपराध किये हैं उन का भी विचार कीजिये, पहले अपराध तो मैंने क्षमा करिये ये परंतु आज इसने सम्पूर्ण राजसभा में अभिमान के साथ मेरा अपमान किया है इससे अब यह वध किये जाने योग्य है.इसलिये मैं इसके इस अपराध को क्षमा नहीं करसकता, और :-

रुक्मिण्यामस्य मृदस्य प्रार्थनासीन्सुमूर्पतः । न च तां प्राप्तवान् मृदः श्र्द्रो वेदश्रुतीमिव ॥५९॥

अर्थ-हे राजाओ ! इस सूढ अनिधकारी की यह भी इच्छा थी कि मेरा रुक्मिणी के साथ विवाह हो,परंतु यह उसे नपासका. जैसे अनिधकारी शृद्ध वेद की श्रुति को नहीं पासकता, अभिनाय यह है कि रुक्मिणी इसे प्राप्त न होकर मुझे प्राप्त हुई, इसिटिये भी यह मुझसे जला रहता है और अब प्रतीत होता है कि इसकी मृत्यु आपहुंची है ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमादि ततः सर्वे सहितास्ते नराधियाः । वासुदेव वचः श्रुत्वा चेदिराजं व्यगर्हयन् ॥६०॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिशुपालः प्रतापवान् । जहासस्वनवद्धासं वाक्यं चेदमुवाच ह ॥६१॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! कृष्ण के पूर्वोक्त बचन सुनकर सब राजा लोग एक स्वर से शिशुपाल की निन्दा करने लगे, इधर प्रतापी शिशुपाल भी कृष्ण का कथन सुनते ही खिलखिलाकर हंसते हुए बोला कि :—

मत्पूर्वो रुक्मिणीं कृष्ण संसत्स परिकित्तियन् । विदेशपतः पार्थिवेषु बीड्रां न कुरुषे कथम् ॥६२॥ मन्यमानो हि कः सत्सपुरुषः परिकीर्त्तयेत् । अन्यपूर्वो स्त्रियं जातु त्वदन्यो मधुसूदन ॥६३॥

अर्थ-हे कृष्ण ! जिस रुक्मिणी का विवाह पहले मेरे लिये निश्चित होचुका था उसे द चुराकर ले भगा, इस बात को द सभा में विशेषकर राजसभा में स्वयं कहता हुआ लजाता नहीं, हे कृष्ण ! तेरे सिवाय और कौन पुरुष होगा जो अपने को सत्पुरुषों में गिनता हुआ भी इसप्रकार दूसरे के साथ विवाही जाती हुई स्त्री को चुराकर लेजाय और फिर अपने ही मुख से इस बात का कथन करे॥

क्षम वा यदि ते श्रद्धा मावा कृष्णममक्षम । कुद्धाद्वापि प्रसन्नाद्धा किं मे त्वत्तो भविष्यति॥६४॥

अर्थ-हे कृष्ण! तू क्षमाकर चाहे न कर तेरे क्रोध और प्रस-श्रता से मुझे क्या हानि वा लाभ होसकता है ॥

एतास्मिन्नेव काले तु चके हस्तगते सित । व्यापहरत् शिरः कुद्धश्चकेणामित्रकर्षणः । स पपात महाबाहुर्वज्राहत इवाचलः ॥६५॥ ततः केचिन्महीपाला नाब्रुवंस्तत्र किंचन । अतीतवाक्पथे काले प्रेक्षमाणा जनार्दनम् ॥६६॥

अर्थ-शिशुपाल यह कह ही रहा था कि उसी समय शञ्च-घाती कृष्ण ने कुद्ध होकर अपना " चक्र " नामक शस्त्र हाथ में ले उस शिशुपाल का सिर काट डाला और महावाहु शिशुपाल बज्ज से आघात हुए पर्वत के समान सभा में ही गिरपड़ा, इस घटना के पश्चाद कृष्णजी के बचनातीत पराक्रम को देखते हुए कितने ही राजा उस समय कुछ न बोल सके, और :—

हस्तैर्हस्ताग्रमपरे प्रत्यपिषन्नमिताः । अपरे दशनैरोष्ठानदशन् कोधमूर्छिताः ॥६७॥ रहश्च केचिद्राष्णियं प्रशश्चांस्र्नराधिपाः । केचिदेव ससंरव्धा मध्यस्थस्त्वपरेऽभवन् ॥६८॥ ब्राह्मणाश्च महात्मानः पार्थिवाश्च महाबलः । शश्चांस्रिनिर्वृता सर्वे दृष्ट्वा कृष्णस्य विक्रमम् ॥६९॥

अर्थ-कितने ही कोध के मारे हाथ मलने लगे, कितने ही दांतों से होट काटने लगे, वहुत से राजा एकान्त में कृष्णजी की मशंसा करने लगे, वहुत से कुद्ध हुए और वहुत से उदासीन रहे, वहां पर जो महात्मा=सज्जन ब्राह्मण तथा महावली सज्जन राजा थे वह कृष्णजी के पराक्रम को देखकर प्रसन्न हुए और सब उनकी मशंसा करने लगे।

पाण्डवस्त्वब्रवीद्भातॄन् सत्कारेण महीपतिम् । दमघोषात्मजं वीरं संस्कारयत माचिरम् ॥७०॥ तथा च कृतवन्तस्ते भातुर्वे शासनं तदा । चेदीनामाधिपत्ये च पुत्रमस्य महीपतेः । अभ्यषिञ्चत् तदा पार्थः सहतेर्वसुधाधिषैः ॥७१॥

अर्थ-तत्पश्चांत पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को अक्षा दी कि दमघोष के पुत्र राजा शिश्यपाल का सत्कारपूर्वक शीघ ही अन्त्येष्टि-संस्कार करो, वड़े भाई की आज्ञा पाते ही उन्होंने वैसा ही किया और चन्देरी के राज्य पर राजा शिश्यपाल के पुत्र को महाराज युधिष्ठिर ने सब राजाओं के साथ मिलकर राज्यतिलक देदिया ॥

ततः स कुरुराजस्य ऋतुः सर्वसमृद्धिमान् । यूनां प्रीतिकरो राजन् स बभौ विप्रलौजसः॥७२॥ शान्तविष्ठः सुखारंभः प्रभृतधनधान्यवान् । अन्नवान् बहुभक्ष्यरच केरावेन सुरक्षितः । समापयामास च तं राजसूयं महाऋतुम् ॥७३॥

अर्थ-हे राजन ! महातेजस्वी कुरुराज महाराज युधिष्ठिर का वह "राजसूय" यज्ञ भगवान कृष्ण के संरक्षण में सम्पूर्ण सम्-द्धियों से पूर्ण, नवयुवकों को आह्नादित करने वाला, निर्विघ्न, सुख पूर्वक आरम्भ हुआ २ असंख्य प्रकार के धन, धान्य, अन्न और भक्ष्य पदार्थी से परिपूर्ण रहा और पूर्वीक कार्यवाही के पश्चात महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ को समाप्त करदिया॥

तं तु यज्ञं महाबाहुरासमाप्तेर्जनार्दनः । रुष्ठः ।। रुष्ठः भगवाञ्छोरिः शार्क्जचक्रगदाधरः । ७४ ।।

महाभारत

अर्थ-शार्क्न धनुष, चक्र और गदा के धारण करने वाले महाबाहु भगवान कृष्णजी ने उस यज्ञ की आरम्भ से समाप्ति-पर्यन्त रक्षा की ॥

ततस्त्ववभृथस्नातं धर्मात्मानं युधिष्ठरम् । समस्तं पार्थिवं क्षत्रमुपगम्येदमत्रवीत् ॥७५॥ दिष्ट्या वर्द्धसि धर्मज्ञ साम्राज्यं प्राप्तवानिस । अजमीदाजमीदानां यशः संवर्द्धितं त्वया॥७६॥ कर्मणैतेन राजेन्द्र धर्मश्च सुमहान् कृतः । आपृच्छामो नरव्यात्र सर्वकामे सुप्रजिताः । स्वराष्ट्राणि गमिष्यामस्तदनुज्ञातुमहिस ॥७७॥

अर्थ-इसके पश्चात जब धर्मात्मा युधिष्ठिर यज्ञ के अन्त का "अवभृथ" नामक स्नान करके निवृत्त होगये तब पृथ्वीभर का सब राजमण्डल उनके पास आकर कहने लगा कि है धर्मज़! आपने साम्राज्य प्राप्त किया, इसलिये आपको बधाई है, हे राजेन्द्र! आपने इस कर्म द्वारा भूतपूर्व महाराज अजमीह तथा उनकी सन्तानों अर्थात अपने पुरुषाओं की कीर्त्त बढ़ादी और महान धर्म का आचरण किया, हे सिंहपुरुष! हमारे सब मनोर्थ पूर्ण हुए अब हम सब राजा लोग अपने २ देशों को जाने की आज्ञा चाहते हैं सो आप आज्ञा दीजिये॥

श्रुत्वा तु वचनं राज्ञां धर्मराजो युधिष्ठिरः । यथाई प्रज्यनृपतीन् भ्रातृन् सर्वानुवाच ह । राजानः सर्व एवैते प्रीत्यास्मान् समुपागताः॥७८॥

सभापर्व-पंचविंशाध्याय

६१३

प्रस्थिताः स्वानिराष्ट्राणि मामापृच्छ्यपरन्तपाः। तेऽनुत्रजत भद्रं वो विषयानां नृपोत्तमान् ॥७९॥

अर्थ-तव धर्मराज युधिष्ठिर सव राजाओं का निवेदन सुन और उनका यथायोग्य सत्कार कर अपने सव भाइयों को संवोधन करके कहा कि हे शञ्चदमनकर्ता भाइयों ! देखों यह सब राजा लोग मेमपूर्वक हमारे यज्ञ में पधारे हैं और अब अपने २ देशों को जाने के लिये मेरी अनुमित चाहते हैं सो आप लोग इन सज्जन राजाओं को इनके देश की सीमा तक पहुंचा आओ आपका कल्याण हो ॥

अतिवनमाज्ञाय पाण्डवा धर्मचारिणः । यथाई नृपतीन सर्वानकैकं समनुव्रजन् ॥ ८० ॥ विराटमन्वयाचूर्णं धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् । धनञ्जयो यज्ञसेनं महात्मानं महारथम् ॥ ८१ ॥ भीष्मं च धृतराष्ट्रं च भीमसेनो महाबलः । द्रोणं तु सस्ततं वीरं सहदेवो युधांपितः ॥ ८२ ॥ नकुलः सुवलं राजन् सहपुत्रं समन्वयात् । द्रोपदेयाः ससोभद्राः पार्वतीयान्महारथान् । अन्वगच्छंस्तथेवान्यान् क्षत्रियान् क्षत्रियर्षभाः ॥८३॥

अर्थ-धर्मात्मा पाण्डव लोग बड़े भाई की आज्ञा पाते ही सब राजाओं को पहुंचाने के लिये यथायोग्य एक २ के साथ एक २ चलदिया, राजा विराट के साथ मतापी घृष्टद्युम्न, महारथी महात्मा यज्ञसेन=द्रुपद के साथ अर्जुन, भीष्म और धृतराष्ट्र के साथ महावली भीमसेन, वीर द्रोणाचार्य और उनके पुत्र अक्वत्थामा के साथ महायोद्धा सहदेव, सुवल और उसके पुत्र शकुनि के साथ नकुल, पर्वती राजाओं के साथ द्रौपदी और सुभद्रा के पुत्र तथा इसी प्रकार अन्य राजाओं के साथ अन्यान्य क्षत्रिय चीर पहुंचाने को गये॥

एवं सुप्रजिताः सर्वे जग्मुर्विपाः सहस्रशः ।
गतेषु पार्थिवेन्द्रेषु सर्वेषु ब्राह्मणेषु च ॥ ८४ ॥
यिधिष्ठरम्बाचेदं वासुदेवः प्रतापवान् ।
आपृच्छे त्वां गमिष्यामि द्वारकां कुरुनन्दन ।
राजस्यं ऋतुश्रेष्ठं दिष्ट्या त्वं प्राप्तवानिस ॥ ८५ ॥

अर्थ-पूर्वोक्त प्रकार से ही सहस्रों ब्राह्मण छोग जो सभा में सम्मिलित हुए थे सत्कारपूर्वक विदा होकर चले गये, सब राजा महाराजाओं तथा ब्राह्मणों के चले जाने पर प्रतापी कृष्णजी युधिष्टिर से बोले कि हे कुरुवंश भूषण राजन ! अहोभाग्य है कि आपने राजसूय महायज्ञ को निर्विद्य समाप्त किया, अब मैं द्वारका जाने के लिये आज्ञा चाहता हूं ॥

तमुवाचैवमुक्तस्तु धर्मराजो जनार्दनम्।
तव प्रसादाद्गोविन्द प्राप्तः ऋतुवरो मया।। ८६।।
क्षत्रं समग्रमपि च त्वत्प्रसादाद्वशे स्थितम्।
उपादाय बिलं मुख्यं मामेव समुपस्थितम्।।८७॥

अर्थ-कृष्णनी के इस प्रकार कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर उनमे वोले कि हे गोविन्द ! मैंने तुम्हारे अनुग्रह से ही इस महान यज्ञ को पूर्ण किया, और तुम्हारी ही कृपा से यह सम्पूर्ण राज-मण्डल मेरे वज्ञ में हुआ २ प्रधान रत्नों की भेटें ले २ कर मेरी सेवा में उपस्थित हुआ ॥

कथं तद्गमनार्थं मे वाणी वितरतेऽनघ । न ह्यहं त्वामृते वीर रितं प्राप्तोमि कर्हिचित् । अवस्यं चैव गन्तव्या भवता द्वारकापुरी ॥ ८८ ॥

अर्थ-हे निष्पाप ! मैं अपनी वाणी द्वारा आपको जाने के लिये कैसे कहूं, हे वीर ! तुम्हारे विना मुझे कभी शानित नहीं मिलेगी परंतु आपने द्वारकापुरी में भी अवश्य जाना है ॥

एवमुक्तः स धर्मात्मा युधिष्ठिर सहायवान् । अभिगम्यात्रवीत् प्रीतः पृथां पृथुयशा हरिः॥८९॥ साम्राज्यं समनुप्राप्ताः पुत्रास्तेऽद्य पितृष्वसः । सिद्धार्था वसुमंतश्च सात्वं प्रीतिमवापुहि ॥९०॥ अनुज्ञातस्त्वया चाहं द्वारकां गन्तुमुत्सहे । सुभद्रां द्रौपदीं चैव सभाजयत केशवः ॥९१॥

अर्थ-याधिष्ठिर के ऐसा कहने पर महा यशस्वी धर्मात्मा कृष्णजी याधिष्ठिर को साथ ले बूआ कुन्ती के पास जाकर प्रसन्नता पूर्वक बोले कि हे बूआ! तुम्हारे पुत्र साम्राज्य को प्राप्त हो-गये और अब यह कृतार्थ तथा धनधान्य से पूर्ण हैं सो अब तुम आनन्द मनाओ और मुझे द्वारका जाने की अनुमात दें, ऐसा कहकर कृष्णजी ने सुभद्रा और द्रौपदी को भी आनन्दित किया ॥

ततो मेघवपुः प्रख्यं स्यन्दनं च सुकल्पितम् । योजियत्वा महाबाहुर्दारुकः समुपिस्थतः ॥९२॥ प्रययो पुण्डरीकाक्षस्ततो द्वारवतीं पुरीम् । तं पद्मचामनुवन्नाज धर्मराजो युधिष्ठिरः । भातृभिः सहितः श्रीमान्वासुदेवं महाबळ्य् ॥९३॥

अर्थ-इसके पश्चात कृष्णजी का सारिथ महाबाहु दाहक मैच के सामान शोभायमान सजा रथ जोतकर वहां आ उपस्थित हुआ और कृष्णजी द्वारका नगरी को चल दिये श्रीमान धर्मराज युधिष्ठिर पेम के कारण अपने भाइयों समेत महावली कृष्णजी के रथ के साथ २ पैदल चलने लगे॥

ततो मुहूर्त संगृह्य स्यन्दनप्रवरं हरिः । अत्रवीत् पुण्डरीकाक्षः क्रन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥९४॥ अप्रमत्तः स्थितो नित्यं प्रजाः पाहि विशाम्पते । कृत्वा परस्परेणैव संविदं कृष्णपाण्डवे । अन्योऽन्यं समनुज्ञाप्य जग्मतुः स्वगृहान्प्रति ॥९५॥

अर्थ-तब कमलनेत्र कृष्णजी ने थोड़ी देर के लिये अपना श्रेष्ठ रथ रोककर कुन्तिपुत्र युधिष्ठिर को उपदेश किया कि है मजानाथ! अब आप सदा सावधानी के साथ रहकर अपनी मजाओं का पालन करते रहें, इस मकार कृष्णजी और पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आपस में संवाद करके एक दृसरे की अनुमित ले अपने २ घर को चले गये॥ गते द्वारवतीं कृष्णे सात्वतप्रवरे नृप ।
एको दुर्योधनो राजा शकुनिश्चापि सौवलः ।
तस्यां सभायां दिव्यायामूषतुरती नर्र्षभी ॥ ९६ ॥
अथ-हे राजा जनमेजय ! यदुवंशियों में श्रेष्ठ कृष्णजी के
द्वारका चले जाने पर महाराज युधिष्ठिर के दिव्य सभाभवन में
केवल दुर्योधन और मुवल का पुत्र शकुनि यह दोनों महात्मा ही
शेष रहगये ॥

इति पंचविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ षट्विंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच समाप्ते राजस्ये तु ऋतुश्रेष्ठे सुदुर्लभे। शिष्येः परिवृतो व्यासः पुरस्तात्समपद्यत ॥ १ ॥ सोऽभ्ययादासनात्त्र्णं भ्रातृभिः परिवारितः। पाद्येनासनदानेन पितामहमप्रजयत् ॥ २ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! इस प्रकार महान् दुर्लभ उत्तम "राजसूय" यज्ञ के समाप्त होने पर व्यासजी अपने शिष्यों सहित युधिष्ठिर के सन्मुख आये, व्यासजी को देखते ही युधिष्ठिर अपने भाइयों साहित शीघ्र ही उठ खड़े हुए,और उन्होंने अपने पितामह व्यासजी के चरण धोकर आदरपूर्वक आसन पर वैठाया ॥ अथोपविश्य भगवान् काञ्चने परमासने । आस्यतामिति चोवाच धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥ ३॥ अथोपविष्टं राजानं आतृभिः परिवारितम् । उवाच भगवान् व्यासस्तत्तद्धाक्य विशारदः ॥४॥

अर्थ-भगवान व्यासजी सुवर्ण के उत्तम आसन पर बैठकर धर्मराज युधिष्ठिर से बोले कि आपभी बैठ जाइये, जब राजा युधिष्ठिर भाइयों सहित बैठ गये तब सब प्रकार के वार्तालाप में निपुण भगवान व्यासजी उनसे इस प्रकार बोले कि:-

दिष्ट्यावर्द्धिस कौन्तेय साम्राज्यं प्राप्य दुर्लभम् । वर्द्धिताः क्रस्वः सर्वे त्वया क्रस्कुलोद्धह् ॥ ५॥ आप्ट्छेत्वांगिमण्यामिप्रजितोऽस्मिविशाम्पते। एवमुक्तः स कृष्णेन धर्मराजो युधिष्ठिरः। अभिवाद्योपसंगृह्य पितामहमथात्रवीत्॥ ६॥

अर्ध-हे कुरुवंशधर कुन्ति।पुत्र राजन ! अहोभाग्य कि आपने दुर्छभ साम्राज्य पाकर सब कुरुवंशियों की वृद्धि की, तुम्हें वधाई है, अब मैं भी सत्कार ग्रहण किये हुए आपसे जाने की अनुमित चाहता हूं, कुष्णद्वैपायन=व्यासजी के ऐसा कहने पर धर्मराज युधि। ष्ठिरने पितामह को अभिवादन किया और चरण छूकर बोले कि:-

संशयो द्विपदां श्रेष्ठ ममोत्पन्नः सुदुर्लभः । तस्य नाऽन्योऽस्ति वक्ता वै त्वामृते द्विजपुङ्गव ॥॥॥ उत्पातांस्त्रिविधान् प्राह नारदो भगवानृषिः । दिव्यांश्चेवान्तरीक्षांश्च पार्थिवांश्च पितामह । अपिचैद्यस्य पतनाच्छन्नमौत्पातिकं महत् ॥ ८॥

अर्थ-हे मनुष्यों में श्रेष्ठ विम ! मुझे एक वड़ा दुस्तर संदेह उत्पन्न हुआ है और आपसे भिन्न उमका समाधान करने वाला कोई नहीं, हे पितामह ! भगवान ऋषि नारदजी ने तीन प्रकार के उत्पात बताये हैं (१) "दिव्य"=दैवीशिक्त अर्थात ईश्वरीय नियम से होने वाला (२) "आन्तरिक्ष"=आसमानी पदार्थों के संबन्ध से होने वाला (३) "पार्थिव"=पृथिवी के पदार्थों वा मनुष्यादि प्राणियों से होने वाला, सो हे पितामह ! आप यह बतावें कि शिशुपाल की हत्या करने के कारण इन उत्पातों में से तो कोई ग्रुप्त उत्पात होने वाला नहीं है ?॥

वैशम्पायन उवाच

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा पराशरसुतः प्रभुः । कृष्णद्वैपायनो व्यास इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ त्रयोदश समा राजन्जुपातानां फलं महत् । सर्वक्षत्रविनाशाय भविष्यति विशाम्पते ॥ १० ॥ त्वामेकं कारणं कृत्वा कालेन भरत्षभ । समेतं पार्थिवं क्षत्रं क्षयं यास्यति भारत । मा तत्कृते ह्यनुध्याहि कालो हि दुरतिकमः ॥ ११ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! राजा युधिष्ठिर का कथन सुनकर प्रभावशाली=दूरदर्शी व्यासजी ने यह उत्तर दिया कि हे राजा युधिष्ठिर ! तेरह वर्षी के भीतर २ वहा

महाभारत

भयानक उत्पात होगा जिससे सब क्षित्रयों का नांचा होजायगा, और हे भरतकुलश्रेष्ठ ! तुम्हीं अकले उस उत्पात के कारणभूत बनाये जाओगे, और समय पाकर सब राजा लोग तथा क्षित्रय समुदाय मंत्राम-भूमी में अस्त होजायगा, परंतु आप समझलें कि काल को कोई टाल नहीं सकता अर्थात होनहार अमिट है, इस लिये तुम इस बात की चिन्ता मत करना ॥

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासंपर्वतं प्रति । अप्रमत्तः स्थितो दान्तः पृथिवीं परिपालय ॥१२॥

अर्थ-हे युधिष्ठिर! तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं कैलास पर्वत की ओर जाता हूं, तुम सावधान तथा जितेन्द्रिय रहकर पृथिवी का पालन करो ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ता स भगवान कैलासंपर्वतं ययो । कृष्णद्वैपायनो व्यासः सहिशष्यै श्रुतानुगैः॥१३॥

गते पितामहे राजा चिन्ताशोकसमन्वितः।

निश्वसन्तुष्णमसकृत्तमेवार्थं विचिन्तयन् ॥१४॥
अथ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन् ! भगवान् व्यासजी
अपने विद्वान् शिष्यों समेत कैलाश पर्वत को चलेगये, इधर पितामह के चले जाने पर राजा युधिष्ठिर उसी बात को सोचते हुए
चिन्तातुर हो शोक से बार २ गर्म सांस भरने लगे॥

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सर्वान् आतृन् युधिष्ठिरः। श्रुतं वै पुरुषव्याघा यन्मां द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥१५॥ सर्वक्षत्रस्य निधने यद्यहं हेत्रशिष्सितः। कालेन निर्मितस्तात को ममार्थोस्ति जीवतः॥१६॥

अर्थ-पश्चात महातेजस्वी युधिष्ठिर अपने चारो भाइयों से बोले कि हे सिंहपुरुषों ! तुमने व्यासजी का कथन सुना, यदि कालबली ने मुझे ही सब क्षत्रियों के नाश का कारण बनाया है तो मेरे जीवन से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ॥

एवं ब्रुवन्तं राजानं फाल्यनः प्रत्यभाषत । मा राजन् कश्मलं घोरं प्रविशो बुद्धिनाशनम् । संप्रधार्य महाराज यत्क्षमं तत्समाचर ॥१७॥

अर्थ-राजा युधिष्ठिर के ऐसा कहन पर अर्जुन ने उत्तर दिया कि हे राजन ! तुम इस बुद्धिनाशक भयानक शोक में मत पड़ो प्रत्युत विचारपूर्वक जो कुछ इसका उचित उपाय हो सो करो ॥

ततोऽब्रवीत् सत्यधितिभ्रीतृन् सर्वान्यधिष्ठिरः । द्वैपायनस्य वचनं तत्रैव समिचन्तयन् ॥१८॥ अद्यप्रभृति भदं वः प्रतिज्ञां मे निबोधत । न प्रवक्ष्यामि पुरुषं भ्रातृनन्यांश्च पार्थिवान् । स्थितो निदेशे ज्ञातीनां योक्ष्ये तत्समुदाहरन्॥१९॥

अर्थ-तब सचे धैर्यवान युधिष्ठिर व्यासजी की बात का विचार करते हुए अपने सब भाइयों से कहने छगे कि आप छोगों का कल्याण हो, देखों मैं यह मितज्ञा करता हूं सो आप छोग स्मरण रक्खें कि मैं आज से भाइयों, अन्य राजाओं तथा किसी पुरुष को भी कटु वचन वा अनुचित वात न कहुंगा,पत्युत अपने बन्धुओं की आज्ञा में रहकर उनके वचन का पालन किया करुंगा॥

एवं मे वर्त्तमानस्य स्वसुतेष्वितरेषु च । भेदो न भविता लोके भेदमूलो हि विग्रहः ॥२०॥ विग्रहं दूरतो रक्षन् भियाण्येव समाचरन् । वाच्यतां न गमिष्यामि लोकेषु मन्जर्षभाः ॥२१॥

अर्थ-हे । सिंहपुरुष भाइयो ! मैं इस मितज्ञा के अनुसार ही अपने पुत्रों तथा अन्य सबों के साथ मीतिपूर्वक वर्ताव रख़िंगा तो देश में विरोध न बढ़ने से छड़ाई झगड़े भी न होंगे, क्योंकि विरोध ही छड़ाई की जड़ है, छड़ाई झगड़ों से दूर बचता हुआ और सबका हित ही करता हुआ मैं मनुष्यों की दृष्टि में निन्द-नीय न होंगा।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वचनं पाण्डवाः सिन्नशम्य तत् । तमेव समवर्त्तन्त धर्मराज हिते रताः।।२२॥ संसत्सु समयं कृत्वा धर्मराट् भ्रातृभिःसह । कृतमङ्गलकल्याणो भ्रातृभिः परिवारितः । युधिष्ठिरः सहामात्यः प्रविवेश पुरोत्तमम् ॥२३॥

अर्थ-चारो पाण्डव अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर उनके हित में लगे हुए उनकी बात का अनुमोदन करने लगे,इस पकार धर्मराज युधिष्ठिर ने सभा में उक्त प्रतिज्ञा कर अपने भाइयों के साथ आनन्दोत्सव मनाके मन्त्रियों समेत उत्तम राजधानी " इन्द्रमस्थ " में प्रवेश किया ॥

दुर्योधनो महाराज शकानिश्चापि सौवलः । सभायां रमणीयायां तत्रैवास्ते नराधिप ॥२४॥ अर्थ-हे महाराज जनमेजय! इस समय तक भी दुर्योधन और छुदल का पुत्र शकुनि यह दोनों उस रमणीय सभाभवन में ही रहते रहे॥

इति पद्विंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तविंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच वसन् दुर्योधनस्तस्यां सभायां पुरुष्षभ । दानैदिदर्श तां सर्वा सभांशक्विनना सह ॥१॥ तस्यां दिव्यानभिष्रायान् ददर्श कुरुनन्दनः । न दृष्टपूर्वा ये तेन नगरे नागसाह्रये ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि है जनभेजय ! राजा दुर्योधन ने उस सभाभवन में रहते हुए शकुनि को साथ लेकर उस सारे सभा भवन को धीरे २ देखभाल लिया, कुरुवंशी दुर्योधन ने उस भवन में वह २ अद्भुत बातें देखीं जो उसने अपने "हस्तिनापुर" नगर में कभी न देखीं न सुनी थीं ॥

स कदाचित् सभामध्ये धार्त्तराष्ट्रो महीपितः । स्फाटिकं स्थलमासाद्य जलिमत्यभिशङ्कया ॥३॥

स्ववस्त्रोत्कर्षणं राजा कृतवान बुद्धिमोहितः। दुर्मना विमुखरचैव परिचकाम तां सभाम्॥४॥ ततः स्थले निपातितो दुर्मना बीडितो नृपः। निःश्वसन्विमुखश्चापि परिचकामतां सभाम्॥५॥

अर्थ-एक समय धृतराष्ट्र का पुत्र राजा दुर्योधन सभाभवन की सैर कर रहा था कि स्फटिक पत्थर की वनी हुई भूमी उसे जल दिखाई दी और उसने भ्रम में पढ़कर अपने कपड़े भीग जाने की शंका से उन्हें शरीर से उतारकर ऊपर को उठालिया और वह घवराया हुआ सा ज्यों ही सभाभवन के उस स्थल में पहुंचा त्यों ही वह उस स्थल में धडाम से गिरपड़ा और वहां उसे वडी लज्जा उठानी पड़ी, निदान वह उठकर फिर ठंडी सांस भरता हुआ उस भवन की सेर करने के लिये आगे वढ़ा॥

ततः स्फाटिक तोयां वै स्फाटिकाम्बुजशोभिताम्। वापीं मत्वा स्थलमिव सवासाः प्रापतज्जले ॥ ६ ॥ जले निपतितं हष्ट्वा भीमसेनो महाबलः । जहास जहसुश्चैव किङ्कराश्च सुयोधनम् ॥ ७ ॥ वासांसि च शुभान्यसमे प्रदृ राजशासनात् । तथागतं तु तं हष्ट्वा भीमसेनो महाबलः । अर्जुनश्च यमो चोभो सर्वे ते प्राहसंस्तदा ॥ ८ ॥

अर्थ-इस समय राजा दुर्योधन ने अपने सब वस्त्र फिर से पहन छिये थे, वह उस सभाभवन में आगे बढ़कर क्या देखता है कि एक बावड़ी जिसमें स्फाटिक के बने हुए कमल शोभायमान थे और उसमें भरा हुआ जल स्फाटिक पत्थर सा प्रतीत होता था अर्थाद पहले भ्रम से यहां भी दुर्योधन ने बावड़ी के सच्च जल को सुखा स्थल समझा, किंतु ज्यों ही उसने उसमें वेपर्वाही से पैर रखा त्यों ही बस्त्रों समेत जल में गोते खाने लगा, उसका जल में गिरना था कि इधर महाबली भीमसेन और उनके नौकर लोग दुर्योधन को हंसने लगे, और जब वह बावड़ी से निकलकर वैसी दशा में राजा युधिष्ठिर के पास तक पहुंचा तो महाबली भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव यह सब लोग खिलखिलाकर हंस पड़े अन्त में महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से दुर्योधन को और उत्तम वस्त्र पहरने के लिये दिये गये॥

नामर्षयत्ततस्तेषामवहासममर्षणः ।
आकारं रक्षमाणस्तु न स तान् समुदेशत ॥९॥
प्रनर्वसनमुत्थिप्य प्रतिरुपित्रव स्थलम् ।
आकरोह ततः सर्वे जहसुश्च प्रनर्जनाः ॥१०॥
द्वारं तु पिहिताकारं स्फाटिकं प्रेश्य मूमिपः ।
प्रविशन्नाहतो मूर्धिन व्याप्यूर्णित इव स्थितः ॥११॥
तादृशं चापरं द्वारं स्फाटिको रुकपाटकम् ।
विघट्टयन कराभ्यां तु निष्कम्याग्रे पपात ह ॥१२॥
द्वारं तु वितताकारं समापेदे पुनश्च सः ।
तदृश्तं चेति मन्वानो द्वारस्थानादुपारमत् ॥१३॥

महाभारत

अर्थ-अभिमानी दुर्योधन अपने इस अपमान को सह न सका, परन्तु अपने ग्रप्त सन्ताप को छिपाने के छिये उसने मुख उठाकर अपना आकार उनके सामने विगाड़कर नहीं दिखाया, इतने पर भी दुर्योधन को आगे का सुखा स्थल जल जान पडा और उसने अपने कपड़े उतारकर ज्यों ही वहां डरते हुए तैरने के लिये पांव रखा तो फिर सत्र लोग हंसने लगे, इतना ही नहीं वरन राजा दुर्योधन को स्फटिक के बने हुए बन्द द्वार में किवाड़ें दीखीं और वह वहां पोला स्थान समझकर ज्यों ही वेग से घुता कि उसके शिर में किवाड़ की ठोकर लगी और उसका शिर चकराने लगा, इसके पश्चात दूसरे स्थान में स्फटिक का बना हुआ दूसरा द्वार जिसमें झुठे ही बड़े २ किवाड बन्द किये जान पड़ते थे,दुर्योधन ने पहले ही भ्रम से उन्हें खोलने के लिये दोनों हाथों से धक्का दिया पर वहां पोल होने के कारण वह आप ही द्वार से बाहर निकलकर सामने गिरपड़ा, इसके पक्चात इसी प्रकार का द्वार जो वन्द किया हुआ था सामने आया परन्तु दुर्योधन पहली घटना का विचार करके उस द्वार तक न पहुंचकर पीछे छौट आया॥

एवं प्रलम्भान् विविधान् प्राप्य तत्र विशाम्पते । पाण्डवेयाभ्यज्ञातस्ततो दुर्योधनो नृपः ॥१४॥ अप्रहष्टेन मनसा राजसूये महाकतौ । प्रेक्ष्य तामद्भुतामृद्धिं जगामगजसाह्वयम् ॥१५॥

अर्थ-हे राजा जनमेजय ! तब राजा दुर्योधन वहां इस तरह कई प्रकार से अपमानित होकर महाराज युधिष्ठिर के राजसूय महाचक्र तथा सभाभवन की उत्कृष्ट समृद्धि को देखनालकर

सभापर्व-सप्तविशाध्याय

909

पाण्डवों से अनुमित ले शोक में इवे हुए मन से अपने " हस्ति-नापुर " नगर को लौट आया ॥

पाण्डवश्रीप्रतप्तस्य ध्यायमानस्य गच्छतः । दुर्योधनस्य नृपतेः पापामितरजायत ॥१६॥ पार्थान् समनसो दृष्वा पार्थिवांश्च वशानुगान् । कृत्स्नं चापि हितं लोकमाकुमारं कुरुद्रह् ॥१७॥ महिमानं परं चापि पाण्डवानां महात्मनाम् । दुर्योधनो धार्त्तराष्ट्रो विवर्णः समपद्यत ॥१८॥

अर्थ-पाण्डवों की राज्यलक्ष्मी को देखकर जले हुए चिन्ता-प्रस्त राजा दुर्योधन की बुद्धि में पाप समा गया, हे कुरुवंश के वंशधर राजन ! धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन पाण्डवों को प्रसन्नता-पूर्ण देख तथा सब राजाओं को उनके अधीन हुए २ जान और बूढ़े से बच्चे तक सारे देश को उनका पक्षपाती समझ महात्मा पाण्डवों की पर्म महिमा को सोच सोचकर पीला पड़गया ॥

स तु गच्छन्ननेकाग्रः सभामेकोऽन्विचन्तयत । श्रियं च तामनुपमां धर्मराजस्य धीमतः ॥१९॥ प्रमत्तो धतराष्ट्रस्य पुत्रो दुर्योधनस्तदा । अनेकाग्रं तु तं दृष्वा शक्तिः प्रत्यभाषत । दुर्योधन कुतोमृळं निःश्वसन्निव गच्छिस ॥२०॥

अर्थ-जब राजा दुर्योधन शकुनि के साथ अपने नगर को जा रहा था उस समय उसका चित्त डामाडोल और वह वार २ बुद्धिमान धर्मराज युधिष्ठिर के अद्भुत सभाभवन तथा अनुपम राज्यलक्ष्मी की चिन्ता करता २ बाबला सा होगया था, उसने अपने साथी शकुनि के साथ जो बार २ उससे बातचीत करना चाहता था एक बात भी न की वरन चुपचाप रहा शकुनि ने उसे डामाडोल हुआ देखकर अन्त में पूछा कि हे दुर्यो-धन! तुम बड़ी सांस भरते हुए शोक में जारहे हो सो तुम्हें यह दु:ख किस कारण हुआ है ॥

दुर्योधन ज्ञाच हष्द्वेमां पृथिवीं कृत्स्नां युधिष्ठिरवशानुगाम् । जितामस्त्रप्रतापेन खेतास्य महात्मनः ॥२१॥ तं च यज्ञं तथाभृतं हष्ट्वा पार्थस्य मातुल । यथा शक्तस्य देवेषु तथाभृतं महाद्युतेः॥२२॥ अमर्षेण तु सम्पूर्णो दह्यमानो दिवानिशम् । श्रीचश्रकागमे काले शुष्येत्तोयमिवाल्पकम् ॥२३॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे मामाजी ! इवेत घोड़े रखने वाले महात्मा याधाष्टिर ने अपने शस्त्रों के प्रताप से इस सारी पृथ्वी को जीतकर अपने वश में करिलया है और उसने वह महान् राजस्य यह करिदखाया है जैसाकि महाप्रतापी इन्द्र ने देव-ताओं के वीच किया था, सो मैं उसकी यह सारी विभृति देख ईर्षा से रात दिन जलकर राख हुआ जाता हूं और मैं शीघ्र ही स्रालकर नाश को प्राप्त होजाउंगा, जैसे गरमी की ऋतु में थोड़ेपानी का तालाब शुष्क होकर नष्ट होजाता है।।

पश्य सात्वतमुख्येन शिशुपालो निपातितः। नच तत्र प्रमानासीत्कश्चित्तस्य पदानुगः॥२४॥

सभापर्व-सप्तविशाध्याय

900

दह्यमाना हि राजानः पाण्डवोत्थेन विद्वना । क्षान्तवन्तोऽपराधं ते कोहि तत्क्षन्तुमहित ॥२५॥ वासुदेवेन तत्कर्म यथाऽयुक्तं महत् कृतम् । सिद्धं च पाण्डपुत्राणां प्रतापेन महात्मनाम् ॥२६॥

अर्थ-हे मामाजी ! देखिये यदुवंशियों के मुखिया कृष्ण ने भरी सभा के बीच राजा शिशुपाल को मार डाला परन्तु वहां कोई भी मनुष्य शिशुपाल का सहायक न निकला, पाण्डवों के मताप की अग्नि से सब राजा लोग घवराये हुए थे और इसीलिये उन्हें कृष्ण का वह अपराध भी क्षमा करना पड़ा, नहीं तो भला कौन उसे क्षमा करसकता था, वसुदेव के पुत्र कृष्ण ने वह बड़ा भारी अनुचित कार्य किया और महात्मा पाण्डवों के मताप से वह निर्विध्न पूर्ण भी होगया ॥

तथा हि रत्नान्यादाय विविधानि नृपानृपम् । उपतिष्ठन्त कौन्तेयं वैश्या इव करप्रदाः ॥२७॥ श्रियं तथागतां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमिवपाण्डवे । अमर्षवशमापन्नो दह्यामि न तथोचितः ॥२८॥

अर्थ-युधिष्ठिर के प्रताप पर दृष्टि तो दीजिये कि सारे भूमण्डल के राजा कर=टैक्स देने वाले बनियों के समान उत्तमोत्तम विविध प्रकार के रत्नादि पदार्थ लेकर उसकी सेवा में आ खड़े हुए, पाण्डुपुत्र युधिष्टिर की ऐसी बढ़ी चढ़ी समृद्धि को देखकर ईर्षा से मैं जल रहा हूं किन्तु मेरे लिये ऐसा दुःख होना उचित न था॥ एवं स निश्चयं कृत्वा ततो वचनमत्रवीत् । पुनर्गान्धारं नृपतिं दद्यमान इवाग्निना ॥ २९ ॥ विद्वमेव प्रवेक्ष्यामि भक्षयिष्यामि वा विषम् । अपो वापि प्रवेक्ष्यामि न हि शक्ष्यामि जीवितुम् ॥३०॥

अर्थ-दुर्योधन इस प्रकार सोच विचारकर और निश्चय करके आग से जला भुना सा हुआ २ फिर गान्धार के राजा शकुनि से बोला कि हे मामाजी ! मैंने तो यह निश्चय किया है कि या तो मैं आग में प्रवेश करके जल महंगा वा विष खालूंगा अथवा जल में इब जाउंगा, अब मैं जीवित नहीं रह सकता॥

को हि नाम प्रमान् लोके मर्पयिष्यति सत्त्ववान् । सपत्नान्ध्यतो दृष्ट्वा हीनमात्मानमेव च ॥३१॥ सोऽहं न स्त्री न चाप्यस्त्री न प्रमान्नापुमानपि ।

योऽहं तां मर्पयाम्यद्य ताह शीं श्रियमागताम् ॥३२॥ अर्थ-संसार में कौन ऐसा मनुष्य है जो कुछ भी पुरुषार्थ रखता हुआ अपने शञ्जओं की बढ़ती और अपनी घटती देखकर समा करजाय, बस यदि मैं पाण्डवों की उस विशाल राज्यलक्ष्मी को देखता हुआ भी चुप हो रहता हूं तो आप समझलें कि मैं न स्त्री, न पुरुष और नाही नपुंसक हूं अर्थाद कुछ भी नहीं॥

ईश्वरत्वं पृथिव्याश्च वसुमत्तां च ताहशीम् । यज्ञं च ताहशं हष्ट्वा माहशःको न संज्वरेत्।।३३॥ अशक्तश्चेक एवाहं तामाहर्त्तं नृपश्चियम् । सहायांश्च न पश्यामि तेन मृत्युं विचिन्तये ॥३४॥ अर्थ-राजा युधिष्ठिर का भूमण्डल पर राज्य, इस प्रकार धन की बढ़ती और उस राजसूय जैसे यह को देखकर ऐरे जैसा कौन पुरुष संतप्त न होगा, हे भामाजी! राजा युधिष्ठिर की उस राज्यलक्ष्मी को छीनने की मुझ अकेले में तो सामर्थ्य निं और सहायक मेरा कोई है नहीं, इसिल्ये मैंने मरने की टानली है।

दैवमेव परं मन्ये पौरुषं च निर्श्वकम् । हष्ट्वा कुन्तीसितं शुद्धां श्रियंतां महतां यथा॥३५॥ कृतो यत्नो मया पूर्व विनाशे तस्य सौबल । ्च सर्वमतिकम्य संवृद्धोऽप्स्वव पङ्कजम् ॥३६॥ तेन दैवं परं मन्ये षौरुषं च निर्श्वकय् । धार्त्तराष्टा हि हीयन्ते पार्था वर्द्धन्ति नित्यशः॥३७॥

अर्थ-कुन्ती के पुत्र की बड़ पुरुषों के समान उस मकाशमान राज्यहाँ भी को देखकर मैं भाग्य को बड़ा और पुरुषार्थ को व्यर्थ समझता हूं, हे मामाजी ! मैंने युधिष्टिर के मारने का पहले बहुत कुछ उपाय किया था पर उससे उसका वाल भी बांका न हुआ और वह जल में कमल के समान फिर से बढ़गया, इमलिये मैं समझता हूं कि भाग्य ही खड़ी वस्तु है पुरुषार्थ कुछ नहीं, यही कारण है कि हम धृतराष्ट्र के पुत्र दिनोदिन घटते जाते और पाण्डव लोग बढ़रहे हैं॥

सोऽहं श्रियं च तां दृष्ट्या सभां च तथा विधाम् । ग्रिभिश्रावहासं तं परितप्ये यथाग्निना ॥३८॥

993

महाभारत

स मामभ्यनुजानीहि मातुलाद्य सुदुःखितम् । अमर्षे च समाविष्टं धृतराष्टे निवेदय ॥३९॥

अर्थ-सो मैं युधिष्ठिर की उस राज्यलक्ष्मी तथा सभाभवन को देखकर और सभाभवन में नौकरों से ऐसा अपमान पाकर मानो आग से जला जारहा हूं, हे मामाजी ! अब आप मुझ दुखिया को मेरे मन की बात पूरी करने दीजिये और मेरे इस भीतरी जलन की बात पिता धृतराष्ट्र को भी बतादीजिये ॥

इति सप्तविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टविंशोऽध्यायः प्रारम्यंत

शकुनि उवाच

दुयोंधन न तेऽमर्षःकार्य प्रांत युधिष्ठिरम् । भागधेयानि हि स्वानि पाण्डवा भुञ्जते सदा ॥१॥ विधानं विविधाकारं परं तेषां विधानतः । अनेकैरभ्युपायैश्च त्वया न शकिताः पुरा ॥२॥

अर्थ-शकुनि बोला कि हे दुर्योधन ! तुम्हें युथिष्ठिर से ईर्षा वनी उचित नहीं, देखते हैं कि पाण्डव लोग सदा अपने पारब्ध ही सुल भोगते रहे हैं, वह लोग नाना प्रकार के उपायों से कन्ने रहते हैं, और तुम भी उनके नाश के बहुत से उपाय र २ हार बेटे हो पर उनकी कुछ भी हानि न हुई ॥ आरब्धापि महाराज पुनः पुनरारिन्दम । विमुक्ताश्च नरव्यात्रा भागधेय पुरस्कृताः ॥ ३ ॥ तैर्लब्धा द्रौपदी भार्या द्रुपदश्च सुतैः सह । सहायः पृथिवीलाभे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ ४ ॥

अर्थ-हे शञ्चनाशक राजन ! आपने वार २ उनके मारने का उपाय आरम्भ किया, परंतु वह सिंहपुरुष अपने अच्छे भाग्य के कारण बचे रहे, देखो उन्होंने हुपद की पुत्री "द्रौपदी" को अपनी भार्या बनाया और इसी कारण राजा हुपद भी अपने पुत्रों समेत उनका साथी वनगया, इसके अतिरिक्त पराक्रमी कृष्ण भी पृथ्वी के विजय करने में उनका सहायक रहा ॥

लब्धश्चानिभन्तार्थैः पित्र्योशः पृथिवीपते । विवृद्धस्तेजसा तेषां तत्र का परिदेवना ॥ ५ ॥ अभिदाहान्मयं चापि मोक्षियत्वा स दानवम् । सभां तां कारयामास सव्यसाची परन्तंपः ॥ ६ ॥

अर्थ-हे राजन ! उन्हें तुम्हारा दवाया हुआ अपने पिता का दाय-भाग भी पूरा २ नहीं मिला किंतु उन्होंने अपने पताप से उस छोटे से भाग को भी इतना वढ़ा लिया, अब इसमें शोक क्या करना, शञ्जदमनकर्ता वीर अर्जुन ने "मय" नामक कारीगर दानव को अग्नि में जलने से बचाया था इसी उपकार के बदले में उसने वह अद्भुत सभाभवन बनादिया जिसको देखकर तुम्हें डाह हुआ है. और १यचासहायतां राजन्तुक्तवानिस भारत ।
तिनमध्या भ्रातरो हीमे तव सर्वे वशानुगाः ॥ ७ ॥
दोणस्तव महेष्वासः सह पुत्रेण वीर्यवान् ।
सूतपुत्रश्च गांधेयो गौतमश्च महारथः ॥ ८ ॥
अहं च सह सोदर्येः सोमदिनश्च पार्थिवः ।
एतेस्त्वं सहितः सर्वेर्जय कृत्स्नां वसुन्धराम् ॥ ९ ॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! आपने जो यह कहा कि हमारा कोई सहायक नहीं, यह वात असत्य है, क्योंकि प्रथम तो तुम्हारे सब भाई ही तुम्हारे आज्ञाकारी हैं, इनके सिवाय वाणिवद्या में निपुण वीर द्रोणाचार्य्य, उनका पुत्र अक्वत्थामा, स्तृत का पुत्र कर्ण, गोतम का पुत्र महारथी छपाचार्य, में, मेरे सब भाई और सोमदत्त का पुत्र, इन सब सहायकों के साथ तुम सारे भूमण्डल को जीतलो॥

त्वया च सहितो राजन्नेतैश्चान्यैर्महारथैः । एतानेव विजेष्यामि यदि त्वमनुमन्यसे ॥ १० ॥ एतेषु विजितेष्वद्य भविष्यति मही मम । सर्वे च पृथिवीपालाः सभा सा च महाधना ॥११॥

द्योंधन उवाच

अर्थ-तब दुर्योधनवोला कि हे राजन ! यदि तुम्हारी सम्मित हो तो मैं तुम्हारे और इन सब तुम्हारे बताये दुए बीर योधाओं के साथ मिलकर पहले इन पाण्डवों को ही जीतलं, मैं समझता हूं कि इनको जीत लेने पर सारी पृथ्वी, सब राजा लोग और बह सभाभवन जिसमें इतनाधन लगा है यह सब मेरे हाथमें आजायंगे।

सभापर्व-अष्टविशाध्याय

999

शकुनि उवाच

धनञ्जयो वासुदेवो भीमसेनो युधिष्टिरः । नकुलः सहदेवश्च द्रुपदश्च सहात्मजैः ॥ १२ ॥ नैते युधि पराजेतुं शक्यादेवगणैरिप । महारथाः महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्भदाः ॥ १३ ॥ अहं तु तदिजानामि विजेतुं येन शक्यते । युधिष्ठिरः स्वयं राजंस्तिन्नवोध जुबस्त च ॥१४॥

अर्थ-शकुनि वोला कि हे दुर्योधन! अर्जुन, कृष्ण, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, द्रुपद और उसके पुत्र, यह सब लोग ऐसे नही हैं जो युद्ध में देवता लोगों से भी जीते जासकें, क्योंकि यह बड़े २ रथों वाले, बड़े वाण चलाने वाले, शस्त्रविद्या में सुशिक्षित और युद्ध से नहटने वाले हैं, परंतु हे राजन ! मैं एक ऐसा उपाय जानता हूं जिससे विनायुद्ध किये ही युधिष्ठिर स्वयं हारजायगा, उसे तुम भी जानलो और वैसा ही करो।

दुर्योधन उवाच

अप्रमादेन सुहृदामन्येषां च महात्मनाम् । यदि शक्या विजेतुं ते तन्ममाचक्ष्य मातुल ॥१५॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे मामाजी ! यदि उस उपाय से मेरे मित्रों और अन्य महात्माओं को कोई हानि नहीं पहुंचती और पाण्डन लोग पराजित होसकते हैं तो ऐसा उपाय मुझे अवस्य बताइये॥ 998

महाभारत

शकुनि उवाच

चूतिष्रयश्च कौन्तेयो न स जानाति देवितुम्। समाहृतश्च राजेन्द्रो न शक्ष्यिति निवर्त्तितुम् ॥१६॥ देवने कशलश्चाहं न मेऽस्ति सदृशो भुवि। त्रिषु लोकेषु कौरव्य तं त्वं चूते समाहृय ॥१७॥

अर्थ-शकुनि बोला कि हे दुर्योधन ! याधिष्टिर को जुआ खेलने का शौक है परन्तु वह खेलना नाममात्र ही जानता है, सो तुम यदि उसको जृए के लिये आह्वान करोगे तो वह निषेध नहीं करसकेगा, क्योंकि उसे अपने राजराजेक्वर होने का अभिमान है, और हे कुरुवंशी ! मैं जुआ खेलने में बड़ा चतर हूं, मेरे समान खिलाड़ी इस पृथ्वी पर तो क्या तीनो लोकों में भी नहीं. बस तुम उसे जुआ खेलने के लिये आह्वान करो॥

तस्याक्षक्रशलो राजन्नादास्येऽहमसंशयम्। राज्यं श्रियं च तां दीप्तां त्वद्धं पुरुष्पेभ ॥ १८॥ इदं तु सर्वं त्वं राज्ञे दुर्योधन निवेदय। अनुज्ञातस्तु ते पित्रा विजेष्ये तान्न संशयः॥ १९॥

अर्थ-हे पुरुषों में श्रेष्ठ राजा दुर्योधन ! में पासे फेंकने की चालाकी से तुम्हारी भलाई के लिये युधिष्टिर का राजपाट और चमकती हुई इस राजलक्ष्मी को छीन ल्रंगा, इसमें कुछ भी संदेह नहीं, परंतु हे दुर्योधन ! तुम यह सब बात अपने पिता राजा धृतराष्ट्र को समझादो, उनकी अनुमित मिलते ही मैं पाण्डवों को निःसन्देह जीतल्रंगा ॥

दुर्योधन उवाच त्वमेव कुरुमुख्याय धृतराष्ट्राय सौबल । निवेदय यथान्यायं नाहं शक्ष्ये निवेदितुम् ॥२०॥

अर्थ-दुर्यांधन बोला कि हे शकुनि ! कुरुवंशियों के प्रधान राजा धृतराष्ट्र को तुम्हीं चतुराई से अपने मन की बात समझादो मैं नहीं समझासकुंगा ॥

इति अष्टविंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनित्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

वैशम्पायन उवाच

अनुभूय च राज्ञस्तं राजस्यं महाकतुम् । यधिष्ठिरस्य नृपतेर्गान्धारी पुत्रसंयुतः ॥ १ ॥ प्रियकृन्मतमाज्ञाय पूर्व दुर्योधनस्य तत् । प्रज्ञाचक्षुषमासीनं शक्जिनः सौवलस्तदा ॥ २ ॥ दुर्योधन वचः श्रुत्वा धृतराष्ट्रं जनाधिपम् । उपगम्य महापाज्ञं शक्जिनवीक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमंजय! महाराज युधिष्ठिर का राजसूय-महायज्ञ गान्धारी के पुत्र दुर्योधन और शकुनि इन दोनों को ही खटकता था, इस पर भी जब सुबल के पुत्र शकुनि का उसकी मनचाही सम्मित दुर्योधन से मिलगई तो वह दुर्योधन को अपने साथ ले प्रज्ञाचक्ष राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचा और उन्हें इस प्रकार समझाने लगा कि:-

शकुनि उवाच

दुर्योधनो महाराज विवणों हरिणः कृशः । दीनश्चिन्तापरश्चेव तं विद्धि मनुजाधिप ॥ ४ ॥ न वै परीक्षसे सम्यगसद्यं शत्रुसम्भवम् । ज्येष्ठपुत्रस्य हुच्छोकं किमर्थं नावनुष्यसे ॥ ५ ॥

अर्थ-हे राजन ! दुर्योधन पीला पड़गय है तथा प्रति दिन दुवला होता जाता है, और आपको यह भी ज्ञात हो किवह चिन्तातुर हुआ दुःखी रहता है, हे महाराज ! आपके बड़े पुत्र के चित्त को यह असहा शोक शत्रुओं की ओर से उत्पन्न हुआ है, आप इसकी परीक्षा नहीं करते और न जाने इस ओर क्यों ध्यान नहीं देते हैं॥

धृतराष्ट्र उवाच

दुर्योधन कृतो मूळं भृशमात्तांऽसि पुत्रक । श्रोतव्यश्चेन्मया सोऽथों ब्रुहि में क्रुरुसत्तम् ॥ ६ ॥ अयं त्वां शकुनिः प्राह विवर्ण हरिणं कृशम् । चिन्तयश्च न पश्यामि शोकस्य तव संभवम् ॥ ७ ॥ अर्थ-धृतराष्ट्र बोला कि हे बेटा दुर्योधन ! तुम बड़े दुःखी हो सो इसका क्या कारण १ यदि मेरे सुनाने की बात हो तो मुझसे कहो, यह शकुनि कहता है कि तुम बड़े दुबले तथा पीले पड़गये हो, मैं जहां तक सोचता हूं तुम्हारे शोक का कारण मेरी समझ में नहीं आता ॥ ऐस्वर्य हि महत्पुत्र त्वाय सर्व प्रतिष्ठितम् । भ्रातरः सहदश्चेव नाचरिन्त त्वाप्रियम् ॥ ८ ॥ शयनानि महार्हाणि योषितश्च मनोरमाः । गुणविन्त च वेश्मानि विहाराश्च यथासुखम् ॥ ९ ॥ देवानामिव ते सर्व वाचिवद्धं न संशयः । स दीन इव दुर्घषं करमाच्छोचिस पुत्रक ॥ १० ॥

अर्थ-हे बेटा दृर्योधन! देख यह सब बड़ा भारी ऐक्वर्य तेरा ही है, तेरे आई और मित्र वन्धु सब तेरे अनुकूल रहते हैं, उत्तमोत्तम सेज, मनोहर स्त्रियें, गुणयुक्त महल तथा सुखदायक कीड़ा के स्थान, यह सब वस्तुयें तुम्हारे पास हैं और यह सब मजा तुम्हें देवताओं के समान समझकर सदा तुम्हारे कहने में रहती है, इस में सम्देह नहीं, फिर क्या कारण है कि तुम एक दीन पुरुष के समान शोक में रहते हो ? तुम्हें तो कोई दबा ही नहीं सकता ॥

दुर्योधन उवाच

अश्नाम्याच्छादये चाहं यथा कुपुरुषस्तथा।
अमर्ष धारये चोग्रं निनीषुः कालपर्ययम्।।११॥
अमर्षणः स्वाः प्रकृतीरिभभूय परं स्थितः।
क्रेशान्मुमुक्षुः परमात् स वै पुरुष उच्यते ।।१२॥
अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे पिताजी! यह ठीक है कि भैं
एक नीच पुरुष के समान खाता।पिता तथा वस्त्र भी पहनता हं
परन्तु अव तो मैं भीतर ही भीतर जलता रहता और बुरे दिन
काटता हं "पुरुष " कहलाने योग्य वही है जो शत्र को क्षमा

महाभारत

न करे, अपनी प्रजा को सर्वथा अपने अधीन रखे और सदा बड़े से बड़े क्रेश से वचन का उपाय करे।।

सन्तोषो वै श्रियं हन्ति ह्यभिमानश्च भारत। अनुक्रोशभये चोभे यैर्वृतो नाश्नुते महत् ॥१३॥ न मां प्रीणाति मद्धक्तं श्रियं दृष्ट्वा युधिष्ठिरे। अभिज्वलन्तीं कोन्तेये विवर्णकरणीं मम् ॥१४॥

अर्थ-हे भारतीय राजन ! आप जानते हैं कि सन्तोष कर छेने पर मनुष्य का धन और अभिमान दोनों नाश होजाते हैं, और दया तथा भय यह दोनों ऐसे पदार्थ हैं जिनके कारण मनुष्य आगे उन्नति नहीं करसकता, कुन्ती के पुत्र युधिष्टिर की चम-कती हुई राजलक्ष्मी को देखकर मुझे खाना पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता और इसीसे मैं पीला पड़गया हूं॥

सपतान्ध्यतोऽत्मानं हीयमानं निशम्य च । अदृश्यामपि कौन्तेयश्रियं पश्यन्निवोद्यतां । तस्मादहं विवर्णश्च दीनश्च हरिणः कृशः ॥१५॥

अर्थ-जब मैं किसी के मुख से सुनता हूं कि मेरे शच्च बढ़ रहे हैं और मैं गिरा हुआ हूं तो उस समय युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी मेरी आंखों के सामने खड़ी दीख पडती है, इसीसे मेरा रंग पीछा पड़गया और मैं दिन पर दिन दुःखी रहकर निर्बट होता जाता हूं॥

पृथिगवधानि रतानि पार्थिवाः पृथिवीपते । आहरन् ऋतुमुख्ये अस्मन् कुन्तीपुत्रायभूरिशः॥१६॥

न क्वचिद्धि मया ताहग्हष्टपूर्वी नच श्रुतः । याहग्धनागमो यज्ञे पाण्डपुत्रस्य धीमतः ॥१७॥

अर्थ-हे महाराज ! देखिये उस महान राजसूय यह में सब राजा लोग नाना प्रकार के असंख्य रत्न तथा अन्य पदार्थ युधि-ष्ठिर की भेट करने को लाये थे, बुद्धिमान पांडवों के यहां यह में जैसी धन की आमद हुई है वैसी मैंने पहले कहीं न देखी न सुनी थी॥

अपर्यन्तं धनौषं तं दृष्ट्वा शत्रोरहं नृप । शर्मनैवाधिगच्छामि चिन्तयानो विशाम्पते ॥१८॥ दृष्ट्वा च मम तत् सर्व ज्वररूपिमवाभवत् । गृहीत्वा यनु गच्छन्ति समुद्रौ पूर्वदक्षिणौ । तथैव पश्चिमं यान्ति गृहीत्वा भरत्षभ ॥१९॥

अर्थ-हे प्रजानाथ ! मैं अपने शत्रु के असंख्य धन को देख कर सदा चिन्ता में रहता हूं, मुझे कभी शान्ति नहीं होती, है भरतवंशभूषण पिताजी ! भैंने जब देखा कि पाण्डव लोग पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी समुद्र की सारी संपत्ति अपने घर में समेट रहे हैं तब से मुझे ज्वर सा चढ़ा हुआ है ॥

उत्तरं तु न गच्छन्ति विना तात पतित्रिणः। तत्र गत्वाऽर्जुनो दण्डमाजहारामितं धनम् ॥२०॥

अर्थ-हे पिताजी! उत्तर दिशा में जड़ां पक्षियों के सिवाय कोई मनुष्य पहले नहीं जाता था, अर्जुन उतनी दूरतक भी जा पहुंचा और वहां से वह असंख्य धन दण्डक्य में लाया॥ पार्थिवैर्बहुभिः कीर्णमुपस्थानं दिदृक्षुभिः । अशोभत महाराज नक्षत्रैद्यौरिवामला ॥२१॥ सर्वरतान्यपादाय पार्थिवा वै जनेस्वर । यज्ञे तस्य महाराज पाण्डपुत्रस्य धीमतः॥२२॥ तां दृष्ट्वा पाण्डपुत्रस्य श्रियं परिमकां महत् । शान्ति न परिगच्छामि दह्यमाने न चेतसा ॥२३॥

अर्थ-हे महाराज ! राजा याधिष्टिर के दरबार में बड़े २ अंसख्य राजा दर्शन के लिये आये थे, और उसका दरबार उस समय ताराओं से निर्मल आकाशमण्डल के समान शोभायमान था, हे राजन !देखिये बुद्धिमान पाण्डवों के यज्ञ में सब राजा लोग बड़े २ रज्ञादि पदार्थ भेट लेकर उपस्थित हुए थे, बस पाण्ड- पुत्र याधिष्टिर की इस बढ़ीचढ़ी राज्यलक्ष्मी को देखकर ही मेरा मन जल रहा है और मुझे शान्ति नहीं होती ॥

शकुनि उवाच

यामेतामतुलांलक्ष्मीं दृष्टवानासि पाण्डवे । तस्या प्राप्तानुपायं मे शृणुसत्यपराक्रम।।२४॥ अहमक्षेष्वभिज्ञातः पृथिव्यामि भारत । हृदयज्ञः पणज्ञश्च विशेषज्ञश्च देवते ॥२५॥ चूतिपयश्च कौन्तेयो न च जानाति देवितुम् । आहृतश्चेष्यित व्यक्तं चूतादिपरणादिष ॥२६॥

सभापर्व-एकोनित्रंशाध्याय

355

नियतं तं विजेष्यामि कृत्वा तु कपटं विभो। आनयामि समृद्धिं तां दिव्यां चोपाह्वयस्वतम्॥२७॥

अर्थ-तव पास बैटा हुआ शकुनि बोला कि हे सचे पराक्रमी दुर्योधन! आपने जो पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर की अतुल सम्पत्ति
देखी है उसके मिलने का मैं तुम्हें उपाय वतलाता हूं सो तुम
सुनो, हे भरतवंशी! सारा संसार जानता है कि मैं जुआ खेलने में
बड़ा निपुण हूं, जुए का तत्व और विशेषतायें मैं सब कुल जानता
हूं और मुझे उलटा सीधा पासा फेंकना भी अच्छा आता है,
और युधिष्ठिर को जुआ खेलने का शौक तो है पर वह खेलने
में अनाड़ी है, वह इतना अभिमान अवस्य रखता है कि जुए
और युद्ध के लिये उसे ललकारा जावे तो वह अवस्य ही आ
पहुंचता है, वस हे राजन! तुम निश्चय समझो कि मैं लल कपट
करके उसे अवस्य जीत लूंगा और फिर उसकी अद्भुत राजलक्ष्मी तो तुम अपने पास आई हुई ही समझो, इसलिये अब
युधिष्ठिर को जुए के लिये आह्वान करो॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः शक्तिना राजादुर्योधनस्ततः । धतराष्ट्रमिदंवाक्यमपदान्तरमत्रवीत् ॥२८॥ अयमुत्सहते राजन् श्रियमाहर्ज्ञमक्षवित् । द्यूतेषु पाण्डपुत्रस्य तदनुज्ञातुमहीस ॥२९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमजय ! शकुनि का यह कहना था कि दुर्योधन झट से बोल उठा कि हे पिताजी ! यह हमारे मामाजी जुआ खलना बहुत अच्छा जानते हैं और युधिष्ठिर की लक्ष्मी को जुए में जीतने का उत्साह करते हैं सो आप इन्हें आज्ञा दीजिये॥

धृतराष्ट्र उवाच

क्षत्ता मन्त्री महाप्राज्ञः स्थितो यस्यास्मिशासने । तेन सङ्गम्य वेत्स्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम्॥३०॥ स हि धर्म पुरस्कृत्य दीर्घदर्शी परं हितम् । उभयोः पक्षयोर्धक्तं वक्ष्यत्यर्थ विनिश्चयम् ॥३१॥

अथ-धृतराष्ट्र बोले कि हे दुर्योधन ! तुम जानते हो कि महाबुद्धिमान विदुर मेरा मन्त्री है जिसका कहना मैं मानता हूं, उसके साथ सलाह करके इस काम के लिये निश्चय करुंगा, क्योंकि बह बड़ा दीर्घदर्शी है, वह धर्म का विचार करके ऐसी निश्चित सम्मति देगा जिसमें दोनो पक्षों का हित हो ॥

दुर्योधन ज्वाच निवर्त्तियिष्यित त्वासौ यदि क्षत्ता समेष्यित । निवृत्ते त्विय राजेन्द्र मरिष्येऽहं न संशयः ॥३२॥ स त्वं मीय मृते राजन् विदुरेण सुखी भव । भोक्ष्यसे पृथिवीं कृत्स्नां किं मयात्वं करिष्यिस॥३३॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे राजेन्द्र ! यदि विदुर इस बीच में पड़ेगा तो वह तुम्हें इससे निषेध करेगा और यह निश्चय राखिये कि यदि तुम इस बात को स्वीकार न करोगे तो मैं अवश्य मर जाउंगा, हे राजन् ! अच्छा है कि मैं मरजाऊं तुम बिदुर को साथ लेकर सुली रहो और सारी पृथ्वी का राज्य करो, मुझसे तुम्हें क्या हैना है।

सभापर्व-एकोनत्रिशाध्याय

७२५

वैशम्पायन उवाच

आर्त्तवाक्यं त तत्तस्य प्रणयोक्तं निशाम्य च । धृतराष्ट्रोऽत्रवीत् प्रेष्यान् दुर्योधनमतेस्थितः ॥३४॥ स्थूणासहस्रेर्वहतीं शतद्वारां सभां मम । मनोरमां दर्शनीयामाश्च कुर्वन्तु शिल्पिनः ॥३५॥ ततः संस्तीय रत्नेस्तां तक्ष्ण आनाप्य सर्वशः । सुकृतां सुप्रवेशां च निवेदयत मे शनैः ॥ ३६॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! दुर्योधन के दुःख से भरे वचन सुनकर धृतराष्ट्र को उसकी वात स्वीकार करनी पड़ी, और जूआ खेलने का सभाभवन वनवाने के लिये अपने नौकरों को आज्ञा दी कि कारीगर लोग एक वड़ा मनोहर दर्शनीय सभाभवन बनावें, जिसमें हज़ार खंभे लगाये जावें और सौ द्वार रक्खे जायं, जहां तक हो इस सभाभवन को बहुत शीध तैयार करें, पीछे सब ओर रत्न जड़ दियेजायं, पवेश का द्वार अच्छा रक्खा जावे और जब पूर्णक्रप से तैयार होजाय तब मुझे सूचना दें ॥

दुर्योधनस्य शान्त्यर्थमिति निश्चित्य भूमिपः । धृतराष्ट्रो महाराज प्राहिणोदिदुराय वै ॥ ३७ ॥ अपृष्ट्वा विदुरं स्वस्य नासीत्कश्चिदिनिश्चयः । द्यूते दोषांश्चरंजानन्स पुत्रस्नेहादकृष्यत् ॥ ३८ ॥

अर्थ-हे महाराज जनमेजय ! राजा घृतराष्ट्र ने दुर्योधन की शान्ति के लिये ऐसा निश्चय करके पीछ अपने मन्त्री विदुर को बुला भेजा, यद्यपि धृतराष्ट्र मन्त्री विदुर से बिना पूछे कोई

काम नहीं करता था और वह जूए की बुराइयों को भी भले मकार समझता था,परंतु पुत्र के मोह ने उसे पाप की ओर खेंच लिया ॥

तच्छुत्वा विदुरोधीमान् कलिद्धारमुपस्थितम् । विनाशमुखमुत्पन्नं धृतराष्ट्रमुपादवत् ॥ ३९॥ सोऽभिगम्य महात्मानं भ्राता भ्रातरमग्रजम् । मूर्ध्ना प्रणम्य चरणाविदं वचनम्त्रवीत् ॥ ४०॥

अर्थ-जब बुद्धिमान विदुर ने सुना कि अब नाशकारक कलह का द्वार खुलने वाला है तब वह शीघ्र ही धृतराष्ट्र के पास आया, और अपने बड़े भाई महात्मा धृतराष्ट्र के चरणों में शिर रखकर बोला कि :-

नाभिनन्दामि ते राजन् व्यवसायमिमं प्रभो । पुत्रैभेंदो यथा न स्यात् चूतहेतोस्तथा कुरु ॥४१॥

अर्थ-हे राजन ! मैं तुम्हारे इस विचार का अनुमोदन नहीं करसकता परन्तु आपको ऐसा उपाय अवक्य करना उचित है जिससे तुम्हारे बेट और भतीजों में जुए के कारण विरोध न बढ़े॥

धृतराष्ट्र उवाच

ज्ञतः पुत्रेषु पुत्रैमें कलहो न भविष्यति । यदि देवाः प्रसादं नः करिष्यन्ति न संशयः ॥४२॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोला कि हे विदुर ! यदि देवता लोग मुझ पर अनुग्रह करेंगे तो इसमें संदेइ नहीं कि मेरे बेटों और भतीजों में कभी विरोध न बढ़ेगा॥ अशुभं वा शुभं वापि हितं वा यदि वाऽहितम् । प्रवर्त्ततां सहद्द्यूतं दिष्टमेतन्न संशयः ॥ ४३ ॥ मिय सिन्निहिते द्रोणे भीष्मे त्विय च भारत । अनयोदैविविहितो न कथंचिद् भविष्यति ॥४४॥

अर्थ-हे पित्र विदुर! चाहे जुआ बुरा हो वा भला, लाभ-कारक हो वा हानिकारक, अब तो यह करना ही पहेगा, मैंने सब सोच विचार लिया है तुम भी इसमें कुछ संदेह न करो, हे भरतवंशी! जुआ खेलने के स्थान में मैं, द्रोणाचार्य, भीष्मिपतामह और तुम भी उपस्थित रहोगे तब ईस्वर के अनुग्रह से इन लोगों में कभी विरोध न होगा॥

गच्छ त्वं रथमास्थाय हयैर्वातसमैर्जवे। खाण्डवप्रस्थमद्यैव समानय युधिष्ठिरम् ॥ ४५ ॥ न वाच्यो व्यवसायो मे विदुरतद्व्रवीमिते। दैवमेव परं मन्ये येनैतदुपपद्यते ॥४६॥ इत्युक्तो विदुरो धीमान्नेदमस्तीति चिन्तयन्। आपगेयं महाप्राज्ञमभ्यगच्छत्सुदुःखितः॥४६॥

अर्थ-सो तुम वायुगामी घोड़ों वाले रथ पर वैटकर खाण्डव-मस्थ=इन्द्रमस्थ को जाओ और आज ही युधिष्ठिर को यहां लिवा लाओ, परन्तु हे विदुर ! एक बात दुमसे मैं कहे देता हूं कि तुम मेरे इस संकल्प को वहां जाकर किसी से न कहना, मैं समझता हूं कि कोई पारब्ध ही ऐसा वलवान आपड़ा है जिससे ऐसा करना पड़ा, धृतराष्ट्र के ऐसा कहने पर बुद्धिमान विदुर ने सोचा कि ऐसा तो नहीं होना चाहिये और वह अत्यन्त दुःखी होकर महाविद्वान भीष्मपितामह के पास गया ॥

इति एकोनत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

जनमेजय उवाच

कथं समभवद्यूतं भ्रातृणां तन्महात्ययम् । यत्र तद्व्यसनं प्राप्तं पाण्डवेमें पितामहैः ॥१॥ केच तत्र सभास्तारा राजानो ब्रह्मावत्तम । केचनमन्वमोदन्त केचेनं प्रत्यवेधयन् ॥२॥ विस्तरेणेतदिच्छामि कथ्यमानं त्वया द्विज । मूलं ह्येतदिनाशस्य पृथिव्या दिजसत्तम ॥३॥

अर्थ-राजा जनमेजय बोला कि हे ब्रह्मवेत्ता विम वैशम्पायन! जन पाण्डव और कौरव भाई भाइयों में महाहानिकारक जूए का व्यवहार कैसे होगया, जिससे मेरे दादा पाण्डवों को बड़ा दुःख ज्ञाना पड़ा, जूआ खेलने के सभाभवन में कौन २ राजा सभासद हुए और किन २ लोगों ने इसका र्निष्ध किया था? हे द्विजों में जत्तम! में चाहता हूं कि आप इस वृत्तान्त को विस्तारपूर्वक वर्णन करें, वयोंकि यह महाभारत का युद्ध भारतवर्ष ही नहीं किन्तु सारे भूगोल के सत्यानाश की जड़ है ॥

सभापर्व-त्रिशाध्याय

929

वैशम्पायन उवाच

शृणु मे विस्तरेणेमां कथां भारतसत्तम । भूय एव महाराज यदि ते श्रवणे मितः ॥ ४ ॥ विदुरस्य मतं ज्ञात्वा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः । दुर्योधनमिदं वाक्यमुवाच विजने पुनः ॥ ५ ॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे भारतीय राजन ! यदि इस कथा को विस्तारपूर्वक सुनने की रुचि है तो मैं फिर से तुम्हें सुनाता हूं, अभ्विका के पुत्र राजा धृतराष्ट्र ने जब विदुर की सम्मित जानली तब वह दुर्योधन को एकान्त में बुलाकर फिर से समझाने लगे कि :-

अलं द्यूतेन गान्धारे विदुरो न प्रशंसित । न ह्यसौ सुमहाबुद्धिरिहंतं नो विद्व्यित ॥ ६ ॥ हितं हि परमं मन्ये विदुरो यत्प्रभाषते । कियतां पुत्र तत्सर्वमेतन्मन्ये हितं तव ॥ ७ ॥

अर्थ-हे गान्धारी के पुत्र दुर्योधन ! तुम जूए का विचार त्यागदो, देखो विदुर इसकी निन्दा करता है, वह महाबुद्धिमान होने से हमारी बुराई की बात कभी नहीं करसकता, हे पुत्र ! विदुर जो कुछ कहता है मैं उसको परम हितकारी मानता हूं, तुम भी वैसा ही करो, मैं इसी में तुम्हारी भठाई देखता हूं ॥

देवर्षिर्वासवयरुदेवराजाय धीमते । यत् प्राह शास्त्रं भगवान् वृहस्पतिरुदारधीः ॥ ८॥ तदेद विदुरः सर्व सरहस्यं महाकविः । स्थितस्तु वचने तस्य सदाहमपि पुत्रक ॥ ९ ॥ विदुरोवापि मेधावी कुरूणां प्रवरो मतः । उद्धवो वा महाबुद्धिर्वृष्णीनामर्चितो नृप ॥ १० ॥

अर्थ-हे दुर्योधन ! देख इन्द्र के गुरु देवऋषि महाबुद्धिमान् भगवान बृहस्पतिजी ने जिस नीतिशास्त्र का उपदेश बुद्धिमान् राजा इन्द्र को किया था उस सारे नीतिशास्त्र का रहस्य विदुर जानता है और वड़ा ही विद्रान् है, हे पुत्र ! इसीलिये मैं भी सदा उसके कहने में ही रहता हं, हे पुत्र ! यह मानी हुई बात है कि कुरुवंशियों में "विदुर" और यदुवंशियों में " उद्ध्व " यह दोनों ही महाज्ञानी, महाबुद्धिमान और प्रतिष्ठित श्रेष्ठ पुरुष हैं॥

तदलं पुत्र चूतेन चूते भेदो हि हश्यते । भेदे विनाशो शज्यस्य तत्पुत्र परिवर्जय ॥ ११ ॥ पित्रा मात्रा च पुत्रस्य यद्वै कार्य परं स्मृतम् । प्राप्तस्त्वमासि तन्नाम पितृपैतामहं पदम् ॥ १२ ॥

अर्थ-हे वेटा दुर्योधन ! बस जूए को जाने दो, क्योंकि जूए से फूट बढ़ती देखी गई है और फूट से राज्य का नाश होजाता है इसिटिये इसे त्यागदो, और देख पिता माता की ओर से जितना पुत्र का हित होसकता है वह सब तेरे टिये किया ही गया है जो तू अपने पिता-पितामह के राज्यपद को प्राप्त हो चुका है ॥

अधीतवान् कृतीशास्त्रे लालितः सततं गृहे। भातृज्येष्ठः स्थितोराज्येविन्दसे किंन शोभनं॥१३॥

सभापर्व-त्रिशाध्याय

939

पृथग् जनैरलभ्यंयद्भोजनाच्छादनं परम् । तत्प्राप्तोऽसि महाबाहौ कस्माच्छोचसि पुत्रक ॥१४॥

अर्थ-हे श्रेष्ठ पुत्र ! त सब कुछ पढ़ा लिखा, शास्त्र में निपुण सदा प्यार के साथ घर में पला हुआ और सब भाइयों में बड़ा होने से राज्य पर विराजमान है, बता तुझे किस बात की कमी है ? हे पुत्र ! जिस मकार का भोजन वस्त्र आदि सर्वसाधारण को नहीं मिलसकता वह तेरे लिये उपस्थित रहता है, हे महाबाहु! फिर तुझे किस बात की चिन्ता है ॥

स्फीतं राष्ट्रं महावाहो पितृपैतामहं महत् । नित्यमाज्ञापयन् भासि दिवि देवेश्वरो यथा ॥१५॥ तस्य ते विदितप्रज्ञ शोकमूलिमदं कथम् । समुत्थितं दुःखकरं तन्मे शंसितुमहिस ॥ १६ ॥

अर्थ-हे महाबाहु दुर्योधन! अपने वाप-दादाओं के बड़े विस्तृत राज्य का तू नित्य शासन करता और आकाश में सूर्य के समान प्रकाशमान है, तू तो बड़ा बुद्धिमान है तुझे यह दुःख का कारण शोक कैसे हुआ ? सो तू मुझे स्पष्टतया बता ॥

दुर्योधन उवाच

अश्नाम्याच्छादयामीति प्रपश्यन् पापपूरुषः । नामर्षे कुरुते यस्तु पुरुषः सोऽधमः स्मृतः ॥१७॥ न मां प्रीणाति राजेन्द्र लक्ष्मीः साधारणी विभो । ज्वलितामिव कौन्तेये श्रियं दृष्ट्वा चविव्यथे ॥१८॥ अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे राजन ! जो पापी मनुष्य यह समझकर कि "मुझे खाने पहरने को मिलजाता है" ईषी नहीं रखता वह नीच बताया गया है, हे राजेन्द्र ! जब मैं युधिष्ठिर की चमकती हुई राज्यलक्ष्मी को देखता हूं तब मुझे बड़ी पीड़ा होती है और मेरी यह साधारण संपत्ति मुझे प्रसन्न नहीं करसकती॥

सर्वा च पृथिवीं चैव युधिष्ठिर वशानुगाम् । स्थिरोऽस्मि योऽहं जीवामि दुःखादेतद्बवीमिते॥१९॥

अर्थ-हे पिता! मुझे आपसे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि सारी पृथ्वी को युधिष्ठिर के अधीन देखकर जो मैं अव-तक जीवित रहा हूं सो बहुत ही कठोर हूं, और :—

आवर्जिता इवाभान्तिनीपाश्चित्रककोकुराः । कारस्कारा लोहजङ्घा युधिष्ठिरानिवेशने ॥२०॥ हिमवत्सागरानूपा सर्वेरत्नाकरास्तथा । अन्त्याः सर्वे पर्युदस्ता युधिष्ठिर निवेशने ॥२१॥

अर्थ—हे राजन ! याधिष्ठिर के भवन में नीप, चित्रक, कौकुर, कारस्कर और लोहजङ्ख आदि उत्कृष्ट जाति के वृक्ष मानो दास लोगों की भांति सेवा के लिये खड़े हुए हैं, युधिष्ठिर के भवन में इतना धन धान्य है कि हिमालय पर्वत, समुद्री जलपायः प्रदेश तथा भारतवर्धीय सीमान्त के सब रह्नों की कानें और समुद्र यह सब तिरस्कार के साथ दूर फेंके हुए हैं।

ज्येष्ठोऽयमिति मां मत्वा श्रेष्ठश्चेति विशाम्पते । युधिष्ठिरेण सत्कृत्य युक्तो रत्नपरिग्रहे ॥२२॥

उपस्थितानां स्त्रानां श्रेष्ठानामर्घ हारिणाम् । नादृश्यतपरः पारो नापरस्तत्र भारत ॥२३॥ न मे हस्तः समभवद्रस्र तत्प्रातिगृह्णतः । अतिष्ठन्त मिय श्रान्ते गृह्यदूराहृतं वस्र ॥२४॥

अर्थ-हे राजन ! युधिष्ठिर ने मुझे वड़ा और श्रेष्ठ समझकर सत्कार के साथ रत्नों की भेंटे होने के काम पर नियत किया था, भेट देने वालों ने इतने उत्तम २ रत्न भेट में दिये कि मुझे उनका वारापार दिखलाई नहीं दिया, हे भारतीय राजन ! उन रत्नों को होते २ मेरा हाथ काम का न रहा और जब मैं थककर हट गया तब भेट चढ़ाने वाले भी अपना दूर से लाया हुआ धन हेकर चले गये॥

कृतं विन्दुसरो रत्नेमयेन स्फाटिकच्छदाम्। अपरचन्निलिनीं पूर्णामुदकस्येव भारत ॥२५॥ वस्त्रमुत्कर्षति मिय प्राहसत्सवृकोदरः। रात्रोऋद्वि।वेशेषेण विमुदं रत्नवर्जितम्। तत्रसम यदिशक्तःस्यां पातयेहं वृकोदरम् ॥२६॥

अर्थ-हे भारतीय नरेश! सभाभवन में "मय" नामक असुर ने रत्नों द्वारा एक विन्दुसर नामक कमलों वाला तालाव बनाया है जिसका ऊपरी भाग स्फटिक का बना हुआ है, मुझे वह जल से भरा हुआ जान पड़ा और उसमें पार होने के लिये ज्यों ही मैंने अपने वस्त्र उतारे तो भीमसेन ने मेरी इंसी की, देखिये यदि मुझमें कुछ सामर्थ्य होती तो शच्च की सम्पत्ति से मतवाले हुए २ उस रत्नहीन भीमसेन को उसी समय मारडालता॥

यदि कुर्या समारम्भं भीमं हन्तुं नराधिप । शिशुपाल इवास्माकं गतिः स्यान्नात्र संदायः । सपत्नेनावहासो मे स मां दहति भारत ॥२७॥

अर्थ-हे भारतीय नरेश! यदि मैं वहां भीमसेन के मारने का यत करतातो इसमें सन्देह नहीं कि वहां मेरी गति शिशुपाल के समान ही होती, वह शञ्ज की कीहुई हंसी मुझे जला रही है।।

पुनश्च ताहशीमेव वापीं जलजशालिनीम् ।

मत्वा शिलासमां तोये पिततोऽस्मि नराधिप।।२८।।

तत्र मां प्राहसत्कृष्णः पार्थेन सह सुस्वरम् ।

द्रौपदी च सह स्त्रीभिर्व्यथयन्ती मनोमम ।।२९।।

क्रिन्नवस्त्रस्य तु जले किङ्करा राजनोदिताः ।

दर्ज्वासांसि मेऽन्यानि तच्चदुःखं परं मम ।।३०।।

अर्थ-हे राजन ! इसके पश्चाद सभाभवन में कुछ आगे चलकर वैसी ही एक दूसरी सची वावड़ी जो कि कमलों से शो-भायमान थी देखी,जिसको मैंने पहली बावड़ी के समान ही पत्थर की बनी हुई समझा और मैं ज्यों ही उसके ऊपर से चलने लगा कि जल में गिरपड़ा, इस पर कृष्ण और अर्जुन खिलखिलाकर हंसने लगे और द्रौपदी भी सखियों समेत मेरे चित्त को दुःखाने लगी, मेरे सब बस्त्र जल में भीग गये थे उनके बदले राजा युधिष्ठिर की आज्ञा से सेवक लोगों ने मुझे दृसरे वस्त्र दिये,यह मुझे बड़ा ही दुःख पहुंचा है॥

प्रलम्भं च शृणुष्वान्यद्भदतो मे नराधिप । अद्वारेण विनिर्गच्छन्द्वारसंस्थान रूपिणा । अभिहत्य शिलां भूयो ललोटेनास्मि विक्षतः ॥३१॥ तत्र मां यमजौ दूरादालोक्याभिहतं तदा । बाहुभिःपरिगृहणीतां शोचन्ता सहिताबुभौ ॥३२॥

अर्थ-हे राजन ! इतना ही नहीं किन्तु और भी मेरा वहां अपमान किया गया सो भें कहता हूं सुनिय द्वार के आकार वाले बनावटी स्थान से जो वास्तव में द्वार नहीं था, मैं बाहर निकलने लगा और मेरे माथे पर पथरीली दीवार की टक्कर से वड़ी चोट लगी,तब वहां सुझे चोट लगी देखकर नकुल और सहदेव दोनों शोक के साथ दूर से दौड़े आये और मेरी भुजायें पकड़कर मुझे नीचे गिरने से बचाया॥

उवाच सहदेवस्तु तत्र मां विस्मयित्रव । इदं द्वारिमतो गच्छ राजित्रिति पुनः पुनः ॥३३॥ भीमसेनेन तत्रोक्तो धतराष्ट्रासजेति च । संबोध्य प्रहिसत्वा च इतो द्वारं नराधिप ॥३४॥

अथ-हे राजन ! तब सहदेव ने अचम्भे में होकर बार २ कहा कि द्वार इधर है आप इधर से चिछिये "परन्तु मैं फिर आगे न बढ़ा" हे राजन !इतना ही नहीं किन्तु भीमसेन ने इंसकर

महाभारत

संबोधन करके यह भी कहा कि हे धृतराष्ट्र (अन्ये) की सन्तान देख द्वार इधर है॥

नामधेयानि स्त्रानां पुरस्तान्न श्रुतानि मे । यानि दृष्टानि तस्यां मनस्तपति तच्च मे ॥३५॥

अर्थ-हे पिताजी ! पाण्डवों की सम्पत्ति इतनी है कि जितने मैंने वहां रत्न देखे उनके पहले कभी नाम तक नहीं सुने थे, यह बात भी मेरे चित्त को जला रही है ॥

इति त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

दुर्योधन उवाच यन्मया पाण्डवेयानां दृष्टं तच्छृणु भारत । आहृतं भूमिपालैहिं वसुमुख्यं ततस्ततः ॥१॥ नाविदं मृहमात्मानं दृष्ट्वाहं तदरेर्धनम् । फलतो भूमितो वापि प्रतिपद्यस्व भारत ॥२॥

अर्थ-दुर्योधन फिर बोला कि हे भारतवंशी राजन ! पाण्डवों के यहां देश देशान्तरों से आये हुए राजाओं ने जो उत्तमोत्तम रत्न आदि धन भेट किया था वह जहां तक मैंने देखा सो मैं बतलाता हूं आप सुनें-मैंने शत्र का वह धन देखा अवश्य था परन्तु मुझे यह पूर्णतया ज्ञात न हुआ कि उसकी संख्या कितनी थी और वह किस २ देश से लाया गया था तथापि जितना कुछ मुझे ज्ञात हुआ वह आप सुनें :-

और्णान् बैलान् वार्षदंशान् जातरूपपरिष्कृतान् । प्रावाराजिनमुख्यांश्च काम्बोजः प्रददौ बहून् ॥३॥ अश्वांस्तित्तिरिकल्माषांस्त्रिशतं शुकनासिकान् । उष्ट्रवामीस्त्रिशतं च प्रष्टाः पीलुशमींग्रदैः ॥४॥

अर्थ-हे राजन ! काम्बोज देश के राजा ने महाराज युधििटर को ऊनी वस्त्र, विल के चूहों के रोमों से बने हुए वस्त्र,
विल्ली के रोमों से बने हुए वस्त्र तथा सुनहरी कामदार दुशाले,
उत्तम २ मृगचर्म, तीतर जैसे चितकबरे रंग वाले तथा तोते जैसी
नाक वाले तीनसौ घोड़े और पीलु, शमी तथा गोंदनी के खाने
से पुष्ट हुए तीनसौ ऊंट तथा खिचरें भेट दीं, और :—

बिलं च कृत्स्नमादाय मरुकच्छानिवासिनः । उपनिन्युर्महाराज हयान् गान्धारदेशजान् ॥५॥

अर्थ-हे महाराज ! मरुकच्छ के निवासियों ने सब प्रकार की भेट तथा कन्धारी घोड़े भी महाराज युधिष्ठिर की सेवा में अर्पण किये ॥

इन्द्रकृष्टैर्वर्त्तयन्ति धान्यैयंच नदीमुखैः । समुद्रनिष्कुटे जाताः पारे सिन्धु च मानवाः ॥६॥ ते वैरामाः पारदाश्च आभीराः कितवैः सह । विविधं बलिमादाय रत्नानि विविधानि च ॥७॥ अजाविकं गोहिरण्यं खरोष्टं फलजं मधु । कम्बलान् विविधांश्चेव द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः॥८॥

महाभारत

अध-जो मनुष्य वर्षा से खेती करके निर्वाह करते हैं और जो नदी के जल से खेती करते हैं तथा समुद्र के बनों में रहने वाले और सिन्धु के उस पार रहने वाले, यह सब बैराम, पारद, आभीर और कितव जाति के मनुष्य महाराज युधिष्ठिर की भेट के लिये नाना प्रकार के रत तथा अपने २ देश में होने वाली उत्तम २ वकरियें, भेड़, गायें, सुवर्ण, खिचर, ऊंट, फलों से बनने वाला मधु तथा नाना प्रकार के उत्तम कंवल आदि लेकर इन्द्रप्रस्थ में आये परन्तु सभाभवन के द्वार पर इतनी भीड़ थी कि वह लोग वहीं द्वारपरही रोक दिये गये अर्थाद ऐसी २ बस्तुओं को तो वहां पूछता ही कौन था ॥

प्राग्ज्योतिषाधिपः शूरो म्लेच्छानामधिपो बली । यवनैः सहितो राजा भगदत्तो महारथः ॥ ९॥ आजानेयान् हयान् शीघानादायानिलरंहसः । बलिं च कृत्स्नमादाय द्वारि तिष्ठति वारितः । १०॥ अश्मसारमयं भाण्डं शुद्धदन्तत्सरूनसीन् । प्राग्ज्योतिषाधिपो दत्त्वा भगदत्तोऽब्रजत्तदा ॥११॥

अर्थ-देखिये "प्राग्ज्योतिष" देश का महारथी श्रुरवीर बली म्लेच्छराज राजा भगदत्त यवनों को साथ लिये हुए वायु के समान वेगवाले शीघ्रगामी उत्तम जाति के घोड़े तथा अन्य अनेक प्रकार की भेटें लेकर वहां आया परंतु उसकी यह भेट अपर्याप्त समझकर उसे भी द्वार पर ही रोका गया, अन्त में प्राग्ज्योतिषनरेश राजा भगदत्त ने अञ्चमसार=नीलम तथा मणियों का बड़ा धन और शुद्ध हाथीदांत की मूठ वाली तलवारें भेट दीं तब उसे सभाभवन में प्रवेश मिला ॥

राजानो बिलमादाय नानावर्णाननेकशः।
कृष्णश्रीवान् महाकायात्रासभान् दूरपातिनः।।१२॥
आजहुर्दशसाहस्रान् विनीतान् दिश्चविश्वतान्।
प्रमाणरागसंपन्नान् वंक्रतीरसमुद्रवान्।। १३॥
बल्यर्थं ददतस्तस्मै हिरण्यं रजतं बहु।
दत्त्वा प्रवेशं प्राप्तास्ते युधिष्ठिरानिवेशने।। १४॥

अर्थ-हे राजन ! बहुत से राजा छोग भेट के छिये रंग विरंगे अनेक "रासभ" जाति के घोड़े छेकर आये जिनके बड़े २ शरीर तथा काछी गर्दन थी और वह बहुत दूर तक चल सकते थे, वह अच्छे सिखाये हुए पृथ्वी पर विख्यात थे और उनके शरीर पर यथोचित प्रमाण से राग=लाली भी थी, इस प्रकार के वंक्र नामक नदी के किनारे पर होने वाले दशहज़ार घोड़े तथा बहुतसा सोना चांदी भेट में देने पर उन राजाओं को युधिष्ठिर के सभाभवन में प्रवेश मिला, और :-

चीनान् शकांस्तथाओड़ान् वर्वरान् वनवासिनः । वार्ष्णयान् हारहूणांश्च कृष्णान् हैमवतांस्तथा । नीपानूपानधिगतान् विविधान्द्वारिवारितान् ॥१५॥

अर्थ-हे राजन ! केवल यही नहीं चीन तथा शक जाति के लोग, उड़िया के रहने वाले, वर्बर प्रान्त के निवासी, वनवासी. वृष्णिवंशी, हारहूण जाति के मनुष्य, काले मनुष्य, हिमालय के रहने वाले पहाड़ी, नीप और अनूप मान्त के रहने वाले इत्यादि बद्भत प्रकार के मनुष्यों को भैंने द्वार पर रोके गये देखा ॥ बल्यर्थं ददतस्तस्य नानारूपाननेकशः। कृष्णग्रीवान् महाकायात्रासभान् शतपातिनः ॥१६॥ अहार्षेर्दशसाहसान् विनीतान् दिश्चं विश्वतान्। प्रमाणरागसम्पन्नान् वङ्कृतीर निवासिनः ॥९७॥ और्ण च राङ्कवं चैव कीटजं पट्टजं तथा। कुटीकृतं तथैवात्र कमलाभं सहस्रशः ॥ १८॥ श्लक्ष्णं वस्त्रमकार्पासमाविकं मृदु चाजिनम । निशितांश्चेव दीर्घासीनृष्टिशिक्तपरखधान् ॥१९॥ अपरान्तसमुद्भतांस्तथैव परश्रूच शिताच् । रसान् गन्धांश्च विविधान् रत्नानि चसहस्रशः॥२०॥

अर्थ-हे राजन ! तब मैंने देखा कि उन राजाओं ने महा-राज युधिष्ठिर की भेट के निमित्त भिन्न २ रंग के अनेक "रासम" नामक धोड़े दिये जिनकी काली गर्दन, बड़े २ शरीर और जो सौ योजन तक दौड़ सकते थे, इनके अतिरिक्त बंक्रुनदी के तीर पर होने वाले, दिशाओं में विख्यात, मुशिक्षित तथा यथोचित लाल रंग से शोभित दशहज़ार घोड़े और भी उन्होंने दिये, केवल यही नहीं ऊनी वस्त्र, मृग के रोमों, कीड़े से पट्टी और कुट्टी से बनने वाले वस्त्र जो कमल के समान शोभायमान थे, और कपास से भिन्न वस्तुओं के बने हुए कोमल वस्त्र तथा भेड़ की ऊन और मृगचर्म के वस्त्र भी सहस्रों भेट में दिये गये, इनके अतिरिक्त वड़ी २ तेज़ तलवारें, ऋषि शस्त्र, शक्ति शस्त्र, परसे तथा पश्चिम के अन्त में वनने वाले तेज़ परसे यह सब शस्त्र और नाना प्रकार के रसीले तथा गन्धयुक्त पदार्थ और हज़ारों रत्न भी उन्होंने भेट में दिये॥

बलिं च कुत्स्नमादाय द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः । शकास्तुषाराः कङ्काश्च रोमाश्च शृङ्गिणो नराः॥२१॥ महागजान् दूरगमान् गणितानर्वदान्हयान् शतराश्चेव बहुशः सवर्णं पद्मसंमितम् ॥२२॥ बलिमादाय विविधं द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः। आसनानि महार्हाणि यानानि रायनानि च।।२३।। मणिकाञ्चनित्राणि गजदन्त मयानि च। कवचानि विचित्राणि शस्त्राणि विविधानि च ॥२४॥ रथांश्च विविधाकारान् जातरूपपरिष्कृतान् । हयेर्विनीतेः सम्पन्नान् वैयाघपरिवारितान् ॥२५॥ विचित्रांश्च परिस्तोमान् रत्नानि विविधानि च । नाराचानर्द्धनाराचान् शस्त्राणि विविधानि च ॥२६॥ एतइत्त्वा महदुद्रव्यं पूर्वदेशाधिपा नृपाः । प्रविष्टा यज्ञसद्नं पाण्डवस्य महात्मनः ॥२७॥ अर्थ-हे राजन ! मैंने शक. तुपार, कंक, रोम और शृङ्गी जाति के राजा लोगों को भी सब प्रकार की भेट लिये हुए द्वार

पर रोके गये देला, वह लोग दूर २ जाने वाले बड़े २ हाथी, अनेक घोड़े, एक पद्म भांति २ की सोने की मोहरें, भेट के लिये लाये थे और अन्य राजा लोग भी नाना प्रकार की भेटें लेकर आये किन्तु द्वार पर रुके हुए खड़े रहे, जैसे कि बहुमूल्य आतन, सवारियें, सेज जो मणि और छुवर्ण से चित्रित किये हुए तथा हाथी दांत के बने हुए थे और विचित्र प्रकार के कवच, नाना प्रकार के शस्त्र, अनेक आकार और सुवर्ण से अलङ्कृत रथ जिनमें सिखाये हुए घोड़े जुते हुए थे और जो भेड़िये की खाल से मढ़े हुए थे, विचित्र प्रकार की हाथियों की झलें तथा नाना भांति के रत्न, लोहे के बाण, अथलेंहे के बाण और विविध प्रकार के शशा, यह सब महान धन भेट में देने पर पूर्वदेश के राजा लोग महात्मा पाण्डुपुत्र महाराज युधिष्ठिर के यजभवन में प्रविष्ट होने पाये थे।

इति एकत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ दात्रिंशोऽध्यायः प्रारभ्यते

दुर्योधन उवाच

दायन्तु विविधं तस्मै शृणुमेगदतोऽनघ । यज्ञार्थं राजभिर्दत्तं महान्तं धनसंचयम् ॥१॥

अर्थ-दुर्योधन फिर बोला कि हे निष्पाप! उक्त लोगों के अतिरिक्त जिन २ राजाओं ने युधिष्टिर के यज्ञ में बड़ा भारी करक्ष जो २ धन दिया उसका भी वृतान्त कहता हूं आप सुनें :— पारदाश्च कुलिंदाश्च तंगणाः परतंगणाः ॥२॥

मेरुमंदरयोर्भध्ये शैलोदामाभितो नदीं ।

येते कीचक वेणूनां छायां रम्यामुपासते ॥३॥

तेद्विपिपितिकं नाम उद्धतं यत् पिपिलकेः ।

जातरूपं द्रोणमेय महार्षः पुंजशोनुपाः ॥४॥

कृष्णान् ललामांश्चमरान् शुक्कांश्चान्यान् शिष्पमान् ।

हिमवत्पुष्पंज चैव स्वादुक्षोंद्रं तथा बहु ॥५॥

उत्तरेभ्यः कुरुभ्यश्चाप्यपोदं माल्यमं कुभिः ।

उत्तरादिप केलासादोषधीः सुमहाचलाः ॥६॥

पार्वतीया विलं चान्यमाहृत्य प्रणताः स्थिताः ।

अजातशत्रोर्नृपतेर्द्वारि तिष्ठान्त वारिताः ॥७॥

अर्थ-खस, एकासन, अई,पदर,दीर्घवेण,पारद,कुलिन्द,तंगण
तथा परतंगण नामक पहाड़ी देशों के असंख्य राजा लोग जो मेर
और मंदर पर्वतों के बीच शैलोदा नदी के तट पर कीचक अर्थात
गूंजने वाले बांसों के बृक्षों की सुहावनी छाया में बसते हैं वह सब
नम्रतापूर्वक युधिव्छिर को भेट देने के लिये एक द्रोण,
पिपीलक जाति का सुवर्ण और काले तथा शुक्त रंग के सुन्दर
चमर जिनका प्रकाश चन्द्रमा के समान था, हिमालय पर्वत
के पुष्पों का स्वादिष्ट मधु=शहद, उत्तरी कुरु प्रान्त के जल में
उमे हुए फूल, कैलाश पर्वत के उत्तर ओर की बड़ी बलकारक

ओषियां और अन्यान्य अनेक प्रकार के पर्वतीय पदार्थों की भेटें लेकर आये किन्तु द्वार पर ही रोके जाने के कारण वह सब पदार्थ लिये हुए वहीं खड़े रहे॥

ये परार्धे हिमवतः स्योदयगिरौ नृपाः। कारूपे च समुद्रांते लौहित्यमभितश्च ये।।८॥ फलमूलाशनायेच किराताश्चर्मवाससः। क्रुरशस्त्राः क्रुरकृतस्तांश्च पश्याम्यहं प्रभो।।९॥

अर्थ-हे राजन ! हिमालय पर्वत के पूर्वी अर्द्धभाग अर्थात उदयाचल में तथा समुद्री पान्त के कारूपदेश और लौहित्य नदी के आसपास रहने वाले राजा लोग जो फल मूल खाते, चमड़े के वस्त्र पहिनते और क्रूरशस्त्रधारी तथा क्रूरकर्मा कहलाते हैं उनको भी मैंने देखा कि :—

चन्दनायुरुकाष्ठानां भारान्कालीयकस्य च ।
चर्मरत्नसुवर्णानां गंधानां चैव राशयः ॥१०॥
केरातकीनामयुतं दासीनां च विशाम्पते ।
आहृत्यरमणीयार्थान दूरजान्मृग पक्षिणः ॥११॥
नीचितं पर्वतेभ्यश्च हिरण्यं भूरिवर्चसं ।
बिलें च कुरस्नमाद्य द्वारि तिष्ठिन्ति वारिताः ॥१२॥
अर्थ-वह चन्दन, अगर, काला अगर आदि काष्ठों के भार तथा चर्म, रत्न, सुवर्ण, अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ और रे राजन ! किरातों की दशसहस्र दासियां, दूर २ के मृग, पक्षी, पर्वतों की कानों से इकद्वा किया हुआ चमकता हुआ सुवर्ण,

तथा अन्य अनेक प्रकार के रमणीक पर्वतीय पदार्थों की भेट लिये हुए पहाड़ी राजे युधिष्ठिर केंद्रार पर रोकेंहुए खड़े थे, औरः-

केराता दरदा दर्वाः श्रूरा वैयमकास्तथा।
ओदुंवरा दुर्विभागाः पारदा वाहिलकैः सह ॥१३॥
काश्मीराश्च क्रमाराश्च घोरका हंसकायनाः।
शिवित्रिगर्त्तयौधेया राजन्या मद्रकेकयाः ॥१४॥
अंबष्ठाः कोकुरास्ताक्ष्यी वस्त्रपाः पहलवैः सह।
वशातश्च मौलेयाः सहश्चद्रकमालवैः॥ १५॥
पौद्रिकाः कुक्कुराश्चेव शकाश्चेव विशापते।
अगावंगाश्च पुंडाश्च शाणवत्या गयास्तथा॥१६॥
सुजातयः श्रेणिमंतः श्रेयांसः शस्त्रधारिणः।
अहार्षुः क्षत्रियावित्तं शतशोऽजातशत्रवे॥१७॥

अर्थ-हे राजन ! कैरात, दरद, दर्व, शूर, वैयमक, औदुम्बर, दुर्विभाग, पारद, वाह्लिक, काश्मीर, कुमार, घोरक, हंस-कायन, शिबि, त्रिगर्त्त,यौधेय, मद्र, कैकेय, अम्बष्ट, कौकुर, तार्क्य, वस्त्रप, पह्लव, वशाति, मौलेय, श्चद्रक, मालव, पौंडिक, कुक्कुर, शक, अंग, बंग, पुंड्र, शाणवत्य तथा गय आदि देशों के कुलीन और शस्त्रधारी योग्य क्षत्रियों ने सैकड़ों प्रकार के धन यह में युधिष्टिर को भेट किये ॥

वंगाः कर्लिगा मगधास्ताप्रिताः सपुंड्काः । दौवालिकाः सागरकाः पत्रोणीः शैशवास्तथा॥१८॥ कर्णप्रावरणाश्चेव बहवस्तत्र भारत । तत्रस्था द्वारपालेस्ते प्रोच्यन्ते राजशासनात् । कृतकालाः सुबलयस्ततो द्वारमवाप्स्यध् ॥१९॥ ईषादन्तान् हेमकक्षान् पद्मवर्णान् क्रथावृतान् । है।लाभानित्यमत्तांश्चाप्यभितः काम्यकंसरः ॥२०॥ दत्वेकैको दशशतान् कंजरान् कवचावृतान् । क्षमावन्तः कुलीनाश्च द्वारेण प्राविशंस्तथा ॥२१॥

अर्थ-हे राजन ! वंगाल, कलिंग, मगध, ताम्रलिप्त, पुंड्रक, दीवालिक, सागरक, पत्रौर्ण, रीशाव, कर्ण और मावरण आदि देशों के बहुतसे राजा युधिष्ठिर के द्वार पर आकर खड़े रहे, पुनः युधिष्ठिर ने उन सबको एक २ कर द्वारपालों से बुलवाया और वह लोग अपने २ अवसर पर एक २ सहस्र हाथी जिनके बड़े दांत और जो सुनहरी डोरियों से कसे हुए तथा कमल के समान रंग वाली झलों से सुशोभित, पहाड़ के समान ऊंचे और सदा मतवाले हाथी जो "काम्यकसर" के समीपवर्ती देश के थे और जिनपर कवच पड़े हुए थे उनको भेट दे २ कर वह क्षमाशील कुलीन राजालोग सभा के भीतर गये॥

एते चान्ये च बहवो गणा दिग्भ्यः समागताः । अन्येश्वोपाहतान्यत्र रत्नानीह महात्मिभः ॥२२॥ राजा चित्ररथो नाम गन्धर्वो वासवानुगः । शतानि चत्वार्यददद्धयानां वातरंहसाम् ॥२३॥ अर्थ-इनके अतिरिक्त और भी बहुत देश देशान्तरों से आये हुए महात्मा राजाओं ने युधिष्टिर को रत्नों की भेटें दीं, और चित्रस्थ नाम गन्धर्वों के राजा ने जो इन्द्र का अनुयायी है, वायु के समान वेगवाले चारसहस्र घोड़े भेट किये॥

तुंबुरुस्तु प्रमुदितो गन्धवी वाजिनां शतम् । आम्रपत्रसवणीनामदद्धेममालिनाम् ॥२४॥ कृती राजा च कौरव्य श्रकराणां विशापते । अददद्गजरतानां शतानि सुबहून्यथ ॥२५॥

अर्थ-तुंबुरु नामक गन्धर्व ने सौ घोड़े जिनका रंग आम के पत्तों के समान और जिनके गले में एक २ सोने का हार पड़ा हुआ था प्रसन्नता से युधिष्टिर को भेट किये और हे राजन ! शुकर देश के बुद्धिमान राजा ने कई सौ उत्तम हाथी अर्पण किये ॥

विराटेन तु मत्स्येन बल्यर्थ हेममालिनाम् । कंजराणां सहस्रे दे मत्तानां समुपाहते ॥२६॥ पांशुराष्ट्राद्वसुदानो राजा षड्विंशतिं गजान् । अश्वानां च सहस्रे देराजन्कांचनमालिनाम् ॥२७॥ जवसत्वोपपन्नानां वयस्थानां नराधिप । बलिं च कृत्स्नमादाय पाण्डवेभ्यो न्यवेदयत् ॥२८॥

अर्थ-हे राजन ! विराट और मत्स्य देश के राजाओं ने एक २ सहस्र मतवाले हाथी जिनके गले में सोने की माला पड़ी हुई थीं महाराज युधिष्टिर को भेट देकर प्रसन्न किया और

महाभारत

पांश्व देश के वसुदान नामक राजा ने छन्वीस हाथी और कांचन की मालाओं से सुशोभित दो सहस्र घोड़े जो जवान, बलवान् और शीघगामी थे पाण्डवों को भेट किये॥

यज्ञसेनेन दासीनां सहस्राणि चतुर्दश ।
दासानामयुतं चैव सदाराणां विशांपते ॥२९॥
गजयुक्ता महाराज रथाः षड्विंशतिस्तथा ।
राज्यं च कृत्सं पार्थेभ्यो यज्ञार्थं वै निवेदितम्॥३०॥
वास्तदेवोपि वार्ष्णयो मानं कुर्वन् किरीटिनः ।
अददद्गजसुख्यानां सहस्राणि चतुर्दश ॥३१॥
आत्मा हि कृष्णः पार्थस्य कृष्णस्यात्मा धनंजयः।
यद्भ्यादर्जनः कृष्णं सर्वं क्यीदसंशयम् ॥३२॥
कृष्णो धनजयस्यार्थे स्वर्गलोकमपि त्यजेत् ।
तथैव पार्थः कृष्णार्थे प्राणानपि परित्यजेत् ॥३३॥

अर्थ-है राजन ! उस यह में राजा हुपद ने चारसहस्र दासी, दश सहस्र दास जिनके स्त्रियां भी थीं, और दाथियों से जुते हुए छव्वीस रथ युधिष्ठिर को भेट किये और कहा कि पाण्डवों के इस यह के निमित्त में अपना सब राज्य देता हूं, और अर्जुन का मान रखने के लिये श्रीकृष्ण ने भी चौदह सहस्र हाथी दिये, क्योंकि कृष्ण और अर्जुन परस्पर एक दूसरे की आत्मा होने के कारण आपस में माणों से अधिक मीति रखते हैं, और इसमें संदेह नहीं कि अर्जुन कृष्ण में को काम कहे वह करने को तैय्यार हैं, अर्जुन के

सभापवे-द्वात्रिशाध्याय

986

लिये कृष्ण स्वर्ग भी छोड़ सक्ते हैं और अर्जुन भी उनके अर्थ पाण देने को उद्यत है॥

सुरभींश्चन्दनरसान् हेमकुंभसमास्थितान् । मलयाद्दुराचैव चन्दनायुरुसंचयान् । मणिरत्नानि भास्वंति कांचनं सूक्ष्मवस्त्रकम् ॥३४॥

अर्थ-मलयगिरि और दर्दुर पर रहने वाले क्षत्रियों ने सुगन्धित चन्दन के रसों से भरे हुए सुवर्ण के कलश,चन्दन और अगर के भार, प्रकाशयुक्त मणि,सुवर्ण तथा सुन्दर सुक्ष्म=महीन वस्त्र युधिष्ठिर को भेट किये, और :-

चोलपांड्याविष द्वारं न लेभाते ह्युपस्थितौ । समुद्रसारं वैदूर्य मुक्तासंघांस्तथैव च ॥ ३५ ॥ शतशक्त्व कुथांस्तत्र सिंहलाः समुपाहरन् । संवृतामणिचीरेस्तु श्यामास्ताम्रांतलोचनाः । ता गृहीत्वा नरास्तत्र द्वारि तिष्ठन्ति वारिताः॥३६॥

अर्थ-चोल तथा पांड्य देश के राजे द्वार पर भी न पहुंचने पाये और सिंहलदेश के क्षत्रियों ने समुद्र में उत्पन्न होने वाली चीज़ें वैद्र्यमणि, मोतियों के ढेर, सैकड़ों झूलें भेट की तथा अन्य लोग मणि और मुन्दर वस्त्र धारण कीहुई दासियां लाकर द्वार पर ही खड़े रहे॥

प्रीत्यर्थं ब्राह्मणाश्चैव क्षत्रियाश्च विनिर्जिताः । उपाजहुर्विशश्चैव श्रद्धाः श्रश्रूषवस्तथा ॥ ३७॥ प्रीत्या च बहुमानाचाप्युपागच्छन्युधिष्ठिरम् । सर्वे म्लेच्छाः सर्ववर्णा आदिमध्यान्तजास्तथा ॥३८॥ अर्थ-युधिष्ठिर की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मण, अधीन हुए

अथ-याधाष्टर का मसलता का लिय मालता, वा तर कुर कि सित्रय, वैश्य और सेवक श्रूदों ने भी भेट दीं तथा सब म्लेख और उत्तम मध्यम अधम सब वर्ण, मीति और मानपूर्वक युधिष्टिर

को आकर प्राप्त हुए।।

नानादेशसमुत्थेश्च नानाजातिभिरेव च । पर्यस्त इव लोकोयं युधिष्ठिरानिवेशने ॥३९॥ उच्चावचानुपग्राहान् राजभिः प्रापितान् बहून्। शत्रूणां पश्यतो दुःखान्मुमूर्षा मे व्यजायत । भृत्यास्तु ये पाण्डवानां तांस्ते वक्ष्यामि पार्थिव ॥४०॥

अर्थ-नाना देशों तथा नाना जाति के मनुष्य और उत्तमोत्तम पदार्थ उस यह में आये जिनके आने से युधिष्ठिर का वह यहस्थान एक छोटे ब्रह्माण्ड के तुल्य होगया था, मेरे शच्च पाण्डवों के छिये उन छोगों और राजाओं की छाई हुई नाना मकार की असंख्य भेटों को देखकर दुःख से मेरे मन में माणत्याग की इच्छा होगई थी, हे राजन ! में आपसे युधिष्ठिर का वैभव कहां तक कहूं, कुछ उनके दासों का भी वर्णन करता हूं, आप सुनें :-

येषामामं च पक्वं च संविधत्ते युधिष्ठिरः । अयुतं त्रीणि पद्मानि गजारोहाः ससादिनः ॥४१॥ रथानामर्बुदं चापि पादाता बहवस्तथा । प्रमीयमाणमामं च पच्यमानं तथैव च ॥ ४२ ॥ विसृज्यमानं चान्यत्र पुरण्याह स्वन एव च । अपश्यं सर्ववर्णान^{ां} युधिष्ठिरनिवेशने । नाभुक्तवन्तं नापीतं नालंकृतमसत्कृतम् ॥ ४३॥

अर्थ-युधिष्टिर के यहां तीन पद्म और दश सहस्र तो केवल हाथी और घोड़ों पर नियत रहने वाले दास हैं जिनको वह कचा और पक्का दोनों प्रकार का भोजन देता है, और एक अर्धुद=दस करोड़ रथ तथा अनिगनत प्यादे हैं, जिनके भोजन का प्रवन्ध यह है कि तुला हुआ अन्न=भीधे, पक्क भोजन एक स्थान पर इकद्वा किया हुआ रहता है, और दृसरे स्थान में उन लोगों को अन्न मिलता है, अन्न के वांटने समय "पुण्याह" शब्द किया जाता है, मैंने वहां किसी वर्ण के किसी आदमी को ऐसा नहीं देखां जिसने भोजन और पान न किया हो अथवा जो सत्कृत और अलंकृत न हो ॥

अष्टाशीति सहस्राणि स्नातका गृहमेधिनः । त्रिंशहासीकएकैको यान् विभक्ति युधिष्ठिरः । सुप्रीताः परितुष्टाश्च ते ह्यारांसंत्यरिक्षयम् ॥ ४४ ॥

अर्थ-युधिष्टिर अटासीसहस्र स्नातक गृहस्य ब्राह्मणों को नित्य भोजन देता है और उसने प्रत्येक की सेवा के छिये तीस२ दासी नियत कर रखी हैं, वह ब्राह्मण भोजन करके नित्य युधिष्ठिर को शञ्चनाश होने का आशीर्बाद देते हैं, और:—

दशान्यानि सहस्राणि यतीनामूर्ध्वरेतसाम् । भुजते रुक्मपात्रीभिर्श्विधिष्ठरिनवेशने ॥४५॥

अभुक्तं भुक्तवद्वापि सर्वमाकुब्जवामनम् । अभुंजाना याज्ञसेनी प्रत्यवैक्षद्विशांपते ॥४६॥ द्वौ करो न प्रयच्छेतां कुन्तीपुत्राय भारत । सांबन्धिकेन पांचालाः सख्येनांधकवृष्णयः ॥४७॥

अर्थ-दशसहस्र ऊर्घरेता यती लोग युधिष्ठिर के घर में नित्यमित सुवर्ण के पात्रों में भोजन करते हैं, हे राजन ! और द्रौपदी अच्छे मनुष्यों से लगाकर कुवड़े, वामन आदि दीन मनुष्यों तक के भोजन करने न करने की ख़बर रखती तथा जब-तक वह सब भोजन नहीं करलेते तबतक आप भोजन नहीं करती है, यह में ऐसा कोई राजा न था जिसने युधिष्ठिर को "कर" न दिया हो, हां पश्चालनरेश राजा दुपद ने सम्बन्ध और यदु-वंशी कृष्ण ने मित्रता के कारण "कर" नहीं दिया ॥

इति दात्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रयस्त्रिशोऽध्यायः प्रारभ्यते

सं ० – अब दुर्योधन राजाधृतराष्ट्र से युधिष्ठिर के अभिषेक का वर्णन करता है :-

दुर्योधन उवाच

आर्यास्तु ये वै राजानः सत्यसंधा महावताः। पर्याप्तिवद्यावकारो वेदान्तावभृथप्छुताः ॥१॥ धृतिमन्तो द्वीनिषेवाधर्मात्मानो यशस्विनः। मूर्याभिषिकास्ते वैनं राजानः पर्युपासते ॥२॥ दक्षिणार्थं समानीता राजिभः कांस्यदोहनाः । आरण्या बहुसाहस्रा अपस्यंस्तत्र तत्रगाः ॥३॥ आजहुस्तत्र मत्कृत्य स्वयमुद्यम्य भारत । अभिषेकार्थमञ्यग्राभांडमुचावचं नृपाः ॥४॥

अथ-दुर्योधन बोला कि हे पिता! अनेक आर्य=श्रेष्ठ राजा लोग जो सत्यमित्र, महाब्रती,पूर्ण विद्वान और वेदान्तरूपी यज्ञ के अवभ्रथ स्नान किये हुए,धृतिमान,शील्वान,धर्मात्मा,यशस्त्री,मूर्धाभि-षिक्त = राज्यतिलक माप्त किये हुए श्रित्रय लोग महाराज युधिष्ठिर की सेवा करते और मैंने उनको दाक्षणा में देने के लिये कांसी की दोहनी, बन की सहस्रों गौ तथा अभिषेक के लिये सत्कारपूर्वक स्वयं उठाकर छोटे बड़े पात्र लाते और उन्हें प्रसन्नता से युधिष्ठिर को भेट करते हुए देखा है ॥

बाह्लीको रथमाहार्षीञ्जांबूनदिवभूषितम् । सुदक्षिणस्तु युयुजे खेतैः कांबोजजैईयैः ॥५॥ सुनीथः प्रीतिमांश्चेवह्यनुकर्षं महाबलः । ध्वजं चेदिपतिश्चेव महार्षीत्स्वयसुद्यतम् ॥६॥

अर्थ-राजा बाह्णीक ने अभिषेक के लिये सुवर्ण से भूषित रथ भेट किया,राजा सुदक्षिण उस रथ में जोतने के लिये काम्बोज देश के श्वेत घोड़े लाया, बलवान राजा सुनीथ प्रीतिपूर्वक अनु-कर्ष अर्थात रथ के नीचे का काष्ठ लेकर आया तथा चन्देरी नरेश ने स्वयं अपने हाथ से ध्वजा लाकर दी, और :— दाक्षिणात्यः सन्नहनं सग्रष्णीषे च मागधः । वसुदानो महेश्वासो गजेन्द्रं पष्टिहायनम् ॥७॥ मत्स्यस्त्वक्षान हेमनद्धानेकलव्य उपानहो । आवंत्यस्त्वभिषेकार्थमापो बहुविधास्तथा ॥८॥ चेकितान उपासंगन्धनुः काश्य उपाहरत् । असिं च सुत्सरुंशल्यः शैक्यं कांचनभूषणम् ॥९॥

अर्थ-दक्षिणात्य अर्थात् दक्षिण देश के राजा ने कवच, मगध देश के राजा ने माला तथा पगड़ी, बड़े २ वाण चलाने वाले राजा वसुदान ने साठ वर्ष का हाथी, राजा मत्स्य ने धन से भरे हुए छकड़े, एकलन्य ने जूते, अवन्ती = उज्जैन के राजा ने अभिषेक के लिये अनेक प्रकार के जल, राजा चिकितान ने निषंग = तरकस, काशीनरेश ने धनुष, राजा शल्य ने सुन्दर मूंठ वाली एक तलवार और शिक्य=सिक्क के पात्र पर रक्खे हुए सुनहरी आभूषण अपने हाथों से राजा युधिष्ठिर को भेट किये॥

अभ्यिषंचत्ततो धौम्यो व्यासश्च सुमहातपाः । नारदं च पुरस्कृत्य देवलं चासितं सुनिम् ॥ १० ॥ भीतिमंत उपातिष्ठन्नभिषेकं महर्षयः । जामदग्न्येन सहितास्तथान्ये वेदपारगाः ॥ ११ ॥ अभिजग्मुर्महात्मानो मंत्रवद्भृरिदक्षिणम् । महेन्द्रमिव देवेन्द्रं दिवि सप्तर्षयो यथा ॥ १२ ॥ अर्थ-तदनन्तर महातपस्ती व्यासजीसाहत धौम्य ऋषि ने युधिष्ठिर का वेदमन्त्रों से अभिषेक कराया, उस समय उस वड़ी दक्षिणा वाले युधिष्ठिर के सन्मुख देवल, असित, परश्चराम और अन्य वड़े २ महात्मा वेदपारगामी तपस्वी ऋषि प्रसन्न हुए २ इस प्रकार आकर खड़े रहे मानो स्वर्ग में महेन्द्र के समीप सप्तऋषि खड़े हुए हैं॥

अधारयच्छत्रमस्य सात्यिकः सत्यिवक्रमः । धनंजयश्च व्यजने भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ १३ ॥ चामरे चापि शुद्धे दे यमो जगृहतुस्तथा । उपागृह्णाद्यमिन्द्राय पुराकल्पे प्रजापितः ॥ १४ ॥ तमस्मै शंखमाहाषींद्र वारुणं कलशोदिधः । तेनाभिषिकः कृष्णेन तत्र मे कश्मलोऽभवत् ॥१५॥

अर्थ-अभिषेक के समय पराक्रमी सात्यिक ने युधिष्ठिर के जपर छत्र लगाया, अर्जुन तथा भीमसेन पंखा करते और नकुल तथा सहदेव चमर होरते थे, और जिस बारुण नामक शंख को पूर्वकाल में राजा प्रजापित ने इन्द्र को दिया था उससे जल ले २ कर व्यासजी ने युधिष्ठिर का अभिषेक कराया, है पिता! यह सब देखकर मुझे बड़ा भारी दुःख हुआ ॥

तत्रसम द्भ्मः शतशः शंखान्मंगलकारकान् । प्राणदन्त समाध्मातास्ततो रोमाणि मेऽहृषन् । प्रापतन् भूमिपालाश्च ये तु हीनाः स्वतेजसा ॥१६॥

अर्थ-तदनन्तर वहां पर जो सबने मिलकर वहें बलपूर्वक मङ्गलकारी शंखध्विन की उसको सुनते ही मेरे रोम खड़े होगये और उस समय अन्य वेजहीन राजा भी मूर्जित होकर निर्पड़े. और:- घृष्टद्युम्नः पाण्डवारच सात्याकः केशवोऽष्टमः । सत्वस्था वीर्घ्यसम्पन्ना ह्यन्योन्य प्रियदर्शनाः । विसंज्ञान् भूमिपान् दृष्ट्वामांच ते प्राहसंस्तदा॥१७॥

अर्थ-षृष्टद्युम्न, पांचो पाण्डव, सात्यिक तथा कृष्ण यह आठो प्रसन्नचित्त, उत्साहपूर्ण हुए २ आपस में एक दूसरे को पेम से देखते थे, और मेरी तथा उन गिरे हुए राजाओं की गति देख-कर यह लोग हंसने लगे॥

ततः प्रहष्टो बीभत्सः प्रादाद्धेम विषाणिनाम् । शतान्यनड्हां पंच द्विजमुख्येषु भारत । न रंतिदेवो नाभागो योवनाक्ष्वो मनुर्नेच ॥ १९ ॥ नच राजा पृथुर्वेन्यो नचाप्यासीद्र भगीरथः । ययार्तिनहुषो वापि यथा राजा युधिष्ठिरः ॥ २० ॥

अर्थ-तत्पश्चात अर्जुन ने हर्ष में भरकर पांचसो बैल जिनके सींग सुवर्ण से मढ़े हुए थे उत्तम ब्राह्मणों को दान दिये, हे पिता ! राजा रन्तिदेव, नाभाग, यौवनाक्व, मनु, पृथु, बैन्य, भगीरथ, यसाति और नहुष भी युधिष्ठिर की बराबरी नहीं करसक्ते॥

यथातिमात्रं कौन्तेयः श्रिया परमयायुतः । राजसूयमवाप्यैवं हरिश्चन्द्र इव प्रभुः ॥ २१ ॥ एतां दृष्ट्वा श्रियं पार्थे हरिश्चन्द्रे यथाविमो । कथं तु जीवितं श्रेयो मम पश्यिस भारत ॥ २२ ॥

सभापर्व-चतुर्स्त्रिशाध्याय

७५७

अर्थ-अधिक क्या कहूं, युथिपिर की वही हुई राज्यलक्ष्मी और यह राजस्वयक राजा हरिश्चन्द्र के समान है, हे राजन ! इसको देखकर तुम्हें मेरा जीना कैसे अच्छा जानपड़ता है ॥ अधिनेव युगं नद्धं विपर्यस्तं नराधिप । कनीयांसो विवर्द्धन्ते ज्येष्ठाहीयंत एव च ॥२३॥ एवं हष्ट्वा नाभिविंदािम दार्म समीक्ष-माणोपि कुरुप्रवीर । तेनाहमेवं कुशतां गतक्च विवर्णतां चैव सशोकतां च ॥ २४॥

अर्थ-हे राजन! विधाता ने यह द्वापर युग अन्धों की भांति जलटा बनाया है, इसीकारण इसमें विपरीत वार्ते होती हैं, बड़े घटते जाते और छोटे बड़े होरहे हैं, सो हे पिता! इसी कारण मेरा चित्त स्वस्थ नहीं रहता और मैं चिन्ताग्रस्त दुर्घल होकर ही पीला पड़गया हूं॥

इति त्रयस्त्रिशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुस्त्रिशोऽध्यायः प्रारभ्यते

सं ० - अब धृतराष्ट्र का दुर्योधन को उपदेश कथन करते हैं:-

धृतराष्ट्र उत्ताच त्वं वै ज्येष्ठो ज्येष्ठिनेयः पुत्रपाण्डवान् द्विषः । देष्टाह्यसुलमादत्ते यथैव निधनं तथा ॥१॥ अञ्युत्पन्नं समानार्थं तुल्यामत्रं स्विष्टिरम् । अद्विषंतं कथं द्विष्यात्त्वाहरो भरतर्षम ॥२॥

महाभारत

अर्थ-धृतराष्ट्र बोला कि हे पुत्र दुर्योधन! निस्सन्देह त् ज्येष्ठ और प्रशंसा के योग्य है, परन्तु त् पाण्डवों से द्वेष न कर, क्योंकि द्वेष करने वाले को मरने के समान दुःख होता है, युधि-ष्ठिर सीधा,समदृष्टि और निष्कपट पुरुष है वह तुझसे कुछ द्वेष नहीं रखता फिर त् ऐसा योग्य होकर उससे क्यों द्वेष करता है॥

तुल्याभिजनवीर्यश्च कथं श्रातः श्रियं नृप ।
पुत्र कामयसेमोहान्मैवभूः शाम्यमाश्चनः ॥३॥
अथ यज्ञविभूतिं तां कांक्षसे भरतर्षभ ।
ऋत्विजस्तव तन्वन्तु सप्ततंन्तु महाध्वरम् ॥४॥
आहरिष्यन्ति राजानस्तवापि विपुलंधनम् ।
प्रीत्या च बहुमानाच रत्नान्याभरणानि च ॥५॥

अर्थ-हे पुत्र ! त बल और कुलीनता में युधिष्ठिर के ही समान है, तुझको उसकी संपत्ति हरण करने की इच्छा करना जिन नहीं, तेरा पराक्रम तथा कुल उससे कुछ अधिक नहीं फिर त् क्यों मोहबश होकर भाई की लक्ष्मी को लेना चाहता है, अतएव त् शान्त हो और शोक को छोड़दे, यदि तेरी इच्छा यह का उत्सव करने की होतो त भी अपने ऋत्विजों को बुला-कर "सप्ततन्तु" यह कर तेरे पास भी राजा लोग धन, रत्न और अभूषणों की भेट लेकर प्रीति और मानपूर्वक आवेंगे॥

अनार्याचरितं तात परस्व स्पृहणं भृशम् । स्वसंतुष्टः स्वधर्मस्थो यः स वै सुलमेधते ॥६॥

अव्यापारः परार्थेषु नित्योद्योगः स्वकर्मसु । रक्षणं समुपात्तानामेतद्भभव लक्षणम् ॥७॥

अर्थ-हे पुत्र! पराये धन के हरण की इच्छा करना अनार्स्य= नीचों का काम है, इस संसार में उसी पुरुष की वृद्धि होती है जो अपने धर्म में तत्पर रहता और अपने ही धन में सन्तोष करता है, (१) दूसरे के धन की इच्छा न करना (२) अपने काम में सदा उद्योगी होना (३) कमाये हुए धन की रक्षा करना, यह तीनों वैभव के छक्षण हैं अर्थात इनका सेवन करने वाला पुरुष ऐश्वर्य्यशाली होता है ॥

विपत्तिष्वव्यथोदक्षो नित्यमुत्थानवात्ररः । अप्रमत्तो विनीतात्मा नित्यं भद्राणि पश्यति ॥८॥

अर्थ-जो पुरुष चतुर, विनीत, नित्य उद्योगी,सावधान और आपित्त में दुःख नहीं मानता उसका सदा कल्याण होता है ॥

बाहू निवैतान्माच्छेत्सीः पाण्ड पुत्रास्त्यैव ते । भ्रातृणां तद्धनार्थं वै मित्रद्रोहं च माकुरु ॥९॥

अर्थ-हे पुत्र ! यह पाण्डव जो तेरे वाहु के समान हैं इनका छेदन करके अपने स्वार्थ के लिये मित्रवर्गों से द्वेष न कर ॥

पाण्डोः पुत्रान् माद्रिषस्वेह राजंस्तथैव ते-भ्रातृधनं समग्रम् । मित्रद्रोहे तात महान-धर्मः पितामहा ये तव तेऽपि तेषाम् ॥१०॥

अर्थ-हे पुत्र दुर्योधन! पाण्डव तेरे भाई हैं उनके पास जो धन है सो तेरा ही है उनसे तुझको द्रोह करना उचित नहीं, क्योंकि 950

महाभारत

तेरे और पाण्डवों के पितामह एक ही थे, और हे पुत्र ! मित्रों से द्रोह करना बड़ा अधर्म है ॥

अन्तर्वेद्यां दददिनं कामाननुभवन् प्रियान् । क्रीडन् स्त्रीभिर्निरातंकः प्रशाम्य भरतर्षभ ॥११॥ अर्थ-हे भरतकुल में श्रेष्ठ पुत्र ! हम में और उनमें कुछ भेद नहीं, इससे तुझे जिचत है कि अपने चित्तको सावधान करके यज्ञ की वेदी में मनमाना दान दे, मनमाने भोगों को भोग और अपनी रुचिकर स्त्रियों से कीड़ा कर वैर विरोध को त्याग दे॥

इति चतुस्त्रिशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं०-अब दुर्योधन का धृतराष्ट्र से नीतियुक्त बचन कहकर उसको पाण्डवों की विभूति छेने के छिये पुनः उत्तेजित करना कथन करते हैं:—

दुर्योधन ज्वाच

यस्य नास्ति निजाप्रज्ञा केवलं तु बहुश्रुतः। न स जानाति शास्त्रार्थं दवींसूपरसानिव ॥१॥ जानन्वे मोहयसि मां नाविनौरिव संयता। स्वार्थे किं नावधानं ते उताहोदेष्टि मां भवान्॥२॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि है पिता! जिस मनुष्य में अपनी बुद्धि नहीं होती वह केवल सुनी हुई बातों को जानता है, वह शास्त्र के अर्थ को नहीं जानसक्ता, जैसे कड़छी दाल के स्वाद को नहीं पहचानती, जिसमकार एक नाव में वंधी हुई दूसरी नाव स्वतन्त्र नहीं होती किन्तु उसके साथ ही डूब जाती वा मारी २ फिरती है, इसी मकार आप मुझको सब पूर्वापर जानने पर भी मोहित कर रहे हैं, न जाने आप स्वार्थ को क्यों भूले हुए हैं क्या आप भी मुझसे द्वेष तों नहीं करते॥

न संतीमे धार्तराष्ट्रा येषां त्वमनुशासिता।
भविष्यमर्थमाख्यासि सर्वदा कृत्यमात्मनः।। ३।।
परनेयोग्रणीर्यस्य स मार्गान्प्रति मुद्यति।
पन्थानमनुगच्छेयुः कथं तस्य पदानुगाः।। १।।
राजन्परिणतप्रज्ञो वृद्धसेवी जितेन्द्रियः।
प्रतिपन्नान् स्वकार्येषु संमोह्यसि नो भृशम्।।५॥

अर्थ-आप अपने पुत्रों को मरे के समान जानते हैं जिनके आप शासक हैं, और अपने स्वार्थ के काम में सदा भविष्य= होनहार को आरोपण कर देते हैं, जिसका नायक=आगे चलने वाला ही दूसरे की शिक्षा के अनुसार चलता है वह अपना मार्ग अवश्य भूलेगा और उसके अनुयायी पुरुषों को भी टीक मार्ग कदापि नहीं मिलसक्ता, सो हे राजन ! आप पण्डित, बुद्धिमान, वृद्धसेवी और जितेन्द्रिय होकर हम लोगों को हमारा अपना कर्तव्य भुलाते हैं।

लोकवृत्ताद्राजवृत्तमन्यदाह बृहस्पतिः । तस्माद्राज्ञाप्रमत्तेन स्वार्थश्चिन्त्यः सदैव हि ॥ ६ ॥ क्षत्रियस्य महाराज जयेवृत्तिः समाहिता। स वै धर्मस्त्वधर्मो वा स्ववृत्तौ का परीक्षणा।। ७॥ प्रचालयेदिशः सर्वाः प्रतोदेनेव सार्थः। प्रत्यमित्र श्रियं दीप्तां जिवृक्षुर्भरतर्षम ॥ ८॥

अर्ध-बृहस्पित ने राजाओं की वृत्ति को संसार की वृत्ति से भिन्न कहा है, इसिलये सावधान राजा को अपने स्वार्थ के कार्य्य का विचार सदैव करना उचित है, क्षात्रियों की वृत्ति=धर्म केवल विजय करना ही निश्चित है चाहे उसमें धर्म हो वा अधर्म हो, इसिलये विजय के विषय में संदेह की बातें सोचना ठीक नहीं, हे राजन ! जो राजा शच्च की प्रदीप्त लक्ष्मी को हरण करने का विचार करता है उसे उचित है कि वह सब दिशाओं को इस प्रकार से चलायमान करदे जैसे सार्थी चाबुक से घोड़ों को कम्पायमान करदेता है।

प्रच्छन्नो वा प्रकाशो वा योगो योऽरि प्रवाधते । तद्धै शस्त्रं शस्त्रविदां न शस्त्रं छेदनं स्मृतम् ॥९॥ शत्रुश्चैव हि मित्रं च न छेख्यं नच मातृका । यो वै संतापयति यं स शत्रुः प्रोच्यते नृप ॥ १०॥ असंतोषः श्रियो मूलं तस्मानं कामयाम्यहम् । समुच्छूथे यो यतते स राजन् परमो नयः ॥ ११॥

अर्थ-वही उपाय राजा का शस्त्र है जिससे शत्रु को जीता जाय, चाहे वह गुप्त हो चाहे प्रकट हो,युद्ध करके लेना ही शस्त्र से लेना नहीं कहाता, हे राजन ! शत्रु वा मित्र का कुछ लेख किसी जगह नहीं, जो अपने को संताप=दुःख देवे उसी को विद्वानों ने शञ्च कहा है, लक्ष्मी का मूल असंतोष है अर्थाद तृप्ति न होना, इसलिये मैं कामना वाला हूं, और हे राजन ! अपने को बढ़ाने का यत्न करना यही परम राजनीति है ॥

ममत्वं हि न कर्त्तव्यमैश्वर्यं वा धनेपि वा । पूर्वावाप्तं हरंत्यन्यं राजधर्मं हि तं विदुः ॥ १२ ॥ अद्रोहसमयं कृत्वा चिच्छेद नमुचेः शिरः । शकः साभिमता तस्य रिपो वृत्तिः सनातनी ॥१३॥ द्वावेतो प्रसते भूमिः सपों विलश्चानिव । राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥ १४ ॥

अर्थ-हे राजन ! ऐक्वर्य और धनके विषय में ममताकरना बुद्धिमानों का काम नहीं, क्योंकि इनको प्रत्येक राजा एक दूसरे से बलपूर्वक लेता चला आया है, यही राजाओं का परमधर्म है, इन्द्र ने नमुचि दैत्य को मित्रता का विक्वास दिलाकर उसका शिर काट डाला था और आज तक शत्रु को विजय करने की वही सनातन सर्वसंमत वृत्ति चली आती है, शत्रु से विरोध न करने वाले राजा को और देशदेशान्तरों में न धूमने वाले सन्यासी को पृथ्वी इस प्रकार प्रस लेती है जैसे विल में रहने वाले जीवों को सांप प्रस लेता है।

नास्ति वै जातितः शत्रुः पुरुषस्य विशापते । येन साधारणी वृत्तिः स शत्रुर्नेतरो जनः ॥ १५ ॥

शत्रुपक्षं समध्यन्तं यो मोहात्समुपेक्षते । व्याधिराप्यायितइव तस्य मूलं छिनत्ति सः ॥१६॥

अर्थ-हे राजन ! राष्ट्रता कुछ स्वभाव पर निर्भर नहीं जिस की राज्यलक्ष्मी अपने तुल्य हो वही अपना वैरी है, जो राजा मोह से अपने राष्ट्रपक्ष की उन्नित को रोकने का यत्न नहीं करता उसकी जड़ इसमकार कटती जाती है जैसे रोग बढ़ने से शरीर दिन २ क्षय होता जाता है, और:—

अल्पोपि ह्यरिरत्यर्थं वर्धमानः पराक्रमैः । बल्मीको मूलजइव ग्रसते वृक्षमन्तिकात् ॥१७॥

अर्थ-छोटा शत्रु भी पराक्रम में बढ़ जाने से इस प्रकार जड़ काट देता है जैसे वृक्ष की जड़ के पास लगी हुई दीमक वृक्ष को खाजाती है, इसलिये:-

आजमीढारेपोर्लक्ष्मीर्माते रोचिष्ट भारत । एष भारः सत्ववतां नयः शिरासिधिष्ठितः॥१८॥ जन्मवृद्धिमिवार्थानां यो वृद्धिमभिकांक्षते । एधते ज्ञातिषु स वै सद्यो वृद्धिर्हि विक्रमः॥१९॥

अर्थ-हे पिता! आपको भी शच्च युधिष्ठिर की लक्ष्मी की वृद्धि चाहना उचित नहीं, पराक्रमी पुरुषों के लिये यह शिरोधार्य नीति है, जाति वालों में वृद्धि उसी मनुष्य की होती है जो अपने अर्थ की उन्नित इस मकार किया करता है जैसे जन्म होने के पीछे मनुष्य का शरीर दिन २ बढ़ता है, शीघ्र वृद्धि करने वाला संसार में पराक्रम ही है सो हमें इसी का अवलम्बन करना चाहिये॥

नाप्राप्य पाण्डवैश्वर्य संशयो मे भविष्यति । अवाप्स्येव श्रियं तां हि शिष्येवा निहतो युधि ॥२०॥ एताहशस्य किं मेद्य जीवितेन विशांपते । वर्धन्ते पाण्डवा नित्यं वयं त्वस्थिख्द्रयः ॥२१॥

अर्थ-हे पिता ! पाण्डवों के ऐक्वर्य्य को देखकर मैं अत्यन्त दु:खी हूं, जबतक पाण्डवों की सम्पत्ति मैं छीन नहीं लंगा मेरी चिन्ता बनी रहेगी, सो या तो मैं उस राजलक्ष्मी को लिये ही लेता हूं नहीं तो युद्ध में मरकर निःशेष होजाउंगा, भला आपही बतावें कि मेरे ऐसे जीवन से क्या अर्थ लाभ है जो पाण्डव तो प्रतिदिन बढ़ते जायं और मैं दिन २ घट रहा हूं॥

इति पंचत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ षद्त्रिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं०-अब दुर्योधन से पेरित हुए धृतराष्ट्र का जुआ खेलने के लिये सभाभवन वनवाना और विदुर को भेजकर पाण्डवों को बुलाना कथन करते हैं :—

शकुनि उवाच

यां त्वमेतां श्रियं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रे युधिष्ठिरे। तप्यसे तां हरिष्यामि द्यूतेन जयतांवरः ॥१॥ आहूयतां परं राजन् कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। अगत्वा संशयमहमयुष्वा च चमूमुखे॥२॥ अक्षान् क्षिपन्न क्षतः सन्विद्धानविदुषो जये। ग्लहान्धन्तिष मे विद्धि शरानक्षांश्च भारत। अक्षाणां हृदयं मे ज्यां रयं विद्धि ममास्फ्रस्य ॥३॥

अर्थ-शकुनि बोला कि है विजयी दुर्योधन ! जिस युधिष्ठिर की लक्ष्मी को देलकर आप इतने दुःखी होरहे हैं उसको मैं जुए में जीतकर तुम्हें देसकता हूं, आप युधिष्ठिर को बुलवायें मैं युद्ध की आपत्ति में विना पड़े तथा विना शस्त्रों के आघात सहे ही उसको जुआ रूपी युद्ध में विना सेना के ही जीत्ंगा, क्योंकि वह खेलना नहीं जानता और मैं पासा फेंकने में वड़ा चतुर हूं इस जुआ रूप युद्ध में तुम मेरे पासों को बाण, दाउ पर लगाने को धनुष्, मेरी जुए की विद्याको चिल्ला और पासों के फेंकने को रथ समझो॥

दुर्योधन उवाच

अयमुत्सहते राजन् श्रियमाहर्त्तमक्षवित् । द्यूतेन पाण्डपुत्रेभ्यस्तद्वज्ञातुमईसि ॥४॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे पिता ! हमारे मामा शकुनि जुआ खेलने में बड़े चतुर हैं और वह पाण्डवों की लक्ष्मी को पासों द्वारा जीतने को कहते हैं सो आप उनको जुआ खेलने के लिये आज्ञा दीजिये ॥

धृतराष्ट्र उवाच

स्थितोस्मि शासने भ्रातुर्विदुरस्य महात्मनः। तेन संगम्य वेत्स्यामि कार्यस्यास्य विनिश्चयम् ॥५॥

सभापर्व-षट्त्रिंशाध्याय

७६७

अर्थ-धृतराष्ट्र वोला कि हे दुर्योधन ! मैं पहले अपने बुद्धि-मान भाई विदुर से सलाह करलं, वयों कि मैं उनके कहे पर चलता हूं तब कुछ निश्चयपूर्वक कहसकुंगा ॥

दुर्योधन उवाच

व्यपनेष्यित ते बुद्धिं विदुरों मुक्तसंशयः। पाण्डवानां हिते युक्तों न तथा मम कौरव।।६॥ नारभेतान्यसामध्यित्पुरुषः कार्य्यमात्मनः। मतिसाम्यं द्वयोनांस्ति कार्येषु कुरुनन्दन ॥७॥ भयं परिहरन्मन्द आत्मानं परिपालयन्। वर्षामु क्विन्नकटविष्ठन्नेवावसीदिति ॥८॥ न व्याधयो नापि यमः प्राप्तुं श्रेयः प्रतीक्षते। यावदेव भवेत्कल्पस्तावच्छ्रेयः समाचरेत् ॥९॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे पिता ! विदुरजी जैसा पाण्डवों को चाहते हैं वैसा मुझको नहीं चाहते, इसकारण वह जुआ कराने की कदापि सम्मात न देंगे, और किसी मनुष्य को कोई काम दूसरे के आश्रित होकर करना उचित नहीं, क्योंकि दो मनुष्यों की समानबुद्धि कभी नहीं होती, जो मनुष्य शच्च से होने वाले भय की पर्वाह न करके अपना पालन करता है वह सदैव दुःख पाता है जैसे वर्षा में चटाई भीग जाने से रक्खी रक्खी ही गलजाती है, रोग और मृत्यु मनुष्य के भले बुरे अवसर को नहीं ताकते रहते, इसलिये मनुष्य को उचित है कि जवतक सामर्थ्य हो तबतक अपने कल्याण का उपाय करे ॥ महाभारत

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वथा पुत्र बिलिभिर्विष्रहों में न रोचते। वैरं विकारं सृजिति तद्धे शस्त्रमनायसम्।। १०॥ अनर्थमर्थं मन्यसे राजपुत्र संग्रन्थनं कलहस्याति याति। तद्धे प्रवृत्तं तु यथा कथांचित्सृजेदसीिन्नाशितान्सायकांश्च ॥ ११॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोला कि हे पुत्र ! मुझको बलवानों के साथ विग्रह=युद्ध करना अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वैर विकार को उत्पन्न करता और वहीं विना लोहे का शस्त्र है, सो त् अनर्थ को अर्थ मानकर भयानक कलह के बीज बुआना चाहता है, जिसमें आगे तीक्ष्ण तलवारें और वाण उत्पन्न होंगे अर्थात् इस कलह का परिणाम यह होगा कि शस्त्रों के युद्ध द्वारा सब नाश को माप्त होजायंगे।

दुर्योधन उवाच

चृते पुराणेर्व्यवहारः प्रणीतस्तत्रात्ययो-नास्ति न संप्रहारः । तद्रोचतां शकुनेर्वाक्य-मद्य सभां क्षिप्रं त्विमहाज्ञापयस्व ॥ १२ ॥ स्वर्गद्वारं दीव्यतां नो विशिष्टं तद्विनां-चापि तथैव युक्तं । भवेदेवं ह्यात्मना तु-ल्यमेव दुरोदरं पाण्डवैस्त्वं कुरुष्व ॥ १३ ॥

सभापर्व-षद्त्रिशाध्याय

950

अर्थ-दुर्योधन वोला कि हे पिता! जुआ खेलने में नाश तथा युद्ध होने की कोई बात नहीं, क्योंकि यह पूर्वकाल का न्यव हार चला आता है अर्थाद नल आदि पूर्वजों ने भी जुआ खेला था, इसलिये आप शकुनि के कथन को स्वीकार करके सभाभवन वनने की आज्ञा दीजिये, और जूआ खेलना हमारे लिये उत्तम सुख का द्वार है, जो खेलता है उसको बड़ा सुख प्राप्त होता है, सो हमको पाण्डवों के साथ जुआ खेलना सुखदायक होने से सर्वथा योग्य ही है ॥

धृतराष्ट्र उवाच

वाक्यं न मे रोचते यत्त्वयोक्तं यत्ते प्रियं-तत् क्रियतां नरेन्द्र । पश्चात्तप्स्यसे तदुपा-क्रम्य वाक्यं नहीदृशं भावि वचो हि धर्म्यम्॥१४॥ दृष्टं ह्येतद्विदुरेणेव सर्व विपश्चिता बुद्धि-विद्यानुगेन । तदेवैतद्देववशादुपैति महद्भयं क्षत्रियजीवघाति ॥ १५ ॥

अध-धृतराष्ट्र बोला कि हे दुर्योधन ! त जो कुछ कहता है वह मुझे अच्छा नहीं लगता. अब जो तेरी समझ में आवे सो त कर, मेरा समझाना तुझे आगे याद आवेगा और किर त पछतावेगा, क्योंकि जुआ खेलना कदापि कल्याणकारी और धर्म के अनुकूल नहीं, मुझे याद है जो बुद्धिमान पण्डित विदुरती ने कहा था कि इस दुर्योधन के कारण सब कुल का नाश होगा, सो वही क्षत्रिय जीवों का घातक बड़ा भय मेरे सामने आरहा है।

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा धतराष्ट्रो मनीषी दैवं मत्वा परमं दुस्तरं च । शशासोचैः पुरुषान् पुत्रवाक्ये स्थितो राजा दैवसंमृदवेताः ॥ १६॥

अर्थ-वैशम्पायन बांस्ने कि हे राजा जनमेजय! विद्वान् धृतराष्ट्र ने उक्त प्रकार से सब कुछ कहकर और दैवगित को बस्रवान तथा आमिट जानकर दुर्भाग्य से मूट हो दुर्योधन के कथनानुसार अपने कार्य्यकर्ताओं को चिल्लाकर आज्ञा दी, कि:-

सहस्रतंभां हेमवैदूर्याचित्रां शतदारां तोरण स्फाटिकाच्याम् । सभामग्यां क्रोशमात्रा-यतामेताद्वस्तारामाशु कुर्वेतु युक्ताः ॥ १७॥

अर्थ-हमारे लिये अतिशीघ एक ऐसा उत्तम जुआ खेलने का सभाभवन तैयार करो जो एक कोस लम्बा तथा एक कोस चौड़ा हो, जिसमें सहस्र खंभे और सौ द्वार हों, उस भवन के बाहर का द्वार स्फटिकमणि का बनाया जावे और सब जगह सुवर्ण तथा वैद्र्य्यमणि से चित्रित हो ॥

श्रुत्त्वा तस्य त्वरिता निर्विशंकाः प्राज्ञा दक्षा-स्तां तदा चक्रुराश्च । सर्वद्रव्याण्युपजहुः स-भायां सहस्रशः शिल्पिनश्चैव युक्ताः ॥१८॥।

अर्थ-राजा की आज्ञा पाते ही सहस्रों कारीगरों ने जो बड़े बुद्धिमान और चतुरथे सभाभवन बनाने के लिये सहस्रों प्रकार का

सामान एकत्रित किया, और थोड़े ही काल में वह सभाभवन बनाकर तैयार करदिया, और :—

कालेनालेपनाथ निष्ठां गतां तां सभां रम्यां-बहुरतां विचित्राम् । चित्रेहेंमैरासनैरम्युपेता-माचरव्युस्ते तस्य राज्ञः प्रतीताः ॥ १९॥

अर्थ-राजा के विश्वासी शिल्पियों ने अल्पकाल में हि अनेक भकार के रत्नों से चित्रित करके उस भवन को वड़ा मनोहर बना दिया और उसमें सुवर्ण से चित्रित आसन स्थापित करके उस भवन के पूर्ण होने की सूचना राजा धृतराष्ट्र को देदी॥

ततो विद्वान् विदुरं मन्त्रिमुख्यमुवाचेदं धृतराष्ट्रो नरेन्द्रः । युधिष्ठरं राजपुत्रं च गत्वा मद्वाक्येन क्षिप्रमिहानयस्व ॥२०॥

अर्थ-तदनन्तर विद्वान राजा धृतराष्ट्र ने मन्त्री विदुर को बुलाकर आज्ञा दी कि आप इन्द्रमस्थ में जायं और मेरी ओर से संदेशा देकर राजकुमार युधिष्ठिर आदि सब पाण्डवों को यहां शीघ्र लिवालायें, और :—

सभेयं मे बहुरत्ना विचित्रा शय्यासनैरुप-पन्ना महाहैंः। सादृश्यतां भ्रातृभिः सार्द्ध-मेत्य सुहृदृद्यूतं वर्त्ततामत्र चेति ॥२१॥

अर्थ-उनसे कहदें कि आप लोगों को सभाभवन देखने के लिये बुलाया है जो अनेक प्रकार के स्वों से चित्रित और

महाभारत

विचित्र शय्या तथा आसनों से सुशोभित है उस भवन में आप सब भाई मिलकर मित्रतापूर्वक जूआ खेलना ॥

इति षद्त्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः प्रारभ्यते

सं०-अब विदुरजी का इन्द्रमस्थ में जाकर सब पाण्डवों , को हस्तिनापुर में लाना कथन करते हैं:—

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रायाद्विद्रोशैवरुदौर्महाजवैर्विलिभिः साधुदान्तैः।बलान्नियुक्तो धृतराष्ट्रेण राज्ञा मनीषिणां पाण्डवानां सकाशे ॥ १॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! धृतराष्ट्र से हटपूर्वक आज्ञा पाये हुए विदुरजी शीघ्रगामी घोड़ों से जुते हुए रथ पर चढ़कर महात्मा पाण्डवों के समीप गये, और :—

सोऽभिपत्य तद्धानमासाद्य नृपतेः पुरम् ।
प्रविवेश महाबुद्धिः प्रज्यमानो द्विजातिभिः ॥२॥
स राजगृहमासाद्य कुबेरभवनोपमम् ।
अभ्यागच्छत धर्मासा धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥३॥
अर्थ-महाबुद्धमान धर्मात्मा विद्य मर्गयात्रा को समार

अर्थ-महाबुद्धिमान धर्मात्मा विदुर मार्गयात्रा को समाप्त करके राजा के नगर में पहुंचे, वहां ब्राह्मणादि वर्णों से पूजित हुए २ युधिष्ठिर के महलों में जो कुवेर के भवन सहश वने हुए थे प्रविष्ट होकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर के समीप गये॥

तं वै राजा सत्यधितर्महात्मा अजातशत्रुर्वि-दुरं यथावत् । पूजापूर्व प्रतिगृह्याजमीद-स्ततोऽपृच्छद्धतराष्ट्रं सपुत्रम् ॥ ४ ॥

अर्थ-तदनन्तर सत्यव्रतधारी महात्मा अजातशत्र युधिब्टिर ने विदुरजी की यथायोग्य पूजा की और उन्हें आदरपूर्वक विटाया, पुनः धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों की क्षेमकुशल पूछकर बोले कि :-

विज्ञायते ते मनसोऽप्रहर्षः किचत् क्षत्तः कुशलेनागतोसि । किचत्पुत्राःस्थविरस्या-वुलोमा वशावुगाश्चापि विशोथ किचत् ॥५॥

अर्थ-हे महाराज ! आपका मन कुछ उदास प्रतीत होता है, किहये आप कुशलपूर्वक आये हैं ? और यह भी वताइये कि वृद्ध धृतराष्ट्र के पुत्र उनके आज्ञाकारी तो हैं और प्रजा उनके वश में है वा नहीं ॥

विदुर उवाच

राजा महात्मा कुशली सपुत्र आस्ते वृतो ज्ञातिभिरिन्द्रकल्पः । प्रीतो राजन् पुत्रयुणै-र्विनीतो विशोक एवालरितर्महात्मा ॥६॥

अर्थ-विदुरजी बोले कि हे राजन ! महात्मा धृतराष्ट्र अपने पुत्र सहित कुशलपूर्वक हैं और अपने भाई बन्धुओं से इन्द्र के

समान घिरे रहते हैं, वह स्वयं प्रसन्न तथा शोक रहित हैं, परन्तु अब पुत्र के गुणों से उनकी दशा कुछ पलटी हुई है ॥

इदं तु त्वां कुरुराजोभ्यवाच पूर्व पृष्ट्वा कुशलं चान्ययं च । इयं सभात्वत्सभा तु-ल्यरूपा भ्रातृणां ते दृश्यतामेत्य पुत्र ॥७॥

अर्थ-उन्होंने आपकी कुशलक्षेम पूछकर यह कहला भेजा है कि हे पुत्र युधिष्ठिर ! तुम्हारे भाइयों ने भी एक सभाभवन तुम्हारे सभाभवन के सदृश बनवाया है सो उसको आप सब भाई आकर देखें, और :—

समागम्य भातृभिः पार्थ तस्यां सुहृद्द्यूतं क्रियतां रम्यतां च । प्रीयामहे भवतां सं-गमेन समागता कुरवश्चापि सर्वे ॥८॥

अर्थ-भाई २ मिलकर वहां मित्रतापूर्वक जूआ खेलें तथा आनन्द मनावें, यहां सब कौरवकुल के मनुष्य एकत्रित हुए २ तुम्हारे दर्शनों की अभिलाषा रखते हैं, तुम्हारे आगमन से हमें बड़ा हर्ष होगा ॥

दुरोदरा विहिता ये तु तत्र महात्मना धत-राष्ट्रेण राज्ञा । तान् द्रक्ष्यसे कितवान्स-त्रिविष्टानित्यागतोहं नृपते तज्जुषस्व ॥९॥

अर्थ-सो हे राजा युधिष्ठिर! आप वहां पहुंचकर उन खिलाड़ियों को जिन्हें महात्मा राजा धृतराष्ट्र ने जूआ खेलने को नियत किया हुआ है देखोंगे, इसीलिये मैं आया हूं॥

सभापर्व-सप्तत्रिंशाध्याय

996

युधिष्ठिर उवाच

द्यूते क्षत्तः कलहो विद्यते नः को वै द्यूतं रोचते बुद्धमानः । किं वा भवान् मन्यते युक्तरूपं भवद्वाक्ये सर्व एव स्थिताः स्म ॥ १०॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे विदुरजी ! जूआ खेलने में हमें कलह दिखाई देता है कल्याण नहीं, और बुद्धिमान पुरुष कदापि जूआ नहीं खेलते, परन्तु हम सब तो आपकी आज्ञानुसार चलने बाले हैं, आप काहिये आपकी जूआ खेलने में क्या सम्मति है ॥

विदुर उवाच

जानाम्यहं चूतमनर्थमूलं कृतश्चयत्नो-स्य मया निवारणे । राजा च मां प्राहिरणा स्वत्सकाशं श्रुत्वा विद्वन् श्रेय इहाचरस्व ॥ ११ ॥

अर्थ-विदुरजी बोले कि हे राजन ! मैं तो जूए को सदैव अनर्थ की जड़ समझता हूं, मैंने इसके ।निवारण करने के अनेक यत्न किये परन्तु मेरा कोई उपाय न चला, अंत को धृतराष्ट्र का भेजा हुआ तुम्हें बुलाने को यहां चला आया हूं, सो आप विद्वान हैं जिसमें कल्याण देखें वहीं करें ॥

युधिष्ठिर उनाच

ते तत्रान्ये कितवा दीन्यमाना विना राज्ञों धृतराष्ट्रस्य पुत्रेः । पृच्छामि त्वां विदुर ब्राह्मिनस्तान् यैदीन्यामः शतशः सन्निपत्य ॥ १२॥

महाभारत

अर्थ-याधिष्ठिर बोले कि है विदुरजी ! वहां धृतराष्ट्र के पुत्रों से भिन्न और कौन २ खिलाड़ी हैं जिनके साथ हम असंख्य धन लेकर जुआ खेलेंगे ॥

विदुर उवाच

गान्धारराजः शकुनिर्विशांपते राजाऽतिदेवी-

कृतहस्तो मताक्षः। विविंशतिश्चित्रसेनश्च

राजा सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयश्च ॥ १३ ॥

अर्थ-विदुरनी बोले कि हे युधिष्ठिर! वहां कन्धार का राजा शकुनि बड़ा खिलाड़ी है उसने पासा डालने में अपना हाथ साधा हुआ है और अपनी इच्छानुसार पासे डाल सकता है, इसके अतिरिक्त राजा विविशति, चित्रसेन, राजा सत्यवत, पुरिमत्र और जय भी वहां उपस्थित हैं॥

युधिष्ठिर उवाच

महाभयाः कितवाः सान्नाविष्टा मायोपधा-

देवितारोत्र सन्ति । धात्रा तु दिष्टस्य वशे

किलेदं सर्वं जगत्तिष्ठीत न स्वतन्त्रम् ॥ १४॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे विदुरजी ! आप सत्य कहते हैं वहां बड़े २ छली, कपटी तथा भय देने वाले खिलाड़ी एकत्रित हुए हैं, परन्तु मनुष्य के अधीन न होने से यह सब जगद दैवाधीन ही स्थित है, न जाने हमारे लिये क्या होनहार है ॥

नाहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य शासनान्न गन्तु-मिच्छामि कवे दुरोदरम् । इष्टो हि पुत्रस्य पिता सदैव तदस्मि कर्त्ता विदुरात्थ मां यथा ॥१५॥ अथ-मैं धृतराष्ट्र की आज्ञा से जृत् में जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझता, क्योंकि पिता सदा पुत्र का ही पक्षपात किया करता है, हां आप मुझे जो आज्ञा देंगे उसे मैं अवश्य करूंगा॥

नचाकामः शक्वानिनादेविताहं नचेन्मां जिष्णु-राह्वियता सभायाम् । आहूते।हं न निवर्ते कदाचित्तदाहितं शाश्वतं वै वर्तं मे ॥ १६॥

अर्थ-ज्ञा खेळने की मेरी अपनी इच्छा कदापि नहीं है, इसिळिये यदि मुझको वहां कोई नहीं बुळावेगा तो मैं शकुनि से ज्ञा नहीं खेळूंगा, किंतु बुळाने पर हटुंगा भी नहीं, यह मेरा सनातन व्रत है ॥

वैशम्पायन उवाच एवमुक्त्वा विदुरं धर्मराजः प्रायात्रिकं-सर्वमाज्ञाप्यतूर्णम् । प्रायाच्छ्वो भूते सगणः सानुयात्रः सहस्त्रीभिद्रीपदीमादिकृत्वा ॥१७॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिर ने विदुरजी से उक्त प्रकार कहकर यात्रा का सब सामान शीघ तैयार करने की आज्ञा दी और प्रातःकाल होते ही सब भाई, सेवक और द्रौपदी आदि स्त्रियों सहित हस्तिनापुर को चलदिये॥

दैवं हि प्रज्ञां मुष्णाति चक्षुस्तेज इवापतत् । धातुश्चवशमन्वेति पाशैरिव नरः सितः ॥१८॥

महाभारत

इत्युक्त्वाप्रययौ राजा सहक्षत्रा युधिष्ठिरः । अमृष्यमाणस्तस्याथ समाह्वानमरिंदमः ॥१९॥ बाह्रिकेन रथं यत्तमास्थाय परवीरहा । परिच्छन्नो ययौ पार्थो आतृभिः सहपाण्डवः ॥२०॥

अर्थ-हा !!! जब मनुष्य को दैवगाति प्राप्त होती है अर्थात् जब दैव प्रतिकूल होता है तब उसकी बुद्धि नाश को प्राप्त होजाती है, जैसे कि सूर्य के तेज से आखें चकाचोंघ होजाती हैं और वह जाल में बंधे हुए मनुष्य की भांति दैवाधीन होता है, इसी कारण युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के बुलाने को स्वीकार कर विदुरजी के साथ भाइयों सहित राजा वाह्लीक के दिये हुए रथ पर चढ़ हस्तिना-पुर पहुंचा॥

तथा भीष्मेण द्रोणेन कर्णेन च कृपेण च।
समियाय यथान्यायं द्रौणिना च विभुः सह।।२१॥
समेत्य च महाबाहुः सोमदत्तेन चैव ह।
दुर्योधनेन शल्येन सौबलेन च वीर्घ्यवान्।।२२॥
येचान्ये तत्र राजनः पूर्वमेव समागताः।
दुःशासनेन वीरेण सर्वैर्भातृभिरेव च।
जयद्रथेन च तथा कुरुभिश्चापि सर्वशः।।२३॥

अर्थ-तत्पश्चात् महाबाहु राजा युधिष्ठिर भीष्म, द्रोणाचार्य्य, कर्ण, कृपाचार्य्य, द्रोण के पुत्र अक्वत्थामा,सोमदत्त, दुर्योधन,शल्य, शकुनि, वीर दुःशासन, जयद्रथ तथा अन्य राजा लोग जो

सभापर्व-सप्तत्रिशाध्याय

999

पहले से ही वहां आये हुए थे और कौरवकुल के सब भाई बन्धु-ओं से यथायोग्य मिलकर:-

ततः सर्वेमहाबाहुर्भातृभिः परिवारितः । प्रविवेश गृहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः॥२४॥ ददर्श तत्र गान्धारीं देवीं पतिमन्त्रताम् । स्नुषाभिः संवृतां शश्वत्ताराभिरिवरोहिणीम् ॥२५॥ अभिवाद्य स गान्धारीं तया च प्रतिनन्दितः । ददर्श पितरं वृद्धं प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ॥ २६ ॥

अर्थ-पश्चात युधिष्ठिर सब भाइयों के साथ बुद्धिमान धृतराष्ट्र के महल में गया, वहां जाकर उन्होंने पतिव्रता गान्धारी देवी के दर्शन किये जो सदा अपनी बहुओं से ऐसे घिरी रहती थी जैसे छोटे र नक्षत्रों से रोहिणी नक्षत्र घिरा रहता है, पुनः गान्धारी को अभिवादन किया और उनसे आशीर्वाद पाकर उस वृद्ध प्रज्ञाचक्षु पिता राजा धृतराष्ट्र के समीप गया, और :—

राज्ञामुर्द्धन्युपाघातास्ते च कौरवनन्दनाः। चत्वारः पाण्डवाः राजन् भीमसेनपुरोगमाः ॥२७॥ ततो हर्षः समभवत्कौरवाणां विद्यांपते। तान्द्दष्ट्वा पुरुषव्याघान्पाण्डवान्प्रियदर्शनान्॥२८॥

अर्थ-राजा धृतराष्ट्र ने उसका तथा भीमसेन आदि शेष चारो पाण्डवों का प्यार से माथा चूमा, और उन वीर रूपवान पाण्डवों को देखकर कौरवकुल के सब मनुष्य प्रसन्न हुए ॥ विविशुस्तेऽभ्यनुज्ञाता रत्नवन्ति गृहाणि च । दृहशुश्चोपयातांस्तान् द्रौपदीप्रमुखाः स्त्रियः॥२९॥ याज्ञसेन्याः परामृद्धिं हृष्ट्वा प्रज्वितामिव । स्नुषास्ता धृतराष्ट्रस्य नातिष्रमनसोऽभवन् ॥३०॥

अर्थ-तदनन्तर युधिष्ठिर आदि पांचो भाई द्रौपदी आदि स्त्रियों सहित रत्नजटित महलों में आज्ञा पाकर टिकगये, उस समय धृतराष्ट्र के पुत्रों की स्त्रियां द्रौपदी के महान वैभव को देखकर ईर्षा के कारण अमसन्न हुई ॥

ततस्ते पुरुषव्यात्रा गत्वा स्त्रीभिस्तु संविदम् । कृत्वा व्यायामपूर्वाणि कृत्यानि प्रतिकर्म च ॥३१॥ ततः कृतान्हिकाः सर्वे दिव्यचन्दनभूषिताः । कल्याणमनसञ्चेव ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्य च ॥३२॥ मनोज्ञमशनंभुक्त्वा विविशुः शरणान्यथ । उपगीयमाना नारीभिरस्वपन् कुरुपुंगवाः ॥३३॥

अर्थ-तदनन्तर सिंहपुरुष पाण्डवों ने स्त्रियों सहित उन महलों में टिककर विश्राम किया और स्त्रियों से बात करके व्यायाम करने के पश्चात सायंकाल के सन्ध्या, अग्निहोत्रादि सब कर्मों से निवृत्त होकर दिव्य वस्त्र, आभूषण और चन्द्रन आदि सुगन्दिन पदार्थों को धारण करके पुनः अपने कल्याणार्थ ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया, फिर उत्तमोत्तम भोजन करके स्त्रियों के सधुर गान सुनते न सब आनन्दपूर्वक मोग्ये।।

सुखोषितास्ते रजनीं प्रातः सर्वे कृतान्हिकाः। सभां रम्यां प्रविविद्युः कितवैरिभनन्दिताः॥३४॥

अर्थ-मुखपूर्वक रात्रि के व्यतीत होने पर निद्रा से निवृत्त हो सब मातःकाल उठे और सब ने मातःकालिक सन्ध्या अग्नि-होत्रादि कर्म किय, पुनः युधिष्टिरादि पांचो भाई शकुनि आदि जुआ खेलने वालों से मशंसित और उत्साहित होते हुए सब साथ २ उस उत्तम सभाभवन में गये ॥

इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टित्रंशोऽध्यायः प्रारभ्यते

सं - अव सभाभवन में पहुंचकर युधिष्ठिर और शकानि का बार्चालाप कथन करते हैं:-

वैशम्पायन उवाच

प्रविश्यतां सभां पार्था युधिष्ठिरपुरोगमाः । समेत्य पार्थिवान्सर्वान्यूजाहीनभियूज्य च ॥१॥ यथावयः समेयाना उपविष्टा यथार्हतः । आसनेषु विचित्रेषु रपद्धर्यास्तरणवत्सु च ॥२॥

अर्थ-वैद्यम्पायन दोले कि हे राजन ! राजा युधिष्ठिर अपने मव भाइयों सहित मभा में गया और वहां पूजा योग्य पुरुषों का सत्कार कर तथा बराबर वाले सब राजाओं से यथायोग्य मिलकर स्पर्दा के योग्य विचित्र आसनों पर सब भाइयों सहित बैठगया॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु सर्वेष्वथ नृपेषु च । शकुनिः सौबलस्तत्र युधिष्ठिरमभाषत ॥३॥

अर्थ-तदनन्तर जब सब राजा छोग बैठगये तब राजा सुबछ. का पुत्र शकुनि युधिष्टिर से बोला कि :-

उपस्तीणी सभा राजन् सर्वे त्विय कृतक्षणाः । अक्षानुप्वादेवनस्य समयोस्तु युधिष्ठिर ॥४॥

अर्थ-हे युधिष्टिर! इस सभाभवन में चौपड़ विछी हुई और पासे भी रखे हुए हैं; आइये जूआ खेलें, यह समय भी अच्छा है और सब लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥

युधिष्ठिर उवाच

निकृतिर्देवनं पापं न क्षात्रोत्र पराक्रमः । नच नीतिर्ध्रुवा राजन् किं त्वं द्यूतं प्रशंसिस ॥५॥ निह मानं प्रशंसिन्त निकृतौ कितवस्य हि । शकुने मैवं नो जैषीरमार्गेण नृशंसवत् ॥६॥

अथ-याधिष्टिर बोला कि हे राजन ! जूआ छलक्प और पाप की जड़ है, इसमें न कुछ क्षत्रिय का पराक्रम और नाही यह नीति के अनुसार है, इसलिये तुम्हें जूए की प्रशंसा करना उचित नहीं, सज्जन लोग ज्वारियों की प्रशंसा नहीं करते, अतएव हे शकुनि ! तुम्हें निर्दय होकर मुझे कुमार्ग से जीतना निन्दा के योग्य है ॥

शकुनि उवाच

यो वेत्ति संख्यां निकृतौ विधिज्ञश्रेष्टास्व-खिन्नः कितवोक्षजासु । महामितर्यश्र जा-नाति चूतं स वै सर्व सहते प्रक्रियासु॥७॥

अर्थ-शकुनिं वोला कि है राजन ! जो जूआ खेलना भले-प्रकार जानता है वह महाबुद्धिमान और सब कियाओं में चतुर होजाता है ॥

अज्ञग्लहः सोऽभिभवेत्परंनस्तेनैवं दोषो भवतीह पार्थ । दिव्यामहे पार्थिवमा-विशंकां कुरुष्वपाणं च चिरंच माकृथा ॥८॥

अर्थ-हे राजन ! इसमें कोई दोष नहीं, क्योंकि जीतना हारना तो केवल पासों के अधीन है, आप कोई शंका न करें और अपने योग्यदाउपरलगाकर जूआ खेलें, विलम्ब करना वृथा है॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमाहायमिसतो देवलो मुनिसत्तमः । इमानि लोकद्वाराणि यो वै भ्राम्यति सर्वदा ॥ ९ ॥ इदं वै देवनं पांप निकृत्या कितवैः सह । धर्मेण तु जयो युद्धे तत्परं न तु देवनम् ॥ १० ॥

महाभारत

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि है शकुनि ! असित और देवल आदि बड़े २ ऋषि जो लोकमर्यादा को स्थिर करते हुए संसार में सदा भ्रमण करते रहते हैं उनका कथन है कि जुआ खेलना छलक्ष और बड़ा पाप है किन्तु धर्मपूर्वक युद्ध करके जीतना ही श्रेष्ठ है।।

नार्याम्लेच्छिन्ति भाषाभिर्मायया नचरंत्यत । अजिह्ममशठंयुद्धभेतत्सत्पुरुषव्रतम् ॥ ११ ॥ शक्तितो ब्राह्मणार्थाय शिक्षितुं प्रयतामहे । तद्धे वित्तं मातिदेवीर्माजैषीः शक्तने परान् ॥१२॥ निकृत्याकामयेनाहं सुलान्यत धनानि वा । कितवस्यह कृतिनो वृत्तभेतन्न पूज्यते ॥१३॥

अर्थ—जो आर्थ=श्रेष्ठ पुरुष हैं वह वृथा नहीं बोलते और न किसी काम में कपट करते हैं वह केवल युद्ध ही की इच्छा करते हैं, यह सत्पुरुषों का ब्रत है, हे शकुनि! जिस धन से ब्राह्मणों के प्रयोजन सिद्ध होते और जिससे विद्याध्ययन का यव किया जाता है उस धन से जूआ खेलकर तुम्हें दूसरों को जीतना उचित नहीं, मेरी इच्छा दूसरे को हराकर सुख भोगने और दूसरे के धन को लेने की नहीं है, यह काम कपटी मनुष्यों का है सत्पुरुष इसको अच्छा नहीं कहते॥

शकुनि उवाच

श्रोत्रियः श्रोत्रियानेति निकृत्यैव युधिष्ठिर । विद्वानविदुषोऽभ्येतिनाहुस्तां निकृतिं जनाः ॥१४॥ अंक्षेहिं शिक्षितोभ्येति निफ्त्यैव युधिष्ठिर । अकृतास्त्रं कृतास्त्रश्च दुर्बलं बलवत्तरः । एवं कर्मसु सर्वेषु निकृत्यैव युधिष्ठिर ॥१५॥ एवं त्वं मामिहाभ्येत्य निकृतिं यदि मन्यसे । देवनाद्विनिवर्तस्व यदि ते विद्यते भयम् ॥१६॥

अर्थ-शकुनि बोला कि हे राजन ! यदि आप जुआ खेलने में छल कहते हैं तो देखिये कि वेदपाटी का वेद न जानने वाल से, पण्डित का मूर्ख से, जुआ खेलने वाले का अनाड़ियों से, और अस्त्रविद्या जानने वाले का विना अस्त्र जानने वाले से जब सामना होता है तब बलवान दुवल को जीतलेता है, हे युधि-ष्टिर ! इसी प्रकार सब कमीं में हार जीत जाननी चाहिये, इसमें छल की कोई बात नहीं, यदि आप यहां मेरे पास आकर भी हार जीत के विचार से खेलना नहीं चाहते, और खेलने को छल समझकर भयभीत हैं तो न खेलिये ॥

युधिष्ठिर उवाच

आहूतो न निवर्तेयिमिति मे व्रतमाहितम् । विधिश्च बलवान्राजन् दिष्टस्यास्मि वशेस्थितः॥१७॥ अस्मिन् समागमेकन देवनं मे भविष्यति । प्रतिपाणश्च को अन्योस्ति ततो चूतं प्रवर्त्तताम्॥१८॥

अर्थ-युधिष्ठिर वोला कि हे शकुनि ! यह मेरा सनातन व्रत है कि जो कोई मुझे ज्ञा खेलने को बुलाता है उससे मैं अवश्य खेलता हूं, हे राजन ! दैवगाति बलवान है और मैं भी उस दैव के

महाभारत

वश में हूं, अब आप यह बतावें कि कौन मेरे साथ खेलेगा और दाउ लगाने वाला अन्य कौन है ? ताकि उसको जानकर खेलना प्रारम्भ करें ॥

दुर्योधन उवाच

अहं दातास्मि स्तानां धनानां च विशांपते। मद्धे देविता चायं शक्तिमीतुलो मम ॥१९॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे राजन ! दाउ पर लगाने को रब और धन तो मैं दृंगा और मेरे मामा शकुनि मेरी ओर से आपके साथ जूआ खेलेंगे॥

युधिष्ठिर उवाच

अन्येनान्यस्य वे द्यूतं विषमं प्रतिभाति मे । एतद्विद्वन्नुपादत्स्व काममेवं प्रवत्तताम् ॥२०॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि हे दुर्योधन ! यह जुआ मुझको .वेषम मतीत होता है जिसमें दाउ पर कोई लगावेगा और कोई खेलेगा, परन्तु तुम जुआ के जानने वाले यदि इसको स्वीकार करते हो तो अच्छा आइयें खेलना प्रारम्भ करें॥

इति अष्टित्रंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं ०-अत्र युधिष्ठिर का शकुनि के साथ ज्ञा खेलना और उस का वहुत धन हरण होना कथन करते हैं:—

वैशम्पायन उवाच

उपोद्यमाने द्यूते तु राजानः सर्व एव ते । धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य विविश्वस्तां सभां ततः ॥१॥ भीष्मो द्रोणःकृपश्चैव विदुरश्च महामितः । नातिप्रीतेन मनसा तन्ववर्त्तत भारत ॥२॥ ते दंद्रशः पृथक् चैव सिंहग्रीवा महोजसः । सिंहासनानि भूरीणि विचित्राणि च भेजिरे ॥३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! युधिष्टिर के जुआ खेलने को नेयार होने पर राजा धृतराष्ट्र सब राजाओं सहित उस सभा में गया, ऑर उसके पीले भीष्म, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य तथा बुद्धिमान विदुरजी भी मन में उदास से हुए २ गये, वह सिंह जैसी ग्रीवा वाले प्रतापी राजा लोग सुन्दर सिंहासनों पर एक २ और दो २ यथायोग्य बैट गये॥

शुशुभे सा सभा राजन् राजभिस्तैः समागतैः। देवैरिव महाभागैः समवेतैस्त्रिविष्टपम् ॥४॥ सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे भास्वरमूर्त्तयः। प्रावर्त्ता महाराज सुद्धदृष्ठाननः तरम् ॥४॥ अर्थ-हे राजन ! उन सब राजाओं के बैठने पर वह सभा ऐसी शोभायमान प्रतीत होती थी कि मानो स्वर्ग भें सब देवता विराजमान हैं, वह सब लोग वेद के जानने वाले, श्रुरवीर और सब तेजस्वी थे, हे महाराज ! उन सब के बैठजाने पर पुनः ज्ए का पारम्भ हुआ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अयं बहुधनो राजन् सागरावर्त्तसंभवः।
मिणहारोत्तरः श्रीमान् कनकोत्तमभूषणः॥ ६॥
एतद्राजन्मम् धनं प्रतिपाणोस्तिकस्तव।
येन मां त्वं महाराज धनेन प्रतिदीव्यसे॥ ७॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे राजन्! यह सागरावर्त्त ने उत्पन्न हुई मिणियों की उत्तम माला जो सुवर्ण जिटत और बहुमूल्य भूषण है, उसको मैं दाउ पर लगाता हूं, आपभी कहें इसके वरावर क्या धन दाउ पर लगाते हैं ?॥

दुर्योधन उवाच

सन्ति मे मणयश्चेव धनानि सुबहूनि च । मत्सरश्च न मेऽथेंषु जयस्वैनं दुरोदरम् ॥ ८॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे राजन ! मेरे पास वहुत धन तथा मणि हैं और अपने धन में मुझे कोई ममता नहीं, आप दाउ को जीतें ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो जग्राह शकुनिस्तानक्षानक्षतत्त्ववित ।

सभापर्व-एकोनचत्वारिंशाध्याय

930

जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत । ९।।

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! तदनन्तर जूए के तत्त्व को जानने वाले शकुनि ने पासे उठालिये और उनको फेंककर युधिष्टिर से बोला कि मैं जीता॥

युधिष्ठिर उवाच

मत्तकैतवकेनैव यजितोस्मि दुरोदरे । शकुनेऽहं तद्दीव्यामो ग्लहमानाः परस्परम् ॥१०॥ सन्ति निष्कसहस्रस्य भाण्डिन्यो भरिताः शुभाः । कोशो हिरण्यमक्षय्यं जातरूपमनेकशः । एतद्राजनमम्थनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥ ११ ॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि है शकुनि ! जो आपने मेरे धन को जूए में छल से जीता है तो मैं और धन दाउ पर लगाकर तुम्हारे साथ खेलता हूं, यह सुवर्ण की मोहरें और चांदी से भरे हुए सहस्र कुंभ जिनमें असंख्य धन है, इसी के बराबर आप भी लगावें॥

वैशम्पायन उवाच

कौरवाणां कुलकरं ज्येष्ठं पाण्डवमच्युतम् । इत्युक्तः शकुनिः प्राह जितमित्येव तं नृपम् ॥१२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तब कौरवों के वंश-धर, कर्तव्य से च्युत न होने वाले सरल राजा युधिष्ठिर के मुख से यह मुनकर शकुनि ने पासे फेंककर कहा कि मैं यह भी जीता।

युधिष्ठिर उवाच

अयं सहस्रसमितो वैयाघः सुप्रतिष्ठितः। सुचक्रोपस्करः श्रीमान् किंकिणीजालमंडितः॥१३॥ संद्वादनोराजरथो य इहास्मानुपावहत्। जैत्रोरथवरः पुण्यो मेघसागरिनःस्वनः॥१४॥ अष्टीयंकुरुरच्छायाः सदश्वा राष्ट्रसंमताः। वहन्ति नेषां मुच्येत पदाद्विममुपस्पृशन्। एतद्राजन्यनं महां तेन दीव्याम्यहं त्वया॥१५॥

अर्थ-युधिष्टिर बोला कि हे शकुनि ! यह जड़ाऊ रथ जिस पर हम चढ़कर आये हैं, जो कहस्त रथों के कमान, व्याप्रचर्म से मढ़ा हुआ, सुन्दर पहियों से भृषित, घंटालियों से युक्त, मधुर शब्द बाला, विजय कराने वाला, रथों का राजा, जिसमें क्वेतरंग के श्रेष्ट आठ घोड़े जुते हुए हैं और जिसके चलने में मेघ तथा समुद्र की गर्जना के समान झंझनाहट होता है और जिसके घोड़े दौड़ते हुए पृथ्वी को नहीं छूते उसको में दाज पर लगाता हूं, आपभी जतना ही धन लगावें ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं श्रुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥१६॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! छली शकुनि ने यह सुनकर पाते फेंके और युधिष्टिर से कहा कि मैं जीता ॥

सभापर्व-एकोनचत्वारिकाध्याय

907

युधिष्ठिर ज्वाच

शतं दासी सहसाणि तरुण्यो हेममदिकाः। कंबुकेयूरधारिण्यो निक्ककंठ्यः स्वलंकृताः ॥१७॥ महाईमाल्यामरणाः सुबन्धाश्चन्दनोक्षिताः। मणीन् हेमं च विश्वत्यश्चतुः यष्टि विशारदाः ॥१८॥ अनुसेनां चरन्तीमाः कुशला नृत्यसामसु। स्नातकानाममात्यानां राज्ञां च ममशासनात्। एतद्राजनमम् धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया॥१९॥

अर्थ-युधिष्टिर वोला कि है शकुनि ! मेरी एकलक्ष तरुण दासियां जो सुवर्ण की माला, कंगन, वाजवन्द, हार आदि अनेक मणिजटित सुवर्ण के आभृपणों तथा चन्दन से सुगन्धित सुन्दर वस्त्रों से अलंकत, चौंसटकला सम्पन्न, नाचन, सामवेद के गाने तथा वजाने में बड़ी प्रवीण, और जो मेरी आज्ञा से स्नातक ब्राह्मण, मन्त्री तथा राजा लोगों की सेवा करती हैं उनको मैं दाउ पर लगता हूं॥

वैशम्पायन ज्वाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येत्र शकुनिश्चिषिष्ठरमभापत ॥२०॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि है राजन ! उन छली शकुनि ने यह सुनकर छल के साथ पासे फेंके और युधिष्टिर से कहा कि यह भी में जीता ॥ ७९२

युधिष्ठिर उवाच

एतावन्ति च दासानां सहस्राण्युत सन्ति मे । प्रदक्षिणानुलोमाश्च प्रावास्वसनाः सदा ॥२१॥ प्राज्ञा मेधाविनो दान्ता युवानो सृष्टकुण्डलाः । पात्रीहस्ता दिवासत्रमतिथीन् भोजयंत्युत । एतदाजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥२२॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि हे शकुति! जितनी मेरी दासी हैं उतने ही अर्थात एकलक्ष और कई सहस्र मेरे दास भी हैं जो सरल स्वभाव, सदा आज्ञा में रहने वाले, सब बड़े ज्ञानी, जितेन्द्रिय, युवा और रेशमी वस्त्र तथा कुण्डल धारण किये हुए दिन रात हाथों में सुवर्ण के जलपात्र लेकर अतिथियों को भोजन कराया करते हैं, मैं उन सब को दाउ पर लगाता हूं॥

वैशम्पायन उवाच एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्श्विधिरमभाषत ॥२३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि है राजन ! यह सुनकर वह श-कुनि छल से पासे फेंककर युधिष्टिर से बोला कि मैं जीता॥

युधिष्टिर उवाच

सहस्रसंख्या नागा मे मत्तास्तिष्ठन्ति सौबल । हेमकक्षाः कृतापीडाः पद्मिनो हेममालिनः ॥२४॥ सुदांता राजवहनाः सर्वशब्दक्षमा युधि ।

सभापर्व-एकोनचस्त्रारिंशाध्याय

503

ईषादंता महाकायाः सर्वे चाष्टकरेणवः ॥२५॥ सर्वे च पुरभेत्तारो नवमेघ्निभा गजाः । एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥२६॥

अर्थ-युधिष्ठिर वोला कि हे शकुनि ! मेरे समीप सहस्र मतवाले हाथी जो सुनहरी जंजीर से बंधे तथा सुवर्ण की माला धारण किये हुए, कमल से सुशोभित, भलेमकार सुशिक्षित, राजाओं की सवारी के योग्य, युद्ध में किसी शब्द से भयभीत न होने वाले, आठ २ हथिनियों से युक्त, लम्बे दांत और वड़े २ शरीरवाले, शब्दओं के नगर को तोड़ सकने वाले और जो नवीन मेघ के समान हैं उनको मैं दाउ पर लगाता हूं॥

वैदाम्पायन उवाच

इत्येवं वादिनं पार्थं प्रहसन्निव सौवलः । जितमित्येवशकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥२७॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! शकुनि ने युधिष्ठिर के मुख से यह सुन, इंसकर पासा फेंका और युधिष्ठिर से कहा कि भैं यह भी जीता ॥

युधिष्ठिर उवाच

रथास्तावंत एवेमे हेमदंडाः पताकिनः । हयैर्विनीतैः सम्पन्ना रथिभिश्चित्रयोधिभिः ॥२८॥ एकैकोह्यत्र लभते सहस्रपरमां भृतिम् । युध्यतोऽयुध्यतो वापि वेतनं मासकालिकम् ।

एतद्राजन्मम धनं तेन दीज्याम्यहं त्वया ॥२९॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि हे शकुनि ! हाथियों की संख्या के समान जो मेरे रथ हैं जिनमें सुनहरी दंडे तथा ध्वजा लगी हुई और शिक्षत घोड़े जुते हुए हैं, जिनपर नियत किये हुए चित्रयोधी अर्थात विचित्र युद्ध करने वाले रथी युद्ध में और विना युद्ध भी जो सदा सहस्र २ मुद्रा मासिक वेतन पाते हैं उनको मैं दाउ पर लगाता हूं॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येवमुक्ते वचने कृतवैरो दुरात्मवान् । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥३०॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! यह सुनकर उस दुरात्मा तथा वैर रखने वाले शकुनि ने पासा फेंककर युधिष्ठिर से कहा कि मैं जीता॥

युधिष्ठिर उवाच

अश्वांग्तित्तिरिकल्माषान् गांधर्वान् हेममालिनः । ददौ चित्ररथरतृष्टो यांस्तान् गांडीवधन्वने ॥३१॥ युद्धेजितः पराभूतः भीतिपूर्वमारिदमः । एतदाजन् मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥३२॥

अर्थ-यिधिष्ठिर बोला कि हे शकुनि ! मेरे पास गन्धवों के दिये हुए तित्तर जैसे चितकवरे वर्ण वाले सुनहरी माला पहने हुए जो घोड़े हैं जिनको चित्ररथ गन्धर्व ने युद्ध में जीते जाने के कारण अर्जुन को पीतिपूर्वक दिये थे, उनको मैंदाउ पर लगाता हूं॥

सभापर्व-एकोनचत्वारिशाध्याय

७१५

वैशम्पायन उवाच एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्श्विष्ठिरमभाषत ॥३३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! यह सुनकर उस छली शकुनि ने छल से पासा फेंककर कहा कि "यह भी मैं जीता"॥

युधिष्ठिर उवाच

स्थानां शकटानां च श्रेष्ठानां चायुतानि मे । यक्तान्येव हि तिष्ठिन्ति वाहरुचावचैस्तथा ॥३४॥ एवं वर्णस्य वर्णस्य समुचीय सहस्रशः । यथा समुदिता वीराः सर्वे वीरपराक्रमाः ॥३५॥ श्रीरं पिवंतिस्तिष्ठिति मुजानाः शालितंडलान् । षष्टिस्तानि सहस्राणि सर्वे विपुलवक्षसः । एतदाजनमम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥३६॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि हे शकुनि ! मेरे पास अयुत=दस हज़ार अच्छे २ रथ तथा छकड़े हैं जिनमें छोटे वड़े घोड़े जुते ही रहते हैं और इसी प्रकार वर्ण २ के साठ सहस्र घोड़े जिनपर सवारी लेनेवाले वीर तथा बड़ी २ छातियों वाले पुष्ट योद्धा जो नित्य चावल और दूध का भोजन करते हैं मैंने संग्रह किये हुए हैं, मैं उन रथ और छकड़ों तथा सवारों सहित घोड़ों को दाउ पर लगाता हूं ॥

वैद्यम्पायन उवास एतच्छूला व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः। 92 द

महाभारत

जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥३७॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह छली शकुनि फिर छल से पासा फेंककर युधिष्ठिर से दोला कि मैं जीता ॥

युधिष्ठिर उवाच

ताम्रलोहेः पिरवृतानिधयो ये चतुःशताः । पंचद्रोणिक एकैकः सुवर्णस्याहतस्य वै ॥३८॥ जातरूपस्य सुख्यम्य अनर्घेयस्य भारत । एतद्राजन्मम धनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥३९॥

अर्थ-यिधिष्टर बोला कि हे शकुनि ! मेरे पास तांवे तथा छोहे से सब ओर सुरक्षित चारती ख़ज़ाने हैं जिनमें पांच २ द्रोण उत्तम सुवर्ण की मोहरें तथा उत्तम चांदी भरी हुई रखी है, उनको मैं दाउ पर लगाता हूं॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥४०॥

अर्थ-बैशम्पायन वोले कि हे राजन ! उस छली शकुनि ने सुधिष्ठिर का उक्त कथन सुनकर पासे फेंके और बोला कि मैं जीता ॥

इति एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं ० – अब विदुरजी का धृतराष्ट्र को समझाना और दुर्योधन को त्यागने का उपदेश करना कथन करते हैं:—

वैद्याम्पायन उवाच

एवं प्रवर्तिते द्यूते घोरे सर्वापहारिणि । सर्वसंशयिनमांका विदुरो वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जब उक्त प्रकार से सबका नाशक घोर ज्ञा होने लगा तब सब संशयों को निवृत्त करने वाले विदुरजी बोले कि :—

महाराज विजानीहि यत्त्वां वध्यामि भारत । मुमूर्षोरीषधमिव न रोचेतापि ते श्रुतम् ॥२॥

अर्थ-हे भरतवंशी राजा धृतराष्ट्र ! जो मैं आपसे कहता हूं उसको आप भरुपकार सोचें समझें, यद्यपि मैं यह जानता हूं कि जैसे असाध्य रोगी को औषध गुणदायक नहीं होती वैसे ही मेरा कहना आपको रुचिकर नहीं होगा ॥

यद्भै पुरो जातमात्रो रुराव गोमायवदि-स्वरंपापचेताः । दुर्योधनो भारतानां कु-लग्नः सोयं युक्तो भवतां कालहेतुः ॥ ३ ॥

अर्थ-अव मैंने निश्चयपूर्वक जानलिया कि इस पापी दुर्योधन ने उत्पन्न होते ही जो गीदड़ के रोने जैसा बेसुरा शब्द किया था उसका फल अब मत्यक्ष दिखता है कि यही दुर्योधन भारतों के कुल का नाशक और आप लोगों के काल=मौत का हेतु होगा॥

गृहे वसन्तं गोमायुं त्वं ये मोहान्न बुध्यसे। दुर्योधनस्य रूपेण शृणु काव्यां गिरं मम ॥ ।।।

अर्थ-आपने इस दुर्योधन को मोह से अपने घर में अपना पुत्र नहीं किन्तु एक गीदड़ पाला है, सो इसके विषय में जो कुछ करना उचित है वह मैं तुम्हें श्रुक्त की कही हुई नीति के अनुसार कहता हूं, आप मेरे कथन को सुनें:—

मधु वै माध्विको लब्ध्वा प्रपातं नैव बुध्यते । आरुह्य तं मज्जिति वा पतनं चाधिगच्छिति ॥५॥ सोयं मत्तोक्षद्यतेन मधुवन्न परीक्षते । प्रपातं बुध्यते नैव वैरं कृत्वा महारथैः ॥६॥

अर्थ-जैसे मधु=शहद का ज्यापार करने वाला शहद लगा हुआ देखकर लोभवशाद उसे लेने को आश्रय रहित पर्वत के शिखर पर चढ़जाता है, परन्तु वह शहद के लोभ में रत हुआ यह नहीं जानता कि मैं इसपर चढ़कर गिरुंगा और अंत में उसकी यही दशा होती है कि वह गिरता है, इसी प्रकार यह दुर्योधन अपना गिरना न जानता हुआ जुए के धन को मधु समझकर मतवाला हुआ है इन महाराधियों के साथ जुआ खेलकर वैर वढ़ा रहा है।।

विदितं मे महाप्राज्ञ भोजेष्वेवासमंजसम् । पुत्रं संत्यक्तवान्युर्वं पौराणां हितकाम्यया ॥७॥ अंधका यादवा भोजाः समेताः कंसमत्यजन् । नियोगात्तु हते तस्मिन् कृष्णेनामित्रघातिना । एवं ते ज्ञातयः सर्वे मोदमानाः शतंसमाः ॥८॥

अर्थ-हे बुद्धिमान राजन ! मुझे एक इतिहास याद है कि पूर्वकाल में राजा भोज के वंश में एक राजा ने पुरवासियों के हित की कामना से अपने अयोग्य पुत्र "असमंजस " को त्याग दिया था, इसके अतिरिक्त सब अंधक, यादव तथा भोजवंशियों ने भी "कंस" को त्यागा जिसका दैवयोग से कृष्ण ने बध किया था, देखिये उसके मारे जाने पर उसके सब भाई बन्धु सौ वर्ष तक कुशलपूर्वक प्रसन्न रहे ॥

त्विश्वक्तः सव्यसाची निगृह्णातु सुयोधनम् । निग्रहादस्य पापस्य मोदन्तां क्रखः सुखम् ॥९॥ काकेनेमांश्चित्रवहीन् शार्दूलान् कोष्ट्रकेन च । कीणीष्व पांडवान् राजन् मामञ्जीः शोकसागरे ॥१०॥

अर्थ-इसी प्रकार आप अर्जुन को आज्ञा दें कि वह पापी दुर्योधन को पकड़ लेवे, ऐसा करने से सब कौरवों को बड़ा सुख होगा, हे धृतराष्ट्र! आप इस काक तथा गीदड़ रूपी दुर्योधन के बदले इन सुन्दर मयूर और भार्द्रलूप पाण्डवों को मोल लेलें और अपने को शोकसागर में न डुबावें ॥

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । ग्रामं जनदपस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥११॥ अर्थ-पुरुष को उचित है कि कुल के लिये एक मनुष्य को अर्थात एक आदमी के त्याग से कुल बचजाय तो उसको त्यागदे, तथा ग्राम के लिये एक कुल को, देश के लिये एक ग्राम को और अपनी आत्मा की रक्षा के लिये पृथिवी का त्याग श्रेष्ठ है ॥

सर्वज्ञः सर्वभावज्ञः सर्वशात्रुभयंकरः । इतिसम भाषते काव्यो जंभत्यागे महासुरान् ॥१२॥

अर्थ—सवर्ब, सबकी चित्तवृत्ति जानने वाले तथा सब शत्रु. ओं को भय देने वाले धक्र-आचार्य ने असुरों को उपरोक्त बचन कहकर उपदेश किया था कि यह तुम्हारा पुत्र ''जंभ'' तुम सबका शत्रु और सबको भय दिलाने वाला होगा, एवं ''जंभ'' का उनसे त्याग करादिया था, इसीपकार आपको भी इस दुर्योधन को त्याग देना चाहिये॥

हिरण्यष्ठीविनः कांश्चित्पक्षिणो वनगोचरान् ।
गृहे किल कृतावासान् लोभादाजा न्यपीडयत् ।
सचोपभोगलोभान्धो हिरण्यार्थी परंतप ॥१३॥
आयतिं च तदात्वं च उभे सद्यो व्यनाशयत् ।
तदर्थकामस्तद्धत्त्वं मा दुहः पाण्डवान्नृप ।
मोहात्मा तप्स्यसे पश्चात्पत्रिहा पुरुषो यथा ॥१४॥

र्थि-हे राजन ! किसी राजा ने सुवर्ण के लोभ से किन्हीं पश्चिओं को जो वन में घोंसला बनाकर रहते और नित्य सुवर्ण उगलेत थे मारदाला, ऐसा करने से उस राजा का यह लोक और परलोक दोनों नाश होगये, अतएव आप भी पाण्डवों से इनका धन छीनने के लिये द्रोह न कीजिये नहीं तो आपको भी इस भूल से उस राजा के समान दुःख होगा ॥

जातं जातं पाण्डवेभ्यः पुष्पमादत्स्व भारत । मालाकारइवा रामे स्नेहं कुर्वन् पुनः पुनः ॥१५॥ वृक्षानंगारकारीव मैनान्धाक्षीः समूलकान् । मागमः ससुतामात्यः सबलश्च यमक्षयम् ॥१६॥ समवेतान् हि कः पार्थान् प्रतियुध्येत भारत । मरुद्धिः सहतो राजन्निप साक्षान्मरुत्पतिः ॥१७॥

अर्थ- हे भरतवंशी राजन! आपको उचित है कि जैसे माली वागों में फूलों को बड़े स्तेह से तोड़लेता है इसी प्रकार आपभी कामक्ष्पत्रक्ष के समान इन पाण्डवों में से गुणक्ष्प पुष्प चुनलीजिये, आप अग्नि के समान इन वृक्षों को समूल नष्ट करके इनके अंगारे= कोयले न करें, आप इन पाण्डवक्ष्प वृक्षों में ज्आक्ष्प आग्ने लगा-कर, पुत्र मंत्रियों तथा सेना सहित क्यों मरना चाहते हैं, हे राजन! याद रिक्षेय कि यदि इन्द्र भी महद्गणों सहित पाण्डवों से युद्ध करे तो वह भी जीवित नहीं रहसकता।

द्यतं मूलं कलहस्याभ्युपैतिमिथोभेदं महते दारुणाय। तदास्थितोयं धृतरा-ष्ट्रगस्य पुत्रो दुर्योधनः सृजते दैरमुग्रम् ॥१८॥

अर्थ-हे राजा धृतराष्ट्र! यह जुआ कलह की जड़ तथा आपस

में बड़ी भयानक फूट डालने वाला है, आपका पुत्र दुर्योधन जूआ नहीं खेलता किन्तु उग्र वैर की जड़ जमा रहा है।

प्रातिपेयाः शान्तनवा भैमसेनाः सबाह्निकाः । दुर्योधनापराधेन कृच्छं प्राप्स्यंति सर्वज्ञः ॥१९॥ दुर्योधनोमदेनैषक्षेमराष्ट्राद व्यपोहति । विषाणं गौरिव मदात्स्वयमारुजतेत्मनः ॥२०॥

अर्थ-हे राजन ! इसी दुर्योधन के अपराध से मतीत, शन्तनु तथा भीमसेनवंशी यह कौरव और बाह्णीकवंशी यह अन्य क्षात्रिय सब महाकष्ट भोगेंगे, यह दुष्ट मदोन्मत्त होकर क्षेमता को देश से इस मकार बाहर निकाले देता है जैसे गाय मतवाली होने पर अपने सींगों को आपही पीड़ित करती है॥

यश्चित्तमन्वेति परस्य राजन् वीरः कविः स्वामवमन्यदृष्टिम् । नावं समुद्रे इव बालनेत्रामारुह्य घोरे व्यसने निमज्जेत् ॥२१॥

अर्थ-हे राजन ! जो मनुष्य बुद्धिमान, वीर और पिष्टित होकर दूसरे की मित पर चलता और अपनी बुद्धि का तिरस्कार करता है वह दुखरूप समुद्र में इस प्रकार गोते खाता है जैसे अज्ञानी महाह की नौका पर चढ़कर मनुष्य घोर समुद्र में डूबता है ॥

दुर्योधनोग्लहते पाण्डवेन प्रीयायसे तं जयतीति तच । अतिनर्माजायते संप्रहारो स्तो विनाशः समुपैति पुंसाम् ॥ २२॥

सभापर्व-चत्वारिंशाध्याय

603

अर्थ-अव तो आप यह जानकर प्रसन्न होते हैं कि मेरा पुत्र दुर्योधन युधिष्ठिर को जूए में जीत रहा है और इस समय यह आपको विनोद दीख पड़ता है परन्तु आपको स्मरण रहे कि यह बहुत हंसी अन्त में युद्धकृप होकर मनुष्यों का नाश करेगी॥

> आकर्षस्तेऽवाक्फलः सुप्रणीतोहृदि प्राढी-मंत्रपदः समाधिः। युधिष्ठिरेण कलहस्त-वायमाचितितोऽभिमतः स्वबन्धुना।।२३॥

अर्थ-आपने यह बुरे फल लाने वाला जूआ ही एक अपने इदय में वड़ा भारी राजमन्त्र स्थिर करालिया है, परन्तु आप याद रक्षें कि यह आपने अचानक ही अपने बन्धु युधिष्ठिर के साथ कलह जान ली है।

प्रातिपेयाः शान्तनवाः शृणुध्वं काव्यां वाचं संसदि कौरवाणां । वैश्वानरं प्रज्वितं सु-घोरं मायास्यध्वं मदमनुप्रपन्नाः ॥ २४ ॥

अर्थ-हे कौरवों की सभा में विराजमान प्रतीप तथा शन्तनु बंशियो! आपतो सब दीर्घदर्शी हैं परन्तु मैं श्रुक की कही नीति कहता हूं उसको सुनो, आप छोग इस मन्दबुद्धि दुर्योधन की मित पर चलकर अपने आपको प्रश्वालित घोर अग्नि में मत जलाओ ॥

यदा मन्युं पाण्डवोऽजातशत्रुर्न संयच्छेद-क्षमदाभिभूतः । वृकोदरः सव्यसाचीय-मौचकोऽत्रद्वीपः स्यानुमुलेवस्तदानीम् ॥२५॥

महाभारत

अर्थ-भला!! आप लोग यह तो बतावें कि जब इस जूए के मद से मतवाले होकर युधिष्ठिर तथा भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव क्रोंध को न रोककर घोर युद्ध करेंगे तब आप लोगों की इस समस्त द्वीप में कौन रक्षा करेगा॥

महाराज प्रभावस्त्वंधनानां पुराद्यूतान् मनसायावदिच्छेः । बहुवित्तान्पाण्डवां-श्रेजयस्त्वं किं तेतत्स्याद्रसुविन्देह पार्थान् ॥२६॥

अर्थ-तुम्हारे जूआ खेलने से पहले किस बात की कमी थी और जो अब तुम जूआ खेलकर पाण्डवों का धन जीत भी लोगे तो तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? तुम सबको तो पाण्डवों को ही अपना धन जानना चाहिये॥

जानीमहे देवितं सौबलस्य वेदद्यते निकृतिं पार्वतीयः । यतः प्राप्तः शकुनिस्तत्र यातु मा युयुधो भारत पाण्डवेयान् ॥ २७॥

अर्थ-मैं इस पहाड़ी शकुनि को भलेमकार जानता हूं यह छल से जूआ खेलना अच्छी तरह नानता है, सो हे भारतीय राजन ! इसको जहां से आया है वहीं जाने दो, और पाण्डवों को मत लड़ाओ ॥

इति चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकचत्वारिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं०-अव दुर्योधन का क्रोधित होकर विदुरजी को अप शब्द बोलना और विदुरजी का अनेक हितकारी बातें कहकर चुप हो जाना कथन करते हैं:---

दुर्योधन उवाच

परेषामेव यशसा श्ठाघसे त्वं सदा क्षत्तः क्रत्सयन् धार्त्तराष्ट्रान्। जानीमहेविदुरयत् प्रियस्त्वं बाळानिवास्मानवमन्यसे नित्यमेव॥१॥

अर्थ-दुर्योधन बोला कि हे विदुर ! तुम सदैव हम लोगों की निन्दा करके दूसरों के यशकी प्रशंसा किया करते हो, मैं भलेपकार जानता हूं जिन लोगों के हित में रत होकर तुम हम लोगों का मुर्ली का सा अपमान करते हो ॥

> सविज्ञेयः पुरुषोऽन्यत्र कामो निन्दा प्रशंसे-हितथा युनिक्ति।जिह्या मनस्ते हृद्यं व्यन-क्तिज्यायोऽन्तरात्मन् मनसः प्रातिकृत्यम् ॥२॥

अर्थ-जो मनुष्य अपने म्वामी की निन्दा और द्सरों की स्तुति करता है उसको ममझना चाहिये कि यह अपने म्वामी को नहीं चाहता, तुम्हारी जिह्ना और यम ही तुम्हारे अन्तः करण की भारी देवना को प्रकट करते हैं॥

उत्संगे च व्यालइवाहितोसि मार्जारवत् पोषकं चोपहंसि। भर्तृ घंत्वां नहि पापीय-आहुस्तस्मात्क्षत्तः किंनविभिष पापात् ॥३॥

अर्थ-हे विदुर! तुम सर्प के समान गोद में और विल्ली के समान हमारे घर में रहकर अपने पालने वालों का ही हनन करते हो, स्वामी के साथ द्रोह करना बड़ा पाप है परन्तु तुम्हें कोई पापी नहीं कहता क्या इसीलिये तुम इस पाप से भयभीत नहीं होते॥

जित्वा शत्रुन् फलमाप्तं महद्वे मास्मान् क्षत्तः परुषाणीहवोचः । द्विषद्भिस्त्वं संप्रयोगा-भिनन्दीमुहुर्देषं यासिनः संप्रयोगात् ॥४॥

अर्थ-हे विदुर! हमने अपने शिष्ठओं को जीतकर बहा लाभ उठाया है तुम मुझसे यहां खोटे बचन मत कहो, हमसे मित्रता करके शक्क से मेल और अन्तःकरण में हमसे द्वेष रखना तुम्हें उचित नहीं॥

अमित्रतां याति नरोऽक्षमं ब्रुवित्रगूहतेग्रह्य-ममित्रमंस्तवे । तदाश्रितोऽपत्रप किन्तु नाधसे यदिच्छासे त्वं तदिहाभिभाषसे ॥५॥

अर्थ-जो मनुष्य क्षमा न करने योग्य बचन कहता और शब्द की स्तुति के समय उसके दोषों को छिपा रखता है उसकी शब्द जानना चाहिये, शब्द की श्लाघा करने से तुम्हारा छिपा हुआ बैर भलेमकार प्रकट होता है. हे निर्लज्ज ! तुम्हें लज्जा नहीं आती जो तुम इमारे आश्रित होकर इमारे विरुद्ध इमसे जो चाहे सो कहते हो ॥

मा नोवमंस्था विद्या मनस्तवेदं शिक्षस्वबुद्धिं स्थिवराणां सकाशात् । यशो रक्षस्व विदुर संप्रणीतं मा व्याप्रतः परकार्योषुभूस्त्वम् ॥६॥

अर्थ-हे विदुर ! अव तुम हमारा अपमान न करो हम तुम्हारे मन की बात भलेमकार जानते हैं, वृद्ध पुरुषों के समीप बैठकर बुद्धि सीखो, अपनी बनी हुई मितिष्ठा को धूल में मत मिलाओ, और दूसरों के कार्य में हस्ताक्षेप मत करो ॥

अहं कर्तेति विदुर माचमंस्थामानोनित्यं परुषाणीहवोचः । नत्वां पृच्छामि विदुर यद्धितंमस्वस्ति क्षत्तमीतितिक्षून्क्षिणुत्वम् ॥७॥

अर्थ-हे विदुर! इस सबका कर्ता मैं हूं, ऐसा अपने आपको मानकर तुम्हें इमारा अपमान करना और कठोर बचन वोलना अनुचित है, मैं तुमसे कोई हित की सलाह नहीं पूछता, हम लोग तुम्हारी बहुत कठोर बातें सह चुके हैं अब तुम हमें बार र दुःख मत दो॥

एकःशास्ता न द्वितीयोस्ति शास्ता गर्भे शयानं पुरुषं शास्ति शास्ता । तेनाज्ञशिष्टः प्रवणादि वांभो यथा नियुक्तोस्मि तथा भवामि ॥८॥ अर्थ-इस संसार में शासन करने वाहा एक ईस्वर ही है दूसरा कोई नहीं, वही गर्भ में भी वालक को शासन करता, और उसी की पेरणा से मैं भी यह कर्म कर रहा हूं, जैसे कि ढाल पृथ्वी पर पानी आपही आप वहता चला जाता है ॥

भिनित्त शिरसा शैलमिहं भोजयते च यः। धीरेव कुरुते तस्य कार्याणामनुशासनम्।।९॥ यो बलादनुशास्तीह सोमित्रं तेन विन्दति। मित्रतामनुवृत्तं तु समुपेक्षेत पण्डितः॥१०॥

अर्थ-जो मनुष्य सांप को खिलाता और पहाड़ को सिर से
गिराता है उसको वैसा करने की पेरणा उसका अन्तरात्मा ही
करता है किन्तु जो मनुष्य वल्लपूर्वक किसी को किसी काम में
लगाता या हटाता है वह वृथा उसका वैरी वनता है, इसीलिये
पण्डित लोग अपने मित्र को बलपूर्वक कभी शिक्षा नहीं करते॥

प्रदीप्य यः प्रदीप्ताप्तिं प्राक्चिरं नाभिधावति । .भस्मापि न स विन्देत शिष्टं कचन भारत ॥११॥

अर्थ-हे भरतवंशी! जो मनुष्य कपूर में आग लगाकर और शीघ्र ही उसको बुझाने का यंत्र न करे तो उस कपूर की फिर उसे राख भी नहीं मिलती ॥

न वासयेत्पारवर्ग्य द्विषंतं विशेषतः क्षम-रहितं मनुष्यम् । सयत्रेच्छिस विदुर तत्र गच्छ सुसांत्विताह्यसतीस्त्री जहाति ॥१२। अर्थ-हे विदुर ! जो मनुष्य शशुओं से मिला हुआ भीतर से द्वेप रखकर सदा स्वामी का बुरा चाहता हो उसको अपने देश में बसाना उचित नहीं, इसिलये जहां तू जाना चाहता है वहां चला जा, देखों व्यभिचारिणी स्त्री जो दूसरे पित से मिली रहती है वह भी बहुत समझाने बुझाने पर अपने व्यभिचार को त्याग देती है परन्तु तुम ऐसे निर्ल्ज हो कि अपने गुप्त स्वामी से ही प्रेम रखते हो ॥

विदुर उवाच

एतावतापुरुषं ये त्यजनित तेषां सख्य मंतवदबूहि राजन्। राज्ञां हि चित्तानि परिष्ठुतानि सांत्वं दत्वामुसलैर्घातयनित ॥१३॥

अर्थ-विदुरजी वोले कि हे राजन ! जो मनुष्य इतनी बात पर ही दूसरे का त्याग करता है उसकी मित्रता किसी के साथ भी सदैव नहीं रहती, अब मुझे निश्चय होगया कि राजा लोगों के चित्त चंचल होते हैं, पहले तो वह मिलकर मित्र बनाते और पीछे उसी को मूसलों से मारते हैं ॥

अबालतं मन्यसे राजपुत्र वालोहिम-त्येव सुमंदबुद्धे । यः सौहदे पुरुषं स्था-पियत्वा पश्चादेनं दूषयते से बालः ॥१४॥

अर्थ-हे मन्दबुद्धि राजपुत्र ! तुम मुझको अज्ञानी जानकर अपने को पण्डित समझते हो, परन्तु अज्ञानी वही है जो पहले तो किसी को मुहृद् माने और पीछे उसी में दोष लगाकर उसकी बात का विश्वाम न करे ॥ नं श्रेयसे नीयते मंदबुद्धिः स्त्री श्रोत्रिय-स्येव गृहेप्रदुष्टा । श्रुवं न रोचेद्रस्तर्पभस्य पतिः कुमार्या इव पष्टिवर्षः ॥१५॥

अर्थ-मन्देबुद्धि पुरुष किसी मकार भी कल्याणकारी काय्य में नहीं लगाया जामकता, जैसे वेदबाठी के घर में भी दृष्ट संत्री योग्य कर्म नहीं करती, हे धरतसन्तान! निःसन्देह तुम्हें हमारा हितकारी उपदेश रुचिकर नहीं, जैसे कुमारी स्त्री को साठवर्ष का पति रुचिकर नहीं होता॥

अतः भियं चेदनुकांक्षसेत्वं सर्वेषु कार्येषु हिताहितेषु । स्त्रियश्च राजन् जडपंग्र कांश्च पृच्छत्वंवैतादृशांश्चेवसर्वान् ॥१६॥

अर्थ-हे राजा दुर्योधन ! जो तुम्हें हितकर तथा आहितकर सब काम अपनी इच्छानुसार ही करने हैं तो हमसे सलाह मत लो, स्त्री, मूर्ख तथा लूले लंगड़ों से पूछकर सब काम अपनी इच्छानुसार करो ॥

लभ्यते खलु पापीयात्ररानुप्रियवागिह । अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥१७॥

र अर्थ-इस संसार में गुंह देखी प्यारी बात कहने वाले बहुत पापी पुरुष मिलेंगे परन्तु अभिय जिसका परिणाम हितकारी हो ऐसे वाक्य के वक्ता और श्रोता संसार में दुर्लभ हैं॥

यस्तु धर्म परश्चस्याद्धित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।

अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥१८॥

अर्थ-वही मनुष्य राजा की सहायता करसकता है जो उसके प्रिय अपिय की पर्वाह न कर धर्म को श्रेष्ठ मानता हुआ परिणाम में हित करने वाले अपिय वचन कहता है ॥

अव्याधिजं कर्रुजं तीक्ष्णमुष्णंयशोमुषं परुषं पूर्ति गन्धिम्। सतां पेयं यन्न पिवं-त्यसंतो मन्धं महाराज पिब प्रशाम्य ॥१९॥

अर्थ-बुद्धिमान रोगी पुरुष कड़वी, तीक्ष्ण, उष्ण, निन्दा कराने वाली, कठोर तथा दुर्गन्धयुक्त औषध पीकर नीरोग होजाता है, हे महाराज! इसी प्रकार आपभी हमारे कटु आदि गुणों वाले औषधक्ष्प वाक्य पीकर इस कलहक्ष्प रोग को शान्त करें॥

वैचित्रवीर्यस्य यशोधनं च वांछाम्यहं सहपुत्रस्य शश्वत् । यथा तथा तेस्तुन-मश्च तेस्तु ममापि च स्वस्तिदिशं तु विप्राः ॥२०॥

अर्थ-परमात्मा ऐसी कृपा करें कि तुम्हारा कृत्याण उसी प्रकार हो जैसे मैं धृतराष्ट्र के यश और धन का कल्याण चाहता रहता हूं, तुम्हें अब मेरा नमस्कार है और ब्राह्मण लोग मेरे कल्याण के लिये आशीर्वाद दें॥

आशीविपात्रेत्र विपान् कोपयेत्रच पण्डितः । एवं तेहं वदामीदं प्रयतः कुरुनन्दन ॥२१॥ ८१२

महाभारत

अर्थ-हे कुरुनन्दन दुर्योधन ! पण्डित लोग फण में विष रखने वाले सर्पी तथा नेत्रों में विष रखने वाले पुरुषों को क्रोध नहीं दिलाते, बस मैं इतना कहकर अब चुप होजाता हूं।

इति एकचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ दिचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारभ्यते

सं - अव पुनः जूए का प्रारम्भ होकर युधिष्ठिर का सर्वस्व हारना कथन करते हैं :—

शकुनि उवाच

वहुवित्तं पराजेषीः पाण्डवानां युधिष्ठिर । आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदितेस्त्यपराजितम् ॥१॥

अर्थ-राकुनि बोला कि हे युधिष्ठिर ! आप पाण्डवों का बहुत धन हारचुके हैं, अब जो कुछ विना हारा हुआ अपना निज का धन आपके समीप हो वह भी लगाइये ॥

युधिष्ठिर उवाच

ममवित्तमसंख्येयं यदहं वेद सौबल । अथत्वं शक्तने कस्माद्भित्तं समनुपृच्छिस ॥२॥ अयुतं प्रयुतं चैव शंकुं पद्मं तथार्वुदं । खर्व शंखं निखर्व च महापद्मं च कोटयः ॥३॥ मध्यं चैव परार्धं च स परं चात्र पण्यताम् । एतन्मम धनं राजंस्तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥४॥

अर्थ-युधिष्ठिर वोला िक हे शकुनि ! मेरे धन की संख्या नहीं होसकती, मैं हारे और विनाहारे धन को भलेपकार जानता हूं परन्तु तुम्हें इस बात के पूछने की क्या आवश्यकता हुई, अब मेरे पास जो अयुत, प्रयुत, कोटि, अर्बुद, पद्म, खर्ब, निखर्ब, महापद्म, शंख, मध्य, परार्ध और इससे भी अधिक जितना धन है उस सबको दाउ पर लगाता हूं, आप पासे फेकें॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृति समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्श्विधिरमभाषत ॥५॥

अर्थ-वैशम्पायनबोले कि हे राजन ! यह सनकर उस खिलाड़ी शकुनि ने पासा फेंका और वोला कि मैं यह सब धन जीता ॥

युधिष्ठिर उवाच

गवाश्वं बहुधेनूकमसंख्येयमजाविकम्। यत्किंचिदनुपणीशां प्राक्सिंधोरिप सौबल । एतन्ममधनं सर्वं तेनदीव्यम्यहं त्वया ॥६॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे शकुनि ! अब मेरे पास जो बैल, घोड़े, गौ और असंख्य भेड़ बकरियें जो पर्णाशानदी तथा समुद्र के समीप हैं, उन सबको भी मैं दाउ पर लगाता हूं॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः।

जितमित्येव शक्रनिर्युधिष्ठरमभाषत ॥७॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि है राजन ! उस छली शकुनि ने यह मण सुनकर पासे फेंके और युधिष्ठिर के मति बोला कि मैं जीता॥

युधिष्ठिर उवाच

पुरंजनपदोभूमिरब्राह्मण धनैः सह । अब्राह्मणाश्च पुरुषा राजन् शिष्टंधनं मम । एतद्राजनममधनं तेन दीव्याम्यहं त्वया ॥८॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि है राजन ! नगर, देश, पृथिवी और ब्राह्मणों के धन से अतिरिक्त सब वर्णों का धन तथा ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य सब मनुष्यों को दाउ पर लगाता हूं, यह सब मेरा शेष धन है, आप पासे फेंकें॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्श्वधिष्ठिरमभाषत ॥९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह शकुनि उक्त प्रण को सुनकर प्रसन्न हुआ और पासे फेंककर बोला कि मैं जीता॥

युधिष्ठिर उवाच

राजपुत्रा इमे राजन् शोभन्ते यैर्विभूषिताः।

कुण्डलानि च निष्काश्च सर्व राजविभूषणम् । एतन्ममधनं राजस्तेनदीव्याम्यहं त्वया ॥१०॥

अर्थ-युधिष्ठिर वोला कि हे शकुनि ! यह मेरे भाई राजपुत्र जिन कुण्डलादि आभूपणों से विभृषित हुए वैठे हैं इन सब आभूपणों को दाउ पर लगाता हूं, क्योंकि यह सब राजा होने से मेरा धन है ॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः। जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥११॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! यह सुनकर शकुनि ने फिर पासे फेंके और कहा कि कैं जीता ॥

युधिष्ठिर उवाच

स्यामो युवा लोहिताक्षः सिंहरकन्धो महाभुजः । नकुलो ग्लह एवैको विध्येतन्ममतद्धनम् ॥१२॥

अर्थ-युधिष्ठिर वोला कि हे शकुनि! मेरा भाई नकुल जो इयामवर्ण, युवावस्था को प्राप्त, जिसके लाल नेत्र, सिंह के समान कंधे और जिसकी बाहें लंबी हैं उसको दाउ पर लगाता हूं॥

शकुनि उवाच

प्रियस्ते नकुलो राजन् राजपुत्रो युधिष्ठिर । अस्माकं वशतां प्राप्तो भूयः केनेह दीव्यसे ॥१३॥ अर्थ-शकुनि बोला कि हे राजा युधिष्ठिर ! इस अपने प्रिय महाभारत

भाई राजकुमार नकुल को हारकर फिर हमारे साथ क्या दाउ लगाकर जूआ खेलोंगे॥

वैश्म्यायन उवाच

एवमुक्ता तु तानक्षान् शक्तिः प्रत्यदीव्यत । जितामित्येव शक्तिनर्युधिष्ठिरमभाषत ॥१४॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! युधिष्ठिर से उक्त बचन कहकर शकुनि ने फिर पासे फेंके और बोला कि मैं जीता॥ युधिष्ठिर उचाच

अयं धर्मान् सहदेवोत्रशास्ति लोकेह्यास्मन् पण्डिताख्यांगतश्च । अनर्हता राजपुत्रेण तेन दीव्याम्यहं चाप्रियवत् प्रियेण ॥१५॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि हे शकुनि ! अब मेरा यह भाई सहदेव जो लोक में धर्म का उपदेश करने वाला तथा पिष्डत विख्यात है, यद्यापि यह इस योग्य नहीं कि दाउ पर लगाया जावे तथापि आज इस अपने पिय को अप्रिय के समान दाउ पर लगाता हूं॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृनिं समुपाश्रितः। जितमित्येव शकुनिर्युधिष्ठिरमभाषत ॥ १६॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! वह शकुनि यह सुन और पासे फेंककर बोला कि मैं जीता ॥

मभापर्व-द्रिचत्वारिंशाध्याय

199

शक्किन उवाच माद्रीपुत्रौ प्रियो राजंस्तवेमौ विजितौ मया ॥ गरीयांसौ तु ते मन्ये भीमसेनधनंजयौ ॥१७॥

अर्थ-शकुनि बोला कि हे राजा युधिष्ठिर! भैंने आपके प्रिय माद्री के दोनों पुत्र नकुल तथा सहदेव तो जीत लिये, अब यह भीममेन और अर्जुन आपके पास बड़े धनरूप हैं इनको भी दाउ पर रखकर खेलिये॥

युधिष्ठिर उवाच

अधर्म चरसे नृनं यो नावेश्वसि वै नयम्। यो नः सुमनसां मूढ विभेदं कर्तुमिच्छिस ॥१८॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि हेशकुनि! तू बड़ा मूदहै जो अधर्म करता हुआ नीति को नहीं देखता और हम एकचित्त वाले भाइयों में फूट डालना चाहता है॥

शकुनि उवाच

गर्तो मत्तः प्रपतते प्रमत्तः स्थाणुमुच्छति । ज्येष्ठो राजन् वरिष्ठोसि नमस्ते भरतर्षम ॥१९॥ स्वप्ने तानि न दृश्यन्ते जाग्रतो वा युधिष्ठिर । कितवा यानि दीव्यंतः प्रलपन्त्युःकटाइव ॥२०॥

अर्थ-शकुनि वोला कि हे युधिष्ठिर! आप वड़े हैं इसलिये में आपको नमस्ते करके कहता हूं कि धन के मद में मत्त हुआ २ अधर्म करने वाला मनुष्य गढ़े में गिरता और नरकगामी होता है, हे युधिष्डिर! जिन बातों को मतवाले ज्वारी लोग जुआ खेलते हुए कहते हैं वह बातें स्वप्न अथवा जागृत अवस्था में भी ध्यान में नहीं आसकतीं॥

युधिष्ठिर उवाच यो नः संख्ये नौरिव पारनेता जेता रिष्मणां

राजपुत्रस्तरस्वी । अन्हता लोकवीरेण तेन दीव्याम्यहं शकुने फाल्यनेन ॥ २१ ॥

अर्थ-युधिष्ठिर वोला कि है शकुनि ! अब मैं अपने प्रतापी भाई अर्जुन को जो हम सबको युद्ध में नौका की भांति पार उतारने वाला और शञ्जओं को जीतने वाला है, यद्यपि वह इस योग्य नहीं परन्तु अब मैं उसी वीर को दाउ पर लगाता हूं॥

वैशम्पायन उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्श्विधिसमभाषत ॥२२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! युधिष्ठिर का उक्त पण सुनकर उस छली शकुनि ने पासा फेंककर कहा कि मैं जीता॥

शकुनि उवाच

अयं मया पाण्डवान्। धनुर्धरः पराजितः पाण्डवः सव्यसाची।भीमेन राजन् दिय-तेन दीव्य यत्कैतवं पाण्डव तेऽविशिष्टम् ॥२३॥ अर्थ-शकुनि बोला कि हे युधिष्ठिरः! भैं पाण्डवों के बड़े धनुर्धारी अर्जुन को तो जीत चुका, अब आपके पास भीमसेनक्षी धन शेष रह गया है उसको भी दाउ पर लगावें, वह धन भी खिलाड़ियों से जीतने योग्य है ॥

गिषिकर उवाच यो नो नेता यो युधि न प्रणेता यथा वज्री-दानवशत्रुरेकः । तिर्यक्षेप्रेक्षीसन्नतभूर्म-हात्मा सिंहस्कंधो यश्च सदात्यमर्षी ॥२४॥ बलेन तुल्यो यस्य प्रमान्न विद्यते गदाभृता-मश्र्य इहारिमर्दनः। अनर्हता राजपुत्रेण तेन दीव्याम्यहं भीमसेनेन राजन् ॥२५॥

अध-युधिष्ठिर बोला कि है शकुनि! अब मैं अपने भीमसेन नामक गदाधारियों में श्रेष्ठ भाई को जो अकेला ही हम सब का नेता, हमको युद्ध में राक्षसों के शञ्च इन्द्र के सभान पार करने बाला, क्रोधी, महात्मा, महाबलवान, सिंहसमान कंथों बाला, शञ्चओं का नाशक और निरुपम पराक्रमधारी जिसकी भोहें देवी और जो तिरछी चितवन बाला है, हे राजन! यद्यपि वह इस योग्य नहीं तथापि मैं इसको दाउ पर लगाता हूं॥

वैशम्पायत उवाच

एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृति संमुपाश्रितः । जितमित्येव शकुनिर्श्वाधिष्ठरमभाषत ॥२६॥ अथ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! वह शकुनि यह मुनलर और पासे फेंककर बोला कि भैं जीता ॥ 8.00

महाभारत

शकुनि उवाच

बहुवित्तं पराजेषीर्श्रातृंश्च सहयद्विपान् । आचक्ष्व वित्तं कौन्तेय यदितेरत्यपराजितम् ॥२०॥ अर्थ-शकुनि बोला कि हे युधिष्टिर ! आप हाथी, घोड़े और सब धन सहित अपने भाइयों को तो हारचुके, अब जो कुछ धन आपके पास हारा हुआ न हो उसे भी दाउ पर लगाइये ॥

युधिष्ठिर उवाच

अहं विशिष्टः सर्वेषां भ्रातृणां दियतस्तथा । कुर्यामहं जितः कर्म स्वयमात्मन्युपप्छते ॥२८॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोला कि हे शकुनि ! मैं सब भाइयों का प्यारा और सबमें श्रेष्ठ हूं, परन्तु अब मेरी आत्मा पर विपत्ति आगई है,इसल्ये अब मैं अपने आपको ही दाउ पर लगाता हूं॥

वैद्यम्पायन उवाच एतच्छुत्वा व्यवसितो निकृतिं समुपाश्रितः। जितमित्येवं शकुनिर्श्विधिष्ठरमभाषत ॥२९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! उस छली शकुनि ने यह मुहकर पासा फेंका और कहा कि मैं जीता ॥

श्कुनि उवाच

एतत्पापिष्ठमकरोर्यदात्मानं पराजयेः । शिष्टे सति धने राजन् पाप आत्मपराजयः ॥३०॥ अर्थ-तदनन्तर शकुनि बोला कि हे शुधिष्ठिर ! यह तुमने

सभापर्व-द्विचत्वारिंशाध्याय

629

वड़ा नीचकर्म किया जो कि एक धन के शेष रहजाने पर भी अपने आपको हार दिया, हे राजन ! धन के शेष रहने पर अपने को हारना पाप है।।

वैशम्पायन उवाच एवमुक्त्वामताक्षस्तान्ग्लहेसवीनवस्थितान् । पराजयं लोकवीरानुक्त्वा राज्ञां पृथक् पृथक् ॥३१॥ अस्ति ते वै प्रिया राजन् ग्लह एकोऽपराजितः। पणस्व कृष्णां पांचालीं तयात्मानं पुनर्जय ॥३२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तदनन्तर ज्रुए का खिलाड़ी शकुनि उन हारे हुए लोकप्रसिद्ध पाण्डवों की हार का बुत्तान्त एक २ कर सब राजाओं के आगे वर्णन करके बोला कि हे युधिष्ठिर! तुम्हारी स्त्री पांचाली एक दाउ पर लगाने को और शेष है उसको दाउ पर लगाकर फिर अपने आपको जितवा लीजिये॥

युधिष्ठिर उवाच

नैव इस्वान महती न कृशा नातिरोहिणी। नीलकुंचितकेशी च तया दीव्याम्यहं त्वया॥३३॥ शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगंधया। शारदोत्पल सेविन्या रूपेण श्रीसमानया॥३४॥ तथैव स्यादानृशंस्यात्तथास्याद्दपसंपदा। तथास्याच्छीलसंपत्त्यायामिच्छेत्पुरुषः स्त्रियम्॥३५॥

सर्वेर्गिर्हि सम्पन्नाममुक्लां प्रियंवदाम् । यादृशीं धर्मकामार्थ सिद्धिमिच्छेन्नरः स्त्रियम् ॥३६॥

अर्थ-युधिष्टिर बोला कि हे शकुनि! जो द्रौपदी न बहुत छोटी, न बड़ी और न अति कुश=दुबली, न बहुत मोटी है, जिसके केश युंघराले और काले, जिसके शरीर में से कमलों जैसी सुगन्ध आती तथा जिसके नेत्र शरदऋतु के फूले हुए कमलों के समान, जो कमलों को धारण करने वाली, जिसका स्टब्स्प लक्ष्मी जैसा, जिसका शिल ही सम्पत्ति और जिसमें दया भी लक्ष्मी के समान है, जिसके आज्ञापालन इप गुण, मधुर भाषण और धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि को देखकर ऐसा कौन मनुष्य है जो उसेन चाहे॥

तयैवं विधया राजन् पांचाल्याहं समध्यया । गलहं दीव्या मिचार्वग्या द्रीपद्या हंत सौब्ल ॥३०॥

अर्थ-हे राजन ! उस सुन्दर कमर वाली पांचाली को इस मकार दाउ पर लगाना बड़े दुःख की बात है परन्तु मैं उसे भी दाउ पर लगाकर खेलना हूं॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन धीमता । धिरधिगदोवरृद्धानां सभ्यानां निःसृतागिरः ॥३८॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! धर्मराज युधिष्ठिर के मुख से ऐसे शब्द निकलते ही कि उस सभा के सब सभ्य वृद्ध पुरुष दुखमय वाणी से धिक् धिक् कहने लगे ॥

सभापर्व-द्रिचत्वारिशोध्याय

623

चुक्कभे सा सभा राजन राज्ञां संजा्ज्ञिरे शुचः। भीष्मद्रोणकृपादीनां स्वेदश्च समजायत ॥ ३९ ॥ शिरो गृहीत्वा विदुरो गतसत्व इवाभवत् । आस्तेष्यायन्नधो वक्रो निःश्वसान्नवपन्नगः॥ ४०॥

अर्थ-हे राजन ! उस समय उस सभा में वड़ी हलचल मच गई सब राजा लोग शोक करने लगे और भीष्मिपतामह, द्रोणाचार्य्य तथा कृपाचार्य्य की देह से पसीना निकलने लगा, और विदुरजी शिर पकड़कर सत्त्व निकले हुए की भांति नीचे मुख किये हुए चिन्ता में निमग्न होकर सर्प के सामान श्वास लेने लगे॥

धृतराष्ट्रस्तु संहष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः । किं जितं किं जितिमाति ह्याकारं नाभ्यरक्षत ॥४१॥ जहर्ष कर्णोति भृशं सहदुःशासनादिभिः । इतरेषां तु सभ्यानां नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ ४२॥

अर्थ-हे राजन ! उस समय धृतराष्ट्र प्रसन्न होकर वार २ पूछने लगा कि क्या जीता, क्या जीता, और वह अपने गुप्तभाव को न छिपा सका, कर्ण, दुःशासन आदि हर्प से हंसने लगे और सभा में बेठै हुए अन्य सभ्य पुरुषों की आंखों से आंसू गिरने लगे॥

सौबलग्त्वभिधायैवं जितकाशीमदोत्कटः । जितमित्येव तानक्षान्युनरेवान्वपद्यत ॥ ४३ ॥

अर्थ-तद्नन्तर उस मतवाले छली शकुनी ने द्रीपदी को

महाभागत

दाउ पर एखा हुआ सुनकर पासे उटा लिये और फेंककर कहने लगा कि फिर भी मैं ही जीता ॥

इति दिन्तवारिशाऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

मं - अब दुर्याधन का द्वापदी को दासीकर्म करने के लिये बुटाना और विदुर का ऐसा न करने का उसे उपदेश करना कथन करते हैं

दुर्योधन उवाच

एहि क्षत्रहें पिदीमानयस्य प्रियां भार्या सं-मतां पाण्डवानाम् । सम्मार्जतां वेश्म परे तु शीघं तत्रास्तु दासीभिरपुण्यशीला ॥ १॥

अर्थ-दुर्योधन बेाला कि हे निदुर! अव तुम द्रौपदी को जो पाण्डवों की प्यारी स्त्री है यहां लेआओ ताकि वह अपुण्यशीला दामियों के साथ रहकर हमारे महलों में झाडू बुहारी दिया करे॥

विदुर उवाच

दुर्विभाषं भाषितं त्वाहशेन न मंद्रमंबु-द्धयिस पाशबद्धः । प्रपाते त्वं लंबमानो न वेत्सि व्याघानमृगः कोपयसेति वेलम् ॥ २ ॥ अर्थ-विदुरजी वोले कि हे मन्दबुद्धि दुर्योधन! तू मृत्यु की पाश में वंधा हुआ होने के कारण अचेत होरहा है जो ऐसे दुर्वचन कहता है, तू यह नहीं जानता कि अब तरे गिरने के दिन आये हुए हैं, जो तू मृगक्ष होकर व्याघों को क्रोध दिला रहा है।

आशी विषास्ते शिरास पूर्णकोपा महाविपाः । मा कोपिष्ठाः सुमंदात्मन्मागमम्त्वं यमक्षयम् ॥३॥

अर्थ-हे दुष्टात्मा दुर्योधन ! त यह नहीं जानता कि तेरे शिर पर बड़े २ कोधी विषधर सर्प बेठे हुए हैं उनको कोधित करके अपनी हठ से त क्यों यमलोक को जाना चाहता है ॥

नहिदासीत्वमापन्ना कृष्णा भवितुमर्हति । अनीशेन हि राज्ञैषापणेन्यस्तेति मे मतिः ॥४॥

अध-होपदी किसी प्रकार भी दासी नहीं होसकता, क्योंकि युधिष्ठिर ने पहले अपने को हारकर पुनः हापदी को दाउ पर रखा है अर्थात अपने हारने पर वह होपदी का स्वामी नहीं रहा और फिर उसे होपदी को दाउ पर रखने का अधिकार भी नहीं. यह मेरी सम्मात है ॥

अयं धत्तेवेणुरिवात्मघाती फलं राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रः। द्यृतं हिवैराय महा-भयाय मत्तो न बुध्यत्ययमंतकालम् ॥५॥

अर्थ-मुझे मतीत होता है कि यह दुर्याधन राजा वेणु की भांति शीघ्र ही नष्ट होजायगा, क्योंकि इस जूए के कारण बड़ा 638

महाभारत

वैर उत्पन्न होगा और दुर्योधन अंत समय आने के कारण मत-वाला होरहा है॥

नारंतुदःस्यात्रनृशंसवादीनहीनतः परम-भ्याददीत । ययास्य वाचा पर उद्घिजेत-नतांवदेदुषतीं पापलोक्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ-किसी की निन्दा करना, मर्मों को छेदना, नीचकर्म से किसी को वश में करना, दूसरे को जलाने वाली तथा उद्देग करने वाली बात कहना उचित नहीं, ऐसा करने से मनुष्य नरक गामी होता है ॥

समुचरंत्यति वादाश्चवक्त्राद्यैराहतः शोचित राज्यहिन । परस्यनाममसुते-पतांति तान्पण्डितानाव सृजेत्परेषु ॥७१

अर्थ-जो पुरुष मर्यादा के विपरीत ऐसे वचन दूसरे से कहे जिनके कारण उसको रात्रि दिन शोच रहे तो उसका फल कहने बाला ही भोगता है दूसरे की उससे कुछ हानि नहीं होती, जो पण्डित हैं वह ऐसे बचन दूसरे से कदापि नहीं कहते।।

अजो हि शस्त्रमगिलिकलैकः शस्त्रे विपन्ने शरसास्य भूमौ। निकृतनं स्वस्य कंठस्य घोरं तद्रद्वैरंमाकृथाः पाण्डपुत्रैः ॥८॥ अर्थ-जैसे पछली आटे के लोग से कांट्रे को निगल जाती

म्भापर्व-त्रिचत्वारिंशाध्याय

623

और वह कांटा उसी के गले को छेद डालता है इसी मकार तुम लोभ के वशीभूत होकर पाण्डवों मे वैर मत करो ॥

न किंचिदित्यं प्रवदन्ति पार्था वनेचरं वा गृहमिधिनं वा । तपस्विनं वा परिपूर्ण विद्यं भषंति हैवं श्वनराः सदैव ॥९॥

अर्थ-पाण्डवों ने कभी किसी विद्वान, तपस्वी, वानमस्थी वा गृहस्थी को कभी कोई ऐसी वात नहीं कही जैसीकि आप कहरहे हैं, इस मकार तो श्वानवृत्ति वाले मनुष्य कहा करते हैं।

द्वारंसुघोरं नरकस्यजिह्यं न बुध्यते धृतराष्ट्रस्यपुत्रः । तमन्वेतारो बहवः कुरूणां द्यूतोदये सह दुःशासनेन ॥१०॥

अर्थ-कुटिलता नरक का वड़ा द्वार है, सो धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन इस वात को नहीं जानता और दुःशासन आदि बहुत मनुष्य इस ब्रूतकर्म में उसके साथी हैं॥

मजंत्यलाबूनिशिलाः प्लवंते मुह्यंतिनावों-भिस शश्वदेव । मृदो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति॥ ११॥

अर्थ-वड़े आश्चर्य की बात है कि यह सब मोह को माप्त हुए हिताहित नहीं जानते और जल में त्वी के दूवने तथा पत्थर की नौका के तरने के समान विपरीत करते हैं, यह मृद हुए राजा धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे पध्यक्ष्पी वचनों को नहीं सुनते ॥ महाभारत

अंतो नूनं भवितायं कुरूणां सुदारुणः सर्वहरोविनाशः। वाचः काव्याः सुहृदां पथ्यरूपा न श्रूयन्ते वर्धते लोभ एव ॥१२॥

अर्थ-अब इस दुर्योधन के कारण सर्वहरण और कुरुवंशियों का अत्यन्त दुःखदायी नाश होना चाहता है, मैंने जो सब सुदृदों को पथ्य के समान महात्मा शुक्र के कहे हुए वाक्य सुनाय हैं उनको यह लोग नहीं सुनते और अपने लोभ को बढ़ाते जाते हैं॥

इति त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं०-अब दुःशासन का द्रौपदी को बाद्ध पकड़कर खींचते हुए सभा में लाना और वहां द्रौपदी का दासी होने वा न होने का प्रश्न करना कथन करते हैं:—

वैशम्पायन उवाच धिगस्त क्षतारामिति ब्रुवाणो दर्पेणमत्ते। धृतराष्ट्रस्य पुत्रः । अवैक्षत प्रातिकामीं सभायामुवाचचैनं परमार्थमध्ये ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजा जनमेजय ! अभिमान से मत्त हुआ दुर्योधन विदुरजी के उक्त वचन सुनकर धिक्कारता हुआ सभा में सब श्रेष्ठ मनुष्यों के बीच प्रातिकामी स्नृत को देखकर बोला कि:—

सभापर्व-त्रिचत्वारिंशाध्याय

639

प्रातिकाभिन् द्रै।पदीमानयस्व न ते भयं विद्यते पाण्डवेभ्यः । क्षत्ताह्ययं विवद त्येवभीतो नचास्माकं वृद्धिकामः सदैव ॥२॥

अर्थ-हे प्रातिकामिन ! तू जाकर द्रौपदी को यहां छेआ और पाण्डवों का अब भय न कर, यह बिदुरजी भयभीत होने के कारण सदैव विपरीत ही कहते हैं, हमारी बृद्धि कभी नहीं चाहते॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः प्रातिकामी सस्तः प्रायाच्छीघं राजवचोनिशम्य। प्रविश्य च श्वेव हि सिंह-गोष्ठं समासदन्महिषीं पाण्डवानाम् ॥३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजत ! वह प्रातिकाणी सूत दुर्योश्वन की आज्ञा पाकर पाण्डवों के निवासस्थान में इस प्रकार घुन गया जैते लिहों के घर में कुत्ता घुन जाता है, और वहां पाण्डशों की रानी द्रीपदी के समीप जाकर बोला कि :—

युधिष्ठिरो द्यूनमदेन मत्तो दुर्योधनादौपदित्वा-मजैबीत् । सात्वं प्रपद्यस्व धृतराष्ट्रस्य वेश्म नयामि त्वां कर्मणे याज्ञसेनि ॥४॥

अर्थ-हे द्रीपदी ! युधिष्ठिर जूए के मद में मतवाले होकर तुः होरगये हैं और तुम्हें दुर्योधन ने जीता है सो अब तुम दुर्योवन के घर चले और वहां दासियों के साथ कामकाज करो।! द्रोपदी उवाच

कयं त्वेवं वदासि प्रातिकामिन् कोहि दीव्ये

द्वार्यया राजपुत्रः । मूदो राजा चूतमदेन-मनोह्यभूननान्यन्कैतवमस्य किंत्रित ॥५॥

अर्थ-द्रीपदी वोन्ही कि है पालिकामित । ऐसा कौन मृद् गजपुत्र ज़ण के मद से मतवाला होगा जो अपनी स्त्री को दाउ पर लगाकर ज़आ खेलेगा, तू क्या कह रहा है, क्या युधिष्ठिर के पाम ज़आ केलने को और कुछ धन नहीं है ॥

प्रातिकामी उवाच

यदानाभृत्कैतवमन्यदस्यतदादेवीत्पां-डवोजातशत्रुः । न्यस्ताः पूर्व भ्रातरस्तेन राज्ञास्वयंचात्मात्वमथो राजपुत्रि ॥६॥

अर्थ-प्रातिकामी बोला कि हे राजपात्र ! युधिष्टिर जूए में सब राज्य और धन हारगये, अंत में जब कुछ न रहा तब उन्होंने पहले अपने भाई तथा अपने को हार दिया और पीछे तुम्हें भी हारगये॥

द्रौपदी उवाच

गच्छ त्वं कितवं गत्वा सभायां पृच्छ सूतज।
किंतु पूर्व पराजेषीरात्मानमथवानुमाम् ॥७॥
एतज्ज्ञात्वा समागच्छ ततो मां नय सूतज।
ज्ञात्वा चिकी र्षितमहं राज्ञो यास्यामि दुः खिता ॥८॥
अर्थ-द्रोपदी बोली कि हे सूतपुत्र! द सभा में जाकर उस
खिलाड़ी राजा से यह पूछकर आओ कि आपने पहले मुझाके

सभापर्व-त्रिचत्वारिशाध्याय

639

हारा है वा अपने को ? यद्यपि इस घटना का मुझे वड़ा दुःख है तो भी राजा के उत्तर को मुनकर फिर तेरे साथ चलुंगी ॥ वैद्याम्पायन उचाच

सभागत्वा सचोवाच द्रौपद्यास्तद्रचस्तदा । युधिष्ठिरं नरेन्द्राणां मध्येस्थितामिदंवचः ॥९॥ कस्येशोनः पराजेषीरितित्वामाह द्रौपदी । किंनु पूर्व पराजेषीरात्मानमथवापि माम् ॥१०॥ युधिष्ठिरः तुनिश्चेता गतसत्व इवाभवत् । न तं सूतं प्रत्युवाच वचनं साध्वसाध्वा ॥११॥

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजन ! द्रौपदी के उक्त बचन सुनकर वह प्रातिकामी सभा में गया और वहां जाकर राजाओं के मध्य में वैठे हुए युधिष्ठिर से वोला कि आपसे द्रौपदी ने यह पूछा है कि आपने पहले किसको हारा है मुझको वा अपने को ? यह सुनकर युधिष्ठिर ने अच्छा वा बुरा कुछ उत्तर न दिया और वह चेष्ठारहित हुआ निर्दल की भांति चुपचाप वैटा रहा ॥

दुर्योधन उवाच

इहैवागत्य पांचाली प्रश्नमेनं प्रभाषताम् । इहैव सर्वे शृण्वन्तु तस्याश्चितस्य यदवः ॥१२॥

अर्थ-दुर्योधन वोला कि हे प्रातिकामिन ! तुम जाकर द्रोपटी से कहदो कि त्यहीं आकर यह पश्च कर ताकि जो कुछ वात हो उसको यहां सब लोग सुनें ॥ 633

महाभारत

वैशम्पायन उवाच

स गत्वा राजभवनं दुयोंधन वशानुगः । उवाच द्रौपदीं सूतः प्रातिकामी व्यथनिव ॥१३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह प्रातिकामी दुर्यों-धन की आज्ञानुसार फिर द्रौपदी के समीप गया और वहां पहुंच दुःखी होकर उससे बोला कि:—

सभ्यास्त्वमी राजपुत्राह्वयांति मन्येप्राप्तः संशयः कौरवाणाम् । न वे समृद्धिं पालयते लघी-यान् यस्त्वां सभां नेष्यति राजपुत्रि ॥१४॥

अर्थ-हे राजपुत्रि ! तुम्हें सभारूद लोग वहां सभा में ही बुलाते हैं, मुझे ज्ञात होता है कि अब कौरवों की दक्षा शोचनीय है, और नीच दुर्योधन अब अपनी वृद्धि नहीं चाहता, इसी कारण तुम्हें सभा में बुलाया है ॥

द्रौपदी उवाच

एवं नूनं व्यद्धात्संविधाता स्पर्शावुभी स्पृशतो वृद्धवाली । धर्मत्वेकं परमं प्राह लोके स नः शमं धास्यति गोप्यमानः ॥१५॥

अर्थ-द्रौपदी बोली कि है पातिकामिन ! देवयोग वड़ा प्रवल है, क्या मूर्ख और क्या पण्डित सब किसी को छुख दुःख भोगने पड़ते हैं, परन्तु संसार में एक धर्म ही परम श्रेष्ठ है और मुझे पूर्ण निश्चय है कि मेग धर्म ही मेरी रक्षा करेगा ॥

सभापर्व-चतुश्चत्वारिशाध्याय

133

सोयं धर्मो मात्यगात्कीरवान्वै सभ्यान् गत्वा पृच्छधम्यं नचो मे । ते मां ब्रुग्रानिश्चितं तत्क-रिष्ये धम सानो नीतिमंतोवरिष्ठाः ॥१६॥

अर्थ-सो त अब फिर सभा में जाकर वहां बैठे हुए सब नीतिज्ञ, गुणवान और श्रेष्ठ सभासदों से कहदे कि कीरवों को अपना धर्म छोड़ना उचित नहीं, और मुझे निश्चयपूर्वक ठीक २ उत्तर दें, फिर उनकी आज्ञानुसार जसा वह कहेंगे वैसा ही करंगी।

श्रुत्वा स्त्रस्तद्वो याज्ञसन्याः सभां गत्वा प्राह वाक्यं तदानीम् । अधोसुखास्ते नच किंचिदूचुर्निर्बन्धं तं धार्त्तराष्ट्रस्यवुध्वा ॥१७५

अर्थ-द्रीपदी का उक्त कथन सुनकर वह पातिकामी फिर सभा में गया और द्रीपदी का कहा हुआ सब कह सुनाया, परन्तु सभासदों ने दुर्योधन की हठ जानकर कुछ उत्तर न दिया और सब नीचे को गईन झुकाये वेटे रहे॥

वैशम्पायन उवाच युधिष्ठिरस्तु तच्छुत्वा दुर्योधनचिकीर्षितम् । द्रौपद्याः संमतं दूतं प्राहिणोद्धरतर्षम् ॥१८॥ एकवस्त्रा त्वधोनिविरोदमाना रजस्वला । सभामागम्य पांचालि श्वशुरस्यात्रतो भव ॥१९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तत्पश्चात याधिष्ठिर ने दुर्योधन की इच्छा को सुनकर पुनः द्रौपदी के पाम दृत द्रारा कहला भेजा कि त् यद्यपि रजस्वला होने से एक ही वस्त्र पहरे हुए है परन्तु अब यहां सभा में आकर अपने श्वशुर राजा धृतराष्ट्र के सन्मुख खड़ी होजा ॥

ततस्त्वेषां मुखमालोक्य राजा दुर्योधनः सूतमुवाच हृष्टः । इहेवैतामानय प्राति-कामिन् प्रत्यक्षमस्याः क्रावो सुत्रन्तु ॥२०॥

अर्थ-तदनन्तर दुर्योधन ने पाण्डवों का मिलन मुख देख मसन्न होकर प्रातिकामी को आज्ञा दी कि तुम द्रौपदी को यहां लाओ, उसको जो बुछ कहना हो सो वह यहां सब कुरुवंशियों के सन्मुख कहे।।

ततः सूतस्तस्य वशानुगामी भीतश्च को-पाददुपदात्मजायाः । विहाय मानं पुनरेव सभ्यानुवाच कृष्णां किमहं ब्रवीमि ॥२१॥

अर्थ-तत्पश्चात उस प्रातिकाभी नामक स्त ने द्रौपदी के कोप से भयभीत होकर दुर्योधन की आज्ञा की तिरस्कार करके उस सभा के सभासदों से पूछा कि भैं द्रौपदी से जाकर क्या कहूं॥

दुःशासनैष मम सूतपुत्रो वृकोदरादुद्धि जतेल्पचेताः । स्वयं प्रगृह्यानय याज्ञ-सेनीं किं ते करिष्यन्तवशाः सपत्नाः ॥२२॥

अर्थ-यह सुनकर दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी कि यह मेरे मृत का बेटा क्षुद्रचित्तवाला होने के कारण भीमसेन से डरा हुआ है और अब तेरा शश्च कुछ नहीं करसकते त् आप जाकर द्रीपदी को पकड़ला॥

ततः समुत्थाय स राजपुत्रः श्रुत्वा भ्रातुः शासनं रक्तदृष्टिः । प्रविश्य तद्वेशम महा-रथानामित्यववीदद्रौपदीं राजपुत्रीम् ॥ २३ ॥

अर्थ-दुर्योयन की आज्ञा पाते ही लाल २ नेत्र किये हुए
दुःशासन सभा से उठकर उन महार्थी पाण्डवों के घर में भीतर
चलागया और वहां जाकर द्रौपदी से बोला कि :—
एह्योहि पांचालि जितासि कृष्णे दुर्योधनं
पश्य विमुक्तलजा। कुष्कन् भजस्वायतपत्रनेत्रे धर्मण लब्धासि सभां परैहिं॥ २४॥

अर्थ-हे पांचालि! "इधर आ, इधर आ" तुझको कीरवाँ ने जूए में जीतकर धर्मपूर्वक पाया है, सो है कमल के पन्न समान स्फीत नेत्रों वाली तू अब लाज छोड़कर दुर्योधन के सन्मुख अपने को धिक्कार देती हुई चल और कीरवों की सेवा कर ॥

ततःसमुत्थाय सुदुर्मनाः साविवर्णमाम्हज्य मुखं करेण । आर्त्ता प्रदुदावयतः स्त्रि-यस्तावृद्धस्य राज्ञः कुरुपुंगवम्य ॥ २५ ॥

अर्थ-यह सुनते ही द्रौपदी अत्थनत दुखित हो अपने मुख को हाथों से पोंछती और रोती हुई कुरुश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र के घर की स्त्रियों की ओर भागी ॥ ततो जवेनि। ससार रोषाहुःशासनस्ता-मिगर्जमानः । दीर्घेषु नीलेष्वथ चोर्मिमत्सु जग्राह केशेषु नरेन्द्रपत्नीम ॥२६॥

अर्थ-यह देखकर दुःशासन कोधित हो गर्जता हुआ उसके पीछे दौड़ा और उस नीले तथा घुंघराले दीर्घ केशों वाली नरेन्द्र पत्नी को केशों से पकड़लिया ॥

यो राजस्यावभृथेजलेनमहाऋतौ मंत्रपूर्तनसिक्ताः। तेपाण्डवानां परिभूयवीर्यं बलात्प्रमृष्टा धृतराष्ट्रजेन।२७।

अर्थ-देखो देवयोग कैसा प्रवल है कि जो बाल राजसूय यज्ञ के अंत में अवभूथ स्नान समय मंत्रों के जल से सिंचन किये गये थे उन्हीं को दुःशासन ने पाण्डवों के पराक्रम का तिरस्कार करते हुए वलपूर्वक मरोड़ डाला, और:—

सतां पराकृष्यसभासमीपमानीयकृष्णामति-दीर्घकेशीम् । दुःशासनो नाथवतीमनाथ वचकर्ष वायुः कदलीमिवार्त्ताम् ॥२८॥

अर्थ-वायु से कम्पायमान केले के पत्र समान अत्यन्त दुःख से कांपती हुई उस वड़े २ केशों वाली सनाथा द्रोपदी को अनाथा की भांति खींचता हुआ दुःशासन सभा की ओर लेचला॥

साकृष्यमाणा निमतांगयष्टिः शनैकवाचाथ रजस्वलाऽस्मि । एकं च वासो मम मंद-बुद्धे सभां नेतुं नाईसि मामनार्य ॥२९॥

सभापर्व-चतुश्चत्वारिशाध्याय

653

अर्थ-तव द्रौपदी ने उसके खींचते समय कमर झुकाये हुए नम्रतापूर्वक धीरे से कहा कि अरे मंदबुद्धि! अरे अनार्य्य! मैं रजस्वला हूं और एक वस्त्र पहरे हुए हूं, तू मुझको सभा में न लेचल॥

ततोऽत्रवीत्तां प्रसमं निगृह्य केशेषु कृष्णेषु तदा स कृष्णाम् । कृष्णं च जिष्णुं च हिरं -नरं च त्राणाय विकोशति याज्ञसेनी ॥३०॥

अर्थ-तदनन्तर उस पकड़े हुए केशों वाली द्रौपदी ने हें कृष्ण ! हे विष्णु ! हे हिर ! हे नर ! कह २ कर रक्षा के लिये पुकारा और रोने लगी, तब दुःशासन बोला कि:—

रजस्वला वा भव याज्ञसोनि एकांबरा वाप्य-थवा विवस्त्रा । द्यूते जिता चासिकृतासि दासी दासीषु वासश्च यथोपजोषम् ॥३१॥

अर्थ-त् चाहे रजस्वला हो, चाहे एक वस्त्र पहरे हो, चाहे नंगी हो, तुझको हमने जुए में जीतकर दासी किया है सो तेरा दासियों में ही रहना योग्य है ॥

वैशम्पायन उवाच

प्रकीणिकेशी पतितार्धवस्त्रा दुःशासनेन व्यवध्यमाना । द्वीमत्यमर्षेण च दह्य माना शनैरिदं वाक्यमुवाच कृष्णा ॥३२॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे सजन ! तब वह द्रीपदी जिस पाथा वस्त्र गिरगया था और वाल फैल गये थे, दुःशासन के खींचने के कारण कांपती हुई क्रोधित होकर ठज्जापूर्वक धीरे से बोली कि:—

इमे सभायामुपनीतशास्त्राः कियावतः सर्व एवेन्द्रकत्पाः। गुरुस्थाना गुरवश्चेव सर्वे तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम् ॥३३॥

अर्थ-इस सभा में सब बड़े बूढ़े गुरु के समान सम्पूर्ण शास्त्र जानने बाले बैठे हुए हैं उनके आगे मैं इस प्रकार कैसे जासक्ती हूं॥

नृशंसकर्भस्त्वमनार्यवृत्त मामा विवस्त्रां-कुरुमाविकार्षीः । न मर्पयेयुस्तव राज-पुत्राः सेन्द्रापि देवा यदि ते सहायाः ॥३४॥

अर्थ-अरे हे निर्दय! तू मुझे खींचकर वस्त्रहीन मत कर, हे अनार्य! यदि इन्द्र भी तेरी सहायता को आवें तब भी तू इन राजपुत्रों के कोध करने पर नहीं वच सकेगा ॥

धर्मे स्थितो धर्मस्रतो महात्मा धर्मश्च स्हमो निष्णोपलक्ष्यः। वाचापि भर्त्तः परमाणुमात्र-मिच्छामि दोषं न गुणान् विसृज्य ॥३५॥

अर्थ-अरे दुष्ट ! इस समय महात्मा युधिष्ठिर धर्म के विचार में हैं जो बड़ा सूक्ष्म है, "उस धर्म को वही छोग जानते हैं जिन की बड़ी सूक्ष्मबुद्धि होती है" सो मैं उस युधिष्ठिर में गुणों के सिवाय दोष तो यर्तिकचिन्मात्र भी नहीं देखती ॥

इदं त्वकार्यं करवीरमध्ये रजस्वलां यत्प-

सभापर्व-चतुश्चत्वारिशाध्याय

634

रिक्षेसे माम्। नचापि कश्चित् कुरुतेऽत्र कुत्सां श्चतं तवेदं मतमभ्यपेतः॥ ३६॥

अर्थ-हाय तृ मुझको इस रजस्त्रला की अवस्था में कौरतों के सन्मुख खींचे लिये जाता है, इन कोरवों में से किसी को यह देखकर लज्जा नहीं आती और कोई इस कर्म की निन्दा नहीं करता, अब मुझे निश्चय होगया कि यह सबभी तेरी ही सलाह में हैं॥

धिगस्त नष्टः खलु भारतानां धर्मस्तथा क्षात्रविदां च वृत्तम् । यत्र ह्यतीतां कुरु-धर्भवेलां प्रक्ष्यन्ति सर्वे कुरवः समायाम् ॥३७॥

अर्थ-इन कौरवों को धिक्कार है जो इस अधर्म और मर्याद। रहित काम को देख रहे हैं, निश्चय अब इन सब भरतवंशियों का धर्म और क्षत्रियपन नष्ट होगया है ॥

द्रोणस्य भीष्मस्य च नास्ति सत्वं क्षत्तस्यै-वास्य महात्मनोपि । राज्ञस्तथाहि ममधर्म-मुग्नं न लक्षयन्ते कुरु वृद्धमुख्याः ॥३८॥

अर्थ-आज द्रोणाचार्य्य, भीष्म, विदुर और धृतराष्ट्र सब पराक्रम रहित होगये हैं जो कुरुवंशियों में वृद्ध और मुख्य हो-कर भी ऐसा अधर्म देखते हैं॥

तथाब्रुवन्ती करुणं समध्यमा भर्तृन् कटाक्षैः इपितानपश्यत । सा पाण्डवान् कोपपरी-तदेहान्संदीपयामास कटाक्षपातैः ॥३९॥ 680

भहाभारत

अथ-वैशम्पायन बोले के हे राजन ! तदनन्तर शोभन कटि-वाली द्रौपदी ने उक्त मकार कहकर अपने पतियों की ओर क्रोध से कटाक्ष करके देखा जिससे उन क्रोधित हुए पाण्डवों के क्रोध को और भी मदीप्त कर दिया ॥

हतेन राज्येन तथा धनेन रतेश्व मुख्येनी तथा बभूव । यथात्रपाकोपसमीरितेन कृष्णा कटाक्षेण बभूब दुःखम् ॥४०॥

अर्थ-तब उन को द्रौपदी के कटाक्ष से ऐसा दुःख हुआ जैसा राज्य, धन और रत्नों के हारने समय भी नहीं हुआ था ॥

दुःशासनश्चापि समीक्ष्य कृष्णामविक्षमा-णां कृपणान्पतींस्तान् । आध्य वेगेन विसंज्ञकल्पासुवाच दासीति हसन् सशब्दम् ॥४१॥

अर्थ-दुःशासन ने घबराई हुई द्रौपदी को अपने दीन पतियों की ओर देखते हुए देखकर बाल पकड़कर हिलाया और वड़े शब्द से इंसकर अरे दासी, अरे दासी, कहा ॥

कर्णस्त तद्वाक्यमतीवहृष्टःसंयुजयामास हसन् स शब्दम् । गान्धारराजःसुबलस्य पुत्रस्तथैव दुःशासनमभ्यनन्दत् ॥४२॥

अर्थ-कर्ण भी दुःशासन के उक्त वाक्य सुनकर अतिवसन हुआ तथा उसने भी उस वात को माना और सुवल के पुत्र राजा शकुनी ने भी उसकी प्रशंसा की ॥

सभापर्व-चतुश्चत्वारिशाःयाय

683

सभ्यास्तु ये तत्र बभूबुरन्ये ताभ्यामृते धार्त-राष्ट्रेणचैव । तेषामभृद्दुःखमतीव कृष्णां दृष्ट्वा सभायां परिकृष्यमाणाम् ॥ ४३ ॥

अर्थ-उस समय कर्ण, दुर्योधन तथा दुःशासन को छोड़कर जितने अन्य सभ्य पुरुष सभा में वैठे हुए थे उन्हें खिंचती हुई द्रौपदी को देखकर वड़ा दुःख हुआ ॥

भीष्म उवाच नधर्मसौक्ष्म्यात्सभेग विवेक्तं राक्रोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्। अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥४४॥

अर्थ-भीष्मजी बोले कि हे सुभगे! निर्धनमनुष्य दूसरे के धन को जूए में दाउ पर नहीं लगा सकता, परन्तु स्त्री को अपने पति के अधीन समझकर धर्म की सूक्ष्मता को विचारता हुआ मैं तेरे प्रश्न का ठीक २ उत्तर नहीं देसकता॥

त्यजेतसर्वा पृथिवीं समृद्धां युधिष्ठिरो धर्म-मथो न जह्यात् । उक्तं जितोस्मीति च पाण्ड-वेन तस्मान्न शक्तोमि विवेक्तुमेतत् ॥ ४५॥

अर्थ-हां युधिष्ठिर ने यह तो सब के सन्मुख कहा था कि पहिले मैं जीता गया हूं, परन्तु युधिष्ठिर चाहे सब पृथ्वी छोड़दे परन्तु धर्म को नहीं छोड़ेगा, इससे मैं तेरे प्रश्न का क्या उत्तर दूं॥ द्यृतेऽद्वितीयःशकुनिनरेषु कुन्तीसुतस्ते- 683

महाभारत

न निसृष्टकामः । न मन्यतेतां निकृतिं युधिष्ठिरस्तस्मान्न ते प्रश्नमिमं नवीमि ॥ १६॥

अर्थ-हे सुभगे ! यह शकुनि जृआ खेलने में अपने समान दूसरा नहीं रखता, और इस शकुनि की भेरणा से ही युधिष्ठिर न तुझे दाउ पर लगाया था, परन्तु यह युधिष्ठिर ही कहता है कि त छल से दाउ पर नहीं लगाई गई, इस कारण में तेरे प्रश्न का यथोचित उत्तर नहीं देसकता ॥

द्रौपदी उवाच

आह्रय राजा कुशलैरनायैई हात्मभिनें कृतिकैःसभायाम् । द्यूतिप्रयैनीतिकृत-प्रयतःकरमादयं नामनिसृष्टकामः ॥४७॥

अर्थ-द्रौपदी बोली कि है पितामह ! इस राजा ने जो जूआ विल्ना नहीं जानता दूसरों की पेरणा से जूआ विल्कर इन अनार्थ्य, दुष्ट तथा जुआ विल्ने को अच्छा जानने वाले ज्वारियों के कहने से मुझे वयों इस सभा में बुलाया है, और:—

अशुद्धभावीर्नेकृतिमृहत्तेम्बुध्यमानः करुपाण्डवाम्रयः। संभूय सर्वेश्वाजितो-पि यस्मात्पश्चादयं कैतवमभ्युपेतः ॥४८॥

अर्थ-युधिष्ठिर जो सब पाण्डव तथा कौरवों में श्रेष्ठ हैं वह इन नीच और छल से खेलने वाले ज्वारियों से जूआ खेलकर अपने हारजाने से पीछे मुझे हारकर कैसे इन्हें देसकते हैं॥ तिष्ठन्ति चेमे कुरवः सभायामीशः स्तानां च तथा स्तुपाणाम्। समीक्ष्य सर्वे मम चापि वाक्यं विबृत मे प्रश्नमिमं यथावत् ॥ ४९॥

अर्थ-में इन कौरवों से जो सब पुत्र और पुत्रों की स्त्रियों के स्वामी हैं अपने उक्त प्रश्न को पृछती हं, सो सब इसको विचारकर ठीक २ उत्तर दें॥

वैद्यान्यायन उवाच तथा ब्रुवन्तीं करुणं रुद्नतीमवेक्षमाणां कृपणान्पतींम्तान् । दुःशासनः पुरुषाण्य-प्रियाणि वाक्यान्यवाचामधुराणि चैव ॥५०॥

अर्थ-वैशम्पायन दोले कि हे राजा जनमेजय ! उस समय उस आईचित्त से दीन वचन कहती, रोती और अपने पतियों की ओर देखती हुई द्रौपदी से दुःशासन ने बहुत कठोर और अपिय बचन कहे ॥

तां कृष्यमाणां च रजस्वलां च स्वस्तोत्तरी-यामतदर्हमाणाम्। वृकोदरः प्रेक्ष्य युधिष्ठिरं च चकार कोपं परमार्त्तरूपः ॥ ५१॥

अर्थ-हे राजन ! भीमसेन ने उस दुःखी तथा रजस्त्रहा है।पदी को जो दुःख के योग्य न थी और जिसका उत्तरीय वस्त्र गिरपड़ा था दुःशासन से खेंची हुई देखकर युधिष्टिर पर महान क्रोध किया ॥

इति चतुश्चत्वि शोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचचत्वारिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं - अब भीमसेन का युधिष्ठिर पर कोप करना, दुं:शासन का द्रौपदी को सभा में लाना, द्रौपदी के प्रश्न का सभा में उत्तर न मिलना और दुःशासन का द्रौपदी को नंगा करने के लिये उसका वस्त्र खींचना कथन करते हैं:—

भीम उवाच

भवन्ति गेहे बंधक्यः कितवानां युधिष्ठिर ।
न ताभिरुतदीव्यन्ति दयाचैवारिततास्विप ॥१॥
काश्योयद्भनमाहार्षीद्द्रव्यं यच्चान्यदुत्तमम् ।
तथान्ये पृथिवीपाला यानिरुत्तान्यपाहरम् ॥२॥
वाहनानि धनंचैव कवचान्यायुधानि च ।
राज्यमात्मा वयंचैव कैतवेन हृतं परैः ॥३॥
नच मे तत्र कोषोभृत्सर्वस्येशोहिनोभवान् ।
इमं त्वतिक्रमं मन्ये द्रौपदी यत्र पण्यते ॥४॥

अर्थ-भीमसेन बोला कि हे युधिष्ठिर! ज्वारियों के घर में जो कोई दासी होती है तो उस पर भी दया करके उसको जूए में दाउ पर नहीं लगाते, राजा काशीनरेश तथायन्य राजाओं ने जो उत्तम रत्न, धन तथा अन्य पदार्थ भेट किये थे उनको और सब बाहन, शस्त्र, राज्य, हम सब और अपने आपको जिन्हें इन छिलयों ने कपट छल द्वारा आपसे जीत लिया है, जूए में दाज पर लगाते हुए देखकर मुझको क्रोध नहीं हुआ, क्योंकि आप इन सबके स्वामी हैं परन्तु आपने जो द्रौपदी को दाउ पर लगाया यह बड़ा मर्यादा से विपरीत काम किया है, क्योंकि :—

एषा ह्यनईती बाला पाण्डवान्त्राप्य कौरवैः। त्वत्कृते क्विश्यते भ्रुद्रैर्नुशंसेरकृतात्मभिः॥५॥

अर्थ-यह द्रौपदी जो दुःख के योग्य नहीं है वह पाण्डवों से विवाहे जाने पर आपके कारण इन क्षुद्र, द्याहीन तथा पापी कौरवों द्वारा बड़ा क्रेश पारही है॥

अस्याःकृतेमन्युरयं त्विय राजित्रगात्यते । बाह्न ते संप्रयक्ष्यामि सहदेवामिमानय ॥६॥

अभे-इस कारण अभ मैं तुन पर क्रोप करता हूं, हे सहदेव! तू उठकर अभि ला, मैं इस युविधिर की दोनों भुजाओं को जलाउंगा॥ अर्जुन उवाच

न पुरा भीमसेन त्वभीहशीर्वदिता गिरः। परेस्ते न शितं नूनं तृशंसैर्घमगौरवम् ॥७॥

अथ-अर्जुन बोला किंहें भीमतेन ! आपने ऐसी बात पहले कभी नहीं कही थी, मैं जानता हूं कि इन निर्देशी शत्रुओं ने तुम्हारे धर्म ओर गौरव का नाश करदिया है ॥

न सकामाः परे कार्या धर्ममेवाचरात्तमम् । भ्रातरं धार्भिकं ज्येब्डं कोतिवर्तितुपर्हति ॥८॥ आहृतो हि परे राजा क्षात्रं ब्रतमनुस्मरन् ।

दीव्यते परकामेन तन्नः कीर्तिकरं महत्।।९॥

अर्थ-हे भीमसेन! तुम्हें धर्म पर रहना उचित है, भला ऐसा कौन होगा जो धर्मात्मा तथा शिल्वान बड़े भाई को छोड़-कर जेसा मन में आवे वैसा करे, और जो शश्च के बुलाने पर राजा ने क्षत्रियों का धर्म विचारकर जुआ खेला है वह भी महान कीर्ति का करने वाला है।।

भीम उवाच

एवमस्मिन कृतं विद्यां यदि नाहं धनंजय । दीप्ताऽमी सहितौ नाहूर्निर्दहेयं नलादिव ॥१०॥

अर्थ-भीमसेन वोला कि हे अर्जुन! यदि मैं तुम्हारे कथना-नुसार धर्म को न समझता होता तो अपने वल से इन्की दोनों बाहों को पज्वलित हुई अग्नि में अवस्य जला देता॥

वैशम्पायन उवाच

तथा तान्दुःखितान्दृष्ट्वापाण्डवान् धृतराष्ट्रजः । कृष्यमाणां च पांचालीं विकर्ण इदमन्नवीत् ॥११॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तत्पश्चात धृतराष्ट्र का पुत्र विकर्ण पांडवों को दुःखी और द्रौपदी को क्रेशित देख-कर बोला कि:—

याज्ञसेन्या यदुक्तं तद्वाक्यं विब्रूत पार्थिवाः । अविवेकेन वाक्यस्य नरकः सद्य एव नः ॥१२॥ अर्थ-हे राजाओ ! जो बात द्रौपदी पूछती है उसको विचार कर स्पष्ट कही नहीं तो वाक्य के अविवेक से अर्थात उसके प्रश्न का उत्तर न देने के कारण आप सब राजा लोग शीघ नरकगामी होंगे॥

भीष्मश्च धृतराष्ट्रश्च कुरुवृद्धतमावुभौ । समेत्यनाहतुः किंचिद्धिदुरश्च महामितः ॥१३॥ भारद्धाजश्च सर्वेपामाचार्य कृपएव च । कृत एताविप प्रश्नं नाहतुर्द्धिजसत्तमौ॥१२॥

अर्थ-हमारे कुल में जो बृद्ध लोग भीष्मिपतामहं, धृतराष्ट्र तथा महा बुद्धिमान विदुर जी हैं उन्होंने और हम सब के गुरु द्रोणाचार्य्य तथा कुपाचार्य्य ने द्रौपदी के प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं दिया, अतएव उचित है कि:—

ये त्वन्ये पृथिवीपालाः समेता सर्वतो दिशम् । कामकोधौ समुत्मृज्य ते ब्रुवन्त यथामितः ॥१५॥

अर्थ-आप सब राजा लोग जो चारों दिशाओं से आकर यहां इकट्टे हुए हैं वह काम तथा क्रोध को छोड़कर अपनी २ मित अनुसार उचित उत्तर दें॥

एवं स बहुशः सर्वानुक्तवां स्तान् सभासदः ।
नच ते पृथिवीपालास्तमूचः साध्वसाधु वा ॥१६॥
उक्त्वासकृत्तथा सर्वान् विकणः पृथिवीपतीन् ।
पाणौपाणिं विनिष्पिष्य निःश्वसन्निदमत्रवीत्॥१७॥
अर्थे-इस प्रकार विकर्ण ने अनेक बातें बार्र उन राजाओं
से कहीं परन्तु किसी ने भी कुछ भला बुरा उत्तर न दिया, तब

989

महाभारत

विकर्ण ऊंचा श्वास भरकर और हाथ मलकर सब राजाओं के मित बोला कि:—

विब्रृत पृथिवीपाला वाक्यं मा वा कथंचन।
मन्ये न्याय्यं यदत्राहं तिद्धि वक्ष्यामि कौरवाः ॥१८॥
अर्थ-हे राजाओ ! आप लोग स्पष्टतया कहें चाहे न कहें,
परन्तु में अपनी मित अनुसार जैसा समझा हूं वह आप सब
कौरवों के समक्ष कहता हूं॥

चत्वार्याहुर्नरश्रेष्ठा व्यसनानि महीक्षिताम्।
सगयां पानमक्षांश्च ग्राम्येचैवातिरक्तताम्॥ १९॥
एतेषु हि नरः सक्तो धर्ममुत्सृज्य वर्त्तते।
यथायुक्तेन च कृतां कियां लोको न मन्यते॥२०॥
अर्थ-(१) मृगया=शिकार खेलना(२) मद्यपान(३) जूआ खेलना
(४) स्त्री पिय होना, यह राजाओं के चार व्यसन हैं, राजा इन
व्यसनों में सदैव धर्ममार्ग छोड़कर वर्तता है अर्थाद इन व्यसनों
के प्रवृत्त होने पर राजा धर्म से गिरजाता है, और इस अवस्था
में वह जो कुछ काम करता है उसको कोई नहीं मानता॥

यदयं पाण्डपुत्रेण व्यसने वर्त्तता भृशम् । समाहृतेन कितवैरास्थितो द्रौपदीपणः ॥२१॥ साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता । जितेन पूर्व चानेन पाण्डवेन कृतः पणः ॥२२॥ इयं च कीर्त्तिता कृष्णासौ बलेन पणार्थिना । एतत्सर्व विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम्॥२३॥ अर्थ-इस खेलरूप वड़े व्यसन में प्रवृत्त हुए युधिष्टिर को ज्वारियों ने निमंत्रित करके खेलने बुलाया था, युधिष्टिर अपने आप खेलने नहीं आया, और जिस समय युधिष्टिर खेल में सर्व- स्म हारकर भाइयों साईत आने आपको भी हारगया उस समय उस ज़र की आग में इसने शकुनी आदि खिलाड़ियों की प्रेरणा से निष्याप द्रौपदी को जो साथारणतः पांचो पाण्डवों की पत्री है दाउपर लगा दिया, इससे मेरे विचार में द्रौपदी जीती नहीं गई।।

एतच्छुत्वा महान्नादः सभ्यानामुद्रतिष्ठत । विकर्णदासमानानांसीवळं चापि निन्दताम् ॥२४॥

अर्थ-यह सुनकर सभा में वेटे हुए सब सभासद विकर्ण की प्रशंसा और शकुनि की निन्दा करते हुए वड़ा शब्द करने छगे॥

तस्मिन्नुपरते शब्दे राघेयः क्रोधमूर्छितः।

प्रगृह्य रुचिरं बाहुभिदं वचनमत्रवीत् ॥२५॥

अर्थ-जब वह शब्द शान्त होनया तब क्रोध से मूर्चिछत हुए कर्ण ने विकर्ण की बांह ५कड़कर कहा कि :—

ट्रयन्ते वै विकणेंह वैकृतानि बहून्याप ।

तज्जातस्तद्भिनाशाय यथाभिररणिप्रजः ॥२६॥

अर्थ-हे विकर्ण! तू इस समय वड़ा विपरीत बोटता है, जैसे अरिण नामक काष्ट्र से अग्नि उत्पन्न होकर उसी काष्ट्र को जला देती है इसी प्रकार तू भी जिस कुल में उत्पन्न हुआ है उसी का नाश करना चाहता है॥

एतेन किंचिद्प्याहुरचोदिता हापि कृष्णया। धर्मेण विजितामेतां मन्यन्ते दृपदात्मजाम् ॥२७॥ अर्थ-देख यहां पर सब बड़े २ प्रतिष्ठित पुरुष बैठे हुए हैं वह सब द्रापदी को धर्मपूर्वक जीती हुई मानकर उसके बार २ पूछने पर भी कुछ उत्तर नहीं देते ॥

त्वं तु केवल बाल्येन धात्तराष्ट्र विदीर्यसे । यद्रवीषि सभामध्ये बालः स्थविरभाषितम् ॥२८॥ नचधमं यथावत्त्वं वेत्सि दुर्योधनावर । यद्रवीषि जितां कृष्णां न जितेति सुमंदधीः ॥२९॥

अर्थ-त अज्ञानी बालक होकर क्यों निकला पहता है जो सभा के मध्य में बृद्धों की भांति बोलता है, हे मंदबुद्धि दुर्योधन के छोटे भाई विकर्ण! तेरा यह कहना कि द्रौपदी जीती नहीं गई, यह तेरे यथावत धर्भ न जानने का कारण है ॥

कथं ह्यविजितां कृष्णां मन्यसे धृतराष्ट्रज । यदा सभायां सर्वस्वं न्यस्तवान् पाण्डवाग्रजः ॥३०॥ अभ्यतरा च सर्वस्वे द्रौपदी भरतर्षभ । एवं धर्मजितां कृष्णां मन्यसे न जितां कथम् ॥३१॥

अर्थ-भला हमें भी तो बता कि तू द्रोपदी को बिना जीती कैसे मानता है, जब युधिष्ठिर ने सब सभा के सन्मुख अपना सम्पूर्ण धन दाउ पर लगा दिया तो क्या द्रौपदी सब धन में नहीं है जो तू उसको बिना जीती हुई कहता है ॥

कीर्तिता द्रौपदी वाचा अनुज्ञाता च पाण्डवैः । भवत्यविजिताकेन हेतुनैपामतातव ॥३२॥

सभापर्व-पंचचत्वारिशाध्याय

649

अर्थ-जब पांडवों ने आपही कहदिया और आज्ञा देदी "िक तू अपने श्वशुर धृतराष्ट्र के समीप आजा" िफर कीनसी ऐसी बात रही जिससे तैने उसको विना जीती समझा ॥

यचैषां द्रविणं किंचिद्याचैषा येच पाण्डवाः । सौचलेनह तत्सर्वं धर्मेण विजितं वसु॥३३॥ दुःशासन सुबालोयं विकर्णः प्राज्ञवादिकः । पाण्डवानां च वासांसि द्रौपद्याश्चाप्युपाहर ॥३४॥

अर्थ-शकुनि ने पांचो पाण्डव और द्रौपदी को सम्पूर्ण धन सहित धर्भपूर्वक जूए में जीता है, सो हे दुःशासन ! यह विकर्ण तो अज्ञानी है तुम इन पाण्डव और द्रौपदी के वस्त्रों को भी उतार छो।।

तच्छुत्वा पाण्डवाः सर्वे स्वानि वासांसि भारत। अवकीयोत्तरीयाणि सभायां समुपाविशन् ॥ ३५॥ ततो दुःशासनः राजन् द्रौपद्या वसनं बलात्। सभामध्ये समाक्षिप्यव्यपाकष् प्रचक्रमे ॥ ३६॥

अर्थ-यह सुनकर सब पाण्डवों ने अपने २ वस्त्र उतारकर अलग रखदिये और सभा में बैठ गये, तत्पश्चात दुःशासन सभा के बीच में वल से द्रौपदी के वस्त्रों को खेंचकर उतारने लगा ॥ वैद्याम्पायन उवाच

आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिंातितो हरिः। गोविन्द द्वारकावासिन कृष्णगोपीजनिष्रय। प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्यवसीदतीम्॥३०॥ 643

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय! तब द्रोपदी वस्त्रों के उतारते समय कृष्ण को अपना सहायक जानकर बोली कि हे गोविन्द! हे द्वारकावासी! हे कृष्ण! हे गोपीजनिषय! भें आपको प्राप्त हुं आप मेरी रक्षा करें, हे गोविन्द! इस कौरवरूपी समुद्र में इवती हुई मुझको वाहर निकालें॥

याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितोभवत् । आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्यास्तु विशापते । तद्रुपमपरंवस्त्रं प्रादुरासीदनेकशः ॥३८॥

अर्थ-द्रौपदी का उक्त बचन सुनकर कृष्ण गद गद होगये, नब वस्त्र के प्लींचने पर कृष्ण ने द्रौपदी को उसी के समान नाता प्रकार के अनेक उक्तम वस्त्र दिये॥

ततो हलहला शब्दस्तत्रासीदघोरदर्शनः । शशंसुद्रीपदी तत्र कुत्सता धृतराष्ट्रजम् ॥ ३९॥

नोट-जो इस स्थल में यह लिखा है कि द्रौपरी के स्मरण करते समय श्रीकष्ण द्वारकापुरी से आये और द्रौपरी को नाना प्रकार के उत्तम वस्त्रों से दक दिया, और ज्यौं २ दु:शासन उन वस्त्रों को खींचता जाता था त्यों २ देवेत, काले, पीले वस्त्र जिंक हते आते थे, दु:शासन खींचते२ थक गया और वस्त्रों का बोझ एक छक्छे के समान होगया. इत्यादि॥

यहां यह अर्थवाद है, बौगदी के स्मरण करते समय द्वारका से तत्काल ही कृष्णकी नहीं आये प्रत्युत वह वहीं थे, कृष्णकी की बलवान तथा तेजस्वी जान-कर अपनी अप्रतिष्ठा होते समय द्वीपदी ने उनकी शरण ली और उन्होंने उसकी तत्काल ही और वस्त्र देदिये जिससे उसने अपना शरीर दांप लिया और इसी अन्तर में सभा में कोलाइल होकर सभी लोग दुःशासन आदि का दुष्कर्म देख

सभापर्व-पंचचत्वारिशाध्याय

अर्थ-तदनन्तर वहां दैंडे हुए योद्धाओं का वड़ा हलहला शब्द होने लगा, और सब राजा लोग दुर्यायत की निन्दा और द्रौपदी की प्रशंसा करने लगे॥

शशाप तत्र भीमस्तु राजमध्ये बृहत्सुनः । क्रोधाद्धिस्फुरमाणाष्ठो निष्पिष्यकरेकरम् ॥ ४० ॥

अर्थ-तब भीमसेन के कीध से ओष्ठ फड़कने लगे और हाथ से हाथ मलकर सब राजाओं के बीच यह शपथ खाई कि:—

इदं मे वाक्यमादध्वं क्षत्रियालोकवासिनः।
नोक्तपूर्वं नरेरन्थेर्नचान्यो यद्धदिष्यति॥ ४१॥
अस्य पापस्य दुर्बुद्धभीरतापसदस्य च।
न पिवेयं बलादक्षो मित्त्वा चेद्विषरं युधि ॥४२॥
यद्येतदेवमुक्त्वाहं न कुर्या पृथिवीश्वराः।
पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्तुयाम् ॥४३॥
अर्थ-में सब राजाओं को स्वनकर प्रतिहा करता हं कि मैं

युद्ध में इस नीच और भरापापी भरतकुलकलंक दुःशासन के हृदय को फाड़कर इसका लोहू पीउंगा, आज तक ऐसी प्रतिक्वा न किसी ने की और न कोई करेगा, परन्तु जो मैं इस अपनी प्रतिक्वा को सत्य न कहं तो मुझको मेरे पूर्व पुरुषाओं की गति न भिले॥

इति पैचचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं - अव धृतराष्ट्र का द्रौपदी को वर देना और पाण्डवों का दासभाव से छूटना कथन करते हैं:—

विदुर उवाच

परंभयं पश्यत भीमसेनात्तद्बुद्धचध्वं पार्थिवाःप्रातिपयाः।दैवेरितोन्नमयं पुरस्तात्परोनयो भरतेषूद्पादि ॥ १ ॥

अर्थ-तत्पश्चात् विदुरजी बाल कि हे प्रतीपवंशी राजा लोगो! अब भी समझो भीमसन का वड़ा भय है, और इन भरतवंशियों की मित तो देवताओं ने पिहें ही हरली है जिसके काएण यह बड़ी अनीति कर रहे हैं॥

अतिद्यूतं कृतिमिदं धार्त्तराष्ट्र यस्मातिस्त्रयं विवद्धं सभायां । योगक्षेमो नश्यतो वः समग्रौ पापान्मंत्रान्क्रखो मंत्रयान्ति ॥२॥

अर्थ-हे दुर्योधन! यह जूआ पर्यादा से आगे बढ़गया जिसके कारण तय स्त्री को सभा में लाकर विवाद कर रहे हो, तुम लोगों का ऐश्वर्य तथा बड़प्पन तो स्त्री को सभा में लाकर उसको क्रेशित करने से ही नष्ट होचुका, और अभीतक कुमंत्र= खोटी सलाह ही करते चले जारहे हो, मुझे तुम सब का कल्याण दिखाई नहीं देता ॥ इमं धर्म करवो जानता शुध्वस्ते धर्म परिषत्संप्रदुष्येत्। इमां चेत्पूर्विकतवोऽ ग्लहिष्यदीशोभविष्यद्पराजितात्मा ॥३॥

अर्थ-हे कौरनो ! आप छोगों को यह धर्म समझना उचित है, वयोंकि इस धर्म को न समझने से सभा को दृपण छगता है, जो युधिष्ठिर अपने को विना हार द्रौपदी को हारजाता तो निस्सन्देह वह उसका स्वामी रहता, और :—

रवप्ने यथैति द्विजितं धनं स्यादेवं मन्ये यस्य दीव्यायनीशः । गान्धारराजस्य वचो निशम्य धर्मादस्मात् इस्वोमापयात॥ ॥

अर्थ-ऐसे ज्वारी से धन जीतना जो उस धन का स्वाधी नहीं है वह जीता हुआ धन स्वम में मिले हुए धन के समान है, इस लिये आप लोगों को कन्धार के राजा शकुनी की सलाह सुनकर धर्म से हटना उचित नहीं।

दुर्योधन उवाच भीमस्यवाक्ये तद्धदेवार्ज्जनस्यस्थितोहं वै यमयोश्चेवमेव । युधिष्ठिरं ते प्रवदं-त्वनीशमथादास्यान्मोध्यसे याज्ञसेनि ॥५॥

अथ-दुर्योधन बोला कि है विदुर ! अब मैं इस बात को भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा महदेव के उपर ही छोड़ता हं, यह अपने मुख से कहदें कि युधिष्टिर इसका स्वामी नहीं है तो मैं अभी द्रौपदी को दासीभाव से मुक्त करदंगा ॥ 268

महाभारत

अर्जुन उवाच

ईशो राजा पूर्वमासीद्रग्लहे नः क्रन्तीस्तो धर्मराजो महात्मा। ईशस्त्वयं कस्य प्राजि-तात्मा तज्जानीध्वं कुरवः सर्व एव ॥ ६॥ अर्थ-अर्जुन बोला कि हे दुर्योधन ! यह धर्मराज युधिष्ठिर

पहले हम सबके स्वामी थे परन्तु आप सब लोग इस वात को समझें कि अपने आपको हारने पर यह युधिष्ठिर किसी के स्वामी गहे ? अर्थात् नहीं रहे ॥

मृत्राष्ट्र पवत्य

हतोसि दुर्योधन संदब्धे यस्त्वं सभायां करुपुंगवानां । स्त्रियं समाभावसिद्धिने-नीत विशेषतो द्रौषदीं धर्मषत्नीम् ॥७॥ अर्थ-धृतराष्ट्र बोला कि हे दुर्बुद्धि दुर्घोदन ! तू वड़ा नीच है जो श्रेष्ठ कुरुवंशियों की सभा में स्त्री से बात करता है और विशेषकर इस धर्मपत्री द्रौषदी से ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा धृतराष्ट्रो मनीषिहितान्वेषी बान्धवानामपायात्। कृष्णां पांचालीमद्रवी-त्सांत्वपूर्व विमृश्यैतत्प्रज्ञया तत्त्वबुद्धिः ॥८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तत्वज्ञ तथा बुद्धि-मान राजा धृतराष्ट्र दुर्योधन से उक्त प्रकार कहकर अपने भाइयों के वियोग समय विचारपूर्वक द्रौपदी से बोले किः—

सभापर्व-पटचत्वारिशाध्याय

663

वरं वृणीष्व पांचालि मत्तो यदभिवांछिस । वधूनां हि विश्विष्टामे त्वं धर्मपरमासती ॥९॥

अर्थ-हे द्रौपदि ! तू वधुओं में श्रेष्ठ, धर्मचारिणी और पति-ब्रता है, सो जो तेरी इच्छा हो सो मुझसे वर मांग ॥

द्रासि चेद्ररं महा गुणामि भरतर्पम ।
सर्वधर्मानुगः श्रीमानदासोस्तु युधिष्ठिरः ॥१०॥
मनस्विनमजानन्तो भैवं ब्रृयुः कुमारकाः ।
एष वे दास पुत्रो हि प्रतिविध्यं ममात्मजम्॥११॥
अर्थ-द्रीपदी बोली कि हे भरतकुलभूषण महाराज! जो आप
मुझे वर देना चाहते हैं तो यह वर दें कि श्रीमान धर्मात्मा युधिपिर अदास हों, और मेरे मनस्वी प्रतिविध्य पुत्र को कोई दासपुत्र
न कहे, जैसा वह राजाओं से लालित होकर राजपुत्र कहाता
था वैसा ही रहे॥

धृतराष्ट्र डचाच एवंभवतु कल्याणि यथात्वमिभापसे । द्वितीयं ते वरं भद्रे ददानि वस्यस्व ह । मनोहि मे वितसतिनैकं त्वं वस्मर्हिस ॥१२॥ अर्थ-धृतराष्ट्र बोले कि हे द्रोपदी ! जो त कहती है वह तुझे वस्दान दिया, ऐसा ही होगा, परन्तु त एक ही वस्तान हे योग्य नहीं, में तुझकां और वर देना चाहता है जो इच्छा हो सो मांग ॥ 646

महाभारत

द्वीपदी उदाच सरथी सधनुषी च भीमसेनधनं जयी। यमी च वश्ये राजझदासान स्ववशानहम् ॥१३॥ अर्थ-द्रौपदी बोळी कि हे महाराज!भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव अदास हों, और उनको उनके स्थानधा धनुष देदिये जायं॥

धृतराष्ट्र उवाच

तथास्त ते महाभागे यथात्वं निन्दनीच्छिस ।
तृतीयंवरयास्मत्तो नासिद्धास्यां सुसंस्कृता ।
त्वं हि सर्वरनुपाणां मे श्रेयस्ति धर्मचारिणी।।१८॥
अर्थ-धृतराष्ट्र बोले कि हे महाभाग ! तथास्तु=ऐका ही
होगा, अब तू तीसरा वर मुझसे और मांग, तुझे दो वरदान देने
से मेरी तृप्ति नहीं हुई, क्योंकि न धर्मचारिणी और मेरी सब
बहुओं में श्रेष्ठ है ॥

द्रांपदी उवाच लोभो धर्मस्य नाशाय भगवन्नाहमुत्संह । अनहीं वस्मादातुं तृतीयं राजसत्तम ॥१५॥

अर्थ-द्रौपदी बोली कि है राजाओं में श्रेष्ठ महाराज! अधिक लोभ करने से धर्म का नाश होता है, इसलिये में अब तीसरा वर मांगना नहीं चाहती॥

एकमाहुवैंश्यवरं द्वी तु अत्रस्त्रियी वरी। त्रयस्तु राज्ञो राजेन्द्र बाह्मणस्य शतंवराः ॥१६॥

सभापर्व-सप्तचत्वारिशाध्याय

660

पापीयांस इमे भ्रत्वा संतीर्णाः पतयो मम । वेत्स्यन्ति चैव भद्राणि राजनपुण्येन कर्मणा ॥१७॥

अर्थ-शास्त्र में वैक्य को एक वर, क्षत्राणी को दो, राजा को तीन और ब्राह्मण को सौ वर तक छिखा है, सो हे राजन ! भेरे यह पति अव दासभावक्ष्य पाप से छटकर श्रुभकर्म करके बहुत कल्याण को प्राप्त होंगे॥

इति षट्चत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं ० – अव कर्ण की बात सुनकर भीमसेन का क्रोधित होना और युधिष्ठिर का उसके काथ को शान्त करना कथन करते हैं:— कर्ण उवाच

यानः श्रुता मनुष्येषु स्त्रियो रूपेण मंमताः । तासामेतादृशं कर्म न कस्याश्च न श्रुश्चम ॥१॥ क्रोधाविष्टेषु पार्थेषु धात्तराष्ट्रेषु चाप्यति । द्रोपदी पाण्डपुत्राणां कृष्णा शान्तिरहाभवत् ॥२॥ अप्लवेंऽभसिमग्नानामश्रतिष्ठे निमज्जताम् । पांचाली पाण्डपुत्राणां नौरेषा पारगाभवत् ॥३॥

अर्थ-कर्ण वोला कि मैंने आज तक जितनी स्वरूपवान स्त्रियां मुनी हैं उनमें ने ऐना कर्म किमी स्त्री का नहीं मुना जैसा इस द्रौपदी ने किया कि पाण्डव तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों के क्रोध को शान्त करके पाण्डवों को महादुः एक समुद्र में से नौकारूप होकर निकाला है।।

वैशम्पायन उवाच

तदेशुत्वा भीमसेनः कुरुमध्येत्यमर्षणः । स्त्रीगतिः पाण्डपुत्राणामित्युवाचसुदुर्मनाः ॥४॥

अध-वैशम्पायन दोले कि हे राजन ! भीमसेन यह बात मुनकर कि "पाण्डवों की गति स्त्री हुई" बड़ा क्रोधित हुआ और दुःखी होकर दोला कि:—

त्रीणि उयोतींषि पुरुष इति वै देवलोऽत्रवीत्। अपत्यंकर्म विद्या च यतः सृष्टाः प्रजास्ततः ॥५॥

अर्थ-मैंने देवल ऋषि से सुना है कि सन्तान, शुभकर्म और विद्या, यह तीनों लोक के प्रकाश करने वाले हैं अर्थाद इन्हीं तीनों प्रकाशकृष उयोति से प्रजा उत्पन्न होती है, और:—

अमेध्य वै गतपाणे शून्य ज्ञाति भिरुझ्झिते । देहेत्रितयभेवेतः पुरुषरयोपयुज्यते ॥६॥

अर्थ-यही तीनों उन मनुष्यों का "जिनके प्राण अपवित्रता भे छुटे वा जिनको जाति वालों ने छोड़िद्या अथवा जो शुन्य स्थान में हैं" उपकार करने वाले हैं॥

तन्नो उयोतिरिभहतं दाराणामभिमरीनात् । धनंजय कथेरिवतस्याद्यत्यमोभिमृष्टजम् ॥७॥ अर्थ-मो वह मन्तान विना स्त्री के कैसे होस्कती है, इस

सभापर्व-सप्तचत्वारिशाध्याय

626

कारण स्त्री ही सबकी परमगित है, हे अर्तुन! सत्य है जो मनुष्य परपुरुष की संगत से उत्पन्न हो वह ऐसा क्यों न कहे, जैसा कर्ण कहना है ॥

अर्जुन उवाच

नचैवोक्ता नचानुक्ता हीनतः परुषागिरः। भारत प्रतिजल्पन्ति सदातूत्तम पूरुषाः॥८॥ रमरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि।

संतः प्रतिविजानन्तो लब्धंसभावनाःस्वयम् ॥९॥

अर्थ-अर्जुन बोला कि हे भीमसेन! जो भले पुरुष होते हैं वह नीच आदमी से दात नहीं करते दाहे वह कुछ कहे वान कहे, और मंत=सत्पुरुष दूसरे के किये उपकार को जानकर सदैव सुकृत=कल्य।णकर कर्मों का ही स्मरण करते अर्थात रुदा उसका भला ही चिन्तन करते हैं और किये हुए वैर को कभी हृदय में नहीं आने देते ॥

श्रीम उवाच

इहैवैतांस्त्रासर्वान्हिन्मशत्रून्समागतान् । अथ निष्क्रम्य राजेन्द्र समूलान्हिन्म भारत ॥१०॥ किहो विविदतेनेह किमुक्तेन च भारत । अद्येवैतान्निहन्मीह प्रशाधि पृथिवीमिमाम् ॥११॥

अर्थ-फिर भीमसेन राजा युधिष्ठिर से बोला कि हे राजेन्द्र!
यहां वृथा बाद विवाद करने से क्या लाभ, यदि आप आज्ञा दें
तो हम लोग बाहर निकलकर इन सब शत्रुओं का हनन करके
निर्मूल करदें, फिर आप इस पृथ्वी का शासन भेलमकार करें।

महाभारत

इत्युक्त्वा भीमसेनस्तुकिनष्ठेर्भातृभिः सह।
मृगगध्ये यथासिंहो मुहुर्मुहुरुदेश्वत ॥१२॥

अर्थ-यह कहकर भीमसेन वहां भाइयों सहित इस प्रकार बार २ देखने लगा जैसे मृगों के वीच सिंह देखता है ॥

सांत्वयमानो वीक्षमाणः पार्थेनाक्तिष्टकर्मणा । खिद्यत्येव महावाहुरंतद्दिन वीर्घ्यवान् ॥१३॥ कुद्धम्य तस्य स्रोतेभ्यः कर्णादिभ्या नराधिप । सधूमः सस्फ्रिंगार्चिः पावकः समजायत ॥१४॥ भुकुशकृत दुष्पेक्षमभवत्तस्यतन्मुखम् ।

युगान्तकाले संप्राप्ते कृतांतस्येव रूपिणः ॥१५॥

अर्थ-उस समय बलवान भीमसेन दहे हिष्टकर्म करने वाले युधिष्ठिर के शान्तस्वरूप को देखकर दुः खित हुआ और क्रोध के कारण उसके कान, नाक आदि सब स्रोतों से धूम और चिनगा-रियां सहित आग निकलने लगी अर्थाद वह क्रोध के मारे जल उठा, और प्रलयकाल के रुद्रूप सहश उसका मुख, भोहें आदि चढ़ाने से ऐसा भयानक होगया कि उसके सन्मुख मनुष्य नहीं देखसकता था।

युधिष्ठिरस्तमावार्य बाहुनाबाहुशालिनम् । मैवमित्यत्रवीचैनं जोषमास्वेति भारत ॥१६॥

अर्थ-तब युधिष्ठिर ने उसका ऐसा स्वरूप देख हाथ पकड़-कर कहा कि भाई ऐसा मत कहो चुप होकर बैठे रहो ॥

सभापर्व-अष्टचत्वारिशाध्याय

1.63

निवार्य च महाबाहुं कोपसंरक्तले। चनम् । पितरं समुपातिष्ठत् धृतराष्ट्रं कृतांजिलः ॥१७॥

अर्थ-इस प्रकार महावाहु भीमसेन को सान्त्वना देकर युधिष्ठिर दोनों हाथ जोड़कर धृतराष्ट्र के सन्मुख खड़ा होगया ॥

इति सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

-DECOSS --

अथ अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं०-अब धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर को शिक्षा करना और सब भाइयों सहित युधिष्ठिर का इन्द्रपस्य को जाना कथन करते हैं:—

युचिष्ठिर उवाच

राजन् किंकस्वामस्ते प्रशाध्यस्मांस्त्वमीक्वरः । नित्यंहि स्थातुमिच्छामस्तवभारतशासने ॥१॥

अर्थ-युधिष्ठिर बोले कि हे महाराज ! आप मेरे स्त्रामी हैं सो अब मेरे लिये क्या आज्ञा है ? मैं आपही की आज्ञा में रहना चाहता हूं ॥

धृतराष्ट्र उवाच

अजातशत्रो भद्रं ते अरिष्टं स्वस्ति गच्छत। अनुज्ञाताः सहधनाः स्वराज्यमनुक्रस्त ॥२॥ इदं चैवावबोद्धव्यं वृद्धस्य मम शासनम्। मया निगदितं सर्वं पथ्यं निःश्रेयसं परम् ॥३॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोले कि हे अजातशञ्च युधिष्ठिर ! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम निर्विघ्न तथा शान्तिपूर्वक अपने घर को जाओ और धन साहित आनन्द से राज्य करो, और मुझे बृद्ध जानकर मेरी आज्ञा को अपने लिये कल्याणकारी समझो ॥

वेत्थ त्वं तात धर्माणां गतिं सूक्ष्मां युधिष्ठिर । विनीतोसि महाप्राज्ञ वृद्धानां पर्युपासिता ॥४॥

अर्थ-हे तात ! तुम धर्म की सुक्ष्म गति को जानते हो, और तुम नम्र, ज्ञानी तथा वृद्धों की सेवा करने वाले हो ॥

यतो बुद्धिस्ततः शान्तिः प्रशमं गच्छ भारत । नादारुणियतेच्छस्त्रं दारुण्यतिन्नपात्यते ॥५॥

अर्थ-जहां बुद्धि होती है वहां शान्ति रहती है अर्थात बुद्धि-मान पुरुषों में सदैव क्षमा वास करती है, इससे अब तुम भी शान्त होकर रहो, और इस नीति को याद रखो कि शस्त्र पत्थर आदि कड़ी वस्तुओं पर नहीं चलता और नरम वस्तुओं को काट डालता है ॥

नवराण्यभिजानित गुणान्पश्यन्तिनागुणान् । विरोधं नाधिगच्छन्ति ये त उत्तमपूरुषाः ॥६॥ अर्थ-उत्तम पुरुष वैर को अपने मन में नहीं रखते और न

विरोध करते हैं किन्तु गुणों पर ही ध्यान रखते हैं॥

स्मरित सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि । संतः परार्थं कुर्वाणानावेक्षं ते प्रतिक्रियाम् ॥७॥

अर्थ-हे युधिष्ठिर! संत=श्रेष्ठ पुरुष किसी से वैर न करते हुए मनुष्य के कल्याणकर कर्मों का ही स्भरण करते हैं और वह दूसरे के वैर को याद करके बदला लेने का उपाय नहीं करते॥

संवादे परुपाण्याहुर्युधिष्टर नराधमाः । प्रत्याहुर्मध्यमास्त्वेतेऽनुक्ताः परुषमुत्तरम् ॥८॥ नचोक्ता नैव चानुक्तास्त्वहिताःपरुषागिरः । प्रतिजल्पन्ति वै धीराः सदात्त्तमपूरुषाः ॥९॥

अर्थ-हे युधिष्ठिर! जो पुरुष वात चीत करने में लोटे बचन बोलते हैं वह अधम=नीच होते हैं, जो उस लोटे बचन को सुन कर वैसा ही उत्तर देते हैं वह मध्यम पुरुष हैं, और जो उत्तम तथा धैर्य्यवान हैं वह अभिय तथा मर्मछेदन करने वाले बचन सुनकर विषाद नहीं करते तथा नाही मत्युत्तर देते हैं, और:—

स्मरिनत सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यिष । संतः प्रतिविजानन्तो लब्ध्वा प्रत्ययमात्मनः॥१०॥

अर्थ-वह सत्पुरुप अपने आत्मा के समान ही दृसरे का भला चाहते हुए शुभकमों में प्रवृत्त रहते हैं, और जो कोई उन से कदाचित वैर भी करे तो भी वह क्षमादृष्टि ही रखते हैं॥

असंभिन्नायमर्यादाः साधवः प्रियदर्शनाः । तथा चरितमार्येण त्वयास्मिन्सत्समागमे ॥११॥ 666

महाभारत

अर्थ-जैसे साधु पुरुष आर्थ्यमर्यादा से वाहर नहीं होते वैसे ही इस सभा में आप लोगों ने किया है कि अपनी धर्ममर्यादा से बाहर नहीं हुए॥

दुर्योधनस्य पारुष्यं तत्तात हृदि माक्रथाः। मातरं चैव गांधारीं मां च त्वं ग्रणकांक्षया ॥१२॥ उपस्थितं वृद्धमन्धं पितरं पश्य भारत। प्रेक्षापूर्व मयाद्यूतमिदमासीदुपेक्षितम् ॥१३॥

अर्थ-सो हे युधिष्ठिर ! अब तुम मुझ वृद्ध, अंधे तथा अपनी माता गान्धारी की ओर देखकर इस दुर्योधन के किये हुए कर्म को अपने मन से निकाल दो, यह जूआ केवल एक विलासमात्र के लिये मेरी ही मेरणा से हुआ था ॥

मित्राणि दृष्कामेन पुत्राणां च बलाबलम्। अशोच्याः इरवो राजन् येषां त्वमनुशासिता॥१४॥

अर्थ-मुझे अपने पुत्रों का दलादल और मित्रों को देखना था, शोच न करने योग्य कौरवों के आप राजा हैं इसलिये आप को किसी बात का शोच करना उचित नहीं ॥

मंत्री च विदरो धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः । त्विय धर्मोर्ज्जने धैर्यं भीमसेने पराक्रमः॥१५॥ शुद्धा च गुरुशुश्रूषा यमयोः पुरुषाग्रचयोः । अजातशत्रो भदं ते खाण्डवप्रस्थमाविश । भातृभिरतेऽरतु सौभात्रं धम ते धीयतां मनः॥१६॥

सभापर्व-एकोनपंचाशाध्याय

८६७

अर्थ-निस्तन्देह हमारे मंत्री विदुरजी वहे पण्डित तथा बुद्धि-मान हैं और तुम धमात्मा, अर्जुन धैर्य्यवान, भीमसेन पराक्रमी तथा नकुल, सहदेव वहों की शुश्रूषा करने वाले हैं, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे, तुम्हारी बुद्धि धर्म में तत्पर रहे और दुर्योधन आदि भाइयों से तुम्हारी प्रीति रहे, अब तुम लोग खाण्डवप्रस्थ को जाओ।

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्तो भरतश्रेष्ठ धर्मराजो युधिष्ठिरः । कृत्वायसमयं सर्व प्रतग्थे आतृभिःसह ॥१७॥ ते रथान्मेघसंकाशानास्थाय सह कृष्णया । प्रययुर्हृष्टमनस इन्द्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ॥१८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे भरतकुलश्रेष्ठ राजन ! धृतराष्ट्र की उक्त बातें सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने सब बातों के करने की मतिज्ञा की, और वहां से सब भाई द्रौपदी सहित रथों में बैठकर इन्द्रमस्थ को चल्रदिये॥

इति अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकोनपंचाशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं ० – अव दुर्योधन का धृतराष्ट्र से अनेक कारण कहकर पाण्डवों को पुनः जूआ बेलने के लिये बुलाना कथन करते हैं:—

महाभारत

जनमेजय उवाच

अनुज्ञातांस्तान् विदित्वा सरत्नधनसंचयान् । पाण्डवान्धात्तराष्ट्राणां कथमासीन्मनस्तदा ॥१॥

अर्थ-जनमेजय बोले कि हे महाराज! जब धृतराष्ट्र ने पाण्ड-वों को सब रत्न तथा धन देकर इन्द्रमस्थ चलेजोन की आज्ञा दे दी तब धृतराष्ट्र के पुत्रों के मन की क्या गति हुई ? ॥

वैशम्पायन उवाच

अनुज्ञातांस्तान्विदित्वा धतराष्ट्रेण धीमता। राजन् दुःशासन क्षिप्रं जगाम भ्रातरं प्रति।।२।। दुर्योधनं समासाद्यं सामात्यं भरतर्षभ। दुःखात्तों भरतश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत्।।३।।

अर्थ-वैशम्पायन वोले कि हे राजा जनमेजय ! दुःशासन बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र से पाण्डवों को राज्य सहित इन्द्रमस्थ जाने की आज्ञा दीहुई जानकर महादुःखी हुआ और मन्त्री तथा अपने भाई दुर्योधन के समीप जाकर यह बचन वाला कि :—

दुः सेनैतत्समानीतं स्थिवरो नाशयत्यसौ । शत्रुसाद्गमयद्द्रव्यं तद्बुध्यध्वं महारथाः ॥१॥ अथ दुर्योधनः कणः शकुनिश्चापि सौबलः । मिथः संगम्य सहिताः पाण्डवान्प्रतिमानिनः ॥५॥ वैचित्रवीर्यं राजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् । अभिगम्यत्वरायुक्ताः श्ठक्षणं बचनमब्रुवन् ॥६॥ अथ-हे भाई दुर्योवन ! देखो किन दुःव मे तो शत्रु की वश करके हमने घन लिया था परन्तु इस बुट्टे ने सब किया कराया व्यर्थ करिद्या, यह सुनकर दुर्योधन, शकुनि और कर्ण तीनों पाण्डवों से बदला लेने की इच्छा से तुरन्त ही धृतराष्ट्र के पास पहुंचे और उनमे स्त्रहमहित कहने लगे कि :—

नत्वयेदं श्रुतं राजन् यज्जगाद बृहस्पतिः। शुक्रस्य नीतिं प्रवदन् विद्वान् देव पुरोहितः॥॥। अर्थ-हे राजनः! आपने शुक्र की कही हुई नीनि जो बृहस्पनि

जी ने देवताओं से उनके हितार्थ कही थी वह नहीं मुनी ॥

सर्वोपायैर्निहंतव्याः शत्रवः शत्रुस्द्न । पुरायुद्धाद्वलाद्धापि प्रकुर्वन्ति तवाहितम् ॥८॥

अर्थ-हे इञ्चनाशक राजत ! मनुष्य को वाहिये कि अपने शञ्ज को युद्ध तथा प्राक्रम करने से पहले ही जिस उपाय द्वारा होसके मारडाले, क्योंकि शञ्ज सदा ही अहित करता है ॥

ते वयं पाण्डवधनैः सर्वान्संप्रज्य पार्थिवान् । यदि तान् योधयिष्यामः किं वैनः परिहास्यति॥९॥

अर्थ-हमारी इच्छा थी कि हम पाण्डवों के धन से सब राजाओं को अपने वश में करहें, और यदि ऐसा करने पर पाण्डवों से हमारा युद्ध भी होता तो कुछ हानि न थी॥

अहीनाशीविषान्कुद्धान्नाशायसमुपिस्थितान् । कृत्वा केंठे च पृष्ठे च कः समुत्स्रष्ट्रमहिति ॥१०॥ अर्थ-भठा ऐसा कौन मनुष्य होगा जो विष्यारीसपी को अपने

अये-भल्ला एसा कान मनुष्य होगा जा निर्मार का है । आपको नाश करने के लिये अपने कंघों और पीठ पर छोड़ेगा ॥

आत्तरास्त्रारथगताः कुपितास्तात पाण्डवाः ।

निःशेषं वः करिष्यन्ति ऋद्वाद्याशीविषा इव ॥११।

अर्थ-सो हे पिता ! पाण्डव भी सांपों की भांति कोधित होरहे हैं वह जिस समय शस्त्र लिये हुए रथों पर चढ़कर आवेंगे उसी
समय हम सबका हनन करदेंगे, एक को भी शेष न छोड़ेंगे ॥

सन्नद्धो हार्जुनो याति विधृत्य परमेषुधी ।
गांडीवं मुहुरादत्ते निःश्वसंश्च निरीक्षते ॥१२॥
गदां एवीं समुद्यम्य त्वरितश्च वृकोदरः ।
स्वर्थयोजियत्वाशु निर्यात इति नः श्रुतम्॥१३॥
अर्थ-हे राजन ! अर्जुन यहां से चलते समय रथ में वैठ
तरकसों को बांधकर वार २ गाण्डीव धनुष को उठाता तथा स्वास
भरकर वार २ चारो ओर देखता था, और भीमसेन भी अपनी
भारी गदा को उठा अपना रथ जोतकर शीघ्र ही चल दिया, ऐसा
हमने सुना है ॥

नकुलः खड्गमादाय चर्मचाप्यर्द्धचन्द्रवत् ।
सहदेवश्च राजाच चक्रुराकारिमागितेः ॥१४॥
ते त्वास्थाय रथान्सर्वे बहुशस्त्रपरिच्छदान् ।
अभिन्नतो रथन्नातान्सेनायोगाय निर्ययुः ॥१५॥
न क्षंस्यन्तेतथास्माभिजीतु विप्र कृताहिते ।
द्रौपद्याश्च परिक्केशं कस्तेषां क्षन्तुर्महिति ॥१६॥
अर्थ-नकुल ने भी अपनी अर्दचन्द्रमा के समान ढाल और
तलवार उठाली, सहदेव तथा युधिष्ठिर यों ही गये हैं, उन के आकार

तथा चेष्टा से ऐसा प्रतात होता था कि वह सब रथों को दौड़ाते हुए अनेक शस्त्र और सेना लेने के लिये गये हैं, सो वह सेना लाकर अवश्य उत्पात करेंग, क्योंकि हमने उनके साथ जो वर्ताव किया तथा द्रीपदी को जो क्रेश दिये हैं उनको वह कभी न सह

सकेंगे, इसिटये :-

पुनर्दीव्याम भद्रं ते वनवासाय पाण्डवैः।
एवमेतान्वरे कर्तु शक्ष्यामः पुरुष्पेभ ॥१७॥
ते वा द्वादशवर्षाणि वयं वा द्यूतिनर्जिताः।
प्रविशेम महारण्यमजिनैः प्रतिवासिताः ॥१८॥
त्रयोदशं सजनेन अज्ञाताः प्रतिवत्सरम्।
ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥१९॥
निवसेम वयं ते वा तथा द्यूतं प्रवर्त्तताम्।
अक्षानुप्वा पुनर्द्यूतमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥२०॥
एतत्कृत्यतमं राजन्नस्माकं भरतर्षभ ।
अयं हि शकुनिर्वेदसविद्यामक्षसंपदम्॥२१॥

अथ हि राक्षानपद्रतानचानस्तान् रें से अप फिर उनको अर्थ-हे पुरुषोत्तम ! में यह चाहता हूं कि आप फिर उनको लौटाकर जूआ करायें, अबकी वार हम उनसे यह पण करेंगे अर्थात यह दाउ बदेंगे कि जो जीते वह दोनों का राज्य पाने और हारने वाला मृगछाला ओढ़कर बारहवर्ष बन में वसे, तेरहवें वर्ष में गुप्त रहे और जो उस तेरहवें वर्ष में कोई उसको यह जानले कि यह अमुक है तो वह फिर बारहवर्ष तक वनवास करे, हे राजन ! ऐसा करने से हम पाण्डवों को अपने वश में करलेंगे. क्योंकि यह शकुनि पासे फेंकने में बड़ा चतुर है ॥

हृत्मूला वयं राज्ये मित्राणि परिगृह्य च । सारवाद्रपुलं सैन्यं सत्कृत्य च दुरासदम् ॥२२॥ ते च त्रयोदशं वर्षे पारायिष्यान्त चेद्वतम् । जेष्यामस्तान्वयं राजन् रोचतां ते परंतप ॥२३॥

अर्थ-यदि पाण्डव तेरहवर्ष का व्रत पूरा करके आभी जावेंगे तो भी उतने काल में हम सब मित्रों को वश करके तथा बहुतसी सेना को आदर सहित इकटा कर हाथों हाथ उनको युद्ध में जीत लेंगे, सो हे राजव! आपको हमारा यह कथन मानना उचित है॥

धृतराष्ट्र उवाच

तूर्ण प्रत्यानयस्वतान्कामं व्यध्वगतानिप ।
आगच्छन्तु पुनर्द्धृतिमिदं कुर्वन्तु पाण्डवाः ॥२४॥
अर्थ-धृतराष्ट्र बोटा कि अभी जाकर पाण्डवों को जो दूरं
भी निकल गये हों तो भी शीघ्र लौटा टाओ ताकि वह यहां
आकर पुनः उक्त दाउ बदकर जुआ खेलें॥

वैशम्पायन उवाच

ततो द्रोणः सोमदत्तो बह्धिकश्चैव गौतमः । विदुरो द्रोणपुत्रश्च वैश्यापुत्रश्च वीर्य्यवान् ॥२५॥ भूरिश्रवाः शान्तनवो विकर्णश्च महारथः । माद्यतिमत्यभाषंत शमोस्तिवाति च सर्वशः ॥२६॥ अथ-वैशम्पायन बोले कि हे राजनः ! होणाचार्य्य, सोमदत्त, वाह्यकि, कृपाचार्य्य, विदुरः अश्वत्थामाः पराकृमी युद्धत्सु, भूरि-

सभापर्व-पंचाशाध्याय

683

श्रवा, भीष्मिपितामह और विकर्ण इन सब महारिथयों ने राजा धृत-राष्ट्र से पृथक २ कहा कि अब जुआ होना उचित नहीं ॥

अकामानां च सर्वेषां सुहृदामर्थदर्शिनाम् । अकरोत्पाण्डवाह्वानं धृतराष्ट्रः सुतिषयः ॥२७॥

अर्थ-परन्तु धृतराष्ट्र ने उनके कथन पर ध्यान न देकर अपने पुत्र का पिय करने की इच्छा से उन पाण्डवों को फिर बुलाया जो जुआ खेलना नहीं चाहते थे॥

इति एकोनपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ पंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं - अब गान्धारी का धृतराष्ट्र को दुर्योधन के त्याग का उपदेश कथन करते हैं :—

वैद्याम्पायन उवाच

अथाब्रवीन्महाराज धतगष्टं जनेश्वरम् । पुत्रहाद्धिर्मयुक्ता गान्धारीशोककर्षिता ॥१॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनमेजय ! तत्पश्चात् गान्धारी पुत्र के स्नेह से अपने पति राजा धृतराष्ट्र के पास आई और शोकयुक्त होकर धर्मानुसार उनसे कहने लगी कि:—

जाते दुर्योधने क्षत्ता महामतिरभाषत । नीयतां परलोकाय साध्वयं कुलपांसनः ॥२॥ व्यनदजातमात्रो हि गोमाञ्चरिवभारत । अन्तो नूनं कुलस्यास्य कुरवस्तिन्नवोधत ॥३॥ मानिमजीः स्वदोषेण महाप्सु त्वं हि भारत । मानालानामशिष्टानामभिमस्थामतिं प्रभो ॥४॥

अर्थ-हे राजन ! आपको वह बात अब स्मरण करने योग्य है जो महाबुद्धिमान विदुरजी ने दुर्योधन के जन्म समय कही थी कि इस कुलकलंकी का त्याग करदो, क्योंकि इसने उत्पन्न होते ही गीदड़ के रोने जैसा शब्द कियाथा, सो मुझे दीखता है कि अब कुल का नाश होने वाला है, आप बृद्ध होते हुए अपनी बुद्धि का तिरस्कार करके इन बालकों की बातों में आकर क्यों गहरे पानी में इबते हैं॥

माकुलस्यक्षयेघोरे कारणं त्वं भविष्यसि । बद्धंसेतुकोनुभिद्याद्धमेच्छांतं च पावकम् ॥५॥

अर्थ-आपको इस कुल के नाश होने का कारण वनकर बंधे हुए पुल को गिराना और बुझी हुई अग्नि को जलाना उचित नहीं है ॥

शमे स्थितान को नुपार्थान को पये द्वरतर्षभ ।
स्मरंतंत्वामाजमीढं स्मारियष्याम्यहं पुनः ॥६॥
शास्त्रं न शास्ति दुर्नुद्धिं श्रेयसे नेतराय च ।
न वे वृद्धो बालमित भवेदाजन् कथंचन ॥७॥
त्वन्नेत्राः संतुते पुत्रामात्वांदीणीः प्रहासिषुः ।
तस्मादयं मद्वचना त्त्यज्यतां कुलपांसनः ॥८॥

अर्थ-भला ऐसा कौन काल का मारा हुआ होगा जो शान्त हुए पाण्डवों को फिर से कुपित करके अपना नाश कराना चाहे, हे राजन ! मैं पुनः स्मरण दिलाती हूं कि आप वृद्ध हैं आपको वालकों की सी बुद्धि करना उचित नहीं, हां जो दुर्बुद्धि हो उसको तो शास्त्र का देखना भी गुणकारक नहीं होसकता पर आपतो बुद्धिमान हैं, नेत्रों के तारे के समान आपके पुत्र आपको हंसी २ में कहीं नष्ट न करदें, इसलिये आप मेरे कहने से इस कुल के नाश करने वाले दुर्योधन को त्याग दीजिये ॥

तथातेन कृतंराजनपुत्रस्नेहान्नराधिप । तस्य प्राप्तं फलं विद्धि कुलांतकरणाययत ॥९॥ शमेन धर्मेणनयेनयुक्तायातेबुद्धिःसाम्तु तेमाप्रमादीः । प्रध्वंसिनीक्र्रसमाहिताश्री-र्मृदु प्रौढागच्छति पुत्रपौत्रान् ॥ १०॥

अर्थ-हे राजन ! आपने पहिले भी इसको पुत्र के स्नेह से
नहीं त्यागा था सो अब उसका कुलनाशक फल समीप
आन पहुंचा है, आप तो धर्मात्मा, ब्रह्मज्ञानी और शमपरायण
हैं आप अपनी बुद्धि को असावधान न करें, जो मनुष्य
क्रूर होते हैं उनके घर की लक्ष्मी शीघ्र ही नष्ट होजाती है, और
शीलवान पुरुषों के घर में लक्ष्मी दिन २ बढ़कर बेटे पात तक
को माप्त होती है।

अथाब्रवीन्महाराजो गान्धारी धर्मदर्शिनीम् । अंतःकामं कुलस्यास्तुन शक्तोमि निवास्तिम् ॥११॥ यथेच्छन्ति तथैवाग्तु प्रत्यागच्छन्तु पाण्डवाः । पुनर्चूतं च कुर्वन्तु मामकाः पाण्डवैःसह ॥१२॥

अर्थ-धर्मपरायण गान्धारी के उक्त दरन सुनकर राजा धृतराष्ट्र दोले कि जो इस कुल का नाश ही होना है तो मैं उसको नहीं रोकसदता. जो त कहती है वह सब हो परन्तु पाण्डव यहां आकर मेरे पुत्रों से जुआ अवस्य खेलें।

इति पंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ एकंपचाशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं - अव धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर का शकुनि के साथ पुनः ज्ञा खेलना और सर्वस्व हारकर वन को जाना कथन करते हैं:— वैद्याम्पायन उवाच

ततो व्यथ्वगतं पार्थं प्रातिकामी युधिष्टिरम् । उवाच बचनाद्राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥१॥ उपास्तीर्णासभाराजन्नक्षानुप्त्वा युधिष्टिर । एहि पाण्डव दीव्येति ।पितात्वाहेति भारत ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तदनन्तर पातिकामी बुद्धिमान धृतराष्ट्र की आज्ञा से पाण्डवों के पास जो दूर निकल गये थे पहुंचा, और कहने लगा कि आपको धृतराष्ट्र ने बुलाया है और यह कहा है कि सभा में चौपड़ विछरही है आप लोग यहां आवें और पासे फेंककर पुनः जूआ खेलें।

युधिष्ठिर उवाच थातुर्नियोगादभूतानि प्राप्तुवंति शुभाशुभम् । न निवृत्तिरतयोरित देवितव्यं पुनर्यदि ॥३॥ अक्षद्यूते समाह्वानं नियोगात्स्थविरस्य च । जानन्नपि क्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे ॥४॥

अर्थ-युधिष्ठिर दोला कि स्नुष्य को भली बुरी दोनों मकार की गति ईश्वर ही की इच्छा से मिलती है जसको कोई मनुष्य दूर नहीं करसकता, यद्याप में जानता हूं कि ज्ञा खेलने में सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं परन्तु मैं ज्ञा को नाशकारी जानता हुआ भी वृद्ध धृतराष्ट्र की आज्ञा उल्लङ्खन न कर सकने के कारण ज्ञा अवस्य खेलुंगा।

वैद्याम्पायन उवाच असंभवेहेममयस्यजंतोस्तथापिरामो लुलुभे मृगाय।प्रायः समासन्नपरा-भवाणां धियो विपर्यस्ततराभवन्ति ॥५॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जब विपत्ति मनुष्य के निकट आती है तब उसकी बुद्धि भी विपरीत होजाती है, जैसे मुर्वणस्य हरिण होना असम्भव होने पर भी राम का मन लुभायमान होगंया था ॥

इतिब्रुवित्रववृते भ्रातृभिः सहपाण्डवः । जानश्चराक्रनेमीयां पार्थो चूतामियात्युनः ॥६॥ विविश्यस्ते सभां तां तु पुनरेव महारथाः । व्यथयातिसम् चेतांसि सुदृदां भरतर्षभाः ॥७॥

यथोपजोषमासीनाः पुनर्द्युत प्रवृत्तये । सर्वलोकविनाशाय दैवेनोपनिपीडिताः ॥८॥

अर्थ-सब पाण्डन लोग उक्त रीति से कहते और इक्किन के छल को विचारते हुए जूआ खेलने को फिर लौटपड़े, और हिस्तनापुर में आकर उन सब महार्थियों ने उसी सभाभवन में पुन: प्रवेश किया, हे भरतकुलश्रेष्ठ ! उनके सभाभवन में प्रवेश करने पर सब सुष्टद व्यथा को प्राप्त हुए और देव की प्रेरणा से सब संसार का नाश करने के लिये फिर जुआ खेलने को बैटगये॥

शकुनि उवाच

अमुंचत्रथविरो यद्योधनं प्रजितमेवतत् । महाधनंग्लहंरवेकं शृणुभो भरतर्षम ॥९॥

अर्थ-तब शकुनि बोला कि हे युधिष्ठिर! जो धन तुम्हें वृद्ध धृतराष्ट्र ने छोड़िदया है उस बड़े धन का हम आपसे एक दाउ बदकर खेलना चाहते हैं, सो हे भरतकुल्श्रेष्ठ! आप छनें वह इस प्रकार है कि:—

वयं वा द्वादशाब्दानि युष्माभिद्यूतिनिर्जिताः । प्रविशेम महारण्यं रोखाजिनवाससः ॥१०॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः परिवत्सरम् । ज्ञाताश्चपुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥११॥ अस्माभिनिर्जिता यूयं वने द्वादशवत्सरान् । वसध्वं कृष्णयासार्धमजिनैः प्रतिवासिताः ॥१२॥ त्रयोदशं च सजने अज्ञाताः पिखत्सस्य । ज्ञाताश्च पुनरन्यानि वने वर्षाणि द्वादश ॥१३॥ त्रयोदशे च ।नर्वृत्ते पुनरेव यथोचितम् । स्वराज्यं प्रतिपत्तव्यामितरे स्थवेतरेः ॥१४॥ अनेन व्यवसायेन सहास्माभिर्श्चिष्ठिर । अक्षानुप्ता पुनर्शृतमेहि दीव्यस्य भारत ॥१५॥

अर्थ-एक ओर तो "दोनों का राज्य और घोड़ा, हाथी. देल, दकरी तथा रत्न छुदणीदि सब धन " और दूसरी ओर दारहवर्ष का दनवास अर्धात जो जीते वह दोनों ओर का राज्य पाने और जो हारे वह मृगद्मी ओह़कर दारहवर्ष तक घोर बन में वास करे और तेरहवें दर्घ में गृप्त रहे, वह इस नियम से कि उस तेरहवें दर्घ में जो कोई दरादर वाला यह जानले कि यह "अमुक " है तो फिर दारहवर्ष तक दन में वास करे, और तेरहवें वर्ष गुप्त रहे, सो हम में से जो जीते वह दोनों ओर का राज्य करे और हारने वाला मृगद्मी ओढ़कर बन को चलाजाय, है युधिष्ठिर ! आओ दाउ ददकर हमसे जुआ खेलो ॥

अथ सभ्याः सभामध्ये समुन्छित करास्तदा । ऊचुरुद्धिममनसः संवेगात्सर्व एवहि ॥१६॥ अहोधिग्वान्धवानैनं बोधयान्त महद्भयम् । बुद्धयाबुद्धयेन्न वाबुद्धयेदयं वै भरतर्षभ ॥१७॥

अर्थ-यह सुनकर सभा के सब सभ्य सभासद दुः की मन बाले हुए २ उत्पर को हाथ उठाकर बड़े वेग में कहने लगे कि हे धृतराष्ट्र! इन बान्धवों को धिकार है,यह लोग इस जूए से उत्पन्न होने वाले वड़े भय को नहीं जानते, हे भरतकुलश्रेष्ट ! इस भय को जानकर इन्हें कोई समझाता नहीं अथवा इस भय को कोई जानता ही नहीं ॥

वैद्याम्पायन उवाच

जनप्रवादान्सु बहून् शृणण्वन्निप नराधिपः । द्विया च धर्मसंयोगात्पार्थो चूतिमयात्पुनः ॥१८॥ जानन्निप महाबुद्धिः पुनर्चूतमवत्त्रेयत् । अप्यासन्नोविनाशःस्यात्कुरूणामितिचिन्तयन्॥१९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! याधिष्ठिर उस जनसमुदाय की बात मुनकर भी धर्म और लोकलाज के वश में हुआ २
कौरवों का नाश निकट जानकर चिन्ताग्रस्त हो पुनः जुआ खेलने
की इच्छा से कहने लगा कि:—

कथं वै मदिधो राजा स्वधर्ममनुपालयन् । आहृतो विनिवर्त्तेतदीव्यामि शकुने त्वया ॥२०॥

अर्थ-हे शकुनि! अपने धर्म का पालन करने वाला मुझसा राजा जूआ खेलने को बुलाया हुआ कैसे लौट सकता है सो आओ तुम्हारे साथ जूआ खेलें॥

शकुनि उवांच

गवाश्वं बहुधेनूकमपर्यन्तमजाविकम् । गजाः कोशो हिरण्यं च दामीदासाश्च मर्वशः॥२१॥ एष नो ग्लह एवैको वनवासाय पाण्डवाः । यूयं वयं वा विजितावसेन वनमाश्रिताः ॥२२॥ त्रयोदशं च वै वर्षमज्ञाताः सजने तथा । अनेन व्यवसायेन दीव्याम पुरुषर्पभाः ॥२३॥

अर्थ-शकुनि वोला कि हे युधिष्ठिर ! आप दाउ को फिर समझलें, एक ओर तो हम तुम दोनों का राज्य, घोड़ा हाथी, बैल, बकरी, कोष, सुवर्ण और दास, दासी सब रखा हुआ है, और दूसरी ओर वारहवर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष में गुप्त-वास करना है, यदि तेरहवें वर्ष में कोई बरावर वाला मनुष्य वनवास करने वाले को जानले तो वह पुनः बारहवर्ष तक वन में बसे और हे पुरुषश्रेष्ठ ! जीतने वाला दोनों ओर का राज्य करे !!

समुत्सेपेण चैकेन वनवासाय भारत । प्रतिजग्राह तं पार्थो ग्लहं जग्राह सौबलः। जित्रमित्येवशकुनिर्युधि। छिरमभाषत ॥ २४॥

अर्थ-शकुनि का उक्त कथन सुनकर युधिष्ठिर ने एक वार के कहने ही से उस दाउ को स्वीकार किया, और शकुनि पासे फेंककर युधिष्ठिर से वोला कि भैं जीता ॥

इति एकपंचाशोऽन्यायः समाप्तः

अथ दिपंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं०-अव पाण्डवों का मृगचर्भ ओढ़कर वन को जाते समय उनकी प्रतिज्ञायें कथन करते हैं :—

महाभारत

वैशम्पायन उवाच

ततः पराजिताः पार्था वनवासाय दीक्षिताः । अजिनान्युत्तरीयाणि जगृहुश्च यथाक्रमम् ॥१॥ अजिनैः संवृतान् दृष्ट्वा हृतराज्यानरिन्दमान् । प्रिस्थितान्वनवासाय ततो दुःशानोऽब्रवीत् ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तत्पश्चात पाण्डव सर्वस्व हारकर वन जाने के लिये तैयार होगये और सबने यथाक्रम मृगचर्म लेलिये, उस समय उनको राज्यहीन तथा मृगचर्म धारण किये वन जाने को तैयार देखकर दुःशासन बोला कि:—

प्रवृत्तं धार्तराष्ट्रस्य चक्रं राज्ञो महात्मानः । पराजिताः पाण्डवेया विपतिं परमां गताः ॥३॥ अद्य देवाः संप्रयाताः समैर्वर्त्मभिरस्थलैः । गुणज्येष्ठास्तथा श्रेष्ठाः श्रेयांसो यद्धयं परैः ॥४॥

अर्थ-अहा !!! अब महात्मा दुर्योधन चक्रवर्ती राजा होगया और पाण्डव सर्वस्व हारकर महाविपत्ति में पड़गये, देवताओं ने हम पर सब ओर से कृपा की जो आज हम अपने शत्रुओं से गुणों में अधिक और श्रेष्ठ होगये।।

नरकं पातिताः पार्था दीर्घकालमननतकम् ।
सुखाच हीना राज्याच विनष्टाःशाश्वतिःसमाः॥५॥
अर्थ-अव पाण्डव बहुत दिनों नक नरक भोगेंगे और राज्य
क विनाश होने पर सुख से हीन हुए सब ओर निरन्तर बहुत
काल तक मारे २ फिरेंगे॥

धनेन मत्ता ये तेस्म धार्त्तराष्ट्रान्प्रहासिषुः ।
ते निर्जिता हतधना वनमेष्यिन्त पाण्डवाः ॥६॥
अथ-यही पाण्डव थे जिन्होंने धन के मद से धृतराष्ट्र के
पुत्रों की हंसी की थी, अब यह लोग अपना सर्वस्व हारकर बन

चित्रान्सन्नाहानवमुंचंतु चैषां वासांसिदि-व्यानि च भानुमंति । विवास्यंतांरुरु-चर्माणिसर्वे यथाग्लहं सौबलस्याभ्युपेताः॥७॥

अर्थ-अब इनके दिव्य प्रकाशमान चित्रविचित्र वस्त्र और सुन्दर कवचों को उतारकर इन्हें मृगछाला ओढ़ने को देदो, क्योंकि शकुनि से जूए के दाउ में इन्होंने यही प्रण किया था॥

न सन्तिलोकेषुपुमांस ईहंशा इत्येव ये भावि-त बुद्धयः सदा । ज्ञास्यन्ति तेत्मानिममेद्य पाण्डवा विपर्यये पंढातिला इवाफलाः ॥८॥

अर्थ-आज हमारे समान इस संसार में कौन है, यह पाण्डव जो सदा भविष्य की सोचा करते थे वह भी आज थोथे तिलों के समान पराक्रम हीन होगये॥

इदं हिवासो यदि वेदृशानां मनस्विनां रोखमाहवेषु । अदीक्षितानामजिनानि यद्रव्दलीयसां पश्यत पाण्डवानाम् ॥९॥

अर्थ-इन पराक्रमी पाण्डवों के यह मृगछाला के वस्त्र यह में दीक्षित हुए मनिस्ययों के सहश नहीं किन्तु यह मृगचर्म अदी-क्षित कैवर्तों के समान हैं

महाभारत

महाप्राज्ञः सौमिकिर्यज्ञसेनः कन्यां पांचालीं पाण्डवेभ्यः प्रदाय । अकाषींद्रे सुकृतं नेह किंचित् क्लीबाः पार्थाः पतयो याज्ञसेन्याः ॥१०॥

अर्थ-राजा द्रुपद तो वड़ा बुद्धिमान था उसने यह अच्छा नहीं किया जो अपनी सुन्दर कन्या द्रोपदी का इन नपुंसक पाण्डवों के साथ विवाह करिदया ॥

सूक्ष्मप्रावारानजिनोत्तरीयान्दृष्ट्वारण्ये-निर्धनानप्रतिष्ठान् । कांत्वंप्रीतिंलप्स्यसे याज्ञसोनिपतिंवृणीष्वेहयमन्यमिच्छिसि॥११॥ एते हि सर्वे कुरवःसमेताःक्षांतादांताःसुद्र-विणोपपन्नाः। एषांवृणीष्वेकतमं पतित्वे न त्वां नयेत्कालविपर्ययोऽयम्॥ १२॥

अर्थ-हे द्रौपदी ! इन पाण्डवों के साथ वन में जाकर तुझे क्या सुख प्राप्त होगा, यह विचारे धन तथा स्थान से हीन होकर मृगछाला ओढ़े हुए आपही दीन होरहे हैं, इसलिये तू हम सब कौरवों में से जो क्षमावान, जितेन्द्रिय और धनवान हैं जिसको चाहे अपना पति वरले जिससे तुझे इन का दुःख भोगना न पड़ेगा ॥

यथाऽफलाःषंदितिला यथा चर्ममया मृगाः । तथैव पाण्डवाःसर्वे यथा काक यवा आपि ॥१३॥

अर्थ-हे द्रौपदी ! अब यह पाण्डव ऐसे निष्फल हैं जैसे थोथे तिल वा चमड़े के बनाये हुए मृग अथवा चावलों से राहित धान होते हैं॥

सभापर्व-द्विपंचाशाध्याय

233

किं पाण्डवांस्ते पतितानुपास्य मोघःश्रमः पंढतिलानुपास्य । एवं नृशंसःपुरुषाणि-पार्थानश्रावयद्धतराष्टस्य पुत्रः ॥१४॥

अर्थ-सो जैसे थोथे तिलों को बटोरने से कुछ लाम नहीं होता इसी मकार इन पतित पाण्डवों की सेवा करने से तुझे कुछ सुख माप्त न होगा,इस मकार धृतराष्ट्र के पुत्र ने द्रौपदी से कठोर वाक्य कहे ॥

तद्धे श्रुत्वा भीमसेनोत्यमर्पीनिर्भत्स्यों-चैःसन्निगृद्धेव रोषात् । उवाच चैनंसह-सैवोपगम्य सिंहो यथा हैमवतःशृगालम्॥१५॥

अर्थ-भीमसन उस दयाहीन दुःशासन के उक्त कटोर बचन सुनकर कोध से भरगया और उसके पास जाकर उसे इस मकार पकड़कर जैसे सिंह मृग को पकड़ लेता है कहने लगा कि:-

क्रूरपापजनेर्जुष्टमकृतार्थ प्रभाषसे ।
गान्धारिवद्यया हि त्वं राजमध्ये विकत्थसे॥१६॥
यथा तुद्दिस मर्माणिवाक्झरेरिह नो भृशम् ।
तथास्मारियताते हं कंतन्मर्माणि संयुगे ॥१७॥
यचत्वाम तुवर्त्तन्ते को धलोभवशातुगाः ।
गोप्तारः सातुवन्धां रतानेतास्मि यमसादनम्॥१८॥
अर्थ-हे दृष्ट,हे पापी ! त इन राजाओं के बीच ऐसे निष्फल
निन्दित बचन शकुनी की चतुराई से धन जीतकर कहता है, और

महाभारत

इन बचनक्षी बाणों से हमारे मर्मस्थानों का बार र छेदन कर रहा है, त क्यों घवराता है मैं तेरे भी मर्मस्थानों को युद्ध में छेदन करके तेरे कोधी तथा लोभी सब सहायकों को मारकर तुझे इन बातों की याद दिलाउंगा ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवाणमजिनैविवासितं दुःशासनस्तं-परिनृत्यतिसम् । मध्ये कुरूणां धर्मानब-द्धमार्गं गौगौरितिसमाह्वयनमुक्तलजाः॥१९॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! वह निर्दय दुःशासन जिसने लज्जा छोड़दी थी उस मृगचर्म ओढ़े हुए भीमसेन की उक्त बात सुनकर गौ, गौ कहकर नाचने लगा जिसका तात्पर्य यह था कि हम तुझे गौ जानकर छोड़े देते हैं॥

भीमसेन उवाच

नृशंस परुषं वक्तुं शक्यं दुःशासन त्वया । निकृत्या हि धनं लब्धा कोविकत्थितुमईति॥२०॥

अर्थ-भीमसेन बोला कि हे दयाहीन दुःशासन! त् क्यों ऐसे परुष बचन बोलता है, त् छल से धन जीतकर क्यों बरबरा रहा है॥

मैवस्मसुकृतां लोकान् गच्छेत्पार्थो वृकोदरः । यदि वक्षोहि ते भित्त्वा न पिबच्छोणितं रणे॥२१॥ धार्त्तराष्ट्रान् रणे हत्वामिषतां सर्वधन्विनाम् । शमं गंतास्मि न चिरात्सत्यमेतद्बवीमि ते ॥२२॥

सभापर्व-द्विपंचाशाध्याय

660

अर्थ-मैं यह सस प्रतिज्ञा करता हूं कि युद्ध में तेरी छाती को फाडकर तेरा छोहू पीउंगा, और तेरे सब भाइयों को मारकर अपनी छाती ठंडी करुंगा, यदि मैं ऐसा न करूं तो मेरी सद्गति न हो ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य राजासिंहगतेः सखेलं दुर्योधनो भीमसेनस्य हर्षात् । गतिं स्वगत्यानुच-कारमदोनिर्गच्छतां पाण्डवानां सभायाः॥२३॥

अर्थ—वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जब पाण्डव वन को चलने लगे तब दुर्योधन खेल की भांति अपनी चाल भीमसेन की सी बनाकर चलने लगा ॥

नैतावताकृतिमत्यत्रवीत्तं वृकोदरः सन्नि-वृत्तार्धकायः । शीघ्रंहित्वां निहतं सानु-बंधं संस्मार्थाहंप्रतिवक्ष्यामि मृद्ध ॥२४॥

अर्थ-तब भीमसेन उसको मुख फरकर नकुछ बनाते हुए देख कहने छगा कि हे मूर्ख! चाछ दनाने से तु भीमसेन नहीं होसक्ता, तुझे भाई बेटों सहित मारकर इस बात को याद कराउंगा और तेरी इस हंसी का उत्तर दृंगा॥

एवं समीक्ष्यात्मिन चावमानंनियम्यमन्यं बलवान्समानी । गजानुगः संसदि कौर-वाणां विनिष्कामन्वाक्यमुवाच भीमः ॥२५॥ अर्थ-सभा से निकल्ते समय युधिष्ठिर के पीछे चलते हुए भीमसेन ने दुर्योधन की हंसी कः स्मरण करके कोध रोककर कहा किः-

अहं दुयोंधनं हंता कर्ण हंता धनंजयः। शकुनिं चाक्षिकतवं सहदेवो हिनष्यित॥२६॥ इदं च भूयो वक्ष्यामि सभामध्ये बृहद्वचः। सत्यंदेवाः करिष्यिनत यन्नोयुद्धं भविष्यित॥२०॥

अर्थ-में दुर्योधन का हनन करुंगा, अर्जुन कर्ण को मारेगा और इस ज्वारी शकुनि का सहदेव वध करेगा, और मैं इस सभा के बीच में दूसरी वड़ी यह मातिज्ञा करता हूं, देवता मेरी इस मातिज्ञा को युद्ध के आने पर सत्य करें, वह यह है कि:—

सुयोधनिममं पापं हंतास्मि गदया युधि । शिरः पादेनचाम्याहमधिष्ठास्यामि भृतृले ॥२८॥ वाक्यश्ररस्य चैवास्य परुषस्य दुरात्मनः । दुःशासनस्य रुधिरं पातास्मि मृगराडिव ॥२९॥

अर्थ-मैं इस पापी दुर्योधन का युद्ध में गदा से हनन करके प्राथिवी पर गिराकर इसके शिर को अपने पांव से रगडुंगा, और इस कदुभाषी, बोलने में श्र्रवीर दुरात्मा दुःशासन की छाती को सिंह के समान फाड़कर इसका लोह पीउंगा ॥

अर्जुन उवाच

नैवं वाचाव्यवसितं भीम विज्ञायते सताम्। इतश्चतुर्दशे वर्षे द्रष्टारो यद्भविष्यति ॥३०॥

मभापर्व-द्विपंचाशाध्याय

669

अर्थ-अर्जुन वोटा कि हे भीमसेन! सत्पुरुषों का निश्चय बातों से नहीं जाना जाता, अब से चौदहवें वर्ष में जो कुछ होगा सो देखेंगे॥

भीमसेन उवाच दुर्योधनस्य कर्णस्य शकुनेश्च दुरात्मनः । दुःशासन चतुर्थानां भूमिःपास्याति शोणितम्॥३१॥ अर्थ-तब भीमसेन बोटा कि दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन, इन चारो दुरात्माओं के टोहू को एथ्वी पीवेगी ॥ अर्जुन उवाच

अर्जुनः प्रतिजानीते भीमस्य प्रियकाम्यया । कर्ण कर्णानुगांश्वेव रणेहंतास्मिपत्रिभिः ॥३२॥ अस्यितारं द्रष्टारं प्रवक्तारं विकत्थनम् । भीमसेन नियोगात्ते हंताहं कर्णमाहवे ॥३३॥ येचान्ये प्रतियोत्स्यंति बुद्धिमोहेन मां नृपाः । तांश्वसर्वानहंवाणैनेतास्मि यमसादनम् ॥३४॥

अर्थ-अर्जुन ने भीमसेन को प्रसन्न करने की इच्छा से यह प्रतिज्ञा की कि मैं तुम्हारी आज्ञा से इस नीच, निन्दित वचन बोलने वाले तथा कुबुद्धि कर्ण और इसके साथी सब राजाओं को जो मेरे सन्मुख आवेंगे अपने वाणों से इनन करके यम के घर पहुंचाउंगा ॥

न प्रदास्यित चेद्राज्यमितो वर्षेचतुर्दशे । दुर्योधनोऽभिसत्कृत्य सत्यमेतद्भविष्यति ॥३५॥ चले द्विहमवान् स्थानान्निष्प्रभःस्याद्दिवाकरः। शैत्यंसोमात्प्रणस्येतम्त्सत्यं विचले द्यादि ॥३६॥

अर्थ-जो आज से चौदहवें वर्ष में यह नीच दुर्योधन हमारे राज्य को हमें न देगा तो निस्सन्देह मैं इन सब बातों को सच करके दिखाउंगा, चाहे हिमालय चलने लगे, चाहे सूर्य्य की प्रभा जाती रहे और चाहे चन्द्रमा में शीतलता न रहे, परन्तु में अपनी प्रतिज्ञा से चलायमान नहीं होउंगा ॥

वैशम्पायन उवाच इत्युक्तवाति पार्थे तु श्रीमान्माद्रवती सुतः। श्रगृह्य विपुलं बाहुं सहदेवः प्रतापवान् ॥३७॥ सौबलस्य बधं प्रेप्सिरिदं बचनमत्रवीत्। क्रोधसंरक्तनयनो निःश्वसन्निवपन्नगः॥३८॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तत्पश्चाद प्रतापवान सहदेव क्रोध से लाल आखें किये हुए और सांप की तरह श्वास लेता हुआ शकुनि को मारने की इच्छा से अपनी भुजायें पकड़- कर कहने लगा कि:—

अक्षान्यान्मन्यसे मृह गान्धाराणां यशोहर ।
नैतेक्षानिशिताबाणास्त्वयैतेसमरेवृताः ॥३९॥
यथाचैवोक्तवान्भीमस्त्वामुह्दिस्यसबान्धवम् ।
कर्ताहं कर्मणस्तस्य क्रकार्याणि सर्वशः ॥४८॥
हंतास्तित्रसाङ्द्धेत्व मेवेहसबान्धवम् ।
यदिस्थास्यसि संग्रामे क्षत्रधर्मेण सौबल ॥४१॥

सभापर्व-द्विपंचाशाध्याय

639

अर्थ-हे गान्धार देशवासी मनुष्यों के यश को हरने वाले शकुनि! यह पासे जिनके वल पर तू नाच रहा है पासे नहीं हैं किन्तु ये समर में तेरे पाणों को हनन करने वाले तीक्ष्ण वाण हैं, यदि तू क्षत्रियधर्म को छोड़कर युद्ध में भाग न जायगा तो जैसी भीमसेन ने आज्ञा दी है जसी प्रकार मैं तुझको तेरे भाई बन्धु और साथियों सहित युद्ध में हनन करुंगा॥

नकुल उवाच

सहदेव वचः श्रुत्वा नकुलोपि विशापते । दर्शनीयतमानुणामिदं वचनमत्रवीत्।।४२॥

अर्थ-सहदेव की उक्त प्रतिज्ञा मुनकर मनुष्यों में अतिरूप-वान नकुछ ने भी यह प्रतिज्ञा की कि:—

सुतेयं यज्ञसेनस्य चूतेस्मिन् घृतराष्ट्रजैः । यैर्वाचः श्रावितारूक्षाः स्थितैर्दुर्याधनिषये ॥४३॥ तान् धार्त्तराष्ट्रान् दुर्वृत्तान् सुमूर्ष्ट्र-कालनोदितान् । गमयिष्यामिभूयिष्ठानहं वैवस्वतक्षयम् ॥४४॥ निदेशाद्धमेराजस्य द्रीपद्याः पदवींचरन् । निर्धार्तराष्ट्रां पृथिवीं कर्त्तास्मिनचिरादिव ॥४५॥

अर्थ-इस जूए में दुर्योधन को प्रसन्न करने की इच्छा से धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जो द्रोपदी को रूखे बचन सुनाय हैं, मैं उन काल से प्रेरित हुए मरने की इच्छा वाले दुष्टों को युधिष्ठिर की आज्ञा से मारकर यमलोक में पहुंचाउंगा, और द्रोपदी को प्रसन्न करने के लिये पृथ्वी पर से धृतराष्ट्र के पुत्रों का बीच नाश करदुंगा॥

633

महाभारत

वैशम्पायन उवाच

एवं ते पुरुषव्याघाः सर्वे व्यायतबाहवः ।
प्रतिज्ञा बहुलाः कृत्वा धृतराष्ट्रमुपागमन् ॥४६॥
अर्थ-वैशम्यायन बोले कि हे राजन ! वह लम्बी भुजाओं
वाले सिंहपुरुष पाण्डव उक्त प्रकार मे अनेक प्रतिज्ञायें करके
राजा धृतराष्ट्र के समीप गये॥

इति द्विंपचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ त्रिपंचाशोऽध्यायः प्रारभ्यते

स-अत्र युधिष्ठिर का धृतराष्ट्र तथा भीष्मिपतामह आदि सव वृद्ध पुरुषों से विदा मांगकर वन को जाना कथन करते हैं:-

युधिष्ठिर उवाच
आमंत्रयामि भरतांस्तथा वृद्धं पितामहम् ।
राजानं सोमदत्तं च महाराजं च बाह्निकम् ॥१॥
द्रोणंकृपंनृपांश्वान्यानश्वत्थामानमेवच ।
विदुरं धृतराष्ट्रं च धार्त्तराष्ट्रांश्व सर्वशः ॥२॥
युयुत्सं संजयं चैव तथैवान्यान्सभासदः ।
सर्वानामंत्र्य गच्छामि द्रष्टारिम पुनरेत्यवः ॥३॥

अर्थ-युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की सभा में जाकर कहा कि मैं आप सब भरतवंशी पुरुषों अर्थात वृद्ध भीष्मिपितामह, राजा सोमदत्त, महाराज बाह्णीक, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा, विदुर, धृतराष्ट्र, धृतराष्ट्र के सब पुत्र, युयुत्सु, संजय और अन्य सब सभासद जो इस सभा में बैठे हुए हैं जाने की आज्ञा मांगता हूं और थोड़े दिनों में यह बनवास का समय विताकर पुनः आप छोगों के दर्शन करंगा॥

वैशम्पायन उवाच

नचिकंचिदथोचुम्तं हियासन्नायुधिष्ठिरम् । मनोभिरेवकल्याणं दध्युस्तेतस्य धीमतः ॥४॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! युधिष्ठिर का उक्त कथन सुनकर किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया,लज्जा से सब नीचे को सुख किये हुए वेठे रहे, परन्तु उन सबने मन से पाण्डवों को आशीर्वाद दिये ॥

विदुर खवाच

आर्या पृथा राजपुत्री नारण्यं गन्तुमहीत । सुकुमारी च वृद्धा च नित्यं चैव सुखोचिता ॥५॥ इह वत्स्याति कल्याणी सत्कृताममवेश्मनि । इति पार्था विजानीध्यमगदेवोस्तु सर्वशः ॥६॥

अर्थ-विदुरजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! यह आयी कुन्ती सुकुमारी, वृद्ध और नित्य सुख भोगने योग्य है, यह राजपुत्री बन जाने के योग्य नहीं,सो इस सौभाग्यवती को यहीं छोड़जाओ यह सत्कारपूर्वक मेरे घर रहेगी, और परमात्मा तुम्हारा सब प्रका से कल्याण करे॥ 938

महाभारत

पाण्डवा ऊचुः

तथेत्युक्त्वा ब्रुवन्सर्वे यथा नोवदसेऽनघ ।
त्वं पितृव्यः पितृसमो वयं च त्वत्परायणाः ॥७॥
यथाज्ञापयसे विदंस्त्वं हि नः परमो ग्रुरः ।
यज्ञान्यदपि कर्त्तव्यं तद्विधतस्व महामते ॥८॥

अर्थ-पाण्डव बोले कि हे निष्पाप ! आप हमारे चचा होने से पिता के समान हैं, हम सब आपकी शरण हैं जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा, आप हमारे परमगुरु हैं, हे महाबुद्धिमान ! जो आपकी आज्ञा होगी वही हम करेंगे ॥

विदुर उवाच

युधिष्ठिर विजानीहि ममेदं भरतर्षभ । नाधमेंण जितः कश्चिद्वयथते वै पराजये ॥९॥

अर्थ-विदुरजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! जिसको कोई अधर्म और अनीति से जीत लेता है उस पराजित को विपत्ति पाकर दुःखी होना उचित नहीं ॥

त्वं वे धर्म विजानीषे युद्धे जेता धनंजयः।
हन्तारीणां भीमसेनो नकुलस्त्वर्थसंग्रही ॥१०॥
संयंता सहदेवस्तु धौम्यो ब्रह्मविद्यन्मः।
धर्मार्थकुशलाचैव द्रौपदी धर्मचारिणी ॥११॥

अर्थ-आपतो धर्म को भलेपकार जानते हैं, यह अर्जुन जय करने वाला, भीमसेन शञ्जओं का इनन करने वाला, नकुल अर्थ=

सभापर्व-त्रिपंचाशाध्याय

604

धन संग्रह करने वाला, सहदेव दण्ड देने वाला, धौंम्य पुरोहित ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ और धर्मचारिणी द्रौपदी धर्म तथा अर्थ में कुशल है॥

अन्योन्यस्य प्रियाः सर्वे तथैव प्रियदर्शनाः । परेरभेद्याः संतुष्टाः कोवोनस्पृहयेदिह । १२॥ एष वै सर्वकल्याणः समाधिस्तव भारत । नैनं शत्रुर्विषहते हाक्रेणापि समोप्युत ॥१३॥

अर्थ-तुम सब आपस में प्रीतिपूर्वक सन्तुष्ट होकर रहना, शञ्ज तुम्हार बीच में फूट न डालने पावें, तुम्हें सब चाहते हैं, और तुम्हारे इस जत्थे के बने रहने से इन्द्र समान प्रबलशञ्ज भी तुम्हारा कुछ नहीं करसक्ता॥

हिमवत्यन्तिशिक्षां मेरुसावर्णिना पुरा।
द्वेपायनेनकृष्णेन नगरे वारणावते ॥१४॥
भृग्रतुंगे च रामेण दृषद्वत्यां च शंभुना।
अश्रोषीरिसतस्यापि महर्षे रंजनं प्रति॥१५॥
कल्माषीतीरसंस्थस्य गतस्त्वं शिष्यतां भृगोः।
दृष्टासदानारदस्ते धौम्यस्तेयं पुरोहितः॥१६॥
माहासीःसांपरायेत्वं बुद्धं तामृषिप्रजिताम्।
पुरुरवसमैलं त्वं बुद्धचाजयसि पाण्डव ॥१७॥

अर्थ-आप लोगों ने पहले हिमालय पर्वत में सावर्ण ऋषि से, वारणावत नगर में व्यासजी से, भृगुतुंगपर्वत पर परशुरामजी से, हषद्वती नदी पर शिवजी से, अंजन पर्वत पर अतित नामक महर्षि से, कल्माष नदी के किनारे भृगुजी से शिक्षा पाई और नारदजी सदैव तुम्हारे शिक्षक रहे हैं, इनके अतिरिक्त धौम्यऋषि तुम्हारे पुरोहित हैं, सो तुम्हें अपनी बुद्धि मिलन करना उचित नहीं, तुम्हारी बुद्धि ऐलवंशी राजा पुरूरव से भी अधिक है।

शक्त्या जयसि राज्ञोन्यानृषीन् धर्मोपसेवया । ऐन्द्रेजये धतमनायाम्येकोपविधारणे ॥१८॥

अर्थ-तुम्हारी शक्ति से सब राजा जीते जासकते हैं और तुप धार्मिक ऐसे हो कि ऋषि छोग भी वैसा धर्माचरण नहीं कर सकते, सो तुम अपना मन उस जय में जो इन्द्र तथा यमराज के अधीन है छगाना और कोष करने के नियम में सदा तन्पर रहना॥

तथा विसर्गे कैबिरे वारुणे चैव संयमे । आत्मप्रदानं सौम्यत्वमद्भ्यश्चेवोपजीवनम् ॥१९॥

अर्थ-परमात्मा ऐसी छपा करें कि तुम दान करने में कुनेर के समान तथा वशीकरण में वरुण के समान हो, जल आदि सब खाद्य वस्तुएं तुम्हें सौम्यता, परोपकार और सबका उपजीवन होने के गुण दें॥

भूमेः क्षमा च तेजश्च समग्नं स्र्य्मण्डलात् । वायोर्बलं प्राप्नुहि त्वं भूतेभ्यश्चात्मसम्पदम् ॥२०॥

अर्थ-तुम्हें पृथिवी क्षमा देवे,सूर्य्यमण्डल से तुम्हें सब प्रकार का तेज मिले, वायु तुम्हें पराक्रम देवे अर्थात् यह सब पंचभूत आप लोगों को सब प्रकार की वाह्य सम्पत्ति तथा आत्मिक बल देवें ॥

सभापर्व-चतुष्पंचाशाध्याय

693

अगदंवोस्तु भदं वो द्रष्टास्मि पुनरागतान्।
आपद्धर्मार्थकुच्छेषु सर्वकार्य्येषु वा पुनः ॥२१॥
यथावत् प्रतिपद्येथाः काले काले युधिष्ठिर ।
आपृष्टोसीह कौन्तेय स्वास्त प्राप्तुहि भारत ॥२२॥
कृतार्थ स्वस्तिमंतं त्वां द्रक्ष्यामः पुनरागतम् ।
नहि वो वृजिनं किंचिद्वेदकश्चित्पुराकृतम् ॥२३॥
अर्थ-अव हम तुन्हें जाने की आज्ञा देते हैं जाओ, तुम्हारा
कल्याण होगा, परमेश्वर छपा करे तुम आरोग्य रहो, और तुम्हारे
सव काम लिद्ध हों, इस धर्मसंकट की विपत्ति को सहकर जव
पुनः लौटकर आओगे तव हम तुन्हें देखेंगे॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्तथेत्युक्ता पाण्डवः सत्यविक्रमः । भीष्मद्रोणौ नमस्कृत्य शितिष्ठत युधिष्ठिरः ॥२४॥ अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजा जनभेजय!सत्य पराक्रम वाला युधिष्ठिर उक्त बातों को सुनकरऔर तथास्तु कहकर भीष्म तथा द्रोणाचार्य्य को नमस्कार करके चलदिया ॥

इति त्रिपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुष्पंचाशोऽध्यायः प्रारभ्यते

सं०-अब द्रापदी का कुन्ती से विदा मांगना और कुन्ती का के विलाप करना कथन करते हैं —

696

वैशस्पायन उवाच

तस्मिन्संप्रस्थिते कृष्णा पृथांप्राप्य यशस्विनीम् । आपृच्छद्भृशदुःखार्तायाश्चान्यास्तत्रयोषितः ॥१॥ यथाई वंदनाश्ठेपान्ऋत्वा गन्तुभियेप सा । ततो निनादःसुमहान् पाण्डवान्तःपुरेऽभवत् ॥२॥ कुंती च भृशसंतमा दौपदीं प्रेक्ष्य गच्छतीस । शोकविह्वलया वाचा कृच्छाद्रचनमत्रवीत् ॥३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! युधिष्टिर के वन जाते समय द्रौपदी ने कुन्ती आदि स्त्रियों को जो वहां उपस्थित थीं नमस्कार करके सबसे जाने की आज्ञा मांगी, उस समय पाण्डत्रों के महलों में रोने का बड़ा घोर शब्द हुआ, और कुन्ती द्रौपदी को जाते हुए देखकर शोक से विह्व हो बड़े दुःख से कहने लगी कि:-

वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत्। स्त्रीधर्माणामभिज्ञासि शीलाचाखती तथा॥४॥

अर्थ-हे पुत्री ! तुझे इस विपत्ति को देखकर चिन्तातुर होना उचित नहीं, तू स्त्रीधर्म को भलेपकार जानती और सुशीला है।।

न त्वां संदेष् महीमि भर्तृन् प्रातिशुचिस्मिते । साध्वीयणसमापन्नाभूषितं ते कुलद्वयम् ॥५॥

अर्थ-हे शोभनमुस्कानवाली ! तुझे पतिसेवा आदि धर्म के उपदेश करते की भी मुझे आवश्यकता नहीं,क्योंकि तृ आप पति-ब्रता और दोनों कुलों की भूषण है ॥

सभाग्याः कुरवश्चेमे ये न दग्धास्त्वयाऽनघे । अरिष्टंत्रजपंथानंमदनुष्यानबृहिता ॥६॥

अर्थ-हे निष्पाप ! यह कौरव बड़े भाग्यवान हैं जो तेरे तेज से भस्म नहीं हुए, अच्छा अब तू निर्विष्ट होकर जा, तू मेरे ध्यान से कभी नहीं उतरेगी ॥

भाविन्यर्थे हि सत्स्त्रीणां वैकृतं नोपजायते । यरुपर्माभिग्रप्ता च श्रेयः क्षित्रमवाप्स्यम् ॥७॥

अर्थ-हे द्रौपदी ! चाहे भावी विपत्ति कैसी ही क्यों न आवे पर श्रेष्ठ स्त्रियों का चलन नहीं विगड़ता, तू अपने धर्म पर आइड़ है इससे तेरा कल्याण शीघ्र ही होगा ॥

सहदेवश्च मे पुत्रः सदावेक्ष्यो बनेवसन् । यथेदं व्यसनं प्राप्य नायं सीदेन्महामातिः ॥८॥

अर्थ-हे द्रौपदी ! मेरे बुद्धिमान पुत्र सहदेव का त् वन में वास करती हुई सदा ध्यान रखना यह वनवास का अधिक दुःख अनुभव न करे, क्योंकि यह सब से छोटा है॥

तथेत्युक्ता तु सा देवी सवनेत्रजलाविला। शोणिताक्तेकवसना मुक्तकेशी विनिर्शयो ॥९॥

अर्थ-यह सुनकर द्रौपदी जो रजस्वला थी और जिसके शिर के बाल खुले हुए थे, यह कहकर कि "ऐसा ही होगा" रोती हुई चलदी ॥

तां कोशंतीं पृथा दुःखादनुवत्राज गच्छतीम् । अथापश्यत् सुतान् सर्वान् हृताभरणवाससः ॥१०॥ अर्थ-उसके पीछे २ कुन्ती भी महादुः खी होकर रूदन करती हुई चही, और उसने आगे जाकर अपने पुत्रों को जिनके सब बच्च तथा आभूपण उतार हिये गये थे देखा ॥

रुरुचर्मावृततन् न्हिया किंचिदवाङ्मुखान् । परैः परीतान्मं हृष्टेः सहद्भिश्वानुशोचितान् ॥११॥ तद्वस्थान्स्तान्सर्वानुपसृत्यातिवत्सला । स्वजमानावदच्छोकात्तनद्विपलती बहु ॥१२॥

अर्थ-जिन पाण्डवों के लिये सब सुहद्गण शोच कररहे थे कुन्ती ने उन सब को मृगछाटा ओढ़े हुए तथा टज्जा से नीचे को शिर झुकाये हुए देखकर छाती से टगाया और महादुःसी होकर विटाप करती हुई कहने टगी कि :—

कथं सद्धमेचारित्रान् त्रतिस्थितिविभूषितान् । अक्षुद्रान् दृढ्भक्तांश्च दैवतेज्यापरान्सदा ॥१३॥ द्यसनं वः समभ्यागात्कोयं विधिविपर्ययः। कस्यापध्यानजंचेदभागः पश्यामि वो धिया॥१४॥

अर्थ-हे पुत्रो ! तुमने सदैव दृद्भिक्ति से देवताओं का सत्कार करते हुए सत्य, धर्म तथा मर्यादा से विपरीत कभी कोई काम नहीं किया, न जाने तुमको यह दुःख कैसे प्राप्त हुआ, हाय!! यह विधाता की विपरीत गति है, मैं नहीं जानती हूं कि किसके शाप से तुम्हें यह कष्ट भोगना पड़ा है।

स्यात्तु मझाग्यदेषोयं याहं युष्मानजीजनम् । दुःखायासमुजोत्यर्थं युक्तानप्युत्तमैर्छणैः ॥१५॥

सभापर्व-चतुष्पंचाशाध्याय

608

कथं वत्स्यथ दुर्गेषु वने ऋद्धिविनाकृताः । वीर्यसत्वव्होत्साह तेजोभिरकृशाःकृशाः ॥१६॥

अर्थ-यह मेरे ही भाग्य का दोष है, मैंने तो तुम सबको उत्तम गुणों से उत्पन्न किया है, तुम सब पराक्रमी, बली, सत्यपरायण तथा तेजस्वी हो, हाय तुम सब वन के भयंकर स्थानों में विना धन के दुवल होकर कैसे रहोगे॥

यद्येतदेवमज्ञास्यं बनेवासो हि वो ध्रुवम् । शतशृङ्गान्मृतेपाण्डौ नागमिष्यं गजाह्वयम् ॥१७॥ अर्थ-त्रो मुझे यह ज्ञात होता कि तुम्हें वनवास होगा तो मैं शतशृंग पर्वत पर से पाण्डु के मरने पर यहां हस्तिनापुर कभी न आती॥

धन्यं वः पितरं मन्ये तपो मेधान्वितं तथा । यः पुत्राधिमसंप्राप्य स्वर्गेच्छामकरोतिष्रयाम् ॥१८॥

अर्थ-तुम्हारा तपस्वी और बुद्धिमान पिता पाण्ड वड़ा घन्य था जिसने अपने पुत्रों की पीड़ा को नहीं देखा और स्वर्ग में रहना अङ्गीकार किया ॥

धन्यां चातीन्द्रियज्ञानामिमां प्राप्तां परांगतिम् ।
मन्येतुमादीं धर्मज्ञां कल्याणीं सर्वथैवतु ॥१९॥
रत्या मत्या च गत्या च ययाहमभिसंधिता ।
जीवितिप्रियतां मह्यं धिङ्मांसंक्रेशभागिनीम् ॥२०॥
अर्थ- माद्री भी जो धर्मज्ञा, कल्याणी और परम्मति थी
धन्य है जो मरकर पति के साथ चली गई, मैं भी सब गुणों में

उसी के समान हूं परन्तु भैंने जीवित रहकर यह क्रेश पाया मुझ-को धिकार है।।

पुत्रकानविहास्ये वः कृच्छ्रलब्धान्प्रियान्सुतः । साहं यास्यामि हिवनं हा कृष्णे किं जहासि माम्॥२१॥

अर्थ-मैं तुम सब दुःखी, यहात्मा तथा प्यारे पुत्रों को नहीं छोडुंगी, मैं भी वन को तुम्हारे साथ चलुंगी, हाय द्रौपदी मुझे क्यों छोड़े जाती है ॥

अतवत्यसुधर्मोम्मन् धात्रा किंनुप्रमादतः ।

ममांतोनैव विहितग्तेनायुर्नजहाति माम् ॥२२॥

अर्थ-क्या विधाता ने प्रमाद से मेरे शरीर का अन्त नहीं
छिला जो ऐसी विपत्ति में भी मेरे प्राण नहीं निकटते हैं ॥

हा कृष्ण द्वारकावासिन् क्वासिसंकर्षणानुज । कस्मान्न त्रायसे दुःखान्मां चेमांश्च नरोत्तमान् ॥२३॥ इमे सद्धर्ममाहात्म्यं यशोवीयीनुवर्तिनः ।

नाईति व्यसनं भोक्तुं नन्तेषां क्रियतां द्या ॥२४॥ अर्थ-हे कृष्ण द्वारकावामी, हे बल्देव के छोटे भाई ! इस समय तुम कहां हो जो मेरी और इन सब नरश्रेष्टों की इस दुःख से रक्षा नहीं करते हो, हे कृष्ण ! यह पाण्डव धर्मात्मा, महात्मा, यशस्वी और पराक्रमी होने से दुःख पाने योग्य नहीं, इन पर अपनी दया करो ॥

सेयं नीत्यर्थं विज्ञेषु भीष्म द्रोण कृपादिषु । स्थितेषु कुलनाथेषु कथमापदुपागता ॥२५॥ अर्थ-हाय इन पाष्डवों पर यह विपत्ति भीष्म, द्रोणाचार्य्य तथा ऋपाचार्य्य की उपस्थिति में जो नीति के जानने वाले और इस कुल के शिरोमीण हैं कैसे आपड़ी ॥

हा पाण्डो हा महाराज क्वासि किं समुपेक्षसे । पुत्रान्विवास्यतः साधुनरिभिर्धूतनिर्जितान् ॥२६॥

अर्थ-हाय हे महाराज पाण्डु! अव तुम कहां हो, इन अपने पुत्रों को जो जूए में हास्कर वनवास के छिये आज्ञा पाय हुए हैं क्या शिक्षा करते हो ॥

सहदेव निवर्त्तस्वननुत्वमिस मे प्रियः। शरीरादिषमादेय मां मात्याक्षीः कुपुत्रवत ॥२७॥

अर्थ-हे माद्री के पुत्र सहदेव ! तू मतजाय हाँटआ तू मुझ-को अपने शरीर से भी अधिक प्यारा है, कुपुत्र की भांति मेरा त्याग न कर ॥

त्रजेतु भ्रातरस्तेमीयदिसत्याभिसंधिनः । मत्परित्राणजंधर्ममिहैवत्वमवाप्तुहि ॥२८॥

अर्थ-तेरे यह सब भाई सत्यमतिज्ञ हैं इसिटिये तू इन्हें ही जाने दे, तू यहां रहकर मेरी रक्षा कर तुझे मेरी रक्षा करने का यहीं फल प्राप्त होगा।

वैदाम्पायन उवाच

एवं विलपतीं कुन्तीमभिवाद्य प्रणम्य च । पाण्डवा विगतानन्दा वनायैव प्रबन्नजः ॥२९॥ 608

महाभारत

विदुरश्चापितामार्त्तां कन्तीमाश्वास्यहेतुभिः। प्रावेशयद्गृहं क्षत्ता स्वयमार्त्ततरःशनैः ॥३०॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! पाण्डव उस विलाप करती हुई कुन्ती से आज्ञा लेकर और उसे प्रणाम करके आनन्द रहित हुए बन को चलदिये, और महादुः खी होकर विलाप करती हुई उस कुन्ती को विदुरजी अनेक प्रकार से धैर्य्य देकर अपने घर लेगेये ॥

धात्तराष्ट्रस्त्रियस्ताश्चिनिष्ठिनोपलभ्यतत् । गमनं परिकर्षं च कृष्णाया द्यूतमंडले ॥३१॥ रुरुदुः सुस्वनं सर्वा विनिदन्त्यः कुरून्भृशम् । दध्यश्च सुचिरंकालं करासक्तमुखां वुजाः ॥३२॥

अर्थ-धृतराष्ट्र के पुत्रों की ह्वियां द्रौपदी को सभा में लेजाने और उसके वस्त्र उतारने का हाल ग्रुनकर कौरवों की निन्दा कर २ रोने लगीं और अपने २ कमल सहश मुखों पर हाथ रख-कर चिन्ता करने लगीं ॥

राजा च धृतराष्ट्रस्तु पुत्राणामन्यं तदा ।
ध्यायन्त्रद्विमहृदयो न शान्ति धिजिग्मवान्॥३३॥
अर्थ-राजा धृतराष्ट्र को भी अपने पुत्रों की अनीति का
स्मरण करके दुःख के कारण चैन नहीं पड़ा॥

सचिन्तयन्ननेकाग्रः शोकव्याकुलचेतनः । श्रनुः संप्रेषयामासशीव्रमागम्यतामिति ॥३४॥ अर्थ-उस समय राजा ने शोक और चिन्ता से व्याकुल होकर विदुरजी को शीव्र बुलाने की आज्ञादी॥

सभापर्व-पंचपंचाशाध्याय

000

ततो जगाम विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् । तं पर्यपृच्छत्संविमो धृतराष्ट्रो जनाविषः ॥३५॥ अर्थ-तत्पश्चात विदुर्जी मुनते ही धृतराष्ट्र के नहीप राय तत्र वह धृतराष्ट्र महादुःची हुआ २ विदुर्जी से पृछने लगा॥

डात चतुष्पंचाचोऽज्यायः समाप्तः

अथ पंचपंचाशोऽध्यायः प्रार्भ्यते

सं०-अब धृतराष्ट्र के पृछने पर बिदुरजी का पाण्डवों के वन जाने विषयक बृतान्त कहना शार द्योंधन का होणाचार्य की शरण में जाना कथन करते हैं:—

वैद्याम्पायन उवाच

तमागतमथोराजा विदुरं दीर्घदर्शिनम् ।
सारंगकइव पप्रच्छ धृत्तराष्ट्रोंविकासृतः ॥१॥
कथं गन्छित कौन्तेयो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमसनः सन्यसाची मादीपुत्री च पाण्डवो ॥२॥
धौम्यश्चेव कथं क्षत्रद्वीपदी च यशस्विनी ।
श्रोतिमच्छाम्यहं सर्व तेषां शंस विचेष्टितम् ॥३॥

अथ-वैशम्पायन बोले कि है गजा जनमेजय ! दीर्घ-दशी विदुर को आया हुआ जानकर अम्बिका के पुत्र राजा धृतराष्ट्र शोकयुक्त होकर पृद्धने त्यों कि है विदुर ! धर्मपुत्र युधि-

महाभारत

809

ष्ठिर, भीममेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धौम्य पुरोहित और यश-स्थिनी द्रौपरी यह सब किस प्रकार से बन को जारहे हैं ?॥ विदुर उवाच

वस्त्रण संवृत्यमुखं कुन्तीपुत्रो रुधिष्ठिरः ।
बाहृविशालो संपश्यन भीमो गच्छित पाण्डवः॥४॥
सिकतावपन्सव्यसाची राजानमनुगच्छित ।
माद्रीपुत्रः सहदेवो मुखमालिप्य गच्छित ॥५॥
पांस्पिलप्तसर्वांगो नकुलश्चित्तविद्वलः ।
दर्शनीयतमो लोके राजानमनुगच्छित ॥६॥
कृष्णा तु केशैःप्रच्छाद्यमुखमायतलोचना ।
दर्शनीया प्रहद्ती राजानममुगच्छित ॥७॥
धौम्यो रौद्राणि साम नि याम्यानि च विशांपते।
गायन्गच्छित मार्गेषु कुशानादाय पाणिना॥८॥

अर्थ-विदुरनी बोले कि है धृतराष्ट्र! कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अपने मुख को कपड़े से ढांपकर, भीमतेन अपनी विशाल भुनाओं को देखता हुआ, अर्जुन रेत को पृथ्मी पर फेंकता हुआ, माद्री-पुत्र सहदेव मुख पर भस्म लगाता हुआ, नकुल चित्त में विह्वल हुआ अपने शरीर में धूल मलता हुआ, द्रौपदी अपने शिर के खुले हुए बालों से मुख ढके हुए रोती हुई और धौम्य पुरोहित हाथ में कुशा लिये हुए मामवेद के उन मंत्रों को पढ़ता हुआ जिनके देवता यम आर रुद्र हैं जारहे हैं, युधिष्ठिर सब के आगे २ और उसके पीछे अन्य सब हैं॥

सभापर्व-पंचपंचाशाध्याय

900

धृतराष्ट्र उवाच विविधानीह रूपाणि कृत्वा गच्छिन्ति पाण्डवाः । तन्ममाचक्ष्व विदुर कस्मादेवं व्रजाति ते ॥९॥ अर्थ-धृतराष्ट्र बोला कि हे विदुर! पाण्डव इस प्रकार नाना रूप बनाकर किस कारण जारहे हैं वह सब मुझसे कह ॥

विदुर उवाच

निकृतस्य।पि ते पुत्रेह्ते र ज्ये धनेषु च ।
न धर्माचल ते बुद्धिर्धमराजस्य धीमतः ॥१०॥
योसो राजा हणी नित्यं धार्ता ह्ये भारत ।
निकृत्याभ्रंशितः कोधान्नोन्मीलयाति लोचने ॥११॥
नाहं जनं निर्देहेयं दृष्ट्वा घोरेण चक्षुषा ।
स पिधायमुखं राजा तस्माद्गच्छिति पाण्डवः ॥१२॥
अर्ध-विदुर्गी बोले कि हे राजा धृतराष्ट्र ! यद्यि आपके
पुत्रों ने युधिष्ठिर का धन और राज्य छलकर लेलिया है परन्तु
वह बुद्धिमान् धर्मराज अपने धर्म को नहीं छोड़ना चाहता, इस
कारण उसने तुम्हारे पुत्रों पर दया करके इस विचार से कि
जो मैं अपनी कोधभरी आंखे खोल दृंगा तो सब मनुष्य भस्म
होजायंगे, इसलिये अपने मुख को कपड़े से इक लिया है॥

यथा च भीमो वजित तन्मे निगदतः शृणु । बाह्वोर्बले नास्ति समो समेति भरतर्षभ ॥१३॥ बाह्व विशालो कृत्वासो तेन भीमोपि गच्छित । बाह्व विद्शीयन् राजन् वाहुद्रविणदर्पितः ॥१४॥

विकीर्षन्कर्म रात्रुभ्यो बाहुद्व्यानुरूपतः । प्रदिशन् रारसंपातान्कंतीपुत्रोर्जनस्तदा ॥१५॥

अर्थ-हे भरतकुलभूषण ! इसी प्रकार भीमसेन विषयक सुनिये, भीमसेन अपनी भुजाओं के वल से गर्वित होकर इस विचार से भुजाओं को देखता जाता है कि मेरे समान किपी की भुजाओं में बल नहीं, मैं अपनी भुजाओं के अनुदूप शबुओं को मारने में कृतकार्य्य होउंगा और कुन्तीपुत्र अर्जुन क्रोध से सब ओर रेत इस कारण बखेरता जाता है कि:—

असक्ताः सिकताग्तस्य यथा सम्पत्ति भारत । असक्तं शरवर्षाणि तथा मोध्यति चु ॥१६॥ न मे कश्चिदिजानीयान्मुखमद्योति भारत । मुखमालिप्य तेनासौ सहदेवोपि गच्छति ॥१७॥

अर्थ-मैं इसी प्रकार बाणों के समृह के समृह शत्रुओं पर छोडुंगा, और सहदेव ने मुख पर भस्म इस प्रयोजन से लागाई है कि मुझको इस समय कोई पहिचान न सके ॥

नाहं मनांम्याददेयं मागें स्त्रीणामिति प्रभो । पांस्पिलप्रसर्वांगो नकुलस्तेन गच्छति ॥१८॥

अर्थ-नकुल का स्वरूप वहुत सुन्दर है सो उसने सब देह में धृल इसकारण लगाई है कि मार्ग में मुझे देखकर कोई स्त्री अनुरक्त न होजाय ॥

एकवस्त्रा परुद्ती सुक्तकेशी रजस्वला । शोणितनाक्तवसना द्वीपदी वाक्यमप्रवी ॥१९॥

सभापर्व-पंचपंचाशाध्याय

0,00

यन्द्रतेहिमदं प्राप्ता तेषां वर्षे चतुर्दशे । हतपत्यो हतस्रता हतबन्धुजनप्रियाः ॥२०॥ बहुशोणितदि धांच्यो मुक्तकेश्यो रजस्वलाः । एवं कृतोदका भार्याः प्रवेश्यन्ति गजाह्वयम् ॥२१॥

अर्थ-हे धृतराष्ट्र ! द्रौपदी महादुःखी रोती हुई एक वस्त्र पहेर हुए रजस्वलावस्था में रज से गीले वस्त्र को लिये हुए यह कहती हुई जारही है कि जिनके कारण मुझको यह दुःख माप्त हुआ है जनकी ख्रियां अब से चौदहवें वर्ष में विधवा होकर अपने २ पतियों को रज के लोह से भरी हुई जलदान देकर हस्तिनापुर को जावें, और:—

कृत्वा तु नैर्ऋतान्दर्भान् धीरो धौम्यः पुरोहितः। सामानि गायन् याम्यानि पुरतो याति भारत॥२२॥ हतेषु भरतेष्वाजौ कृरूणां पुरवस्तदा। एवं सामानि गाम्यंतीत्युक्त्वाधौम्योपिगच्छति॥२३॥

अर्थ-धाम्य ऋषि कुशाओं को नैऋत्य कोण की ओर किये हुए यम सम्बन्धी सामवेद के मन्त्र गाता हुआ इस कारण जारहा है कि कौरवों के नाश होने पर मैं इसीपकार सामवेद पढ़ता हुआ पाण्डवों के आगे २ चलुंगा, और :—

हाहा गच्छिन्त नो नाथाः समवेक्षध्वमीदृशम् । अहो धिक्कुरवृह्यानां बालानामिव चेष्टितम्॥२४॥

680

महाभारत

अर्थ-सब पुरवासी उन पाण्डवों को जाता देखकर यह कहते हैं कि हाय हाय हमारा स्वामी इस प्रकार जारहा है, कुरुओं को धिकार है जिनकी बुद्धि बुद्ध होने पर भी बालकों की सी है॥

राष्ट्रेभ्यःपाण्डदायादां होभानिर्वा सयन्ति ये। अनाथाः सम वयं सर्वे वियुक्ताःपाण्डनन्दनैः ॥२५॥ दुर्विनीते युक्त व्येषु का प्रीतिः कौरवेषु नः। इति पौराः सुदुः सार्ताः कोशंतिस्म पुनः पुनः।।२६॥

अर्थ-जिन्होंने लोभ के कारण पाण्ड के पुत्रों को देश से निकालकर हम सब को अनाथ करिंदया है, इन लोभी और क्रूर कौरवों से हम क्या पीति करें, एवं दुखी हुए पुर के लोग इस प्रकार बार २ कौरवों को कोस रहे हैं॥

एवमाकारिङ्गिस्ते व्यवसायं मनोगतम् । कथयंतश्च कोन्तेया वनं जग्मुर्मनिवनः ॥२७॥

अर्थ-सो हे राजा धृतगष्ट्र! वह पाण्डव उक्त रित से अपने मन की बात को आकार और चिन्हों से दर्शाते हुए वन की ओर चले गये॥

एवं तेषु नराग्रयेषु निर्यत्सु गजसाह्वयात् । अनभ्रे विद्युतश्चासन् भूमिश्च समकंपत ॥२८॥ राहुरत्रसदादित्यमपर्वणि विशापते । उल्का चाप्यपस्वयेन पुरं कृत्वा व्यशीर्यत ॥२९॥

मभापर्व-पंचपंचाशाध्याय

699

अर्थ-इस प्रकार उनके हिस्तनापुर से निकलते ही दिना बादल के आकाश में विजली चमकी, पृथ्वी में भूकम्प हुआ राहु ने विना पर्व के सूर्य्य की ग्रम लिया तथा नगर के दिहनी ओर उलकापात हुआ, और :—

प्रत्याहरिनत कव्यादा गृध्रगोमाञ्चवायसाः । देवायतनेवैत्येषु प्राकाराष्ट्रालकेषु च ॥३०॥ एवमेते महोत्मतः माह्यसन्दुरासदाः । भरतानामभावाय राजन् दुर्भित्रिते तव ॥३१॥

अर्थ-देवालय, अटारियां तथा यज्ञस्थानों भें मांस खाने वाले ग्रिप्न तथा काक आदि पश्ची और गीदड़ बोलने लगे, सो है धृतराष्ट्र! यह सम्पूर्ण उत्पात तुम्हारे खोटे मंत्र के कारण भरतकुल का नाश होने के निमित्त हुए हैं॥

वैशम्पायन उवाच

एवं प्रवदतोरेव तयोस्तत्र विशापते । धृतराष्ट्रस्य राज्ञश्च विदुरस्य च धीमतः ॥३२॥ नारदश्च सभामध्ये कुरूणामग्रतः स्थितः । महर्षिभिः परिवृतो रौदं वाक्यमुवाच ह ॥३३॥

अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! जिस समय बुद्धिमान विदुर्जी राजा धृतराष्ट्र से उक्त प्रकार कहरहे थे उसी समय उन कौरवों की सभा में महर्षियों को साथ लिये हुए नारदंजी आये और आकर यह कठोर वाक्य बोले कि :— इतश्चतुर्दशेवर्षे विनंध्यंतीह कौरवाः । दुर्योधनापराधेन भीमार्जनबलेन च ॥३४॥

अर्थ-आज से चौदहवें वर्ष में दुर्योधन के अपराध से भीम-सेन तथा अर्जुन के बलद्वारा सब कौरवों का नाश होजायगा॥

इत्रक्वा दिवमाकम्य क्षिप्रमन्तरधीयत । ब्राह्मीश्रियं सुविपुलां विश्वदेवर्षिसत्तमः ॥३५॥

अर्थ-यह कहकर ब्राह्मीसिद्धि को प्राप्त किये हुए देवार्ष नारद शीघ्र ही अन्तर्धान होगये अर्थाद वहां से चले गये ॥ वैद्याम्पायन उवाच

ततो दुर्योधनः कर्णः शकुनिश्चापि सौबलः ।
द्रोणं द्वीपममन्यंत राज्यं चास्मै न्यवेदयन् ॥३६॥
अथात्रवीत्ततो द्रोणो दुर्योधनममर्षणम् ।
दुःशासनं च कर्णं च सर्वानेव च भारतान् ॥३७॥
अर्थ-वैशम्पायन बोले कि हे राजन ! तत्पश्चात दुर्योधन,

कर्ण और शकुनी द्रोणाचार्य्य की शरण में गये और उनको सब राज्य देने लगे, तब द्रोणाचार्य्य ने क्रोधित होकर दुर्योधन,दुःशा-सन, कर्ण और सब भरतवंशियों से कहा कि :—

अवध्यान् पाण्डवान्त्राहुर्देवपुत्रान्द्रिजातयः। अहं वै शरणं प्राप्तान् वर्त्तमानो यथा बलम् ॥३८॥ गंता सर्वात्मना भक्त्या धार्त्तराष्ट्रान्सराजकान्। नोत्सहेयं परित्यक्तुं दैवं हि बलवत्तरम् ॥३९॥ धर्मतः पाण्डपुत्रा वै वनं गच्छन्ति निर्जिताः। ते च त्रयोदशवर्षाणि बनेवत्स्यन्ति पाण्डवाः॥४०॥ चित्ते त्रह्मचर्याश्चकोधामर्षवशानुगाः। वैरं निर्यातियिष्यन्ति महददुःसाय पाण्डवाः॥४१॥

अर्थ-इन देवपुत्र पाण्डयों को सब ब्राह्मण अबध्य कहते हैं अर्थात वह मारे नहीं जासकते, परन्तु मैं इन शरण आय हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों की सब राजाओं सहित अपने दल के अनुसार अक्ट य रक्षा करंगा, इन्हें त्यागुंगा नहीं, देवयोग बड़ा प्रवल है, अब तो पाण्डव हारजाने के कारण धर्मानुसार वन को चले गये हैं परन्तु जब तेरहर्वष व्यतीत होने पर वन से लौटेंगे तब वह ब्रह्मचारी महादुःख भोगकर क्रोध के वेग में आये हुए इस वैर का बदला अवश्य लेंगे॥

मया च अंशितो राजन द्रुपदः सिलिविग्रहे।
पुत्रार्थमयजदाजा वधाय मम भारत ॥४२॥
याजोपयाज तपसा पुत्रं लेभे स पावकात्।
धृष्टद्यम्नं द्रौपदीं च वेदीमध्यात्सु मध्यमाम् ॥४३॥
अर्थ-मैंने पहिले राजा दुपद को मित्रता की लड़ाई में अशित किया था, सो हे भरतवंशियो ! उसने मेरे मारने के लिये
ऋषियों से पुत्र होने के निमित्त याज और उपयाज नामक यक्त
कराया था, उस यह से उसके धृष्टद्युम्न पुत्र और द्रौपदी नामक
कन्या उत्पन्न हुई॥

घृष्टद्युम्नस्तुपार्थानां स्यालः सम्बन्धतो मतः। पाण्डवानां प्रियरतस्तस्मान्मां भयमाविशत् ॥४४॥

महाभारत

अर्थ-वह घृष्ट्युम्न द्रौपदी का सम्बन्ध होने से पाण्डवों का साला और उनसे बड़ी मीति रखता है सो मुझको उससे बड़ा भय है, क्योंकि :—

गतो हि पक्षतां तेषां पार्षतः परवीरहा ।
रथातिरथसंख्यायांयोग्रणीरर्जनो युवा ॥४५॥
सृष्टपाणो भृशतंर तेनचेत्संगमो मम ।
किमन्यदुः समिषकं परमंभुवि कौरवाः ॥४६॥
पृष्टगुम्रोदोणमृत्युरिति विप्रथितंवचः ।
मद्रभायश्रतोष्येष लोके चाप्यतिविश्रुतः ॥४७॥

अर्थ-वह पाण्डवों के पक्ष में रहेगा और दूसरे अर्जुन सव रथी और महारिथयों में श्रेष्ठ है, अतएव उसके साथ युद्ध होने पर मेरे प्राणों का अवस्य नाश होगा, तो हे कौरय ! इससे दढ़-कर और कौनसी दुःख की दात है, और यह सब लोकों में विख्यात है कि धृष्टदुम्न द्रोणाचार्य्य के मारने को उत्पन्न किये जाने के कारण वह उनकी मृत्यु है ॥

सोयंन्नमनुपाप्तस्त्वत्कृते काल उत्तमः । मुहूर्त्त सुखमेवैतनालच्छायेव हैमनी । यजध्वं च महायज्ञैभीगानश्रीतदत्त च ॥४८॥

अर्थ-हे दुर्योधन ! यह काल तेरे कारण से प्राप्त हुआ है, और यह तेरा मुख हिमऋतु में ताड़ के वृक्ष की छाया के समान एक मुहूर्चमात्र है, सो अब तुम इस अल्पकाल में यह करो, दान दो और मुख भोगो, क्योंकि:—

सभापर्व-षट्पंचाशाध्याय

994

इतश्चतुर्दशे वर्षे महात्पाप्स्ययवैशसम् । द्रोणस्य वचनंश्चत्वा धृतराष्ट्रोऽत्रवीदिदम् ॥४९॥

अर्थ-चौदहर्ने वर्ष में तो तुम्हारा नाश हो ही जायगा, तब द्रोणाचार्य्य के उक्त बचन सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि:—

सम्यगाह ग्ररः क्षत्तरुपावर्तय पाण्डवान् । यदि ते न निवर्तन्ते सत्कृतायां तु पाण्डवाः। सशस्त्ररथपादाता भोगवन्तश्च पुत्रकाः॥५०॥

अर्थ-हे विदुर! आचार्यजी ठीक कहते हैं अब तुम शीघ्र ही जाकर पाण्डवों को लौटालाओ, और यदि वह न लौटें तो इस मकार से न जार्वे जैसे जारहे हैं, यहां से सन्कारपूर्वक रथीं पर सवार होकर शस्त्र लिये हुए प्यादों के साथ जार्वे ॥

इति पंचपंचाशोऽध्यायः समाप्तः

अथ षट्पंचाशोऽध्यायः प्रारम्यते

सं०-अव पाण्डवों के बन जाने पर धृतराष्ट्र का चिन्तातुर होना कथन करते हैं:—

वैशम्पायन उवाच

वनगतेषु पार्थेषु निर्जितेषु दुरोदरे । धृतराष्ट्रं महाराज तदा चिन्ता समाविशत् ॥१॥ तं चिन्तयानमासीनं धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् । निःश्वसंतमनेकाग्रमिति होवाच संजय ॥२॥

अर्थ-वैशम्पायत बोले कि हे राजन ! जब पाण्डव जूए में हारकर बन को चले क्ये तब राजा धृतराष्ट्र बड़ा चिन्तातुर हुआ, उस समय धृतराष्ट्र को न्याकुल चित्त और चिन्ता से खास लेते हुए बैठा देखकर संजय बोला कि :—

अवाष्य वसुसम्पूर्णा वसुयां वसुयाधिय । प्रवाज्य पाण्डवान्गाज्याद्राजन् किमनुशोचिस ॥३॥ अर्थ-हे राजवे! धन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी पाकर और पाण्डवों को वनवास देकर अब क्या सोच कररहे हो ?॥

धृतराष्ट्र उवाच अशोच्य वं कृतस्तेषां येषां वैरं भविष्यति । पाण्डवैर्युद्धशौंडिर्हि बलविद्भमे स्थः ॥४॥

अर्थ-धृतराष्ट्र बोला कि हे संजय ! जिसका उन पाण्डवों से जो महारथी, बलवान और युद्ध विद्या में बड़े चतुर हैं बैर होनावे तो वह निश्चिन्त होकर कैसे बैठ सकता है ॥

तवेदं सुकृतं राजन महद्वरमुपिश्यतम् ।
विनाशो येन लोकस्य सः नुबंधो सविन्यति ॥५॥
वीर्घ्यमाणो हि भीष्मेण द्रोणेन विदुरेण च ।
पाण्डवानां प्रियां भायीं द्रौपदीं धर्मचारिणीम् ॥६॥
प्राहिणोदानयेहेति पुत्रोदुर्योधनस्तव ।
सूतपुत्रं सुमदातमा निल्जाः प्रातिकामितम् ॥७॥

सभापर्व-षद्वंचाशाध्याय

299

अर्थ-संजय बोला कि हे धृतराष्ट्र ! यह वैर भी तो आपही का किया हुआ है जिसके कारण अब सब लोक का नाश होजा-यगा, बोक !!! तुम्हारे निर्लज्ज तथा मंदबुद्धि पुत्र दुर्योधन ने भीष्मिपितामह, द्रोणाचार्य्य और विदुरजी के वर्जन करने पर भी प्रातिकामी को भेजकर धर्मचारिणी द्रौपदी को सभा में बुलाया॥

यस्मैदेवाःप्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् । बुद्धिंतस्यापकपितसोवाचीनानि पश्यति ॥८॥

अर्थ-सत्य है जिसको देवता पराभव=ितरस्कृत करना चाहते हैं उसकी बुद्धि पहले ही हरलेने हैं जिसके कारण वह अथोगिन ही देखता है ॥

बुद्धोकलुपमृतायां विनाशे समुपिस्थते । अनयोनयसंकाद्यो हृदयान्नापसपिति ॥९॥ अनर्थाश्चार्थरूपेण अर्थाश्चानर्थरूपिणः । उत्तिष्ठन्ति विनाशाय नृनं तचास्य रोचते ॥१९॥

अर्थ-जब नाश होने का समय आता है तब बुद्धि के पाप रूप होजाने से अनीति ही नीति जान पड़ती और हित अहित तथा आहित हित दिखाई देता और वहीं उसको अच्छा जान पड़ता है॥

न कालो दण्डमुद्यम्य शिरःकृतित कस्यचित् । कालस्यबलमेतावद्धिपरीतार्थ दर्शनम् ॥११॥ आसादितभिदंघोरं तुमुलं लोमहर्षणम् । पांचालीमपकर्षद्भिःसभामध्ये तपस्विनीम् ॥१२॥

महाभारत

अर्थ-काल कुछ दण्डा लेकर किसी के शिर को नहीं फोड़-ता, विपरीत बातों को अनुकूल मानने ही से जाना जाता है कि यह काल के वश में होरहा है, यह बड़ा रोम खड़े करने नाला घोर युद्ध सभा में तपस्विनी द्रौपदी को लाने वालों ने ही खड़ा किया है॥

अयोनिजां रूपवतीं कुलेजातां विभावसोः । कोनुतां सर्वधर्मज्ञां परिभूय यशस्विनीम् ॥१३॥ पर्यानयत्सभामध्ये विनादुर्द्यूतदेविनम् । स्त्रीधर्मिणीवरारोहा शोणितेनपरिष्छता ॥१४॥

अर्थ-भला वह अयोनिजा द्रौपदी * इस योग्य थी, जैसा उस उचकुल में उत्पन्न हुई, सब धर्मों को जानने वाली,यशस्विनी और इपवती देवी के साथ वर्ताव किया गया है, ऐसी देवी को ज्वारियों के सिवाय सभा में बुलाने का कौन साहस करसक्ता है और ऐसी दशा में जब कि वह अपने रजस्वला धर्म में रुधिर से भरी हुई हो, और :—

एकवस्त्राथ पांचाली पाण्डवानभ्यवैक्षत । हतस्वान्हतराज्यांश्च हतवस्त्रान् हतिष्रयः ॥१५॥ विहीनान्सर्वकामभ्यो दासभावमुपागतान् । धर्मपाशपरिक्षिप्तानशक्तानिव विक्रमे ॥१६॥

अर्थ-एक वस्त्र पिंदिरे हुए अपने पितयों को जो धन, राज्य, वस्त्र और पियजनों को हार जाने के कारण दासभाव को माप्त थे उन्हें सब कामनाओं से रहित, धर्मपाश में बन्धे हुए होने से पराक्रमहीन हुए के समान देख रही थी॥

^{*}रस स्थाल में द्रीपदी को '' अयोनिजा '' कहना अर्थवाद है वास्तव में वह ''योनिजा' थी॥

सभापर्व-पटवंचाशाध्याय

399

ऋढाचान्हतीं कृष्णां दुःखितां क्रुरंसादि । दुर्योधनश्रकणश्रकद्कान्यभ्यभाषताम् ॥१७॥ इतिसर्वमिद्राजन्नाकुलं प्रतिभाति मे । तस्याःकृषण चक्षुभ्यां प्रदह्येतापि मेदिनी ॥१८॥

अर्थ-उस समय दुर्यायन और कर्ण ने कुरुओं की सभा में उस दुलिया से जो अनादर करने के योग्य न थी बहुत कटुवचन कहे, यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि है संजय ! आप सच कहते हैं वह द्रौपदी अगनी क्रोयमरी आंखों से देखकर पृथ्वी को भी भस्न करसक्ती है और मेरे पुत्र भी मुझे भस्म हुए के समान ही प्रतीत होते हैं॥

अपिशेषं भवेदद्य पुत्राणां मम संजय । भरतानांस्त्रियःसर्वागांधार्यासहसंगताः ॥१९॥ प्राकोशन् भैरवं तत्र दृष्ट्वा कृष्णां सभागताम् । धार्मेष्ठां धर्मपत्नीं च रूपयोवनशालिनीम् ॥२०॥

अर्थ-हे संजय! जब गान्यारी सहित सब भरतवंश की स्त्रियां उस धर्मिष्ठा, युदा तथा स्त्रह्मपत्रान् धर्मपत्री द्रौपदी को सभा में आई हुई देखकर रो रही थीं, और :—

प्रजाभिःसहंसगम्यहानुशोचिन्त नित्यशः । अग्निहोत्राणि सायाद्वे नचाहूयन्त सर्वशः ॥२१॥ ब्राह्मणाःकुपिताश्चासन् द्रौपद्याः परिकर्षणे । आसीन्निष्ठानकोघोरो निर्घातश्च महानभूत॥२२॥ दिवउल्काश्चापतंत राहुश्चार्कमुपाग्रसत् । अपर्वणि महाघोरं प्रजानां जनयन्भयम् ॥२३॥ तथैव रथशालासु पादुरासीद्धताशानः । ध्वजाश्चापि व्यशीर्यन्त भरतानामभूतये ॥२४॥

अर्थ-अपने २ पुत्रों के पास बैठी हुई सोच कररही थीं, ब्राह्मणों ने द्रौपदी का सभा में लाना देखकर क्रोच किया और सायंकाल को अग्निहोत्र भी नहीं किया था, तब प्रलय की सी दुन्दुभी बजने लगी, बज्ज के गिरने जैसा शब्द हुआ, दिन में उल्का गिरे तथा पर्व न होने पर भी प्रजाओं को भय उत्पन्न करने वाले राहु ने सूर्य्य को ग्रस लिया, इसी प्रकार रथशाला में अपने आप आग लग गई और भारतवंशियों की ध्वजा भी गिरगई॥

प्रातिष्ठत ततो भीष्मो द्रोणेन सहसंजय ।
कृपश्च सोमदत्तश्चबाहळीकश्च महामनाः॥२५॥
ततोहमब्रुवं तत्र विदुरेण प्रचोदितः ।
वरं ददानि कृष्णायैकांक्षितं यद्यदिच्छति ॥२६॥

अर्थ-यह देखकर भीष्मिपितामह, द्रोणाचार्घ्य, संजय, कृपा-चार्घ्य, सोमदत्त और बाह्मीक तो चलदिये, और बिदुरजी की मेरणा से मैंने कहा कि हे द्रौपदी ! तू मुझसे वर मांग, जो तेरी इच्छा होगी वही वर तुझे दूंगा ॥॥

अवृणोत्तत्र पांचाली पाण्डवानामदासताम् । सरथान्सधनुष्कांश्चाप्यनुज्ञासिषमप्यहम् ॥२७॥

सभापर्व-पट्पंचाशाध्याय

0,29

अथात्रवीन्महाप्राज्ञो विदुरःसर्वधर्मवित् । एतदंतास्तुभरतायद्रःकृष्णासभागता ॥२८॥ यैषा पांचालराजस्य सुतासाश्रीरनुत्तमा । पांचाली पाण्डवानेतान्दैवसृष्टोपसपीति ॥२९॥

अर्थ-तब द्रौपदी ने मुझमे यह वर मांगा कि सब पाण्डव अदास करिदये जायं, मैंने वह वरदान उसको देदिया और पा-ण्डवों को धनुष तथा रथों सिहत इन्द्रमस्थ जाने की आज्ञा देदी, तदनन्तर सब धर्मों के जानने वाले महाबुद्धिमान विदुरजी ने कहा कि भरतबंशियों का अन्त यहीं तक है जो द्रौपदी को इस प्रकार सभा में लाया गया है, यह द्रौपदी राजा पांचाल की पुत्री अनुत्तम लक्ष्मी है इसके समान अन्य कोई उत्तम स्त्री नहीं,और पाण्डवों ने इसको दैव इच्छा से पाया है।

तस्याः पार्थाः परिक्केशं न क्षंस्यंतेह्यमर्पणाः। वृष्णयो वा महेष्वासाः पंचाला वा महारथाः। तेन सत्याभिसन्धेन वासुदेवेन राक्षेता॥३०॥

अर्थ-सो इसके सभा में लाने के क्रेश को पाण्डव कभी न सहसर्केंगे और न महारथी पांचालनरेश तथा वृष्णीवंशी लोग इसके दु:ख को सहेंगे जिसकी रक्षा सत्यमतिक कृष्ण करने हैं॥

आगमिष्यति बीभत्सः पंचालैः परिवारितः। तेषां मध्ये महेश्वासो भीमसेनो महाबलः। आगमिष्यति धन्वानो गदांदण्डमिवांतकः॥३१॥ ततो गाण्डीविनर्घापं श्रुत्वा पार्थस्य धीमतः । गदावेगं च भीमस्य नालं सोई नराधिपाः ॥३२॥

अर्थ-जिस रुम्य अर्जुन पांचालदेश की सेना टेकर आवेगा और महावली मीमरेन उस नेन्त में अपनी गदा घुमाता हुआ युद्ध के लिये खड़ा होगा उस समय कोई राजा अर्जुन के गांडीव-धनुप का शब्द सुनकर मीमसेन की गदा के वेग को न सह सकेगा, इसलिये :---

तत्र मे रोचते नित्यं पार्थेः साम न विश्रहः। कुरुभ्यो हि सदामन्ये पाण्डवान् बलवत्तरान्॥३३॥

अर्थ-में पाण्डवों के साथ विग्रह करना अच्छा नहीं सम-झता, मेरी समझ में आप पाण्डवों से शीन्न सन्धि करलें. क्योंकि मैं पाण्डवों को कोरवों से सदेव बलवान मानता हूं॥

तथा हि बलवान् राजा जरासंधो महाद्युतिः। बाहुप्रहरणेनेव भीमेन निहतो युधि ॥३४॥

अर्थ-देखो जरामन्य जो बड़ा तेजस्त्री और वलवान था वह भी भीममेन के हाथों से युद्ध में मारा गया, इसलिये:—

तस्य ते शम एवास्तु पाण्डवैभरतर्षभ ।
उभयोः पक्षयोर्श्वकं क्रियतामविशंकया ।
एवं कृते महाराज प्रश्रेयस्त्वमाप्स्यसि ॥३५॥
एवं गावत्गणो क्षना धर्मार्थसिहतं वचः ।
उक्तवान गृहीतं वै मया पुत्रहितैषिणा ॥३६॥

मभापर्व-पद्वंचाशाध्याय

१२३

अर्थ-हे भरतकुलभूषण ! पाण्डवों से आपकी सन्धि रहना ही अच्छा है, आप शंका छोड़के दोनों ओर का वलावल विचार कर जैसा उचित समझें वैसा करें इस मकार सोच विचारकर करने मे आपका कल्याण होगा, सो हे संजय ! विदुरजी ने उक्त मकार से अनेक वार धर्म और अर्थ सहित वचन कहकर मुझको बहुत समझाया परन्तु मैंने अपने पुत्र के हित की कामना से उनकी सलाह को स्वीकर न किया ॥

> इति श्रीमदार्घमुनिनोपनिबद्धे महाभारते-आर्घ्यटीकायां सभापर्व समाप्तम् 13778



Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



GURUKUL	KANCRI	LIBRARY	1
	Cignature	Date	
Acces	N	10/1/20	
(10	RE	15.2.2	
	R E	11	
Tag etc.	maly	(,	
Filing	4	212-2000	
E.A.R	A	24	
Any other	RE	15.2.2	ı
Checked	Int	122	1000

Recommended By____

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled | 1999-2000 |

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri CC-0. Gurukul Kangri Collection, Haridwar